सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२४

(मई – अगस्त १९२४)

१९२४ में

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२४

(मई–अगस्त १९२४)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भूमिका

प्रस्तुत खण्डमें ८ मार्च, १९२४ से १८ अगस्त, १९२४ तककी सामग्री संगृहीत है और उससे गांधीजीके उन प्रयत्नोंको समझनेमें मदद मिलती है जो उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनको पुनः शक्तिशाली और उद्देश्यपूर्ण बनानेके लिए किये थे। उससे यह भी ज्ञात होता है कि उनका यह प्रयत्न एक अर्सेतक सफल नहीं हुआ। मार्च १९२२ से फरवरी १९२४ तक वे जेलमें थे। इस बीच आन्दोलनकी धाराने दूसरा मार्ग पकड़ लिया और ऐसा लगा कि वह असहयोग कार्यक्रमके अपने सिद्धान्तोंसे च्युत हो गया है। जेलसे छूटनेके बाद तीन महीनेतक गांधीजी बम्बईके पास जुहूमें रहे और वहाँ आराम करते हुए उन्होंने तात्कालिक प्रधान समस्याओं अर्थात् कौंसिल-प्रवेश और हिन्दू-मुस्लिम तनावको लेकर प्रमुख नेताओंसे बातचीत की। बातचीतके बाद उनपर अपना मत निर्धारित कर लेनेके पश्चात् मईके अन्तमें उन्होंने उसे अभिव्यक्त की। (देखिए 'वक्तव्य: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", पृष्ठ ११८-१७ और 'हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", पृष्ठ १३९-५९) इन लेखोंके प्रकाशनके बाद उन्होंने कांग्रेसको अधिकाधिक सुसंगठित और कारगर संस्था बनानेके विचारसे कुछ ठोस सुझाव पेश किये। अपने विचारोंको अभिव्यक्त करते हुए गांधीजीने इस बातकी पूरी कोशिश की कि प्रत्येक पक्षके साथ पूरा-पूरा न्याय हो। किन्तु जिस दृष्टिसे उन्होंने परिपूर्ण स्पष्टताका व्यवहार किया था, उसीके कारण देशके कुछ दलोंमें उसका विरोध होने लगा।

स्वराज्य दलसे गांधीजीका मूलभूत सैद्धान्तिक मतभेद था। उनके जेलमें रहते हुए स्वराज्य दलके प्रमुख नेताओं, श्री मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दासने कौंसिलोंमें प्रवेशके कार्यक्रमको अपना लिया था। यद्यपि दिल्ली और कोकोनाडा कांग्रेसके प्रस्ताव उसकी अनुमति देते थे, तथापि गांधीजीको ऐसा लगा कि उनका यह कार्य उस असहयोग कार्यक्रमके विपरीत है जिसे कांग्रेसने सन् १९२० में प्रमुख कार्यक्रमकी तरह स्वीकार किया था। असहयोगके कार्यक्रमका मंशा रचनात्मक गति-विधि अपनाकर तथा सत्य और अहिंसापर दृढ़ रहकर देशमें एक ऐसी आन्तरिक शक्ति उत्पन्न करनेका था जो अंग्रेजोंको सत्ता हस्तान्तरित करनेपर बाध्य कर दे। और स्वराज्यवादी दलकी अड़ंगा-नीतिसे सम्बन्धित कार्यक्रमका मंशा केवल इतना ही था कि वे कौंसिलोंमें जाकर सरकारपर दबाव डालें ताकि अन्ततोगत्वा आन्दोलनका लोकमत भारतके पक्षमें हो जाये और उसे स्वराज्य हासिल हो सके। किन्तु गांधीजी ऐसा मानते थे कि कौंसिलोंमें सरकारका विरोध करनेके कारण लोगोंका ध्यान बँटेगा और रचनात्मक कार्यक्रम तथा उसके द्वारा देशमें नवजीवन-संचार करनेके काममें बाधा उत्पन्न होगी। यद्यपि गांधीजी स्वराज्यवादी दलके कार्यक्रमका औचित्य नहीं देखते थे, तथा यथार्थवादी होनेके नाते उन्होंने इतना समझ लिया था कि चूँकि कौंसिल-प्रवेश किया ही

जा चुका है, स्वराज्यवादियोके साथ कोई समझौता कर लिया जाना चाहिए और उस समझौतेके आधारपर काग्रेसको परस्पर-विरोधी तत्त्वोकी सस्था न होकर सम-तत्त्वोकी सगठित सस्थाके रूपमे काम कर सकना चाहिए। इसलिए उन्होने स्वराज्य दलके प्रति परिपूर्ण तटस्थताका रुख अपनाया और साथ ही यह कोशिश भी की कि काग्रेसकी कार्यकारिणी सत्ता उन लोगोके हाथमे रहे जो सस्थाकी सारी शक्ति और साधनोका उपयोग रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करनेमे लगाना चाहते है। इसी उद्देश्यसे जूनके अन्तमे अहमदावादमे होनेवाली अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी वैठक-के लिए उन्होने कुछ प्रस्तावोको पेश करनेकी इच्छा जाहिर की । प्रस्तावोका मशा काग्रेसकी प्रातिनिधिक और कार्यकारिणी समितियोसे स्वराज्य दलके सदस्योको हटाना ही था। गाधीजी इन समितियोमे समान तत्त्वोको ही दाखिल नही करना चाहते थे, वे यह भी चाहते थे कि रचनात्मक कार्यक्रमपर तेजीसे अमल किया जा सके। अत उनके प्रस्तावोका उद्देश्य "कथनी और करनीमे अभेद स्थापित करना था।" मुख्य प्रस्ताव यह था कि काग्रेसका हरएक सदस्य जो सस्थाकी किसी प्रातिनिधिक अथवा कार्यकारिणी समितिके लिए चुने जानेका अधिकारी होना चाहता है, कमसे-कम नित्य आधा घटा सूत काते और अखिल भारतीय खादी मण्डलको प्रतिमास निश्चित परिमाणमे ठीक और समान काता हुआ सूत भेजे। इस प्रकार काग्रेसका हरएक कर्मठ सदस्य देशकी आर्थिक दुरवस्थाके साथ अपनी अभिन्नता सिद्ध कर सकेगा — एक जन-सगठन होनेके नाते काग्रेसके सदस्योसे कमसे-कम इतनी आशा तो की ही जानी चाहिए थी। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीमे उक्त प्रस्ताव किसी वडे बहुमतसे तय नही हुए और जव गाधीजीने देखा कि स्वराज्यवादी दल, जो प्रस्तावका विरोध कर रहा था, पर्याप्त शक्तिशाली है तो उन्होने स्वय प्रस्तावका एक सशोधन पेश किया और उसके द्वारा सूत कातनेकी शर्तका पालन न करनेके प्रस्तावमे जो दण्ड सुझाया गया था, उसका उतना अग रद कर दिया गया। अन्य प्रस्तावोका भी प्रवल विरोध हुआ और स्वराज्यवादियोके दृष्टिकोणकी रक्षाकी दृष्टिसे उनमे से दो प्रस्तावोमे सुधार भी किये गये।

गाधीजीने वताया कि राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व करनेके लिए उक्त प्रस्तावोको उनकी शर्ते माना जाये। "इसलिए इन चार प्रस्तावोको जनरलकी जगहके लिए मेरी दरखास्त ही समझिए । इसमे मेरी योग्यता और मर्यादाएँ दोनो आ जाती है।" (पृष्ठ २७४) यद्यपि प्रस्ताव पास हो गया, तथा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी कार्रवाईके दौरान जो-कुछ हुआ उसने गाधीजीको सोचनेपर वाध्य कर दिया। "यद्यपि मुझे अपने द्वारा प्रस्तुत किये गये चारो प्रस्तावोपर बहुमत मिला, फिर भी मुझे यह स्वीकार करना ही होगा कि अपनी समझमे तो मेरी हार ही हुई है। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी कार्रवाईने मेरी आँखे खोल दी है और अव मै वडी आतुरताके साथ अपना हृदय टटोल रहा हूँ।" (पृष्ठ ३४१) गाधीजी इस विचारमे पड गये कि जो लोग उनके मूलभूत सिद्धान्तोकी अवहेलना करते है, उनकी तरफ सहयोगका हाथ बढाकर वे ठीक भी कर रहे है या नही। "मेरे दिलमे यह सवाल वरावर उठता रहा

कि क्या अनत्यका परिणाम कभी सत्य भी हो सकता है ? क्या मैं बुराईके साथ सहयोग नही कर रहा हूँ ?" (पृष्ठ ३४६) उनकी इस स्वीकारोक्तिसे उनकी आन्तरिक पीडाको भली-भाँति समझा जा सकता था। "मेरे आँसू हर किसी बातपर नही निकल पडते। आँसू बहानेके मौकोपर भी मैं आँसुओंको पी जानेकी कोशिश करता हूँ। परन्तु इन मौकोपर तो दिलको मजबूत बनानेका पूरा प्रयत्न करते हुए भी मेरे आँसू बह निकले।" (पृष्ठ ३४६) गाधीजीको दु ख इस बातका नही हुआ कि उनके प्रस्तावोका विरोध हुआ बल्कि कार्रवाई जिस गैर-सजीदगीके साथ होती रही, उसपर उन्हे दु ख हुआ।

गाधीजीको लगा कि वे हार गये है और उनका सिर झुक गया है, किन्तु फिर भी उन्होने स्वराज्यवादी दलके साथ यदि सहयोग नही तो बिना परस्पर सघर्षके काम कर सकनेके किसी उपायको खोजनेकी पूरी कोशिश की। वे नही चाहते थे कि स्वराज्यवादी दलके लोग अपने विश्वासके बावजूद कौसिलोसे हट जाये अथवा लोकमतसे डरकर अपने विचार न रखे। ९ अगस्त, १९२४ के अपने पत्रमे उन्होने मोतीलाल नेहरूको लिखा "काग्रेस आपके नियन्त्रणमे आ जाये, इसके लिए मैं आपका रास्ता सुगम बनाने, वास्तवमे उसमे आपको सहायता देनेके लिए तैयार हूँ। आपके कार्यक्रममें शामिल होनेकी बातको छोडकर आप और जो-कुछ चाहे, मैं करनेको तैयार हूँ।" (पृष्ठ ५४१-४२) १५ अगस्त, १९२४ के एक अन्य पत्रमें उन्होने स्पष्ट किया "मैं कौसिलोके कार्यक्रमके झमेलेमे अपनेको नही डालना चाहता।" (पृष्ठ ५८९) अगर वे काग्रेसमें रहते है तो यह कार्यक्रम काग्रेससे बाहर रहकर चलाया जाये और यदि स्वराज्यवादी दल काग्रेसको अपने हाथमे ले ले, तो वे स्वय लगभग काग्रेससे हट जायेंगे। १९१५–१९१८ मे उनकी जो स्थिति थी, वे उस स्थितिको स्वीकार करनेके लिए तैयार थे। और इसमे उनका मशा स्वराज्यवादियोको कमजोर बनानेका नही था, यहाँतक कि उन्हे परेशान करनेका भी नही था। (पृष्ठ ५८९-९०) उन्हे ऐसा लगता था कि जिन अपरिवर्तनवादियोने अहमदाबादकी अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीमे काग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके प्रति अपनी सैद्धान्तिक दृढता प्रकट की थी, उनके और स्वराज्यवादियोके बीच दिसम्बरमे होनेवाले काग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमे फिर झगडा होगा। "मैं जितना ही सोचता हूँ, मेरी अन्तरात्मा बेलगाँवमे सत्ताके लिए होनेवाली रस्साकशीके खिलाफ उतना ही अधिक विद्रोह करती है।" (पृष्ठ ५८९) उन्होने अपरिवर्तनवादियोको यह बात समझानेकी बडी कोशिश की कि जहाँ-जहाँ आवश्यक हो, वे सस्थाकी कार्यकारिणी समितियाँ स्वराज्यवादियोको सौंप दें और काग्रेसको आन्तरिक झगडेसे बचाये। उन्होने उन्हे सलाह दी कि वे स्वय रचनात्मक कार्यक्रममें जुट जाये, विशेषत खादी-उत्पादनके कार्यमे पृष्ठ ४७८-८०।

'यग इडिया' और 'नवजीवन' के स्तम्भोमे इस बीच गाधीजी अपने पाठकोसे कातनेका आग्रह बराबर करते ही रहे और देशके विभिन्न भागोमे खादी सम्बन्धी जो कार्य हो रहा था, उसकी विस्तृत जानकारी पेश करते रहे। उन्होने सुझाव दिया, कैदियोको दिन-भर कातनेका काम दिया जा सकता है। राष्ट्रीय शालाओके शिक्षको

और विद्यार्थियोके सामने भाषण देते हुए उन्होने अनेक बार उनसे आग्रह किया कि वे अपना अधिकाधिक समय खादी-कार्यमे लगाये और यह भी सुझाया कि राष्ट्रीय स्कूलोमे खादी अनिवार्य रूपसे दाखिल की जानी चाहिए। अहमदावादकी राष्ट्रीय शालाके एक समारोहमे गाधीजीने राष्ट्रीय शिक्षा और उसके शिक्षकोके कर्त्तव्यके बारेमे अपने विचार विशद रूपसे सामने रखे।

इस कालावधिमे हिन्दू-मुस्लिम तनावकी बातको लेकर गाधीजीके मनपर बडा बोझ रहा। सन् १९२१ मे जब असहयोग आन्दोलन पूरे जोरपर था, ऐसा जान पडता था, मानो दोनो सम्प्रदायोमे एकता बहुत जल्दी स्थापित हो जायेगी। किन्तु खलीफासे गद्दी छीन लिये जानेके बाद खिलाफत आन्दोलन ठडा पड गया और उसके बाद गाधीजीके दो वर्षतक कारावासमे रहनेके बाद दोनो सम्प्रदायोके बीच मनो-मालिन्य उत्पन्न हो गया। देशके अनेक भागोमे दगे भी हो गये। गाधीजीने "हिन्दू-मुस्लिम तनाव · कारण और उपचार" (पृष्ठ १३९-५९) नामक लेखमे इस प्रश्नका विश्लेषण किया है। जैसा कि उन्होने कहा, स्थान-स्थानपर हुए दगोके पीछे स्थानीय परिस्थितियोके अलावा देशमे हिंसाकी बढती हुई मनोवृत्ति भी एक प्रबल कारण थी और यह मनोवृत्ति पैदा हुई थी असहयोग आन्दोलनके जमानेमे अहिंसाकी नीतिको अन्यमनस्क भावसे स्वीकार करनेके कारण। जिन नेताओके मनमे साम्प्रदायिकताकी भावनाएँ अधिक थी और अहिंसाके सिद्धान्तके प्रति पूरी निष्ठा नही थी, दोनो ही पक्षोके ऐसे नेतागण सोचने लगे कि विश्वास और सहिष्णुतासे उनके सम्प्रदायको कोई लाभ नही होगा, लाभ होगा तो केवल अपनी शक्तिके बलपर। ५-६-१९२४ के 'यग इडिया' मे उन्होने "भारतीय देशभक्तो के सामने मौजूद सवालोमे सबसे जबरदस्त" (पृष्ठ १९२) प्रश्नके विषयमे अपने विचार सक्षेपमे रखे। गाधीजीने दोनो ही पक्षोसे सत्यको पहचाननेके लिए कहा और इस कारण दोनो ही दल उनसे नाराज हुए। गाधीजीने चाहा कि यदि स्वास्थ्य साथ दे तो वे दोनो सम्प्रदायोमे एकता स्थापित करनेके विचारसे सारे देशका दौरा करे, किन्तु यह सम्भव नही हो सका। इस तरह जब उन्होने देखा कि वे तत्कालीन वातावरणको सुधारनेमे असमर्थ है तो उन्होने दिल्लीमे आत्मशुद्धिके विचारसे २१ दिनका उपवास किया।

त्रावणकोर रियासतके वाइकोम नामक स्थानमे किया गया सत्याग्रह यद्यपि एक स्थानीय समस्याको लेकर ही किया गया था, फिर भी गाधीजीने इसपर पर्याप्त ध्यान दिया। वहाँ मन्दिरको जानेवाली सार्वजनिक सडकपर अछूतोको चलनेका अधिकार नही था, इसे लेकर सुधारकोने एक आन्दोलन शुरू कर दिया था। सत्याग्रहका मशा गाधीजीके विचारोके सर्वथा अनुकूल था, इसलिए उन्होने उसे अपना नैतिक समर्थन दिया और दूर बैठकर ही सही, वे उसका मार्गदर्शन करते रहे। वे यह अवश्य चाहते थे कि उक्त सत्याग्रहका स्थानीय रूप बना रहे और केवल हिन्दू ही उसमे भाग ले। वे यह भी चाहते थे कि सत्याग्रहके आधारभूत सिद्धान्तोका सख्तीसे पालन किया जाये, अर्थात् विरोधियोके हृदय-परिवर्तनके लिए स्वय कष्ट-सहनको स्वेच्छापूर्वक अपनाया जाये। उन्हे एकाध बार ऐसा भी लगा कि इस नजरियेसे देखनेपर वाइकोमका

सत्याग्रह "अपनी मर्यादाएँ भग करने लगा है।" (पृष्ठ ८) और इसलिए उन्होने सार्वजनिक रूपसे उसकी कुछ बातोसे असहमति भी व्यक्त की। "भेट वाइकोम शिष्टमण्डलमे" (पृष्ठ ९३-९८) मे इन समस्याओपर थोडे विस्तारमे विचार किया गया है। उन्होने सुधारकोसे धैर्य रखने और मध्यम मार्ग अपनानेकी अपील की और कहा कि यदि ऐसा नही किया गया तो वे रियासत और दूसरी जगहोके कट्टर हिन्दुओकी सहानुभूति खो देगे। इसी तरह गाधीजीने काठियावाडके सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओसे उक्त क्षेत्रकी भारतीय रियासतोमे की जानेवाली राजनीतिक गतिविधियोमे सयम बरतनेका आग्रह किया। उन्होने समझाया कि रियासतोमे जो बुराइयाँ व्याप्त है, वे अग्रेजी शासन-पद्धतिका ही परिणाम है और रियासतोकी प्रजा वहाँके राजाओको अग्रेज सरकारकी अधीनतासे मुक्त करनेका बोझ स्वय अपने कन्धोपर नही ले सकती। हाँ, स्वय राजा ऐसा करे तो बात दूसरी है। उन्होने यह भी कहा कि भारतके स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए रियासतोमे सत्याग्रह भी नही किया जाना चाहिए। (पृष्ठ २५३) काठियावाड राजनीतिक परिपद्को उन्होने सलाह दी कि वह राजा और प्रजाके सम्बन्ध सुधारनेके अपने प्रयत्नोको ही बढाये और अपने-अपने क्षेत्रकी आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक उन्नति करनेकी दिशामे जुटे। भारतीय रियासतोके प्रति अन्ततक गाधीजीका यही रुख रहा।

खण्डकी सगृहीत सामग्रीमे "मेरे जेलके अनुभव" शीर्षक लेखमाला अपना विशिष्ट स्थान रखती है। गाधीजीने इसमे जेलकी कुछ प्रमुख समस्याएँ, जैसे कैदियोका वैज्ञानिक वर्गीकरण तथा जेलोको आर्थिक दृष्टिसे आत्मनिर्भर बनानेकी समस्याओपर भी विचार किया। उन्होने कहा कि वर्गीकरण आर्थिक अथवा राजनीतिक दृष्टिसे न किया जाकर मानवीय दृष्टिसे किया जाना चाहिए, तथा यदि कैदियोमे ठीक काम लिया जा सके तो जेलोको आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। मूलशीपेटाके कैदियो और जेलके अधिकारियोके बीच सघर्पमे जिन परिस्थितियोमे उन्हे हस्तक्षेप करना पडा था, गाधीजीने इन लेखोमे उसपर भी थोडा प्रकाश डाला है। गाधीजी चाहते थे कि सरकार उन्हे उक्त कैदियोसे मिलने दे ताकि वे जेलके नियमोके विपयमे सत्याग्रही कैदी होनेके नाते उन्हे रुख बदलनेके विपयमे समझा सके। इस विपयको लेकर परिस्थितिमे काफी उतार-चढाव आता रहा, किन्तु अन्तमे परिणाम ठीक ही निकला। जेल सुपरिटेडेट श्री जोन्सने स्वीकार किया "मैने जितनी भूख-हडताले देखी है उनमे यह सबसे अधिक दोप-रहित थी।" (पृष्ठ १०२)

इन लेखोमे गाधीजीने कुछ ऐसे कैदियोके सस्मरण भी लिखे है जिन्हे कैदियोके बीचसे चुनकर उनके ऊपर अफसरोकी तरह तैनात कर दिया जाता है। गाधीजी और उनके साथियोपर निगाह रखनेका काम भी इन्हे सौपा गया था। गाधीजीने जिस उत्साहके साथ रेखा-चित्र खीचे है उससे स्पष्ट हो जाता है कि गाधीजी छोटे-बडे सभी अधिकारियोके पति समान स्नेहभाव रखते थे।

'नवजीवन' का एक लेख उनकी आन्तरिक धार्मिक भावनाओको समझनेके लिए विशेष उपयोगी है। "प्रेमका अभाव या अतिरेक" (पृष्ठ २०१-२) शीर्षक लेखमें

उन्होने किसी धार्मिक पत्र-लेखककी आपत्तियोका जवाव दिया है। पत्र-लेखकका कहना था कि गाधीजी अपने लेखोमे केवल 'राम' इत्यादि लिखकर श्री रामचन्द्र प्रभुका उल्लेख करते है, यह अनुचित है। यद्यपि गाधीजी सदैव यही कहते थे कि ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है, और यद्यपि वे अपने नैतिक आदर्शोका आधार निर्गुण भगवान्‌को ही मानते थे तथापि उनके अन्तरमे सगुण भक्तिकी धारा वहती रहती थी जो उन्हे वचपनमे अपने आसपास व्याप्त वैष्णवी वातावरणसे प्राप्त हुई थी। राम उनके इष्टदेव थे। "राम तो अव मेरे घर आ गये है। उन्हे अगर मै 'तुम' या 'आप' कहूँ तो वे मुझपर रोप करेगे। मेरे न माँ है, न वाप है और न भाई, ऐसा आश्रयविहीन हूँ मै। मेरे तो अव राम ही सर्वस्व है। मै तो उसीके जिलाये जी रहा हूँ। मै उसी रामको भगी और ब्राह्मणमे देखता हूँ। इसलिए दोनोका अभिवादन करता हूँ।" (पृष्ठ २०१-२) एक तर्कनिष्ठ व्यक्ति होनेके कारण यद्यपि गाधीजी यह मानते और कहते भी थे कि राम, खुदा और गॉड एक ही तत्त्व-को सूचित करते है, फिर भी स्वाभाविक रूपसे उनका मन अपने प्रिय रामका नाम लेकर ऐसी प्रेरणा पाता था कि वे उस नामके जादूके विषयमे लिखते हुए कभी थकते नही थे।

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिज़र्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद, गांधी स्मारक निधि संग्रहालय, नई दिल्ली, श्री छगनलाल गांधी, अहमदाबाद, श्री नारणदास गांधी, राजकोट, श्री नारायण देसाई, बारडोली, श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता, तथा 'गांधीजीनी साधना', '[illegible]', 'बापुना पत्रो–४: मणिबहेन पटेलने', '[illegible]', '[illegible] जीवनी', 'वायस आफ फ्रीडम', 'स्टोरी ऑफ माई लाइफ' पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'अमृतबाजार पत्रिका', 'गुजराती', 'टाइम्स आफ इंडिया', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'लीडर', 'हिन्दी नवजीवन' तथा 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली, साबरमती संग्रहालय तथा गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद, श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। कागज-पत्रोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायता देनेके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्लीके फोटो-विभागके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमे गाधीजीके स्वाक्षरोमे मिली है उसे अविकल रूपमे दिया गया है। किन्तु दूसरो द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमे हिज्जो-की स्पष्ट भूले सुधार दी गई है।

अग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय भाषाको यथासम्भव मूलके निकट रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही उसे सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमे प्राप्त हो सके है, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और सशोधन करनेके बाद किया है। नामोको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोके उच्चारणके बारेमे सशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गाधीजीने अपने गुजराती लेखोमे लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोमे दिये गये अश सम्पादकीय है। गाधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अश मूल रूपमे उद्धृत किया है वह हाशिया छोड-कर गहरी स्याहीमे छापा गया है। भाषणोकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गाधी-जीके कहे हुए नही है, बिना हाशिया छोडे गहरी स्याहीमे छापे गये है। भाषणो और भेटकी रिपोर्टोके उन अशोमे जो गाधीजीके नही है, कही-कही कुछ परिवर्तन किया गया है और कही-कही कुछ छोड भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दाये कोनेमे ऊपर दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नही है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोमे दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोमे केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हे आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमे रखा गया है। शीर्षकके अन्तमे साधनसूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गाधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नही हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये है।

साधन-सूत्रोमे 'एस० एन०' सकेत साबरमती सग्रहालय, अहमदाबादमे उप-लब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गाधी स्मारक निधि और सग्रहालय, नई दिल्लीमे उपलब्ध कागज-पत्रोका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गाधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाधी) द्वारा सगृहीत पत्रोका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये है। अन्तमें साधन-सूत्रोकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएं दी गई है।

विषय-सूची

		पृष्ठ
	भूमिका	५
	आभार	११
	पाठकोंको सूचना	१२
१.	जेलके अनुभव–४ (८–५–१९२४)	१
२	टिप्पणियाँ स्वर्गीय श्रीमती रमाबाई रानडे, प्रिंसिपल गिडवानी, पत्र-व्यवहारकी भाषा, [illegible] सत्याग्रह (८–५–१९२४)	५
३	[illegible] (८–५–१९२४)	९
४	[illegible] आमन्त्रण (८–५–१९२४)	९
५	[illegible] है? (८–५–१९२४)	१५
६	भाषाशास्त्रीके पत्रपर टिप्पणी (८–५–१९२४)	१७
७	पत्र जी० ए० नटेसनको (८–५–१९२४)	१८
८	पत्र डाह्याभाई पटेलको (८–५–१९२४)	१८
९	पत्र देवचन्द पारेखको (८–५–१९२४)	१९
१०	पत्र वा० गो० देसाईको (८–५–१९२४)	२०
११	लाला लाजपतरायको भेजे गये तारका मसविदा (८–५–१९२४ या उसके पश्चात्)	२०
१२	पत्र नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको (१०–५–१९२४)	२१
१३	पत्र महादेव देसाईको (११–५–१९२४ के पूर्व)	२२
१४	[illegible] काठियावाड़ (११–५–१९२४)	२३
१५	आगामी परिषद् (११–५–१९२४)	२६
१६	टिप्पणियाँ [illegible] डर, अन्त्यज परिषद्, 'एक नम्र सेवक'से, ईद मुबारक, जाति-सुधार, जाति-भोज, रोटी-बेटी, लाठीमें राष्ट्रीय शिक्षा, धर्म-नाद (११–५–१९२४)	३१
१७	पत्र महादेव देसाईको (१२–५–१९२४)	३६
१८	सन्देश गुजरात राजनीतिक परिषद्को (१३–५–१९२४)	३८
१९	पत्र मु० रा० जयकरको (१३–५–१९२४)	३९
२०	पत्र घनश्यामदास बिड़लाको (१३–५–१९२४)	३९
२१	तार हकीम अजमलखाँको (१३–५–१९२४ या उसके पश्चात्)	४०
२२	सन्देश अन्त्यज परिषद्को (१४–५–१९२४)	४१
२३	पत्र देवदास गांधीको (१४–५–१९२४)	४२
२४	पत्र प्रभाशंकर पट्टणीको (१४–५–१९२४)	४२
२५	पत्र वा० गो० देसाईको (१४–५–१९२४)	४३

२६. टिप्पणियाँ मुक्त व्यापार बनाम सरक्षण, पूर्ण विराम, उर्दू और कताई सीखना, समयकी पाबन्दीका अनुरोध, कताई और बुनाईसे गुजारा, श्री मजलीके साथ व्यवहार, सरोजिनी देवीकी ओरसे, एक अग्रेज द्वारा सराहना असगत नही, धार्मिक निष्ठासे कताई करना, मोपलोके लिए राहत, लालाजीका पत्र, 'यग इडिया' और 'नवजीवन' (१५-५-१९२४) ४३
२७ साम्राज्यके मालका बहिष्कार (१५-५-१९२४) ५५
२८ जेलके अनुभव - ५ (१५-५-१९२४) ५८
२९ सन्देश बाराला परिषद्को (१५-५-१९२४) ६४
३० पत्र एमिल रोनिगरको (१५-५-१९२४) ६५
३१ पत्र न० चि० केलकरको (१५-५-१९२४) ६५
३२ पत्र देवचन्द पारेखको (१५-५-१९२४) ६७
३३ पत्र मणिबहन पटेलको (१६-५-१९२४) ६७
३४ पत्र विट्ठलभाई झ० पटेलको (१७-५-१९२४) ६८
३५ पत्र नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको (१७-५-१९२४) ६९
३६ पत्र मणिबहन पटेलको (१७-५-१९२४) ६९
३७ भेट 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे (१७-५-१९२४) ७०
३८ टिप्पणियाँ बाल-विवाह और शास्त्र, उचित शिकायत, नरसिंहराव भाईका पत्र, भाई कल्याणजीकी हालत, अन्त्यजोके सम्बन्धमे कीर्तन (१८-५-१९२४) ७४
३९ गृह-कलह (१८-५-१९२४) ७७
४० काठियावाड क्या करे? (१८-५-१९२४) ७९
४१ बुनकरोकी आय (१८-५-१९२४) ८४
४२ कुछ मुसीबते (१८-५-१९२४) ८५
४३ भाषण . बुद्ध-जयन्ती समारोहमे (१८-५-१९२४) ८७
४४ पत्र महादेव देसाईको (१९-५-१९२४) ८९
४५ तार बाकरगज जिला सम्मेलनको (२०-५-१९२४) ९०
४६ पत्र घनश्यामदास बिडलाको (२०-५-१९२४) ९०
४७ पत्र देवचन्द पारेखको (२०-५-१९२४') ९१
४८ पत्र मणिबहन पटेल और दुर्गा देसाईको (२०-५-१९२४) ९२
४९ पत्र . एडा वेस्टको (२०-५-१९२४) ९२
५० भेट बाइकोम शिष्टमण्डलसे (२०-५-१९२४) ९३
५१ पत्र सी० एफ० एन्ड्रयूजको (२१-४-१९२४) ९९
५२ जेलके अनुभव - ६ (२२-५-१९२४) ९९
५३ विदेशी कपडेका बहिष्कार करो (२२-५-१९२४) १०४
५४ टिप्पणियाँ 'एक मुसलमानसे, एक हिन्दूसे', मोपलोकी सहायताके सम्बन्धमे मालवीयजीके विचार, आचार्य गिडवानी, क्या सिन्ध हिन्दू है?, सद्गुणकी पूजा, खादीके छाले, धर्मका उपहास (२२-५-१९२४) १०७

५५ ननोगिरीके भाषणपर टिप्पणी (२२–५–१९२४) ११४
५६ वक्तव्य एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको (२२–५–१९२४) ११४
५७ पत्र वसुमती पण्डितको (२३–५–१९२४) ११७
५८ सचिवको हिदायत (२३–५–१९२४ या उसके पश्चात्) ११७
५९ पत्र जी० वी० सुब्बारावको (२४–५–१९२४) ११८
६० पत्र अली हसनको (२४–५–१९२४) ११८
६१ पत्र घनश्यामदास बिड़लाको (२४–५–१९२४) ११९
६२ मेरी प्रार्थना (२५–५–१९२४) ११९
६३ ब्रह्मचर्य (२५–५–१९२४) १२१
६४ मिल मजदूर और खादी (२५–५–१९२४) १२४
६५ सत्याग्रही गालियां (२५–५–१९२४) १२५
६६ "एक मुस्लिम" (२५–५–१९२४) १२६
६७ काठियावाड़ राजपूत परिषद् (२५–५–१९२४) १२७
६८ वसन्त विजय (२५–५–१९२४) १२९
६९ टिप्पणियां मुनाफिोंकी गन्दी आदतें, "लोकप्रिय" का अर्थ (२५-५-१९२४) १३१
७० नित्य कताई (२५–५–१९२४) १३४
७१ विविध विषयोंपर (२५–५–१९२४) १३४
७२ पत्र मणिबहन पटेलको (२६–५–१९२४) १३६
७३ पत्र शान्तिकुमार मोरारजीको (२८–५–१९२४ के पूर्व) १३६
७४ पत्र वा० गो० देसाईको (२८–५–१९२४) १३७
७५ तार सरलादेवी चौधरानीको (२९–५–१९२४ के पूर्व) १३८
७६ पत्र नारायण मोरेश्वर खरेको (२९–५–१९२४ के पूर्व) १३८
७७ हिन्दू-मुस्लिम तनाव कारण और उपचार (२९–५–१९२४) १३९
७८ कांग्रेस-संगठन (२९–५–१९२४) १५९
७९ पत्र मणिबहन पटेलको (२९–५–१९२४ के पश्चात्) १६३
८० पत्र अब्बास तैयबजीको (३०–५–१९२४) १६३
८१ भेट 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे (३०–५–१९२४) १६५
८२ पत्र महादेव देसाईको (३१–५–१९२४) १६६
८३ भेट एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे (३१–५–१९२४) १६७
८४ वीसनगरके हिन्दू और मुसलमान (१–६–१९२४) १६८
८५ टिप्पणियाँ जवान बूढा, 'कोई उत्साह नहीं', मिलकी खादी, भाइयो और बहनो, सावधान, केनियामें सत्याग्रह (१–६–१९२४) १७१
८६ काठियावाड़ियोंके प्रति अन्याय (१–६–१९२४) १७५
८७ मुझे क्षमा करें (१–६–१९२४) १७८
८८ विद्यापीठ और आनन्दशंकरभाई (१–६–१९२४) १७८
८९ गुरुकुल कांगड़ीमें चरखा (१–६–१९२४) १८०

९० परिषदोंके नियोजकोंको इशारा (१–६–१९२४) १८१
९१. पत्र घनश्यामदास बिड़लाको (३–६–१९२४) १८१
९२ पत्र परशुराम मेहरोत्राको (३–६–१९२४) १८२
९३ भेंट 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे (३–६–१९२४) १८३
९४ टिप्पणियाँ तारकेश्वरमें सत्याग्रह, अपने हाथों अपनी कब्र, आर्य समाजी विरोध, दण्ड या पुरस्कार?, ऐशोआराम देगी, लेकिन शक्ति नहीं; पीड़ितोंका त्राता चरखा, ब्रह्मचर्य या आत्मसंयम, आचार्य गिडवानीके बारेमें, विलासिता और आलस्य, कातनेवाला किसे कहते हैं? (५–६–१९२४) १८५
९५ हिन्दू-मुस्लिम एकता (५–६–१९२४) १९२
९६ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी (५–६–१९२४) १९५
९७ जेलके अनुभव – ७ (५–६–१९२४) १९७
९८ मणिलाल गांधीके पत्रपर टिप्पणी (५–६–१९२४) २००
९९ सी० एफ० एन्ड्रयूजके पत्रपर टिप्पणी (५–६–१९२४) २००
१०० प्रेमका अभाव या अतिरेक (५–६–१९२४) २०१
१०१ टिप्पणियाँ एक भूल, उर्दूमें 'यंग इंडिया', एक निमन्त्रण-पत्र (५–६–१९२४) २०३
१०२ भेंट 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे (५–६–१९२४) २०४
१०३ मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश (६–६–१९२४) २०८
१०४ पत्र: वसुमती पण्डितको (७–६–१९२४) २०८
१०५ काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्‌का ध्येय (८–६–१९२४) २०९
१०६ मेरे विचार (८–६–१९२४) २११
१०७ महा गुजरातका कर्त्तव्य (८–६–१९२४) २१३
१०८ टिप्पणियाँ आगाखानी भाई, स्वार्थपरता, चुंगीकी सीमा (८–६–१९२४) २१५
१०९ पत्र देवचन्द पारेखको (८–६–१९२४) २१७
११० भेंट 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे (८–६–१९२४) २१७
१११ भाषण गुजरात विद्यापीठमें (१०–६–१९२४) २२१
११२ पत्र वसुमती पण्डितको (११–६–१९२४) २२६
११३ संदेश सौराष्ट्र राजपूत परिषद्‌को (११–६–१९२४) २२७
११४ जेलके अनुभव – ८ (१२–६–१९२४) २२८
११५ अस्पृश्यता और स्वराज्य (१२–६–१९२४) २३०
११६ आर्यसमाजी भाई (१२–६–१९२४) २३२
११७ टिप्पणियाँ समरथको नहिं दोष गुसाँई, गलत रास्ता, 'महात्मा' से बचाइए, एक उपयुक्त प्रश्न, आगाखानी खोजे, मुसलमानोंकी तरफदारी, एक मुसलमानके दिलका गुबार, धर्म-परिवर्तनपर भोपाल राज्यका

परिपत्र, इस्लाम स्वीकार करनेके बाद उसका त्याग, नरम दल और खादी, नारायणवरम् और अस्पृश्यता, करघा, एक पैतृक सम्पत्ति, अफीम (१२–६–१९२४) २३५
११८ 'छोप' या कताई-प्रतियोगिता (१२–६–१९२४) २४७
११९ मु० रा० जयकरको लिखे पत्रका अश (१२–६–१९२४) २४८
१२० पत्र के० माधवन नायरको (१२–६–१९२४) २४८
१२१ पत्र वसुमती पण्डितको (१३–६–१९२४) २४९
१२२ पत्र वा० गो० देसाईको (१४–६–१९२४) २४९
१२३ सूरत जिला (१५–६–१९२४) २५०
१२४ मेडताका खेडता (१५–६–१९२४) २५२
१२५ देशी रियासतोमे सत्याग्रह (१५–६–१९२४) २५३
१२६ आज बनाम कल (१५–६–१९२४) २५४
१२७ गुजराती आर्यसमाजियोके प्रति (१५–६–१९२४) २५६
१२८ वल्लभभाईकी परेशानी (१५–६–१९२४) २५८
१२९ "चमडेके तस्मेके लिए भैस" (१५–६–१९२४) २५९
१३० कार्यकर्त्ताओसे (१५–६–१९२४) २६०
१३१ मिथ्या भ्रम (१५–६–१९२४) २६२
१३२ पत्र नवीनचन्द्रको (१६–६–१९२४) २६३
१३३ जे० बी० पेटिटके पत्रपर टिप्पणी (१७–६–१९२४के पश्चात्) २६३
१३४ तार गगादीन छावनीवालाको (१८–६–१९२४ या उससे पूर्व) २६४
१३५ पत्र वसुमती पण्डितको (१८–६–१९२४) २६४
१३६ पत्र प्रभाशकर पट्टणीको (१८–६–१९२४) २६५
१३७ पत्र अब्बास तैयबजीको (१८–६–१९२४) २६५
१३८ टिप्पणियाँ वाइकोम सत्याग्रह, 'झूठा' का मतलब, विशेष अधिवेशन, आग भडकानेवाला साहित्य, एकके मुकाबले तीन, केनियाके भारतीय, मूक साधनाका महत्त्व, १८१४ और १९१४, त्रिवेन्द्रम जेलमे चरखा (१९–६–१९२४) २६६
१३९ फिरसे आर्यसमाजियोकी चर्चा (१९–६–१९२४) २७१
१४० अग्नि-परीक्षा (१९–६–१९२४) २७२
१४१ हिन्दू क्या करे? (१९–६–१९२४) २७६
१४२ पत्र वसुमती पण्डितको (२०–६–१९२४) २७९
१४३ पत्र घनश्यामदास बिडलाको (२१–६–१९२४) २७९
१४४ पत्र मु० रा० जयकरको (२१–६–१९२४) २८०
१४५ मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अश (२१–६–१९२४) २८१
१४६ पत्र अब्बास तैयबजीको (२१–६–१९२४) २८१
१४७ टिप्पणियाँ चरखेकी धुन, सोमाली देशमे चरखा, विवाहमे खादी, एक पाठशालामे (२२–६–१९२४) २८२

१४८ परदा और प्रतिज्ञा (२२–६–१९२४) २८४
१४९ कपड़ा बुनवानेवालोसे (२२–६–१९२४) २८६
१५० बुनाईकी कमाई (२२–६–१९२४) २८७
१५१ तीन प्रश्न (२२–६–१९२४) २८८
१५२ पत्र गगावहन वैद्यको (२२–६–१९२४) २८९
१५३ पत्र वसुमती पण्डितको (२३–६–१९२४) २९०
१५४ भेट ऐसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे (२४–६–१९२४) २९१
१५५ खुला पत्र अ० भा० का० कमेटीके सदस्योके नाम (२६–६–१९२४से पूर्व) २९२
१५६ जेलके अनुभव – ९ (२६–६–१९२४) २९६
१५७ "तुमसे तो ऐसी आशा नही थी !" (२६–६–१९२४) ३००
१५८ अकालियोका सघर्ष (२६–६–१९२४) ३०१
१५९ टिप्पणियाँ जा-मीन वनाम आमीन, डा० महमूद और वलात् धर्म-परिवर्तन, निजामकी रियासतमे नही, मेरे लिए नई वात, शावाश दिल्ली !, सिखोका आत्मसयम, अधिकारियोकी ढील, नगरपालिकाएँ, खतरनाक रिवाज, मशीन कताई वनाम हाथ-कताई (२६–६–१९२४) ३०३
१६० भाषण. अ० भा० का० कमेटीकी वैठकमे (२७–६–१९२४) ३१३
१६१ पत्र एक शोकाकुल पिताको (२८–६–१९२४) ३१५
१६२ भाषण अ० भा० का० कमेटीकी वैठकमे (२८–६–१९२४) ३१५
१६३ भाषण और प्रस्ताव दण्ड विषयक धारापर (२८–६–१९२४) ३२१
१६४ कुछ प्रश्न (२९–६–१९२४) ३२२
१६५ डाका पडनेपर (२९–६–१९२४) ३२६
१६६ मै हारा (२९–६–१९२४) ३२८
१६७. प्रागजी और सूरत (२९–६–१९२४) ३३०
१६८ खुदाका गुनाह या कुदरतका ? (२९–६–१९२४) ३३१
१६९ टिप्पणियाँ खादी वनाम मिलका कपडा, मृतक-भोज अथवा कारज अनुकरणीय (२९–६–१९२४) ३३४
१७० सुन्दर सुवार (२९–६–१९२४) ३३६
१७१ प्रस्ताव अ० भा० का० कमेटीकी वैठकमे (२९–६–१९२४) ३३६
१७२ भाषण अ० भा० का० कमेटीकी अनोपचारिक वैठकमे (३०–६–१९२४) ३३९
१७३ भेट एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इडियाके प्रतिनिधिसे (१–७–१९२४) ३४०
१७४ सन्देश वाइकोमके सत्याग्रहियोको (२–७–१९२४) ३४२
१७५ पराजित और नतमस्तक (३–७–१९२४) ३४२
१७६ वम्बई सरोजिनीको याद रखे (३–७–१९२४) ३४९
१७७ अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी (३–७–१९२४) ३५०

२०७ राष्ट्रसे अपील (१७-७-१९२४) ४०५
२०८ सभापति कौन हो? (१७-७-१९२४) ४०८
२०९ वर्णाश्रम या वर्णसंकर? (१७-७-१९२४) ४१०
२१० खद्दर क्या कर सकता है? (१७-७-१९२४) ४१४
२११ मिलोंकी हिमायत (१७-७-१९२४) ४१५
२१२ अधिकार-वंचित (१७-७-१९२४) ४१७
२१३ पत्र : नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको (१९-७-१९२४) ४१८
२१४ विदग्ध अथवा अर्धदग्ध (२०-७-१९२४) ४१८
२१५ प्रश्नोत्तरी (२०-७-१९२४) ४२०
२१६ टिप्पणियाँ : भाई रन्छुलालका पत्र, हास्यरस, "कातो, कातो, कातो", अनियमितता (२०-७-१९२४) ४२३
२१७ बुनाईकी कमाई (२०-७-१९२४) ४२७
२१८ नये प्रकारका चरखा (२०-७-१९२४) ४२७
२१९ पत्र : वा० गो० देसाईको (२०-७-१९२४) ४२८
२२० पत्र : गंगाबहन वैद्यको (२२-७-१९२४) ४२९
२२१ पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको (२२-७-१९२४) ४२९
२२२ पत्र : फूलचन्द शाहको (२३-७-१९२४) ४३०
२२३ शिक्षकोंकी दीनदशा (२४-७-१९२४) ४३०
२२४ सी० एफ० एन्ड्रयूजके लेखपर टिप्पणी (२४-७-१९२४) ४३३
२२५ सूतका क्या किया जाये? (२४-७-१९२४) ४३३
२२६ नैराश्यपूर्ण चित्र (२४-७-१९२४) ४३५
२२७ संतप्त दक्षिण (२४-७-१९२४) ४३७
२२८ अफीमके विरुद्ध संग्राम (२४-७-१९२४) ४३७
२२९ वचन-पालन (२४-७-१९२४) ४३९
२३० टिप्पणियाँ : पी० वी० से, आचार्य गिडवानी, खादीकार्यकी झलक, अधिक उत्पादन?, अ-प्रतिनिधि, कपड़ा या इस्पात, असममें अफीम, अ० भा० खा० बोर्डकी शिकायत (२४-७-१९२४) ४४१
२३१ पत्र : एक मित्रको (२४-७-१९२४) ४४६
२३२ पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको (२४-७-१९२४) ४४७
२३३ पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको (२४-७-१९२४) ४४७
२३४ तार : मुहम्मद अलीको (२६-७-१९२४) ४४८
२३५ पत्र : मोतीलाल नेहरूको (२६-७-१९२४) ४४८
२३६ पत्र : जे० बी० पेटिटको (२६-७-१९२४) ४५०
२३७ पत्र : डब्ल्यू० पॉटनको (२६-७-१९२४) ४५१
२३८ पत्र : सी० एफ० बेलरको (२६-७-१९२४) ४५१
२३९ पत्र : वसुमती पण्डितको (२६-७-१९२४) ४५२

२४० टिप्पणियाँ: आचार्य राय प्रतिदिन कातते हैं, इस्तीफे, शिक्षकोंके विचारमें क्या?, खेड़ा जिला, मुस्लिम खादी समिति, छात्र गणपत (२४–७–१९२४) ४५३
२४१ धर्मकी कसौटी (२४–७–१९२४) ४५७
२४२ छोटी-छोटी बातोंकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता (२४–७–१९२४) ४५९
२४३ मेरी कसौटी (२४–७–१९२४) ४६२
२४४ एक टेक (२४–७–१९२४) ४६४
२४५ खण्डन (२४–७–१९२४) ४६६
२४६ पत्र: जवाहरलाल नेहरूको (२३–७–१९२४) ४६६
२४७ पत्र: मुहम्मद अलीको (२४–७–१९२४) ४६७
२४८ पत्र: बाबू भगवानदासको (२४–७–१९२४) ४६८
२४९ पत्र: डा० सत्यपालको (२५–७–१९२४) ४६९
२५० पत्र: डा० चिमनदास जगतियानीको (२७–७–१९२४) ४७०
२५१ पत्र: कुमारी एमिली हॉबहाउसको (२७–७–१९२४) ४७०
२५२ पत्र: मुनीराम दरियानोमलको (२७–७–१९२४) ४७१
२५३ पत्र: मनोहर प्रसादको (२७–७–१९२४) ४७२
२५४ पत्र: डा० पट्टाभि सीतारामय्याको (२७–७–१९२४) ४७२
२५५ पत्र: मोतीलाल नेहरूको (२७–७–१९२४) ४७३
२५६ पत्र: शौकत अलीको (२८–७–१९२४) ४७४
२५७ पत्र: नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको (२७–७–१९२४) ४७५
२५८ पत्र: वा० गो० देसाईको (२७–७–१९२४) ४७६
२५९ तार: त्रिवेन्द्रम् कांग्रेस सहायता समितिके अध्यक्षको (३०–७–१९२४ या उसके पश्चात्) ४७७
२६० वर्णाश्रमके सम्बन्धमें कुछ और (३१–७–१९२४) ४७७
२६१ लोकमान्यकी पुण्यतिथि (३१–७–१९२४) ४७८
२६२ टिप्पणियाँ: दुःखी मलाबार, एम० वी० के० से, भारतका हिस्सा, अज्ञान, हृदय-परिवर्तन, पाठ्य पुस्तकोंकी जब्ती, हिन्दू-मुस्लिम एकता, पक्षपात या न्याय, एक मुस्लिम खादी समिति, कर्तव्योंमें, प्रश्नकर्त्तासे, गांधीजीके लिए या देशके लिए?, मैदानमें सबसे आगे (३१-७-१९२४) ४८१
२६३ पत्र: श्रीमती वी० के० विलासिनीको (३१–७–१९२४) ४९२
२६४ तार: चक्रवर्ती राजगोपालाचारीको (३१-७-१९२४ या उसके पश्चात्) ४९३
२६५ सन्देश: 'वन्देमातरम्'को (१–८–१९२४) ४९३
२६६ पत्र: आसफअलीको (१–८–१९२४) ४९४
२६७ भाषण: शिक्षा परिषद्में (१–८–१९२४) ४९५
२६८ राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद्के प्रस्ताव (१–८–१९२४) ५०६
२६९ भाषण: शिक्षा परिषद्के प्रस्तावपर (२–८–१९२४) ५०८

२७० भाषण स्त्री-शिक्षाके सम्बन्धमें (२–८–१९२४) ५१०
२७१ इर्विन बैंटके पत्रपर निर्देश (२–८–१९२४के पश्चात्) ५१२
२७२ कारखानेमें दुर्घटना (३–८–१९२४) ५१२
२७३ टिप्पणिया पूर्व आफ्रिकाका सत्याग्रह, गुजरातके असहयोगियोंसे, होशियार शिक्षक, सुधार, बुनाईमें कमाई, मेरे साथ बातचीत (३–८–१९२४) ५१४
२७४ तार सरोजिनी नायडूको (४–८–१९२४) ५१८
२७५ तार हकीम अजमलखाको (४–८–१९२४) ५१८
२७६ पत्र इन्द्र विद्यावाचस्पतिको (४–८–१९२४) ५१९
२७७ पत्र वसुमती पण्डितको (४–८–१९२४) ५१९
२७८ पत्र वा० गो० देसाईको (४–८–१९२४) ५२०
२७९ तार अ० भा० का० कमेटीके महामन्त्रीको (५–८–१९२४) ५२१
२८० एनी बेसेंटको आदराञ्जलि (६–८–१९२४) ५२२
२८१ पत्र कामाक्षी नटराजनको (६–८–१९२४) ५२२
२८२ पत्र वा० गो० देसाईको (६–८–१९२४) ५२३
२८३ अनुचित प्रहार (७–८–१९२४) ५२३
२८४ शिक्षकोकी परिषद् (७–८–१९२४) ५२५
२८५ टिप्पणिया एक कठिनाई, दुर्भिक्षमे राहत पहुँचानेके लिए, एक ब्राह्मणका कथन, 'दोषपूर्ण उत्पादन', दिल्लीकी हलचल, मागके मुताबिक अभिनन्दन, मलाबारकी बाढ, मौलाना हसरत मोहानी, बरार नही, विरार, यह उपाय?, रजिस्टरोका विवरण (७–८–१९२४) ५२९
२८६ भेंट एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे (७–८–१९२४) ५३६
२८७ भाषण गुजरात महाविद्यालयमें (८–८–१९२४) ५३७
२८८ पत्र मोतीलाल नेहरूको (९–८–१९२४) ५४१
२८९ पत्र बदरुल हुसैनको (९–८–१९२४) ५४३
२९० पत्र हृदेश्वर रायको (९–८–१९२४) ५४४
२९१ पत्र तीरथराम जनेजाको (९–८–१९२४) ५४५
२९२ पत्र अली बन्धुओको (९–८–१९२४) ५४६
२९३ मजदूर संघको सलाह (९–८–१९२४) ५४७
२९४ मलाबारमे बाढ (१०–८–१९२४) ५४७
२९५ शिक्षा-परिषद् (१०–८–१९२४) ५४९
२९६ टिप्पणियाँ हिमालयकी महिमा, मिलकी दुर्घटना, आबकारलायक या आबकारदायक?, सिखानेकी सुविधा (१०–८–१९२४) ५५०
२९७ माला या चरखा? (१०–८–१९२४) ५५२
२९८ दानियोसे प्रार्थना (१०–८–१९२४) ५५६
२९९ पत्र ए० डब्ल्यू० बेकरको (१०–८–१९२४) ५५६

३०० पत्र पॉल एफ० क्रेसीको (१०–८–१९२४) ५५७
३०१ पत्र लाला बुलाकीरामको (१०–८–१९२४) ५५८
३०२ पत्र डा० आर० काणेको (१०–८–१९२४) ५५९
३०३ पत्र सरदार मंगलसिंहको (१०–८–१९२४) ५६०
३०४ पत्र अली हसनको (१०–८–१९२४) ५६०
३०५ पत्र चित्तरंजनदासको (१०–८–१९२४) ५६१
३०६ पत्र जमनालाल बजाजको (१०–८–१९२४) ५६१
३०७ पत्र वसुमती पण्डितको (१०–८–१९२४) ५६२
३०८ पत्र वा० गो० देसाईको (१०–८–१९२४) ५६२
३०९ घनश्यामदास बिड़लाको (१०–८–१९२४) ५६३
३१० पत्र शौकत अलीको (११–८–१९२४) ५६४
३११ पत्र स्वामी आनन्दानन्दको (११–८–१९२४) ५६५
३१२ पत्र वा० गो० देसाईको (११–८–१९२४) ५६६
३१३ पत्र घनश्यामदास बिड़लाको (११–८–१९२४) ५६७
३१४ तार सरोजिनी नायडूको (१२–८–१९२४ या उसके पश्चात्) ५६८
३१५ तार के० माधवन् नायरको (१२–८–१९२४ या उसके पश्चात्) ५६८
३१६ तार बम्बई नगर निगमको (१२–८–१९२४ या उसके पश्चात्) ५६९
३१७ पत्र नगीनदास अमूलख रायको (१३–८–१९२४) ५६९
३१८ मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश (१३–८–१९२४) ५७०
३१९ पत्र 'तेज' के सम्पादकको (१३–८–१९२४) ५७०
३२० पत्र इन्द्र विद्यावाचस्पतिको (१३–८–१९२४) ५७१
३२१ उचित प्रश्न (१४–८–१९२४) ५७१
३२२ जोश चाहिए! (१४–८–१९२४) ५७३
३२३ एक सवक (१४–८–१९२४) ५७७
३२४ टिप्पणियाँ श्री केलकरकी मानहानि, 'राजा कभी गलती नहीं करता', एक व्यावहारिक विवरण, तुरन्त कार्रवाई, एक स्वागत करने योग्य भूल-सुधार, कट्टरपंथियोंका विरोध, ईश्वरीय वरदान, मूक साधना, इससे पत्थर भी पिघल जाये, एक चिन्ताजनक बात, संवाददाताओंको चेतावनी, मलाबारके लिए सहायता, कपड़े (१४–८–१९२४) ५७७
३२५ तार मुहम्मद अलीको (१५–८–१९२४) ५८७
३२६ तार सी० एफ० एन्ड्रयूजको (१५–८–१९२४) ५८८
३२७ तार हकीम अजमलखाँको (१५–८–१९२४) ५८८
३२८ पत्र डा० सैफुद्दीन किचलूको (१५–८–१९२४) ५८९
३२९ पत्र मोतीलाल नेहरूको (१५–८–१९२४) ५८९
३३० पत्र कनिकाके राजाको (१५–८–१९२४) ५९०
३३१ पत्र कुमारी सौंजा श्लेसिनको (१५–८–१९२४) ५९१

३३२ पत्र कामाक्षी नटराजनको (१५–८–१९२४) ५९२
३३३ पत्र जमनादास गांधीको (१५–८–१९२४) ५९४

परिशिष्ट

१ डा० भगवानदासका पत्र ५९५
२ कौंसिल-प्रवेशके सम्बन्धमें स्वराज्यवादियोंका वक्तव्य ५९८
३ डा० भगवानदासका पत्र ६०२
४ (क) पं० मोतीलाल नेहरूका पत्र ६०७
(ख) ” ” ६०९

सामग्रीके साधन-सूत्र ६११
तारीखवार जीवन-वृत्तान्त ६१२
शीर्षक सांकेतिका ६१४
सांकेतिका ६१८

१. जेलके अनुभव – ४[1]

'राजनीतिक' कैदी

"हम राजनीतिक तथा अन्य कैदियोमे कोई भेद नही करते। आपके लिए ऐसा कोई भेद किया जाये, यह तो निस्सन्देह आप भी नही चाहेगे?" जब गत वर्षके अन्तमे सर जॉर्ज लॉयड[2] यरवदा जेल आये थे, ये वाक्य उन्होने तभी कहे थे। मेरे मुहसे असावधानीसे यह "राजनीतिक" विशेषण निकल गया, उसीके उत्तरमे वे इस प्रकार बोले थे। मुझे अधिक सावधानीसे काम लेना चाहिए था, क्योकि मै जानता था कि गवर्नर महोदयको इस शब्दसे चिढ है। फिर भी, अजीब बात है कि हममें से अधिकाश कैदियोके दैनिक व्यवहारके टिकटोपर "राजनीतिक" शब्द अकित था। जब मैने इस असगतिकी चर्चा की तो उस समयके जेल सुपरिंटेंडेंटने बताया कि यह तो एक खानगी चीज है और केवल अधिकारियोकी सुविधाके लिए है। आप कैदियोको इस भेदपर विचार करनेकी जरूरत नही, क्योकि इसके आधारपर कोई हक नही मांगा जा सकता।

सर जॉर्ज लॉयडकी कही हुई बातको मैने अपनी स्मृतिके अनुसार तो शब्दश ही दिया है। सर जॉर्ज लॉयडने जो-कुछ कहा था उसमे एक दश था, और वह भी कितना अहेतुक। वे जानते थे कि मै किसी मेहरबानी या विशिष्ट व्यवहारकी याचना नही कर रहा था। प्रसगवश इस विषयमें साधारण-सी चर्चा निकल आई थी। लेकिन वे मुझे यह जताना चाहते थे कि कानून और प्रशासनकी दृष्टिमे तुम्हारी स्थिति औरोकी स्थितिसे किसी भी तरह बढकर नही है। और अकारण ही, सिद्धान्तके नामपर इस भेदका प्रतिवाद किया जाना और दूसरी ओर व्यवहारमे इस भेदको असली जामा पहनाना एक शोचनीय असगति तो थी ही और तिसपर अधिकाश अवसरोपर इस भेदका प्रयोग राजनीतिक कैदियोके विरुद्ध ही किया जाता था।

सच तो यह है कि भेदसे बचना असम्भव है। यदि इस तथ्यकी उपेक्षा न की जाये कि कैदी भी मनुष्य ही है, तो उसके रहन-सहनको समझना और तदनुसार जेलोमें उसकी व्यवस्था करना जरूरी होगा। यहाँ सवाल गरीब और अमीर अथवा शिक्षित और अशिक्षितमे भेद करनेका नही है। कुल सवाल उनके रहन-सहनके उन तौर-तरीकोमें भेद करनेका है, जिनके कि वे अपनी पूर्व परिस्थितियोके कारण आदी हो गये है। इस वस्तुस्थितिको अनिवार्य रूपसे मान लेनेकी बजाय ऐसा कहा जाता है कि अपराध करनेवाले लोगोको यह समझ लेना चाहिए कि कानून किसीका लिहाज नही करता और चाहे कोई अमीर आदमी चोरी करे अथवा कोई ग्रेजुएट या मजदूर, कानूनकी दृष्टिमें सब समान है। यह तो एक निर्दोष और अच्छे कानूनका

१ इस लेखमालाके पहले तीन लेखोंके लिए देखिए खण्ड २३।

२ बम्बईके गवर्नर, कैदियोंमें भेदके सम्बन्धमें गांधीजी के पत्रके लिए देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १८६-८७।

गलत अर्थ लगाना है। यदि कानूनकी दृष्टिमे सभी समान है, जैसा कि होना भी चाहिए, तो हर आदमीके साथ उसकी सहनशक्तिको देखकर बरताव किया जाना चाहिए। जिस चोरका शरीर नाजुक हो उसे भी ३० कोडे लगाना और जो शरीरसे हट्टा-कट्टा हो उसे भी ३० कोडे लगाना, निष्पक्ष व्यवहार नही माना जायेगा। वह तो नाजुक शरीरवालेके साथ अनुचित सख्ती और शायद हट्टे-कट्टे शरीरवालेके प्रति अनुग्रह ही कहा जायेगा। उसी तरह, उदाहरणके तौरपर, मोतीलालजी को[1] सख्त जमीनपर बिछी नारियलकी खुरदरी चटाईपर सुलाना, समान व्यवहारका नही अतिरिक्त सजा देनेका उदाहरण होगा।

जेलकी व्यवस्थामे यदि यह स्वीकार कर लिया जाये कि कैदी भी मनुष्य ही है, तो कैदीको जेलमे प्रवेश करानेके समयकी प्रक्रिया आजसे भिन्न हो। अँगुलियोके निशान जरूर लिये जायेगे, रजिस्टरमे उसके पहलेके अपराध भी दर्ज किये ही जायेग; लेकिन साथ ही कैदीकी आदतो और रहन-सहनका ब्योरा भी दर्ज किया जायेगा। यदि अधिकारी कैदियोको मनुष्य समझने लगे तो उन्हे जो पद्धति स्वीकार करनी होगी उसे "भेद करना" न कहकर "वर्गीकरण" ही कहा जायेगा। एक प्रकारका वर्गीकरण तो आज भी मौजूद है। उदाहरणके लिए, कुछ अहातोमे कदियोको लम्बी कोठरियोमे इकट्ठा रखा जाता है। खतरनाक अपराधियोके लिए अलग-अलग कोठरियाँ होती है और तनहाईकी सजावालोको ताला लगाकर अलग-अलग रखा जाता है। फिर, फाँसीवालोकी कोठरियाँ भी होती है, जिनमे फाँसीकी सजा सुनाये गये कैदियोको रखा जाता है और अन्तमे हवालाती कैदियोके लिए अलग कोठरियाँ होती है। पाठकोको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ज्यादातर राजनीतिक कैदियोको अलग या तनहाईमे रखा जाता था। कुछको तो फाँसीकी सजा पाये हुए अपराधियोकी कोठरियोमे भी रखा जाता था। लेकिन यहाँ मै एक बात साफ कर देना चाहूँगा, अन्यथा अधिकारियोके साथ कही अन्याय न हो जाये। वह बात यह है कि जिन्हे इन विभागो और कोठरियोकी जानकारी नही है, वे ऐसा सोच सकते है कि फाँसीकी सजा सुनाये गये कैदियोकी कोठरियाँ खास तौरपर कुछ खराब होती होगी, लेकिन वस्तुस्थिति एसी नही है। जहाँतक यरवदा जेलका सम्बन्ध है, इन कोठरियोकी बनावट बहुत अच्छी है और ये हवादार है। लेकिन जो चीज बहुत आपत्तिजनक है वह है इनके इर्द-गिर्दका वातावरण।

जैसा मैने ऊपर बताया, वर्गीकरण अनिवार्य है और वह किया भी जाता है। फिर कोई कारण नही कि वह वैज्ञानिक और मानवतापूर्ण भी क्यो न हो। मै जानता हूँ कि मेरे सुझाये हुए ढगसे वर्गीकरण करनेका मतलब है सारी पद्धतिमे आमूलचूल परिवर्तन। बेशक, इसमे खर्च ज्यादा होगा और नई पद्धतिको चलानेके लिए दूसरे ढगके लोगोकी भी जरूरत होगी। लेकिन आज अतिरिक्त खर्च होगा तो अन्तमे बचत भी होगी। मै जो क्रान्तिकारी परिवर्तन सुझा रहा हूँ उसका सबसे बडा लाभ तो यह होगा कि अपराधोकी सख्यामे निश्चित रूपसे कमी आ जायेगी और कैदियोका

१. मोतीलाल नेहरू (१८६१-१९३१)।

सुधार होगा। फिर तो जेल सुधार-गृह हो जायेंगे और समाजमे पाप करनेवाले लोग उन स्थानोमे जाकर सुधर जायेंगे और लौटकर आनेपर समाजके प्रतिष्ठित सदस्य बन जायेंगे। हो सकता है, वह दिन बहुत दूर हो, लेकिन अगर हम पुरानी रूढियोके मोहमे न पड गये हो तो जेलोको सुधार-गृह बनानेमे हमे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए।

यहाँ मुझे एक जेलरके सारगर्भित वचन याद आते है। उसने कहा था

> "जब कभी मै कैदियोको भरती करता हूँ या उनकी तलाशी लेता हूँ अथवा उनके बारेमें रिपोर्ट करता हूँ, मेरे मनमे अकसर एक सवाल उठता है, क्या मै इनमें से ज्यादातर लोगोसे अच्छा हूँ? ईश्वर जानता है कि इनमें से कुछ जिन अपराधोके कारण यहाँ आये है, उनसे बुरे अपराध तो मैने किये है। फर्क इतना ही है कि इन बेचारोके अपराधका पता लग गया और मेरे अपराधका पता नही लग पाया।"

जो बात इस नेक जेलरने स्वीकार की, क्या वही हममे से बहुतोके साथ लागू नही होती? समाज उनपर तो अँगुली नही उठाता। लेकिन हमे तो, जिन लोगोमे बच निकलनेकी चतुराई नही है, उनके प्रति सदा शकित बने रहनेकी आदत पड गई है। कारावासके परिणामस्वरूप अकसर वे पक्के अपराधी बन जाते है।

कोई भी व्यक्ति पकडा गया कि उसके साथ पशुओका-सा व्यवहार शुरू हो जाता है। अभियुक्त जबतक अपराधी न सिद्ध कर दिया जाये तबतक सिद्धान्तत उसे निर्दोष माना जाता है। लेकिन व्यवहारमे उसकी देख-रेखके लिए जिम्मेदार लोगोका रवैया दम्भपूर्ण और तिरस्कार-भरा होता है। मनुष्य अपराधी करार दिया गया कि वह समाजका अग रह ही नही जाता। जेलका वातावरण उसमे अपने-आपको हीन माननेकी आदत पैदा कर देता है।

राजनीतिक कैदियोपर इस निर्वीर्य बनानेवाले वातावरणका असर आमतौरपर नही होता। मनको खिन्न बना देनेवाले इस वातावरणके असरमे आनेकी बजाय वे उसके खिलाफ सघर्ष करते है और कुछ अशोमे उसे सुधार भी पाते है। समाज भी उन्हे अपराधी नही मानता। इसके विपरीत, वे वीर पुरुष और शहीद माने जाते है। जेलमे उन्हे जो कष्ट भोगना पडता है, उसका बखान लोग बहुत बढा-चढाकर करते है और कभी-कभी यह अति प्रशसा राजनीतिक कैदियोके नैतिक पतनका भी कारण बन जाती है। लेकिन दुर्भाग्यकी बात यह है कि राजनीतिक कैदियोके प्रति आम लोग जितनी उदारता दिखाते है, अधिकारीगण उतनी ही सख्ती बरतते है, अधिकाश मामलोमे यह सख्ती बिलकुल बेजा हुआ करती है। सरकार राजनीतिक कैदियोको साधारण कैदियोसे अधिक खतरनाक मानती है। एक अधिकारीने बडी गम्भीरतासे कहा था कि राजनीतिक कैदीके अपराधसे पूरे समाजको खतरा रहता है, जब कि साधारण अपराधसे केवल अपराधीका ही नुकसान होता है।

एक दूसरे अधिकारीने मुझे बताया कि राजनीतिक कैदियोको अलग रखने और पत्र-पत्रिकाएँ न देनेका कारण यह है कि उन्हे अपने अपराधका एहसास कराया जाये।

उसने कहा, राजनीतिक कैदी "कैद" मे गौरवका अनुभव करते है। स्वतन्त्रता खो जानेसे जहाँ साधारण अपराधियोको दुःख होता है, राजनीतिक अपराधियोपर उसका कोई असर ही नही होता। उसने आगे कहा कि इसलिए यह स्वाभाविक है कि सरकार उन्हे सजा देनेका कोई और उपाय करे, इसीलिए उन्हे साधारणतया जो सुविधाएँ बेशक मिलनी चाहिए, वे नहीं दी जाती। मैने 'टाइम्स ऑफ इंडिया'के साप्ताहिक अंक, या 'इंडियन सोशल रिफॉर्मर' या 'सर्वेंट ऑफ इंडिया' अथवा 'मॉडर्न रिव्यू' या 'इंडियन रिव्यू'की माँग की थी। अधिकारीने उसीके जवाबमे यह बात कही थी। जो लोग अखबारोको नाश्तेकी ही तरह जरूरी मानते है, उनके लिए यह बहुत कडी सजा थी। पाठक इसे मामूली सजा न समझे। मै तो कहूँगा कि अगर श्री मजलीको समाचारपत्र दिये गये होते तो उनके मस्तिष्कमें खराबी पैदा न होती।[1] इसी तरह उस आदमीके लिए जो अपनेको हर अवसरपर सुधारक नही मानता यह बहुत उद्वेगजनक सिद्ध होगा कि उसे खतरनाक अपराधियोके साथ रख दिया जाये, जैसा कि यरवदा जेलमें लगभग सभी राजनीतिक कैदियोके साथ किया जा रहा था। जो लोग सिवा गालीके बात नही करते या जिनकी बातचीत आमतौर पर अशिष्टतापूर्ण होती है, उनके साथ रह सकना आसान काम नही है। यदि सरकार अक्लसे काम लेकर साधारण कैदियोपर अच्छा असर डालनेके लिए राजनीतिक कैदियोके साथ सलाह-मशविरा करके उन्हे ऐसे वातावरणमे रखती तो यह बात समझमे आ सकती थी। लेकिन मै मानता हूँ कि यह बात व्यावहारिक नही है। मै यह कहना चाहता हूँ कि राजनीतिक कैदियोको अरुचिकर वातावरणमे रखना उन्हे अतिरिक्त सजा देना है, जिसके वे कदापि पात्र नही है। उन्हे अलग रखा जाना चाहिए और वे किस तरह रहते आये है, यह समझकर उनके साथ तदनुसार बरताव करना चाहिए।

आशा है, सत्याग्रही लोग इसका और अगले अन्य किसी प्रकरणमे मैने जेलके सुधारकी जो हिमायत की है, उसका गलत अर्थ नही लगायेंगे। सत्याग्रहियोको चाहे जैसी असुविधाएँ सहनी पडे, उनका इस कारण रोष करना शोभा नही देगा। वह तो क्रूरसे-क्रूर व्यवहारके लिए तैयार होकर ही आया है, इसलिए यदि व्यवहार भल-मनसीका किया जाये तो ठीक है, यदि न किया जाये तो भी ठीक ही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ३६८-६९।

२. टिप्पणियाँ

स्वर्गीया श्रीमती रमाबाई रानडे

रमाबाई रानडेका[1] निधन राष्ट्रकी एक बहुत बडी हानि है। हम जिन गुणोकी एक हिन्दू विधवामें कल्पना करते हैं वे उन सब गुणोकी साकार मूर्ति थी। अपने तेजस्वी पतिके जीवन-कालमे वे उनकी सच्ची मित्र और सहधर्मिणी रही। उन्होने अपने पतिके दिवगत होनेके बाद उनके एक प्रिय कामको आगे बढाना ही अपना जीवन-कार्य बना लिया था। श्री रानडे समाज-सुधारक थे और भारतीय नारियोके उत्थानमें उनकी गहरी रुचि थी। इसलिए रमाबाई प्राणपणसे सेवासदनके काममे जुट गई। इसी काममें उन्होने अपनी समूची शक्ति लगा दी। इसीका परिणाम है कि आज भारत-भरमें सेवासदन-जैसी कोई दूसरी सस्था नही है। वहाँ लगभग एक हजार बालिकाओ और महिलाओको शिक्षा दी जा रही है। कर्नल मैडॉकने[2] मुझे बतलाया है कि ससून अस्पतालमें ही सबसे अच्छी और सबसे अधिक सख्यामें भारतीय नर्से तैयार की जाती हैं और वे सब नर्से सेवासदनसे आई हुई होती हैं। इसमें शक नही कि रमाबाईको देवधर[3]-जैसा अथक परिश्रमी और छोटीसे-छोटी चीजोका भी पूरा-पूरा ध्यान रखनेवाला एक कार्यकर्त्ता भी मिल गया था। लेकिन उनके पास सुयोग्य और निष्ठावान सहयोगी थे, यह तथ्य भी रमाबाईको ही अधिक प्रशसनीय बनाता है। सेवासदन सदा उनकी पवित्र स्मृतिका जीवन्त स्मारक बना रहेगा। मैं अपनी इस दिवगत बहनके परिवार और सेवासदनके अनेक बालक-बालिकाओके प्रति विनम्रतापूर्वक अपनी सहानुभूति प्रकट करता हूँ।

प्रिंसिपल गिडवानी[4]

मेरे पूछनेपर श्रीमती गिडवानी अपने एक पत्रमें लिखती है

> कुछ समय पहले जब मै अपने पतिसे मिलने गई, तब देखा कि अधिकारी लोग उनके साथ अशिष्टतासे पेश आ रहे थे। वे कोठरीमें बन्द थे और उनके कपडे मैले थे। सात दिनके अनशनके कारण वे बहुत दुबले दिख रहे थे। इससे पहले चौरीचौराके समय भी उन्होने अनशन किया था, लेकिन तब वे इतने कमजोर नहीं हुए थे। उनको अन्य बन्दियो-जैसा ही खाना दिया जाता है। मुलाकातियोको उनसे मिलनेमें तरह-तरहकी कठिनाइयाँ पैदा की

१ (१८६२-१९२४), महादेव गोविन्द रानडेकी पत्नी

२ पूनाके ससून अस्पतालके सर्जन-जनरल, जिन्होंने जनवरी, १९२४ में गाधीजी का एपेण्डिसाइटिसका ऑपरेशन किया था।

३ गो० कृ० देवधर (१८७१-१९३५), सर्वेंट्स ऑफ इडिया सोसाइटीके सदस्य, बादमें उसके अध्यक्ष।

४. आसूदोमल टेकचन्द गिडवानी, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबादके प्रधानाचार्य।

जाती है। उनके भाईने मुलाकातके लिए दो बार लिखा, पर कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं दिया गया। लेकिन मैं इस सबकी चिन्ता नहीं करती। इन्सान कठिनाइयोंमें से गुजरकर ही ऊपर चढता है।

यह करुणाजनक पत्र एक पतिपरायणा महिलाका लिखा हुआ है, श्रीमती गिडवानीका पत्र प्रकाशनके लिए नही लिखा गया था। वह एक मित्रको लिखा गया घरेलू पत्र है। मैंने उन मित्रको लिखा था कि वे श्रीमती गिडवानीसे उनके पतिकी हालतके बारेमे पूछे। यदि श्रीमती गिडवानी द्वारा बतलाई गई बाते सही है तो उनसे नाभाके वर्तमान प्रशासनकी इज्जत नही बढती। प्रिंसिपल गिडवानीपर कोई मुकदमा नही चलाया गया है, फिर भी स्पष्ट है कि उनके साथ पक्के अपराधियो-जैसा ही बरताव किया जा रहा है। श्री जिमडने बतलाया है कि प्रिंसिपल गिडवानीने मानवताकी भावनासे प्रेरित होकर ही राज्यकी सीमामे प्रवेश किया था। नाभाके प्रशासकोसे मेरा कहना है कि वे या तो इस कथनका खण्डन करे या अपनी सफाई दे। इस बातका मैं वादा करता हूँ कि उनकी सफाईमे दिये गये उनके बयानको भी मैं उसी तरह प्रकाशित करूँगा जिस तरह मैंने श्रीमती गिडवानीके कथनको किया है।

पत्रकारिताकी भाषा

एक मित्र पूछते ह

> क्या आपने "महात्माको मानपत्र" शीर्षकसे लिखा गया 'क्रॉनिकल' का अग्रलेख पढा है? उसमें लेखकने लिखा है कि "यदि दो-तीन विरोध-कर्त्ताओंके भाषणोकी रिपोर्ट विरोध सूचित करती हो तो कहना पडगा कि विरोध केवल विरोधके लिए किया गया था और उसके पीछे कुछ ऐसे पेशेवर झगडालू लोग ही थे, जिनके मनमें महात्माके आन्दोलनकी सफलतासे ईर्ष्याके कारण बडी ही कटुभावना व्याप्त हो गई है। 'टाइम्स' जब श्री मुहम्मद अलीके बारेमें लिखता है तो आप उसे उपदेश सुनाने लगते हैं। लेकिन क्या उस 'क्रॉनिकल'के बारेमें आप चुप रहना चाहेगे जो अपने-आपको आपका अनुयायी बतलाता है और राजनीतिक विरोधियोके लिए ऐसी असंयत और अयथार्थ भाषाका प्रयोग करता है?

'टाइम्स' को कभी उपदेश देनेकी बात मुझे तो याद नही पडती। वैसे अगर कभी मैं यह चाहता भी तो साहस न होता। साफ है कि लेखकने मेरे उन शब्दोका हवाला दिया है जो मैंने देशी भाषाओकी उन कुछ-एक पत्रिकाओके बारेमे लिखे थे जो आजकल झूठी बदनामी फैलानेका अभियान-सा चला रही है। हुआ यह था कि मैंने 'टाइम्स ऑफ इडिया' मे अनुवाद किये हुए कुछ अश देखे और मुझे उनके बारेमे लिखना ही पडा। पर मैंने उसमे 'टाइम्स ऑफ इडिया' को नही, सम्बन्धित पत्रिकाओ-को ही सलाह दी थी। पत्र-लेखक खुद उसे देखकर अपनी तसल्ली कर सकता है। मै यह आरोप तो स्वीकार नही कर सकता कि मैंने 'टाइम्स'को कभी 'उपदेश'

दिया, पर हाँ, मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि 'क्रॉनिकल' के लेखकको अहिंसात्मक असहयोगके अपने दावेके अनुरूप भाषाका प्रयोग करना चाहिए था और मानपत्रका विरोध करनेवालोंकी मशापर शक नही करना चाहिए था। अवश्य ही पत्र-लेखकने जिसका हवाला दिया है वह लेख मैंने नही पढा है। आमतौरपर मैं अपने बारेमे भारतीय समाचारपत्रोंमे निकलनेवाले लेख इत्यादि पढता ही नही, चाहे उनमे मेरी प्रशसा की गई हो। प्रशसाकी मुझे दरकार नही है क्योंकि बिना किसी भी बाहरी सहायताके मेरे मनमे पहलेसे ही काफी अहम् भरा पडा है और अपनी निन्दा इस ख्यालसे नही पढता कि कही मेरे भीतरका असुर सौम्य भावनाओंपर हावी होकर मेरी अहिंसाको न धर दबोचे। पूरा लेख पढनेके बाद मेरे इस कथनमे तदनुसार सशोधन किया जा सकता है। फिर भी, मेरा अपना अनुमान यह है कि उक्त बाते श्री जे० बी० पेटिट[1] और कानजी द्वारकादासको[2] नजरमे रखकर कही गई हैं। मैं इन दोनोंसे भली-भाँति परिचित हूँ। हम लोगोंके आपसी सम्बन्ध आज भी उतने ही मैत्रीपूर्ण हैं, जितने कि असहयोगके प्रारम्भसे पहले थे। मैं कल्पना भी नही कर सकता कि इन दोनोंमे से किसीके भी दिलमे मेरे प्रति किसी प्रकारकी कटुता हो सकती है। वे साफ-साफ कहते हैं कि मेरे तरीके उन्हे पसन्द नही हैं। कमसे-कम वे तो विरोध करनेके लिए विरोध नही करेंगे। जिनकी राय मानपत्र देनेके पक्षमे थी उनसे मैंने यह सुना है कि उस अवसरपर श्री पेटिटने इतने सयमित ढगसे अपनी बात कही कि उनके स्वभावको देखते हुए वह एक आश्चर्यजनक चीज ही थी। मुझे मालूम है कि श्री पेटिट चाहे जब आवेशमे आकर बोल सकते हैं लेकिन प्रस्तुत मामलेमे उन्हे यह अहसास रहा कि उन्हे एक मित्रके खिलाफ बोलनेका दुखद कर्त्तव्य निभाना है। निगम-के एक काफी पुराने सदस्यकी हैसियतसे उन्हे लगा कि निगम एक ऐसे व्यक्तिको मानपत्र देकर अपनी परम्पराओंके विरुद्ध आचरण करेगा जिसके सौजन्यको उसकी (पेटिटके तई) घृणित राजनीतिसे अलग रखकर नही देखा जा सकता। सर्वश्री पेटिट और कानजी हृदयसे ऐसा मानते थे कि बम्बई नगर निगम एक गलत काम कर रहा है। इसलिए मेरी विनम्र सम्मतिमें उनका विरोध प्रकट करना उचित ही था। बेशक, आजकल हमारे देशके सार्वजनिक जीवनमें एक दूसरेके इरादोंपर जरूरतसे ज्यादा शका की जाती है। (सहयोगियोंकी तो बात छोडिए) स्वराज्यवादियोंमे भी कोई ऐसा नही है जिसके इरादोंपर अपरिवर्तनवादी लोग कोई शक जाहिर न करे और स्वराज्यवादी लोग भी अपरिवर्तनवादियोंके साथ ऐसा ही सलूक करते हैं। और उदार दलके लोगोंपर तो दोनों ही ऐसा शक करते हैं। समझमे नही आता कि जिन्हे पहले ईमानदार माना जाता था वे ही अब एकाएक राजनीतिक विचारोंके परिवर्तनके कारण बेईमान कैसे हो गये। चूँकि असहयोगियोंके विरोधियोंने नही, बल्कि असहयोगियोंने अपनी विचार-धारा बदली है, इसलिए उनको खास सावधानी रखनेकी जरूरत है, अपने विपक्षियोंसे कही ज्यादा। यदि दोनोंमे मतभेद है तो इसमे विपक्षियोंका

१ बम्बईके दानशील पारसी समाज-सेवी।

२ होमरूल लीगके प्रमुख सदस्य और गांधीजी के मित्र।

कोई दोष नही हो सकता। इसलिए मै तो अपना पूरा रोप विचारकर्त्ताओकी वजाय विचारोके प्रति प्रकट करता।

वाइकोम सत्याग्रह

मुझे लगता है कि वाइकोम सत्याग्रह अपनी मर्यादाएँ भंग करने लगा है। मैं तो यह चाहता हूँ कि सिख अपना लगर बन्द कर दे और यह आन्दोलन सिर्फ हिन्दुओ तक सीमित रहे। काग्रेसके कार्यक्रममें शामिल कर लिये जानेसे ही यह हिन्दुओ और गैर-हिन्दुओका आन्दोलन नही वन जाता, ठीक उसी प्रकार जैसे खिलाफत आन्दोलन काग्रेसके कार्यक्रममे शामिल कर लिये जानेपर भी मुसलमानो और गैर-मुसलमानोका आन्दोलन नही वन गया। इसके सिवा खिलाफत आन्दोलनके विरुद्ध ब्रिटिश सरकारके रूपमे गैर-मुसलमान लोग थे। अगर हिन्दू या दूसरे गैर-मुसलमान लोग मुसलमानोके अपने अन्दरूनी धार्मिक झगडोमे दखल देने लगे तो वह वेजा मदाखलत होगी और अगर मुसलमान उसे धृष्टतापूर्ण समझे तो वह ठीक ही होगा। इसी तरह जो मामला सिर्फ हिन्दू समाजके सुधारसे सम्बन्धित है यदि उसमे गैर-हिन्दू टाँग अडाना चाहे तो कट्टरपथी हिन्दू नाराजी जाहिर करेगे ही। यदि मलावारके हिन्दू-सुधारक गैर-हिन्दुओकी सहानुभूतिको छोडकर और किसी प्रकारकी सहायता अथवा हस्तक्षेप स्वीकार करेगे या उसे प्रोत्साहन देगे तो वे सारे हिन्दू समाजकी हमदर्दी खो वैठेगे। मुझे पूरा विश्वास है कि वाइकोममे इस आन्दोलनका नेतृत्व करनेवाले हिन्दू सुधारक अपने कट्टरपथी भाइयोके विचारोमे जोर-जवरदस्तीके वलपर परिवर्तन नही चाहते। जो भी हो, नेताओको वह सीमा-रेखा जान लेनी चाहिए जिसका अतिक्रमण किसी भी सत्याग्रहीको नही करना है। मै सुधारकोका पूरा सम्मान करते हुए, अनुरोध करना चाहता हूँ कि वे सनातनी लोगोको आतकित करनेकी कोशिश न करे। मै इस विचारसे सहमत नही हूँ कि वाइकोममे जिस रास्तेको लेकर सघर्ष चल रहा है, यदि वह खुल जाता है तो मलावार-भरमे छुआछूतकी समस्या हल हो जायेगी। वाइकोममे यदि अहिसापूर्ण तरीकोसे विजय हासिल की गई तो इसमे शक नही कि पण्डे-पुजारियो द्वारा फैलाये गये अन्ध-विश्वासोके गढकी नीवे आमतौरपर हिल जायेगी, पर हर स्थानपर जब भी समस्या सिर उठाये तब उसे वही स्थानीय रूपसे ही हल करना पडेगा। गुजरातमे कही एक जगह कोई कुआँ हरिजनोके इस्तेमालके लिए खोल दिये जानेका यह मतलब नही होगा कि गुजरातके सारे कुएँ उनके लिए खुल जायेगे और अगर ईसाई, मुसलमान, अकाली और इन हिन्दू-सुधारकोके सभी गैर-हिन्दू मित्र भी कट्टरपथी हिन्दुओके विरुद्ध प्रदर्शन करने लगे, इन सुधारकोकी पैसे-रुपयेसे मदद करने लगे और अन्तमे आतकित करके उनपर हावी हो जाये तो हिन्दू-धर्मका क्या होगा? क्या हम इसे सत्याग्रह कह सकेगे? क्या सनातनी लोगोका घुटने टेक देना स्वेच्छाप्रेरित कहा जायेगा? क्या उसे हिन्दू धर्ममे सुधार कहेगे?

[अग्रेजीसे]

यंग इडिया, ८-५-१९२४

३. पत्र-लेखकोंसे

मेरे नाम पत्र भेजनेवालोकी सख्या दिन-ब-दिन वढती जा रही है। इनमे सम्पादकके नाम पत्र लिखनेवाले और वे लोग भी शामिल हैं जो सार्वजनिक महत्त्वके विपयोके वारेमे मेरी सलाह माँगते हैं। मैं इन्हे आश्वस्त करना चाहता हूँ कि मुझसे जहाँतक वन पाता है, मैं सभी पत्रोको पढता हूँ और यथासामर्थ्य इन स्तम्भोमे उनके उत्तर भी देता हूँ। साथ ही मैं यह मानता हूँ कि मैं अपने पत्र-लेखको द्वारा चर्चित सभी महत्त्वपूर्ण विषयोके वारेमे पूरे विस्तारसे लिखनेमे असमर्थ हूँ। मेरे लिए यह भी सम्भव नही है कि मैं सभी पत्रोका अलग-अलग उत्तर दूं। पत्र-लेखक 'यग इडिया' को ही उनके नाम भेजा गया मेरा व्यक्तिगत पत्र समझनेकी कृपा करे। यदि लोग चाहते हैं कि उनके पत्रोपर ध्यान दिया जाये तो उनके पत्र सक्षिप्त, साफ लिखे हुए और निर्वैयक्तिक होने चाहिए।[1]

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ८-५-१९२४

४. आत्म-निरीक्षणका आमन्त्रण

एक सम्माननीय पत्र-लेखकका पत्र नीचे देते हुए मुझे प्रसन्नताके साथ पीडाका भी अनुभव हो रहा है :

> 'यग इडिया' के हालके लेखने मेरी अधिकाश शकाओको दूर कर दिया है, किन्तु अभी कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन्हे, मैं चाहता हूँ, थोडा और साफ कर दिया जाये तथा फिर इन्हे शीघ्र ही 'यग इडिया' में प्रकाशित कर दिया जाये। कौंसिलोमें प्रवेश-सम्बन्धी आपके विचार अव मेरे सम्मुख विलकुल स्पष्ट हो गये हैं और अव वे मुझे परेशान नहीं करते। किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप नगरपालिकाओ और जिला वोर्डोमें वहुमत प्राप्त करनेके सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त करे। मैंने १९२१ में इन मुद्दोपर आपका मत जाननेकी इच्छासे आपको एक तार[2] भेजा था। तव मुझे आपने उत्तर दिया था.
>
> "नगरपालिकाओपर अधिकार कर सकते हो, जिला वोर्डोके वारेमें सन्देह है।" १९२३ के अन्तमें सभी नगरपालिकाओमें नये चुनाव हुए हैं और असहयोगियोने उनमें से अधिकाशपर अधिकार कर लिया है। हमने जिला

१ यह सूचना यंग इंडियाके वादके अकोंमें वार-वार दी जाती रही थी।

२. यह तार उपलब्ध नही है।

बोर्डके चुनाव भी लडे हैं। हमारे इन चुनावोके अनुभव बहुत ही दुःखजनक हैं। उनसे कांग्रेसके कार्यको बल नहीं मिला है, प्रत्युत हममें बहुत बडी कमजोरी आई है। उनके फलस्वरूप हमारे असहयोगी कार्यकर्त्ताओंमें परस्पर तीखे मतभेद, द्वेष तथा घृणाके भाव पैदा हो गये हैं।

दूसरी ओर हमने अपने नरमदलीय समर्थको, जमींदारो तथा इनमें दिलचस्पी रखनेवाले अन्य लोगोकी सहानुभूति भी लगभग गँवा दी है। उन्होंने अब डराने-धमकानेका रुख अख्तियार कर लिया है और वे हमारे मार्गमें रोडे अटकाने तथा हमें बदनाम करनेका भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। इससे भी अधिक गम्भीर बात यह है कि हमें सरकारसे सम्बन्ध रखना पडता है। हम सरकारसे अनुदान प्राप्त करते है, इसलिए हमारे लिए सरकारी अधिकारियोको सभी कुछ लिख भेजना जरूरी हो जाता है। यहाँ हमें जनताकी सेवा करनेका अवसर तो अवश्य मिलता है, किन्तु हम जो श्रम, समय और शक्ति इसमें लगाते है, उसका उतना परिणाम नहीं निकलता और उससे हमारा जल्दी स्वराज्य लेनेको कार्य भी सचमुच आगे नहीं बढता। जिला बोर्डके अन्तर्गत देशी भाषाओंके प्राथमिक, माध्यमिक तथा मिडिल स्कूल हमारे नियन्त्रणमें रहते हैं, परन्तु हमको उन्हे विहित सरकारी नीतिके अनुसार ही चलाना पडता है। अतः मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अपनी राय बतायें। हमारे जिलेमें बोर्डके अध्यक्ष और उपाध्यक्षका शीघ्र ही चुनाव होनेवाला है, हमें आपका स्पष्ट उत्तर चाहिए कि हम इन स्थानोके लिए चुनाव लड़ें या न लड़ें। एक बात साफ समझमें आती है और वह यह है कि यदि हम अपने आदमियोको अध्यक्ष और उपाध्यक्ष नहीं बनवा सकते तो हमारा इन संस्थाओमे जाना व्यर्थ है।

मेरा अन्तिम प्रश्न है, हमें अपने कांग्रेस-संगठनोका क्या करना चाहिए? वर्तमान नियमोके अनुसार हमे गाँवोसे मण्डलोके लिए, मण्डलोसे थानोके लिए, थानोसे तहसीलो अथवा जिलेके लिए, जिलेसे प्रान्तके लिए तथा प्रान्तसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके लिए सदस्य चुनने होते हैं। यह एक बहुत ही बड़ा काम है जिसे सँभालना मुश्किल है। हमारे पास न तो कार्यकर्त्ता हैं और न पैसा है, इसलिए हम इस विराट् संगठनको चलानेमें असमर्थ हैं। हममे से कुछ कहते हैं कि हमे अपनी सारी गतिविधि जिला बोर्डो और नगरपालिकाओंपर केन्द्रित करनी चाहिए, तथा कांग्रेस-संगठनको भगवान्‌पर छोड देना चाहिए। कांग्रेस-संगठनोको चलाते रहना बड़े खर्चका काम है और वह साराका-सारा काम लगभग बन्द ही पडा है।

जहाँतक रचनात्मक कार्यका प्रश्न है, उसमें न तो हमारे कार्यकर्त्ताओकी रुचि है, न गाँववालोकी, और न जनताकी ही। उसमे बहुत अधिक समय लगता है और उससे स्वराज्य शीघ्र कैसे प्राप्त हो सकता है, यह बात मेरी

समझमें नहीं आती। यह तो मैं मानता हूँ कि रचनात्मक कार्य नितान्त आवश्यक है, किन्तु प्रश्न यह हे कि उसे शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न कैसे किया जाये।

हमारे सभी कार्यकर्त्ताओने अपनी निष्ठा खो दी हे और वे जनताकी सहानुभूति तथा अपने और अपने कुटुम्बोके भरण-पोषणके साधनोके अभावमें बिलकुल हिम्मत हार बैठे हैं। एक प्रकारसे प्राय सभीने काग्रेस-सगठनोको छोड दिया है, क्योकि उनकी जीविकाका प्रबन्ध नहीं किया जा सकता। जबतक हमारे कार्यकर्त्ताओको उनके जीवन-निर्वाहके लायक भत्ता नहीं दिया जाता, और जबतक उनमें नवजीवन तथा नये विश्वासका सचार नहीं किया जाता तबतक कोई काम सम्भव नहीं हे। अबतक आपको सब-कुछ मालूम हो गया होगा, इसलिए और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं हे। हमारे काग्रेस सगठनोमें लोगोको बिलकुल विश्वास नहीं रहा हे और हमें कुछ देने अथवा हमारा समर्थन करनेकी उनकी बिलकुल इच्छा नहीं हे। यह सच है कि हमने मनसा, वाचा और कर्मणा अहिंसाके उच्च आदर्शके अनुसार आचरण नहीं किया है। हमने इस प्रकारसे आपसमें ही असहयोग किया हे और एक असहयोगीने दूसरे असहयोगीको अपना प्रतिद्वन्द्वी मान लिया है। पारस्परिक डाह, प्रतिस्पर्द्धा, भाईचारे और सचाईका अभाव -- इन सबने समस्त काग्रेस-सगठनके नामको बट्टा लगा दिया हे और इसलिए जनता हमारी बात अनसुनी कर देती हे। आपसमें लडनेवाले कार्यकर्त्ताओकी एक बडी फौजके बदले हमें मुट्ठी-भर सच्चे, ईमानदार और अहिंसक कार्यकर्त्ताओकी आवश्यकता हे। हम सचमुचमें कुछ सफलता प्राप्त कर सके, इससे पहले आवश्यकता हे अपने हृदयोको पूर्णत शुद्ध करनेकी और समूचे काग्रेस-सगठनको नये सिरेसे गढनेकी। हम लोग नाम, यश और नेतागिरीके मिथ्या मोहमें पड गये हे। इसने हमारे दलमें अनुशासन-हीनता फैला दी हे और ईर्ष्या तथा प्रतिस्पर्द्धाकी भावनाओको उभार दिया हे।

हमें पहले अपनी शुद्धि करनी चाहिए -- यही पहली जरूरी बात है। दूसरी जरूरी बात यह है कि हमारे कार्यकर्त्ता अपने और अपने कुटुम्बोके भरण-पोषणके लिए कुछ कमाई करनेकी चिन्तासे मुक्त हो। सम्पन्न लोग न तो हमें आर्थिक सहायता देते हे और न ही स्वय राष्ट्रीय सेवाके काममें पडते हे। अत पूरा भार गरीबोपर पडता है।

पुनश्च •

१ हमें अपने कार्यकर्त्ताओको आर्थिक सहायता देनेका प्रबन्ध तुरन्त करना चाहिए अन्यथा वे मुट्ठीभर लोग भी, जो अभी हमारे साथ हे और काम कर रहे है, काम करना छोड देंगे।

२ यदि आप तय करें कि हम लोग जिला बोर्डों और नगरपालिकाओमें जमे रहे, तो आप हमें इन सस्थाओमें काम करनेके लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम

> दें। यदि आप अन्यथा निर्णय दें तो हम सबको एक साथ सारे स्थान रिक्त कर देने चाहिए। महसूल अथवा लगानोंकी अदायगी बन्द करनेकी जरूरत पड़े तो लोग उसके लिए तैयार नही जान पड़ते। इन सस्थाओके भीतर हमें क्या काम करना है इस विषयमें कुछ भी स्पष्ट नहीं है। कुछ कहते हैं कि हमें इन संस्थाओका उपयोग सरकारके विरुद्ध सघर्ष-क्षेत्रकी तरह करना चाहिए। कुछ लोग रोड़े अटकानेकी नीति अपनानेका आग्रह करते हैं और कुछ यह सलाह देते हैं कि हम इन संस्थाओके कार्य-संचालनमें योग दें और इनका उपयोग जनताके हित-साधनके लिए करें। इन संस्थाओपर अधिकार करनेसे हमारे काग्रेस-संगठनोमें कमजोरी आई है।

लेखकको सार्वजनिक जीवनका व्यापक अनुभव है और वे वडे पक्के कार्यकर्त्ता है। अत उनका पत्र ध्यानसे पढने योग्य है। मेरे लिए तो वह आत्म-निरीक्षणका आमन्त्रण है।

मुझे यह पसन्द नही है और न कभी पसन्द था कि लोग सभी वातोके लिए मेरा मुँह ताके। यह राष्ट्रीय कामोकी व्यवस्थाका निकृष्ट ढग है। काग्रेसको किसी एक व्यक्तिके नचाये नही नाचना है, जिसके आसार दिखाई दे रहे हैं, फिर वह व्यक्ति चाहे कितना ही भला अथवा महान् क्यो न हो। मैं अकसर सोचता हूँ कि अगर मैं सजाकी पूरी अवधितक जेलमे ही रहता तो वह देश और मेरे लिए वेहतर होता। तवतक देश किसी ऐसे कार्यक्रमपर जम जाता जो उसका अपना कहा जा सकता। आज यह कहना कठिन है कि आखिर काग्रेसका कार्यक्रम है किसका। यदि कार्य-कर्त्ताओको मार्ग-दर्शनके लिए हर बार मुझसे सलाह लेनी पडे तो यह देशका कार्यक्रम तो हो नही सकता और वह मेरा भी नही हो सकता, क्योकि अकेला मैं कोई भी कार्यक्रम कार्यान्वित नही कर सकता। केवल प्रस्तुत पत्र-लेखक ही मेरी सलाहके मोहताज नही हैं वल्कि कार्यकर्त्ताओकी आम प्रवृत्ति यही है। एक सज्जन कार्यक्रमकी प्राय प्रत्येक वातपर आपत्ति करनेके पश्चात् कहते हैं: "किन्तु इस सवके वावजूद आपके प्रति मेरी श्रद्धा और मेरा स्नेह इतना गहरा हैं कि आप जो-कुछ करनेके लिए कहे मैं कर सकता हूँ, चाहे मैं आपसे सहमत होऊँ, चाहे न होऊँ।" ये सज्जन इनसे भी आगे हैं। प्रस्तुत सज्जन कमसे-कम कार्यक्रमसे तो सहमत हैं और सलाह माँगते है। किन्तु वे तो मेरा विरोध करते हैं और फिर भी मेरा अनुसरण करना चाहते हैं। अपने प्रति इस तरहकी भक्तिपर मैं भले ही कुछ गर्व कर लूँ, किन्तु उससे अपने ध्येयकी ओर हमारी प्रगति निश्चय ही रुकती है। हमे अपने ही सच्चे विश्वासके अनुसार काम करनेका साहस करना चाहिए, चाहे फिर उसमें भयानक भूलें हो जानेकी आशका ही क्यो न हो। स्वराज्य परीक्षणो, प्रयोगो तथा भूलोके रास्तेसे गुजरकर शासन करनेका मार्ग है। अपनी भूलोके कारण मिट जाना, किसी एक व्यक्तिके — फिर चाहे वह कितना ही वुद्धिमान क्यो न हो — निरन्तर मार्गदर्शनमे चलते रहकर भूलोसे वचनेकी अपेक्षा हजार गुना अच्छा है। मैं सोचने लगा हूँ कि मेरा समस्त सार्वजनिक कार्योसे पूर्णत निवृत्त होकर और अपने कताई और वुनाईके

चुने हुए धन्धेमे, तथा जबतक निजी मित्र आश्रमको सहारा देते है, सत्याग्रह आश्रमके बच्चोके साथ रम जाना, क्या देशके हितमे सबसे अच्छा काम नही रहेगा। कुछ भी हो, अपने मित्रो तथा साथी कार्यकर्त्ताओको मेरी निश्चित सलाह यह है कि वे मेरी बातको अकाट्य मानकर कदापि स्वीकार न करे। मेरी सलाह उनके लिए हमेशा हाजिर है, किन्तु वह ली तो यदा-कदा ही जानी चाहिए।

ऊपरके पत्रको ध्यानसे पढे तो उसमे लेखकने जिन बुराइयोका इतना सजीव वर्णन किया है, उनका सर्वोत्तम उपाय भी उन्होने सुझा दिया है। यदि मिथ्याचार, पाखण्ड और ईर्ष्या हमारे कार्यकर्त्ताओमे घर कर गये है तो हमे इन दुर्गुणोका उन्मूलन करना चाहिए और इसके लिए हमे अपना अन्तर टटोलना अनिवार्य है। हर हालतमे पाँच भले ईमानदार, स्वार्थत्यागी और श्रद्धावान कार्यकर्त्ता पचास हजार बेईमान, आलसी और श्रद्धाहीन कार्यकर्त्ताओकी अपेक्षा अच्छे है। ये पचास हजार उन पाँचके काममे भी बाधक ही बनते है।

अब विशिष्ट मामलोको ले।

जिला बोर्डो तथा नगरपालिकाओका भी जहाँतक सम्बन्ध है, असहयोगियोका इनमे प्रवेश तभी उचित माना जा सकता हे, जब उनसे काग्रेसके उद्देश्योकी प्रगति हो और उसके सगठनमे सहायता मिले। यदि हम इन सस्थाओके द्वारा खद्दरके कार्यक्रम या हिन्दू-मुस्लिम एकताका काम नही कर सकते अथवा अछूतो और राष्ट्रीय शालाओ-की सहायता सम्भव न हो तो हमे अवश्य ही इनसे बाहर निकल आना चाहिए और फिर दूर ही रहना चाहिए, यदि इनमे जानेसे असहयोगियोमे पारस्परिक कलह तथा आमतौर पर मनमुटाव पैदा होता हो तो इसकी और भी ज्यादा जरूरत है।

कार्यकर्त्ताओके भरण-पोषण सम्बन्धी प्रश्नके विषयमे, मै यही मानता हूँ कि यह खर्च प्रान्तीय सगठनोको उठाना चाहिए। केन्द्रीय सगठनका प्रान्तीय सेवाओको नियन्त्रित तथा विनियमित कर पाना और उनका खर्च उठा पाना कभी सम्भव नही होगा। जब कोई प्रान्तीय सगठन स्थानीय रूपसे सहायता प्राप्त करनेमे असमर्थ हो जाये तब उसका अन्त होना ही ठीक है, क्योकि सहायताका अभाव जाहिर करता है कि वह सगठन उस प्रान्तमे कभी लोकप्रिय नही था और यदि स्थानीय काग्रेस सगठन लोकप्रिय नही है तो वह किस कामका? यदि किसी काग्रेस सगठनकी सदस्य-सख्या बडी हो तो उसे प्रति-व्यक्ति चार आनेके शुल्कसे ही आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए। यदि उसकी सदस्य-सख्या अधिक न हो तो यह भी इसी बातका सूचक है कि वह लोकप्रिय नही है। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि जहाँ-जहाँ काग्रेसने खद्दरका काम अच्छा किया है, वहाँ-वहाँ उसका सगठन लोकप्रिय है और यदि वह अबतक वहाँ आत्मनिर्भर नही भी बना है तो शीघ्र ही बन जायेगा। किन्तु दूसरे लेखक, जिनके पत्रको मैने उद्धृत किया है, कहते है, "चरखेमे मेरा विश्वास आज जितना कम रह गया है उतना कम कभी नही था। एक समूचे मध्यवर्गीय कुटुम्बका चरखेसे निर्वाह चलना असम्भव है, जबकि यह अत्यन्त स्पष्ट है कि इस प्रकार एक ही काम-पर सारी शक्ति लगा देनेका अर्थ होगा अन्य सब काम बन्द कर देना। यह मुझे भारी फिजूलखर्ची और गलत अर्थनीति लगती है, ऐसे ही जैसे अग्रेजीके मुहावरेके

अनुसार 'घुडदौडके घोडोको हलमे जोतना।'" इस कथनसे इतना ही जाहिर होता है कि लेखक यह भी नही जानता कि वे चरखेसे जितना कुछ कर दिखानेकी अपेक्षा रखते है, खुद चरखेका दावा उससे बहुत घटकर है। किसीने कभी नही कहा कि चरखे अर्थात् हाथकी कताईसे किसी समूचे मध्यवर्गीय कुटुम्बका भरण-पोषण हो सकता है। यह दावा भी नही किया जाता कि केवल हाथकी कताई किसी गरीब-से-गरीब कुटुम्बकी गुजर-बसरके लिए काफी है। किन्तु यह जरूर कहा गया है कि वह उन अनेक भूखसे मरते पुरुषो और स्त्रियोका काम अवश्य चला सकता है और चला भी रहा है, जो आजतक दो पैसे रोजकी कमाईसे सन्तुष्ट रहे है, और हमारा उसकी क्षमताके बारेमें यह भी कहना है कि वह लाखो किसानोकी कमाईमे काफी हदतक वृद्धि कर पाता है। मध्यवर्गवालो से चरखा नित्य चलानेको इसलिए कहा गया है कि उसके दैनिक अभ्याससे उन्हे एक प्रशिक्षण मिलेगा, चरखेका वातावरण बनेगा तथा जो लोग जीविकाके लिए कातते है उन्हे अधिक मजदूरी देना सम्भव हो जायेगा। अन्तिम बात यह है कि मध्यवर्गके लोग बुनाई करके जीवन-निर्वाह अवश्य ही कर सकते है और हजारो बुनकर आज ऐसा कर भी रहे है। किसी मध्यवर्गीय कुटुम्बके लिए प्रतिदिन दोसे तीन रुपयेतक कमा लेना कोई मामूली बात नही है। "अन्य सब कामो" से क्या मतलब है, यह मैं नही समझा। यदि "अन्य सब कामो" का मतलब अन्य सब सार्वजनिक कामोसे है तो मै चाहता हूँ कि ये सारे काम फिलहाल बन्द कर दिये जाये। जिस प्रकारके सगठन द्वारा की गई स्वराज्य सम्बन्धी मॉगका ठुकराया जाना असम्भव हो, वैसा सगठन खडा करनेके लिए आज ठीक इसीकी जरूरत है। उस हालतमे वह 'घुडदौडके घोडोको हलमे जोतना' नही होगा, वह होगा और सबको घुडदौडके घोडोके स्तरपर लाना। जब जहाज जल रहा होता है, तब उसका कप्तान ही आग बुझानेका पम्प सँभालनेके लिए सबसे पहले आगे आता है और बादमे बाकी सभी लोगोको उस जीवन-रक्षक यन्त्रपर जुटा लेता है। उस जलते हुए जहाजके दृश्यकी कल्पना कीजिए, जिसका कप्तान चैनसे बैठा हुआ नाविको एव अन्य लोगोसे आशा करता हो कि वे अपनी अक्लसे काम लेकर आग बुझानेमे जुट जायेगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-५-१९२४

५. क्या यह असहयोग है?

कुछ लोगोका कहना है कि खिताबो, स्कूलो और कौसिलोका बहिष्कार असफल होनेके साथ-ही-साथ (वैसे मेरे विचारसे इन बातोमे बहिष्कारको असफल मानना गलत है) असहयोगका अवसान हो गया है। आलोचकोको मन्द गतिसे और उत्तेजना पैदा करनेवाले ढगसे चल रहे खादीके काममे असहयोगका लेश भी दिखाई नही देता। वे भूल जाते है कि यह चतुर्विध बहिष्कार-इमारतके पूरे होनेतक उसे उठानेवाले कारीगरोके खडे रहनेके लिए नितान्त आवश्यक आधारके समान है। यदि हम इन सस्थाओका, जो उस सत्ताकी प्रतीक है जिसका हम नाश करना चाहते है, उपयोग न करे तो इनका महज बना रहना कोई हर्जकी बात नही है। सच तो यह है कि इस चतुर्विध बहिष्कारके सहारेके बिना हम अपनी इमारत खडी नही कर सकते। *और यदि हम इन सस्थाओकी सहायताके बिना बल्कि इनके विरोधके बावजूद काग्रेस*-का काम ठीकसे चलाते रहे तो हमारी विजय निश्चित है। इसके अलावा हमे यह न भूलना चाहिए कि हमारा बहिष्कार चतुर्विध नही बल्कि पचविध है। पाँचवाँ विषय है भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण। मेरा तात्पर्य विदेशी (न कि सिर्फ ब्रिटिश) कपडेके बहिष्कारसे है।

बहिष्कार हमारे कार्यक्रमका निषेधात्मक हिस्सा है, हालाँकि इस कारण वह कुछ कम उपयोगी नही है। खादी, राष्ट्रीय शालाएँ, पचायते, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य और अछूतो तथा शराबखोरो और अफीमचियोका उद्धार, ये हमारे कार्यक्रमके रचनात्मक पक्ष है। हम जैसे-जैसे इस दिशामे आगे बढते जायेगे वैसे-वैसे बहिष्कार और इसलिए स्वराज्यकी दिशामे प्रगति करेगे। प्रकृतिको रिक्तता नापसन्द है। अतएव विध्वसके साथ-साथ निर्माण भी चलना चाहिए। यदि तमाम खिताबयाफ्ता भाई खिताब छोड भी दे और पाठशालाएँ, अदालते और कौसिले बिलकुल खाली भी हो जाये और इस सबसे परेशान होकर सरकार सत्ता हमारे हाथोमे सोप दे तो भी यदि हमारे पास रचनात्मक कार्य-रूपी पूँजी न होगी तो हम स्वराज्यका सचालन न कर सकेगे। हम बिलकुल असहाय हो जायेगे। मेरे मनमे अकसर यह सवाल उठा करता है कि क्या लोगोको इस बातकी पर्याप्त प्रतीति है कि हमारे आन्दोलनका उद्देश्य सिर्फ शासन-सूत्रके सचालकोको बदलना नही बल्कि इस प्रणाली और इन तरीकोको बदलना है। अतएव मेरे विचारसे तो खादीका कार्यक्रम जहाँ पूरा हुआ कि परिपूर्ण स्वराज्य ही मिल गया। भारतमे अग्रेजोकी दिलचस्पी बिलकुल स्वार्थमूलक है और वह राष्ट्रीय हितके विरुद्ध है। उसके राष्ट्रीय विरोधी होनेका कारण है भारतकी कपास-के प्रति उसकी बदनीयती। अतएव विदेशी कपडेके बहिष्कारका मतलब इग्लैड तथा दूसरे तमाम देशोके स्वार्थमूलक हितोको सत्त्वहीन बना देना है। यदि अकेले इग्लैडके कपडेका बहिष्कार किया जाये तो उससे अग्रेज लोगोको भले ही हानि पहुँचे, पर वह हमारे रचनात्मक काममे सहायक नही हो सकता। सिर्फ इग्लैडके कपडेके

वहिष्कारका मतलव खाईसे वचकर खन्दकमे गिरना होगा। जवतक तमाम विदेशी कपडेका व्यापार वन्द नही हो जाता और उसका स्थान खादी पूरे तौरपर नही ले लेती तवतक हमारा विनाशकारी शोषण रुक नही सकता। अतएव विदेशी कपडेका वहिष्कार, वहिष्कार-कार्यक्रमका केन्द्र-विन्दु है और यह सवसे प्रमुख वहिष्कार तवतक असम्भव है जवतक कि खादीका प्रचार घर-घरमे न कर दिया जाये। अपने ध्येयकी सिद्धिके लिए हमे अपने सभी साधनोका अधिकसे-अधिक उपयोग करना पडेगा। हमे धन, जन और सगठन-तन्त्रकी जरूरत होगी। हम हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणके विना खादीको घर-घर नही पहुँचा सकते। खादीके कामको पूरा करनेका अर्थ है अपनी स्वशासनकी क्षमताको सिद्ध कर देना। खादीका कार्यक्रम आम जनताका कार्यक्रम है। अतएव उसे सफल वनानेके लिए प्रत्येक भारतवासीको फिर चाहे वह राव हो या रक, छोटा हो या वडा, हिन्दू हो या गैर-हिन्दू, हाथ वँटाना होगा।

शकालु लोग कहते हैं, "खादीसे स्वराज्य कैसे मिल सकता है? क्या अग्रेज हमे सत्ता सौपकर यहाँसे चले जायेगे?" उत्तरमे मै "हाँ" भी कहूँगा और "नही" भी। "हाँ" इसलिए कि तव अग्रेज समझ जायेगे कि हमारा और भारतका हित एक ही होना चाहिए, तव वे केवल सेवक वनकर यहाँ रहनेमे सन्तोष मानेगे, क्योकि उन्हे ज्ञान हो जायेगा कि अव वे अपना व्यापार हमपर लाद नही सकते। इसलिए खादीका कार्यक्रम सफल हो जानेपर अग्रेजोके हृदय भी वदल जायेगे। आज वे मालिक वनकर रहना अपना हक मानते हैं, लेकिन खादीका कार्यक्रम पूरा हो जानेपर वे हमारे मित्र वननेमे गौरव मानेगे। यदि हम अग्रेजोको यहाँसे निकाल भगाना चाहते हो और उनके, उचित-अनुचित दोनो तरहके स्वार्थोका नाश कर देना चाहते हो, तो मेरा उत्तर होगा "नही"। अहिंसात्मक असहयोगका यह उद्देश्य नही है। अहिंसाकी अपनी सीमाएँ हैं। जो अहिंसक है वह न घृणा करता है और न घृणा उत्पन्न करता है। अहिंसाकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह ऐसा कर नही सकती। इसपर शकालु लोग फिर कहते हैं, "लेकिन फर्ज कीजिए कि अग्रेज अपनी प्रणालीमे परिवर्तन करनेसे इनकार कर दें और तलवारके वलपर ही भारतपर अपना कब्जा कायम रखनेकी जिद पकडे रहे तो खादीका घर-घर प्रचार हो जानेपर भी क्या वनेगा?" खादीकी शक्तिपर इस प्रकार अविश्वास करते हुए वे इस वातको भूल जाते हैं कि खादी सविनय अवज्ञाकी एक अनिवार्य तैयारी है और इस वातको तो सभी लोग मानते है कि सविनय अवज्ञा एक अदम्य शक्ति है। खादीका प्रचार जवतक घर-घरमे न हो जाये तवतक व्यापक सविनय अवज्ञा अर्थात् अहिंसात्मक अवज्ञाकी मुझे तो कोई सम्भावना दिखाई नही देती। जिस किसी भी जिलेमे खादीका पूरा सगठन हो सकता हो और जहाँके लोग कष्ट-सहनके लिए भी प्रशिक्षित हो, उस जिलेको सविनय अवज्ञाके लिए तैयार ही समझना चाहिए, और मुझे तो इस वातमे कोई शक ही नही है कि इस तरह सगठित एक ही जिला इतना शक्तिशाली होगा कि सरकार उसके मुकावले अपनी सारी ताकत लगाकर भी उसका मार्ग अवरुद्ध नही कर सकती।

अब अन्तमे यह सवाल रह जाता है कि फिर यह कठिन काम करेगा कौन? लेकिन जो चर्चा हम अभी कर रहे है, उसके साथ इसका सम्बन्ध नही है। मैं तो सिर्फ इसी सवालका जवाब देना चाह रहा था कि क्या रचनात्मक कार्यक्रम अर्थात् खद्दर असहयोगका अग माना जा सकता है। मैने यहाँ यह सावित करनेकी कोशिश की है कि खादी असहयोगके रचनात्मक पक्षका अभिन्न अग है।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ८-५-१९२४

६. भगवानदासके पत्रपर टिप्पणी

मुझे वावू भगवानदासका[1] पत्र[2] प्रकाशित करते हुए खुशी हो रही है। काग्रेसकी स्वराज्य-सम्वन्धी योजना तो तभी वन सकती है जव काग्रेस स्वराज्य लेनेकी स्थितिमे आ जायेगी। आज कोई नही कह सकता कि तव काग्रेस क्या करेगी। पर मैने वावू भगवानदासको वचन दिया है कि मै स्वराज्यके सम्वन्धमे अपनी योजना निश्चित ही प्रकाशित करूँगा। मै जानता हूँ कि स्वराज्य सम्वन्धी मेरी कल्पनाके वारेमें लोगोके दिमागमें तरह-तरहकी धारणाएँ है। मै सिर्फ इतना चाहता हूँ कि मुझे थोडा समय दिया जाये। तवतक मैं अपने सम्माननीय देशवासियोको यह यकीन दिला देना चाहता हूँ कि पूंजीपतियोके खिलाफ मेरे मनमें कोई वात नही है। मै हिंसामे विश्वास नही करता, इसलिए मेरे मनमें उनके विरुद्ध कोई योजना हो ही नही सकती। मै इतना अवश्य चाहता हूँ कि पूंजीपति — और मजदूर भी — पूरी तरह ईमानदारी वरतें। मैं ऐसे पूंजीवादका जरूर विरोध करूँगा जो मुट्ठी-भर लोगोके लाभके लिए देशकी सम्पत्तिका शोषण करनेका साधन वनाया जाता हो। फिर चाहे वे पूंजीपति विदेशी हो चाहे देशके। पर हम पहलेसे ही किसी योजनाकी कल्पना न करे।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ८-५-१९२४

१ (१८६९-१९५६), लेखक, दार्शनिक व काशी विद्यापीठके आचार्य।

२. इसमें गाधीजीसे अनुरोध किया गया था कि 'वे **यग इडिया** द्वारा इस वातका संकेत दें कि 'भारतको किस प्रकारके स्वराज्यकी जरूरत है।' पत्रके पूरे पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १।

७. पत्र : जी० ए० नटेसनको

पोस्ट अन्धेरी
८ मई, १९२४

प्रिय श्री नटेसन,

आपके हाथ की लिखावटके पुन दर्शन हुए, आनन्द हुआ। आप जाते या लौटते हुए यहाँ अवश्य पधारे। यह तो किसी व्यक्तिने चकमा ही दिया है। भविष्यमे कुछ महीने तक मै मद्रास न आ सकूंगा। अगर कभी आना सम्भव हुआ तो मै यथाशक्य आपके ही पास ठहरना पसन्द करूँगा। मुझे दु ख है कि मैंने आपका भाषण नही पढा और न आपके प्रस्तावके बारेमे ही मुझे कोई जानकारी थी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री जी० ए० नटेसन
'इडियन रिव्यू'
मद्रास

अग्रेजी पत्र (जी० एन० २२३४) की फोटो-नकलसे।

८. पत्र : डाह्याभाई पटेलको

गुरुवार [८ मई, १९२४][1]

भाईश्री डाह्याभाई,

आपका पत्र मिला। आपके सम्मुख तो एक ही मार्ग है कि आपको जो कटु अनुभव हो रहे है उनके बावजूद आप अपना कार्य करते जाये। गोशालाओके सम्बन्धमे आपके जो विचार है उनमे त्रुटि है। शहरोमे गाये कौन रख सकता है? वहाँ दुबले-पतले पशुओको कौन पालेगा? हाँ, गाँवोमे गाये और भैंसे जरूर पाली जा सकती है। गोशालाएँ चलाना इसमे बाधक नही है।

सम्मेलनके[2] लिए मेरा सन्देश यह है

"सम्मेलनका उद्देश्य आजतक किये गये कार्यका लेखा-जोखा और भविष्यके लिए कार्यक्रम तैयार करना हो।

१ डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
२. धोल्का ताल्लुका सम्मेलन।

पुनाई, कताई, बुनाई इत्यादिके विषयमें अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। मेरे विचारसे यदि सम्मेलन इस दिशामें कुछ करता है तो यही माना जायेगा कि उसने धोलका तथा भारत दोनोंकी कीर्तिमें वृद्धि की है।

मैं यह माने लेता हूँ कि धोलकामें कोई अस्पृश्य माना जानेवाला मनुष्य है ही नहीं और वहाँके हिन्दू और मुसलमान भाई-भाईकी तरह रह रहे हैं।"

मैं तो बोरसद भी नहीं जा रहा हूँ। फिर आपके यहाँ कैसे आ सकता हूँ?

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री जहाभाई पटेल
ताल्लुका समिति
धोलका

गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २६८८) से।
सौजन्य डा० एम० पटेल

९. पत्र : देवचन्द पारेखको[1]

अन्धेरी
गुरुवार [८ मई, १९२४][2]

भाईश्री,

आपका पत्र मिला। मैंने आपसे यह बात जोर देकर कही थी कि मेरी रायको कोई महत्त्व न दिया जाये। जो सब भाइयोंको अनुकूल हो वही प्रस्ताव पास किया जाना चाहिए। मैंने 'नवजीवन के लिए एक लेख'[3] लिखकर भेजा है। कदाचित् उससे इस सम्बन्धमें कुछ अधिक प्रकाश पड़ेगा। मैं विशेष विचार तो सब भाइयोंसे मिलने और बात समझनेके पश्चात् ही कर सकता हूँ। मेरी रायपर ही सब-कुछ छोड़ देना हरगिज ठीक नहीं है। आप लोग ही सब बातोंपर विचार करके जो ठीक जँचे वह करनेके लिए लोगोंसे क्यों नहीं कहते?

मोहनदासके वन्देमातरम्

देवचन्दभाई पारेख
वरतेज

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ५६९०) की फोटो-नकलसे।

१ गांधीजी के सहपाठी और मित्र, काठियावाड़के एक लोक-सेवक, जो उन दिनों काठियावाड़ राजनैतिक सम्मेलनसे सम्बद्ध थे।

२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

३ सम्भवत "उतावला काठियावाड़", ११-५-१९२४।

१०. पत्र : वा० गो० देसाईको

अन्धेरी
गुरुवार [८ मई, १९२४][1]

भाईश्री ५ वालजी,

आपकी दूसरी लेख-सामग्री मुझे मिल गई हे। आपको प्रूफ तो भेजे ही जायेंगे। पूरा हिमालय तो अभी हमे चढना है, आपको नही। आप तो अपने बारेमे 'आधा हिमालय चढ गये' कह सकते है। जिन दिनो मेरा मुकदमा चल रहा था उन दिनो आपने जो लेख लिखा उसकी जानकारी तो आपको होनी चाहिए न कि मुझे। क्या मुझे अपने साथ जेलमे कोई कागज ले जानेकी इजाजत थी?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००२) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य वालजी गो० देसाई

११. लाला लाजपतरायको भेजे गये तारका मसविदा[2]

[बम्बई
८ मई, १९२४ या उसके पश्चात्]

स्वप्नमे भी नही सोचा है। सहयोगके योग्य हृदय-परिवर्तन नजर नही आता।

गांधी

१. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

२. यह लाला लाजपतरायके उस तारके उत्तरमें था जो उन्होने ७ मई, १९२४ को हैम्पस्टैड, इंग्लैंडसे भेजा था और जो गाधीजी को ८ मईको मिला था। तार इस प्रकार था: "तार आये हैं, उनसे सूचना मिली है कि आगामी काग्रेसमें आप कौंसिलोंके जरिये सरकारके साथ सहयोग करनेका प्रस्ताव रखने जा रहे हैं, इससे बड़ी खलबली पैदा हो गई है। यदि यह सच नहीं है तो कृपया तार दें। **क्रॉनिकल**का तार आज पढा।" **डेली टेलीग्राफ**, लन्दनमें भी, उसके कलकत्ता स्थित सवाददाता द्वारा भेजे गये पत्रमें निम्नलिखित सूचना छपी थी "आगामी काग्रेसमें महात्मा गाधीने इस कार्यक्रमके आधारपर स्वयनेतृत्व करनेका निर्णय किया है कि विधान-सभा तथा प्रान्तीय कौंसिलोंमें बहुमत प्राप्त करके बजटको व्यर्थ बतानेके स्थानपर एक ऐसा कार्यक्रम रखा जाये जिसमें आवश्यक सेवाओंके संचालनमें सहयोग किया जाये और साथ ही पर्याप्त बहुमतका समर्थन प्राप्त करके जल्दी-जल्दी अधिक सुधारोकी माँग की जाये, उनका रूप बदला जाये और भारतीयकरणको, जिसमें सेना भी शामिल है, गति दी जाये।

तार द्वारा भेजा जानेवाला प्रस्तावित उत्तर मोतीलालजीको दिखाया जाये। यदि वे इस उत्तरका अनुमोदन करें तो इसे भेज देना चाहिए।[1]

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८७९० ए) की फोटो-नकलसे।

१२. पत्र : नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको

अन्धेरी
वैशाख सुदी ६ [१० मई, १९२४][2]

सुज्ञ भाईश्री,

आपने 'नवजीवन' में प्रकाशनार्थ जो पत्र भेजा था वह मुझे मिल गया है। उस पत्रसे यह झलकता है कि मैंने अपने लेखमें[3] आपका नाम जिस तरीकेसे प्रयुक्त किया वह आपको पसन्द नहीं आया। मैंने तो वह वाक्य स्नेह-भावसे लिखा था। मैं आपकी और भाई खबरदारकी साहित्य-सेवा तथा पाण्डित्यको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। फिर भी यदि आप ऐसा ही मानते हो कि मुझसे कोई थोड़ी भी त्रुटि हुई है तो क्या आप मुझे क्षमा नहीं कर देंगे? मैं आपके लेखको अवश्य प्रकाशित करूँगा।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
नरसिंहरावनी रोजनिशी

१ मसविदेके साथ गांधीजीकी उक्त टिप्पणी भी थी।

२ श्री नरसिंहरावके जिस पत्रका यहाँ उल्लेख है वह १८-५-१९२४ के नवजीवनमें प्रकाशित किया गया था। वैशाख सुदी ६, १० मईको थी।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५२७-५३०।

१३. पत्र : महादेव देसाईको

[११ मई, १९२४ के पूर्व][1]

उतावला काठियावाड

आगामी परिषद्

अन्त्यज परिषद्

सत्याग्रह-शिविरमें भ्रष्टता

एक नम्र सेवकसे

वोहरोका डर

ईद मुबारक

जाति सुधार

भाईश्री ५ महादेव,

ऊपर लिखे शीर्षकोंके लेख भेज रहा हूँ। अब कल कुछ भेजनेका विचार नही है। "सत्याग्रह-शिविरमें भ्रष्टता" लेखको वल्लभभाई देख ले। यदि वे इसे पसन्द न करे अथवा यह तुम्हे ठीक न लगे तो मत छापना।[2] यदि यह छापने योग्य न लगे तो भी मामलेकी जाँच पडताल कर लेना। आरोप भयकर है।

स्वामीसे[3] कहना कि मैंने "सत्याग्रहका इतिहास" की नौ गैलियोंका प्रूफ देख लिया था और रविवारको दोपहरकी डाकसे वापस भी भेज दिया था। ये गैलियाँ तुमको सोमवारको मिल जानी थी। जो मनुष्य डाक लेकर गया था उसने गफलत की हो तो नही कह सकता। यदि न मिली हो तो तार देना। यदि मिल गई हो और लिफाफा रख छोडा हो तो उसपर लगी डाकखानेकी मुहरकी तारीख ध्यानसे देख लेना।

वह अनाविल गाय[4] बच गई या कसाईको सौंप दी गई?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

स्वामीसे कहना कि जिस प्रकार मैं उसके बारेमें फिक्र नही करता उसी तरह मेरे बारेमे वह चिन्ता न किया करे। मुझे जितनी सहायता या सुविधाकी आवश्यकता होगी, माँग लूँगा। थोडी-बहुत बकझक तो जरूर करूँगा। आदमी जैसे-जैसे बूढा होता है, अधिकाधिक बकझक करने लगता है।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७९७) की फोटो-नकलसे।

१. इस पत्रके साथ भेजे गये सातों लेख ११-५-१९२४के **नवजीवन**में प्रकाशित हुए थे।

२. यह लेख प्रकाशित नही किया गया था।

३. स्वामी आनन्द।

४. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५६०।

१४. उतावला काठियावाड़

अनेक मित्रोका कहना है कि काठियावाड राजनीतिक परिषद्के[1] सम्बन्धमे मेरे द्वारा व्यक्त विचारोसे कुछ क्षोभ उत्पन्न हुआ है। जबसे मैने इन तीनो पत्रोका[2] सम्पादन हाथमे लिया है तबसे मेरा अखबार पढना प्राय बन्द ही हो गया है। परन्तु मित्रगण तो मेरी चिन्ता रखते ही है। वे उन बातोकी ओर मेरा ध्यान दिलाते रहते है जिन्हे जानना मेरे लिए जरूरी है।

मैने लोगोको यह कहते हुए भी सुना है "यह गाधी — अपनी इच्छासे निर्वासित गाधी — श्री पट्टणीके[3] चक्करमे आ गया है और उसने काठियावाडकी जागृति-का सत्यानाश कर दिया है। यदि पट्टणीजी, जो दाँव-पेचके बलपर ही इस ओहदे तक पहुँचे है, भगियो और जुलाहोमे विचरनेवाले लँगोटीधारीको एक दाँवमे चित्त कर दे तो इसमे आश्चर्य क्या है?" जिस प्रकार मैने इसी अकमे दूसरी जगह अब्बास साहबके पत्रका भावार्थ दिया है उसी प्रकार यह भी लोगोके कथनका भावार्थ ही है। ठीक यही शब्द किसीने नही कहे। परन्तु पाठक इस बातपर विश्वास रखे कि जो शब्द कहे गये है, ऊपर उन्हीका भावार्थ दिया है। बम्बईमे रहनेवाले काठियावाडी कहते है, "गाधीने तो गुड-गोबर कर दिया है।"

परन्तु सच बात यह है। पट्टणीजीमे लोग जितने समझते है उतने दाँव-पेच नही है। सत्याग्रहीको दॉव-पेचमे फँसानेके लिए पट्टणीजी-जैसे कुशल काठियावाडीको भी दूसरी बार जन्म लेना पडेगा, और वह भी सत्याग्रही होकर। सत्याग्रहीके शब्द-कोषमे हार अथवा इससे मिलता-जुलता कोई शब्द नही होता। ऐसा कहा जा सकता है कि एक सत्याग्रही दूसरे सत्याग्रहीको हरा सकता है, किन्तु ऐसा प्रयोग करना तो 'हार' शब्दके अर्थका अनर्थ करना ही माना जा सकता है। जब सत्याग्रही अपनी भूल देखता है तब झुकता है और झुककर भी ऊँचा उठता है। यह उसकी हार नही कही जा सकती।

मेरी दृढ मान्यता है कि मेरे सामने पट्टणीजीने इस निर्णयतक पहुँचनेमे जो-कुछ भी किया है वह सभी उनके और काठियावाडके लिए शोभनीय है। पट्टणीजीको दॉव-पेचसे काम लेनेकी जरूरत ही नही थी। मैने जिन कारणोसे उक्त विचार व्यक्त किये थे, वे सभी कारण मै पेश कर चुका हूँ। उनके अतिरिक्त कोई अन्य कारण मुझे याद नही आता।

यदि मै किसीके प्रभाव अथवा प्रेमके वशमे आकर सत्यपथ छोड दूं तो मै जानता हूँ कि मै किसी कामका नही रहूँगा। मुझे आत्महत्या प्रिय नही है, अत मै एकाएक सत्यपथ छोडनेकी मूर्खता नही कर सकता।

१ भावनगरमें जनवरी १९२५ में आयोजित।

२ **नवजीवन** (गुजराती), **यग इडिया** और **हिन्दी नवजीवन**।

३ प्रभाशकर पट्टणी (१८६२-१९३५)।

सत्याग्रहका हेतु पूर्णत' शुद्ध होना चाहिए। जब पोरबन्दरमे भावनगर परिषद् करनेकी सिफारिश की गई तब थोडी-बहुत अविनय तो अवश्य हो गई। जो कुछ हुआ है उसके सम्बन्धमें मैंने बहुत ही नरम शब्द "अविनय" का प्रयोग किया है। सत्याग्रहका यह अनिवार्य नियम ही है कि सत्याग्रही का "केस" दूधकी तरह निर्मल होना चाहिए। जिस प्रकार थोडा भी दूषित हो जानेपर दूध अग्राह्य हो जाता है उसी प्रकार किंचित् दोपमय सत्याग्रह भी त्याज्य है। इस कारण कठोर विशेपणका प्रयोग जरूरी ही नही था।

दूसरा कारण भी इतना ही सबल है। मुझे यह मालूम ही न था कि कार्यकर्त्ता [सत्ताकी कुछ] शर्तें कबूल करके परिपद् करना चाहते हैं। मै यह कितनी ही बार कह चुका हूँ कि मै ऐसे कामोमे शर्तें कबूल करनेके खिलाफ हूँ। एकाध बार परिस्थितिवश शर्तें कबूल करना आवश्यक हो जाये तो अलग बात है। परन्तु जहाँ एक बार शर्तें कबूल करनेकी नीति मान ली गई वहाँ वह बात सत्याग्रहका विषय नहीं रहती। यदि शर्तो-पर परिपद् बुलाना कबूल करे तो फिर सोनगढमे परिषद् करनेकी बात क्यो न माने। शर्त कबूल करनेमे हेतु यह था कि अभी जन-जीवन दूसरी तरहसे जाग्रत नही हो सकता। यह हेतु निरर्थक या दोषयुक्त नही है। दूसरी जगह परिपद् करनेमें भी हेतु तो यही होता। यह कोई नियम नही है कि सत्याग्रह करे तो परिषद् होनी ही चाहिए। सत्या-ग्रही तो मरते दमतक लडता है। सत्याग्रहमें यह विचार गृहीत है कि सत्याग्रहीके लडते-लडते मर जानेमे उसकी विजय ही है। यदि सत्याग्रही सत्याग्रह करते हुए जेल भेज दिया जाता है तो समझिए कि उसने अपना काम पूरा कर लिया। परन्तु उन्हे लगा कि परिषद् तो नही हुई और इस समय हेतु यही था कि चाहे जैसे हो परिपद् तो की ही जानी चाहिए। परिषद् अपनी शर्तोपर बुलाई जा सके तो ठीक, अन्यथा नही। सत्याग्रहकी भावना तो यही है। येन केन प्रकारेण परिषद् करना सत्याग्रहकी भावना नही हो सकती। लोग सरकारके मनका स्वराज्य पानेके लिए सत्याग्रहकी तैयारी नही कर रहे है। वे तो अपने मनका स्वराज्य लेनेके लिए प्रचड शक्तिका सचय कर रहे है। बिना शर्त परिषद् करनेका निश्चय कर लेनेपर ही काठियावाड़के सम्मुख सत्याग्रह करनेका कर्त्तव्य उपस्थित होगा। शर्तके साथ परिषद् करना सत्याग्रहियोका कर्त्तव्य नही है। यह तो पैसेके बदले कौडी लेनेके समान हुआ।

इसका अर्थ यह नही है कि शर्त न हो तो सत्याग्रहीको गालियाँ देनेका इजारा ही मिल गया। वह सत्याग्रही क्या जो नम्रता और विनयको छोड दे। वह खुद अपनी मर्यादाको जानता है अत वह दूसरोकी मर्यादाको माननेसे इनकार नही करता। किन्तु वह खुद अपनी मर्यादा आँकनेमे बडी सख्तीसे काम लेता है।

यदि परिपद्का काम इस साल शुद्ध विनयके साथ सम्पन्न हो और विरोधियोको भी 'वाह-वाह' करनी पडे, फिर भी यदि अगले वर्ष शर्तोके रूपमे अथवा दूसरे रूपमे विघ्न आये तो सत्याग्रहियोका "केस" इतना शुद्ध और मजबूत हो जाता है कि उसके खिलाफ कोई कुछ कह नही सकता। यदि उस समय कोई सत्याग्रह करना चाहेगा तो उसे रण-भूमि तैयार मिलेगी।

परन्तु "आजका सारा जोश ठडा पड गया तो फिर सत्याग्रही कहाँसे आयेगे?" ऐसा कहनेवाले भले और भोले काठियावाडी आज भी दिखाई देते है। उन्हे जानना चाहिए कि सत्याग्रह भागका नशा नही है। सत्यागह मनकी तरग नही है। सत्याग्रह तो अन्तर्नाद है। वह समय बीतनेसे मन्द नही पडता, बल्कि तीव्र होता है। जो दब सके सो अन्तर्नाद नही, उसका आभास-मात्र है। उसको मृगजलकी तरह समझना चाहिए। सत्याग्रही उसीको कह सकते है जो अगले साल भी कटिबद्ध मिले। काठियावाडकी भूमिमें तो राजपूत और काठी लोग जन्मभर खेतोके लिए लडे है। वरडाके वाघ, रमूलु[1] माणिक[2] और जोधा माणिकने सारी एजेन्सीको[3] कँपा दिया था। उनका जोश एक क्षणमे उमडता और एक क्षणमें ठण्डा नही होता था। मोर[4]-जैसा डाकू बरसोतक अकेला लडा। किन्तु ये सब तुच्छ स्वार्थके लिए लडे थे। फिर काठियावाडकी सारी प्रजाके कष्टोका भार उठानेवाले सत्याग्रहियोके शान्त और निर्मल आग्रहका माप कितना अधिक होना चाहिए, इसका उत्तर आक्षेपकर्त्ताओंको त्रैराशिक गणित लगाकर वे खुद ही दे।

परन्तु यह भी कहा जा रहा है, "पट्टणीजीका हुक्म तो देखिए, उन्होने जरा-सी कलम हिलाकर अपने मनमाने कानूनमें दस-बीस नये जुर्म जोड दिये है। और फिर इन कृत्रिम अपराधोके लिए छ-छ महीनेकी सजाएँ। इस प्रकार 'जादूके आम'-जैसे कानून तो सरकार भी न बना पाती। ऐसा घोर जुल्म होते हुए भी सत्याग्रह न करना और सोनगढमें परिषद् करना कहांका न्याय है?" इस कथनमें जो दोष है सो भी स्पष्ट है। यदि हमें इस कानूनके खिलाफ सत्यागह करना हो तो यह कानून अवश्य सत्याग्रह करनेके लायक है। परन्तु हम तो परिषद्के सम्बन्धमें सत्याग्रह करनेकी बात कर रहे है। यदि परिषद् करनेके अपराधमें फांसीका हुक्म भी दिया जाये तो सत्याग्रही उससे तनिक भी भयभीत होनेवाला नही है। ऐसा हुक्म निकालनेवाला अवश्य लज्जित होगा। यदि पूर्वोक्त हुक्म देनेपर पट्टणीजीकी निन्दा करनेके लिए कोई सस्था बनाई जाये और यदि केवल सत्याग्रहके अनुकूल गालियाँ देनेका नियम रखा जाये तो उसमे अपना नाम मैं भी लिखाऊँगा। मैं यह जरूर मानता हूँ कि यह हुक्म बेहूदा है। यदि भावनगरके फौजदारी कानूनमें परिषद् करना जुर्म न हो तो उन्हे उचित था कि वे अपनी नौकरी गँवाकर भी परिषद् होने देते। परन्तु ऐसे मनमाने कानून बनाना अकेले पट्टणीजीकी ही खासियत नही है। यह चीज तो काठियावाडके वातावरणमे ही मौजूद है। हम यह चाहते हैं कि पट्टणीजी इस वातावरणसे ऊँचे उठे। परन्तु हम इस समय पट्टणीजीकी नीतिके चौकीदार नही हैं। जब काठियावाडकी ऊँची भूमिपर शुद्ध सत्याग्रहियोकी फसल लहलहायेगी तब पट्टणीजी-जैसे लोगोके आसपासका अत्याचारमय वातावरण गायब हो जायेगा। यदि उस समय वे भी सत्याग्रही हो जाये तो मुझे आश्चर्य नही होगा।

यदि पट्टणीजी तथा खुद राजा लोग हीनतापूर्ण वातावरणमे न रहते हो तो वे पूर्वोक्त प्रकारका हुक्म ही न दे सके। परिषदे करना प्रजाका हक होना ही चाहिए।

१ व २ प्रसिद्ध बागी सरदार, इन्होंने ब्रिटिश राज्यकी स्थापनाका विरोध किया था।

३ पश्चिम भारत रियासती एजेन्सी, राजकोट।

४ मोवर, देखिए "पत्र महादेव देसाईको", १२-५-१९२४।

उसके बिना राजाको जनताकी रायका अन्दाज नही लग सकता। प्रजाको राजाकी नुक्ताचीनी करने और उसे खरी-खोटी सुनानेका हक है और राजाको ऐसा करनेवालो-को दण्ड देनेका हक हे। रामचन्द्र-जैसा राजा हो तो अपनेको गालियाँ देनेवालेको कभी दण्ड न दे। उन्होने तुच्छ धोबीतक को दण्ड नही दिया। उलटे उन्होने सीता-जैसे अमूल्य स्त्री-रत्नको तत्काल त्याग देनेमे तनिक भी आगा-पीछा नही किया। और ऐसे सकोच-हीन रामको आज मुझ-जैसे असख्य हिन्दू पूजते है। प्रजाकी स्तुतिसे राजाओका पतन हुआ है। यदि वे प्रजाकी गालियाँ सुनने लगें तो उनकी उन्नति अवश्य हो।

गालियाँ देनेका हक पाकर भी गालियाँ न देना सत्याग्रहीका धर्म है। मै चाहता हूँ कि सोनगढमे इस धर्मका पालन पूरी-पूरी तरह किया जाये।

परिषद्मे काठियावाडी क्या-क्या कर सकते है, हम इस सम्बन्धमे अगले सप्ताह विचार करेगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-५-१९२४

१५. आगामी परिषद्

बोरसदमे होनेवाली (गुजरात प्रान्तीय) परिषद्[1] बहुत महत्त्वपूर्ण है। १९२० ईसवीमे गुजरातकी प्रान्तीय परिषद्ने काग्रेसका काम आसान कर दिया था।[2] वैसा ही अवसर गुजरातको फिर प्राप्त हुआ है।

ऐसे सुअवसरपर मै उपस्थित न हो सकूँगा, यह मेरे लिए दुःखकी बात है। मुझे आशा थी कि मै खुद जाकर बोरसदके लोगोको उनकी महान् विजयपर[3] बधाई दूंगा। परन्तु सब भाई-बहन मेरी शारीरिक स्थितिका विचार करके मुझे क्षमा कर ही देगे, ऐसा भरोसा है। मै इस मासके अन्ततक आश्रम पहुँच जाना चाहता हूँ।[4] परन्तु मेरी समझमे दौरेपर निकलने लायक ताकत आनेमे अभी वक्त लगेगा। फिलहाल मेरा शरीर ऐसा नही है कि वह यात्राओ, जुलूसो और शोरगुलको बरदाश्त कर सके। मुझे अपना आश्रम पहुँच जाना आवश्यक मालूम होता है। फिर भी कोई यह न समझे कि मै गुजरातमे आ गया हूँ। फिलहाल तो मै अहमदाबादमे भी कही आ-जा न सकूँगा। जिस प्रकार मै जुहूमे हवा-परिवर्तनकी दृष्टिसे रुका हुआ हूँ और

१. १३ मईको काका कालेलकरकी अध्यक्षतामें होनेवाली सातवीं गुजरात राजनीतिक परिषद्।

२. चौथी गुजरात राजनीतिक परिषद्ने अगस्त, १९२० में अहमदाबादमें असहयोगका प्रस्ताव स्वीकार किया था, यद्यपि विरोधी पक्षका कहना था कि मुख्य संस्था, काग्रेससे आगे बढकर प्रान्तीय परिषद् ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत नही कर सकती। काग्रेसने असहयोगका प्रस्ताव सितम्बर, १९२० में कलकत्ता अधिवेशनमें स्वीकृत किया था।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४०७-४०९ ।

४. गाधीजी २९ मई, १९२४को साबरमती आश्रम पहुँच गये थे।

कहीं जाता-आता नहीं हूँ, उसी प्रकार मैं आश्रममे भी, बना तो तीन मास, अर्थात् अगस्तके अन्ततक चुप पडा रहना चाहता हूँ।

अब्बास साहब दिनपर-दिन जवान ही होते जा रहे हैं। उनका उत्साह बढता जाता है। वल्लभभाईकी ओर गुजरातकी नाक कटवा देना उन्हे सहन नही है। उनके पास काम-कुशल चेले हैं। उन्हे उनके ऊपर अभिमान है और मुझे तो हुक्म ही दे रहे हैं—"आप अभी गुजरातमे न आयें। आपकी झोली बहुत बडी है। हमारे लिए उसे पूरा भर देना लाजिमी है। यदि आप यह गरूर रखते हो कि आप ही रुपये जुटा सकते हैं तो हम उसे चूर कर देंगे। दूसरे लोग भले ही यह मानते रहे कि आपके बिना काम न चलेगा, अकेले आप ही सत्याग्रहका सचालन कर सकते हैं और छोटी-बडी सब बातामें आपकी सलाह लेना जरूरी है, परन्तु हम गुजराती ऐसा नही मानते। हमने आपके बिना भी आपसे अच्छा सत्याग्रह करके दिखा दिया है। खुद आप ही यह बात कबूल करते हैं। आपके बिना हम रुपया एकत्र कर सकते हैं, चरखेका प्रचार कर सकते है, यह बात भी आपको कबूल करनी होगी।" पाठक यह न समझें कि हूबहू ये ही शब्द उनके पत्रमें हैं। उनका पत्र तो है अग्रेजीमें। वे खुद गुजराती होनेकी डींगें तो खूब हांकते हैं, परन्तु गुजराती मुझसे भी खराब लिखते हैं—इतना मैं भी कह सकता हूँ। परन्तु अब्बास साहब ठहरे दुधारू गाय। अत उनकी गुजरातीकी टीका-टिप्पणी कौन कर सकता है? और जो अग्रेजीमे लिखता है उसकी गुजरातीकी टीका-टिप्पणी किस तरह की जा सकती है? मैंने उनके अग्रेजी पत्रका भावार्थ पाठकोंके सम्मुख रखा है। यदि यह भावार्थ सही न हो तो जो भावार्थ वे स्वय भेजेंगे उसे मैं 'नवजीवन'मे प्रकाशित करके उनसे माफी मांगनेके लिए तैयार हूँ।

परन्तु इतनी बात तो तय है कि यदि अपनी तन्दुरुस्तीके खयालसे नही तो अब्बास साहबकी प्रतिष्ठाकी खातिर, जबतक झोली पूरी न भर जाये, तबतक मुझे आश्रममें ही चुपचाप पडे रहना पडेगा और तबतक तमाम गुजरातियोको यह मानना होगा कि मैं अभी गुजरात आया ही नहीं हूँ। बोरसदके लोगोको तो मेरी जरूरत हो नही सकती। यदि मैं वहां जा सका तो वह अपने स्वार्थके लिए ही होगा। अब हमारी परिषदें बिल्कुल असली होनी चाहिए। जहाँ कामसे काम हो वहाँ जलसो आदिकी गुजाइश नही होती। हर परिषद्में बडे-बडे लोगोको एकत्र करनेका जमाना गया। इससे उनका वक्त जाता है, फिजूल रेल किराया लगता है और स्थानीय लोगो-का ध्यान कामकाजसे खिचकर स्वागत-सत्कारकी ओर जाता है, तमाशबीनोका भब्बड होता है सो अलग। किसी समय यह सोचना ठीक था कि बडे-बडे लोगोके आनेसे ऐसे लोग भी आकर हमारे काममे दिलचस्पी लेगे जो अबतक नही आते हैं, परन्तु आज वह बात नही रही। हमे जनताके उस भागका ध्यान उसकी सेवा करके खीचना चाहिए। बोरसदके सत्याग्रहने जितने लोगोको आकर्षित किया है उतने लोगोको तो सारे हिन्दुस्तानके तमाम नेता आते तो भी आकर्षित न कर पाते।

असल बात यह है कि जितनोको हम खीच पाये हैं उनकी सेवा भी हम पूरी-पूरी नही कर पाये। वे खुद अभी कार्यकर्त्ता नही बन पाये हैं। वे जब स्वय

काग्रेसके शान्ति और सत्यके रास्तेपर चलने लगेगे और असहयोगका पाठ पूरी तरह समझ पायेगे तभी उनकी हवा औरोको भी लगेगी।

हमे सख्या-बलकी जरूरत थी। सो हमारे पास है। अब हमे गुण-बलकी जरूरत है। अब हमें जाँचना है कि इनमे से खरे सिक्के कितने हैं। इसकी परीक्षा हम केवल कार्य कर-कराके ही कर सकेगे।

हमने बारडोलीमे कोई शिकस्त नही खाई है। एक जगह[1] कमजोरी देखकर समझसे काम लिया है और सच्चे सैनिकोकी तरह उस कमजोरीको दूर करनेके लिए रुक-भर गये है। परन्तु हमें जो काम बारडोलीमे करना था वह आज भी करना बाकी है। लेकिन बारडोलीके समय पास होनेके लिए जितने नम्बर काफी थे उतने आज काफी नही। आज तो ज्यादा नम्बरोकी दरकार है, क्योकि हमे तैयारीका समय ज्यादा मिला है, आज हमारा काम अधिक मुश्किल है और हमारे सम्मुख अकल्पित विघ्न आकर खडे हो गये है। हममे दलबन्दी हो गई है। हिन्दू और मुसलमानोकी मित्रता शिथिल हो गई है। अत अब हमे अधिक बलकी आवश्यकता है।

हमें बोरसदकी परिषद्में इस प्रश्नका जवाब देना है। इस विषयपर प्रस्ताव स्वीकार किया जाये या नही, यह वल्लभभाई जानें। सूत्रधार वे ही है। मै तो दूर बैठकर नुक्ताचीनी करनेवाला हूँ। मै सिर्फ इतना ही जानता हूँ और सुझाता हूँ कि यह काम आगे-पीछे करना जरूर होगा।

हाँ, स्वराज्य लेनेके लिए एक शर्तपर सविनय अवज्ञा जरूरी नही होगी। यदि हिन्दुस्तानका ज्यादातर भाग रचनात्मक कार्यक्रमके तमाम अगोको पूरी तरह विकसित कर सके तो इसकी जरूरत नही पडेगी। सत्याग्रह एक प्रकारका डमा[2] है। वह सोये हुएको जाग्रत करता है और निर्बलको बल देता है। यदि थोडे भी लोग कुरबानीके लिए तैयार हो और दूसरे लोग उनके उद्देश्यको समझते हो और पसन्द करते हो — भले ही वे स्वय कुरबानीके लिए तैयार न हो — तो भी सत्याग्रही यज्ञकी अग्निको प्रज्वलित करता है और उसमे अपनी आहुति देता है।

मेरी यह धारणा भी है कि यदि सारा गुजरात ही इस दृष्टिसे सर्वांग सम्पूर्ण हो जाये तो भी सविनय अवज्ञाकी जरूरत न होगी। सर्वाग सम्पूर्ण होनेका अर्थ है सविनय अवज्ञाकी पूरी योग्यता प्राप्त करना। ऐसी योग्यता रखनेवाले लोगोका मुकाबला करनेकी इच्छा कोई नही कर सकता, बोरसदने हमे यह भी दिखा दिया है। बोरसदकी अपने कार्यके लिए आवश्यक तैयारी इतनी पूर्णताको पहुँच गई थी कि सरकारको मुकाबला करनेकी जरूरत ही नही मालूम हुई। फिर सत्याग्रहमे तो हृदय-परिवर्तनकी बात है। विरोधीको जहाँ यह विश्वास हुआ कि हमारे साधन सच्चे है वहाँ वह अपना बल आजमानेकी इच्छा ही नही करता। अभी सरकारको हमारे सत्य या हमारी शान्तिके विषयमे सन्देह है, यही नही, बल्कि उसपर उसका विश्वास ही नही बैठता। यदि अग्रेज आज नि शस्त्र हो जाये तो क्या वे हमारे बीच सुरक्षित

१. यह कदाचित् चौरीचौराकी घटनाकी ओर सकेत है।

२. रोग दूर करनेके लिए दागनेका उपाय।

रह सकते हैं? अभयदान सत्याग्रहीकी प्रथम परीक्षा है। इसमें हममें से कितने लोग पास हो सकते हैं? अतएव हमें दो वर्ष पहलेकी स्थितिसे आगे नही बढना चाहिए और गुजरातके एक ही ताल्लुके या जिलेको तैयार करनेपर अधिक जोर देना चाहिए। मैं मानता हूँ कि ऐसा ताल्लुका फिलहाल तो बोरसद भी नही है। बारडोली होना चाहिए। परन्तु वह कहाँ है? हम बोरसदके स्थानिक सत्याग्रहके लिए जिस कम तैयारीने काम चला सके, उसके बलपर हम स्वराज्यका बीडा नही उठा सकते।

मैं ऐसी तैयारीकी शर्तें यहाँ दे रहा हूँ

१ तैयार ताल्लुकेका लगभग हरएक स्त्री-पुरुष ताल्लुकेमे ही कती-बुनी खादी पहनता हो।
२ शराब और अफीमका त्याग इस हदतक हो कि वहाँ इन चीजोकी एक भी दुकान न हो।
३ वहाँ हिन्दुओ और मुसलमानोमे पूरी दिली मुहब्बत हो।
४ वहाँ अन्त्यज लोग अछूत न माने जाते हो, इतना ही नही, बल्कि उनके बालकोको राष्ट्रीय पाठशालाओमे शिक्षा पाने और आम कुओसे पानी भरने तथा मन्दिरोमे दर्शन करनेकी पूरी स्वतन्त्रता हो।
५ वहाँ जगह-जगह राष्ट्रीय पाठशालाएँ हो।
६ वहाँ अदालतोमे शायद ही कोई मामला जाता हो और आपसी लडाई-झगडोके फैसले पचोकी मार्फत ही किये जाते हो।

सच पूछें तो ऐसी तैयारी करनेके लिए बोरसदको तैयार होना चाहिए और यदि वह तैयार न हो तो उसे तैयार होनेका निश्चय करना चाहिए।

आनन्द ताल्लुकेके लोगोने तो बारडोलीके समय अर्थात् १९२१ मे ऐसी तैयारी कर लेनेका प्रस्ताव किया था। किन्तु वह आनद शायद आज तैयार नही है, परन्तु क्या वह इसकी तैयारी करनेके लिए भी तैयार है? मैं आशा करता हूँ कि बोरसदमे विलायती या देशी मिलोके कपडेका एक टुकडा भी नजर नही आयेगा। यदि आये भी तो सिर्फ सरकारी नौकरो आदिके शरीरोपर। मैंने सुना था कि मण्डप बनानेके सम्बन्धमे कुछ कठिनाई हो रही है। यह भी सुना था कि खादीके मण्डपमे खर्च बहुत आनेके कारण मिलके कपडेसे मण्डप बनानेकी बात उठी थी। "महँगी होनेपर भी खादी सस्ती है और दूसरा कपडा मुफ्त मिलनेपर भी महँगा है" यह पाठ हम जबतक न पढ लेंगे तबतक हम पूर्णत खादीमय नही हो सकते। यदि हमें हिन्दुस्तानके गरीबोसे अपना तादात्म्य करना हो तो खादी महँगी है या सस्ती, महीन है या मोटी, यह सवाल हमारे मनमे उठना ही नही चाहिए। यदि पडता न बैठे तो हम नगे रहनेके लिए तैयार रहे, परन्तु दूसरा कपडा देहसे हरगिज न छुआये। इसी प्रकार यदि खर्चके लिए रकम न हो तो हम बिना मण्डपके ही काम चला ले। हमारा मण्डप तो तारे रूपी रत्नोसे जटित आकाश है। जहाँ समयपर मेह बरसता हो वहाँ मण्डपकी बहुत जरूरत नही रहती। हम वहाँ बाँसोकी चौहदी बनाकर अपना काम चला ले। जो कला-रसिक हो वे इसमे अपना कला-कौशल भी दिखा सकते हैं। सभाए सुबह-शाम

की जाये। दिनमे दूसरे काम करने हो तो वे भी किये जा सकते है। हजारो लोगोके लायक विशाल मण्डप बनानेके लायक रुपया हमारे पास आये भी कहाँसे!

बोरसदमे पण्डित मोतीलालजी और अन्य महान् नेताओके आनेकी सम्भावना है। उनके और हमारे बीच शायद मतभेद हो। भले ही हमारे एक बडे भागको कौसिल-प्रवेश पसन्द न हो; परन्तु ऐसी हालतमे हमे कौसिल-प्रवेशके हिमायतीका अधिक आदर करना चाहिए। जिससे मतभेद हो उसका तिरस्कार सत्याग्रही कभी नही करता। यदि वह उसे जीतना चाहता है तो बुद्धि और प्रेमके बलपर जीतता है। बुद्धि धैर्य धारण किये रहे और प्रेम प्रतिष्ठाका ध्यान रखे। जहाँ मतभेद हो वहाँ हृदय भी अलग हो जाये तो स्वराज्यकी गाडी चल नही सकती। जो स्थिति प० मोतीलालजी-जैसे मेहमानोकी है वही गुजरातके स्वराज्यवादियोकी है। हमारा आचरण ऐसा नही होना चाहिए जिससे उन्हे कोई ठेस पहुँचे। विट्ठलभाई[1] कौसिलमे गये और दूसरे गुजराती भी गये, इस कारण वे हमारे लिए कम आदरणीय नही हो जाते। हम करे तो वही जो हम ठीक समझते हो, परन्तु आदर हम सबका करे। सत्याग्रहीका शत्रु कैसा? सुना तो यह है कि कौसिल-प्रवेशकी बातने गुजरातमे भी एक दूसरेके प्रति मनमुटाव पैदा कर दिया है। कोई कहता है कि इसमे स्वराज्यवादियोका दोष है और कोई कहता है कि असहयोगियोका। यदि यह कहावत सच हो कि ताली दोनो हाथोसे बजती है तो थोडा-बहुत दोष दोनोका ही होना चाहिए। कुछ असहयोगियोका कथन है कि स्वराज्यवादियोने असहयोगको ढीला बना दिया है। जो असहयोगी ऐसा कहता है उसपर इस बातका दायित्व है कि वह स्वराज्यवादियोके प्रति मिठास अर्थात् विनय कायम रखे। फिर यह तो स्पष्ट ही है कि असहयोगियोकी सख्या अधिक है और विनय कायम रखनेका भार हमेशा बहु-सख्यक पक्षपर होता है। मै आशा रखता हूँ कि बोरसदकी परिषद् विनयका पदार्थपाठ पढायेगी।

विनय कायम रखना एक बात है और विनय अथवा एकताके नामपर अपने विचारका त्याग करना दूसरी बात है। देशके सामने इस समय महत्वपूर्ण प्रश्न है, कौसिल-प्रवेशका। उसका फैसला जो-कुछ होना होगा, होगा। सेवकोका तो यही काम है कि वे श्रद्धासे एकाग्र होकर अपना काम करते चले जाये। फसल तो जैसी चाहिए वैसी है, परन्तु वह काटनेवालोके अभावमे खडी ही है। जरूरत है

१　बुनाई-शास्त्रमे प्रवीण प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओ और कार्यकर्त्रियोकी,
२　उद्यमी, निर्मल और जिज्ञासु शिक्षकोकी; और
३　खास तौरपर अन्त्यजोकी सेवा करनेवाले कार्यकर्त्ताओकी।

इस किस्मके लोगोकी कमी सारे देशमे है। यह कमी गुजरातमे भी है। उसकी पूर्ति किस तरह हो? इसका एक ही रास्ता है। हममे अपने कार्यके प्रति श्रद्धा और सेवा करनेकी शक्ति होनी चाहिए। स्वतन्त्रताका अर्थ यह नही है कि सब अधिकारी बन जाये। स्वतन्त्र तन्त्रमे सेवक, स्वार्थ साधनेके लिए नही, कर्तव्य समझकर सेवा करते है। परतन्त्रतामे सेवक पेट भरनेके लिए नौकरी करता है। स्वतन्त्रतामें तन्त्रकी

१. पटेल।

सेवा करना धर्म है और उसमे इज्जत है। परतन्त्रतामे जो नौकरी की जाती है वह अधर्म है और उसमे वेइज्जती है। जहाँ सव अधिकारी वनना चाहते हो और कोई किसीकी वात माननेके लिए तैयार न हो वहाँ स्वच्छन्दताका जो तन्त्र वन जाता है वह प्राणपोषक नही, प्राणघातक होता है। यदि वोरसदकी परिषद् गुजरातके लिए शुद्ध सेवकोका दल मुहैया कर सके तो कहना चाहिए कि वहुत वडा काम हो गया।

परिषद्‌के सभापति कालेलकर[1] हैं। अन्त्यज परिषद्‌के सभापति मामा फडके[2] हैं। दोनो जन्मत दक्षिणी हैं और स्वेच्छासे गुजराती वने हैं। इससे मेरी दृष्टिमे वे और भी अधिक दक्षिणी तथा और भी अधिक गुजराती हो गये हैं। महाराष्ट्रमे जो वाते अच्छी है उन्हे वे गुजरातको दे रहे हैं और गुजरातमे जो अच्छाई है उसे वे अन्तर्ग्रहण कर रहे हैं। महाराष्ट्र और गुजरात इत्यादि हिन्दुस्तानके अग हैं और एक-दूसरेके पोषक हैं। पोषक होनेपर ही वे एक शरीरके अग वन सकते हैं। अत आशा है कि काका साहव और मामा साहवको गुजरात अच्छी तरह पहचानेगा और अपनायेगा। गुजरातको यह खयाल न करना चाहिए कि पराये तो आखिर पराये ही होते हैं। ऐसे विचारकी उत्पत्ति द्वेषके कारण होती है। हमे तो उलटे यह चाह रखनी चाहिए कि यदि महाराष्ट्र ऐसा कर सके तो अभी और कार्यकर्त्ताओको हमारे यहाँ भेजे। सेवकके लिए तो सभी जगह क्षेत्र खुला पडा है। अपने पदका विचार तो नेताओको ही करना पडता है। काका और मामा बिलकुल सेवा-परायण होकर गुजरातमें रह रहे हैं। गुजरातने उन दोनोका अपूर्व सम्मान करके इसकी प्रतीति प्रकट की है और उनका सम्मान करके स्वय अपना गौरव वढाया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-५-१९२४

१६. टिप्पणियाँ

वोहरोका डर

एक वोहरा सज्जन लिखते हैं।[3]

मैंने इस पत्रमे से ऐसी कितनी ही वाते निकाल दी हैं जो जुल्मोको सावित करनेके लिए लिखी गई थी। भूतकालके झगडोको ताजा करनेसे किसीका लाभ नही। इन वोहरा वन्धुने जो प्रश्न उठाया है वह गम्भीर है, उसका हल उसे 'नवजीवन'मे छाप देने या उसपर टीका-टिप्पणी कर देनेसे नही होता। हिन्दू-मुसलमान और ईसाई आदिके साथ 'वोहरा' जोड दिया जाये तो भी उससे सन्तोष होनेवाला नही है। एक अरसा हो गया, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी चर्चासे वातावरण गूँज रहा है, परन्तु

१ दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर।
२ विठ्ठल लक्ष्मण फडके।
३ पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

वह है कहाँ? यह ऐक्य व्याख्यानोसे सम्पन्न होनेवाला नही है। मेरी कमजोर कलम और जबान भी क्या कर सकती है? हर कौमको यह समझ लेना चाहिए कि ऐक्यमे ही हरेकका हित है, हरेकके धर्मकी रक्षा है, और उन्हे आपसमें शुद्ध प्रेम रखना चाहिए। उनमे धर्मान्धताकी जगह सहनशीलता आनी चाहिए और उन्हे सबसे बडी बात तो यह सीखनी चाहिए कि धर्मको निमित्त बनाकर या धर्मके नामपर एक दल दूसरे दलपर बलात्कार नही कर सकता। यदि हिन्दू और मुसलमान इतनी बातका भी पालन करे तो दूसरी कौमे अपने-आप निर्भय हो जाती है। बोहरोका नाम अलग लेनेकी जरूरत तो कतई नही होनी चाहिए। वे भी मुसलमान हैं। यदि मुसलमान हिन्दुओसे लाठियाँ लेकर लडना भूल जाये तो वे आपसमे लडना भी भूल जायेंगे। इसका अर्थ यह है कि यदि हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच सच्ची यानी दिली सफाई हो जायेगी तो एक ही धर्मके जुदे-जुदे फिरकोके बीच भी सफाई हो जायेगी। और यदि उसमे सफलता न मिली और हर मौकेपर एकको दूसरेसे लडनेकी ही नौबत आती रही तो फिर हमे सदाके लिए गुलामी पसन्द करनी पडेगी। तब "सरकार बहादुर चिरजीव रहे और हमें एक-दूसरेके गलेपर छुरी फेरनेसे रोकती रहे", सभी हिन्दुओ और मुसलमानोका यह नया कलमा और नया धर्म होगा। देखना है कि हिन्दुओ और मुसलमानो — दोनोमे से किसी एकमे भी अक्ल है या नही। आजकी हालत अधिक दिनोतक नही टिक सकती; यह एक लाभ है। दोनो जातियाँ चार-छ महीनेमे जो निश्चय करेगी उससे प्रकट होगा कि हिन्दुस्तानके भाग्यमे अगले पचास साल और गुलामी बदी है या थोडे ही समयमें स्वराज्य मिलनेवाला है।

अन्त्यज परिषद्

गोधरा परिषद्के[1] बादसे हम (गुजरातमें) हर साल अन्त्यज परिषद् करते आये हैं। परन्तु इस वर्ष उसका महत्त्व अधिक है। इसका एक कारण तो यह है कि मामा फडके उसके अध्यक्ष हैं, दूसरा यह है कि मैं जेलसे छूटकर आ गया हूँ। मैंने बारडोली और गुजरातमे चाहा था कि अस्पृश्यता तुरन्त ही मिट जाये। परन्तु वह अभीतक मिट नही सकी है। इसमे दैवके सिवा किसको दोष दे? अस्पृश्यताका पाप हिन्दू जातिकी रग-रगमे पैठ गया है। फलस्वरूप हम पापको ही पुण्य मान बैठे है। जिस बातको सारा ससार पाप-रूप मानता है और जिसके कारण हिन्दू जाति आज सारे संसारमें तिरस्कृत है, हमे उसमें कोई दोष दिखाई ही नही देता। पेटलाद[2] (गुजरात) के पास एक दुर्घटना हुई है। उसके सम्बन्धमे एक महाशय लिखते है[3]

ऐसी दुर्घटना आज भी हो सकती है और वह भी पेटलाद स्टेशनपर! यह कोई विरल घटना नही है। ऐसी क्रूरता जहाँ-तहाँ देखनेमे आती ही रहती है। इस

१. सन् १९१८ की पहली परिषद्।

२. गुजरातमें आनन्द-खम्भात लाइनपर एक रेलवे स्टेशन।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है इसमें एक वैश्य यात्री द्वारा किसी अन्त्यज यात्रीके क्रूरताके साथ पीटे जानेका वर्णन था।

जाति-सुधार

जाति-सुधारमे सत्याग्रहका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है इस विषयमे मैने 'नवजीवन'मे जो लेख[1] लिखा है उसे पढकर कुछ 'नवजीवन' प्रेमी चाहते है कि मै 'नवजीवन'मे जाति-सुधारको अधिक पल्लवित करूँ। इधर कुछ दूसरे लोगोको भय है कि अब मेरा राजनैतिक काण्ड खतम हुआ और मै राजनैतिक हलचलको समाज-सुधारका रूप देना चाहता हूँ। मै जाति-सुधारके सवालको 'नवजीवन' मे प्रधानता नही दे सकता। 'नवजीवन'का उद्देश्य है स्वराज्य। 'नवजीवन'का अस्तित्व केवल उसीके लिए है। समाज-सुधार मुझे प्रिय है। परन्तु मेरे पत्र-सम्पादनके वर्तमान कार्यसे उसका कोई भी सम्बन्ध नही है। जाति-सुधारका बहुत-सा काम व्यक्तियोके जीवनसे और उदाहरणसे हो सकता है। परन्तु मै समाज-सुधारको राजनीतिसे भिन्न नही मानता। जिस प्रकार नीति और धर्म राजनीतिमे अवश्य होने चाहिए उसी प्रकार समाज-सुधारके विषयमे भी कहा जा सकता है। जिस समाज-की भीतरी व्यवस्था दूषित है वह स्वराज्य प्राप्त नही कर सकता। अतएव मौका पडनेपर ऐसे सुधारकी चर्चा भी 'नवजीवन'मे की जा सकती है। सच पूछिए तो अस्पृश्यता-निवारण समाज-सुधारका प्रश्न है। परन्तु वह इतना व्यापक और आवश्यक है कि अब हम यह मानने लगे है कि उसका निपटारा किये बिना स्वराज्य मिलना ही असम्भव है। परन्तु जो सुधारक केवल जाति-सुधारके ही प्रश्नका विचार करते है उन्हे 'नवजीवन'की मर्यादा समझनी चाहिए और जिन लोगोको यह डर है कि 'नवजीवन' स्वराज्य आन्दोलनको ताकपर धर देगा, उन्हे मेरे पूर्वोक्त विचारोपर ध्यान देकर भय-मुक्त हो जाना चाहिए।

जाति-भोज

यह शादियोका महीना है। विवाहके सिलसिलेमे जाति-भोज आदिमे बहुत खर्च किया जाता है। जिनके पास रुपया है वे जाति-भोज आदिमे खर्च न करे, यह कहना कुछ ज्यादती होगी। परन्तु ऐसे भोज अनिवार्य मान लिये गये है और इसलिए गरीब लोगोपर उसका बोझ असह्य हो गया है। ऐसे भोज ऐच्छिक होने चाहिए — यही नही, खुद धनी लोगोको मितव्ययी बनकर गरीबोके सामने मिसाल पेश करनी चाहिए। यदि इससे बचा हुआ रुपया शिक्षा-प्रचार अथवा समाज या जातिके हितके अन्य कामोमे लगाया जाये तो इससे जाति तथा सारे देशको लाभ हो। विवाहके समय जाति-भोजकी प्रथा बन्द करना केवल इष्ट है, परन्तु मृत्युके बाद किये जानेवाले जाति-भोजको बन्द करना आवश्यक है। मै तो मृत्युके पश्चात् किये जानेवाले जाति भोजको पापरूप मानता हूँ। मुझे इस भोजमे कुछ भी तत्त्व दिखाई नही देता। भोज आनन्दका प्रसग माना गया है। मृत्यु शोकका अवसर है। समझमे नही आता, ऐसे समय भोज किस प्रकार दिया जा सकता है। सर चिनूभाईके[2]

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४६१-६५

२. सर चिनूभाई माधवलाल, अहमदाबादके नगर-नेता।

स्वर्गवासके उपलक्ष्यमे होनेवाले भोजमे मैं भी उनके सम्मानार्थ उपस्थित हुआ था। उस समयका दृश्य, उस समय जुदी-जुदी जातियोके बीच होनेवाले झगडे और भोजमे सम्मिलित लोगोका स्वेच्छाचार आज भी मेरी आँखोके सामने नाच रहा है। उसमे मैंने कही भी मृत व्यक्तिके प्रति आदरभाव नही देखा। शोककी तो वहाँ गुजाइश ही कहाँ थी? इस सुधारके लिए वक्त दरकार है। रूढिका यह वल हमारी शिथिलता सूचित करता है। यदि जातिके मुखिया ऐसे सुधार न करे तो [साधारण] व्यक्ति कर सकते है। मुखियोकी वर्तमान अवस्था करुणाजनक है। वहुधा वे सुधार करना तो चाहते है, परन्तु करते हुए डरते है। अत साहसी लोग आगे वढकर सुधार करनेकी इच्छा रखनेवाले मुखियोको वल दे और सुधारोका दरवाजा खोले।

रोटी-वेटी

जाति-भोजकी प्रथापर रोक लगानेसे भी शायद अधिक जरूरी सवाल है भिन्न-भिन्न जातियोमे रोटी-वेटी व्यवहारको वढावा देनेका। वर्णाश्रम आवश्यक है, परन्तु अनेक उपजातिया हानिकारक है। जहा रोटी-व्यवहार है, वहाँ वेटी-व्यवहारके सम्वन्धमे दो मत नही होगे। हम देखते भी है कि ऐसे वहुतसे विवाह हो चुके है। अव इस सुधारको रोका नही जा सकता। अत यह वहुत आवश्यक है कि समझदार मुखिया ऐसे सुधारको उत्तेजन दे। यदि मुखिया लोग समयके रुखके प्रतिकूल लोगोपर जरूरतसे ज्यादा सख्ती करेगे तो उनका मान-भग होनेकी सम्भावना है। सुधारकोके लिए यह शोभनीय होगा कि यदि उन्हे ऐसे मुखियोका विरोध रहते हुए सुधार करना पडे तो वे विनयसे काम ले। ऐसे सुधारक भी देखे जाते है जो मुखियोको तुच्छ मानकर उन्हे यह चुनौती देते है कि वे जो हो सके सो कर ले। ऐसी उद्धतता करनेसे सुधारकी गति रुकती है और यदि मुखिया विलकुल निर्वल और दण्ड देनेमे अशक्त हो गये हो तो सुधारक, सुधारक न रहकर स्वेच्छाचारी हो जाता है। स्वेच्छाचार सुधार नही है। उससे समाज उठता नही, वल्कि गिरता है।

लाटरीसे राष्ट्रीय शिक्षा

लाटरीसे राष्ट्रीय शिक्षाके लिए धन-सग्रह करनेके निमित्त एक विज्ञापन निकाला गया है। एक मित्रने मुझे इस विज्ञापनकी नकल भेजकर उसके सम्वन्धमे मेरी सम्मति पूछी है। मैं तो लाटरीके विरुद्ध हूँ। यह एक प्रकारका जुआ है। जहाँ सीधे तरीकेसे शिक्षाके लिए धन इकट्ठा न हो सके वहाँ कार्य सचालकोमे कोई दोप है, चाहे वह कार्यकर्ताओकी अयोग्यता ही क्यो न हो। ऐसे लोगोको शिक्षा देनेका भार उठानेका अधिकार ही नही है। मेरी सलाह तो यही है कि लाटरीमे धन देनेवाले लोग अपने धनको सँभालकर रखे और उन्हे जितना धन लाटरीमे देना हो उतना किसी विश्वस्त मनुष्यको शिक्षाके निमित्त अथवा किसी अन्य कार्यके निमित्त दे दे। उनका यह कार्य स्तुत्य होगा। शेयरोका सौदा भी एक तरहका जुआ है। मैंने सुना है कि उसमें वम्वईके सैकडो लोगोका धन चला गया है। क्या इतना ही काफी नही है?

धर्म-सकट

एक करुण पत्र[1] मेरे सम्मुख है। मै इस भाईको जल छिडककर शुद्ध होनेसे इनकार करनेपर बधाई देता हूँ। हम अस्पृश्यताको पाप मानते है, इसलिए जल छिडकनेकी प्रक्रियासे शुद्ध होकर अपने ही सिद्धान्तपर पानी कैसे फेर सकते है? इस राजपूत युवकको अपने जाति-भाइयोको विनयपूर्वक समझाना-बुझाना चाहिए, किन्तु वे फिर भी न समझे तो उसे जातिसे-च्युत किये जानेके दण्डको नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए, उसे छींटे लेकर शुद्ध होनेकी प्रक्रिया तो कभी पूरी न करनी चाहिए। मेरा तो यही दृढ मत है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ११-५-१९२४

१७. पत्र : महादेव देसाईको

सोमवार [१२ मई, १९२४][2]

पूर्ण विराम
उर्दू और कताई सीखना
समयकी पाबन्दीका अनुरोध
कताई और बुनाईसे गुजारा
लालाजीका पत्र
सरोजिनी देवीकी ओरसे
असगत नही
श्री मजलीके साथ व्यवहार
'यग इडिया' और 'नवजीवन'
एन्ड्रयूजकी टिप्पणियाँ (जो गत सप्ताह भेजी थी)
जेलके अनुभव
साम्राज्यकी चीजे
मोपलोके लिए राहत

भाई श्री महादेव,

पढते हुए अशुद्धियोको ठीक कर लेना। मुझे तुम्हारे दो पत्र मिले है। आजकी डाकसे ऊपर लिखी हुई सूचीके अनुसार सामग्री भेज रहा हूँ। एन्ड्रयूजकी टिप्पणियाँ तो तुम्हारे पास पहुँच ही चुकी है। अब और कुछ भेजनेका इरादा नही है।

१. इस पत्रमें कहा गया था कि अन्त्यजोंमें कार्य करनेवाले एक राजपूत युवकको यह धमकी दी गई है कि वह अन्त्यजोको छूनेके बाद अपने ऊपर जलके छींटे लेकर शुद्ध हो जाया करे, अन्यथा उसे जाति-च्युत कर दिया जायेगा।

२. पत्रमें उल्लिखित कुछ लेख १५-५-१९२४ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुए थे; और सोमवार १२ मईको पड़ा था।

समझमें नही आ रहा है कि 'गाय बची' शीर्षक टिप्पणी गुम कैसे हो गई। अगर खोज करनेपर भी न मिले तो मैं दूसरी लिखकर भेज दूंगा। हम लोग यहाँ इस सम्बन्धमें बहुत सावधान रहते हैं; आगे और भी सावधान रहेंगे।

बोरसद परिषद् और अन्य परिषदोंका समाचार 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया'में तुम ही लिखना। हमारी प्रवृत्तियोंके कुछ स्थानीय समाचार भी दिये जाने चाहिए।

वीसनगर सम्बन्धी लेखका 'स्वराज्य'में प्रकाशित अनुवाद बहुत सदोष है। तुमने जो भाषान्तर किया है, वह भी मुझे ठीक नही जँचा। उसमें कुछ अर्थकी अशुद्धियाँ भी हैं। मैंने उसका आधा भाग संशोधित कर दिया है। शेष भागको सुधारनेका समय नही मिला। अब हम शायद उसे न भी छापें। उसे अन्य पत्रोंमें भेजनेकी तो बात ही नही सोचनी है। अगर हम उसे छापें तो केवल 'यंग इंडिया'में ही छाप सकते हैं। अगर उसके शेष भागको संशोधित करनेका समय मिल गया तो उसे अगले सप्ताह छापनेकी बातपर विचार करेंगे। मैंने 'चैलेंज' के स्थानपर 'निसकारवु,' शब्दका प्रयोग किया है। अगर कोई दूसरा शब्द सूझे तो लिखना। 'ऋतुसम' का अर्थ है 'ऋतुके अनुकूल' और 'मूर्छाई' का अर्थ है अपनी बड़ाई, शेखी। काठियावाड़ सम्बन्धी लेखमें अनायास ही काठियावाड़ी शब्द लेखनीसे निकलते चले गये।

उस डाकूका नाम मोर[1] नही, बल्कि मोवर है। मैं उससे मिला भी हूँ।

श्रीमती जोजेफका[2] तार मुझे भी मिला था। मैंने उन्हें तार द्वारा उत्तर दे दिया है कि तुम्हारा भेजा जाना आवश्यक नही है क्योंकि वहाँसे शिष्टमण्डल यहाँ आनेवाला है। इसके अतिरिक्त मेरा उद्देश्य सामान्य सिद्धान्तको समझाना मात्र है। इसमें गलतफहमीकी गुंजाइश है ही नही। ये लोग वाइकोमके मामलेको बिगाड़ रहे हैं, मुझे अब भी ऐसा प्रतीत होता है। जब प्रतिनिधि मण्डल यहाँ आयेगा तब हम इस सम्बन्धमें विचार करेंगे।[3]

वालजीका स्वभाव तो तुम जानते ही हो। यदि हम उन्हें सन्तुष्ट रखकर उनसे उनकी रुचिका कोई काम करा सकें तो अच्छा। मैं उनको ढील देकर उनकी विचित्रताओंको निकालनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। हम इस तरहकी छूट निश्चय ही दूसरेको नही देंगे। वालजीमें अन्य छोटी-मोटी त्रुटियाँ भले ही हों, परन्तु सरलता तो है ही। मैं उसकी कद्र करता हुआ उनसे उपयोगी काम ले रहा हूँ। तुम भी ऐसा ही करो।

राधाका[4] स्वास्थ्य काफी अच्छा है, परन्तु उसकी खोई हुई शक्ति इतनी शीघ्रतासे वापस नही आ रही है, जितनी मैं चाहता हूँ। वह आजकल प्रसन्न रहती

१ देखिए "उतावला काठियावाड", ११-५-१९२४।

२ जॉर्ज जोजेफकी धर्मपत्नी। श्री जोजेफ मदुरेके बैरिस्टर थे और उन्होंने **यंग इंडिया** और **इंडिपेंडेंट**का कुछ दिनोंतक सम्पादन किया था।

३ प्रतिनिधि मण्डलसे हुई बातचीतके लिए देखिए "भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे", १९-१०-१९२४।

४ मगनलाल गांधीकी कन्या।

है। कीकीवेन[1] हिम्मती लडकी तो है, परन्तु वेचारी बहुत रुग्ण रहती है। ज्वर उसका पीछा नही छोडता। वह भोजन नियमसे करती है। ऐसा माना जा सकता है कि यहाँकी वायु बहुत शुद्ध है। डाक्टर दलाल और डा० जीवराजने उसके रोगकी पूरी-पूरी जाँच कर ली है। परन्तु सूझ नही पडता कि क्या करना चाहिए।

मुझे ऐसा लग रहा है कि कान्ति[2], रसिक[3] और मनुको[4] यहाँ न वुलाना चाहिए। अगर इससे वा को दुख होता है तो हो। यह अनुभवसिद्ध वात है कि "भक्ति तो जानकी वाजी है, सामनेका मार्ग निस्सन्देह दुर्गम है।" मै तो सदासे यही मानता आया हूँ कि हृदयको कठोर किये विना शुद्ध भक्ति सम्भव नही है।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७८५) से।

१८. सन्देश: गुजरात राजनीतिक परिषद्को[5]

१३ मई, १९२४

वोरसदने गुजरातका मुख उज्ज्वल किया है। उसने सत्याग्रह करके और त्याग दिखा कर देशकी तथा स्वय अपनी सेवा की है। बोरसदने जमीन तो हमवार कर दी है, अव उसपर इमारत उठानेका काम करना वाकी है और यह कार्य कठिन है। यह काम चल रहा है, यह मै जानता हूँ किन्तु इसे पूरा हुआ तो उसी दिन समझना चाहिए जिस दिन, वोरसद ताल्लुका हाथ-कती, हाथ-बुनी खादीके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकारका कपडा खरीदना वन्द कर देगा, जव उसकी सीमामे विलायती कपडेकी या मिलोके वने कपडेकी एक भी दुकान न रहेगी, जव ताल्लुकेमे कोई भी मनुष्य शराव, गाजा और अफीमका इस्तेमाल नही करेगा, कोई चोरी या दुराचार न करेगा और जव ताल्लुकेके वच्चे — वालक और वालिकाएँ, चाहे वे अन्त्यजोके हो अथवा अन्य वर्णोके — राष्ट्रीय पाठशालाओमे पढने लगेगे, जिस दिन लोगोमे आपसमे झगडे होने वन्द हो जायेगे और यदि होगे भी तो उनका फैसला पचायत द्वारा कराया जायेगा, जव हिन्दू और मुसलमान दोनो भाइयोकी तरह मेलजोलसे रहने लगेगे और जिस दिन कोई भी मनुष्य किसी भी अन्त्यजका तिरस्कार न करेगा। यदि हम इस नीतिपर कमर कस ले तो हमे यह सव करनेमे कोई कठिनाई नही होगी। यदि वोरसद इतना कर लेगा तो मेरा दृढ विश्वास है कि वह भारतको स्वराज्य दिला देगा। वहाँके निवासी इतना करनेकी प्रतिज्ञा ले। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि उनमे ऐसी प्रतिज्ञा करनेकी शक्ति आये। किन्तु जव प्रतिज्ञाको पूरा करके दिखानेका

१. जे० वी० कृपलानीकी वहन।
२, ३ व ४. हरिलाल गाधीकी सन्तान।
५. यह बोरसदमें हुई थी।

दिलमे पूरा विश्वास होना चाहिये कि दैवी प्रकृतिको हि सहाय देना हमारा कर्त्तव्य है। मुझे फिकर आपके पिता और वधुके लीये है। यदि वे आपके पक्षका सगठन कर सग्राम चाहते है और आप उनको शान्ति मार्गकी ओर न ला सके तो आपके हि कुटुम्बमे दो विरोधी प्रवृत्ति होनेका सम्भव है। ऐसे मौकेपर धर्मसकट खडा होता है। मै तो अवश्य उनसे भी प्रार्थना करूँगा कि आपके हि हाथसे जातिमे दो गिरोह पेदा न हो।

जिस चीजको आपने अच्छी समझ कर की है और जिसकी योग्यताके लिये आज भी आप लोगोके दिलमे शका नहि है उसके लिये माफी मागना मै हरगीज उचित नही समझूंगा।

आपकी तरफसे मुझे रु० ५,००० मील गये है। 'यग इडिया', 'नवजीवन', इत्यादिके लीये आप उचित समझे इतना द्रव्य भेज दे। करीव ५० नकल मुफ्त देनेकी आवश्यकता है।

आपका,

मोहनदास गांधी

१४-५-१९२४

मूल हिन्दी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००४) से।
सौजन्य घनश्यामदास बिडला

२१. तार: हकीम अजमल खाँको

[अन्धेरी
१३ मई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

हकीम अजमल खाँ साहव,

अधिक परिश्रम करनेसे कमजोरी वढी, वैसे वहुत ठीक है। आशा है वेटीको वायु-परिवर्तनसे लाभ हो रहा होगा।

गांधी

अग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८०१) की फोटो-नकल से।

१. यह तार हकीम अजमल खाँ के १३ मई, १९२४ के निम्नलिखित तारके जवावमें दिया गया था "जव पिछली वार आपसे मिला था उसके वाद आपका स्वास्थ्य कैसा चल रहा है, लिखनेकी मेहरवानी कीजिए।"

२३. पत्र : देवदास गांधीको

बुधवार [१४ मई, १९२४][1]

चि० देवदास,

बा का हृदय विदारक पत्र आया है। मैं क्या करूँ, क्या न करूँ सूझ नही पड रहा है। यदि बच्चे वहाँ हो और तुम्हे ऐसा लगे कि उन्हे यहाँ आ ही जाना चाहिए तो उन्हे जरूर लेते आना। आशा है, तुम्हारा स्वास्थ्य अब बिलकुल ठीक हो गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८८१४) की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

पोस्ट अन्धेरी
वैशाख सुदी १० [१४ मई, १९२४][2]

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। अकालियोके सम्बन्धमे जिस तरह आप सोचते है, मैं उस तरह काम नही कर सकता। रोये बिना माँ बच्चेको दूध नही पिलाती, यह बात मेरे प्रत्येक कार्यके विषयमे लागू होती है। अगर ईश्वरकी इच्छा होगी तो वह मुझे इस काममे निमित्त बना लेगा। सूत्रधार तो वही है। मैं तो उसके हाथकी कठपुतली-मात्र हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१७८) से।
सौजन्य महेश पट्टणी

१. यह पत्र सम्भवतः जुहूसे लिखा गया था। बा और बच्चोंके उल्लेखसे जान पड़ता है कि यह "पत्र महादेव देसाईको", १२-५-२४ के बाद कदाचित् उसी हफ्तेमें पड़नेवाले बुधवारको लिखा गया होगा।

२. वैशाख सुदी दशमी १४ मई, १९२४ को थी।

२५. पत्र : वा० गो० देसाईको

वैशाख सुदी १० [१४ मई, १९२४][1]

भाईश्री ५ वालजी,

लेख मिला। सुझावोपर अमल कराऊँगा। मैंने लेखमे एक स्थानपर 'इडियन' शब्द जोडा है। मै उसमे से निरामिष भोजन विषयक अश निकाले दे रहा हूँ। आसन्न स्वराज्यमे सभी लोग निरामिषभोजी हो जायेंगे, ऐसा खयाल करना भूल है। चूँकि ठाकुरकी[2] कविताका अग्रेजी रूपान्तर तुमने दे दिया है, इसलिए मै उसके गुजराती रूपान्तरका अर्थ 'यग इडिया' मे नही दूँगा। यदि मैं तुम्हारे लेखका गुजराती अनुवाद कराऊँगा तो उसे उसमे सम्मिलित कर लूँगा। तुम दोनोके बीच जो आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित हो रही है उनपर मुझे अचरज नही है, क्योकि तुम दोनो ही अचरजके पिटारे हो। मैं दिल्लीतक तो पहुँच गया था परन्तु उससे आगे गाडी कैसे बढा सकता था। मैंने भाई अभेचन्दको पत्र लिखा है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

[पुनश्च]

आनन्दशकर के बारेमे जो पत्र आया था, वह मैंने पढनेके बाद फाड दिया था।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००५) से।
सौजन्य वालजी गो० देसाई

२६. टिप्पणियाँ

मुक्त व्यापार बनाम सरक्षण

टाटा स्टील वर्क्सको सरक्षण देनेकी बात सोची जा रही है। मुझसे उस सरक्षणके सम्बन्धमे अपने विचार व्यक्त करनेको कहा गया है। मै नही जानता कि इस समय इससे क्या लाभ हो सकता है। मुझे यह भी मालूम नही कि इस स्टील वर्क्ससे सम्बन्धित प्रस्तावके गुणदोष क्या है? लेकिन मैं यहाँ यह भ्रम अवश्य दूर करना चाहूँगा कि मै पूंजीपतियोके खिलाफ हूँ और यदि मेरा बस चला तो मै मशीनो और मशीनोसे होनेवाले उत्पादन दोनो ही को नष्ट कर दूँगा। सच तो यह है कि मै एक पक्का सरक्षणवादी हूँ। मुक्त व्यापार इग्लैडके लिए अच्छा हो सकता है, क्योकि वह अपना तैयार माल असहाय लोगोपर थोप देता है और चाहता है कि

१ डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
२ रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

उसकी आवश्यकताएँ कमसे-कम कीमतपर बाहरी देशोसे पूरी होती रहे। मुक्त व्यापारने तो भारतके किसानोको बरबाद ही कर दिया है, क्योकि उससे यहाँके गृह-उद्योग बिलकुल नष्ट ही हो गये है और फिर सरक्षणके बिना कोई भी नया व्यापार विदेशी व्यापारसे स्पर्धामे टिक नही सकता। नेटालने अपने चीनी-उद्योगको राज्यकी ओरसे काफी बडी सहायता देकर और आयातपर भारी कर लगाकर खडा किया था। जर्मनीने भी अपने उद्योगपतियोको बहुत पैसा देकर चुकन्दरसे चीनी तैयार करनेके उद्योगका विकास किया था। मै तो मिल उद्योगको सरक्षण देनेका सदा ही स्वागत करनेको तैयार हूँ, हालाँकि मै प्राथमिकता हाथसे तैयार किये गये खद्दरको ही देता हूँ और आगे भी देता रहूँगा। सच तो यह है कि मै हर उपयोगी उद्योग-को सरक्षण देना चाहूँगा। अगर मै देखूँ कि सरकार भारतके आर्थिक और नैतिक कल्याणके लिए सचमुच उत्सुक है तो बहुत हदतक उसके प्रति मेरा विरोध समाप्त हो जायेगा। मै तो चाहता हूँ कि सरकार वस्त्र उद्योगको यहाँतक सरक्षण देकर दिखाये कि यहाँके बाजारोमे विदेशी कपडेका आना बिलकुल बन्द हो जाये। वह अपनी जरूरतके लिए खद्दर ही खरीदे और इस तरह चरखेको लोकप्रिय बनाकर दिखाये। वह राजस्वकी परवाह किये बिना शराब, अफीम आदि मादक द्रव्योका उपयोग बन्द करके दिखाये और इस तरह राजस्वमे जो कमी हो उसे सेनापर खर्च कम करके पूरा करे। जब ऐसी शुभ घडी आयेगी तो मेरे विरोधमें कोई तथ्य नही रह जायेगा। इससे सुधारोपर विचार-विमर्श करनेकी ठीक भूमिका तैयार हो जायेगी। अगर सरकार ये दोनो काम कर डाले तो वह मेरे लेखे उसके हृदय-परिवर्तनका स्पष्ट लक्षण होगा। किसी भी सम्मानपूर्ण समझौतेके लिए ऐसा हृदय-परिवर्तन आव-श्यक है।

पूर्ण विराम

मौलाना मुहम्मद अलीने हिन्दुओ और मुसलमानोके धार्मिक विश्वासोकी जो तुलना की है, उसके सम्बन्धमे मुझे अनेक पत्र मिले है।[1] इन पत्र-लेखकोने बडी ही काबलियतके साथ अपनी बाते कही है। इन पत्र-लेखकोका कहना कुछ भी हो, मै तो अब भी यही मानता हूँ कि मौलाना साहबने इसके अलावा और कुछ नही किया कि दोनो धर्मोकी तुलना करके उन्होने मेरे धर्मके मुकाबले अपने धर्मको अधिक ऊँचा बताया है। मेरे सामने जो पत्र है, उनमे से कुछ बहुत ही सारगर्भित, तथ्यपूर्ण और दिलचस्प है, फिर भी मुझे उन्हे छापनेका लोभ सवरण करना ही पडेगा। धार्मिक चर्चा और यहाँतक कि दर्शन शास्त्रीय चर्चासे कही बडे-बडे अन्य काम देशके सामने पडे हुए है। मौलाना साहबके मतकी सफाईमे 'यग इडिया' का इतना स्थान घेरनेके पीछे मेरा मशा सिर्फ यही है कि अभी हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच जो कटुता है, उसे अगर हो सके तो व्यर्थ ही और बढनेसे रोकूँ।[1] सिर्फ एक मित्रके लिहाजसे इस सार्वजनिक पत्रका उपयोग मौलाना साहबकी सफाई देनेके लिए तो मै कदापि न करता। इन पत्रोको पढ लेनेके बाद भी मुझे उनमे से ऐसा कुछ नही दिखाई देता,

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५१३-१५।

जिनके द्वारा मैं अपने विचार बदल दूँ। इनमें से एक पत्र-लेखकके इस विचारसे मैं सहमत नहीं हूँ कि मौलाना साहबने हिन्दुओंके प्रति दुर्भावना दिखाई है और अब हिन्दू-मुस्लिम एकताकी कोई सम्भावना नहीं रही। मौजूदा तनातनी और हमारे रोडे अटकानेके बावजूद यह एकता तो आ ही रही है। मौलाना साहब इस एकताके प्रेमी न हों, बल्कि छिपे हुए शत्रु हों तो भी स्थितिमें कोई फर्क नहीं पडेगा। हम तो ईश्वरके आगे तृणवत् हैं। वह हमें जहाँ चाहे फेंक कर उडा सकता है। हम उसकी इच्छाका विरोध नहीं कर सकते। उसने हम सबका सृजन ही एक होनेके लिए किया है, लोगोंका अलग-अलग बने रहनेके लिए नहीं। बडा अच्छा होता अगर मैं अपनी आशा और विश्वासका सञ्चार अपने पत्र-लेखकोंमें भी कर पाता। फिर मौलाना साहबसे अविश्वास करनेका उनके सामने कोई कारण न बच रहता। जो भी हो, मुझे आशा है कि पत्र लिखनेवाले सज्जन मुझे इस बातके लिए क्षमा करेंगे कि मैं न तो मौलाना साहबके धार्मिक विचारोंके बारेमें उन लोगोंके पत्र प्रकाशित कर रहा हूँ और न इससे अधिक उनपर कोई चर्चा ही करने जा रहा हूँ।

उर्दू और कताई सीखना

त्रिवेन्द्रम सेन्ट्रल जेलसे श्री जार्ज जोजेफ लिखते हैं :

> हम सब यहाँ बडे आनन्दसे हैं और जेल अधिकारियोंसे हमारा सम्बन्ध काफी सौहार्दपूर्ण है। कुल मिलाकर यहाँके कैदियोंकी स्थिति वैसी ही है जैसी १९२२ के आरम्भमें संयुक्त प्रान्तकी जेलोंमें "राजनीतिक कैदियों" की थी।
>
> मुझे चरखा मिल गया है और मैं प्रतिदिन तीन घंटे सूत कातता हूँ। अभी मेरे पास जो रुई है, वह मदुरईके एक मित्रने धुनकर तथा उसकी पूनियाँ बनाकर भेजी है। इसके समाप्त हो जानेपर मेरा इरादा त्रावणकोरकी कपास मँगानेका है। मैं स्वयं उसे ओट-धुनकर पूनियाँ बना लिया करूँगा, और आशा है कि इन प्रारम्भिक क्रियाओंमें काफी कुशल हो जाऊँगा। हिन्दीके सम्बन्धमें स्थिति यह है : जब मुझे १९२२ में जेल भेजा गया था तो वहाँ मैंने काफी उर्दू सीखी और मैं मानता तो यह हूँ कि मैं कामचलाऊ उर्दू जानने लगा हूँ। काफी हद तक मैं उर्दू (अखबार, आधुनिक गद्य, आसान कविता आदि) पढ और समझ सकता हूँ। मैं हिन्दी अलगसे नहीं सीखना चाहता। मैंने अपनी उर्दूकी पुस्तकें मँगाई हैं और कुछ समय उनपर भी लगाया करूँगा, जिससे मुझे उस भाषाका कुछ और ज्ञान हो जाये।

समयकी पाबन्दीका अनुरोध

निजाम राज्यमें तैयार किये गये एक बहुत ही सुन्दर स्वदेशी कागजपर एक व्यक्तिने मेरे पास निम्नलिखित पत्र भेजा है :

> मैं आपका ध्यान इस बातकी ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि कुछ नेतागण अपने भाषणोंके सम्बन्धमें समयकी पाबन्दी नहीं करते। इससे जनताको

एक गलत सीख मिलती है, जो पहलेसे ही समयकी पाबन्दी न रखनेकी आदी है। इसके अलावा, इससे वक्ताके प्रति श्रोताओके मनोमे खीझका भाव आ जाता है और फिर वे उसकी बात ध्यानसे नही सुनते। यह परिस्थिति अन्यथा सम्भव न होती। जो लोग हमें स्वराज्यके योग्य नही मानते, उनके मनपर भी इसकी बुरी छाप पड़ती है। बम्बईमें होनेवाली सभाओमे मुझे बार-बार यही अनुभव हुआ है। ऊपर मैंने वही कहा है जो मैंने खुद महसूस किया है और दूसरोको कहते सुना है।

सार्वजनिक सभाओके आयोजक कृपया इस पत्रपर ध्यान दे।

कताई और बुनाईसे गुजारा

आचार्य रायने अपनी चटगाँव-यात्राका विवरण भेजते हुए लिखा है

मैंने हालमें ही चटगाँवका दौरा किया है, जिसका विवरण साथमे भेज रहा हूँ। आपको यह जानकर खुशी होगी कि चटगाँवका भीतरी इलाका हमारे कामकी दृष्टिसे बहुत उपयुक्त है और वहाँ कमी सिर्फ एक बात की है और वह है संगठन की।

दौरेमे एक सज्जनसे मेरी मुलाकात हुई, जिनके बारेमे बताया गया कि वे इंजीनियर है। वे कृषक बन गये है और अब अपने खेतोकी जुताई-बुवाई और कटाई स्वयं करते है। उनके घरकी तमाम जरूरते उनके परिवारके लोग शारीरिक श्रम करके ही पूरी करते है और वे अपनी जरूरतके सारे कपडे स्वयं ही कात-बुनकर तैयार कर लेते है।

इस पत्रका उत्तर देनेकी जरूरत नहीं, क्योकि मै जानता हूँ, आप और भी बहुत महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहारमें व्यस्त रहते है। मै तो चटगाँवके बारेमे आपको कुछ ऐसी जानकारी-भर दे देना चाहता हूँ, जो आपको अच्छी लग सकती है। आपको हजारो परेशानियाँ रहती है। सम्भव है एक छोटी-सी खुशखबरी आपको जल्दी ही चंगा बनानेमे दवाका काम कर जाये।

उक्त इजीनियरके परिवारके लोग जो करते बताये गये है, वह सब हर काग्रेस कार्यकर्त्ता, चाहे वह वकील हो या शिक्षक अथवा और कोई, कर सकता है। अगर वह इतना करे तो फिर उसे काग्रेसके दूसरे कामोकी फिक्र करनेकी जरूरत ही न रहे। मेरा निश्चित मत है कि वह इजीनियर ऐसे हर वक्तासे अधिक सफलतापूर्वक खद्दरका प्रचार कर रहा हे, जो खद्दरमे कोई जीवन्त आस्था न रखते हुए भी लोगोके सामने गला फाड-फाडकर उसके गुणोका बखान करता है।

डा० राय द्वारा भेजा हुआ विवरण भी जानने योग्य बातोसे भरा हुआ हे। उससे प्रकट होता है कि सैकडो मुसलमान स्त्रियाँ पीढियोसे कताईका काम करती आ रही है। वे कपास भी खुद ही ओटती और धुनती है, तथा अपने सूतका कपडा भी खुद ही बुनती है। जरूरतका सारा कपास पासके पहाडी इलाकोसे मिल जाता है।

विवरणमें बताया गया है कि वहाँ जो कपास होती है, उसे व्यापारी लोग निर्यातके लिए खरीद लेते हैं। जब वहाँ उपजनेवाली कपासका उपयोग करनेके लिए हजारों कातनेवाले लोग वहीं मौजूद हैं तब उन्हें बेरोजगार बनाकर सारी कपास बाहर कतवा-बुनवाकर फिर हमारे पास कपड़ेके रूपमें वापस लाना, क्या दुखका विषय नहीं है? खुलनामें डा० राय तथा उनके कार्यकर्तागण स्थानीय कतैयोंकी जरूरतके लिए काफी कपास एकत्र कर रखनेका बडा प्रयत्न कर रहे हैं।

विवरणमें उन इलाकोंमें प्रयुक्त धुनकीका भी वर्णन किया गया है और बताया गया है कि एक प्रतियोगितामें वह बारडोलीकी धुनकीसे बाजी मार ले गई। सूचिया धुनकी (उसका नाम चटगांवके सूचिया गांवके नामपर पडा है) की डोरी अन्ननासके पत्तोंके रेशोंसे बनाई जाती है और कहते हैं वह हफ्ते-भर चल जाती है। सोचिए तो सही, बिलकुल सीधी-सादी और सस्ती चीजोंकी मददसे बढियासे-बढिया काम किया जा सकता है।

श्री मजलीके साथ व्यवहार

सम्पादक
'यंग इंडिया,' अहमदाबाद

प्रिय महोदय,

आपने अपने ३ अप्रैलके अंकमें बेलगांव-निवासी श्री मजलीका एक पत्र छापा था, जिसमें बताया गया था कि जब वे जेलमें थे, "सरकारके कथनके विपरीत, उन्हें कताईका नहीं, बल्कि प्रति दिन १ पौंड सूतकी बँटाईका काम दिया गया।" यह भी कहा गया है कि उन्हें "दिनभरमें उस १५ मिनटके समयके अलावा, जब उन्हें घूमने दिया जाता था, चौबीसों घंटे सबसे अलग एक कोठरीमें ताला बन्द करके रखा जाता था," और बीमारीके बावजूद उन्हें ऐसा भोजन दिया जाता था जिसे पचाना उनके लिए मुश्किल था।[1]

निःसन्देह आपको इसके सम्बन्धमें सच्ची बातें जानकर खुशी होगी और मुझे आशा है कि आप ये बातें छाप भी देंगे।

सच यह है कि श्री मजलीको चरखेसे डोरा या सूत तैयार करनेका काम दिया गया था और उन्हें अपनी कोठरीसे लगे एक बडे कमरेमें अन्य दो साथियोंके साथ रखा गया था। दोनोंमें से एक पहले कांग्रेसी रह चुका है। उन्हें घूमने-फिरनेके लिए प्रतिदिन एक घंटेका समय दिया जाता था — आधा घंटा सुबह और आधा घंटा शाम। भोजनमें उन्हें निम्नलिखित चीजें दी जाती थीं

(क) २३-१०-१९२३ को उन्हें इस जेलमें दाखिल किया गया और तबसे २-१२-१९२३ तक आम खुराक दी गई।

1. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ३६८-६९।

(ख) ३-१२-१९२३ से लेकर १३-१२-१९२३ तक वे मलेरियासे बीमार रहे और इस अवधिमें उनकी खुराक दूध रही।

(ग) बुखार टूटनेपर १४-१२ १९२३ से २८-१२-१९२३ तक वे धीरे-धीरे पूर्ण स्वस्थ हो गये। इस अवधिमें उन्हे आम खुराक दी गई और उसमे दालकी जगह प्रतिदिन एक पौंड दूध दिया गया।

(घ) २८-१२-१९२३ से ४-१-१९२४ तक आम खुराक।

(च) बदहजमी हो जानेके कारण, ५-१-१९२४ से लेकर १७-१-१९२४ तक आम खुराकके बदले चावल दिया गया।

(छ) १८-१-१९२४ से २९-१-१९२४ तक आम खुराक।

(ज) ३०-१-१९२४ से १७-२-१९२४ अर्थात् उनके रिहा होनेके दिन तक, उनकी खुराक दूध, एक औंस मक्खन और डबल रोटी रही।

आपका विश्वस्त,

७-५-१९२४ (ह.) अस्पष्ट

बम्बई कार्यवाहक सूचना-निदेशक

उक्त पत्र छापते हुए मुझे खुशी होती है। अभी श्री मजलीके स्वास्थ्यकी जो स्थिति है, उसे देखते हुए मैं उन्हे कोई कष्ट नही देना चाहता और जैसा कि मैंने अपनी टिप्पणीमे भी कहा था, मेरा ऐसा भी कोई इरादा नही था कि श्री मजलीके प्रति किये गये व्यवहारको लेकर शिकायत करूं। लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगा कि श्री मजलीकी दो बाते लगभग सही है। श्री मजली इस बातसे इनकार नही करते कि उन्हे "बाट-कताई"का काम दिया गया। लेकिन, "बाट कताई" का मतलब होता है "सूतकी बटाई।" कार्यवाहक सूचना निदेशकको शायद मालूम नही कि "बाट-कताई" जैसी कोई प्रक्रिया नही होती। चरखेपर या तो सूत काता जा सकता है या बटा जा सकता है। श्री मजली सूत कातना चाहते थे। यह उनका कर्तव्य भी था और इसमे उन्हे आनन्द भी आता। लेकिन उन्हे सूतकी बटाईका काम दिया गया, जो कताईके कामसे बहुत कठिन था और जिसमे उन्हे कोई आनन्द भी नही आता था। उन्हे कालकोठरीमे बन्द करके रखा गया, यह बात भी स्पष्टत सत्य ही है। यदि उनके साथ दो और लोग थे तो इससे इस तथ्यमे कोई फर्क नही पडता। कालकोठरीमें, खासकर दिनमें कोई साथी हो या न हो बन्द किये जानेका मतलब क्या होता है, यह तो कोई भुक्तभोगी कैदी ही बता सकता है।

सरोजिनी देवीकी ओरसे

श्रीमती सरोजिनी नायडूने मुझे पत्र भेजा है, उसे पाठकोके लिए नीचे दे रहा हूँ। आशा है, उन्हे यह पत्र पढकर प्रसन्नता होगी। पत्र इस प्रकार है

हिन्द महासागर बाल-रविकी स्तुतिमें अत्यन्त पुरातन श्लोक गुनगुना रहा है और ये पर्वत साक्षी है उस प्रतिज्ञाके जो महान् स्वप्नदर्शियोके इन पर्वतोके

रवि-किरण-मण्डित शिखरोपर खडे होकर ईश्वरको साक्षी रखकर की थी—अर्थात् यह सकल्प किया था कि वे दक्षिण आफ्रिकाको उच्चादर्शो और उदात्त परम्पराओका देश बना देंगे, भावी पीढियोके लिए उनकी यही एक श्रेष्ठ विरासत होगी। लेकिन, आज वस्तुस्थिति कुछ और ही है। इन्हीं पर्वतोकी छायामें, इस समुद्रके ऐन तटपर ही दक्षिण आफ्रिकाके भाग्य-विधातागण अपने दायित्वो और कर्तव्योसे मुँह मोड रहे है और विधान सभाको, जिसे न्याय और स्वतन्त्रताका मन्दिर होना चाहिए था, एक ऐसे बाजारका रूप दे रहे है जिसमें थोडे दिनोके लिए पूर्वग्रहपर आधारित शक्ति और अत्याचारपर आधारित सत्ताका उपयोग करनेके लिए भावी सन्ततियोके जन्म-सिद्ध अधिकारोको बेचा जा रहा है। फिर भी, मेरा मन निराश नहीं है और अन्तिम प्रश्नोके समाधानके बारेमें मेरा विश्वास अडिग है और मैंने इस विश्वास या कल्पनाको निर्भीक होकर घोषित भी किया है। दक्षिण आफ्रिकाको सिर्फ गोरोका देश बनानेके असम्भव विचारके समर्थक नेता इससे बडे क्षुब्ध हुए है, उनमें खलबली मच गई है। लेकिन इससे दक्षिण आफ्रिकाके अश्वेत लोगोमें एक नई जागृतिकी लहर आई है और उनमें एक नई आशाका सचार हुआ है।

मुझे मालूम है कि सक्षिप्त अखबारी तारोके माध्यमसे आप मेरे यहाँके कामकी प्रगतिसे परिचित रहे है। अवसर और अपनी क्षमताको देखते हुए मैंने जितना हो सकता है उतना प्रयास किया है और यद्यपि यहाँके अखबार पूर्वग्रहोसे ग्रसित है और विधायकगण अज्ञानसे, फिर भी मैंने सैकडो नहीं, हजारो लोगोको भारतके पक्षका समर्थक बना लिया है। इनमें दक्षिण आफ्रिकाके सभी वर्गों और सभी समुदायोके लोग शामिल है। आफ्रिकी जातियो, बल्कि घोर "उपनिवेशवादी" लोगोमें भी उत्साह भर आया है और परिस्थितिके प्रति रोष उत्पन्न हुआ है तथा उनके मनमें भारतीयोके प्रति भाईचारेकी भावना उदित हुई है और वे अनुभव करने लगे है कि उनका सुख-दुख हमारा सुख-दुख है। दक्षिण आफ्रिकाके लिए मैंने "उत्पीडनका विश्वविद्यालय" शब्दोका प्रयोग किया था, उसका गोरोने बहुत बुरा माना। फिर भी सचाई यही है कि यह "उत्पीडनका विश्वविद्यालय" गैर-यूरोपीय लोगोमें आत्मसयमका भाव भरते हुए उनके मनोबलका पूर्ण विकास करेगा।

साम्राज्यके लौह पुरुषसे[1] मेरी मुलाकात बहुत दिलचस्प रही। वे जिस जादू और आकर्षणके लिए प्रसिद्ध है मैंने उसे उनमें भरपूर पाया और जाहिरमें सादगी और मिठास भी उनमें देखनेमें आई। लेकिन उनकी विनय और सादगीके पीछे कितनी कुशाग्रता और कूटनीति छिपी हुई है! उनको देखकर मेरे मनपर तो यह छाप पडी कि ईश्वरने उन्हे दुनियाका एक महानतम व्यक्ति होनेके

१ जनरल स्मट्स।

लिए सिरजा था, लेकिन दक्षिण आफ्रिकामें सत्ताका परिधान धारण करके उन्होने अपनेको बौना बना लिया है। जो लोग अपनी पूर्व-निर्धारित आध्यात्मिक ऊँचाई तक नही उठ पाते, उनका यही हाल होता है। २७ तारीखको दक्षिण आफ्रिकासे प्रस्थान करनेके पहले हम लोग एक आपात्कालीन सम्मेलन कर रहे हैं, जिसमें राजनीतिक कार्योको ठोसरूप देनेका उपाय किया जायेगा और काम करनेकी —— हो सकता है, बलिदान करनेकी ही —— एक रूपरेखा तैयार की जाये। भारत लौटते हुए मै पूर्व आफ्रिकामे लगभग पन्द्रह दिन ठहरूँगी ताकि लौटनेसे पहले वहाँका काम पूरा किया जा सके।

एक अग्रेज द्वारा सराहना

रेवरेड चार्ल्स फिलिप्स दक्षिण आफ्रिकाके सर्वाधिक सम्मानित मिशनरियोमे से है। उन्होने मेरे नाम लिखे हाल ही के एक पत्रमे श्रीमती सरोजिनी नायडूके कार्यके प्रति जो प्रशसासूचक शब्द लिखे है, उन्हे नीचे दे रहा हूँ,

> हमारे बीच कोई पत्र-व्यवहार नही है। मुझे ऐसा ही लगता रहता है कि आपका समय बहुत ही मूल्यवान है और उसे साधारणसे पत्रोके उत्तर देनेमें खर्च करवा देना अनुचित है। लेकिन श्रीमती सरोजिनी नायडू आजकल यहाँ आई हुई थी और मैने उन्हे घनिष्ठ रूपसे जाना। उन्होने आदेश दिया था कि मै तत्काल आपको पत्र लिख दूँ। वे कल यहाँसे चली गईं और आज मैरित्सबर्गमें होगी। केप टाउनका "चक्कर" लगाकर वे फिर यहाँ आ रही है और तब मै उनसे फिर मिलूँगा। लेकिन आपको पत्र लिखे बिना उनसे दुबारा निश्चिन्त भावसे मेरा मिलना कठिन है। आपको पत्र लिखकर कष्ट देनेके बारेमें मैने अपनी यह सफाई दे दी। मै तो उनके बारेमें दिन-भर लिखते रहकर भी शायद पूरी बातें न लिख पाऊँ। इसलिए मुझे तो जहाँतक हो सके थोडेमें ही लिखनेकी कोशिश करनी है। जोहानिसबर्गमें उन्हे अपने काममे जो आश्चर्यजनक सफलता मिली है, उसके बारेमें ज्यादा कहनेकी मुझे जरूरत नहीं। दूसरे लोग आपको पूर्ण और विस्तृत विवरण लिखेंगे। लेकिन वह भी पर्याप्त नहीं होगा। वे तो आपकी द्वितीय आत्मा सिद्ध हुई है। वे एक बार फिर हमारे बीच वह उच्च आध्यात्मिक उद्देश्य लेकर आई है, जिसकी अनुभूति हमें बहुत पहले हुई थी। उनकी इस यात्राके लिए, उनके कहे शब्दोके लिए और उन्होने हमारे सामने जो परम सत्य तथा ईसामसीह-जैसे विचार रखे हैं, उस सबके लिए हम ईश्वरको धन्यवाद देते है। समस्त भारतीय समाज और गोरोका भी एक बहुत बड़ा भाग उनके आह्वानपर उठ खड़ा हुआ है।

असंगत नहीं

जेलसे निकलनेके तुरन्त बाद मैने गुरुद्वारा आन्दोलनके सम्बन्धमे अखबारोमे एक वक्तव्य जारी किया था और ननकाना साहबवाली दु खद घटनाके शीघ्र बाद कुछ

सलाह भी दी थी। एक पत्र-लेखकको इन दोनोंके बीच असंगति दिखाई देती है और उसने मेरा ध्यान इसी असंगतिकी ओर आकर्षित किया है। जेलसे छूटनेपर मैंने यह वक्तव्य[1] दिया था

> **मेरे (अकाली) भाइयोंने मुझे सूचित किया कि पंजाबमें आमतौरपर ऐसी गलतफहमी फैली हुई है कि ननकाना साहबकी दुःखद घटनाके बाद मैंने ऐसा विचार प्रकट किया कि स्वराज्य-प्राप्ति तक गुरुद्वारा आन्दोलन स्थगित रखना चाहिए। मुझपर जो विचार प्रकट करनेका आरोप लगाया गया है, वैसा कोई भी विचार मैंने कभी प्रकट नहीं किया। यह बात मेरे उन दिनोंके लेखों और भाषणोंसे स्पष्ट हो जायेगी।**

पत्र-लेखकने उस दुःखद घटनाके बाद सिखोंके नाम लिखे मेरे पत्रसे निम्नलिखित अवतरण उद्धृत किया है और ऐसा माना है कि यह मेरे पहले वक्तव्यसे असंगत है

> अपने मन्दिरोंमें सच्चे सुधारके लिए तथा उनमें से सारी बुराइयोंको दूर करनेके लिए मुझसे अधिक उत्सुक कोई दूसरा नहीं हो सकता। किन्तु हमें ऐसी कार्रवाइयोंमें साथ नहीं देना चाहिए, जो उनसे भी बदतर साबित हों, जिन बातोंमें हम सुधार करना चाहते हैं। आप लोगोंके सामने दो ही मार्ग हैं या तो आप सभी गुरुद्वारों अथवा जिन मन्दिरोंके गुरुद्वारा होनेका दावा किया जाता है उन मन्दिरोंपर कब्जेके सवालके निपटारेके लिए पंच-निर्णय समितियोंकी स्थापनाकी बात मान लें या फिर इस प्रश्नको <u>स्वराज्य प्राप्त हो जाने तक स्थगित रखा जाये।</u>[2]

जो शब्द रेखांकित हैं, उन्हें पत्र-लेखकने ही अपने पत्रमें रेखांकित कर रखा है। मुझे तो दोनों वक्तव्योंमें कोई भी असंगति नहीं दिखाई देती। पहले वक्तव्यका सम्बन्ध आम आन्दोलनसे है और उसमें स्पष्ट है कि मैंने स्वराज्य प्राप्ति तक उसे स्थगित रखनेकी बात कभी नहीं की। दूसरेमें यह सलाह दी गई है कि अगर गुरुद्वारापर कब्जा करनेके सवालका निबटारा पंच-फैसलेसे न हो सके तो उसे स्वराज्य प्राप्ति तक स्थगित रखा जाये। इस पत्रमें मैंने शक्ति-प्रदर्शन द्वारा कब्जा करनेके औचित्य-अनौचित्यपर विचार किया है। उसमें मैंने यह सलाह दी कि अगर पंच-फैसला सफल नहीं होता और चुनाव सिर्फ उन दो बातोंके बीच करना है कि शक्ति-प्रदर्शन करके कब्जा किया जाये या मामलेको स्थगित रखा जाये, तो मामलेको स्थगित रखना ही ठीक होगा। जिज्ञासु पाठक १९२१ के 'यंग इंडिया' की फाइलमें उस पत्रको देख सकते हैं और तब उन्हें मालूम हो जायेगा कि मैंने उसमें शक्ति-प्रदर्शनके सवालपर विचार किया है। तबसे ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है जिसके कारण मुझे उस पत्रमें अपनाया गया रुख बदल देना पड़े। मेरा यह निश्चित मत

१ देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २५० ।

२ देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४०४-०८ ।

है कि शक्ति-प्रदर्शनके बलपर कोई भी सुधार सम्भव नही है। मैं जानता हूँ कि पच-फैसलेके लिए दो पक्षोका होना जरूरी है। अगर दूसरा पक्ष सहमत न हो तो असहयोगी लोग तो ब्रिटिश न्यायालयोका आश्रय नही लेंगे। किन्तु यदि उसे इन दो स्थितियोके बीच चुनाव करना हो तो वह शक्तिका प्रदर्शन करे या न्यायालयकी शरणमे जाये — अर्थात् अगर वह उस चीजको, जिसे वह अपना अधिकार समझता है, कुछ कालके लिए बलिदान करनेको तैयार न हो — तो मै बेहिचक कहूँगा कि शक्ति-प्रदर्शन द्वारा अपना उद्देश्य सिद्ध करनेके बजाय उसे न्यायालयकी ही शरण लेनी चाहिए — भले ही वह ब्रिटिश न्यायालय क्यो न हो।

धार्मिक निष्ठासे कताई करना

श्री पी० डब्ल्यू० सिबैस्तियन, जो वाइकोम सत्याग्रहके कैदी है, त्रिवेन्द्रम सेन्ट्रल जेलसे लिखते है :

> कई महीनेसे आपका कोई पत्र नहीं मिला। कोचीनमें अपने जेलके अनुभव आपको लिख भेजनेका मुझे समय नहीं मिला और इसी बीच एका-एक मैं त्रावणकोर जेल भेज दिया गया। आपको मालूम होगा कि कोचीन सरकारने मुझे सुरक्षाकी दृष्टिसे छः मासकी सजा दी थी और यह सजा काट-कर जेलसे आये दो महीने भी नहीं हो पाये थे कि वाइकोम सत्याग्रहके सिल-सिलेमें श्रीयुत जॉर्ज जोजेफ और अन्य लोगोके साथ मुझे गिरफ्तार कर लिया गया और छः महीनेकी सादी कैदकी सजा दे दी गई। मेरे और मेरे कुछ मित्रोसे राजनीतिक कैदियो-जैसा व्यवहार किया जाता है और अधिकारीगण हमारी सभी जरूरतो और सुख-सुविधाओका खयाल रखते है। हमें काफी बड़े-बड़े कमरे दिये गये है और उनमें खाटें, बिस्तर, मेज-कुर्सियाँ, लेखन-सामग्री, पुस्तके और अखबार, सभी कुछ दिया गया है। हमें अपने कपड़ोका उपयोग करनेकी छूट दी गई है और हम खद्दरका उपयोग कर रहे है। जेलमें हमारे चरखे हमारे पास है और हममें से कुछ लोग निष्ठापूर्वक कताईका काम करते है। अधिकारीगण बड़े कृपालु है और हमारी सुविधाका बड़ा ध्यान रखते है।

अपनी अन्तरात्माकी आवाजपर जेल जानेवाले इन कैदियोके साथ सद्व्यवहार करनेके लिए मैं त्रावणकोर राज्यको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि कुछ-एक नही, बल्कि सभी सत्याग्रही पूरी निष्ठाके साथ चरखा चलायेगे। उन्हे मैं धुनना सीखने और अगर अनुमति हो तो बुनना सीखनेकी भी सलाह देता हूँ। अगर वे अपने अवकाशका एक-एक मूल्यवान् क्षण धुनाई, कताई और बुनाईमें लगायें तो वे यह सब सीख सकते हैं।

मोपलोके लिए राहत

मुझे पाठकोको यह सूचित करते हुए खुशी होती है कि मेरी अपीलकी ओर ध्यान देनेवालोमे सबसे पहले व्यक्ति एक बोहरा सज्जन है, जिन्होने ५०० रुपयेका

एक नेक भेजा है। मैंने यह रकम श्री याकूब हसनको भेज दी है। दूसरी रकम एक किसी बहनने भेजी है। वह १० रुपये है। उसकी सखीने २ रुपये दिये हैं। एक और हिन्दूने मद्राससे १० रुपये भेजे हैं। 'यंग इंडिया' कार्यालयमें बरेलीके एक हिन्दू भाईकी तरफसे ५ रुपयेकी एक और राशि आई है।

लालाजीका पत्र

लाला लाजपतरायने अपनी यात्राके दौरान जहाजसे एक पत्र मुझे भेजा है। वे उसमें लिखते हैं

> जहाजपर सवार होते वक्त अहिंसाका जो चिह्न मैं धारण किये हुए था उसपर मेरी समुद्र-यात्राके पहले ही दिन हिंसात्मक प्रहार किया गया। जहाजपर लगभग बीस भारतीय हैं। जब हम जहाजपर चढ़े तब हममें से केवल दो ही यात्री गांधी टोपी पहने हुए थे। सबकी आँखें हमारी ओर थीं और कुछके चेहरोंसे रोष भी झलक रहा था। भोजनके समय मैंने अपनी टोपी बाहर टोप टाँगनेकी खूँटीपर रख दी थी। भोजनके बाद जब मैंने उसे ढूँढा तो वह मुझे नहीं मिली। वह गायब हो गई थी। चुरानेके लायक तो वह थी नहीं, इसलिए इसका अर्थ यही निकाला जा सकता है कि वह समुद्रमें फेंक दी गई थी। मुझे इसका दुःख नहीं है, क्योंकि फेंकनेवालेको इससे अवश्य ही सन्तोष मिला होगा। किन्तु मैंने टोपी पहनना बन्द न करनेका संकल्प कर लिया। अतः मैंने कल फिर दूसरी टोपी सैलूनके बाहर उसी जगह रख दी। किन्तु इस बार उसे किसीने हाथ नहीं लगाया और इसलिए फिलहाल इस काण्डको समाप्त समझिए।
>
> मुझे अपनी तबीयत पहलेसे अच्छी मालूम दे रही है। ठंडी समुद्री हवा और आरामसे लाभ मिल रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप भी अपनी जिम्मे-दारियाँ छोड़कर हिन्दुस्तानसे बाहर जाकर कुछ दिनों पूरा विश्राम करें। यह स्पष्ट है कि खद्दरकी टोपीको अभी कई जोरदार लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी।

'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'

एक पत्र-लेखकने मुझे 'नवजीवन' प्रेसके मुनाफेके ५०,००० रुपये खद्दर-उत्पादनके लिए दे देनेके सम्बन्धमें एक पत्र लिखा है। उसका कहना है, मुनाफेसे पता चलता है कि इन साप्ताहिकोंके मूल्यमें खासी कमी की जा सकती है और वे अधिक लोगोंके लिए सुलभ किये जा सकते हैं। मैं इस पत्रके अंश नीचे देता हूँ

> अभी कुछ दिन पहले अखबारोंमें खबर दी गई थी कि नवजीवन प्रेसमें ५०,००० रुपया मुनाफा हुआ है और यह रकम किसी लोकोपकारके कार्यमें खर्च की जायेगी। इससे मालूम होता है कि ईश्वरकी कृपासे प्रेसमें घाटा नहीं है और इसपर प्रबन्धकोंको बधाई दी जानी चाहिए।

किन्तु मै और कई दूसरे लोग इस बातको नही समझ पाते कि इस समय कागजका खर्च कम होनेपर भी घटिया कागजके ८ पृष्ठोके पत्रका मूल्य इतना अधिक क्यो है। हिन्दुस्तानमे आम पाठकोके लिए 'यग इडिया' का दो आना मूल्य बहुत ज्यादा है और 'नवजीवन'का सवा आना मूल्य भी बहुत ज्यादा है। हिन्दुस्तान बहुत गरीब देश है। इस बातको सभी मानते है। यदि इन पत्रोको मुनाफा हो रहा है तो क्या यह उचित नही है कि उनका मूल्य घटा दिया जाये और उनको इस प्रकार बहुसंख्यक जन-साधारणके लिए सुलभ बना दिया जाये?

मै इस सम्बन्धमे यह कह दूँ कि "सैटर्डे रिव्यू,' 'नेशन ऐड एथेनियम', 'अमेरिकन नेशन' और 'स्पैक्टेटर' आदिकी एक प्रति ६–६ पैसकी मिलती है और यह बहुत कम माना जायेगा क्योकि उनकी पृष्ठ-सख्या आपके पत्रकी पृष्ठ-सख्यासे तीन गुनेसे भी अधिक होती है। यदि आपके इन साप्ताहिकोका मूल्य घटाना सम्भव न हो तो क्या आप सुविधापूर्वक इनकी पृष्ठ सख्या नही बढा दे सकते।

हममें से कुछ लोगोका खयाल है कि जबतक आप 'यग इंडिया' और 'नवजीवन'का सम्पादन करते है तबतक उनको २ से ३ पैसे तक बेचनेमें भी घाटा न रहेगा। यदि आप इस सम्बन्धमें जनताके सामने स्पष्टीकरण देना अपना कर्तव्य मानते है तो अपने पत्रके माध्यमसे ऐसा करनेकी कृपा करे।

किन्तु मान ले कि इन पत्रोको २ आना और सवा आनाके वर्तमान मूल्यपर बेचनेसे कोई लाभ नही हो रहा है और न कोई लाभ होनेकी सम्भावना है तो क्या आप किसी भी प्रकार प्रेसके लाभका कुछ अश इन पत्रोमें लगाकर उनको सस्ता नहीं बना सकते?

पत्रमे जो बाते लिखी है मैने उनके सम्बन्धमे व्यवस्थापकसे सलाह की है और वे तथा मै इस नतीजेपर पहुँचे है कि निम्न कारणोसे इनके मूल्यमे बिना कोई खतरा उठाये कमी नही की जा सकती।

१ मुनाफा एक अनिश्चित मद है।

२ मूल्यमे कमी करनेसे ग्राहक-सख्यापर कोई प्रभाव नही पडेगा।

३ जन-साधारणका पाठकोके रूपमे कोई महत्व नही है, क्योंकि वे पढ नही पाते।

४ यद्यपि पत्रोका सम्पादन मै करता हूँ, इससे ग्राहकोकी सख्या कुछ बढी है, किन्तु वह वृद्धि कोई खास नही है। पत्र पहलेकी तरह कदापि लोकप्रिय नही रहे। शायद इसका कारण यह हो कि अब लोगोका जोश कुछ ठडा पड रहा है। 'यग इडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' का खर्च अभीतक पूरा नही निकलता और यदि 'यग इडिया'के अग्रेजी जाननेवाले पाठक और 'हिन्दी नवजीवन'के हिन्दी जाननेवाले पाठक स्वय इन पत्रोका खर्च निकालने और ग्राहक बढानेमे दिलचस्पी न ले तो जल्दी ही इनको बन्द कर देनेका प्रश्न उठ सकता है।

५ दूसरे कामसे मुनाफा कमाकर सस्ता अखवार छापनेकी नीति ठीक नही होती। मैं चाहता हूँ कि पाठक इन पत्रोका खर्च निकालनेमे उतनी ही दिलचस्पी ले जितनी व्यवस्थापक और सम्पादक लेते हैं।

६ पाठकोके लिए सस्ता अखवार लेनेकी अपेक्षा उनको मुनाफेमे सीधा हिस्सेदार वना लेना अधिक अच्छा है।

७ यदि कुछ लोग ऐसे हैं जो मूल्य अधिक होनेमे पत्रोको नही खरीद सकते हैं तो वे समृद्ध ग्राहक, जो इन पत्रो द्वारा प्रस्तुत विचारधारा और नीतियोके प्रचारमे रुचि रखते हैं, चाहे जितनी प्रतियाँ मँगा ले और यदि प्रतियोकी यह सख्या अधिक हुई तो निश्चय ही वे दाम घटाकर दी जायेगी।

८ उपरोक्त क्रममें दिये गये सुझावको देखते हुए अधिक मूल्यका प्रश्न महत्व-पूर्ण नही है क्योकि लोगोको मुनाफेकी एक-एक पाईका लाभ मिलता है।

९ पत्रोका आकार वढाना ठीक नही है। किसी अन्य कारणसे नही तो कमसे-कम इस कारणमे कि मेरी शक्ति सीमित है और मेरे पत्रोकी महत्वाकाक्षा भी सीमित है। लोगोको इस समय मेरी साप्ताहिक चिट्ठी जितनी लम्बी मिल रही है, उससे वडी चिट्ठीकी उन्हे दरकार नही है।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, १५-५-१९२४

२७. साम्राज्यके मालका बहिष्कार

विचित्र वात है कि साम्राज्यके मालके वहिष्कारका प्रश्न वीच-वीचमे उठता ही रहता है। अहिसात्मक असहयोगकी दृष्टिसे मुझे तो यह चीज ऐसी लगती है कि जिसके पक्षमे कुछ भी नही कहा जा सकता। यह तो खालिस वदलेकी भावना है और इसलिए इसमे दण्ड देनेका भाव निहित है। इसलिए जवतक काग्रेस अहिसात्मक असहयोगपर कायम है तवतक दूसरे देशोके मालको छोडकर सिर्फ ब्रिटेनके मालके वहिष्कारका हमारे कार्यक्रममे कोई स्थान नही हो सकता और यदि ऐसा विचार रखनेवाला मैं ही एकमात्र काग्रेसी हूँ तो फिर अगली काग्रेसमे मुझे इस आशयका प्रस्ताव पेश करना ही होगा कि पिछले विशेष अधिवेशनमे इस विषयपर स्वीकृत प्रस्तावको रद कर दिया जाये।

लेकिन इस समय मैं प्रतिहिसात्मक वहिष्कारकी नैतिकतापर नही, उसकी उप-योगितापर विचार करना चाहता हूँ। हम जानते हैं कि इस वहिष्कार अभियानमें नरमदलीय लोग भी शामिल थे किन्तु यह तथ्य भी उसकी उपयोगिताके सवालकी जाँच न करनेका कारण नही वन सकता। इसके विपरीत, यदि मेरी ही तरह वे भी यह मानने लगे कि उन्होने और काग्रेसवालोने जो प्रतिहिसात्मक वहिष्कारका रास्ता अपनाया था, वह न केवल प्रभावहीन साबित हुआ वल्कि उससे हमारे थोथे क्रोध और वहुमूल्य शक्तिके अपव्ययका एक और उदाहरण भी सामने आया तो मैं उनसे

अनुरोध करूँगा कि अब आप पूरे उत्साह और संकल्पके साथ समस्त विदेशी वस्त्रोका बहिष्कार शुरू कीजिए और उनके स्थानपर भारतीय मिलोके बने कपडेको नही, बल्कि हाथसे तैयार किये गये खद्दरको प्रतिष्ठित कीजिए।

मुझे बहिष्कार समितिकी रिपोर्ट पढनेका मौका मिला था। ब्रिटेन अथवा साम्राज्यके मालके बहिष्कारके रूपमें अधिकसे-अधिक क्या किया जा सकता है, उसके सम्बन्धमें इस रिपोर्टको आखिरी फतवा माना जाना चाहिए और वास्तवमें वह है भी। लेकिन, मेरे विचारमें, इस रिपोर्टसे ऐसे बहिष्कारका समर्थन नही, बल्कि बहुत जोरदार खण्डन होता है। उसमें साफ कहा गया है कि साम्राज्यके विभिन्न देशोसे जितना माल यहाँ आता है उसमे से ज्यादातर मालका, उदाहरणके लिए, रेलवेके सामानका, आयात तो स्वय सरकार या अग्रेज पेढियाँ ही करती हैं, और इत्र, साबुन, जूते आदि जो छोटी-मोटी चीजे हैं उनका उपयोग मुख्यत आराम-तलब और विलासप्रिय, वे भारतीय करते हैं जिनके बहिष्कारमे शामिल होनेकी कोई सम्भावना नही है। आँकडोंपर तनिक शान्तचित्त होकर विचार करनेसे स्पष्ट हो जायेगा कि यदि हर एक काग्रेसी और नरमदलीय व्यक्ति इन छोटी-मोटी चीजोका सख्तीके साथ बहिष्कार करे, तब भी उससे राष्ट्रीय धनकी जो बचत होगी वह हर साल किसी भी तरह एक करोड रुपयेसे ज्यादा नही हो सकती। इसके बाद भी जो लोग ऐसा सोच सकते हैं कि ऐसे बहिष्कारके परिणामस्वरूप केनियाके अग्रेजो या कि आमतौरपर सभी अग्रेजोको अपनी नीति बदलनी पडेगी, तो यह असाधारण आशावादिता ही कहलायेगी।

इसपर आलोचकका कथन है, "लेकिन देखिए तो जब साम्राज्यके मालके बहिष्कारके बारेमे बम्बई नगर निगमके प्रस्तावकी खबर रायटरने बिना कोई शुल्क लिये तारसे भेजी तब चीपसाइडमे[1] कैसी हाय-तोबा मच गई थी!" मगर हमे ब्रिटेनके व्यापारिक तौर-तरीकोकी इतनी जानकारी तो है ही कि हम इस हाय-तोबाकी बात सुनकर फूल नही उठेंगे। "इग्लैंडको नुकसान पहुँचानेको कटिबद्ध और अच्छाई-बुराईका कोई खयाल न रखनेवाले भारतीय आन्दोलनकारियो" के खिलाफ भोली-भाली अग्रेज जनताको भडकानेके लिए ऐसी बनावटी हाय-तोबा अकसर मचाई जाती रहती है और जब इस तरहकी उत्तेजना बनावटी नही, वास्तविक होती है तब वह इस बातका लक्षण है कि अग्रेज व्यापारी व्यापारिक चढाव-उतारकी हरएक घटनाके प्रति कितने सतर्क होते हैं। अपने स्वार्थोके प्रति ऐसी ही सहज जागरूकताकी बदौलत वे हर प्रकारके सम्भावित सकटके लिए बराबर तैयार रहते है। इसलिए मैं लोगोको सलाह दूंगा कि वे इग्लैंडकी — और इग्लैंड ही क्यो, किसी भी देशके रोष-प्रदर्शन या उसकी वाहवाहीका भरोसा न करे। आपके जिस कामको वे भय अथवा प्रशसाकी दृष्टिसे देखते हैं, वह काम यदि अपने आपमें काफी पुर-असर नही है तो उनके भय अथवा प्रशसासे हमारी स्थिति निरापद कदापि नही बनती।

यदि हम क्रोधमें अन्धे ही न हो गये हो तो इस बातका एहसास होनेपर कि हम अपनी कुछ राष्ट्रीय आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए भी इग्लैंडपर निर्भर करते हैं,

१. पुराने लन्दनका एक बाजार।

हमे अपने बहिष्कारके प्रस्तावपर शर्म आनी चाहिए। जब हम अग्रेजी पुस्तको और दवाओके बिना अपना काम नही चला सकते तो क्या इग्लैंडकी घडियोका बहिष्कार सिर्फ इसीलिए करना ठीक है कि हम घडियाँ जेनेवासे प्राप्त कर सकते है? और जब हम सिर्फ इसलिए अग्रेजी पुस्तकोके बिना अपना काम चलानेके लिए तैयार नही है कि उनकी हमे जरूरत है तो फिर हम इग्लैंडसे घडियो और इत्रोका आयात करने-वाले व्यक्तिसे अपने व्यापारके बलिदानकी आशा कैसे कर सकते है? मेरी बीमारीके दिनोमे मेरी परिचर्याके लिए एक बहुत ही चुस्त और कुशल अग्रेज नर्स थी। उसे मै "जालिम" कहा करता था, क्योकि वह बराबर बहुत ही स्नेहके साथ मुझसे, मै जितना खाता और सोता था, उससे ज्यादा सोने और खानेके लिए आग्रह करती रहती थी। जब एक हाउस-सर्जन तथा उस नर्सने मुझे सही-सलामत एक खानगी वार्डमे पहुँचा दिया तब उसने अपने होठोपर एक कुटिल मुस्कान लाकर आँखे चमकाते हुए कहा, "जब मै आपके ऊपर छाता ताने आपके साथ चल रही थी, उस समय आपपर मुझे यह सोचकर बरबस हँसी आ गई कि आप ब्रिटेनकी हर चीजका ऐसा प्रबल बहिष्कार करनेवाले व्यक्ति हैं और फिर भी शायद एक अग्रेज सर्जनकी शल्य-कुशलता और एक अग्रेज नर्सकी परिचर्याके कारण ही आपकी जान बच सकी है। और उस सर्जनने शल्य-चिकित्साके जिन औजारो और जिन दवाओका प्रयोग किया था, वे इग्लैंडके ही बने हुए थे। और क्या आपको मालूम है कि आपको यहाँ लाते समय आपके ऊपर जिस छातेसे मैने छाया कर रखी थी वह भी इग्लैंडका ही बना हुआ है?" जब उस भली नर्सने विजय-गर्वके साथ अपना यह आखिरी वाक्य पूरा किया तो स्पष्टत वह यही आशा कर रही थी कि यह स्नेहपूर्ण प्रवचन सुनकर मै तो हक्का-बक्का रह जाऊँगा। लेकिन सौभाग्यसे मैने यह कहकर उसके सारे आत्म-विश्वासको व्यर्थ कर दिया "आप लोग वस्तुस्थितिको यथार्थ रूपमे देखना कब शुरू करेगे? क्या आपको मालूम नही है कि मै किसी भी चीजका बहिष्कार सिर्फ इसलिए नही करता कि वह ब्रिटेनकी है? मै तो केवल विदेशी कपडोका बहिष्कार करनेको कहता हूँ, क्योकि भारतको विदेशी कपडेसे भर देनेके परिणामस्वरूप मेरे करोडो देशभाई दरिद्र हो गये है।" और इस तरह मै उसमे खद्दर आन्दोलनके प्रति भी रुचि पैदा करनेमे सफल हुआ। वह शायद खद्दरकी समर्थक भी बन गई। जो भी हो, खद्दरके औचित्य, आवश्यकता और उपयोगिताको वह समझ गई, लेकिन सभी अग्रेजी मालके सर्वथा प्रभावहीन और निरर्थक बहिष्कारपर तो वह हँस ही सकती थी। (उसका हँसना ठीक ही था)।

यदि प्रतिहिंसात्मक बहिष्कारके ये समर्थक अपने घरो और माल-असबाबपर नजर डाले तो मुझे कोई सन्देह नही कि जिस प्रकार मेरी नर्स मित्रने इस भ्रममे पडकर कि मै भी उसी बहिष्कारवादी विचारधाराका हूँ, मेरी स्थितिके भोडेपनको स्पष्ट लक्षित किया था, उसी प्रकार उन्हे भी अपनी स्थितिके भोडेपनका भान हो जायेगा।

हमारे केनियावासी देशभाइयोके साथ न्याय हो और हमे जल्दीसे-जल्दी स्वराज्य मिल जाये, इस भावनाका मै किसीसे कम समर्थक नही हूँ। लेकिन मै जानता हूँ कि क्रोधके वशीभूत होकर धैर्य खो बैठनेसे हमारे उद्देश्यकी ही हानि होगी। तब

फिर हमे अपने लक्ष्यतक पहुँचानेवाली वह कौन-सी चीज है जिसके लिए सभी दलोके लोग — नरमदलीय भी और कौसिल-प्रवेशके समर्थक भी, अपरिवर्तनवादी भी और अन्य लोग भी — मिल-जुलकर सफलतापूर्वक काम कर सकते है? इस प्रश्नका उत्तर मै दे चुका हूँ। किन्तु अगले अकमे मै उसपर पूरी तरह विचार करूँगा और यह दिखानेकी कोशिश करूँगा कि किन कारणोसे यही उपाय व्यावहारिक है।

[अग्रेजीसे]

यग इंडिया, १५-५-१९२४

२८. जेलके अनुभव — ५

सुधारकी सम्भावना

मेरा यह सतत अनुभव रहा है कि भलाईसे भलाई और बुराईसे बुराई उत्पन्न होती है, इसलिए यदि बुराईका जवाब बुराईसे न दिया जाये तो वह निष्क्रिय हो जाती है और पोषण न पाकर अन्तमे निर्जीव हो जाती है। बुराई बुराईके सहारे ही जी सकती है। प्राचीन कालके सन्त-महात्मा इस सत्यको जानते थे, इसीलिए वे बुराईका बदला बुराईसे देनेके बजाय जान-बूझकर भलाईसे देते थे और इस तरह बुराईका नाश करते थे। फिर भी, बुराई अभीतक चल ही रही है। कारण यह है कि बहुत लोगोने अभीतक इस अन्वेषणसे लाभ नही उठाया है, हालाँकि इसमे जो नियम अन्तर्निहित है वह वैज्ञानिक सूक्ष्मताके साथ सही काम करता है। बात यह है कि हम इतने आलसी है कि अपने सामने उपस्थित समस्याओको इस नियमके अनुसार सुलझानेकी कोशिश ही नही करते और इसलिए मान बैठते है कि इसके अनुसार आचरण करनेकी हममे क्षमता ही नही है। वास्तविकता यह है कि जिस क्षण इस नियमके सत्यकी प्रतीति हो जाती है, उसी क्षण बदीका बदला नेकीसे देना इतना आसान हो जाता है जितना आसान कोई और काम है ही नही। मनुष्य और पशुके बीचका भेद स्पष्ट करनेवाला यही एक बडा गुण है। प्रहारके बदले प्रहार न करना, मनुष्यताका स्वाभाविक नियम है। जबतक हमे इस सत्यकी पूरी प्रतीति नही हो जाती और जबतक हम उसके अनुसार आचरण नही करते तबतक हम शरीरसे मनुष्य होते हुए भी वास्तवमे मनुष्य नही है। इस नियममे अपवादकी कोई गुंजाइश नही है।

मुझे ऐसा एक भी उदाहरण याद नही, जिसमे इस नियमके प्रयोगका वांछित परिणाम न हुआ हो। मेरा तो यह अनुभव रहा है कि सर्वथा अनजान व्यक्ति भी इस नियमके प्रयोगसे बरबस प्रभावित होते है। मुझे दक्षिण आफ्रिकाकी जिन तमाम जेलोमे रहना पडा, उनके जो अधिकारी शुरूमे मेरे प्रति बहुत अधिक विरोध-भाव रखते थे, वे सबके-सब मेरे मित्र बन गये, क्योकि मैने उनकी बदीका जवाब बदीसे नही दिया। उनकी कटुताका जवाब मैने मिठाससे दिया। इसका मतलब यह नही है

कि मैं अन्यायके विरुद्ध लड़ता नहीं था। इसके विपरीत, मेरे दक्षिण आफ्रिकाकी जेलों-के अनुभव-ऐसे अन्यायोंके विरुद्ध सतत संघर्षकी कहानी है। इनमें से अधिकांश संघर्षमें मैं सफल भी रहा। भारतकी जेलोंमें अधिक लम्बे अरसे तक रहनेके फलस्वरूप मेरे चित्तपर तो अहिंसात्मक आचरणका सत्य और सौन्दर्य और भी गहराईसे अंकित हो गया है। यरवदा जेलके अधिकारियोंके साथ कटुता पैदा करना मेरे लिए बहुत ही आसान था। उदाहरणके लिए जब सुपरिटेंडेंटने वे अपमानजनक बातें कही थीं, जिनका वर्णन मैंने हकीम साहबको लिखे पत्रमें[1] किया है, उस समय चाहता तो मैं भी उतना ही तीखा जवाब दे सकता था। परन्तु वैसा करके तो मैं अपनी ही नजरमें हल्का हो जाता और सुपरिटेंडेंटके इस सन्देहको भी पक्का बना देता कि मैं एक झगड़ालू और शरारती राजनीतिज्ञ हूँ। किन्तु, हकीम साहबवाले पत्रमें वर्णित अनुभव तो उसके बाद जो घटनाएँ होनेवाली थीं उनकी तुलनामें नगण्य ही थे। उनमें से कुछ घटनाओंका मैं यहाँ वर्णन कर रहा हूँ।

मुझे मालूम था कि एक गोरा वार्डर मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखता है। प्रत्येक कैदीपर शक करना वह अपना फर्ज मानता था चूँकि मैं सुपरिटेंडेंटकी जानकारीके बिना छोटे-छोटे काम भी नहीं करना चाहता था, इसलिए मैंने उनसे कह रखा था कि अगर सामनेसे जानेवाला कोई कैदी मुझे सलाम करेगा तो जवाबमें मैं भी उसे सलाम करूँगा। मैंने उन्हें यह भी बता दिया था कि मेरे खानेके बाद जो खुराक बचती है वह सब मैं अपनी देख-रेख करनेवाले कैदी वार्डरको दे देता हूँ। वह गोरा वार्डर सुपरिटेंडेंटके साथ हुई मेरी इस बातके बारेमें कुछ भी नहीं जानता था। एक बार उसने किसी कैदीको मुझे सलाम करते देखा। जवाबमें मैंने भी उसे सलाम किया। उसने हम दोनोंको यह काम करते देखा था, लेकिन उसने टिकट उस कैदीसे ही लिया। इसका अर्थ यह था कि उस बेचारेके बारेमें रिपोर्ट की जायेगी। मैंने तुरन्त उस वार्डरसे कहा कि आप मेरे बारेमें भी रिपोर्ट करें, क्योंकि मैंने भी उस बेचारे कैदीकी तरह ही अपराध किया है। उसने मुझसे सिर्फ इतना ही कहा कि मैं तो अपना फर्ज अदा कर रहा हूँ। गोरे वार्डरकी इस अनधिकार चेष्टाके लिए मैंने उसके विरुद्ध कोई रिपोर्ट नहीं की। इसके बजाय सुपरिटेंडेंटसे मिलनेपर सिर्फ उस कैदी भाईको बचानेके खयालसे मैंने उनसे उसके और मेरे बीच हुई सलाम-बन्दगीकी ही बात कही और उस वार्डरके साथ मेरी जो बातचीत हुई थी उसका कोई जिक्र नहीं किया। इससे वार्डर समझ गया कि उसके लिए मेरे दिलमें कोई बुराई नहीं है। उस दिनसे उसने मुझपर सन्देह करना छोड़ दिया, इतना ही नहीं, वह मेरे प्रति बड़ा मित्र-भाव रखने लगा।

सब कैदियोंकी तरह मेरी भी रोज तलाशी ली जाती थी, इसपर मैंने कभी आपत्ति नहीं की। महीनों तक रोज शामको कैदियोंको बन्द करनेसे पहले नियमित रूपसे मेरी तलाशी ली जाती रही। इस मौकेपर कभी-कभी एक जेलर आता था, जो बहुत ज्यादा उद्धत था। मेरे शरीरपर मेरे कच्छके सिवा और कुछ रहता नहीं

१ देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १३९-१४६।

था, इसलिए उसके लिए मुझे छूनेका भी कोई कारण नही था। फिर भी उसने एक वार मेरी कमर इत्यादिको टटोलकर मेरी जरूर तलाशी ली, उसके वाद मेरे कम्बलो और दूसरी चीजोको उलट-पलट कर देखा और जूतेसे मेरे तसलेको हटाया। यह सब मुझे असह्य हुआ जा रहा था और मै क्रोधके वशीभूत हो जाता, परन्तु सौभाग्यसे मैने अपनेपर काबू पा लिया और उस नौजवान जेलरसे कुछ नही कहा। फिर भी, इस आदमीके वरतावके बारेमे रिपोर्ट की जाये या नही, यह सवाल मनमे बना रहा। यह घटना यरवदा जेलमें भरती होनेके बहुत दिन बादकी है, इसलिए यदि मै उसके विरुद्ध रिपोर्ट करता तो उसके इस वरतावके लिए सुपरिंटेडेट अवश्य ही सख्त नाराजी जाहिर करता। अन्तमे मै इस निश्चयपर पहुँचा कि रिपोर्ट न की जाये। मुझे महसूस हुआ कि ऐसे व्यक्तिगत अपमान और अशिष्टताको पी ही जाना चाहिए। मै उसके खिलाफ शिकायत करूँ तो कदाचित् उसकी नौकरी भी चली जाये। इसलिए ऐसा करनेके वजाय मैने उसके साथ बात की। मैने उससे कहा कि उसकी उद्धतता मुझे कितनी खटकी है और किस प्रकार मुझे पहले उसके विरुद्ध रिपोर्ट करनेका विचार आया था और अन्तमे यह सब करना छोडकर किस प्रकार मैने सिर्फ उसीके साथ वात करके मामला खत्म करनेका निश्चय किया है। मेरा उससे इस तरह वात करना उसे बहुत अच्छा लगा और उसने कृतज्ञताका अनुभव किया। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने अनुचित व्यवहार किया था; यद्यपि उसने कहा कि इसमे मेरी भावनाओको चोट पहुँचानेका उसका कोई मशा नही था। उस दिनके वादसे उसने मुझे कभी परेशान नही किया। सब कैदियोके प्रति उसका आम व्यवहार सुधरा या नही, इसका मुझे पता नही है।

परन्तु सबसे बडा और अद्भुत परिणाम तो आया, कोडोकी सजाओ और उपवासोके प्रसगोमे मेरे वीचमे पडनेपर। पहले-पहल आजीवन कैदकी सजावाले सिख कैदियोने उपवास किये। उन्होने ठान ली थी कि जबतक उन्हे उनके कच्छ, जो उनके लिए धर्मकी रूसे अनिवार्य वस्त्र है, वापस नही दे दिये जाते और उन्हे अपना भोजन खुद बनानेकी अनुमति नही मिल जाती तबतक वे निराहार रहेगे। इस उपवासका पता चलते ही मैने उनसे मिलनेकी इजाजत माँगी, परन्तु इजाजत नही दी गई। अधिकारियोकी दृष्टिमे वह जेलकी प्रतिष्ठा और अनुशासनका प्रश्न था। असलमे यदि कैदियोको वाहरके मनुष्योकी तरह ही भावनाशील प्राणी माना जाये तो इसमें उपर्युक्त दोनो वातोमे से एक भी वातका सवाल नही उठता। मुझे विश्वास है कि यदि उनसे मिलनेकी अनुमति मुझे दे दी गई होती तो अधिकारी बहुत-सी कठिनाइयो और परेशानियोसे वच जाते और सार्वजनिक धनकी भी वचत होती। इतना ही नही, वे सिख कैदी अपने लम्बे कष्टपूर्ण उपवासोसे वच जाते। परन्तु मुझे कहा गया कि मै उन सिख कैदियोसे मिल न सकूँ तो भी उन्हे "वेतारके तार" से अपना सन्देश भेजनेमे मुझे कोई बाधा नही होगी। "वेतारके तार" शब्दोका अर्थ मै यहाँ समझा दूँ। जेलकी भाषामे इस 'वेतारके तार' से सन्देश भेजनेका अर्थ होता है अधिकारियोकी जानकारीमे अथवा उनकी जानकारीके विना अनधिकृत रूपमें एक कैदीका दूसरे कैदीको सन्देश भेजना। सारे अधिकारी जेलमें ऐसे सन्देशोके आने-जानेकी बात जानते है

और उसे तरह दिये रहते हैं। अनुभवसे उन्होने सीख लिया है कि जेलके नियमोके ऐसे उल्लघनका पता लगाना अथवा उनका न होने देना असम्भव बात है। मै कह देना चाहता हूँ कि मै इस विषयमे अपने सिद्धान्तसे टससे-मस नही हुआ। मुझे याद नही पडता कि मैने कभी अपने कामसे ऐसा "वेतारका सन्देश" भेजा हो। जव कभी भेजा है, जेल शासनके हितकी दृष्टिसे प्रेरित होकर ही। मेरा खयाल हे इसके परिणामस्वरूप अधिकारीवर्गने मुझपर अविश्वास करना बन्द कर दिया और यदि उनकी चलती तो वे उपर्युक्त ढगके प्रसगोपर वीच-बचाव करनेके मेरे प्रस्तावका लाभ उठाना पसन्द करते। परन्तु ऊपरके अधिकारीगण जो अपनी प्रतिष्ठाके विषयमे जरूरतसे ज्यादा सतर्क थे, इस तरहकी कोई बात सुननेको तैयार नही थे।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रसगपर मैने "वेतारके सन्देश" का उपयोग किया, परन्तु उसका लगभग कोई असर नही हुआ। यह उपवास बहुत दिन चलता रहा और जब टूटा तो कह नही सकता कि मेरे सन्देशोका उसमे कुछ हाथ था या नही।

यह पहला अवसर था जब मुझे महसूस हुआ कि मानवताकी खातिर मुझे ऐसे मौकोपर बीचमे पड़ना चाहिए।

दूसरा प्रसग तब आया जब मुलशीपेटाके कैदियोको उनके कम काम करनेपर कोडे लगाये गये।[1] यहाँ उस दुखभरी कथाको विस्तारसे कहना जरूरी नही है। इन कैदियोमें कुछ कैदी किशोरावस्थाके थे। सम्भव है, उन्होने जान-बूझकर अपनी शक्तिसे कम काम किया हो। उन्हे पीसनेका काम सौपा गया था। पता नही क्यो, मुलशीपेटावाले इन कैदियोको दूसरे स्वराज्यवादी कैदियोकी तरह "राजनीतिक" कैदियोकी श्रेणीमें नही रखा गया था। कारण चाहे कुछ भी रहा हो, काममे भी उन्हे ज्यादातर चक्की चलानेका काम ही दिया जाता था। चक्की चलानेका काम, हम लोगोमे एक नाहक बदनाम काम है। मै जानता हूँ कि कोई भी काम जब जबरन कराया जाता है और जब काम लेनेवाले लोग बराबर नेक और भले नही होते तो वह करनेवालेके लिए बहुत कष्टकर होता है। फिर भी जो व्यक्ति अपनी अन्तरात्माकी आवाजपर स्वय जेल जाता है, उसे तो इस तरहका जो भी काम दिया जाये उसको गर्व और आनन्दकी चीज समझना चाहिए। मुलशीपेटाके कैदी — और सिर्फ वे ही क्यो, दूसरे कैदी भी — समष्टि रूपमे काम-चोर नही थे। उन सबके लिए यह एक नया ही अनुभव था और इसलिए सत्याग्रहीके नाते उनका क्या फर्ज है, अधिकसे-अधिक काम किया जाये अथवा कमसे-कम या बिलकुल किया ही न जाये, इसका एहसास उन्हे नही था। मुलशीपेटाके कैदियोमे से अधिकाश इस मामलेमे शायद उदासीन वृत्ति रखते थे। इस बारेमे उन्होने शायद कोई विचार ही नही किया था। फिर भी उनमें बहुतसे कैदी तेज-दम मर्द और नौजवान थे। वे सीधे "जो हुक्म" कहकर हुक्म बजानेवाले लोग नही थे। इस कारण उनमे और अधिकारियोमे हमेशा खटपट हो जाया करती थी।

१ देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १६७-६८।

अन्तमे वह घडी आ ही गई। मेजर जोन्स उबल पडे। उनका खयाल था कि ये लोग जानबूझकर अपना काम नही करते। उन्होने कैदियोको एक सबक देना तय किया और उनमे से छ आदमियोको कोडे लगाये जानेका हुक्म दिया। इस सजाकी खबर फैलते ही सारी जेलमे खलबली मच गई। सभी जानते थे कि जेलमे क्या हो रहा है और किस कारण हो रहा है। उन कैदियोको जब मेरे बाडेके आगेसे ले जाया जा रहा था, तब मेरी नजर उनपर पडी और मुझे बडी व्यथा हुई। उनमे से एकने मुझे पहचान लिया और प्रणाम किया। "तनहाई"मे जो "राजनीतिक" कैदी थे, उन्होने इस घटनाके विरोधमे हडताल करनेका विचार किया। मै इससे पहले मेजर जोन्सके गुणोकी तारीफ कर चुका हूँ। यहाँ मुझे उनके कार्यकी आलोचना करनेका दुखपूर्ण धर्म-पालन करना पड रहा है। मेजर जोन्स मूलत बहुत अच्छी प्रकृतिके न्यायप्रिय व्यक्ति थे। वे अफसरोके मुकाबले कैदियोकी तरफदारी भी करते थे। परन्तु उनके काममे उतावलापन था। इसलिए कभी-कभी वे अपने निर्णयमे भूल कर जाते थे किन्तु इससे कोई बडी हानि नही होने पाती थी, क्योकि वे अपनी भूल-को सुधारनेके लिए भी तत्पर रहते थे, परन्तु कोडे मारने-जैसी सजाओके मामलोकी, जहाँ छूटा हुआ तीर वापस नही आ सकता, बात अलग है। मैने नरमीसे इस विषयमे उनसे बातचीत की, परन्तु कम काम करनेपर कोडेकी सजा देना अनुचित है, यह बात निश्चय ही उनके गले नही उतरी। जब-जब पूरा काम नही किया गया है तब-तब इरादातन ही ऐसा किया गया हो सो बात नही है—वे इसे भी माननेको राजी नही हुए। उन्होने इतना जरूर स्वीकार किया कि ऐसे मामलोमे गलतीकी गुजाइश बराबर रहती है, परन्तु उनके अपने अनुभवके अनुसार इसकी सम्भावना इतनी कम होती है कि वह नगण्य है। दुखकी बात है कि बहुतेरे अधिकारियोकी भाँति मेजर जोन्स भी कोडेकी सजाकी उपयोगितामे विश्वास रखते थे।

इस घटनाको अत्यन्त गम्भीर मानकर "राजनीतिक" कैदी उसके विरुद्ध उपवास शुरू करने ही जा रहे थे कि मुझे उसका पता चल गया। मैने सोचा कि जबतक भूख हडतालके पक्षमे औचित्यका आधार बहुत मजबूत नही कर लिया जाता, तबतक उपवास करना गलत है। कैदी कानूनको अपने हाथमे लेकर हर मामलेका निर्णय खुद ही करनेका दावा नही कर सकते। इसलिए इन सब भाइयोसे मिलने देनेके लिए मैने फिर एक बार मेजर जोन्ससे इजाजत माँगी। लेकिन इजाजत नही दी गई। इस बारेमे मेरा अधिकारियोसे जो पत्र-व्यवहार हुआ उसे मै प्रकाशित कर चुका हूँ।[1] उत्सुक पाठकोसे मेरी सिफारिश है कि वे यह लेख पढते समय वह पत्र-व्यवहार भी साथ ही पढ ले। मुझे फिर उस "बेतारके सन्देश"का आश्रय लेना पडा। इस सन्देशका सीधा परिणाम यह हुआ कि भूख-हडताल और यह सकट टल गया। परन्तु इसी घटनाके सिलसिलेमे एक और दुखद प्रसग उपस्थित हो गया। मेरा सन्देश भाई जयरामदासने उनतक पहुँचाया था और यह जेल नियमोके विरुद्ध था। भाई जयरामदासको सम्बन्धित राजनीतिक कैदियोसे मिलना जरूरी था और तदनुसार वे उनसे

१. देखिए खण्ड २३।

मिले भी। चूंकि उन कैदियोंको जानबूझकर अलग-अलग खण्डोंमें रखा गया था, भाई जयरामदासको अपना अहाता छोड़कर उन सब खण्डोंमें जाना पड़ा। कैदी-कर्मचारियों और एक गोरे जेलरको इस बातकी जानकारी जरूर थी। भाई जयरामदासने उनसे कहा कि मैं जेलके नियमोंको भंग कर रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ। आप मेरे खिलाफ खुशीसे रिपोर्ट कर सकते हैं। यथासमय उनके बारेमें रिपोर्ट हुई। मेजर जोन्सने कहा कि यद्यपि मैं जानता हूँ कि जयरामदासने जो-कुछ किया उसका उद्देश्य अच्छा था और यद्यपि मैं इस कामकी सराहना भी करता हूँ फिर भी इस सिलसिलेमें जेलके नियमका जो भंग हुआ है, मुझे इसके सम्बन्धमें कार्रवाई करनी ही होगी। उन्होंने भाई जयरामदासको सात दिनकी तनहाईकी सजा दी। मुझे जब यह मालूम हुआ तब मैंने मेजर जोन्ससे कहा कि मुझे भी कमसे-कम जयरामदासके बराबर तो सजा मिलनी ही चाहिए, क्योंकि जयरामदासने जेलके नियमका भंग मेरे कहनेसे ही किया है। उन्होंने कहा कि जेलके अनुशासनको बनाये रखनेकी दृष्टिसे नियमके प्रत्यक्ष उल्लंघनके विरुद्ध बाजाब्ता पेश की गई शिकायतपर कार्रवाई करना मेरा फर्ज है। जयरामदासने जो-कुछ किया, वे उसपर अप्रसन्न नहीं थे, बल्कि यह सोचकर प्रसन्न ही थे कि उन्होंने सजा भुगतनेकी जोखिम उठाकर भी उपवास करनेको तैयार राज-नीतिक कैदियोंसे मुलाकात की, और इस तरह एक बुरी परिस्थितिको पैदा नहीं होने दिया। मुझे सजा देनेके बारेमें उन्होंने कहा कि "आपको सजा देनेका मुझे तो कोई कारण दिखाई नहीं देता, क्योंकि आप अपनी हद छोड़कर नहीं गये, और जयरामदास गये सो आपके भेजे हुए गये, यह हकीकत अधिकृत रूपमें मेरे सामने पेश नहीं हुई।" मैं उनकी दलीलका मर्म समझ गया और फिर मुझे सजा देनेके बारेमें मैंने अपना आग्रह छोड़ दिया।

मैं अगले प्रकरणमें एक ऐसी घटनाका वर्णन करूँगा जो सत्याग्रहीकी दृष्टिसे अपेक्षाकृत अधिक प्रभावपूर्ण और महत्वकी है। उसके बाद हम अहिंसात्मक व्यवहारके परिणामों और उपवासके नैतिक पहलूपर विचार करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-५-१९२४

२९. सन्देश: धाराला परिषद्को[1]

१५ मई, १९२४

आपने लुटेरोके साथ अपनी प्रथम सात्विक भेटकी जो चर्चा की थी उसे मै आजतक नही भूला हूँ। आज आप उस समयकी अपेक्षा बहुत आगे बढ गये है। आपने धाराला[2] भाइयो और बहनोको अपने स्नेह पाशमे बाँध लिया है। मेरी कामना है कि यह सम्बन्ध दृढतर होता जाये और आप इन भाई-बहनोकी सर्वतोन्मुखी उन्नतिमे सहायक बने।

मुझे इस बातका पूरा यकीन है कि यदि किसी जातिमे कुछ लोग लुटेरे और आवारा बन जाते है तो उसका दायित्व उसी जातिपर होता है। लुटेरोको लूटमार करना अच्छा लगता हो, सो बात नही है। लोग स्थितियोसे मजबूर होकर लूटपाट करते है। जब वे समाज द्वारा दण्डित किये जाते है तब उनकी यह आदत और भी पक्की हो जाती है और इस तरह यह रोग फैलता जाता है। यदि हम लुटेरो और दूसरे जरायमपेशा लोगोके साथ भी प्रेमका व्यवहार करे तो वे अपनी भूल समझ जाते है और नेक बन जाते है।

आप इस तरह अमूल्य कार्य कर रहे हैं। मुझे यह मालूम है कि धाराला जातिके सभी लोग लुटेरे नही है। उनमे से बहुत से लोग तो नीतिमान है। परन्तु हमने अज्ञान-वश उन्हे अपनेसे दूर कर रखा है। मै आपके इस कार्यको सब कार्योसे अधिक महत्व-पूर्ण मानता हूँ। यह कहना अनुचित न होगा कि आपके इस कार्यसे भारतका पुनरु-द्धार होना सम्भव है।

आप अपने प्रेमको विवेकशून्य न बनने दें। आप धाराला भाइयो और बहनोको किसी उद्योगमे प्रवृत्त करे। आप उन लोगोके बीच यह प्रचार तो कर ही रहे होगे कि वे अपने हाथका कता-बुना कपडा पहने, मद्यपान और अफीम इत्यादि व्यसनोको त्याग दें, अपने बालकोको पाठशालाओमें भेजे और बडे-बूढे भजन-कीर्तन सीखे। परन्तु मै चाहता हूँ कि आप इस दिशामें और भी अधिक प्रयत्न करे। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि सम्मेलनका कार्य निर्विघ्न समाप्त हो और आपकी सेवा करनेकी शक्ति और भी बढे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

१. बोरसदमें हुई इस परिषद्के लिए गांधीजीने यह सन्देश रविशंकर व्यासको भेजा था। व्यासजी बादमें रविशंकर महाराजके नामसे विख्यात हुए। वे गांधीजी के पक्के अनुयायी और समाज-सेवी हैं और उन्होंने आजीवन धारालाओंका सुधार करनेका व्रत लिया है।

२. धाराला गुजरातकी एक उग्र और युद्धप्रिय जाति है। इस जातिके लोग खेतीबारी करते हैं, परन्तु इनमें से कुछ, खासकर अकालके दिनोंमें, लूटमार करने लगते हैं।

३०. पत्र : एमिल रोनिगरको[1]

पोस्ट अन्धेरी
१५ मई, १९२४

प्रिय महोदय,

आपका पत्र मिला। आपने जिन रचनाओका उल्लेख किया है उन्हे किसीके द्वारा पुन मुद्रित किये जानेके सम्बन्धमे मैंने सर्वाधिकार सुरक्षित नही रखा है। मैंने उनका प्रकाशन भी नही किया है। सच पूछे तो आपको अनुमतिके लिए विभिन्न प्रकाशकोको ही लिखना चाहिए। मेरा खयाल है कि प्रकाशन-सम्बन्धी आपके प्रस्तावका कोई भी व्यक्ति विरोध न करेगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री एमिल रोनिगर
राइन फेल्डन
(स्विट्जरलैंड)

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८८०२) की फोटो-नकलसे।

३१. पत्र : न० चि० केलकरको

पोस्ट अन्धेरी
१५ मई, १९२४

प्रिय श्री केलकर,

यह सस्मरण श्री बापटके लिए है। इच्छा और भी भेजनेकी थी क्योकि मेरे पास बहुत-से सस्मरण है। किन्तु मैं आपसे और श्री बापटसे कहूँगा कि मुझपर दया करे। सचमुच मैं एक क्षणके लिए भी खाली नही रह पाता। लोकमान्यके[2] जितने सस्मरण मेरे पास है उन्हे लिखनेके लिए मुझे कोई अन्य अवसर तथा कोई और माध्यम ढूँढना होगा।

१ रोनिगरने २ अप्रैलको जर्मनीसे गांधीजीको पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने भारतके सम्बन्धमें लिखी गई एक पुस्तकके रचयिताके रूपमें अपना परिचय दिया। उस पुस्तकमें उन्होंने गांधीजीपर भी कुछ लिखा था। रोनिगरने गांधीजीसे उनके कुछ चुने हुए लेख आदि छापनेकी अनुमति माँगी थी।

२ लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक।

मै श्री बापटके नाम अलगसे पत्र नही भेज रहा हूँ; क्योकि इस सम्बन्धमे लिखे गये पत्रोमे अन्तिम पत्र आपका ही था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत न० चि० केलकर
पूना

[संलग्न]

लोकमान्य तिलकके संस्मरण

लोकमान्यसे मेरी सर्वप्रथम भेटके अवसरकी सब बाते मुझे भली-भाँति याद है। यह १८९४[1] की बात है। उन दिनो मुझे भारतमे इक्का-दुक्का लोग ही जानते थे। मै दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोके मामलेको लेकर एक सार्वजनिक सभाका आयोजन करनेके लिए पूना गया था। मै पूनाके लिए एक नितान्त अपरिचित व्यक्ति था और वहाँके सार्वजनिक नेताओको केवल नामसे जानता था। श्री सोहोनी जो मेरे भाईके मित्र थे और जिनके यहाँ मै ठहरा था मुझे लोकमान्यके पास ले गये। उनके व्यवहारसे मेरी हिचक दूर हो गई और फिर जब उन्होने मुझसे मेरे आनेका कारण पूछा तो मैने तुरन्त उन्हे अपना उद्देश्य बता दिया, लोकमान्यने कहा, "अच्छा! तब तो आप पूनामे एक अजनबी-जैसे है, आप यहाँके सार्वजनिक नेताओको नही जानते और न आपको स्थानीय मतभेदोके बारेमे ही कुछ मालूम है। किन्तु मै आपको बता देना चाहता हूँ कि यहाँ दो राजनीतिक सस्थाएँ है। एक तो 'डेकन सभा' है और दूसरी है 'सार्वजनिक सभा'। दुर्भाग्यवश दोनो सस्थाएँ एक मचपर साथ-साथ नही आती। सभाका आयोजन दोमे से कोई एक सस्था भी करे तो भी आपके उद्देश्यके प्रति तो सबकी सहानुभूति होनी ही चाहिए। इसलिए, इस सभाका सम्बन्ध किसी एक राजनीतिक सस्थासे न जोडा जाये। अच्छा हुआ जो आप मुझसे मिलने आ गये। आप श्री गोखलेसे[2] भी मिल ले, वे भी 'डेकन सभा' से सम्बद्ध है। मुझे विश्वास है कि आपको वे भी यही सलाह देगे, जो मैने दी है। आपको ऐसी सभा करनी चाहिए, जिसमे सभी दल शामिल हो। आप श्री गोखलेको सूचित कर सकते है कि मेरी ओरसे कोई अडचन नही डाली जायेगी। इस प्रकारकी सभाके लिए हमे अध्यक्ष ऐसा चुनना होगा जो निष्पक्ष, विख्यात एव प्रभावशाली हो। पूनामे डा० भण्डारकर इस प्रकारके व्यक्ति है। इसलिए आप उनसे भी मिल लें और आपसे जो-कुछ मैने कहा है तथा जो-कुछ श्री गोखले कहेगे वह सब उनसे कह दें और उन्हे अध्यक्ष बननेके लिए आमन्त्रित करे। वे सार्वजनिक जीवनसे प्राय निवृत्त हो चुके है। वे सकोच करे तब भी उनसे आग्रह कीजिएगा। आपका उद्देश्य बहुत ही न्यायोचित है। वह उन्हे पसन्द जरूर आयेगा। यदि आप उन्हे अध्यक्ष बननेके लिए राजी कर सके तो बाकी सब काम सरल हो जायेगा। जो निर्णय हो उसे मुझे समय रहते सूचित कर दीजिये,

१. यह १८९६ होना चाहिए, देखिए खण्ड २, पृष्ठ १४७।
२. गोपाल कृष्ण गोखले।

आप विश्वास रखें कि मेरी पूरी मदद होगी। मैं चाहता हूँ कि आपको पूर्ण सफलता मिले।'

मैं सोच भी नहीं सकता कि लोकमान्यने एक ऐसे नवयुवकको जिससे वे कभी मिले नहीं थे, जितना प्रोत्साहन दिया, उनके [illegible] कोई व्यक्ति उससे अधिक दे सकता है। यह मेरे जीवनकी स्मरणीय मुलाकात थी और लोकमान्यकी जो पहली छाप मुझपर पड़ी वह बादकी सभी मुलाकातोंके अवसरपर ज्यों-की-त्यों बनी रही।[1]

अंग्रेजी पत्र (एस॰ एन॰ ८८०३) की फोटो-नकलसे।

३२. पत्र : देवचन्द पारेखको

बृहस्पतिवार [१५ मई, १९२४][2]

भाई श्री ५ देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला।

मैं अपना कर्त्तव्य निभा चुका हूँ। अब जो हो सो हो।

मोहनदासके वन्देमातरम्

देवचन्दभाई पारेख
[illegible] प्लाट
भावनगर

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००६) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

३३. पत्र : मणिबहन पटेलको

वैशाख सुदी १२ [१६ मई, १९२४][3]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा २० तारीख तक आरोग्य भवनसे[4] चला जाना कदापि ठीक न होगा। तुम्हें वहां यह मास तो पूरा करना ही चाहिए। मेरा वहां आना तो हो ही कैसे सकता है? मुझे २९ तारीखको साबरमती जरूर पहुँचना है।

१. आत्मकथा, भाग-२, अध्याय २८ भी देखिए।

२ डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

३ जैसा इस पत्रमें लिखा है, गांधीजी २९ मई, १९२४को आश्रम आये थे। १९२४ में वैशाख सुदी द्वादशी १६ मई को पड़ी थी।

४ सूरत जिलेके दजीरा नामक स्थानमें।

वसुमती बहन जाना चाहेगी तो सूचित करूँगा, परन्तु आशा कम है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

३४. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको[1]

जुहू
१७ मई, १९२४

प्रिय महोदय,

मुझे आपका कृपा-पत्र प्राप्त हुआ है। उत्तरमें निवेदन है कि आजकल मेरे स्वास्थ्यकी जैसी हालत है उसको देखते हुए किसी सार्वजनिक समारोहमे शामिल होना तथा उसके कार्यक्रमको निभाना निकट भविष्यमे सम्भव नही दिखता। तथापि आशा करता हूँ कि मैं आगामी अगस्त मासमे किसी दिन कावसजी जहांगीर हालमे नगर निगम द्वारा दिये गये मानपत्रको स्वीकार कर सकूंगा। यदि आपको असुविधाजनक न हो तो मेरा सुझाव यह है कि तिथिका निर्णय आपके साथ बातचीतके बाद ही हो।[2]

आपका सच्चा,

माननीय विट्ठलभाई झ० पटेल
अध्यक्ष
नगर निगम
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ८८११) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र वि० झ० पटेलके १५ मई के पत्रका उत्तर है। उस पत्रमें उन्होंने गांधीजीको सूचना दी थी कि बम्बई नगर निगमने उन्हें मानपत्र देनेका प्रस्ताव पास किया है।

२. श्री पटेलने १९ जुलाईके अपने उत्तरमें गांधीजीसे प्रार्थना की थी कि वे १५ अगस्तसे पहले कोई तारीख निश्चित करें। गांधीजीने उन्हें लिख भेजा कि ९ अगस्त ठीक रहेगी।

३५. पत्र : नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटियाको

वैशाख सुदी १३ [१७ मई, १९२४][1]

सुज्ञ भाईश्री

आपका पत्र मिला। आपको क्षोभ नहीं हुआ, यह जानकर मुझे सन्तोष हुआ है। परन्तु मैंने उसके सम्बन्धमें 'नवजीवन' में क्षमा-याचना कर ली है। वह छप भी गई होगी।

आपका,
मोहनदास गांधी

[गुजरातीसे]
नरसिंहरावनी रोजनीशी

३६. पत्र : मणिबहन पटेलको

[१७ मई, १९२४][2]

चि० मणि,

अहमदाबाद पहुँचनेके बाद देखेंगे कि तुम्हे दवा लेनी है या नहीं। पूरे तौरसे स्वस्थ हुए बिना वहाँसे हरगिज नहीं आना है। वसुमती बहन कदाचित् सोमवारको यहाँसे चलकर वहाँ पहुँचेगी। भाई सूरतमे उसका घर जानते हैं। वे वहाँ जाकर उसको देख ले और यदि वह वहाँ पहुँच गई हो तो उसे लिवा ले जायें। क्या वहाँ अलग मकान मिलते हैं? मैं यथासम्भव तार दिला दूँगा। अभी तो वसुमती बहन इन्जेक्शन ले रही है। दुर्गा बहनका[3] क्या हाल है? क्या वह मुझे पत्र लिखेगी ही नहीं? मेरा हाथ कुछ-कुछ काँपता तो जरूर है।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन वल्लभभाई पटेल
आसर सेठका आरोग्य भवन
हजीरा, सूरत होकर

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१. इस पत्रमें जिस क्षमा-याचनाका जिक्र है वह १८ मई, १९२४ के **नवजीवन**में नरसिंहरावके ७ मई, १९२४ के पत्रके साथ प्रकाशित हुई थी। १९२४ में वैशाख सुदी त्रयोदशी १७ मईको पड़ी थी।

२. प्रकाशित पुस्तकके अनुसार।

३. महादेवभाईकी पत्नी।

३७. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे

बम्बई
शनिवार १७ मई, १९२४

हमारे प्रतिनिधिने पूछा : क्या आप वाइकोमसे आये प्रतिनिधि-मण्डलके साथ हुई अपनी बातचीतके बारेमें कोई वक्तव्य दे सकते हैं?

महात्माजीने धीमे स्वरमें बोलते हुए कहा :

मैं समझता हूँ कि हमारी बातचीत लगभग समाप्त हो चुकी है और मुझे यकीन हो गया है कि सगठनकर्त्ताओने आन्दोलनको व्यवस्थित और अहिंसापूर्ण ढगसे चलाया है। उन्होंने इस आन्दोलनको जिस दृढता और मुस्तैदीसे चलाया, उससे सारी भारतीय जनताका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो गया है। यह सब बेशक हितकर है, लेकिन वाइकोमसे आये अपने मित्रोसे पूरी तौरपर बातचीत कर लेनेके बाद मेरी अभीतक यही राय बनी हुई है कि सत्याग्रह केवल हिन्दुओ तक सीमित रखा जाना चाहिए और इसमे केरलके या ज्यादासे-ज्यादा मद्रास अहातेके स्वयसेवकोको ही भाग लेना चाहिए। सत्याग्रह अपने उग्रतम रूपमे आनेपर गहरा हो जाता है और इसलिए स्वाभाविक है कि तब उसकी व्याप्तिका क्षेत्र बहुत ही सीमित होता है। मैं अपना आशय स्पष्ट कर दूं। सगठनकर्त्ता जितने ही शुद्ध होगे, सत्याग्रह उतना ही अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली होगा। इसलिए सगठनकर्त्ताओके द्वारा सत्याग्रहके क्षेत्रके विस्तारका अर्थ वास्तवमे अपनी कमजोरी अर्थात् उद्देश्यकी कमजोरी नही, बल्कि सत्याग्रहके लिए सगठित किये गये व्यक्तियोकी कमजोरीको स्वीकार करना है। केवल हिन्दुओसे ही सम्बन्धित धार्मिक प्रश्नको लेकर गैर-हिन्दू कदापि सत्याग्रह नही कर सकते, इसके बारेमे मेरा खयाल है कि मैं 'यग इडिया' के पृष्ठोमें काफी लिख चुका हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरे मित्रोने मेरी दलीलोके वजनको समझ लिया है। सत्याग्रहियोके रूपमे जो ईसाई और मुसलमान सज्जन जेल गये हैं यदि मैं उनको राजी कर सकूं तो मैं यही चाहूँगा कि वे अधिकारियोसे कह दे कि उन्होंने गलतीसे सत्याग्रह किया था। इसलिए अगर अधिकारीगण उनको रिहा करना चाहे तो ऐसा किया जा सकता है, क्योंकि वे फिर अछूत हिन्दुओकी खातिर गिरफ्तार होनेकी कोशिश नही करेगे। मैं 'अछूत' हिन्दू शब्दका इस्तेमाल जानबूझकर कर रहा हूँ — इसलिए कि मुझे मालूम हुआ है कि मलाबारके सीरियाई ईसाइयोमे कुछ अछूत ईसाई भी मौजूद हैं। परन्तु चूंकि वर्तमान सत्याग्रह अछूत ईसाइयोकी ओरसे नही चलाया जा रहा है, इसलिए सर्वश्री जोजेफ सिबैस्तियन और अब्दुर्रहीमके त्यागकी कोई सार्थकता नही है।

और जहाँतक सिखोके लगरका सम्बन्ध है, वह सिर्फ बेजा ही नही, बल्कि मुख्य उद्देश्य और केरलकी जनताके आत्मसम्मानके लिए हानिकारक भी है। उद्देश्यके लिए हानिकारक इसलिए है कि वह स्वयसेवकोके त्यागकी शक्तिको कमजोर बनाता है और

वह सुधार-विरोधी कट्टरपथी हिन्दुओको निरर्थक रूपसे नाराज किये विना नही रहेगा। केरलकी जनताके आत्मसम्मानके लिए वह हानिकारक इसलिए है कि वह सिख मित्रो द्वारा दिये जानेवाले भोजनको बिना विचारे ग्रहण कर लेती है। इसे एक दान ही माना जा सकता है। जो आसानीसे अपना भोजन स्वय जुटा सकते है और अपने ही रसोईघरोमे उसका प्रबन्ध कर सकते है, ऐसे लोग एक बडी तादादमे लगरसे भोजन ले और न चाहते हुए भी एक अनावश्यक दानको ग्रहण करनेके भागी बनें—इसे मै आत्मसम्मानके लिए हानिकारक ही मानता हूँ। इससे कोई अन्तर नही पडता कि सिख लोग हिन्दू समाजके ही अग माने जाते है या नही माने जाते। मै चाहूँगा कि केरलके लोग अपना इतना आत्मसम्मान बनाये रखे और इतना साहस दिखाये कि यदि सनातनी हिन्दू भी ऐसा कोई भण्डारा खोलना चाहे तो वे नम्रतापूर्वक ऐसी सहायता स्वीकार करनेसे इनकार कर दे। मै ऐसे भण्डारे या लगरका औचित्य वही मानता हूँ जहाँ अकाल पडा हो और लोग भूखो मर रहे हो।

बाहरसे मिलनेवाली आर्थिक सहायताके बारेमे मेरा अभीतक यही मत है कि केरलके लोगोको न तो ऐसी सहायता माँगनी चाहिए और न मद्रास-अहातेसे बाहरके हिन्दुओ या अन्य लोगोसे बिना माँगे मिलनेपर भी उसे स्वीकार ही करना चाहिए। यदि उनको आर्थिक सहायताकी इतनी ही जरूरत हो तो वह केवल मद्रास-अहातेके हिन्दुओसे ही प्राप्त की जानी चाहिए। हाँ, भारत-भरमे फैले हुए केरलके लोग यदि इस सघर्षको ठीक मानते हो तो आन्दोलनके सगठनकर्त्ताओको यथासम्भव रुपये-पैसेकी मदद देना उनका कर्त्तव्य है।

मेरे मित्रोने मुझसे पूछा था कि क्या मैंने यह राय जाहिर की थी कि केरलकी काग्रेस कमेटीका इस सवालको अपने हाथमे लेना उचित नही था। मैंने उनको उत्तर दिया था कि यदि यह प्रश्न उठाया ही जाना था तो फिर काग्रेस कमेटीका इसमें सबसे आगे बढकर दखल देना फर्ज था, क्योकि वह सभी शान्तिपूर्ण और वैधानिक उपायोसे छुआछूतको मिटानेके लिए शपथबद्ध है। लेकिन काग्रेस द्वारा इस सवालको अपने हाथमे लेनेका मतलब यह नही हो सकता और न है ही कि सत्याग्रहमें गैर-हिन्दू भी भाग ले सकते है या उनको लेना चाहिए। वे सत्याग्रहको केवल अपना नैतिक समर्थन ही प्रदान कर सकते है।

मुझे इसमें किसी भी तरहका कोई शक नही है कि यदि आन्दोलनके सगठन-कर्त्ता इसी प्रकार शान्तिपूर्ण ढगसे सघर्ष चलाते रहे, यदि वे मेरी सुझाई हुई सभी मर्यादाओको स्वीकार कर ले और यदि उनका इरादा सघर्षको अनिश्चित कालतक जारी रखनेका हो तो उनको सफलता अवश्य ही मिलेगी। लेकिन साथ ही इस तथ्यपर मै जितना भी जोर दूँ कम होगा कि सत्याग्रह हृदय-परिवर्तनकी एक प्रक्रिया है और इसलिए आन्दोलनके सगठनकर्त्ताओको अपने प्रतिपक्षियोके हृदयको परिवर्तित करनेका उद्देश्य सदा सामने रखना चाहिए।

प्रश्न. क्या आपने 'डेली टेलीग्राफ' के भारत-स्थित सवाददाता द्वारा भेजा हुआ वह तार पढा है, जिसमें बताया गया है कि आपने काग्रेसके अगले अधिवेशनमें एक नई नीति स्वीकार करानेके लिए पहल करनेका निश्चय किया है? वह नीति यह है

कि विधान सभा और विधान परिषदोंमें बहुमत प्राप्त करके, बजटकी अस्वीकृतिकी वर्तमान निरर्थक नीतिके स्थानपर, एक रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल किया जाये। तारके अनुसार उस कार्यक्रमके अन्तर्गत जहाँतक एक ओर आवश्यक सेवाओंको चालू रखनेमें सरकारसे सहयोग करना है, वहाँ दूसरी ओर अपने सुस्थिर और ठोस बहुमत के बलपर आग्रहपूर्वक यह माँग भी की जानी है कि सुधारोंके क्षेत्रको तेजीके साथ व्यापक बनाया जाये, उनकी रूप-रेखामें आवश्यक परिवर्तन किये जायें और सेना सहित अन्य विभागोंके भारतीयकरणका काम और भी शीघ्रतासे पूरा किया जाये। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनको आमतौरपर और स्वराज्यवादियोंको खासतौर पर बदनाम करनेकी इच्छासे जानबूझकर की गई इस गलतबयानीको देखते हुए और आन्दोलनके वास्तविक उद्देश्योंके बारेमें इंग्लैंडमें मौजूद घोर अज्ञानको देखते हुए, क्या आप यह जरूरी नहीं समझते कि इंग्लैंडमें भारतके बारेमें सत्यका प्रचार करनेके लिए एक भारतीय ब्यूरो स्थापित किया जाये? क्या नागपुर अधिवेशनके बादसे अब तक आपके विचारोंमें कोई परिवर्तन हुआ है? यदि यह समझा जाये कि इस प्रकार का ब्यूरो चलानेमें इतना अधिक खर्च पड़ेगा कि कांग्रेस उसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगी तो क्या कांग्रेस किसी ऐसे व्यक्तिको अपने कोषमें से रुपये-पैसेकी थोड़ी-बहुत सहायता नहीं दे सकती, जो यह काम करनेको राजी हो?

तार मैंने देखा तो था, पर मैंने सोचा कि कोई भी व्यक्ति उसे किसी तरहकी अहमियत नहीं देगा और न यही माननेको तैयार होगा कि तारमें सहयोगके सम्बन्धमें जो विचार मुझपर आरोपित किये गये हैं, वे विचार सचमुच मेरे हो सकते हैं। मैं तो अक्सर कहता रहा हूँ कि व्यक्तिगत हैसियतसे तो मैं सहयोग करना चाहता हूँ और इसके लिए उत्सुक भी हूँ, परन्तु जबतक सरकारमें हृदय-परिवर्तनका कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ता तबतक मैं असहयोगकी शक्तियोंको मजबूत करनेके लिए अधिक इच्छुक और अधिक उत्सुक हूँ। हृदय-परिवर्तनका मुझे अभीतक तो कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ा है। ब्रिटिश समाचारपत्रोंमें छपनेवाली गलतबयानियोंके खण्डनके लिए लन्दनमें प्रचार ब्यूरो चलाने या उसके लिए रुपये-पैसेकी मदद देनेके बारेमें मेरे विचार पहले जैसे ही हैं। मेरी अब भी यही राय है कि यदि हम अपने आपमें ठोस और दृढ़ हों तो कोई भी गलतबयानी या गलत ढंगसे पेश की गई कोई भी चीज हमें कभी कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकती। दूसरी तरफसे देखा जाये तो ब्रिटिश समाचारपत्रोंमें या विदेशी समाचारपत्रोंमें हमारी माँगोंका समर्थन करने या हमारी पीठ थपथपानेके लिए जो कुछ भी लिखा जायेगा, वह हमारे कमजोर, असगठित और सरकार-से संघर्षके लिए अप्रस्तुत रहनेकी अवस्थामें हमारे किसी कामका साबित नहीं होगा। इसलिए हम और मर्दोंसे जितना धन बचा सकते हैं, उसकी पाई-पाई खद्दरके प्रचार, राष्ट्रीय पाठशालाओं और अन्य रचनात्मक कार्योंपर ही खर्च करनेकी मैं सलाह देता हूँ।

प्र० : आपने देखा होगा कि देशमें, सिर्फ राजनीतिक शिकायतोंकोही नहीं, निरी धार्मिक और सामाजिक शिकायतोंको दूर करानेके लिए भी तथाकथित सत्याग्रहका

तरीका अपनाना आम बनता जा रहा है। क्या आपका यह खयाल नहीं है कि इस अस्त्रके दुरुपयोगका और "सत्याग्रह" के बदले अवैध किस्मके उद्देश्योको पूरा करनेके लिए, "दुराग्रह"का खतरा पैदा होता जा रहा है। क्या आप सत्याग्रहियोके लिए --कमसे-कम काग्रेसके नेतृत्वमें चलनेवाले सत्याग्रहियोके लिए--कुछ नियम निर्धारित कर सकते है?

हाँ, मैं मानता हूँ कि सत्याग्रहके सत्याग्रह न रहकर एक अनिष्टकारी शक्ति हो जानेका खतरा है और इसलिए उससे हानि पहुँच सकती है। किसी भी अच्छी चीज और विशेषकर इतनी समर्थ और सूक्ष्म तथा नाजुक शक्तिके दुरुपयोगकी सम्भावना तो हमेशा रहती ही है। मेरा खयाल है कि वाइकोमके सत्याग्रहकी चर्चाके दौरान मैंने उसकी बुनियादी बातोके बारेमें सरसरी तौरपर विचार किया है, पर मैं आपका यह सुझाव मानता हूँ और थोडी फुरसत मिलते ही मैं सत्याग्रहियोके लिए अपने विचारके अनुसार कुछ अनिवार्य नियम निर्धारित कर दूंगा।

सर्वश्री के० माधवन नायर और कुरुर नीलकण्ठन् नम्बूद्रीपाद वाइकोमसे एक शिष्टमण्डलके सदस्योके रूपमें आये थे। उन्होने मुझसे कहा कि महात्माजीके साथ उनकी तीन-चार बार काफी देर-देर तक मुलाकातें हुई है और काफी ब्योरेवार चर्चा भी हुई है। उन्होने अपनी योग्यतानुसार सारी बातें महात्माजीके सामने पेश कीं। महात्माजीने अपने सहज धैर्य और विनम्रताके साथ उनकी बातें सुनीं। उन्होने मुझको बतलाया कि महात्माजीके वक्तव्यसे वे सन्तुष्ट है और उन्होने अपना विश्वास व्यक्त किया कि केरल और मद्रास-अहातेके कार्यकर्त्ताओ और सहानुभूति रखनेवालोको भी इससे सन्तोष होगा। महात्माजीने जोर देते हुए कहा कि प्रत्येक आन्दोलनमें आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन आवश्यक होते है। उनको ऐसी आशका थी कि अस्पृश्यता-आन्दोलन कुछ क्षेत्रोमें जिस रूपमें चलाया जा रहा है, उसको देखते हुए शायद महात्माजी काग्रेस कमेटीके इस आन्दोलनको अपने हाथमें लेनेपर राजी न हो। लेकिन अब उन्हे विश्वास हो गया है कि वे ऐसी कोई आपत्ति नही करेगे। महात्माजीने बडी ही स्पष्टताके साथ अपनी बात सामने रख दी है और इससे इस दिशामें कोई आशका नहीं रहती। शिष्टमण्डल एक-दो दिनोमें वाइकोम लौट रहा है।

महात्माजीने कौंसिलके प्रश्नके सम्बन्धमें हमारे प्रतिनिधिको बताया कि इसी हफ्तेके अन्दर-अन्दर इस सम्बन्धमें एक सर्वांगपूर्ण वक्तव्य समाचारपत्रोको भेज दिया जायेगा। हमारे प्रतिनिधिको मालूम हुआ है कि महात्माजी और स्वराज्यवादी नेताओके बीच कई बार काफी देर-देर तक परामर्श चलता रहा है और वे किसी निर्णयपर लगभग पहुँच चुके हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-५-१९२४

३८. टिप्पणियाँ

बाल-विवाह और शास्त्र

"त्यागकी मूर्ति" शीर्षक लेखपर[1] एक भाईके पत्रका भावार्थ इस प्रकार है "आप १५ वर्षसे कम आयुकी लडकियोका विवाह करनेके विरुद्ध है, लेकिन शास्त्रोमे तो स्त्री-धर्मको प्राप्त होनेसे पहले ही लडकियोका विवाह करनेका आदेश दिया गया है। जो लोग बाल-विवाहोके विरुद्ध है वे भी शास्त्रोके नियमोका पालन करते है। ऐसे धर्मसकट मे क्या किया जाना चाहिए?" मुझे तो यह धर्मसकट नही जान पड़ता। शास्त्रोके नामसे प्रसिद्ध पुस्तकोमे जो कुछ लिखा है वह सब सच ही है और उसमे कुछ भी परिवर्तन नही किया जा सकता, ऐसा कहने अथवा माननेवाले मनुष्यके समक्ष तो पल-पलमे धर्मसकट उपस्थित होता रहेगा। एक ही श्लोकके अनेकार्थ होते है और वे भी परस्पर विरुद्ध तक। इसके अतिरिक्त शास्त्रोमे कुछ सिद्धान्त अटल होते ह और कुछ ऐसे जो विशेष काल और क्षेत्र आदिका विचार करके बनाये जाते है और उसी हदतक लागू किये जा सकते है। उत्तर ध्रुवमें जहाँ छ' महीने तक सूर्य अस्त नही होता, अगर कोई मनुष्य रह सके तो उसे सन्ध्या किस समय करनी चाहिए? उसे स्नानादिके सम्बन्धमे क्या करना चाहिए? 'मनुस्मृति'में खाद्याखाद्यके अनेक नियमोका विधान किया गया है। इस समय उनमे से एकका भी पालन नही किया जाता। उसके सभी श्लोक एक ही मनुष्यके द्वारा अथवा एक ही समयमे रचे गये हो, यह बात भी नही है। इसलिए जो मनुष्य ईश्वरसे डरकर चलना चाहता है और नीति सम्बन्धी नियमोको भग भी नही करना चाहता उसके सम्मुख तो एक मार्ग यही है कि वह, जो भी बात नीति विरुद्ध दिखाई दे उसको त्याग ही दे। स्वेच्छाचार कभी धर्म हो ही नही सकता। हिन्दू धर्ममे सयमकी कोई सीमा नही बाँधी गई है। जिस बालाको वैराग्य हो गया हो वह क्या करे? स्त्री-धर्मको प्राप्त होनेका अर्थ क्या है? जो अवस्था स्त्री-जातिके लिए सामान्य है उसको प्राप्त होनेपर लडकीका विवाह किया ही जाना चाहिए, ऐसा आग्रह कैसे किया जा सकता है? स्त्री-धर्मको प्राप्त करनेपर ही विवाह किये जानेकी मर्यादा तो समझमे आती है। हम शास्त्रोके अर्थके पचडेमें पडकर कदापि अत्याचार नही कर सकते। जो हमें मोक्षकी ओर प्रवर्तित करे वे ही शास्त्र है, जो हमे सयमकी शिक्षा दे वही असली धर्म है। जो मनुष्य बाप-दादोके कुएँमे डूब मरता है वह मूर्ख ही माना जायगा। अखा भगतने[2] शास्त्रोको अधेरा कुआँ माना है। ज्ञानेश्वरने[3] वेदोको सकुचित बताया है। नरसिंह मेहताने[4] अनुभवको ही

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५५६-६०।
२. १७ वीं शताब्दीके एक गुजराती सन्त कवि।
३. १३ वीं शताब्दीके एक महाराष्ट्रीय सन्त।
४. १५ वीं शताब्दीके गुजराती सन्त कवि।

ज्ञान माना है। यदि हम ससारकी ओर दृष्टि फेरे तो देख सकते है कि जिसे उक्त भाईने धर्म माना है वह धर्म नही, वरन् अधर्म है, और सर्वथा त्याज्य है। आज हम इस अधर्मके फलस्वरूप असख्य बालाओकी हत्या करते है। इतिहास इसके लिए हिन्दू पुरुष-वर्गकी भर्त्सना करेगा। लेकिन हमे इतिहासकी चिन्ता नही करनी चाहिए। हम बाल-विवाहका कडुवा फल स्वय ही चख रहे है। हिन्दू युवकोमें बहुतेरे नि सत्व, अपग और भयग्रस्त है। इसका एक सवल कारण बाल-विवाह है, इस तथ्यको कदापि अस्वीकार नही किया जा सकता। हमे यह बात नही भूलनी चाहिए कि अपरिपक्व माता-पिताओसे उत्पन्न सन्तानका शारीरिक गठन, चाहे जितने भी उपाय क्यो न किये जाये, मजबूत नही हो सकता। सौभाग्यसे उपर्युक्त भाई जिस नियमका उल्लेख कर रहे है उसे सारे हिन्दू मान्यता नही देते, इसलिए हिन्दुओने अपनी शरीर-सम्पत्तिको अभी पूरी तरह नही खो दिया है। यदि इसका अक्षरश पालन किया जाता तो हिन्दू-समाजमे सवल पुरुषोका लोप ही हो जाता।

उचित शिकायत

हरिहर शर्मासे 'नवजीवन' के बहुतसे पाठक परिचित नही होगे। वे 'काका' के कुटुम्बी कहे जा सकते है। मै पाठकोको इस परिवारका कुछ परिचय देता हूँ। जब भाई केशवराव देशपाण्डे बैरिस्टरने बडौदामे गगानाथ विद्यालय खोला तब उन्होने अपने आसपास एक शिक्षक-समुदाय इकट्ठा किया। उन्होने परस्पर कुटुम्ब-भावना विकसित करनेके विचारसे ऐसे उपनाम रखे मानो सब एक दूसरेके सम्बन्धी हो। सस्थाके रूपमें तथा भवनके रूपमें तो इस विद्यालयका लोप हो गया है, लेकिन भावके रूपमें यह आज भी विद्यमान है। इस सस्थाके पुराने कौटुम्बिक सम्बन्ध अभी बने हुए है। खूनका रिश्ता जैसे कभी नष्ट नही हो सकता, उस तरह आध्यात्मिक सम्बन्ध भी नष्ट नही हो सकता, इस विचारसे प्रेरित होकर इस कुटुम्बके जिन लोगोको उपनाम दिये गये थे उन्होने उन उपनामोको पवित्र मानकर अभी तक बनाये रखा है। केशवराव देशपाण्डे-को उनके कार्यकर्त्ता अब भी "साहेब" के नामसे जानते है और मान देते है। हमारे कालेलकर तो अपने आपको "काका" के नामसे ही पहचाने जानेकी अपेक्षा करते है। फडकेको फडके नामसे तो बहुत कम गुजराती जानते है। हम सब तो उन्हे "मामा" नामसे ही पहचानते है। इसी तरह हरिहर शर्मा "अण्णा" है। दक्षिणी कुटुम्बोमे प्रयुक्त उपनामोमे अण्णा भी एक है। इसका प्रयोग तमिलमे भी लगभग इसी अर्थमे किया जाता है। "अण्णा" का अर्थ है भाई। एक अन्य व्यक्ति "भाई" नामसे पुकारे जाते है। हालाँकि वे अभी जीवित है तथापि वे न होनेके बराबर है। मै इस प्रख्यात कुटुम्बके सभी कुटुम्बियोके नामोसे परिचित नही हूँ। काका स्वय ही किसी दिन फुरसतके समय हमे इस कुटुम्बका पूरा-पूरा परिचय देगे, इस आशासे मैने इतना सिर्फ हरिहर शर्माका परिचय देते हुए ही लिखा है।

इतनी प्रस्तावना लिखकर मैने एक भ्रम भी दूर किया है। कुछ लोग अथवा बहुत लोग यह मानते आये है कि "काका" और ऐसे ही अन्य सेवक गुजरातको दी हुई मेरी भेंट है। सचमुच देखा जाये तो ये सब "साहेब" की देन है। उन्होने इनको

मुझे उधार दे दिया है और इस तरह मुझे भी बाँध लिया है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इन कुटुम्बियोकी मदद करता हुआ जितना बन सके, "साहेब" के प्रति उनके भक्ति-भावको पुष्ट करूँ। मैंने जो घोसला बनाया है उसमें अन्य पक्षी भी आ बसे हैं। इनके मूलकी खोज करें तो मालूम होगा कि ये सब इस घोसलेमे इसलिए आये हैं कि यहाँ उनको आश्रय मिला है। यहाँ उनके पख काटे नही गये हैं, बल्कि वे और भी मजबूत बन गये हैं, इसलिए वे अपनी इच्छाके अनुसार उड सकते हैं। जबतक ये यहाँ रहेंगे तबतक मैं इनका कर्जदार हूँ। मै इनको लानेवाला नही हूँ, इसीलिए इनको रखनेवाला भी नही हूँ। ये सब स्वतन्त्र हैं, लेकिन सयमका पालन करनेके कारण वे स्वेच्छाचारी नही कहे जा सकते।

इन "अण्णा" ने द्रविड़ प्रान्तमें हिन्दी-प्रचारके कार्यको उठा लिया है। इसके लिए उन्होने और उनकी धर्मपत्नीने प्रयागमे हिन्दीका अभ्यास किया। दोनोने प्रयागसे हिन्दीकी परीक्षा उत्तीर्ण की और बादमें मद्रासमे हिन्दी-प्रचारका काम करने लगे हैं। जो इस सम्बन्धमे अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहे वे उनसे ब्यौरा मँगवा सकते हैं।

भाई "अण्णा" "हिन्दी प्रचार" नामक एक पाक्षिक पत्र भी निकालते हैं। इन्हे बोरसदकी प्रान्तीय परिषद्की[1] स्वागत समितिके अध्यक्षने निमन्त्रण भेजा था। वह साराका-सारा अग्रजीमें था। क्या अण्णा इसे सहन कर सकते थे? उन्होने मुझे एक तीखा पत्र लिखा है। उन्हे लिखना तो यह पत्र मोहनलाल पण्ड्याको[2] था। अपराध तो उन्होने किया और चोट पडी मुझपर। अण्णा पण्ड्याको जानते भी हैं, लेकिन वे शायद उनसे डरते हैं। मैं ठहरा एक दुबली गाय, अत हर किसीकी लाठी मुझपर ही पडती है। अण्णाने भी वही किया है। वे लिखते हैं[3]

इसपर मुझे कोई टीका करनेकी जरूरत नही रह जाती। अण्णाको सन्तुष्ट करनेका एक ही रास्ता है। वह यह है कि जिन गुजरातियोने अभीतक हिन्दी-उर्दू अर्थात् हिन्दुस्तानी न सीखी हो वे उसे सीख ले और अबसे परस्पर अथवा दूसरोसे व्यवहारमें मुख्य रूपसे मातृभाषाका अथवा राष्ट्रभाषाका ही प्रयोग करें।

नरसिंहराव भाईका पत्र

यह पत्र[4] मुझे जिस रूपमे मिला है, नरसिंहराव भाईकी इच्छानुसार उसी रूपमें प्रकाशित कर दिया है। मैंने उनके नामका जिस ढगसे उपयोग किया है[5] देखता हूँ कि उससे उनको बड़ा दु ख हुआ है। इससे मुझे भी दु ख हुआ है और अनजाने ही मुझसे जो अपराध बन पडा है उसके लिए मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। मैं जब किसीके भी नामका जानबूझकर मजाक नही उडाता, तब नरसिंहराव और 'खबरदार' जैसे साहित्य-सेवियोके नामके साथ इस प्रकारकी छूट कैसे ले सकता हूँ? मैंने जो कुछ

१. १३ मई, १९२४ को हुई सातवीं गुजरात राजनीतिक परिषद्।
२. मोहनलाल कामेश्वर पण्ड्या, गुजरातके खेडा जिलेके एक कांग्रेसी कार्यकर्ता।
३. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।
४. यह पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।
५. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५३०।

लिखा है वह केवल दोनो सज्जनोके प्रति आदरभावसे प्रेरित होकर ही लिखा है। अगर मैं अपने लेखमे इस भावको दर्शानेमे असफल रहा हूँ तो मैं दोनो सज्जनोको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि इसका कारण मेरी भाषाकी खामी है, भावकी नही।

भाई कल्याणजीकी हालत

भाई कल्याणजी विट्ठलजीकी[1] तवीयत ठीक नही रहती और उनको खुराक इत्यादि की भी असुविधा है—यह जानकर 'नवजीवन' मे इस सम्बन्धमे कुछ भी लिखनेसे पहले मैंने जेलके इन्स्पेक्टर जनरलसे लिखकर पूछताछ की थी। उन्होने उनका जो उत्तर दिया है वह निम्नलिखित है।[2]

भाई कल्याणजीका वजन सन्तोपजनक नही कहा जा सकता। जिस समय वे जेलसे बाहर थे यदि उस समय उनका वजन ९२ पौण्ड था तो यह बहुत कम कहा जायेगा। जेलमें उनकी ऊँचाईके अनुपातसे उनका वजन वढना ही चाहिए।

अन्त्यजोंके सम्बन्धमें कीर्तन

एक स्वयंसेवक लिखता है, स्वदेशी अर्थात् खादी-प्रचार, मद्य-निषेध आदिके विषयमे कीर्तन हो रहे हैं और इनसे गाँवोमे प्रचार बहुत अच्छा हो जाता है। ऐसे भजन-कीर्तन अन्त्यजोंके सम्बन्धमें नही हैं। गुजरातमे असहयोगी और सहयोगी दोनो तरहके पर्याप्त कवि हैं। अन्त्यजोका विषय एक ऐसा विषय है जिसे लेकर सहयोगी और असहयोगीके बीच बहुत अन्तर नही है। जब अन्त्यज भाइयोके लिए स्कूल खोलनेके कार्य-में सरकारी मदद लेनेकी बात आती है, तभी केवल सहयोगी और असहयोगीके भेदकी बात उठती है। तात्पर्य यह कि अस्पृश्यता पाप है और अन्त्यजोकी सहायता करना प्रत्येक हिन्दूका धर्म है। क्या हमारे कवि ऐसी काव्य-रचना करके गुजरातकी सेवा नही करेंगे?

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १८-५-१९२४

३९. गृह-कलह

एक "अनाविल"[3] भाई जिन्होने अपना नाम-धाम लिखा है, अपने दुःखकी राम-कहानी[4] इस प्रकार सुनाते हैं

मैं समझता हूँ कि जैसी दयनीय दशा इन भाईकी है वैसी बहुतसे व्यक्तियोकी होगी। पति और पत्नीका पारस्परिक सम्बन्ध इतना नाजुक है कि कोई तीसरा मनुष्य

१ गुजरातके एक कांग्रेसी नेता और शिक्षा-शास्त्री।

२ यहाँ नहीं दिया गया है।

३ गुजरातकी एक जाति।

४ पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने पूछा था कि वे क्यों न अपनी पत्नीके विरुद्ध सत्याग्रहका प्रयोग करें क्योंकि उनकी पत्नी सिनेमा, विवाह आदिमें सम्मिलित होते समय विदेशी कपड़ेका प्रयोग करती हैं, हालाँकि उन्होंने विदेशी कपड़ा खरीदना बन्द कर दिया है।

उनके बीच पड़कर शायद ही कुछ सेवा कर सके। सत्याग्रह शुद्ध प्रेमका चिह्न है। दाम्पत्य प्रेम बिलकुल निर्मल हो जानेपर ही पराकाष्ठाको पहुँचता है। तब उसमे विषय-वासनाकी गुंजाइश नही रहती और स्वार्थकी तो गन्धतक नही हो सकती। इसीसे कवियोने दाम्पत्य प्रेमका वर्णन करके आत्माकी परमात्माके प्रति लगनको स्वयं पहचाना है और दूसरोको भी उसका परिचय कराया है। ऐसा प्रेम कदाचित् ही मिल पाता है। विवाहका बीज आसक्तिमे होता है। उसकी उत्पत्ति तीव्र आसक्तिसे हुई है। तीव्र आसक्ति जब अनासक्तिके रूपमे परिणत हो जाये और जब एक आत्मा शरीर-स्पर्शकी आकाक्षा त्यागकर और उसका खयाल तक न रखकर दूसरी आत्मामे तल्लीन हो जाये, तब उस प्रेममे परमात्माके प्रेमकी कुछ झलक मिल सकती है। यह वर्णन भी बहुत स्थूल है। मैं जिस प्रेमकी कल्पना पाठकोको कराना चाहता हूँ वह निर्विकार प्रेम है। मै खुद अभी इतना विकार-शून्य नही हुआ हूँ कि उसका यथार्थ वर्णन कर सकूं। इसलिए मैं जानता हूँ कि जिस भाषाके द्वारा मुझे उस प्रेमका वर्णन करना चाहिए वह मेरी कलमसे नही निकल पाती, तथापि मुझे आशा है कि शुद्ध हृदय पाठक उस भाषाकी कल्पना अपने-आप कर लेगे।

मैं दम्पतीमे जब इतने निर्मल प्रेमको सम्भव मानता हूँ तब वहाँ सत्याग्रह क्या नही कर सकता? यह सत्याग्रह वह वस्तु नही है जो आजकल सत्याग्रहके नामसे पुकारी जाती है। पार्वतीने शकरके मुकाबलेमे सत्याग्रह किया था अर्थात् हजारो वर्ष तक तपस्या की थी। रामचन्द्रने भरतकी बात नही मानी तो वे नन्दिग्राममे जाकर बैठ गये। राम भी सत्य-पथपर थे और भरत भी सत्यपथपर थे। दोनोने अपना-अपना प्रण रखा। भरत रामकी पादुकाएँ लेकर उनकी पूजा करते हुए योगारूढ हुए। रामकी तपश्चर्यामे बाह्य आनन्दकी गुंजाइश थी। भरतकी तपश्चर्या अलौकिक थी। रामके लिए भरतको भूल जानेका अवसर था। भरत तो पल-पल राम-नामका ही जप करते थे। इसीसे भगवान दासानुदास बन गये।

यह शुद्धतम सत्याग्रहकी मिसाल है। इसमें दोनोमे से किसीकी भी जीत नही हुई। यदि कोई विजयी कहा ही जाये तो वह भरत है। यदि भरतका जन्म न हुआ होता तो रामकी महिमा भी न हुई होती। यह कहकर तुलसीदासने प्रेमका रहस्य हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है।

यदि पत्र-प्रेषक सज्जन घड़ी भरके लिए स्थूल प्रेमको भूलकर दाम्पत्य-प्रेममें छिपे सूक्ष्म प्रेमको धारण कर सके — मैं जानता हूँ कि यह प्रयत्नसे नहीं होता, वह तो जब प्रकट होना होता है तब हो जाता है — तो मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि उनकी पत्नी अपने विलायती कपड़े उसी दिन जला देंगी। परन्तु कोई यह शंका न करे कि छोटी-सी बातके लिए मैं इतना बड़ा उपाय क्यों बता रहा हूँ? कोई यह भी न कहे कि मैं तारतम्य ही नहीं समझता। बात यह है कि छोटीसे-छोटी बातें हमारे जीवनमे जो परिवर्तन करती हैं वे जानबूझकर किये गये प्रयासोंसे अथवा बड़े-बड़े चमत्कारोंसे भी घटित नहीं हो सकते।

दम्पतीके बीच सम्भव सत्याग्रहकी सीमा मिसालें मैं अपनी अनुभव-पुस्तकमें से दे सकता हूँ। परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि इन सबका दुरुपयोग भी किया जा सकता

है। मुझे वर्तमान वातावरण जहरीला मालूम होता है। मैं ऐसे समय इन अनुभवोंकी मिसाल देकर उक्त भाईको, जिन्होंने शुद्ध भावसे प्रश्न किया है, भ्रमित करनेका पाप अपने सिर नहीं लेना चाहता। इसलिए मैं उच्चसे-उच्च स्थिति बताकर उसमें से अपने सकटके निवारणका उचित मार्ग खोजनेका काम उन्हींको सौंपता हूँ।

स्त्रियोंकी स्थिति नाजुक है। उनके सम्बन्धमें उठाये जानेवाले कदमोंमें बल-प्रयोगकी गन्ध आ जाती है। हिन्दू जीवन कठिन है। इसीसे वह औरोंकी अपेक्षा अधिक स्वच्छ रह सका है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पतिको केवल वही प्रभाव डालनेका अधिकार है, जो शुद्ध प्रेमके द्वारा डाला जा सकता है। यदि दोनोंमें से कोई एक भी विषय-वासनाको जडसे काट सके तो रास्ता सरल हो जाता है। मेरा दृढ मत है कि पुरुषको स्त्रीमें जो खामियाँ दिखाई देती हैं उनकी पूरी-पूरी नहीं तो काफी जवाबदेही पुरुषकी ही है। वही स्त्रीमें सज-धजका मोह पैदा करता है। वही उसे बढ़िया माने जानेवाले कपड़े पहननेको कहता है। फिर स्त्री उनकी आदी हो जाती है, और जब पतिमें परिवर्तन होता है तब वह तत्काल पतिका साथ नहीं दे पाती। इसमें दोष पुरुषका ही है, स्त्रीका नहीं। यह समझकर पुरुषको धीरज रखना लाजिमी है।

यदि हिन्दुस्तानको शान्तिपूर्ण उपायोंसे स्वराज्य मिलना है तो उसमें स्त्रियोंको पूरा-पूरा योग अवश्य देना पड़ेगा। स्त्रियोंको जबतक, विलायती, मिलोंके तथा रेशमी कपड़ोंका मोह बना रहेगा तबतक स्वराज्य दूर ही रहेगा।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १८-५-१९२८

४०. काठियावाड़ क्या करे?

मैंने गत सप्ताह राजनीतिक परिषद् बुलानेके सम्बन्धमें अपना विचार सम्यक् रूपसे पाठकोंके समक्ष रखा था। परिषद् होगी अथवा नहीं और अगर होगी तो कहाँ होगी, इस बारेमें मैं कुछ नहीं जानता। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि कुछ भाइयोंके मनमें भी, जो मुझसे मिलने आये थे, निराशा आ गई है। वे बडे सत्याग्रही होनेका दम भरते हैं। मुझे उनको बता देना चाहिए कि सत्याग्रहीके कोषमें निराशा अथवा उसका समानार्थक शब्द होता ही नहीं। मेरी समझमें तो यह बात ही नहीं आती कि उनके मनमें निराशा क्यों आई? उनके विचार तो मुझसे ही मिलते-जुलते थे। लेकिन यदि यह भी मान लें कि वे मेरे तेजसे अभिभूत हो गये थे तो भी उनको उस तेजके प्रभावसे बाहर आनेपर सावधान होने और फिर विचार करनेका अधिकार था। यदि उन्होंने इस तरह विचार किया हो और उन्हें यह लगा हो कि कार्यकर्त्ताओंकी ओरसे कोई भूल नहीं हुई और शर्तें स्वीकार करनेपर परिषद्की अनुमति देनेका वादा करनेके बावजूद दरबारके[1] अनुमति न देनेकी स्थितिमें सत्याग्रह

1. भावनगरके शासक।

करना उनका धर्म हो जाता है तो उन सभीको अथवा उनमें से किसी एकको भी सत्याग्रह करनेका अधिकार है। सत्याग्रह बिना किसी संगी-साथीके भी किया जा सकता है, यह उसकी खूबी है। मेरे विरोधी विचारके कारण लोगोंमें बुद्धि-भेद उत्पन्न होनेकी बात मेरी समझमें आती है; लेकिन जिसे सत्यके दर्शन हो गये हैं वह सत्याग्रहकी प्रचण्ड शक्तिका उपयोग करके इस भेदसे बच सकता है। सत्याग्रही मेरे विरोध करनेपर भी कदापि पीछे नहीं हटेगा। मुझे भले ही इस बातका अभिमान हो कि सत्याग्रहके शास्त्रको तो केवल मैं ही जानता हूँ, लेकिन इस शास्त्रके ज्ञान-पर मेरा कोई एकाधिकार नहीं है। एक भाईने इस विषयपर एक पुस्तक प्रकाशित करके इस बातकी सत्यता सिद्ध करनेका प्रयत्न भी किया है। उन्होंने लिखा है कि मेरा सत्याग्रह अपेक्षाकृत अशुद्ध है और उस भाईने स्वयं जिस सत्याग्रहकी परिकल्पना की है वह शुद्धतम है। मैं किसी समय पाठकोंको इस पुस्तकका परिचय देनेकी आशा रखता हूँ। सत्याग्रहके उपयोग और उसकी योजनाके सम्बन्धमें नित्य नई खोज होती ही रहेगी। जिसमें आत्म-विश्वास हो उसका धर्म है कि वह इसमें प्राणोंका मोह त्यागकर कूद पड़े। सत्याग्रही अपनी कल्पनाका सत्य दूसरोंको दुःख देकर नहीं, बल्कि स्वयं दुःख सहकर मूर्तिमन्त करता है, केवल इस एक बातमें ही परिवर्तन नहीं हो सकता क्योंकि सत्याग्रहकी व्याख्यामें ही उसका समावेश हो जाता है। इसलिए सत्याग्रहीको अपनी भूलोंका परिणाम मुख्य रूपसे स्वयं ही भोगना पड़ता है।

मैं इस प्रस्तावनासे जो लोग सच्चे सत्याग्रही हैं उन्हें उत्तेजन प्रदान करनेके बाद पिछले हफ्ते ली गई प्रतिज्ञापर आता हूँ।

सारे हिन्दुस्तानमें, विशेषतः काठियावाड़में फिलहाल मौन रहनेका समय आ गया है। काठियावाड़पर तो सदासे यही आरोप लगाया जाता है कि हम लोग 'कथनीके धनी, परन्तु करनीके कायर हैं।'[1] वक्तृत्वकी छटाकी जरूरत हो तो देवी सरस्वती अपना कलश काठियावाड़पर जरूर उड़ेलेगी। इसका अनुभव तो मैं दक्षिण आफ्रिकामें भी करता था। वहाँके काठियावाड़ी सज्जन इस बातकी गवाही अवश्य देंगे। लेकिन इससे कोई यह न समझ ले कि वहाँ मेरे जैसे काम करनेवाले कुछ लोग भी अपवादरूप नहीं निकल आते थे। भाषण देनेवाले लोग तो विधाताने काठियावाड़में ही सिरजे हैं।

अतः काठियावाड़ियोंको अब अपनी जबान बन्द रखनी चाहिए। उन्हें अपनी कलम कलमदानमें ही पड़ी रहने देनी चाहिए। यदि परिषद् हुई तो वह आगामी वर्ष दिये जानेवाले भाषणोंके कार्यक्रमको निर्धारित करनेके लिए नहीं वरन् कामकी रूपरेखा तैयार करनेके लिए होगी। हमने अनुभवसे जान लिया है कि जनतामें जागृति पर्याप्त हो गई है और हम अवसर पड़नेपर हजारों लोगोंको इकट्ठा कर सकते हैं, हमें इस बातकी जरूरत थी। इस समय हजारों लोगोंको इकट्ठा करनेकी जरूरत नहीं है। उससे तो समय और धनका व्यर्थ ही अपव्यय होगा।

काठियावाड़की छब्बीस लाखकी आबादीमें काम करना सहज है। खादीका प्रचार, पाठशालाओंकी स्थापना, अस्पृश्यता-निवारण और दारू और अफीमका निषेध — ये चार

१. “काठियावाड़ियोंके प्रति अन्याय”, १-३-१९२८ भी देखिए।

आकर्षक और पुण्य फल देनेवाले हैं। यदि एक भी मनुष्यको भूखसे पीडित होकर काठियावाड छोडना पडे तो इसपर राजा और प्रजा दोनोको शर्म आनी चाहिए। काठियावाडमें क्या नही है? यहां जमीन अच्छी है, स्त्री पुरुष कुशल और तन्दुरुस्त हैं। काठियावाडमें जितनी चाहिए उतनी कपास है। स्वय बुनकरोने ही मुझे बताया है कि अनेक बुनकरोको धन्धेके अभावमें काठियावाड छोडना पडता है। दो वर्ष पहले उन्हें धन्धा मिलता था, आज तो और भी ज्यादा धन्धा मिलना चाहिए था। इसके बजाय उनका धन्धा कम कैसे हो गया? इस अवनतिके लिए क्या काठियावाडी कार्य-कर्त्ता उत्तरदायी नही हैं? यदि कार्यकर्त्ता भाषण देनेके धन्धेको छोडकर रुई-सम्बन्धी समस्त क्रियाओका ज्ञान प्राप्त कर ले तो एक वर्षमे ही वे काठियावाडियोकी स्थिति सुधार सकते हैं। वे काठियावाडमे से विदेशी अथवा मिलके कपडेका बहिष्कार करे। मिलोके कारण बहुत-से लोगोका पैसा बहुत थोडे लोगोके हाथोमे जाता है। जब शरीरमें बहुत अधिक रक्त भर जानेपर व्यक्ति धनुर्वात रोगसे पिडित माना जाता है तब उसका बचना मुश्किल हो जाता है। वह कभी-कभी बचता भी है तो फस्द खुलानेसे। जब बहुत-से लोगोका पैसा एक ही मनुष्यके पास इकट्ठा हो जाये तब उसे आर्थिक धनुर्वातसे पीडित मानना चाहिए। जिस तरह स्वस्थ मनुष्यके शरीरमे रक्त नियमित रूपसे सचरित होता है, वह किसी भी एक स्थानमे इकट्ठा नही हो जाता और जिस अगको जितने रक्तकी जरूरत होती है उसमें उतना पहुँच जाता है, उसी तरह स्वस्थ अर्थ-व्यवस्थामे धन नियमित रूपसे सचरित होना और जहां जितनी जरूरत हो वहां उतना पहुँचना चाहिए। ऐसी आर्थिक स्वस्थता प्राप्त करनेका सबसे बडा साधन चरखा है। चरखेका नाश होनेके कारण दुनिया-भरका धन लकाशायरमें खिचा चला जा रहा है। यह महारोगका लक्षण है। इस रोगका निवारण चरखेके पुनरुद्धारसे ही हो सकता है।

यदि काठियावाडके स्वयसेवक इस सरल परन्तु चमत्कारिक नियमको समझ गये हैं तो वे रुई-सम्बन्धी समस्त क्रियाओसे अवगत होकर जनतामें उसका प्रचार करें। यह हुआ प्रथम राजनीतिक कार्य।

काठियावाडमें कितने राष्ट्रीय स्कूल हैं? यहां अपढ बालको और बालिकाओकी सख्या कितनी है? क्या यहां उनकी आवश्यकताको पूरा करने योग्य स्कूल हैं? यदि न हों तो वैसे स्कूलोकी स्थापना करके उनकी मारफत अक्षर ज्ञानके साथ-साथ चरखा चलानेकी शिक्षा भी दी जा सकती है। यह हुआ दूसरा राजनीतिक कार्य।

अस्पृश्यताके मैलको धोना तीसरा राजनीतिक कार्य है। इस मैलको धोते-धोते भी चरखेके प्रचारका कार्य आसानीसे किया जा सकता है।

काठियावाडमें दारू और अफीमके निषेधकी आवश्यकता कितनी अधिक है, यह बात मैं दूर बैठकर नही बतला सकता। लेकिन फिर भी बाहरकी छूत न्यूनाधिक लगे बिना नही रहती। यह है चौथा राजनीतिक कार्य।

मैं इन कामोको तो उदाहरणोके रूपमें गिना गया हूँ। इस तरहकी अनेक प्रवृत्तियोकी खोज तो स्थानीय स्थितियोसे भली-भांति परिचित अनुभवी सज्जन कर ही सकते हैं।

इसपर अनेक टीकाकार कहेंगे कि यह तो समाज-सुधार हुआ राजनीतिक कार्य नही। ऐसा कहना मिथ्याभास है। राजनीतिकका अर्थ है राजासे — राज्यसे सम्बन्धित। राजाका अर्थ है प्रजातन्त्रका सचालक। प्रजातन्त्रके सचालकको उपर्युक्त बातोकी जाँच करनी ही होती है। जो नही करता वह शासक नही है, राजा नही है और जिस सस्थामे इसकी अवहेलना की जाती है अथवा इसे गौण स्थान दिया जाता है वह सस्था राजनीतिक सस्था नही है। राजनीतिक परिषद्का उद्देश्य राजाकी मदद करना अथवा यदि वह अपने मार्गका त्याग करे तो उसपर अकुश रखना है। वही मनुष्य ऐसी मदद दे सकता है अथवा ऐसा अकुश रख सकता है जिसका जनतापर लगभग उतना ही प्रभाव हो जितना राजापर हो। जनतामे ऐसा प्रभाव केवल वही रख सकता है जो जनताकी शुद्ध सेवा करता है। ऐसी सेवा उपर्युक्त कार्योके द्वारा ही की जा सकती है। इसलिए यदि राजनीतिक परिषदे सचमुच राजनीतिक कार्य करना चाहती है तो उपर्युक्त सेवा उसकी प्राथमिक शिक्षा ही है, अत वह अनिवार्य है।

इसीलिए यह सेवा सत्याग्रहकी सर्वोत्तम और आवश्यक तालीम है। जिन लोगोने इतना नही किया है वे जनताके हितमे सत्याग्रह करनेका अधिकार नही रखते और जनता भी उनके इस प्रयत्नकी सराहना नही करेगी। यह सेवा किये बिना तो हम सेवक अथवा सत्याग्रहीके रूपमे दु साहसी व्यक्ति ही ठहरेगे।

कुछ लोग कहते है "लेकिन ऐसे कठिन कार्यको हम कबतक पूरा कर सकेगे? और राजा कब सुधरेगे? आप अपने जाम साहबको ही देखिए। आप तो अभिमान सहित कहते थे: 'जाम साहब जब रणजीतसिंहजी कहे जाते थे, तब मैं उनसे मिला था? हम दोनो थोडे समय तक सहपाठी रहे हैं और हम कभी-कभी परस्पर मिला करते थे। उस समय उनमे बहुत ज्यादा सादापन तथा प्रजाके प्रति गहरा प्रेम-भाव था।' लेकिन आज वह सब-कुछ नही है। आज तो जाम साहबकी प्रजा जितनी कष्टमे है उतनी अन्य किसी राजाकी प्रजा शायद ही होगी। उनकी राजनीतिमे सुधार करना और प्रजामे चरखेका प्रसार करना, इन दोनो बातोमे परस्पर क्या सम्बन्ध है? हमे तो लगता है कि आप जेलसे ऊब गये है, आप फिर जेल नही जाना चाहते, इसलिए आप अपनी निर्बलताको ढाँककर और हमे भी टेढे मार्गपर ले जाकर निर्बल बनाना चाहते है।" ऐसे विचार किसी एक ही व्यक्तिके नही है। एक मित्रने विनोदमे मुझसे मेरी "निर्बलता" की बात कही थी। मैने ऐसी सब बातोको मिलाकर ही उपर्युक्त आरोप तैयार किया है।

जाम साहबके विरुद्ध मैने बहुत-कुछ सुना है। कुछ मित्रोने प्रमाणस्वरूप दो वर्ष पहले मुझे पत्र भी भेजे थे। लेकिन मैने अन्य कार्योमें व्यस्त होने तथा काठियावाडके राजतन्त्रमे सुधार करना मेरे कार्यक्षेत्रसे बाहर होनेके कारण इस सम्बन्धमे न कुछ किया और न कुछ लिखा। मै आज भी इस कार्यमे नही पडना चाहता। मेरी मान्यता है कि यदि जनता स्वराज्यकी प्रवृत्तिकी शान्तिपूर्ण गतिविधियोमे सफलता प्राप्त कर लेगी तो देशी राज्यतन्त्रोमे जहाँ कोई कमी है, वहाँ वह अपने आप ही दूर हो जायेगी। लेकिन यदि मै काठियावाडके राज्योके मामलोमे हस्तक्षेप करनेके लिए तैयार हो जाऊँ तो भी मै अपनी राय एकपक्षीय टीकाकार कदापि कायम

नही करूँगा। इसके अतिरिक्त मैं पहले तो थोडी अथवा ज्यादा जान-पहचान होनेके कारण जाम साहबसे मिलने और सब शिकायतें उनके सामने रखनेका प्रयत्न करूँगा। इसके बाद भी यदि मुझे यह लगेगा कि अन्याय हो रहा है और जाम साहबकी वृत्ति उसे दूर करनेकी नही है तो मैं सार्वजनिक रूपसे उनकी आलोचना करूँगा। मैंने चम्पारनके निलहे मालिकोंके सम्बन्धमें इसी पद्धतिका उपयोग किया था।[1] मैं काठियावाडके राजाओंके प्रति इससे कम तो कर ही नही सकता। मैंने ऊपर जो-कुछ कहा है, यदि जाम साहब उसे देख ले तो मेरी उनसे विनती है कि वे यह न समझें कि मैं उनके राज्यतन्त्रपर कोई आक्षेप करना चाहता हूँ। मैंने तो उनके राज्य-तन्त्रका उदाहरण केवल दृष्टान्त रूपमें ही लिया है। लेकिन इसमें सन्देह नही है कि उनकी प्रजाकी तो ऐसी ही फरियाद है।

अब हम फिर मूल बातपर आते हैं। मेरे कहनेका अभिप्राय यह है कि मैंने ऊपर जिन सेवाओंकी चर्चा की है उनका जाम साहबके राज्यतन्त्रमे जो दोष मिलते हैं, उनसे निकटका सम्बन्ध है। जिन्होने ऐसी सेवा की होगी उसकी बात राजा और प्रजा दोनो ही सुनेंगे। सत्याग्रही बलवान तो होता ही है, उसमे भीरुता रच-मात्र भी नही होती। लेकिन उसकी विनम्रता भी निर्भीकताके अनुपातसे ही बढनी चाहिए। अविनयीकी निर्भयता उसे गर्वित और उद्दण्ड बना देती है। गर्व और सत्याग्रहके बीच तो समुद्र लहराता है। विवेकीकी बात महाभिमानी राजाको भी सुननी पडती है। सेवाके बिना नम्रता और विनय आ ही नही सकती। सत्याग्रहीको स्थानीय स्थितियोका अनुभव भी होना चाहिए किन्तु वह भी सेवाके बिना नही होता। राजाओंकी टीका करना अनुभवकी श्रेणीमें नही गिना जा सकता। काठियावाडी कार्यकर्त्ताओंमें अनेक चतुर राजनीतिज्ञोंके वर्गके होते हैं। उनकी राजनीतिज्ञताका सेवासे बहुत कम सम्बन्ध है। राजनीतिज्ञोंके वर्गका अर्थ है शासकवर्ग। मुझे अपने बचपनका यह निजी अनुभव है कि जनता इस वर्गके प्रति अपना हृदय नही खोल पाती। इसलिए यदि काठियावाडी सेवा करना चाहे तो वे राजनीतिज्ञ न बनकर भगी, किसान, बुनकर, कुम्हार, बढई आदि बने और उसमें अपने अक्षरज्ञान और राजनीतिके अनुभवका सम्मिश्रण करे। यदि इस सम्मिश्रणमें सत्य और अहिंसा मिल जायें तो इस त्रिपुटीमे से जो शक्ति पैदा होगी उसका मुकाबला कोई भी राजशक्ति नही कर सकती।

[गुजरातीमे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

१. १९१७ में, देखिए खण्ड १४।

४१. बुनकरोंकी आय

एक भाई दुखी होकर पत्र लिखते है:[1]

इस पत्र-लेखक और इसके समान अन्य शकाशील भाइयोके मनको शान्त करनेकी जरूरत है। मैंने जो कुछ लिखा था वह वकील वर्गके समान तीव्र बुद्धिके लोगोके लिए नही था। मैं इस भाईके इस कथनके बावजूद अपने मतमे कोई फेरफार नही करना चाहता। मैं जानता हूँ कि पजाबमे बहुतसे बुनकर दो रुपये रोजसे अधिक कमाते हैं। बम्बईके मदनपुराके कुशल बुनकर तीन रुपये रोज सहज ही कमा लेते हैं। इतना अवश्य है कि वे विदेशी अथवा मिलोके सूतका प्रयोग करते हैं। यदि वे आलस्यवश हाथ-कते सूतको तानेमें इस्तेमाल करनेसे इनकार न करे तो उनकी कमाई कम हो जानेकी तनिक भी आशका नही है। उक्त बुनकर जितनी कमाई कर पाते हैं उतनी अन्य बुनकर क्यो नही कर सकते। हमे इसका उत्तर एक ही मिलेगा कि वे बुनकर बहुत अनुभवी होते हैं। यह बिलकुल सच है, परन्तु एक परिवार दो रुपये रोज कमा सके इसके लिए वर्षोके अनुभवकी जरूरत नही है। मैं तो मानता हूँ कि यदि मनुष्य एक वर्ष तक रविवारको छोडकर रोज आठ घटे करघेपर बैठे तो वह जितना चाहिए उतना अनुभव प्राप्त कर सकता है। इतना तो स्पष्ट है कि यदि कोई बुनाईमे सुन्दर आकृतियाँ निकालनेकी कला तनिक भी सीख लेता है तो इसमें समय बहुत कम लगता है और मजदूरी डेढ गुना अथवा इससे भी ज्यादा मिलती है। किनारीको रगीन करने भरसे मजदूरी बढ जाती है। बहुतसे बुनकर केवल अपने हुनरके बलपर अधिक मजदूरी लेते हैं। इसके अतिरिक्त मैंने कमाईकी जो यह कल्पना की है वह केवल एक मनुष्यके लिए नही है, समस्त परिवारके लिए है।

यदि परिवारके अन्य सदस्य भी कार्यमे मदद करे तो सामान्यतया काम अधिक होता है। कल्पना कीजिए कि एक कुशल बुनकर, उसकी स्त्री और उसका दसवर्षीय बालक बुनाईके काममे लगे हैं। बुनकर अच्छी कपास ले आया और उसने उसकी पूनियाँ बनाकर पास-पडौसकी बहनोको कातनेके लिए दे दी। वह उन्हीके काते सूतको बुनता है और बुने कपडेको स्वय ही बेचता है। पति और पत्नी दोनो ही बुनाईके काममे लगते हैं और दोनो मिलकर १२ घटे काम करते हैं। बालक कुकडियाँ भर-भर कर देता है और अन्य प्रकारसे सहायता करता है। इस तरह काम करनेवाले कुटुम्बकी हररोजकी आय सहज ही दो रुपये हो सकती है। जहाँ इतनी आय न हो वहाँ दूसरी जगहोकी अपेक्षा रहन-सहनका खर्च कम आता होगा। उक्त भाईको आशका है कि मेरे लेखसे भ्रमित होकर कोई अनुभवहीन मनुष्य बुनाईके काममे न

१. यहाँ पत्र नही दिया गया है। पत्र-लेखकने गाधीजीके इस कथनपर शका की थी कि चरखा कातनेसे मनुष्य प्रतिदिन दो रुपयेसे तीन रुपये तक कमा सकता है और लिखा था कि यदि उनका यह मत ठीक नही है, तो वे उसमें सुधार कर लें।

फँस जाये। मैं तो उम्मीद रखता हूँ कि मैंने जो सुझाव दिया है, उसपर कोई कुशल बुनकर स्थान चुनकर प्रयोग करके देखें। सम्भव है कि उसके अनुभवसे मेरी कल्पनाकी पुष्टि न हो तथापि इससे उसे कुछ नुकसान नही होगा। मैं सौ-दो सौ रुपये कमानेवाले मनुष्यको ऐसा प्रयोग करनेके लिए आमन्त्रित नही करता, लेकिन जो घरमें बेकार बैठे है अथवा प्रतिकूल वातावरणमे तीस रुपयेकी क्लर्की कर रहे है, मैं ऐसे लोगोको अवश्य प्रलोभित करना चाहता हूँ। मेरी शर्त इतनी ही है कि जो यह प्रयोग करे उसका स्वास्थ्य सामान्यतया ठीक होना चाहिए। वह कामसे कतराता न हो और हररोज कमसे-कम आठ घटे मेहनत करनेके लिए तैयार हो। यदि वह गृहस्थ हो तो ज्यादा अच्छा है। यदि वह अकेला हो परन्तु कार्यकुशल हो तो भी वह अवश्य ही तीस रुपये माहवार कमा लेगा। परन्तु मान लीजिए कि उसे यहाँतक पहुँचनेमे देर लगती हे तो भी क्या हुआ? उसे फिर भी ऐसी निराशा तो अवश्य ही नही होनी चाहिए, कि मानो वह किसी गड्ढेमे गिर गया हे।

इस विषयमें यदि किसीके पास कोई अनुभव है, भले ही वह मेरे अनुभवसे मेल न खाता हो, फिर भी यदि वह उसे लिख भेजेगा तो मैं उसका आभार मानूँगा। मैं समय मिलनेपर उसका उपयोग भी 'नवजीवन' में करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

४२. कुछ मुसीबतें

एक स्वयसेवकने मुझे एक गम्भीर-सा पत्र[1] लिखा है। उसने इसमे अनेक प्रश्नोपर अपने विचार व्यक्त किये है। यहाँ मैं सिर्फ उन्ही अनुच्छेदोको दे रहा हूँ जिनपर मैं इस समय अपनी राय दे सकता हूँ।

भाग्यवशात् मैं किसीको अपना अनुयायी मानता ही नही। इस कारण मैं किसीके पापमे हिस्सेदार नही कहला सकता। परन्तु इतनेसे उक्त लेखककी परेशानी दूर नही होती और मेरा उत्तरदायित्व समाप्त नही होता। चारो-ओरसे मेरे अनुयायी कहे जानेवाले लोगोकी शिकायते आ रही है। मैं इसका उपाय सोच रहा हूँ। दुखियोका सहायक ईश्वर है। अपने इस विश्वासके कारण मुझे आशा बँधती है कि वह मुझे ऐसा उपाय सुझा देगा जिससे इन नामधारी अनुयायियोका धन्धा बन्द हो जाये। ढोग हमेशा नही चल सकता। कुछ लोग कुछ समय तक भले ही ठगे जा सकते हो, परन्तु सब लोग सदा ठगे जाते रहे हो, इसकी मिसाल इतिहासमें नही मिलती।

यह बात भी ठीक है कि काग्रेसके सविधानपर चुस्तीके साथ अमल नही किया जा रहा हे। यह धारणा कि सर्वथा दोषरहित सविधान भी अयोग्य मनुष्योके हाथोमें

१ यहाँ नहीं दिया गया है।

जाकर निन्दाका पात्र हो जाता है और योग्य मनुष्य दोषमय सविधानका भी सदुपयोग कर सकते हैं, अधिकाशत यथार्थ है। यह तो स्पष्ट ही है कि स्वयसेवकोको चाहिए कि वे किसीको भी पूरी तरह समझाए विना चार आने लेकर सदस्य न बनाये और यह स्पष्ट है कि चार आने वसूल कर लेनेके अनन्तर उस चार आने देनेवाले व्यक्तिको भूल नही जाना चाहिए। ग्राम समितियोकी स्थापनाका प्रयोजन ही यह है कि ग्रामीण लोगोका सम्बन्ध काग्रेसके साथ अखण्ड बना रहे।

देहातोकी गरीवीको जिन-जिन लोगोने इस पत्र-लेखककी तरह देखा है उन्हे उसे दूर करनेके लिए चरखेके सिवा दूसरा कोई साधन नही सूझ सकता, क्योकि ऐसा कोई दूसरा साधन है ही नही। इसीसे जिस हदतक चरखेकी प्रगति होगी उसी हदतक स्वराज्यकी प्रगति मानी जा सकती है। काग्रेससे वेतन लेना उचित नही, यह विचार अभिमान सूचक ही है। विना वेतनके अधिक सेवक मिल ही नही सकते। और यदि वेतन लेनेवाला कोई भी न रहे तो स्वराज्य-तन्त्र आगे नही बढ सकता। यह भी एक वहम है कि लोग वेतन लेनेवालोको आदरकी दृष्टिसे नही देखते। वेतन लेता हो अथवा न लेता हो यदि कार्यकर्त्ता जनताकी दिलोजानसे सेवा न करेगा तो उसके प्रति लोगोका आदरभाव टिक ही नही सकता। मैं अनुभवसे कह सकता हूँ कि लोगोको दिलोजानसे काम करनेवालेको वेतन चुकाना भारस्वरूप नही लगेगा। यह सच है कि काग्रेस कोई वडा वेतन नही दे सकती। परन्तु इस विषयमे भी कोई सन्देह नही है कि वह गरीव सेवकोको गुजारेके लायक वेतन जरूर दे सकती है। हमे दूसरी जगह वेतन लेकर नौकरी करनेकी अपेक्षा काग्रेससे वेतन लेकर उसकी नौकरी करनेमे प्रतिष्ठा माननी चाहिए। लोगोमे सिविल सर्विसका मोह कितना है और वह क्यो है? हमे उससे भी अधिक मोह काग्रेसकी सेवाका होना चाहिए। जिस प्रकार सिविल सर्विसमे जानेवाला ऊँचे पदोपर पहुँच सकता है उसी प्रकार काग्रेसकी सेवा करनेवाला उसका सभापति तक हो सकता है। परन्तु जो इस लालचसे सेवा करेगा वह गिरे विना नही रहेगा। स्व० गोखलेने फर्ग्युसन कालेजको अपने २० वर्ष दिये। उन्हे रायल कमीशन आदिसे भी रुपये मिलते थे। वे फिर भी कालेजसे वेतन लेनेमे अपना गौरव मानते थे। पाठकोको याद होगा कि यह वेतन ४० रुपयेसे शुरू होता और अधिकसे-अधिक ७५ रुपये तक जाता है। जबतक काग्रेसको भी प्राण-प्रणसे काम करनेवाले वैतनिक सेवक न मिलेगे तवतक उसका काम ठीक तरहसे नही चल सकता। जवतक हम यह नही मानने लगेगे कि वेतन लेकर सेवा करना मानास्पद है तवतक हमे अधिक सख्यामे सेवक नही मिलेगे। इस प्रकार प्रतिष्ठा बढानेका सबसे अच्छा रास्ता यह है कि वल्लभभाई स्वय वेतन लेने लगे। जब मैं सेवा करने लगूँगा तव मैं भी जरूर वैतनिक सेवकोमे अपना नाम लिखाऊँगा।

वेतन कितना और किस तरह निश्चित किया जाये, सबको एक-सा दिया जाये या नही, सेवकोकी परीक्षा रखी जाये या नही, आदि समस्याएँ जरूर खडी होती है, परन्तु इन्हीको हल करना ही हमारी कार्य-सचालनकी क्षमताकी कसौटी होगी।

अखवारोकी जो टीका-टिप्पणी की गई है उसपर मै अपनी राय न दूंगा, क्योकि गुजरातके अखवारोसे मेरा बिलकुल परिचय नही है। यह महान कार्य मेरे जेल जानेके

बाद ही शुरू हुआ है।[1] यह तो निश्चित ही है कि पत्रोंका धर्म लोगोंको कार्यकी ओर प्रवृत्त करना है। अब लोगोंको जोश दिलानेकी आवश्यकता बिलकुल नहीं रही है। लोग इस बातको समझ गये हैं कि उन्हें वर्तमान राजनीति बदलनी है और स्वराज्य लेना है। वे रास्ता भी जानने लगे हैं। अभी वे उस रास्तेपर तेजीसे आगे नहीं बढ़ रहे हैं। पत्रोंको उनकी गति तेज करनेमें ही अपनी शक्ति लगानी चाहिए। इस सम्बन्धमें मतभेद हो ही नहीं सकता।

अन्त्यज भाइयोंको साफ-सुथरा रहनेकी शिक्षा देना भी हमारा काम है। हम जब उनमें आने-जाने लगेंगे तो स्वयं अपने हितकी दृष्टिसे उन्हें साफ-सुथरा रहनेकी शिक्षा भी देंगे। हमें यह समझकर धीरजसे काम लेना चाहिए कि उनकी गन्दगी हमारे पापका फल है। हमने अबतक अन्त्यज भाइयोंको अपना भाई नहीं माना। हमने उन्हें मनुष्यतक नहीं समझा। हम जैसा करते हैं वैसा फल पाते हैं, इससे हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। तथापि इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि उनके दोष दूर करनेमें हमें उनकी मदद करनी चाहिए। वे तो सीधे-सादे लोग हैं। वे जानते हैं कि उनको इन सुधारोंकी जरूरत है। उन्हें हमारी सहायताकी जरूरत है। मैं मानता हूँ कि यदि उन्हें हमारी मदद मिले तो वे हमसे भी आगे बढ़ सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १८-५-१९२४

४३. भाषण : बुद्ध-जयन्ती समारोहमें[2]

बम्बई
१८ मई, १९२४

मेरा विचार है कि मुझे इस सभाकी अध्यक्षता करनेके लिए केवल इस खयालसे बुलाया गया है कि मैं गौतम बुद्ध द्वारा अनुभूत और प्रतिपादित सत्यके प्रचारके लिए बहुतोंकी अपेक्षा अधिक प्रयत्नशील हूँ। मेरा तद्विषयक ज्ञान सर एडविन आर्नोल्डकी[3] उस सुन्दर पुस्तक तक ही सीमित है, जो मैंने पहली बार आजसे कोई पैंतीस वर्ष पहले पढ़ी थी। यरवदा जेलमें रहते हुए अपनी छोटी-सी कारावास-अवधिमें भी मैंने एक-दो पुस्तक पढ़ी थीं। किन्तु बौद्ध धर्म के महान विद्वान् आचार्य कौसाम्बीका कहना कि "द लाइट ऑफ एशिया" बुद्धके जीवनका एक बहुत धुंधला चित्र ही दे पाती है, उस सुन्दर कवितामें कमसे-कम एक घटना तो

१ मार्च १९२२ से।

२ बुद्ध सोसाइटीके तत्वावधानमें आयोजित बुद्ध-जयन्ती समारोहके अध्यक्ष पदसे दिया गया भाषण। जेलसे रिहाईके बाद यह उनका पहला सार्वजनिक भाषण था। गांधीजीने भाषण पहले से ही लिखकर तैयार कर लिया था। उसका मसविदा उपलब्ध है। समाचारपत्रोंमें इसका पाठ कुछ शाब्दिक परिवर्तनोंके साथ प्रकाशित हुआ था।

३ १८३२–१९०४, संस्कृत साहित्यके अध्येता व अंग्रेज कवि।

ऐसी है जो किसी भी मौलिक और मान्य बौद्ध ग्रन्थ में नही मिलती। मैं आशा करता हूँ कि हमारे विद्वान आचार्य कौसाम्बी अपने परिपक्व ज्ञानके परिणामस्वरूप भविष्यमे कभी बुद्धकी जीवन-कथा साधारण भारतीय पाठकके हितार्थ साधिकार रूपमे प्रस्तुत करेगे।

फिलहाल तो बौद्ध-धर्मके विषयमे मेरी जो मान्यताएँ है, मै श्रोताओके सम्मुख उन्हीको रखूंगा।

मै तो बौद्ध मतको हिन्दूधर्मका ही अग मानता हूँ। बुद्धने ससारको कोई नया धर्म नही दिया। इन्होने ससारको धर्मकी एक नई व्याख्या दी। उन्होने हिन्दू धर्मको जीवनकी बलि लेनेके बजाय जीवनकी बलि देना सिखाया। अन्य जीवोकी बलि देना सच्चा बलिदान नही, अपनी बलि देना सच्चा बलिदान करना है। वेदोपर कोई भी प्रहार हिन्दू धर्मको बर्दाश्त नही है। उसने इस नई व्याख्याको प्रहार ही माना और इसलिए बुद्धकी शिक्षाका मूल तत्व स्वीकार करके भी बौद्ध धर्मको एक नया और वेद-विरोधी मत कहा तथा इसका विरोध किया।

हिन्दू धर्मको बुद्धकी देन

कुछ लोगोमे यह कहनेका फैशन-सा चल पडा है कि भारतने जिस दिन बुद्धके उपदेशोको स्वीकार किया, उसी दिनसे भारतका पतन शुरू हुआ। यह तो दूसरे शब्दोमे यही हुआ कि यदि ससार प्रेम और करुणापर काफी अमल करने लगे तो उसका पतन हो जायेगा। इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि आलोचकोके मतसे अन्तमे तो बुराईकी ही जीत होती है। पर मेरा अडिग विश्वास है कि भारतका पतन इसलिए नही हुआ है कि उसने उनकी शिक्षा स्वीकार कर ली बल्कि इसलिए हुआ कि उसने गौतमके उपदेशोके अनुसार आचरण नही किया। पुजारियोने सदाकी तरह अपने पैगम्बरको सूलीपर लटका दिया। वेदवाक्य ईश्वरीय वचन तभी हो सकता है जब वह जीवन्त हो, सदा विकासशील बना रहे और सभी परिस्थितियोमे मार्ग-दर्शन करता, फूलता-फलता चले। पुजारीगण सिर्फ वाक्यो और शब्दोसे चिपके रहे, उन्होने उसकी आत्मा, उसके मर्मको नही समझा। लेकिन निराश होनेकी जरूरत नही है। बुद्धने धर्मशोधनका जो प्रयास किया था, अभीतक उसपर ठीक-ठीक अमल करके देखा ही नही गया। ससारके इतिहासमे ढाई हजार वर्षका काल कोई बडा काल नही माना जा सकता। यदि पिण्ड विकासकी प्रक्रियामे कई कल्प लग सकते है तो फिर विचार और आचरणके विकासके क्षेत्रमे हम किसी चमत्कारकी आशा क्यो करे? और चमत्कारोका युग तो अभी समाप्त नही हुआ। व्यक्तियोके बारेमे जो बात सही है वही राष्ट्रोके बारेमे भी सही है। मै यह बिल्कुल सम्भव मानता हूँ कि जनसाधारण एकाएक किसी सन्मार्गको स्वीकार कर ले, एकाएक उसका जीवन और विचार उन्नत हो जाये और फिर जिसे हम आकस्मिकता कहते है, वह सिर्फ देखने-भरकी आकस्मिकता होती है क्योकि कौन जानता है कि शिक्षाका खमीर भीतर ही भीतर कितना असर कर चुका है? प्रबलतम शक्तियाँ तो अदृश्य ही रहती है, यहाँ-तक कि दीर्घ कालतक उनकी अनुभति भी नही होती। लेकिन फिर भी वे अपनी

सुनिश्चित गतिसे निरन्तर क्रियाशील बनी रहती है। मेरे लेखे किसी सर्वोच्च और अदृश्य शक्तिमे जीवन्त आस्थाका ही नाम धर्म है। वह शक्ति सदा हमारी बुद्धिसे परे रही और आगे भी रहनेवाली है। बुद्धने हमको यही शिक्षा दी कि आकार या रूपको महत्व न दो और सत्य तथा प्रेमकी अन्तिम विजयपर भरोसा रखो। ससार और हिन्दू धर्मको यही उनकी अनुपम देन थी। उन्होने हमको यह भी सिखाया कि इस मार्गपर चला कैसे जाये, क्योकि वे अपनी शिक्षापर स्वय भी चलते थे। प्रचार-का सबसे अच्छा साधन पर्चेबाजी नही, बल्कि स्वय भी अपना जीवन उसी तरहका बनाना है जिस तरहका जीवन हम चाहते है कि ससार अपनाये।

अग्रेजी मसविदे (एस० एन० ८८१३) तथा (सी० डब्ल्यू० ५१७६) की फोटो-नकलसे।

४४. पत्र : महादेव देसाईको

[१९ मई, १९२४][1]

तुमने जो पत्र लिखा है वह श्री हाइड नही, शेखचिल्लीकी तरह लिखा है। डाक्टर जेकिलको भी हवाई महल बनानेका अधिकार है। फिर जब वे आश्रम रूपी महलमे रहने लगे तब तो पूछना ही क्या है? मुझसे पृथक रहनेकी इच्छामे ही दोष है। कुछ भी हो, क्या मै ऐसा मूर्ख बनिया हूँ जो अपना बेशकीमती माल कोडियोके मोल बेच दूं — तुमको एक बहुत ऊँचे वेतनपर नौकर रखवा दूं, और फिर तुमसे आश्रमके लिए धन लूं? यह नही होगा। इतनी रकम तो तुम भीख माँगकर भी ला सकते हो। मुझे तो आश्रमको भीख या शरीर-श्रम द्वारा अर्जित धनसे ही चलाना है। मुझे यो तो बहुत-सी बाते कहनी है, परन्तु तुम इस थोडे लिखेको ही बहुत जान लेना। सयमी पुरुषका शरीर नीरोग रहना ही चाहिए। शरीर-बलकी शिक्षा और आत्मबलकी शिक्षामे विरोध है पर आरोग्य और आत्मबलके बीच सीधा सम्बन्ध है।

बापूके आशीर्वाद

चि० महादेव देसाई
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८७८५) की फोटोनकलसे।

१ डाकखानेकी मुहरके अनुसार।

४५. तार: वाकरगंज जिला सम्मेलनको[1]

[२० मई, १९२४]

खेद है वहुत देर हो चुकी है। आपका तार आज ही मिला है।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८१६) की फोटो-नकलसे।

४६. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

वैशाख वदी २ [२० मई, १९२४][2]

भाई घनश्यामदासजी,

आपके पत्र आ रहे हैं। आप अवश्य लीखते रहे। मैं हमेशा प्रत्युतर न लीख सकूं तो समझना मुझे इतना भी वखत नहि है।

उदण्डता और दृढता करीव साथ-साथ रहते हैं। यदि हम सात्विक भावोको वढ़ानेकी कोशिश करते रहे तो उदण्डता प्रति क्षण गोण स्थान लेती जायगी। उदण्डताको दवानेका सवसे अच्छा तरीका यह है कि हम हमेशा विरोधको उतर न देते रहे।

मी दास आ गये है। उनसे वाते हो रही है। अयोग्य आचरणका विलकुल इनकार करते हैं।

हिन्दु औरतोपर जो हमला हो रहा है उस वारेमे हमारा हि दोष मैं समझता हुँ। हिन्दु ऐसे नामर्द वन गये हैं कि हमारी वहनोकी रक्षा भी नहि करते है। इस विषयमे मैं खूव लिखुंगा। इसका कोई सादा इलाज मेरे नजदीक नहि है। कई वात जो आपके सुननेमे आई है उसमे अतिशयोक्तिका सभव है। परन्तु अतिशयोक्ति काट देने वाद जो शेष रहता है, हमको लज्जित करनेके लिये काफी है।

१. वाकरगज जिला सम्मेलनके मन्त्रीका यह तार २० मई, १९२४ को मिला था। तारमें लिखा था: "वाकरगज जिला सम्मेलन २४ मईको फीरोजपुरमें होने जा रहा है। देशबन्धु और मौलाना आजादके शरीक होनेकी अनुमति प्राप्त हो गई है और इस वातका ऐलान भी सर्वत्र कर दिया गया है। उन दोनोंको तुरन्त भेजनेकी कृपा कीजिए। उनके न आनेपर मुँह दिखाना मुश्किल होगा।"

तारके सिरेपर गांधीजीके ये शब्द भी मिलते हैं:—

"तार कब मिला, इसके वारेमें पूछताछ कीजिए।"

२. यहाँ माफीके उल्लेखसे पता चलता है कि यह पत्र १३ मई, १९२४ को लिखे गये पत्रके वाद लिखा होगा। १९२४ में वैशाख वदी २, २० मईको पड़ी थी।

आपको नं० ३० और हिं० नं० जी० भेजनेको मैंने मैनेजरसे कह दिया है और वे अब भेजा गया होगा।

मेरा एक पत्र जो मैंने गत सप्ताहमें लिखा आपको मिल गया होगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

[illegible]

आपके भाई यदि माफी माँग लेंगे तो भी यदि आप दृढ रह सके तो माफी न माँगना ही उत्तम है। किंतु माँगनेवालोंसे घृणा भी हम न करे। मनुष्य मात्र यथाशक्ति ही नीतिका पालन कर सकता है।

मोहनदास

मूल हिन्दी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००७) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिडला

४७. पत्र: देवचन्द पारेखको

वैशाख वदी २ [२० मई, १९२४][2]

भाईश्री देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला। परिषद्में[3] भाग लेनेके लिए जो लोग आयेंगे वे अवश्य ही आपके यहाँ ठहरेंगे। परन्तु अभी तो बहुत वक्त है न?

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००८) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

१. वैशाख कृष्ण २।
२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार।
३. सम्भवत: काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्, जो जनवरी १९२५ में होनेवाली थी।

४८. पत्र : मणिबहन पटेल और दुर्गा देसाईको

[२० मई, १९२४][1]

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र तथा पोस्टकार्ड दोनो मिल गये। तुमने पत्रमें 'त्यागकी मूर्ति'[2] के विषयमें जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर बहुत हर्ष हुआ। इस प्रकारकी निर्मलता और संयमवृत्ति संग्रहणीय गुण है। जब मिलेंगे तब इस विषयमें बात करेंगे। फिलहाल तो तुम जो थोडा-सा बुखार शेष है, ईश्वरकी कृपासे उससे छुटकारा पाकर स्वस्थ हो जाओ। वसुमती बहन देवलाली जा रही है इसलिए वहाँ नही आ सकेगी। तुम्हे [हजीरासे] तुरन्त आनेका विचार कदापि नही करना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

चि० दुर्गा,

आखिर तुमने मुझे पत्र नही ही लिखा। तुम्हारा स्वास्थ्य वहाँ कैसा रहता है?

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

४९. पत्र : एडा वेस्टको

२० मई, १९२४

प्रिय देवी,[3]

मुझे तुम्हारा पत्र अभी-अभी मिला, प्रसन्नता हुई। मुझमें धीरे-धीरे ताकत आ रही है। मैं जिस स्थानपर ठहरा हुआ हूँ वह समुद्र तटपर है। आशा है कि अगले सप्ताह मैं आश्रम चला जाऊँगा। तुम वहाँ कबतक हो? तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? मैं अधिक नही लिखूँगा। तुम्हे सब समाचार रामदाससे मिलेंगे। इस बारेमें मैं उसे लिख रहा हूँ।

१. साधन-सूत्रके अनुसार।
२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५५६-६०।
३. एडा वेस्ट, गांधीजीके मित्र और सहयोगी ए० एच० वेस्टकी बहन।

तुम सबको मेरा प्यार,

तुम्हारा भाई,
मो० क० गांधी

कुमारी एडा वेस्ट
२३, जॉर्ज स्ट्रीट
साउथ लिंकन शायर

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ७६१८) तथा (सी० डब्ल्यू० ४४३३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ए० एच० वेस्ट

५०. भेंट : वाइकोम शिष्टमण्डलसे[1]

[२० मई, १९२४)]

प्र० . महात्माजी, आपने कहा है कि उपवास एक ऐसा अस्त्र है जिसका प्रयोग अपने मित्रोंके अलावा अन्य किसीपर नहीं किया जा सकता। त्रावणकोर सरकार या तो मित्र है या यह प्रजाकी इच्छाका विरोध करते रहनेके कारण उसकी शत्रु है। यदि वह मित्र है, तो निश्चित है कि सत्याग्रहियों द्वारा किया जानेवाला कष्ट-सहन जो इस विषयमें उनकी भावनाओंकी तीव्रताका द्योतक है, अवश्य ही अन्तमें सरकारका हृदय पिघलाने और उसे सत्याग्रहियोंकी माँगें स्वीकार करनेपर राजी करेगा। त्रावणकोरके महाराजा भीतरसे बाहरतक कट्टर हिन्दू होते हुए भी एक रहमदिल शासक हैं और अपनी प्रजाको प्यार करते हैं और वे सत्याग्रहियों द्वारा उठाये जानेवाले कष्टोंको देखकर व्यथित हुए बिना नहीं रहेंगे। वे कोई क्रूर शासक नहीं हैं कि प्रजाके सुख-दुखकी ओर ध्यान ही न दें। ऐसी परिस्थितिमें, सत्याग्रही स्वयं कष्ट उठाकर महाराजाका हृदय द्रवित करने और उन्हें अपने पक्षमें लानेके लिए उपवासका सहारा क्यों नहीं ले सकते?

उ० सत्याग्रहका मतलब ही परिपूर्ण प्रेम और अहिंसा है। उपवासको एक अस्त्रके तौरपर अपने ऐसे ही स्नेही, मित्र, अनुयायी या सहकर्मीपर प्रयुक्त किया जा सकता है जो आपको कष्ट उठाते हुए देखकर आपके प्रति अपने प्रेमके कारण अपनी गलती महसूस करता है और उसे ठीक कर लेता है। वह अपने अन्दर जिस बुराईको देखता और समझता है और उसे बुराई मानता है, उससे अपने आपको मुक्त कर लेता है। आप उसे बुराईके मार्गसे विमुख करके सीधे सच्चे मार्गकी ओर उन्मुख करनेकी कोशिश करते हैं। शराबी पिताका व्यसन छुड़ानेके लिए उसका पुत्र उपवास कर सकता है। पिता जानता है कि वह एक दुर्व्यसन है, किन्तु पुत्रको कष्ट उठाते देखकर उसकी

१. शिष्टमण्डलके दो सदस्य थे, के० माधवन नायर और कुरूर नीलकण्ठन् नम्बूद्रीपाद।

समझमे आ जाता है कि दुर्व्यसन कितना बडा है और वह अपनेको सुधार लेता है। बम्बईमे मेरे जिन अनुयायियो और सहयोगियोने हिंसाका मार्ग अपनाया उन्हे मालूम था कि हिंसा असहयोगके सिद्धान्तके विपरीत पडती है। वे उस बुनियादी सिद्धान्तसे भटक-भर गये थे। मेरे उपवास करनेपर उन्होने अपनी गलती समझ ली और उसे सुधार लिया।

किन्तु यदि सम्भावना ऐसी हो कि मित्र अपनी गलती महसूस किये बिना ही, अन्य किन्ही कारणोसे आपकी बात मान लेगा तो आप उसके खिलाफ भी उपवास नही कर सकते। उदाहरणके लिए, मैंने जब एक अछूतको अपने परिवारका सदस्य बनानेका प्रस्ताव रखा तो मेरी पत्नीने इसपर आपत्ति की।[1] यदि उस परिस्थितिमे मैं उपवास करता तो शायद उसे झुक जाना पडता, लेकिन उसका कारण होता उसका यह भय कि उपवाससे कही मेरी मृत्यु न हो जाये और वह अपने पतिको न खो दे। वह झुकती तो उपरोक्त भयसे न कि इस खयालसे कि उसने एक इन्सानको अछूत मानकर गलत काम किया है। यदि इस मामलेमे मैं सफल होता तो उसका मतलब यह होता कि मैंने उसके विचारोको अपने पक्षमे नही किया बल्कि उसपर जोर-जुल्म किया और उसकी भावनाओको ठेस पहुँचाकर ही उससे अपनी बात मनवा ली। इसी प्रकार त्रावणकोरके महाराजा भी एक रहमदिल आदमी होनेके कारण अविचलित भावसे शायद किसी सत्याग्रहीको मरते हुए न देख सके। हो सकता है कि आपका उपवास उनको झुकनेपर विवश कर दे। परन्तु इसका कारण यह नही होगा कि उन्होने अपनी गलती महसूस कर ली है और वे छुआछूतको बुरी चीज मानने लगे हैं। वे आपकी बात इसलिए मानेंगे कि वे किसी ऐसे आदमीको मरते नही देख सकते जिसने, उनकी रायमे मूर्खतावश मरनेकी ठान ली है। यह किसीको बाध्य करनेका निकृष्ट ढंग है और सत्याग्रहके बुनियादी सिद्धान्तोके सर्वथा विरुद्ध है।

प्र० . अगर मान लिया जाय कि महाराजा मित्र न होकर शत्रु और क्रूर शासक हैं तो सत्याग्रही अपने कष्ट-सहनके बलपर उनको कभी जीत ही नहीं सकते। ऐसी हालतमें क्या यह ठीक नहीं होगा कि एक शक्तिशाली लोकमत तैयार करके और सरकारको अटपटी स्थितिमें डालकर उसे हमारी बात माननेपर विवश किया जाये। इसका अर्थ यह तो होगा कि दबाव डाला गया। उदाहरणार्थ, खेड़ामें जिस शासनतन्त्रने जनताकी बात माननेसे इन्कार कर दिया था उसे प्रेमके द्वारा नही, दबावके बलपर झुकाया गया था। इस तरहका दबाव कारगर तभी हो सकता है जब संघर्ष ज़मकर किया जाये। किन्तु अपार साधनोसे लैस एक संगठित सरकारके विरुद्ध बाहरी सहायताके बिना कमजोर जनता ऐसा संघर्ष करनेकी आशा नहीं रख सकती। यदि सत्याग्रहमें इस प्रकार के दबावके लिए भी स्थान नही है तो फिर वाइकोमके संघर्षको कोई दूसरा नाम देना पड़ेगा; उसे अनाक्रामक प्रतिरोध, सविनय अवज्ञा या अहिंसापूर्ण आग्रह कहिए। वैसी दशामें फिर बाहरसे मदद लेनेमें क्या आपत्ति हो सकती है?

१. देखिए आत्म कथा, भाग ४, अध्याय १०।

हम लोगोको उपवासका प्रयोग करने और बाहरकी सहायता लेनेसे रोककर क्या आप हमें एक ऐसे सुलभ साधनसे वंचित नहीं कर रहे है, जिसका प्रयोग मित्र और शत्रु दोनोपर किया जा सकता है?

उ० मैं यह नही मानता कि खेडा या बोरसदमे सरकारने लोकमतके दबावके कारण घुटने टेके थे और फिर सरकारपर बाहरसे तो कोई दबाव डाला ही नही गया था। कई लोगोने मुझे आर्थिक सहायता भेजनेकी बात लिखी थी, पर मैंने (खेडाके मामलेमे) किसी भी प्रकारकी बाहरी सहायता नही ली। जनता द्वारा हर प्रकारके कष्ट सहनकी तैयारीने यह प्रदर्शित कर दिया कि उसकी भावना गहरी है और इससे सरकारकी आँखें खुली और उसने घुटने टेक दिये। सचाईकी प्रतीतिने ही सरकारको खेडाकी जनताकी माँगे माननेपर विवश किया था। इस तरहकी प्रतीति आपके बलिदानकी शुचिता और शक्तिसे ही हो सकती है। बाहरसे मिलनेवाली सहायता बलिदानकी शक्तिको क्षीण कर देती है। उस हालतमे प्रतिपक्षीको आपके अन्दर त्यागकी भावना दिखाई नही देती। इसलिए उसके हृदयपर कोई असर नही पडता और उसकी आँखे नही खुलती। बाहरी मददके बलपर भोजन और खर्च पानेवाले स्वय-सेवक प्रतिपक्षीको सत्याग्रही नही, पेशेवर सैनिक-जैसे मालूम पडते है, सत्याग्रही तो अपने सिद्धान्तोके लिए सर्वस्वकी बलि चढानेके लिए तैयार रहता है। इस तरहका सघर्ष तो भौतिक उपकरणोकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेवाली होड ही है, आत्मिक शक्ति-का द्योतक नही। यह सच्चा सत्याग्रह नही है। चिरला-पेरलामे[1] भी लगभग इसी तरहका प्रश्न उठा था। मैंने श्री गोपाल कृष्णय्यासे यही अनुरोध किया था कि वे बिना किसी बाहरी मददके अपना सघर्ष जारी रखे। उनका सघर्ष निर्विघ्न चलता रहा। बाहरी मदद लेकर अहिंसापूर्ण ढगसे अपने अधिकारोका आग्रह करना अनाक्रामक प्रति-रोध हो सकता है, वह सत्याग्रह तो नही ही है।

अनाक्रामक प्रतिरोध और सत्याग्रहमे जमीन-आसमानका अन्तर है। अनाक्रामक प्रतिरोध करनेवालेके लिए जरूरी नही है कि उसके मनमे प्रतिपक्षीके लिए प्रेमभाव हो, पर सत्याग्रहीके लिए तो यह जरूरी है। अनाक्रामक प्रतिरोध एक कमजोर अस्त्र है और कमजोर जनता ही उसका प्रयोग करती है। लेकिन सत्याग्रह एक शहजोर अस्त्र है जिसका प्रयोग कमजोर जनता करती है। केरलके दलित वर्ग अनाक्रामक प्रतिरोध-का मार्ग अपना सकते है, लेकिन मैं उनको इसकी सलाह नही दूँगा और न मैं यह चाहूँगा कि कांग्रेसी लोग उसका समर्थन करे। आदर्श सत्याग्रहका मतलब है ऐसा सत्याग्रह जो एक या अनेक व्यक्ति बाहरी सहायता लिये बिना कष्ट झेलते हुए करते है। वाइकोमके मामलेमें वहांके पचम वर्णके हिन्दुओ और उनसे सहानुभूति रखनेवाले सवर्णो द्वारा किया गया सत्याग्रह ही आदर्श सत्याग्रह कहलायेगा। यदि यह सम्भव न हो तो वे इस आदर्शसे कुछ उतरकर उनकी परिस्थितिको समझनेवाले और उनसे हमदर्दी रखनेवाले क्षेत्रोके लोगोकी सहायता ले सकते है।

१ देखिए खण्ड २१, पृष्ठ १६-१८

प्र० : क्या अस्पृश्यता और अनुपगम्यता-प्रथाके निवारणकी समस्या एक अखिल भारतीय समस्या नहीं है और चूँकि वाइकोम-संघर्ष इन दोनों कुरीतियोंके विरुद्ध छेड़े गये संघर्षोंमें पहला है, इसलिए इसमें हमारा हार जाना क्या सम्बन्धित आम आन्दोलनके लिए घातक सिद्ध नहीं होगा; और यदि ऐसा अन्देशा हो तो क्या इस संघर्षमें हाथ बटाना सभी भारतीयोंका कर्तव्य नहीं हो जाता? वाइकोमके सन्दर्भमें "स्थानीय" शब्दसे क्या अभिप्राय है? यदि बाहरसे सहायता लेनेका अर्थ दबाव डालना और प्रतिपक्षियोंको डराना-धमकाना है और यदि यह तरीका सत्याग्रहके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल है तो क्या वाइकोमके पंचमवर्णीय हिन्दू वाइकोमसे बाहरके किसी स्थानसे रुपये-पैसे और स्वयंसेवकोंकी मदद ले सकते हैं? खुद त्रावणकोर रियासतके वे निवासी जो वाइकोममें नहीं रहते, इस संघर्षमें भाग ले सकते हैं या नहीं? यदि वे त्रावणकोर और यहाँतक कि मद्रास अहाते-भरके लोगोंसे उक्त सहायता माँग सकते और स्वीकार कर सकते हैं तो फिर भारत-भरमें हिन्दुओंसे क्यों नहीं? सत्याग्रही हिन्दू-सभा और ऐसी ही अन्य संस्थाओंकी मदद लेनेसे इनकार क्यों करें?

उ० पहले दिये गये उत्तरमें इस प्रश्नका उत्तर आंशिक रूपसे आ ही चुका है। वाइकोम संघर्षके प्रश्नको इस अर्थमें अखिल भारतीय प्रश्न भी माना जा सकता है कि हिन्दू समाजमें मौजूद एक ही बुराईके तहत देशके प्रत्येक भागमें अछूतोंको सभी कुओं, तालाबों, सड़कों इत्यादिका इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता, लेकिन इसके फलस्वरूप स्थानीय रूपसे खड़े होनेवाले हर मसलेपर स्थानीय रूपसे ही संघर्ष किया जाना चाहिए। इन मसलोंको लेकर सारा भारत उठ खड़ा हो या केन्द्रीय संगठन उसके लिए संघर्ष छेड़ दे, यह न तो वांछनीय है और न व्यावहारिक ही। इससे अव्यवस्था और गड़बड़ी फैल जायेगी। इसके परिणाम तो ज्यादा अच्छी तरहसे तभी समझमें आ सकते हैं जब एक ही साथ ऐसे कई संघर्ष छिड़े हुए हों। इसके विपरीत यदि केन्द्रीय संगठन उस तरह अपनी शक्तिका अपव्यय करे तो काफी कमजोर हो जायेगा और फिर स्थानीय जनता बाहरी सहायताके बिना ऐसे मसलोंको हल करनेके लिए आवश्यक शक्ति अपने भीतर उत्पन्न करनेमें समर्थ न होगी। यदि हर क्षेत्र स्वावलम्बी और आत्म निर्भर बन जाये तो इससे समूचा देश शक्तिशाली बनेगा और उस बड़े संघर्षको छेड़नेकी क्षमता प्राप्त कर लेगा जो सामने दिखाई दे रहा है। वाइकोममें स्थानीय रूपसे समस्या हल कर लेनेसे सारे भारतकी अस्पृश्यताकी समस्या हल नहीं हो जायेगी। पूरा देश इस स्थानीय संघर्षकी उपलब्धियोंका लाभ उठा सकता है, पर यदि इसकी पराजय हो तो वह इसके लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

प्र० : हमारी समझमें यह नहीं आया कि आप वाइकोमके संघर्षमें गैर-हिन्दुओंके भाग लेनेपर रोक क्यों लगाते हैं। खिलाफतका सवाल एक बिलकुल ही धार्मिक मसला था; फिर भी आपने हिन्दुओंसे मुसलमानोंकी सहायता करनेके लिए कहा था। हिन्दू और मुसलमान भारत-राष्ट्रके अंग हैं; मुसलमानोंकी मदद करना तब हिन्दुओंका फर्ज इसीलिए माना गया था कि इससे शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त करनेमें सहायता मिलेगी।

भारतीयोको एक राष्ट्रके रूपमें सुदृढ बनानेके लिए अस्पृश्यता-निवारण आवश्यक है ही, इसलिए क्या प्रत्येक हिन्दू और गैर-हिन्दू भारतीयका यह कर्त्तव्य नही हो जाता कि वह इस बुराईको दूर करनेमे हाथ बँटाये?

उ० खिलाफतके मामलेमे सघर्ष था मुसलमान समाज और एक गैरमुसलमान सत्ताके बीच। यदि वह सघर्ष मुसलमानोके दो फिरकोके बीच होता तो मै हिन्दुओसे उसमे भाग लेनेके लिए न कहता। हिन्दू समाजमे जो बुराइयाँ फैली हुई है, उनको दूर करना हिन्दुओका कर्तव्य हे। अपने समाजमे सुधार कार्य करनेके लिए वे बाहरके लोगोकी मदद नही ले सकते और न उनको लेनी ही चाहिए। इस तरहकी सहायता आपका मनोबल गिराती हे ओर उन कट्टरपथियोको क्रुद्ध कर देती है जिन्हे आपको प्रेमके बलपर बदलना और अपने पक्षमे करना है। गैर हिन्दू लोगोकी दखलदाजीसे ऐसे लोगोको निश्चय ही, ओर बिलकुल न्याय-सगत लगेगा कि उनको अपमानित किया जा रहा है।

प्र० वाइकोमके सघर्षका उद्देश्य एक नागरिक अधिकारको अर्थात् आम सडक-पर चलनेके अधिकारको प्रतिष्ठित करना है, क्या इसे देखते हुए प्रत्येक नागरिकका यह कर्त्तव्य नही हो जाता कि वह इस सघर्षमे मदद करे, फिर वह किसी भी धर्मका क्यो न हो?

उ० किसी भी देशी राज्यके आन्तरिक प्रशासनमे काग्रेस कमेटीको हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नही है। केरल काग्रेस कमेटीने यह आन्दोलन सिर्फ इसीलिए शुरू किया है कि काग्रेसने हिन्दुओसे हिन्दू-समाजमे प्रचलित अस्पृश्यताको दूर करनेके लिए कहा है। वाइकोमके सघर्षका मुख्य मसला यही है कि अमुक वर्गके लोगोको आम सडकपर चलनेकी इजाजत इसलिए नही दी जाती कि उन्हे अनुपगम्य माना जाता है। यह प्रश्न केवल हिन्दुओसे सम्बन्धित है और इसलिए इस सघर्षमे 'गैर हिन्दुओ' का कोई स्थान नही है।

प्र० महात्माजी, आप अकालियो द्वारा वहाँ चलाये जानेवाले लगरका इतने जोरोसे विरोध क्यो करते है? अकाली लोग तो सभी जातियो और फिरकोके लोगो-को भोजन देनेके लिए तैयार है और वास्तवमे दे भी रहे है। वे इस सघर्षमें किसी भी एक पक्षके साथ तो है नही।

उ० आत्मसम्मान रखनेवाला कोई भी व्यक्ति ऐसे भण्डारेसे खाना नही लेगा। आपकी अकालकी परिस्थिति नही है और न आप ऐसी ही हालतको पहुँच गये है कि भोजनके लिए दूसरोकी दानशीलताका मोहताज बनना पडे। बाहरी सहायताके विपक्षमे जितनी भी दलीले पहले दी गई है वे सभी वाइकोमके लगरपर भी लागू होती है।

प्र० महात्माजी, आगामी सघर्षके दौरान अपनाये जानेवाले तरीकेके बारेमें आप हम लोगोको क्या सलाह देना चाहेगे?

उ० आप जिस ढगसे सघर्ष चला रहे है, उसी ढगसे चलाते रहे। सत्याग्रह करनेवाले स्वयसेवकोकी सख्या भले ही बढा ले। यदि आपमे पर्याप्त शक्ति हो तो

उन दूसरे स्थानोपर भी सत्याग्रह किया जा सकता है जहाँ दलित वर्गके लोग इसी तरहकी निर्योग्यताओके शिकार हैं। परन्तु अच्छा तो यह होगा कि इस मामलेमे सवर्ण हिन्दुओकी भावनाओके प्रदर्शनके रूपमे केवल सवर्ण हिन्दुओके वाइकोमसे त्रिवेन्द्रम और वापसीके लिए, एक ऐसे जुलूसकी व्यवस्था कीजिये जो बिलकुल ही शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक हो तथा जो महाराजासे मिले और उनको पचम वर्णके हिन्दुओकी निर्योग्यताओके निवारणकी आवश्यकता समझाये। जुलूसमे शामिल होनेवाले सवर्ण हिन्दुओको उन सभी असुविधाओको झेलनेके लिए तैयार रहना चाहिए जो इस प्रकारके पैदल और मन्द गतिके साथ चलनेवाले जुलूसोसे सम्बद्ध हैं। उनको गाँवो और शहरोसे बाहर अपने खेमे गाडने चाहिए और अपने खाने-पीनेका प्रबन्ध स्वय ही करना चाहिए। जुलूस निकालनेका प्रबन्ध तभी किया जाना चाहिए जब उसके सगठनकर्त्ताओको पूरा भरोसा हो जाये कि वातावरण बिलकुल अहिंसापूर्ण बना रहेगा। इस जुलूसके प्रयाणके दौरान वाइकोममे सत्याग्रह मुल्तवी रखा जा सकता है। फिलहाल तो मैं इतना ही सुझाव दे सकता हूँ।

यह महात्माजीके साथ हमारी जो बातचीत हुई उसका सार-मात्र है। महात्माजीसे हमने जितने भी सवाल किये उनके पास उन सबके अत्यन्त सन्तोषप्रद उत्तर थे। इस सारको महात्माजी द्वारा समाचारपत्रोमें जारी किये गये वक्तव्यका पूरक माना जा सकता है। उनकी बहुत ही स्पष्ट राय है कि केरल कांग्रेस कमेटीको संघर्ष जारी रखना चाहिए। हालाँकि महात्माजी सत्याग्रह आन्दोलनमे किसी भी बाहरी मददके सिद्धान्ततः विरुद्ध है, फिर भी उनका स्पष्ट मत है कि केरलको, अस्पृश्यता-निवारणके इस आन्दोलनके आम प्रचारकी दृष्टिसे मद्रास अहातेसे बाहरके लोगोसे भी सहायता लेनेका हक है। महात्माजीने यह राय भी जाहिर की है कि स्वयसेवकोकी सीमित संख्या और समितिके साधनोको यथासम्भव बचाये रखनेकी जरूरतको देखते हुए अभी इस समय धारा १४४ के अन्तर्गत जारी किये गये आदेशोका उल्लघन करना उचित नही है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २६-५-१९२४

५१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

उष:काल, बुधवार, २१ मई, १९२४

प्रिय चार्ली,

तुम ऐसा क्यों कहते हो कि भीलोंके बच्चोंको खद्दरकी टोपियाँ और कमीजें नहीं पहननी चाहिए? फिर वे क्या पहनें? तुमने जो दृष्टान्त दिया है, क्या वह उपयुक्त है? कलक्टर-जैसी ही भूषा धारण करनेवाला मिशनरी कलक्टरके साथ बैठकर उसी अनिष्टकारी सत्ताका अंग लगता है। यदि खद्दरकी टोपी शुद्धताका प्रतीक मानी जाती है तो उसे सभी लोगोंको क्यों नहीं धारण करना चाहिए? इस प्रकार शुद्ध मानी जानेवाली एक चीजके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना कल्याणकारी होगा। पर मैं तो चाहता हूँ कि अच्छे और बुरे दोनों ही लोग खद्दर पहनें, क्योंकि तन तो सभीको ढँकना होता है। इसलिए मैं इस प्रयासमें हूँ कि खद्दरको न तो नेकीके साथ जोड़ा जाये और न बदीके साथ। वह किस शक्लमें धारण किया जाता है, यह बात कोई महत्व नहीं रखती।

मैं जानता हूँ, तुम अपने पत्रोंके उत्तरमें एक पंक्तिकी भी अपेक्षा नहीं रखते लेकिन जब तुम ऐसी बातें पूछ बैठते हो जिनका जवाब देना जरूरी हो जाता है तब फिर चारा भी क्या है।

हार्दिक स्नेह सहित,

मोहन

६, द्वारकानाथ टैगोर लेन

मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६११) की फोटो-नकलसे।

५२. जेलके अनुभव – ६

उपवासका औचित्य

जब पिछले प्रकरणमें वर्णित घटनाएँ हुईं, उस समय मेरी कोठरी ग्यारह कोठरियोंवाले एक तिकोने अहातेमें थी। ये कोठरियाँ भी पृथक अहातेमें ही बनी थीं, लेकिन दूसरे पृथक अहातों और इस अहातेके बीच एक मोटी और ऊँची दीवार थी। इस त्रिभुजाकार अहातेकी आधार-भुजा दूसरे पृथक अहातोंकी तरफ जानेके रास्तेके बगलमें ही पड़ती थी। इसलिए कैदियोंका वहाँसे आना-जाना मुझे साफ नजर आता था। असलमें इस रास्तेपर कैदियोंका आना-जाना बना ही रहता था, इसलिए कैदियोंके साथ सम्पर्क आसान था। कोड़ोंकी घटनाके कुछ ही दिन बाद हमें यूरोपीय वार्डमें भेज दिया गया। यहाँकी कोठरियाँ बड़ी और अधिक हवादार तथा रोशनीवाली थीं।

सामने एक सुन्दर बगीचा था। एक कठिनाई अवश्य हो गई। उस पृथक विभागमे रहते हुए दिन-भर हमारे फाटकके सामनेसे गुजरते हुए कैदी हमे देखनेको मिल जाते थे। यह सब सम्पर्क अब बिलकुल बन्द हो गया था और हम ज्यादा अकेले पड गये। लेकिन यह चीज अखरी बिलकुल नही। उलटे, एकान्त अधिक मिलनेसे अध्ययन और मननके लिए मुझे ज्यादा समय मिलने लगा और 'बेतारके सन्देश' का साधन तो मौजूद था ही। जबतक एक भी कैदी या कर्मचारीका हमारे पास लाजिम तौरपर आना-जाना बना था तबतक ये सन्देश किसी भी तरह रोके नही जा सकते थे। न बतानेकी इच्छा रखते हुए भी आने-जानेवालेके मुंहसे कुछ-न-कुछ निकल जाता था और हमे जेलकी घटनाओंकी जानकारी हो जाती थी। इस प्रकार एक दिन सवेरे हमने सुना कि मुलशीपेटाके कई कैदियोको कम काम करनेके अपराधमे कोडे लगाये गये है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि इस सजाका विरोध करनेके लिए मुलशीपेटाके अन्य कई कैदियोने भी उपवास शुरू कर दिया है। इनमे से दोको मै जानता था। एक थे देव और दूसरे दास्ताने। श्री देवने मेरे साथ चम्पारनमे काम किया था। अपने आचरणसे उन्होने सिद्ध कर दिया था कि वे चम्पारनमे मेरे साथ काम करनेवाले सबसे निष्ठावान, समझदार और प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओमे से थे। भुसावलवाले भाई दास्तानेको तो सभी जानते है। कोडे खानेवालो और भूख-हडताल करनेवालोमे भाई देव भी एक है, यह जानकर मुझे कितना दु ख हुआ होगा, इसकी कल्पना पाठक आसानीसे कर सकते है। मेरे साथियोमे इस समय भाई इन्दुलाल याज्ञिक और भाई मजरअली सोख्ता भी थे। वे भी यह सुनकर उद्विग्न हो उठे। सबसे पहले तो उनके मनमे सहानुभूति प्रकट करनेके लिए स्वय भी उपवास करनेका विचार आया, परन्तु हम ऐसी कार्रवाईके औचित्यके विषयमे चर्चा करके अन्तमे इस निर्णयपर पहुँचे कि इस प्रकारका उपवास करना अनुचित है। कोडेकी सजाके लिए अथवा उसके परिणामस्वरूप शुरू किये गए उपवासके लिए नैतिक अथवा अन्य किसी भी दृष्टिसे हम जिम्मेदार नही थे। सत्याग्रहीके नाते हमे जेलके तमाम कष्टो, यहाँतक कि कोडेकी सजाके लिए भी तैयार रहना था और उन्हे हँसते-हँसते झेल लेना था। इसलिए भविष्यमे ऐसी सजाएँ न दी जाये, इस खयालसे ऐसे उपवास करना जेल अधिकारियोके प्रति एक प्रकारकी हिसा करने जैसा था। इसके सिवा, अधिकारियोके व्यवहारके ओचित्य-अनौचित्यके बारेमे निर्णय करनेका हमे कोई हक नही था। ऐसा करना तो जेलके पूरे अनुशासनका अन्त कर देनेके बराबर था और यदि हम अधिकारियोके व्यवहारके औचित्य-अनौचित्यका निर्णय करना भी चाहते तो निष्पक्ष न्याय करनेके लिए आवश्यक जानकारी हमारे पास नही थी और न वह जुटाई ही जा सकती थी। अब यदि उपवास करनेवालोके प्रति सहानुभूतिसे प्रेरित होकर हम उपवास शुरू कर देते तो इस बातका निश्चय करनेके लिए भी हमारे पास पूरे तथ्य नही थे कि उनका कदम ठीक था या नही। उपर्युक्त कोई भी एक कारण यह दिखानेको काफी था कि यदि हम उपवास करते है तो वह उतावलापन ही होगा। इन सब कठिनाइयोका विचार करके मैने अपने साथियोको सुझाया कि सबसे पहले तो मुझे सुपरिन्टेन्डेन्टसे

इन मामलेकी सही जानकारी प्राप्त करने और पहलेकी तरह उपवास करनेवालोसे सम्पर्क स्थापित करनेका प्रयत्न करना चाहिए। मुझे लगा कि कैदी होते हुए भी मनुष्यके नाते हम ऐसे मामलोमे उदासीन नही रह सकते, और जब लगभग अमानुषिक माना जाने लायक कोई घोर अन्याय होनेकी सम्भावना हो, उस समय कुछ परिस्थितियोमें किसी कैदीको भी जेलके सामान्य शासनके बारेमे अपनी बात कहनेका हक होना चाहिए। इसलिए अन्तमे हम इस निष्कर्षपर पहुँचे कि यह मामला मैं अधिकारियोके सामने रखूं। 'यग इडिया' के ६ मार्च, १९२४ के अकमे प्रकाशित मेरे २९ जून, १९२३ के पत्रसे[1] पाठक इस मामलेका शेष विवरण देख लें। खूब पत्र-व्यवहार हुआ, काफी बातचीत हुई। परन्तु यह सब खानगी ढगका था, इसलिए उसे कहनेकी मेरी इच्छा नही है। इतना कह सकता हूँ कि अन्तमे सरकारको यह विश्वास हो गया कि मैं जेलके प्रबन्धमे ख्वाहमख्वाह दखल नही देना चाहता और उपवास करनेवाले भाइयोमे से जिन दो नेताओसे मिलनेकी मैंने इजाजत माँगी है सो सिर्फ मानवताकी भावनासे प्रेरित होकर ही माँगी है। इसलिए मुझे जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट और पुलिस के इन्स्पेक्टर जनरल श्री ग्रिफिथकी उपस्थितिमे भाई दास्ताने और देवसे मिलनेकी इजाजत दे दी गई। पूरे तेरह दिनके अखण्ड उपवासके बावजूद जब मैंने इन दो मित्रोको बिना किसी सहारेके दृढ कदमोसे चलते देखा तो मेरा हृदय एक अनुपम आनन्द और अभिमानसे भर गया। वे जितने बहादुर थे उतने ही प्रसन्न दिखाई देते थे। मैंने देखा, उनके शरीर बहुत ही क्षीण हो गये हैं, किन्तु साथ ही उनकी आत्मशक्ति उसी अनुपातमें निखर आई है। उन्हे आलिंगन करते-करते मैंने हँसकर पूछा, "क्यो, मरणके किनारे आ पहुँचे हो न?" वे बोल उठे, "नही, बिलकुल नही।" और भाई दास्तानेने कहा, "अगर जरूरत हुई तो हम अनिश्चित कालतक उपवास कर सकते हैं, क्योकि हम सही रास्तेपर हैं।" इसपर मैंने पूछा, "और यदि हम गलत रास्तेपर हुए तो?" उत्तर मिला, "तो हम मर्दोकी तरह अपनी गलती मान लेंगे और उपवास छोड देंगे।" उनके चेहरेपर ऐसा तेज झलक रहा था कि मैं क्षण भरके लिए भूल ही गया कि वे कई दिनसे भूखका कष्ट सह रहे हैं। काश, मेरे पास इतना समय होता कि मैं उस अवसरपर हुई सारी नैतिक चर्चाको यहाँ ज्योकी-त्यो प्रस्तुत कर पाता। अपने उपवासका कारण उन्होने मुझे यह बताया कि सुपरिन्टेन्डेन्टकी दी हुई सजा अन्यायपूर्ण थी और इसलिए जबतक वे अपनी भूल स्वीकार न करे और माफी न माँगे तबतक उन्हे उपवास जारी रखना पडेगा। मैंने समझाया कि उनका यह रवैया सही नही है। जब मैं उनके उपवासके नैतिक आधारकी चर्चा कर रहा था, उसी समय सुपरिन्टेन्डेन्ट, अपने स्वाभाविक सद्भावके साथ, अपने-आप बीचमे ही बोल उठे, "मैं आपसे कह सकता हूँ कि मुझे महसूस हो जाये कि मैंने भूल की है तो मैं जरूर माफी माँग लूंगा। मुझे मालूम है कि मेरे हाथसे कई बार गलतियाँ भी होती हैं। हम सब गलती करते हैं। इस मामलेमे भी कदाचित मैंने गलती की हो, परन्तु मुझे उसका एहसास नही है।" मैं अपनी बातका प्रतिपादन करता रहा। इन मित्रोको मैंने बताया

१. देखिए खण्ड २३ पृष्ठ १७९-८०।

कि जबतक हम सुपरिन्टेन्डेन्टके मनमें यह बात न बैठा दे कि उनसे गलती हुई है तबतक उनसे माफीकी आशा रखना उचित नही है और उन्हे सजा देने सम्बन्धी उनकी भूलको मनवानेका रास्ता उपवास नही है। यह काम तो केवल खुलकर बातचीत-के द्वारा ही सम्भव है और फिर यदि हम सत्याग्रहीके नाते कष्ट-सहन करनेके लिए कटिबद्ध है तो हमारे साथ या हमारे कैदी भाइयोके साथ अन्याय होनेपर उसके विरोध-मे उपवास किया ही कैसे जा सकता है? अन्तमे वे मेरी दलीलका मर्म समझ गये और बाकीका काम मेजर जोन्सके सद्भावनापूर्ण शब्दोसे हो गया। वे उपवास छोडने-को और दूसरे भाइयोको भी इसपर राजी करनेके लिए तयार हो गये। मैंने मेजर जोन्ससे अपने दूधमे से थोडा-सा दूध उन्हे देनेकी अनुमति माँगी और उन्होने तुरन्त अनुमति दे दी। भाई देव और दास्तानेने दूध ले तो लिया, परन्तु यह कहा कि नहा-धोकर वे दूसरे उपवासी भाइयोके साथ ही उसे पियेगे। मेजर जोन्सने आदेश दिया कि सभी उपवासियोको दुर्बलता दूर होने तक भोजनमे दूध और फल दिया जाये। हमने प्रेमपूर्वक आपसमे हाथ-मिलाये और फिर विदा हो गये। क्षण-भरके लिए तो अधिकारी अपनी अफसरी भूल गये और हम कैदी भी यह बात भूल गये कि हम कैदी है। उस समय हम आपसमे ऐसे मित्र ही बन गये थे जो एक पेचीदा गुत्थीको सुलझानेमे लगे हुए थे और आखिरमे वह गुत्थी सुलझ गई, इससे हम सब बडे प्रसन्न थे। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण भूख-हडताल समाप्त हुई। मेजर साहबने मेरे सामने स्वीकार किया कि उन्होने जितनी भूख-हडताले देखी है, उनमे यह सबसे अधिक दोषरहित थी। उपवास करनेवाले कैदियोको चोरी-छिपे कोई खुराक न दी जा सके, इसके लिए उन्होने अत्यन्त सावधानी बरती थी और उन्हे इतमीनान था कि सारी लडाईके दरम्यान उन लोगोको कुछ भी खानेको नही मिल पाया है। अगर उन्हे मालूम होता कि ये उपवास करनेवाले किस धातुके बने हुए है तो उन्हे ऐसी खबरदारी रखनेकी जरूरत ही न पडती।

इस घटनाका एक स्थायी परिणाम यह हुआ कि सरकारने इस आशयका आदेश जारी कर दिया कि जेल अधिकारियोके अपमान अथवा ऐसी ही किसी अत्यन्त गम्भीर उत्तेजनाके प्रसगके अलावा, उच्च अधिकारियोकी मजूरीके बिना कैदियोको कोडे लगाने की सजा न दी जाये। निस्सन्देह इसमे सावधानीकी जरूरत थी। जहाँ कुछ मामलोमे जेल सुपरिन्टेन्डेन्टको काफी अधिकार देना अनिवार्य है, वहाँ जो सजाएँ वापस न ली जा सकती हो उनके बारेमे तो समझदारसे-समझदार सुपरिन्टेन्डेन्टपर भी उचित अकुश रखना जरूरी है।

इसमे तो सन्देह ही नही कि भाई दास्ताने, देव और दूसरे सत्याग्रहियोके उपवासके बहुत आश्चर्यजनक और कल्याणकारी परिणाम निकले, क्योकि उनका हेतु उसमे भ्रमके निहित होते हुए भी बहुत उत्कृष्ट था और उन्होने उसके लिए जो कदम उठाया वह भी नितान्त निर्दोष था। किन्तु इस शुभ परिणामके बावजूद उस उपवासको तो निन्द्य ही कहना पडेगा। किन्तु जो सुपरिणाम निकला वह उपवासकी अपनी प्रभावकारिताके कारण नही बल्कि उपवास करनेवालोके पश्चात्ताप करने और अपने हेतुको गलत मानकर उपवास तोड़ देनेके फलस्वरूप निकला। जब खाना और जीना लज्जाजनक बात बन

जाये, तभी सत्याग्रहीका उपवास करना उचित माना जा सकता है। इस प्रकार फिर कैदीके आचरणपर विचार करते हुए मैं कहता हूँ कि यदि मेरी धार्मिक स्वतन्त्रता छीन ली जाये या मेरे साथ साधारण इन्सानकी तरह भी बरताव न किया जाये — उदाहरणके लिए मेरी खुराक मुझे ठीक ढगसे देनेके बजाय मेरी तरफ फेक दी जाये — तो ऐसी हालतमे वह खुराक लेना और जीना मेरे लिए लज्जाकी बात होगी। कहनेकी जरूरत नही कि यह धार्मिक आपत्ति सच्चे अर्थोमे धार्मिक आपत्ति होनी चाहिए और अपने प्रति की जानेवाली अशिष्टताका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वह किसी भी कैदीको साफ तौरपर खटके। यह सावधानी जरूरी है, क्योकि अक्सर यह धार्मिक आवश्यकता केवल बहाना होती है और उसके पीछे अधिकारियोको तग करनेका मशा होता है। इसी प्रकार बहुधा जहाँ अशिष्टतासे पेश आनेका कोई इरादा नही रहता वहाँ भी लोग मान बैठते है कि उनके साथ अशिष्टता बरती गई है। तो यदि मै जेलके नियमके अनुसार निषिद्ध चिट्ठी-पत्री आदिको छिपाकर रखनेके लिए धर्म-पुस्तकके बहाने 'भगवद्गीता' को अपने पास रखने अथवा प्राप्त करनेका आग्रह करूँ तो यह मुझे शोभा नही देगा। इसी प्रकार जरूरी तौरपर प्रत्येक कैदीकी जो तलाशी ली जाती है, उसे अशिष्टता मानकर उसपर रोप करना ठीक नही है। सत्याग्रहमें पाखण्डके लिए कोई गुजाइश नही है। किन्तु समझ लीजिए कि उक्त उपवासके अवसरपर यदि सरकार सिर्फ भूख हडतालियोका दृष्टिकोण समझने और उनकी भूल हो तो उन्हे उससे विरत करनेके लिए मुझे उनसे मिलनेका मौका नही देती तो उस हालतमे उपवास करना मेरा कर्त्तव्य हो जाता। यह जानते हुए कि यदि जेल अधिकारी मानवीयताके साधारण नियमोको स्वीकार करे तो भूखसे मरते हुए लोगोको बचाया जा सकता है और तिसपर भी वे कुछ नही करते तो फिर मुझे जिन्दा रहनेके लिए भोजन करना किस तरह सहन हो सकता है।

कुछ मित्र कहते है "ऐसा सूक्ष्म भेद करनेकी जरूरत ही क्या है? हम बाहरके अधिकारियोकी तरह ही जेलके अधिकारियोको भी परेशान क्यो न करे? आपने जेल अधिकारियोके साथ जैसा सहयोग किया वैसा हम क्यो करे? क्यो नही हम यहाँ भी अहिसात्मक प्रतिरोध जारी रखे? हमारी अपनी सुविधाके लिए जो नियम हो उनके सिवा अन्य किसी भी नियमका पालन हम किसलिए करे? जेल-शासनको ठप कर देनेका क्या हमे पूरा हक नही है? क्या यह हमारा कर्त्तव्य नही है? बल-प्रयोग किये बिना यदि हम अधिकारियोकी नाकमे दम कर दे तो सरकारके लिए लोगोको बडी सख्यामे गिरफ्तार करना कठिन हो जायेगा और उसे सुलहकी बातचीत शुरू करनी पडेगी।" यह तर्क बडी गम्भीरताके साथ पेश किया गया है, इसलिए अगले प्रकरणमे हम इसपर विचार करेगे।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, २२-५-१९२४

५३. विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करो

पिछले सप्ताह मैंने यह दिखानेकी कोशिश की थी कि साम्राज्यके मालका बहिष्कार करनेसे कुछ बननेवाला नही है। मैं तो कहूँगा कि यह निष्प्रयोजन ही नही, हानिकर भी है, क्योकि इसके कारण देशका ध्यान उस बहिष्कारकी ओरसे हट जाता है जो एकमात्र प्रभावकारी है और अनिवार्य बहिष्कार भी है। मैं एकबार नही, अनेक बार कह चुका हूँ कि यदि हम अपने मनसे अहिंसाकी बात हटा दे तो जो लोग राजनीतिके क्षेत्रमे मेरी तरह अहिसाको उद्देश्य-प्राप्तिका एकमात्र साधन नही मानते और यदि उन्हे यह विश्वास हो गया है कि अहिसात्मक उपाय विफल हो चुके हैं तो दूसरे उपायोको अधिक कारगर पाकर उनका उनसे काम लेना न केवल उचित बल्कि कर्तव्य-रूप होगा। परन्तु अभी तो मुझे इतना ही कहना है कि साम्राज्यके मालका बहिष्कार किसी भी हालतमे तबतक व्यावहारिक नही है, जबतक वर्तमान शासन प्रणालीका अस्तित्व कायम है। जहाँतक मेरी नजर पहुँचती है, अहिसा तथा अहिंसासे जो वस्तु अभिप्रेत है उसका एकमात्र विकल्प सशस्त्र विद्रोह है। यदि हम उसकी तैयारी करना चाहते हो तो हमारे राष्ट्रीय कार्यक्रममे साम्राज्यके मालके बहिष्कारका स्थान केवल उचित ही नही, अनिवार्य है। इस बहिष्कार अभियानको जारी रखने और इसके पक्षमे प्रबल प्रचार करनेका परिणाम यह होगा कि हमे ज्यो-ज्यो अपनी बेबसीका एहसास होगा, हमारा क्रोध बढेगा। इसलिए ऐसे प्रचारका स्वाभाविक फल चारो ओर अनुशासनहीन हिसाकाण्डके रूपमे प्रकट हुए बिना नही रहेगा। उस अवस्थामे उसका कुचल दिया जाना हमारे लिए विशेष हानिकर प्रसग नही होगा। तब भी उसे सशस्त्र बगावतके लिए एक किस्मकी तालीम माना जायेगा। हर दमनके साथ बहुतसे लोगोमे पस्ती जरूर आ जायेगी, लेकिन कुछ लोगोमे अधिक सकल्प और दृढता भी आयेगी और उन थोडेसे कृतसकल्प लोगोकी टोलीसे, सम्भव है, विलियम द सायलेटकी[1] सेनाकी तरह एक सेना उत्पन्न हो जाये। यदि राष्ट्रके कार्यकर्त्ता इस निष्कर्षपर पहुँच चुके हो कि भारत नये इतिहासकी रचना नही कर सकता, बल्कि उसे उसी रास्तेपर चलना पडेगा जिसपर यूरोपके देश चले हैं, तब मैं साम्राज्यीय मालके उनके बहिष्कार-अभियानकी उपयोगिताको तसलीम कर लूँगा। बहिष्कार-आन्दोलन भले ही कभी सफल न हो, किन्तु उसे एक आदर्शके रूपमे जारी रखना होगा, क्योकि तब वह शक्ति और उत्साह रूपी वाष्प पैदा करनेवाले कारखानोमे से एक गिना जायेगा। भारत चाहे तो उसे इस परम्परागत साधनको ग्रहण करनेका अधिकार है और दुनियाकी कोई ताकत उससे यह अधिकार छीन नही सकती।

१ प्रथम विलियम (१५३३-८४), डच गणतन्त्रका सस्थापक, प्रोटेस्टेंटोपर फिलिप द्वितीयके अत्याचारका विरोध किया और स्पेनकी सेनाके खिलाफ "स्वातन्त्र्य युद्ध" छेड़ा और इस तरह हॉलैंडके कई प्रान्तोंको स्वतन्त्र करवाया।

मगर मैं विश्वासपूर्वक यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि तलवारका रास्ता भारतके लिए है ही नही। मैं तो यह भविष्यवाणी करनेका दु साहस करता हूँ कि यदि भारतने उस राहको पसन्द किया तो उसे दोमें से एक वातके लिए तैयार रहना चाहिए

(१) या तो पीढियोतक विदेशी शासन कवूल करना,

(२) या फिर विशुद्ध हिन्दू राज्य या पूरे तौरपर मुसलमानी राज्यको लगभग सदाके लिए स्वीकार कर लेना।

मैं जानता हूँ कि कुछ ऐसे हिन्दू भी है, जो यदि भारतको शुद्ध हिन्दू राज्य न बना सके तो अग्रेजोके हर तरहसे खुश करके रहनेको तैयार है और मैं यह भी जानता हूँ कि कुछ ऐसे मुसलमान भी है, जो तबतक अग्रेजी राज्यके अधीन रहनेके लिए तैयार है जबतक वे भारतमें सोलहो आना मुस्लिम राज्य स्थापित नही कर पाते। पर इनकी सख्या थोडी है। उनसे मैं कुछ नही कहना चाहता। वे रेतमें हल चलाते है तो चलाये। मैं जानता हूँ कि वहुत वडी तादाद तो उन लोगोकी है जो विदेशी आधिपत्यसे ऊब गये है और जो भारतको उससे मुक्त करानेके लिए कोई कारगर उपाय खोजनेके लिए वेचैन है। मुझे विश्वास है कि मैं एक न एक दिन लोगोसे यह मनवा दूगा कि यदि विचारशील जनसमुदाय सर्वथा अहिसात्मक साधनसे ही काम ले तो ऐसे स्वराज्यकी प्राप्ति, जिसमें हिन्दू, मुसलमान तथा अन्य मतावलम्वी वरावरके साझेदारोकी हैसियतसे रह सकें, उनके द्वारा कल्पित अवधिसे पहले ही हो सकती हे, और यह भी कि ऐसा स्वराज्य अन्य किसी भाँति नही मिल सकता।

परन्तु फिलहाल तो मैं यह मान लेना चाहता हूँ कि काग्रेस द्वारा अपनाया गया धर्म जैसा है उसे देखते हुए काग्रेसजन हिसानुकूल वातावरण तैयार कर ही नही सकते और साम्राज्यके मालके निष्फल वहिष्कारसे ऐसा वातावरण जरूर तैयार होगा और इसलिए मैं तो यहांतक कहता हूँ कि वहिष्कारका यह प्रस्ताव काग्रेसके सिद्धान्तके खिलाफ है। लेकिन इस वातका निर्णय तो सिर्फ काग्रेस ही कर सकती है।

अतएव अव मैं पाठकोका ध्यान दूसरे वहिष्कार अर्थात् विदेशी कपडेके वहिष्कार-पर केन्द्रित करना चाहता हूँ। मैं नरमदलवालो तथा राष्ट्रवादियो और काग्रेसजनो, सभीसे कहता हूँ कि यदि वे तमाम विदेशी कपडे और देशी मिलोके कपडेके वजाय सिर्फ हाथसे तैयार की गई खादी ही निजी इस्तेमालमें लाये और यदि वे रोज कुछ समय तक निष्ठापूर्वक खुद चरखा चलाये और अपने-अपने परिवारके हर व्यक्तिको उसके लिए प्रेरित करे तथा यदि वे अपनी शक्ति-भर अपने पडोसियोके घरमें भी चरखे और खद्दरका प्रचलन करायें तो देश एक ही सालके अन्दर विदेशी कपडेका वहिष्कार कर सकता है। जिस प्रकार वे किसी भी कारणसे विदेशी कपडेका इस्तेमाल न करे, उसी प्रकार हमारी मिलोके कपडेका भी इस्तेमाल न करे। विदेशी कपडे और देशी मिलोके कपडेके निषेधमें जो भेद है, उसे मैं स्पष्ट कर दूं। विदेशी कपडेका वहिष्कार तो सदाके लिए एक परम आवश्यकता है। परन्तु देशी मिलोके कपडेके स्थायी और राष्ट्र-व्यापी वहिष्कारकी जरूरत नही हे। लेकिन कपडेकी मौजूदा माँगको सिर्फ देशी मिले

कभी पूरा नही कर सकती, चरखा और करघा कर सकता है। लेकिन चरखेसे उत्पादित खादी अभी सर्वप्रिय और सार्वजनीन नही हो पाई है। यह तभी हो सकता है जब भारतके समझदार लोग उसका श्रीगणेश करे। अतएव उन्हे खादीके सिवा किसी कपडेका इस्तेमाल नही करना चाहिए। हमारी मिलोको हमारे आश्रयकी जरूरत नही है, उनका माल काफी लोकप्रिय है। इसके अलावा, मिलोपर राष्ट्रका अकुश भी नही है। वे परोपकारिणी सस्थाएँ नही है। वे जानबूझकर स्वार्थके लिए शुरू की गई है। उनका अपना प्रचार-कार्य भी हो रहा है। यदि मिलमालिक कालकी गति को पहचानेगे तो वे अपने कपडेको सस्ता करके और उन स्थानोमे कपडा पहुँचाकर, जहाँ अभीतक खादी नही पहुँच पाई है, विदेशी कपडेके बहिष्कारमे सहायक होगे। यदि वे चाहे तो अपनी मिलोको खादीके साथ स्पर्द्धासे बचाते हुए केवल उसका पूरक उद्योग बननेमे सन्तोष मानेगे। "यदि हरएक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता मिलके कपडेके उपयोगसे निष्ठापूर्वक विरत न रहे तो विदेशी कपडेका बहिष्कार तत्काल सम्भव नही है।" यह बात इतनी स्पष्ट है कि इसके लिए किसी दलीलकी जरूरत नही। खादीकी खपत तो तभी हो सकती है जब पढे-लिखे और समझदार लोग इसे प्राथमिकता दे।

अबतक तो मैने यह बात कहनेका प्रयत्न किया कि यदि विदेशी कपडेका—न कि साम्राज्यके मालका—पूर्ण बहिष्कार सफलताके साथ करना है तो इसका तत्काल फलदायक और प्रभावकारी एकमात्र उपाय खद्दरका उपयोग है। लेकिन जब हम खादीकी इस क्षमताके साथ-साथ उसकी एक और शक्तिकी ओर ध्यान देते है तब तो उसका पक्ष अकाट्य ही हो जाता है। वह शक्ति यह है कि खादी करोड़ो भूख-पीडित लोगोको रोजी भी दे सकती है।

अब शायद यह बात आसानीसे समझी जा सकती है कि हमे क्योकर वातावरणको चरखामय बनाना चाहिए और क्यो उन तमाम स्त्री-पुरुषो और बच्चोके लिए जो राष्ट्रके कल्याणके लिए चरखेकी आवश्यकता समझते है, धर्म-भावसे नित्य कुछ समय तक चरखा चलाना जरूरी है। भारतके किसान दुनियाके सबसे ज्यादा मेहनती किसानोकी श्रेणीमे है, लेकिन साथ ही वे शायद सबसे अधिक निठल्ले भी रहते है। यह मेहनत और यह निठल्लापन दोनो उनपर थोपे गये है। खेतोमे फसल पैदा करनेके लिए तो वे काम करते ही है, किन्तु ईस्ट इडिया कम्पनीने हाथ-कताईको समाप्त कर दिया और जिसके फलस्वरूप उनके पास जितने दिन खेती-बारीसे सम्बन्धित काफी काम नही होता, उन्हे बेकार रहना पडता है। ये किसान अब फिर चरखेको तभी ग्रहण करेगे, जब हम उनके सामने मिसाल पेश करेगे। महज उपदेशसे उनपर कोई असर नही होगा। जब हजारो लोग अपना प्रिय काम मानकर कताई करने लगेगे तब यदि हम खादीकी कीमत आजकी ही तरह रखेगे तो रोजीके तौरपर कताई करनेवालोको ज्यादा मजदूरी भी दी जा सकेगी। मने खुद सत्याग्रह आश्रममे तैयार की गई खादी बहुत सस्ती बेची थी, क्योकि जब मैं १९१९ मे पजाबके दौरेपर था तब वहाँकी बहनोने मुझे मनो सूत प्रेमपूर्वक अर्पण किया था। यदि मैं चाहता तो खादीकी कीमत कम न करके कताईका धन्धा करनेवालोको अधिक मजदूरी दे सकता था। मैंने ऐसा इसलिए नही किया कि खादी-आन्दोलनकी वह प्रारम्भिक अवस्था थी और मुझे

मोटे-झोटे और कमजोर सूतके लिए भी प्रति पौंड ४ आनेके हिसावसे मजदूरी देनी पडती थी।

यदि नरमदलीय लोग और कांग्रेसजन केनियाके निर्णयसे क्षुब्ध होकर वहाँके गोरे निवासियोंके सिरार साम्राज्यके मालके प्रभावहीन वहिष्कार-रूपी अस्त्रसे प्रहार कर सकते हैं तो फिर वे शान्तचित्त हो जानेपर खादी आन्दोलनको सफल बनानेमे अपनी सारी शक्ति क्यो नही लगा सकते और क्यो नही इस प्रकार तमाम विदेशी कपडेके वहिष्कारको अवश्यम्भावी बना डालते ? क्या मुझे यह वात सावित करनेकी जरूरत है कि विदेशी कपडेके वहिष्कारसे न केवल केनियाके भारतीयोके दुख दूर होंगे, वल्कि स्वराज्य भी मिल जायेगा ?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-५-१९२४

५४. टिप्पणियाँ

'एक मुसलमानसे, एक हिन्दूसे'

एक पत्र-लेखकने अथवा दो पत्र-लेखकोंने कुछ समय पहले पत्र लिखकर इस स्तम्भमें एक महत्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर माँगा था। लेखकने पत्रमे नीचे अपना नाम नही लिखा था और मैं गुमनाम पत्रोंको प्रोत्साहित नही करना चाहता, इसलिए मैंने उसे रद्दी कागजोकी टोकरीमे डाल दिया था। यदि यह पत्र-लेखक (क्योंकि मुझे शक है कि एक ही लेखकने दो नामोसे पत्र लिखे हैं) सचमुच यह चाहता है कि मैं उसके प्रश्नका उत्तर दूं तो प्रकाशनके लिए नही, वरन् अपनी सदाशयता सिद्ध करनेके लिए, उसे अपना नाम प्रकट करना चाहिए।

मोपलोकी सहायताके सम्वन्धमें मालवीयजीके विचार

पण्डित मालवीयजीने मोपलोको सहायता देनेके सम्वन्धमे जो कुछ कहा है, उसे पढकर पाठकोंको प्रसन्नता होगी। मुझे हिन्दीमे लिखा गया उनका एक पत्र मिला है, जो इस प्रकार है[1]

> मोपला स्त्रियों और वच्चोको सहायता देनेके वारेमें आपने जो-कुछ लिखा है, मैं उसके प्रत्येक शब्दसे सहमत हूँ।
>
> 'उपकारका वदला साधुतासे देनेमें वडाईकी कौनसी वात है। जो अपकारका वदला साधुतासे देता है, सन्तजन उसे ही साधु कहते हैं। साधु पुरुष तो वही है जो अपकार करनेवालेका भी उपकार करते हैं और ऐसे ही महात्मा धरतीकी शोभा हैं, क्योंकि उन्हीको पाकर धरती समृद्ध होती है।'

१ मूल हिन्दी पत्र उपलब्ध नही है, इसलिए उसके अंग्रेजी अनुवादको ही पुन अनूदित करके दिया जा रहा है।

मैंने जो श्लोक उद्धृत किया है उससे कृपया यह निष्कर्ष न निकालें कि मेरी रायमें सभी मोपलोंने हिन्दुओंको क्षति पहुँचाई है। तथापि यह मान भी लें कि सभी मोपलोंने क्षति पहुँचाई है तो भी हमें संकटके समय उनकी सहायता करनी चाहिए। ऐसा आचरण करनेमें ही हमारे धर्मकी शोभा है।

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेनालिकवादिनं॥

अबतक मेरे पास मोपलोंकी सहायताके निमित्त छ सौ रुपयेकी रकम ही आई है। इसमें से पाँच सौ रुपये तो एक बोहरा सज्जनने दिये हैं। मुझे उम्मीद है कि अन्य सब भाई और बहन भी यथाशक्ति पैसा भेजेंगे।[1]

आचार्य गिडवानी

मेरे प्रश्नके उत्तरमें नाभा राज्यके प्रशासकने कृपा करके निम्न उत्तर, जिसपर १२ मई, १९२४ तारीख पड़ी है, भेजा है।

प्रिय महोदय,

आपका ५ मईका पत्र प्राप्त हुआ। मैंने जेलमें आचार्य गिडवानीकी हालतकी जाँच कराई है। प्राप्त जानकारी नीचे लिखे अनुसार है:

श्री गिडवानी जेलके कपड़े पहनते हैं, किन्तु ये कपड़े साफ सुथरे होते हैं। और उनको वे जब धोना चाहते हैं तब उन्हें साबुन दे दिया जाता है। उन्होंने २१ मार्च, १९२४ के बाद कभी उपवास नहीं किया। उनके स्वास्थ्यकी दशा अच्छी है, और वजन १ मन और ३८ सेर है। उन्हें अभीतक वही भोजन मिला है, जो जेलके दूसरे सजायाफ्ता कैदियोंको मिलता है; किन्तु उनको कभी-कभी स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणोंसे दूध भी दिया गया है। मुझे मालूम हुआ है कि लोगोंसे उनकी मुलाकातके सम्बन्धमें रुकावट नहीं डाली जाती। उनसे कुछ दिन हुए उनकी पत्नी और उनके भाई मिलने आये थे, उन्हें उनसे मिलने दिया गया था और उस अवसरपर उनको सभी सुविधाएँ दी गई थीं। जेलके नियमोंके अनुसार छ. महीनेमें केवल एक मुलाकात दी जा सकती है।

मैंने खुद जेलमें जाकर देखा है और ऊपर लिखे तथ्योंके बारेमें अपनी तसल्ली कर ली है। श्री गिडवानीने मुझसे कुछ सुविधाएँ माँगी थीं, जैसे, वे अपना भोजन स्वयं बना सकें, उन्हें साग-भाजी और थोड़ा घी दिया जाये, तथा कसरत करनेकी अनुमति दी जाये। मैंने उनके ये अनुरोध मंजूर कर लिये थे। उन्होंने मुझसे जेलके अधिकारियोंके अथवा अन्य किसीके अशिष्ट व्यवहारकी

१ यह अंश २५-५-१९२४ को **नवजीवन**में छपे "मोपलोंकी सहायता" शीर्षकसे लिया गया है।

कोई शिकायत नहीं की, यदि वे चाहते तो शिकायत कर सकते थे, क्योंकि उस समय हम दोनों ही वहाँ थे।

लगता है कि आचार्य गिडवानी जेलमें किस परिस्थितिमें भेजे गये हैं उसके बारेमें आपके मनमें कुछ मिथ्या धारणा है। उन्हे पण्डित जवाहरलाल और श्री सन्तानम्के साथ पिछले अक्तूबरमें भारतीय दण्ड संहिताकी धारा १८८ और १४५के अन्तर्गत दण्ड दिया गया था। प्रशासक होनेके नाते, मैंने उस दण्डको इस शर्तपर मुल्तवी कर दिया था कि वे राज्यसे चले जायें और बिना अनुमतिके वापस न आयें। किन्तु श्री गिडवानीने २१ फरवरीको नाभा राज्यमें वापस आकर वह शर्त तोड दी। अब वे जेलमें हैं, और पहले दी गई सजाको भोग रहे हैं। हम उनपर किसी भी अन्य अभियोगमें मुकदमा चलाना नहीं चाहते।

इस प्रकार श्री जिमाडकी रायमे मानवताके हितार्थ नाभा राज्यकी सीमामे प्रवेश करनेके जुर्ममें आचार्य गिडवानीको पहले दी गई २ सालकी कैदकी सजा भोगनी है। आचार्य गिडवानी कोई शिकायत नही करते, क्योंकि उन्होने रिहाईकी दरख्वास्त कभी दी ही नही। किन्तु जनता उस प्रशासनके बारेमें क्या राय बनाये जिसके अधीन एक मनुष्य ऐसा काम करनेके लिए बन्दी बनाया जाता है, जिसे वह मानवताका काम समझता है, और जिसके फलस्वरूप किसीको भी सचमुच कोई नुकसान नही पहुँचा है। यदि श्री जिमाडकी बात ठीक है तो आचार्य गिडवानीका विचार जत्थेके साथ राज्यमें प्रवेश करनेका नही था। मेरे खयालसे उनके कहनेका मतलब यह नही है कि यदि आचार्य गिडवानी मुक्त रखे जाये तो वे नाभा राज्यमे ही बने रहनेका आग्रह करेगे। अत ऐसा लगता है कि उन्हे बिना किसी न्यायसगत कारणके जेल भोगनी पड रही है।

क्या सिख हिन्दू हैं?

पजाबसे एक मित्र लिखते है

बाइकोम सम्बन्धी आपकी टिप्पणीके कारण जिसमें आपने अकालियोको मुसलमानो और ईसाइयोके साथ गैर-हिन्दुओकी श्रेणीमें रखा है, यहाँके अकाली बहुत नाराज हुए हैं। मुझसे कई लोगोने शिकायत की है कि सिख औपचारिक रूपसे कभी हिन्दू धर्मसे अलग नहीं हुए। और यदि कहा जाये कि कुछ लोग हिन्दू कहे जानेसे इनकार करते हैं तो उसके उत्तरमें तर्क दिया जा सकता है कि यो तो कुछ समय पहले स्वय स्वामी श्रद्धानन्दने भी 'हिन्दू' कहे जानेपर तीव्र आपत्ति की थी। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिके कई प्रमुख सदस्य हिन्दू सभाके सदस्य है, और यद्यपि अकालियोके एक वर्ग विशेषकी अवश्य ही यह धारणा है कि हिन्दू धर्मसे उनका अपनेको सब प्रकारसे अलग घोषित करना ही अधिक अच्छा होगा, परन्तु उनमें एक उतना ही शक्तिशाली दल

> ऐसा भी है, जो इस मामलेमे परम्परापर दृढ रहनेका आग्रह रखता है। यह ठीक है कि वे चाहते हैं कि उनके मन्दिर सामान्य हिन्दू-मन्दिरोसे अलग माने जाये और उनके अपने नियन्त्रणमे रहे। किन्तु यह हाल तो सभी हिन्दू पन्थोका है। जहाँतक मुझे मालूम है, जैनोको भी यह अधिकार प्राप्त है। मेरा ध्यान इस बातकी ओर खींचा गया है कि आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी तथा दूसरे पन्थ जो परम्परागत सनातन हिन्दू धर्मके अनुयायी नही है, जिस बातका दावा करते है, सिख उसी बातका दावा करते हैं, उससे अधिकका बिलकुल नहीं। यहाँके सिख नेताओसे घनिष्ठ परिचय होने और सिख आन्दोलनका थोडा बहुत अध्ययन करनेके बाद, मुझे स्वय लगता है कि अकालियोको गैर-हिन्दुओकी श्रेणीमें रखना, उनके प्रति अन्याय करना है।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरे सिख भाइयोको गैर-हिन्दुओकी श्रेणीमे रखे जानेकी बात पसन्द नही है। मैं उन्हे विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हे नाराज करनेका मेरा कोई इरादा नही था। मैंने अपने पजाबके पहले दौरेमे सिखोके बारेमे बोलते हुए कहा था कि सिख मेरी रायमे हिन्दू समाजके अग है। मने ऐसा इसलिए कहा था कि मैं जानता था कि लाखो हिन्दू गुरु नानकमे विश्वास करते है और 'ग्रन्थसाहब' हिन्दू-भावना और हिन्दू पौराणिक कथाओसे परिपूर्ण है। किन्तु बैठकमे मौजूद एक सिख मित्रने मुझे एक ओर ले जाकर बहुत चिन्तित भावसे कहा, आपने सिखोको हिन्दू समाजका अग बताया, इससे सिखोमे नाराजी पैदा हुई है। उन्होने मुझे सलाह दी कि मैं आगे कभी सिखो और हिन्दुओको एक न बताऊँ। मैंने अपने पजाबके दौरेमे देखा कि उनकी दी हुई चेतावनी ठीक ही थी, मैंने देखा कि कई सिख अपनेको हिन्दू धर्मसे एक अलग धर्मका अनुयायी मानते हैं। मैंने उन मित्रको वचन दिया कि मैं आगे कभी सिखोको हिन्दू नही कहूँगा। अत यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है कि अलगावकी यह भावना बहुत थोडे सिखोतक ही सीमित है और अधिकाश सिख अपने आपको हिन्दू मानते हैं। आर्य समाजियोका भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ। मैंने एक बार यो ही सहज भावसे उनको हिन्दू समाजका ही एक अग कह दिया था। इसका उन्होने बुरा माना था। मैंने एक आर्य समाजी सज्जनको उनकी भावनाओको आघात पहुँचानेकी लेशमात्र भी इच्छा न रखते हुए हिन्दू कह दिया तो उन्होने इसे अपना अपमान माना। तब मैंने उन्हे तुरन्त ही क्षमा माँग कर शान्त किया। मुझे कुछ जैनोका अनुभव भी ऐसा ही हुआ है। महाराष्ट्रके दौरेके वक्त कई जैनोने मुझसे कहा कि उनका समाज हिन्दू समाजसे अलग है। जैनोकी यह आपत्ति मेरी समझमे कभी नही आई क्योकि, जैन, बौद्ध और हिन्दू धर्मोमे बहुत अधिक समान तत्त्व है। आर्य समाजियोकी आपत्ति मैं थोडी-बहुत समझ सकता हूँ, क्योकि यदि उन्हे बिना अप्रसन्न किये ऐसा कहा जा सके तो ठीक है, क्योकि वे मूर्ति-पूजाके कट्टर विरोधी हैं और 'वेदो' तथा 'उपनिषदो'को छोडकर पुराण आदि ग्रन्थोको नही मानते। किन्तु जहाँतक मैं जानता हूँ, जैन धर्म और बौद्ध धर्मका हिन्दू धर्मसे ऐसा कोई विरोध नही है। इसमे शक नही कि बौद्ध धर्म और जैन धर्म हिन्दू धर्ममे

[illegible] सुधारोंके सूचक हैं। बौद्ध धर्मने आन्तरिक शुचिताका आग्रह [illegible]। इसकी बात लोगोंके हृदयपर सीधा असर कर गई। उसने दर्पपूर्ण [illegible] की पवित्रता उड़ा दी। जैन धर्मने तर्कका उच्चतम स्वरूप [illegible] है। इसने किसी भी मान्यताको स्वयंसिद्ध नहीं माना और आत्म-[illegible] बुद्धि द्वारा ग्रहण और सिद्ध करनेका प्रयास किया। इन दो सुधारक [illegible] जिस विशाल भण्डारका जन्म दिया, मेरी रायमें, हमने [illegible] नहीं की है।

[illegible] उचित ही ठहरायेंगे कि अगर मैंने अपने [illegible] अनुसार उन्हें गैर-हिन्दुओंकी श्रेणीमें रखा है तो ऐसा उनकी भावनाओंको किसी भी तरहकी ठेस न पहुँचने देनेके खयालसे और अपनी रुचिके विरुद्ध ही किया है। [illegible] सवाल है, वह एक बातकी चीज है, फिर चाहे सिख हिन्दू माने जायें, चाहे गैर-हिन्दू। शहरके लोगोंकी यह अनधिकार चेष्टा — मैं इसे और कुछ नहीं कह सकता — [illegible] सनातनी भावना अथवा उनकी कठिनाईका [illegible] ही नहीं रखती। मुझे सिख-भाइयोंसे सम्बन्धित तथ्य और भी अच्छी तरह मालूम हो गये हैं, इसलिए मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इससे केरलके [illegible] क्षति पहुँचती है। वे कोई भूखा नहीं मर रहे हैं। यदि मैं [illegible] होता तो हिन्दू अथवा गैर-हिन्दू, किसीके भी दानका भोजन ग्रहण करनेके बजाय, भूखा रहना ज्यादा पसन्द करता। केरलके लोगोंपर इतना भरोसा किया ही जाना चाहिए कि वे अपने स्वयंसेवकोंके भोजनकी व्यवस्था करेंगे।

सद्गुणकी सजा

> दुकान न चलाने, दुकानके लिए ताड़ोंसे रस न निकालने और इससे ताड़ी न बनानेके सम्बन्धमें ठेकेदारकी कैफियत सन्तोषजनक नहीं है। उसपर ५० रुपया जुर्माना किया जाता है।

मद्रास अहातेके अन्तर्गत एमकल क्षेत्रके राजस्व अधिकारीने अपने फैसलेके दौरान ऐसा लिखा है। पाठक जानते हैं कि यह दुकान शराबकी है। ठेकेदारने यह कैफियत दी थी कि शराब पीनेवालोंने शराब न पीनेका निश्चय किया है, इसलिए उसे दुकान खुली रखनेमें कोई फायदा दिखाई नहीं दिया। किन्तु वह दुकानका किराया देनेके लिए तैयार था। उसकी यह कैफियत सन्तोषजनक नहीं मानी गई। शराब-पीना छोड़नेवाले ग्रामीण, मदिरा-त्यागके अपने इस नये सद्गुणका शौक पूरा करनेके लिए शराबके व्यापारसे होनेवाला साल-भरका करारशुदा नफा सरकारको देनेके लिए तैयार थे, किन्तु यह भी काफी नहीं था। यह भी नहीं हो सकता था क्योंकि कानून लोगोंके खिलाफ था। यदि कानूनकी दृष्टिसे पूरी कार्रवाईकी जांच की जाये तो शायद यही निष्कर्ष निकलेगा कि सम्बद्ध अधिकारी अन्य कोई फैसला दे ही नहीं सकते। दोष उनका नहीं है। वास्तवमें यह पद्धति ही दूषित है, क्योंकि इस पद्धतिमें मुख्य ध्येय राजस्व प्राप्त करना है, उसका आत्मा अथवा शरीरके स्वास्थ्यसे कोई सरोकार नहीं। यदि बात अन्यथा होती तो शराब और अफीमका व्यापार कबका समाप्त हो गया होता।

सुधारोकी[1] एक विशेष कृपा यह भी हुई है कि शराब और नशीली चीजोकी आमदनी हमारे बच्चोकी शिक्षापर ही खर्च की जायेगी। मै आशा करता हूँ कि गाँवके लोगो और बेचारे ठेकेदारने जिस सुधारका सूत्रपात किया है उनमे उसके लिए जुर्माना और दूसरी तरहके सभी दण्डोको सहन करनेकी शक्ति आ जायेगी।

खादीके छाते

एक पत्र-लेखक, जो खादीके पक्के भक्त है, पूछते है कि हमे छातोके लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए। मै छातोको पोशाकमे नही गिनता और स्वय विदेशी छातेका उपयोग करनेमे सकोच नही करूँगा। किन्तु मैने खादी चढे छाते देखे है। मै यह भी जानता हूँ कि खादीको पानी रोकनेवाले मसालेका लेप करके जलरोधी बनाना सम्भव है। यह खर्चीला हो सकता है, किन्तु दृढ निश्चयी मनुष्य खर्चकी परवाह नही करेगा। मैने गरीबोके छाते भी देखे है। जेलमे खुलेमे काम करनेवाले वार्डरोको छोडकर कैदियोको छातेका उपयोग करनेकी अनुमति नही रहती। हम यरवदा जेलमे बोरीके एक कोनेको दूसरे कोनेमे घुसा देते थे और उसे ढीला-ढीला सिरपर ओढकर उसके द्वारा वर्षासे बडे कारगर तौरपर अपना ठीक बचाव कर लेते थे।

पूजाके समय रेशमी धोती पहनी जाये या नही, पत्र-लेखक इस सम्बन्धमे असमजसमे पड़ा हुआ है। मेरे लिए तो खादी, विदेशी अथवा स्वदेशी, किसी भी रेशमसे पवित्र है—और कुछ नही तो इसलिए कि रेशमका उत्पादन कुछ हजार लोगोतक ही सीमित है, जबकि सूतका उत्पादन लाखो लोगोतक फैला हुआ है। किन्तु इस आन्दोलनमे स्वदेशमे बनी खादीके उपयोगकी ही अनुमति है। प्रस्तुत प्रसगमे भी रेशमके स्थानमे ऊनकी मोटी धोतियाँ पूर्ण उपयोगी बताई जाती है। हाथका कता रेशम आसानीसे नही मिल पाता और यदि मिले तो भी यह सन्देह सदा बना रहता है कि रेशमका-धागा विदेशी है या देशी।

धर्मका उपहास

दिल्लीसे एक पत्र-लेखक लिखते है —

> रोहतक जिलेके रोहद गाँवमे चमारोके लगभग साठ घर है। ये लोग सभी मजदूर है और गाँवकी जमीनमे उनके कोई मालिकाना हक नहीं है। जबतक गाँवके तालाबमें पानी था तबतक वे उसमे से पानी लिया करते थे। किन्तु उसका पानी खतम हो जानेके बाद अब वे कुएँके पानीके लिए जमींदारकी दयाके मुहताज हो गये। जमीदार उन बेचारे अछूतोको घटो खडा रखते थे, तब कहीं पानी देनेकी मेहरबानी होती थी। इस परेशानीसे बचनेका कोई उपाय सोचनेके लिए एक समिति बनाई गई, जिसमें एक चमार भी था। उस समितिने तय किया कि चमार पानी खीचनेके लिए एक मालीको रख ले और उसे प्रतिमास १५ रुपया दें। चमार इस बातको मानने जा रहे थे; किन्तु अब

१. मॉर्ले मॉन्टेग्यु सुधार।

उन्हें लगता है कि यह पैसा उन्हें नही देना चाहिए, क्योंकि आखिरकार यह तो उनके ऊपर एक प्रकारका अन्यायपूर्ण और भारी मासिक कर ही हुआ। क्या किया जाये? क्या चमार कुएँके लिए सरकारी अधिकारियोके पास जमीन मांगने जायें? क्या यह असहयोगके विरुद्ध नहीं होगा।

पूछे हुए प्रश्नका उत्तर अत्यन्त ही सरल है। चमार कोई असहयोगी तो है नही। उनकी कोई राजनीति भी नही है। किन्तु कट्टरसे-कट्टर असहयोगीको भी आवश्यक प्रयोजनके लिए सरकारसे जमीन खरीदने या प्राप्त करनेकी मनाही नही है। नि सन्देह ऐसे अवसर जितने कम आये उतना ही अच्छा। किन्तु इस सम्बन्धमे काग्रेसका प्रस्ताव प्रतिबन्ध नही लगाता। जो असहयोगी प्रस्तावकी भावनाको समझता है, वह निश्चय ही आर्थिक लाभके लिए सरकारसे जमीन नही खरीदेगा वर्तमान प्रसगमे, जमीन एक प्राकृतिक आवश्यकताकी पूर्तिके लिए चाहिए और यदि चमार सरकारसे कुआँ खोदनेके लिए जमीन पा सकते हो तो मेरी रायमे पक्केसे-पक्के असहयोगीको भी इस काममे उनकी सहायता करते हुए कोई सकोच नही करना चाहिए।

इस प्रश्नका उत्तर देना तो मेरे लिए बडा ही आसान था, परन्तु उन हिन्दू जमींदारोंके बारेमें क्या कहा जाये, जिनमे इतनी शिष्टता और सामान्य दयालुता भी नही है कि वे उन लोगोको, जो उन्हीके धर्मके अनुयायी है और जो सैकडो तरहसे उनकी सेवा करते है, उचित समयपर पानी दे सके? और यह सारी हृदयहीनता धर्मके नामपर बरती जाती है। यदि चमारो द्वारा उपयोग किये जानेसे कुएँके अपवित्र हो जानेकी सम्भावना है तो स्वय ये जमीदार इस एकाधिकारका सुख भोगनेके लिए मालीकी तनख्वाह अपनी जेबसे क्यो नही देते? वे उन्हे कुआँ खोदनेके लिए थोडी-सी जमीन क्यो नही दे देते? क्या पत्र-लेखक बता सकेगे कि चमारोने जमीदारोसे जमीन मांगी थी या नही? यदि चमारोका एक शिष्टमण्डल उनसे मिले तो वे कदाचित् जमीन तो दे ही देंगे, बल्कि खुद पैसा खर्च करके कुआँ भी खुदवा देगे। यदि यह प्रयत्न नही किया गया है तो अब किया जाना चाहिए, सरकारसे जमीन प्राप्त करके कष्टका निवारण तुरन्त किया जा सकता है। किन्तु अस्पृश्यता विरोधी अभियान तो हिन्दू धर्मके एक कलकको धो डालनेका प्रयास है। कितने ही पृथक कुएँ क्यो न खुदे जायें, उनमे यह कलक नही धुलनेका। अत हिन्दू सुधारकोके आगे दो काम है—अपने कष्ट-पीडित भाइयोका कष्ट-निवारण करना और उपयुक्त ढगसे उन लोगोके हृदयोको बदलना जो अपने ही आत्मीयजन और सम्बन्धियोको अछूत समझनेकी निन्दनीय और अमानुषिक प्रथामे विश्वास करते है।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, २२-५-१९२४

५५. सरोजिनीके भाषणपर टिप्पणी[1]

डर्बनके 'नेटाल मर्क्युरी' मे प्रकाशित निम्न भाषण 'यग इडिया' के पाठकोको अवश्य रोचक लगेगा। मै उसे यहाँ 'मक्युरी' की प्रशसात्मक टिप्पणीके साथ उद्धृत करता हूँ।[2]

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, २२-५-१९२४

५६. वक्तव्य : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको

[बम्बई]
२२ मई, १९२४

केन्द्रीय विधान सभा और कौसिलोमे काग्रेसियोके प्रवेशके कठिन प्रश्नपर मैने स्वराज्यवादी भाइयोसे[3] वातचीत की, लेकिन दु:खके साथ कहना पडता है कि मै उनके दृष्टिकोणसे सहमत नही हो सका। मै जनताको विश्वास दिलाता हूँ कि स्वराज्य-वादियोकी वात समझकर उसे स्वीकार करनेके लिए मै कम इच्छुक नही रहा हूँ और इस दिशामे प्रयत्न भी कम नही किया है। यदि मै उनके दृष्टिकोणको अपना सकता तो मेरा काम वहुत आसान हो जाता। ये नेतागण परमश्रद्धेय और लोकमान्य व्यक्ति है। इनमे से कुछने देशके हितके लिए बहुत बडा त्याग किया है और देशकी स्वतन्त्रताकी जितनी उत्कट अभिलाषा इन्हे है उससे अधिक किसीको नही होगी। ऐसे नेताओके विरोधका विचार करना भी मेरे लिए कोई सुखकर चीज नही हो सकती। मैने बहुत प्रयत्न किया और बहुत चाहा, लेकिन उनकी दलीले मेरे गले नही उतरी।

उनका और मेरा मतभेद सिर्फ तफसीलकी वातोपर हो, सो भी नही है। हमारा मतभेद प्रामाणिक और वुनियादी है। मै अपने इस विचारपर अब भी कायम हूँ कि असहयोगकी मेरी जो कल्पना है, उससे कौसिल-प्रवेशका मेल नही बैठता। ऐसा भी

१. श्रीमती नायडूने दक्षिण आफ्रिकामें बच्चोंके बीच भाषण देते हुए उन्हें बताया कि वे अपनी जात-पाँतका खयाल किये विना एक-दूसरेके प्रति सद्भाव रखें। उन्होने भाषण समाप्त करते हुए कहा था: "तुमको कहना चाहिए. हम ऐसे देशमें नही रहेंगे जिसमें एक कौम और दूसरी कौमके बीच फूट है और जहाँ घृणा और स्वार्थका निवास है। जब तुम सारे ससारको प्यार करने लगोगे तब सारा संसार शान्ति और प्रसन्नतासे भर जायेगा।"

२ इन्हें नही दिया जा रहा है।

३ गाधीजी, मोतीलाल नेहरू और चित्तरजन दासके वीच सप्ताह-भर विचार-विमर्श होता रहा था, किन्तु उसका कोई परिणाम नही निकला। स्वराज्यवादियोके वक्तव्यके लिए देखिए परिशिष्ट २।

नही है कि यह मतभेद सिर्फ "असहयोग" शब्दकी व्याख्यासे सम्बद्ध हो। इसका सम्बन्ध तो मूलभूत मनोवृत्तिसे है, जिसके परिणामस्वरूप महत्वपूर्ण समस्याओसे निवटनेके हमारे तरीकोमे फर्क पड जाता है। त्रिविध वहिष्कारकी सफलता-विफलताका निर्णय इसी मनोवृत्तिकी पृष्ठभूमिमे किया जाना है, केवल उपलब्ध परिणामोके आधारपर इसका निर्णय नही हो सकता। इसी दृष्टिकोणसे मै यह कहता हूँ कि विधायक सस्थाओमे प्रवेश करनेकी अपेक्षा उनसे वाहर रहना देशके लिए लाख दर्जे लाभदायक है।

यद्यपि मै स्वराज्यवादी भाइयोको अपने दृष्टिकोणसे सहमत नही कर पाया, फिर भी मै यह स्वीकार करता हूँ कि जवतक उनके विचार मुझसे इस प्रकार भिन्न है, तवतक नि सन्देह उनके लिए कोसिल-प्रवेश उचित ही है। यही हम सवके लिए उत्तम है। मैने यह अपेक्षा भी नही की थी कि स्वराज्यवादी वातचीतके दौरान दी जानेवाली मेरी दलीलोके कायल हो जायेगे। उनमे से अनेक तो सर्वाधिक योग्य, अनुभवी और सच्चे देशभक्तोकी कोटिमे आते है। उन्होने पूरी तरह सोचे-विचारे विना विधायक सस्थाओमे प्रवेश नही किया है और इसलिए जवतक अनुभवसे उन्हे इस वातकी प्रतीति नही हो जाती कि उनके तरीके वेकार है, तवतक यह आशा नही की जानी चाहिए कि वे अपना कदम वापस ले लेगे।

इसलिए देशके सामने सवाल यह नही है कि वह मेरे और स्वराज्यवादियोके मतभेदोके गुण-दोषपर विचार करके उनके वारेमे कोई फैसला करे। कौसिल-प्रवेश हो ही चुका, अव सवाल यह है कि करना क्या है? क्या असहयोगियोको स्वराज्यवादियोके तरीकेके प्रति अपना विरोध कायम रखना चाहिए? या कि उन्हे तटस्थ रहना चाहिए और सम्भाव्य अथवा अपने सिद्धान्तोसे सगत होनेपर स्वराज्यवादियोकी मदद भी करनी चाहिए।

जिन काग्रेस-जनोको कौसिलो और विधानसभामे जानेके वारेमे अन्तरात्माकी वाधा न हो, उन्हे दिल्ली और कोकनाडाके प्रस्तावोने ऐसा करनेकी छूट दे दी है। इसलिए मेरे विचारसे स्वराज्यवादियोका विधायक सस्थाओमे प्रवेश करना और अपरिवर्तनवादियोमे पूर्ण तटस्थताकी अपेक्षा रखना अनुचित नही है। उनका विघ्न-वाधाका तरीका अपनाना भी उचित ही है, क्योकि उनकी नीति ऐसी ही थी और काग्रेसने उनके इन सस्थाओमे प्रवेश करनेके वारेमे किसी प्रकारकी शर्त नही रखी थी। वहाँ यदि स्वराज्यवादियोके काममे प्रगति होनी है और देशको उससे लाभ होता है तो, उस प्रत्यक्ष प्रमाणका परिणाम यही होगा कि उनके तरीकोके वारेमे ईमानदारीसे शका करनेवाले मुझ-जैसे लोगोको अपनी भूलकी प्रतीति हो जायेगी और यदि कही अनुभवसे स्वराज्यवादियोके ही मनका भ्रम दूर हो जाता है तो म जानता हूँ कि उनमे इतनी देशभक्ति अवश्य है कि वे अपने कदम वापस ले लेगे।

इसलिए मै स्वराज्यवादियोके मार्गमे कोई विघ्न उपस्थित करने या विधान सभाओके लिए उनके निर्वाचनके खिलाफ किसी प्रचारमे शरीक नही होऊँगा। लेकिन साथ ही, जिस योजनामे मेरा विश्वास नही है, उसे लागू करनेमे मै उन्हे कोई सहायता भी नही पहुँचा सकता। दिल्ली और कोकनाडाके प्रस्तावोका उद्देश्य स्वराज्यवादियोको कौसिल प्रवेशके तरीकेको आजमानेका एक मौका देना था और यह उद्देश्य

तभी फलीभूत होगा जब अपरिवर्तनवादी लोग उन्हे कोसिलोमे अपने कार्यक्रमपर अमल करनेके लिए अत्यन्त ईमानदारीके साथ पूरी छूट देगे और उनके मार्गमे कोई विघ्न उपस्थित नही करेगे।

कोसिलोमे कामका तरीका क्या हो, इसके सम्बन्धमे मै यह कहूँगा कि मै किसी भी विधायक सस्थामे तभी प्रवेश करूँगा, जब मुझे लगेगा कि सचमुच मै उसका कोई लाभदायक उपयोग कर सकता हूँ। इसलिए यदि मै कौसिल-प्रवेश करूँ तो अवरोधकी नीतिका पालन करनेके बजाय काग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको बल देनेकी कोशिश करूँगा। अतएव मै वहाँ ऐसे प्रस्ताव पेश करना चाहूँगा जिनके अनुसार केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारके लिए यथाप्रसग यह आवश्यक हो कि वह

(१) जो कपडा खरीदे वह हाथ-कते सूतसे हाथ बुनी खादी ही हो,
(२) विदेशी कपडेपर कसकर चुंगी लगाये।
(३) शराब और अफीम वगैरह मादक पदार्थोसे प्राप्त होनेवाले राजस्वको समाप्त कर दे, और
(४) सेनापर होनेवाले खर्चमे कमसे-कम उतनी कमी करे जितनी कमी शराब और मादक पदार्थोसे प्राप्त होनेवाले राजस्वको समाप्त कर देनेसे सरकारी आयमे हो गई है।

यदि विधायक सस्थाओ द्वारा स्वीकृत हो जानेपर भी सरकार उन प्रस्तावोपर अमल न करे तो मै उसे आमन्त्रित करूँगा कि वह उन सस्थाओको भग कर दे और उसी विशेष मुद्देके आधारपर फिरसे निर्वाचन कराये। यदि तब भी सरकार उन सस्थाओको भग न करे तो मै अपना पद त्याग दूंगा और देशको सविनय अवज्ञाके लिए तैयार करूँगा। जब वह अवस्था आ जायेगी तो स्वराज्यवादी लोग देखेगे कि मै उनके साथ और उनके अधीन काम करनेको तैयार हूँ।

सविनय अवज्ञाकी पात्रताकी मेरी कसौटी अब भी वही है जो पहले थी। इस परीक्षा-कालतक के लिए मै अपरिवर्तनवादियोको सलाह दूंगा कि स्वराज्यवादी लोग क्या कर या कह रहे है, इसकी चिन्ता न करके वे पूरी शक्ति और एकाग्रतासे रचनात्मक कार्यक्रमपर अमल करे और अपनी ही निष्ठाको चरितार्थ करे। खादी और राष्ट्रीय शालाओका ही काम इतना बडा है कि बिना किसी दिखावेके, चुपचाप ईमानदारीसे काम करनेमे विश्वास रखनेवाले जितने कार्यकर्त्ता मिल सकते हो, उसमे खप सकते है। हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्या भी ऐसी ही है, जिसमे कार्यकर्त्ताओका अपनी पूरी शक्ति और आस्थासे काम करना अनिवार्य होगा। जिस प्रकार परिवर्तन-वादी अपने कोसिल-प्रवेशका औचित्य परिणामोसे ही सिद्ध कर सकते है, उसी प्रकार अपरिवर्तनवादी लोग भी रचनात्मक कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेकी अपनी लगनके परिणाम सामने पेश करके ही कोसिल-प्रवेशके प्रति अपने विरोधका औचित्य सिद्ध कर सकते है।

एक तरहसे अपरिवर्तनवादी ज्यादा अच्छी स्थितिमे है, क्योकि वे परिवर्तनवादियो-का भी सहयोग प्राप्त कर सकते है। परिवर्तनवादियोने रचनात्मक कार्यक्रममे अपना

विश्वास व्यक्त किया है, लेकिन उनका कहना यह है कि कार्यक्रम अपने आपमें ऐसा नहीं है जो देशको उसके लक्ष्यतक पहुँचा सके। लेकिन जहाँतक विधायक सभाओंके बाहर रचनात्मक कार्यक्रमको कार्यान्वित करनेका सवाल है, अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी तथा दूसरे सभी लोग यदि चाहें तो आवश्यकता पड़नेपर अपने-अपने संगठनोंके जरिये एक साथ होकर काम कर सकते हैं।

कांग्रेस संगठनकी रोजानाकी कार्य-निर्वहन पद्धतिपर विचार किये बिना यह प्रारूप पूरा नहीं हो सकता। उसके बारेमें मेरे विचार बहुत मूलगामी और सुनिश्चित हैं। लेकिन उन्हें मैं आगे किसी अवसरपर शीघ्र ही प्रस्तुत करूँगा।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, २३-५-१९२४

५७. पत्र : वसुमती पण्डितको

वैशाख वदी ५ [२३ मई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। यहाँ रुक ही गई हो तो आ जाना। लेकिन एकदम जा रही हो तो आना जरूरी नहीं। स्वास्थ्य पूरे तौरपर ठीक हो जानेपर ही देवलालीसे आनेका विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

चि० बहन वसुमती
दौलतराय काशीराम ऐण्ड कम्पनी
रावल बिल्डिंग
लैमिंग्टन रोड,—बम्बई

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४२) से।
सौजन्य वसुमती पण्डित

५८. सचिवको हिदायत

[२३ मई, १९२४ या उसके पश्चात्][2]

तार कर दो कि कदापि नहीं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०३२८) की फोटो-नकलसे।

१ वैशाख वदी ५, २३-५-१९२४ को पड़ी थी। डाकखानेकी मुहर २४-५-१९२४ तारीखकी है।

२ यह हिदायत २३ मई, १९२४ को मिले दीपक चौधरीके निम्न तारके बारेमें थी। “यदि माँ मान जाये तो क्या आप मुझ नाबालिगको तारकेश्वर सत्याग्रहमें शामिल होनेकी मंजूरी दे देंगे।”

५९. पत्र : जी० वी० सुब्बारावको

२४ मई, १९२४

प्रिय श्री सुब्बाराव,

अपने पुत्र और श्री दासके जरिये श्रीयुत अरविन्द घोषके[1] विचार [मैंने जान लिये हैं]। मेरा पुत्र उनसे विशेष तौरपर मिला था। मैं इस बातसे सहमत हूँ कि हमारा आधार आध्यात्मिक होना चाहिए और मैं अपनी सभी गतिविधियोंको अपनी अल्पमति-के अनुसार आध्यात्मिक दृष्टिको सामने रखकर ही चलानेका प्रयत्न कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

मूल अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ३६२३) की फोटो-नकलसे।

६०. पत्र : अली हसनको[2]

अन्धेरी
२४ मई, १९२४

प्रिय श्री हसन,

पत्रके लिए धन्यवाद। मैं आपकी इस रायसे सहमत नहीं हूँ कि असहयोगका काम करनेसे मुसलमानोंने कुछ खोया है। मैं यह बात भी नहीं[3] मानता कि शासन चलाने-की योग्यता मुसलमानोंमें हिन्दुओंमें ज्यादा है। आम सवालके बारेमें मेरे पूरे खयालात आपको समय-समयपर लिखे गये मेरे लेखोंमें मिल जायेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी समाचारपत्रकी कतरन (एस० एन० १०४६९) की माइक्रोफिल्मसे।

१. सुप्रसिद्ध दार्शनिक।

२. यह पटनाके बैरिस्टर श्री अली हसनकी १५ मई, १९२४ की खुली चिट्ठीके उत्तरमें लिखा गया था। श्री हसनने कहा था कि असहयोग आन्दोलनने मुसलमानोंको और अलीगढ़ विश्वविद्यालय-जैसी उनकी संस्थाओंको बिलकुल चौपट कर दिया है। उन्होंने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे आन्दोलन बन्द करके हिन्दुओंसे मुसलमानोंके साथ ज्यादा अच्छी तरह पेश आने और यह स्वीकार कर लेनेके लिए कहें कि वे आमतौरपर हिन्दुओंसे श्रेष्ठ होते हैं। अली हसनने यह पत्र प्रकाशनके लिए **न्यू इंडिया**को भेज दिया था।

३. यहाँ भूलसे 'नहीं' शब्द छूट गया था। इसका स्पष्टीकरण गांधीजीने अपने एक लेखमें किया है। देखिए "टिप्पणियाँ", १०-७-१९२४ उप-शीर्षक "बेहतर प्रशासक कौन है?"।

६१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

वैशाख वदी ६
शनिवार [२४ मई, १९२४][1]

भाई श्री घनश्यामदासजी,

महार लोग जो यहाँ रहते है वे मुझे कहते है कि आपने उन लोगोको रू ३०,००० मदीर और वसती-गृह बनानेके लीये देनेका कहा हे यदि मै उसमे सम्मत हुँ तो क्या आपने उन लोगोसे ऐसा कुछ कहा हे? उनके नेताका नाम श्री भोसले है।

आपका,
मोहनदास गाधी

[पुनश्च]

उत्तर साबरमती भेजीयेगा। मैं गुरुवारके रोज वहाँ पहुँच जाऊगा।

मूल हिन्दी पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४६) से।
सौजन्य घनश्यामदास बिडला

६२. मेरी प्रार्थना

आगामी सप्ताहमे[2] सत्याग्रह आश्रममे पहुँच चुकूंगा। मुझे खेदके साथ लिखना पडता हे कि अभी मुझमे नारोको सहन करने, सभाओमे जाने और भाषण देनेकी शक्ति नही आई हे। घूमना-फिरना भी एक निश्चित सीमातक ही हो सकता है। ऐसी स्थितिमे मै बहुतसे भाइयोसे मिल सकता हूँ इसकी आशा फिल्हाल मुझे और उन्हे दोनोको छोड ही देनी चाहिए। मै जानता हूँ कि बहुतसे भाई ओर बहने मुझसे मिलनेके लिए आतुर है। जितने वे मुझसे मिलनेके लिए आतुर है उतना ही मै भी उनसे मिलनेको आतुर हूँ। पर फिलहाल हमे सयमसे काम लेना पडेगा। इसलिए सब भाइयो और बहनोको अभी यही समझना चाहिए कि मैंने गुजरातमे प्रवेश ही नही किया है। मै जिस तरह जलवायु-परिवर्तनके लिए जुहू[3] गया था उसी तरह सभी यह समझे कि मै जलवायु-परिवर्तनके लिए आश्रममे आया हूँ। यदि सब भाई और बहन मुझपर इतनी दया करेगे तो मै कुछ शान्ति प्राप्त कर सकूंगा और मेरे जिम्मे जो

१ यह पत्र गाधीजीने जुहूसे लिखा था। १९२४में वैशाख वदी ६, २४ मईको पड़ी थी।

२ गाधीजी १० मार्च, १९२२को गिरफ्तार किये गये थे और २९ मई, १९२४को आश्रममें वापस पहुँचे थे।

३ यरवदा जेलसे रिहा होनेके बाद वे ११ मार्चसे २८ मई तक बम्बईके जुहू उपनगरमें ठहरे थे।

काम है उनका बोझ उठा सकूँगा। मुझमे जितनी शक्ति है वह लगभग सब 'नवजीवन' और 'यग इडिया' का सम्पादन करनेमे लग जाती है।[1] जो शक्ति बच रहती है उसमे मैं कदाचित पत्र-व्यवहार पूरा कर सकूँ। मैं सोमवार और बुधवारको तो मौनव्रतका पालन कर ही रहा हूँ।[2] ये दोनो दिन मैं उक्त पत्रोके लिए लेख लिखनेमे लगाता हूँ। इसीलिए मैं इन दिनोमे किसीसे भी मिलना नही चाहता। मैने अन्य दिनोमे जुहूकी तरह लोगोसे मिलने-जुलनेके लिए प्रतिदिन शामको ४ बजेसे ६ बजेतक का समय रखा है। अन्य दिनोमे भी मैं सुबहके वक्त मौन ही रखना चाहता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ, तो जो लोग अपने आप सुबह मुझसे मिलने चले आते है उन्हे निराश नही कर सकता और फिर उस हदतक मैं अपना काम पूरा नही कर सकता।

मैं इस नियमका दृढतापूर्वक पालन जुलाई मासतक तो करना ही चाहता हूँ। उसके बादका कार्यक्रम मेरी तबीयत और कामकी कमी-बेशीपर निर्भर होगा।

मेरी यह प्रार्थना तो मेरे शारीरिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे है।

मेरी दूसरी प्रार्थना अपने देशके कार्यको लेकर है। मेरे लिए बहुत-कुछ करना बाकी है। मैं इस विषयमे 'नवजीवन' मे चर्चा कर रहा हूँ। लेकिन एक बात तो मैं माँगना ही चाहता हूँ। क्या मेरे भाग्यमे अब भी गुजरातियोके शरीरोपर विदेशी वस्त्र देखना लिखा है? क्या गुजरातको खादीमय देखनेका अवसर नही आयेगा? वल्लभभाईने दस लाख रुपयेकी थैली देनेकी योजना बनाई है। क्या वे गुजरातको खादीमय करनेकी योजना नही बनायेगे? "गुजरात आपको एक करोड रुपया दे तो आप इसे पसन्द करेगे अथवा आप गुजरातको खादीमय बनानेकी बात पसन्द करेगे?" यदि कोई मुझे यह पूछे तो मैं तुरन्त उत्तर दूँगा कि मैं गुजरातसे एक करोड रुपया लेनेकी अपेक्षा उसको खादीमय बनानेकी बात ज्यादा पसन्द करूँगा।

मैं बम्बईसे अपनी रवानगीका दिन नही बताना चाहता। मैं चाहता हूँ कि कोई भी इसकी जिज्ञासा न रखे और यदि लोगोको इसका पता लग जाये तो वे स्टेशनपर झुण्डके-झुण्ड आकर खडे न हो। यदि सब लोग स्टेशनपर आनेकी अपेक्षा सूत कातनेमे जुटे रहे तो कितना सूत तैयार हो सकता है? यदि हम अपने बचे हुए समयका आधा भाग भी सूत कातनेमे लगाये तो हिन्दुस्तानकी जरूरतके योग्य सूत खेल-खेलमे तैयार हो जाये।

सीधा हिसाब

हमारी कपडेकी जरूरत प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष १३ गज होती है। मान लीजिए, इतने कपडेका वजन तीन सेर हुआ। यदि प्रत्येक मनुष्य रोज आधा घटा काते तो साल-भरमे इतना सूत आसानीसे तैयार किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि

१. जेलसे आनेके बाद गाधीजीने अप्रैल, १९२४ के पहले सप्ताहमें उक्त दोनो साप्ताहिक पत्रोका सम्पादन-भार सम्भाला था।

२. गाधीजीने १७ मार्च, १९२४ से हर सोमवारको और ५ अप्रैल १९२४ से हर बुधको मौन रखना शुरू किया था।

यदि आधी आबादी केवल एक घटे ही सूत काते तो सारे देशकी आवश्यकता पूरी करने लायक सूत कत जाये। आशा है कि ये भाई और बहन स्टेशनपर आनेका कष्ट उठानेकी अपेक्षा अपने मनको वशमे रखकर उतना समय सूत कातनेमे लगायेगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६३. ब्रह्मचर्य

इस विषयपर लिखना आसान नही है। लेकिन इस विषयमे मेरा निजी अनुभव इतना विशाल हे कि इच्छा बनी रहती है कि कुछ बाते पाठकोके सामने रखूं। मेरे नाम आये हुए कुछ पत्रोने मेरी इस इच्छाको और भी तीव्र कर दिया है।

एक भाई पूछते है

> ब्रह्मचर्यका अर्थ क्या है? क्या उसका पूर्ण पालन सम्भव है? अगर सम्भव हो तो क्या आप उसका पूर्ण पालन करते है?

ब्रह्मचर्यका पूरा और ठीक अर्थ तो ब्रह्मकी खोज है। ब्रह्म सबमे बसता है और इसलिए अन्तर्मुख होनेसे तथा उससे उत्पन्न ज्ञानके सहारे उसकी खोज की जा सकती हे। यह अन्तर्ज्ञान इन्द्रियोके सम्पूर्ण सयमके बिना असम्भव है। इस प्रकार ब्रह्मचर्यका अर्थ है सब इन्द्रियोका हर समय और हर जगह मन, वचन और कर्मसे सयम।

जो स्त्री या पुरुष ऐसे ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है वह सर्वथा विकार रहित होता है। इसलिए ऐसा व्यक्ति ईश्वरके निकट रहता है और ईश्वर-जैसा ही होता है।

मुझे जरा भी शका नही कि इस प्रकारके ब्रह्मचर्यका मन, वचन और कर्मसे पूरी तरह पालन करना सम्भव हे। मुझे यह कहते हुए दु ख होता है कि मै ब्रह्मचर्यकी इस पूर्ण अवस्थातक अभी पहुँच नही पाया हूँ। किन्तु मैं उस अवस्थातक पहुँचनेका प्रयत्न निरन्तर करता रहता हूँ और मैने इस शरीरके द्वारा उस स्थितितक पहुँचनेकी आशा छोडी नही है। मैंने कायापर तो काबू पा लिया है। मै जाग्रत अवस्थामे सावधान रह सकता हूँ। मै वाणीमे सयमका पालन करना भी ठीक-ठीक सीख गया हूँ। किन्तु अभी विचारोपर काबू पाना बहुत-कुछ बाकी है। मेरे मनमे जिस समय जिस बातका विचार करना हो उस समय उसके सिवा दूसरे विचार भी आते है। इससे विचारोमे परस्पर द्वन्द्व चला ही करता है।

फिर भी मै जाग्रत अवस्थामे अपने विचारोका एक-दूसरेसे टकराना रोक सकता हूँ। मेरी ऐसी स्थिति कही जा सकती है कि गन्दे विचार मेरे मनमे कभी नही आ पाते। परन्तु निद्रावस्थामे विचारोपर मेरा यह नियन्त्रण कम होता है। नीदमे अनेक प्रकारके विचार आते है, अकल्पित सपने भी दिखते है और कभी-कभी इसी देहसे की हुई क्रियाओकी वासना भी जाग्रत होती है। वे विचार जब गन्दे होते है तब स्वप्नदोष भी हो जाता है। यह स्थिति विकारी जीवकी ही हो सकती है।

मेरे पापयुक्त विचार क्षीण होते जा रहे है, परन्तु उनका नाश नही हो पाया है। यदि मै विचारोपर भी नियन्त्रण प्राप्त कर सका होता तो पिछले दस बरसोमे मुझे जो तीन रोग —— पसलीका दर्द, पेचिश और आन्त्र-पुच्छ शोथ[1] हुए वे कभी न होते। मै मानता हूँ कि नीरोग आत्माका शरीर भी निरोग होता है। इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्यो-ज्यो रोगरहित, निर्विकार होता जाता है, त्यो-त्यो शरीर भी नीरोग होता जाता है। नीरोग शरीरका अर्थ बलवान शरीर नही है। बलवान आत्मा क्षीण शरीरमे वास करता है। ज्यो-ज्यो आत्मबल बढता है, त्यो-त्यो शरीरकी क्षीणता बढती है। सम्पूर्ण नीरोग शरीर देखनेमे बहुत क्षीण हो सकता है। बलवान शरीरमे प्राय रोग तो रहते ही है, रोग न हो तो भी वह शरीर सक्रामक रोगोका शिकार तुरन्त हो जाता है। परन्तु पूर्ण नीरोग शरीरपर ऐसे रोगोका असर हो ही नही सकता। शुद्ध रक्तमे सक्रामक रोगोके कीटाणुओको दूर रखनेका गुण होता है।

ऐसी अद्भुत दशा दुर्लभ जरूर है, नही तो अबतक मै उसे प्राप्त कर चुका होता, क्योकि मेरी आत्मा साक्षी देती है कि ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिए जिन उपायोसे काम लेनेकी आवश्यकता है, उनसे मै मुँह नही मोडूँगा। ऐसी कोई भी बाह्य वस्तु नही है, जो मुझे उससे दूर रखनेमे समर्थ हो। परन्तु पूर्व सस्कारोको धोना सबके लिए सरल नही होता। इसमे देर हो रही है, फिर भी मै बिलकुल निराश नही हुआ हूँ, क्योकि मै निर्विकार अवस्थाकी कल्पना कर सकता हूँ, उसकी धुधली झलक भी देख सकता हूँ; और मैने जितनी प्रगति अबतक की है वह मुझे निराश करनेके बदले आशावान बनाती है। फिर भी यदि मेरी आशा पूर्ण होनेसे पूर्व ही मेरा शरीर-पात हो जाये तो भी मै अपनेको असफल नही मानूँगा। मुझे जितना विश्वास इस देहके अस्तित्वमे है उतना ही पुनर्जन्ममे भी है। इसलिए मै जानता हूँ कि थोडा-सा प्रयत्न भी व्यर्थ नही जाता।

अपने अनुभवोका इतना वर्णन करनेका कारण यही है कि जिन्होने मुझे पत्र लिखे है उन्हे तथा उनके समान दूसरे लोगोको धीरज रहे और उनमे आत्मविश्वास पैदा हो। आत्मा सबकी एक ही है। सबकी आत्माओकी शक्ति एक-सी है। अन्तर केवल यह है कि कुछ लोगोकी शक्ति प्रकट हो गई है और कुछकी प्रकट होनी है। प्रयत्न करनेसे उन्हे भी अवश्य ही ऐसा ही अनुभव होगा।

यहाँतक मैंने व्यापक अर्थवाले ब्रह्मचर्यका विवेचन किया। ब्रह्मचर्यका लौकिक अथवा प्रचलित अर्थ तो इतना ही माना जाता है —— विषयेन्द्रियका मन, वचन और कायाके द्वारा सयम। यह अर्थ वास्तविक है, क्योकि उसका पालन करना बहुत कठिन माना गया है। स्वादेन्द्रियके सयमपर उतना जोर नही दिया गया। इस कारणसे विषयेन्द्रियका सयम मुश्किल और प्राय अशक्य जैसा हो गया है। फिर, रोगसे अशक्त बने हुए शरीरमे विषय-वासना हमेशा अधिक रहती है, ऐसा चिकित्सकोका अनुभव है। इसलिए भी हमारे देशके रोगग्रस्त लोगोको ब्रह्मचर्यकी रक्षा करना कठिन मालूम होता है।

१. गाधीजीको ये रोग क्रमश अक्तूबर १९१४, अगस्त १९१८ और जनवरी १९२४ में हुए थे।

ऊपर मैं क्षीण किन्तु नीरोग शरीरके विषयमे लिख चुका हूँ। परन्तु उसका अर्थ यह नही करना चाहिए कि शारीरिक बलका विकास न किया जाये। मैंने तो सूक्ष्मतम ब्रह्मचर्यकी बात अपनी अति प्राकृत भाषामे लिखी है। इससे शायद गलत-फहमी हो सकती है। जो सब इन्द्रियोंके पूर्ण सयमका पालन करना चाहता है, उसे अन्तमे शारीरिक क्षीणताका स्वागत करना ही होगा। जब शरीरका मोह और ममत्व क्षीण हो जायेगा, तब शारीरिक बलकी इच्छा ही जाती रहेगी।

परन्तु विषयेन्द्रियको जीतनेवाले ब्रह्मचारीका शरीर अति तेजस्वी और बलवान होना ही चाहिए। यह ब्रह्मचर्य भी अलौकिक है। जिसकी विषयेन्द्रिय कभी स्वप्नावस्थामे भी विकारी न बने, वह मनुष्य इस जगतमे वन्दनीय है। इसमे शका नही कि उसके लिए दूसरा सब प्रकारका सयम सहज हो जाता है।

इस ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमे एक दूसरे भाई लिखते हैं

> मेरी स्थिति दयाजनक है। दफ्तरमें, रास्तेमें, रातमें, पढते समय, काम करते समय और ईश्वरका नाम लेते समय भी वही विकारी विचार आते हैं। मैं मनके इन विचारोंको किस तरह वशमें रखूँ? मुझमें स्त्री-मात्रके प्रति मातभाव कैसे उत्पन्न हो सकता है? मेरी आँखोसे शुद्ध वात्सल्यकी ही किरणे किस प्रकार निकल सकती है? मेरे दुष्ट विचार किस प्रकार निर्मल हो सकते है? मैंने आपका ब्रह्मचर्य-विषयक लेख[1] अपने पास रख छोडा है। परन्तु इस परिस्थितिमें वह बिलकुल उपयोगी नहीं होता?

यह स्थिति हृदय-द्रावक है। बहुतोकी ऐसी स्थिति होती है। परन्तु जबतक मन ऐसे विचारोसे लडता रहता है, तबतक भय करनेका कोई कारण नही है। आँखे बुरा काम करती हो तो उनको बन्द कर लेना चाहिए। कान बुरी बात सुनते हो तो उन्हे रुईसे भर लेना चाहिए। आँखोको हमेशा नीचा रखकर ही चलनेकी रीति अच्छी है। इससे उन्हे दूसरी बाते देखनेका अवसर ही नही मिलता। जहाँ गन्दी बाते होती हो अथवा गन्दे गाने गाये जाते हो वहाँसे उठ जाना चाहिए। स्वादेन्द्रियपर पूरी तरह नियन्त्रण रखना चाहिए।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि जिसने स्वादको नही जीता वह विषयोको नही जीत सकता। स्वादको जीतना बहुत कठिन है। इस विजयके साथ ही दूसरी विजय सम्भव बन जाती है। स्वादको जीतनेके लिए एक नियम तो यह है कि मसालोका सर्वथा अथवा जितना हो सके उतना त्याग किया जाये। दूसरा नियम जो इससे भी अधिक जबर्दस्त है, यह है कि हमे भोजन स्वादके लिए नही, बल्कि केवल शरीर-रक्षाके लिए ही करना चाहिए। हम इस भावनाका पोषण सदा करते रहे। हम अपने फेफडोमे हवा स्वादके लिए नही, बल्कि श्वासके लिए भरते है और हम पानी प्यास बुझाने के लिए पीते है। इसी प्रकार हमे भोजन केवल भूख मिटानेके लिए ही करना चाहिए। दुर्भाग्यवश हमारे माँ-बाप हमे बचपनसे ही उलटी आदत डाल देते है। वे हमे शरीरके

१ कदाचित् "ब्रह्मचर्यका पालन कैसे करें", शीर्षक लेख, **नवजीवन, १०-११-१९२१,** देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४३८-३९।

पोषणके लिए नही वल्कि अपना लाड-दुलार दिखानेके लिए तरह-तरहके स्वाद सिखाकर हमारी आदतें बिगाडते है। हमे ऐसे वातावरणके विरुद्ध लडनेकी आवश्यकता है।

लेकिन विषयोको जीतनेका स्वर्ण-नियम तो रामनामका अथवा ऐसे ही किसी दूसरे मन्त्रका जप करना है। द्वादश मन्त्र[1] भी यही काम देता है। हमे अपनी-अपनी भावनाके अनुसार मन्त्रका जप करना चाहिए। मुझे बचपनसे रामनाम सिखाया गया था, उसका सहारा मुझे बराबर मिलता रहता है। इसलिए मैंने वही रामनाम सुझाया है। हम, जो भी मन्त्र जपे उसमे तल्लीन हो जाना चाहिए। यदि मन्त्र जपते समय दूसरे विचार आये तो कोई चिन्ता नही। फिर भी यदि हम श्रद्धा रखकर मन्त्रका जप करते रहेंगे तो अन्तमे सफलता अवश्य प्राप्त करेगे। मुझे इसमे रत्ती-भर भी शक नही है। यह मन्त्र मनुष्यकी जीवन-डोर बनेगा और उसे सारे सकटोसे बचायेगा। किसीको भी ऐसे पवित्र मन्त्रोका उपयोग आर्थिक लाभके लिए हरगिज नही करना चाहिए। इस मन्त्रका चमत्कार हमारी नीतिको सुरक्षित रखनेमे है और यह अनुभव प्रत्येक साधकको थोडे ही समयमे मिल जायेगा, हाँ, हमें इतना याद रखना चाहिए कि कोई भी इस मन्त्रको तोतेकी तरह न रटें। उसमे हमे अपनी सारी आत्मा लगा देनी चाहिए। तोते ऐसे मन्त्रको यन्त्रकी तरह बिना विचारे रटते है; हमे ऐसे मन्त्रका जप अवाछनीय विचारोका निवारण करनेकी भावना रखकर और मन्त्रकी तद्विषयक शक्तिमे विश्वास रखकर ज्ञानपूर्वक करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६४. मिल-मजदूर और खादी

अहमदाबादके मिल-मजदूरोमे जो खादी प्रचार हो रहा है, उसका विस्तृत विवरण 'खादी समाचार पत्रिका'[2] के छठे अकमे प्रकाशित हुआ है। उससे पता चलता है कि बहुतसे मजदूरोने खादी ही पहननेका निश्चय किया है तथा कुछेक मजदूरोने अपने घरोमे चरखे रखने और करघे लगानेका फैसला किया है। मजदूरोकी ओरसे बीस स्कूल चलते है, जिनमे आठ सौ बालक पढते है। ये सब खादी पहनते है। उनकी सुविधाके लिए व्यवस्थापकोने खादीके कुर्ते-टोपियाँ आदि तैयार करवाई है। थोक-बन्द काम करवानेसे एक कुर्तेकी सिलाई पौने तीन आने और टोपीकी केवल छ पाई पडती है।

'मजूर सन्देश'मे[3] नीचे लिखा आकर्षक ब्यौरा दिया गया है.

आप सेर खादी लोगे तो —

दस आने हमारे किसी गरीब किसानको मिलेंगे;

१ द्वादशाक्षर मन्त्र, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

२ मगनलाल गाधी द्वारा सम्पादित।

३. अहमदाबादके कपडा मिल-मजदूर सघ द्वारा प्रकाशित पत्रिका।

डेढ़ अथवा दो आने हमारे किसी गरीब पिंजारेको मिलेंगे,
चार या छ आने हमारी किसी गरीब कातनेवाली बहनको मिलेंगे,
आठ या नौ आने इन बहनोंका सूत बुननेवाले किसी बुनकरको मिलेंगे,
३ पैसे हमारे किसी धोबीको मिलेंगे।
आप खादी पहनेंगे तो ये सब पैसे देशमें रहेंगे और हमारे किन्हीं गरीब भाइयों और बहनोंको मिलेंगे।

यह बात न केवल मजदूर भाइयोंको ही वरन् प्रत्येक भाई और बहनको गाँठमें बाँध लेनी चाहिए।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २५-३-१९२८

६५. सत्याग्रही गालियाँ

मैंने "उजरला काठियावाड" शीर्षक लेखमें सत्याग्रही गालियोंका उल्लेख किया है। एक सज्जन सत्याग्रही गालियोंकी फेहरिस्त चाहते हैं, जिससे वे उन्हें सीखकर दूसरोंको दे सकें। पहली शर्त तो यह है कि असत्याग्रही अथवा दुराग्रही मनुष्य गालियां दे ही नहीं सकता। यदि वह दे तो वे उसके मुंहसे अवश्य भोंडी लगेंगी। जो मनुष्य इस नियमको समझ लेगा उसे फेहरिस्त देनेकी जरूरत न रहेगी।

सत्याग्रही गालियां अनन्त हैं। जिस प्रकार प्रेमकी कोई सीमा नहीं है उसी प्रकार सत्याग्रही गालियोंकी भी सीमा नहीं है। यदि मैं वल्लभभाईको सत्याग्रही गालियाँ देना चाहूँ तो मैं यह कहूँगा "यह पटेलवा खुद तो नंगा हो ही गया है अब दूसरोंको भी लूटने चला है। इसीलिए उसकी नजरमें दस लाख रुपये कोई चीज नहीं।" अब्बास साहबको[1] यदि सत्याग्रही गालियां देनी हों तो कहेंगे "बुड्ढा ठहरा। घर-बार छोड़कर सारा दिन भटकता-फिरता है। उसे न धूपकी परवाह है, न छाँहकी। लोगोंको परेशान करता ही रहता है? बुड्ढेका क्या? उसे रोक भी कौन सकता है?" पट्टणीजीको ऐसी ही गालियां देनी हों तो कहेंगे — "वे काठियावाडके राजाओंको नाच नचाते हैं, गवर्नरोंको फुसलाकर भावनगरको ऊँचा चढाते हैं और अब काठियावाडियों-को फुसलाने चले हैं। परन्तु हम भी सच्चे काठियावाडी या सच्चे भावनगरी होंगे तो उन्हें मजा चखा देंगे। हम राजाओं या गोरे साहबों-जैसे भोले-भाले नहीं हैं। हम तो हैं 'जैसोंके साथ तैसे।'"

ये तो मैंने सत्याग्रही गालियोंके सौम्य प्रयोग करके दिखाये। पूरी-पूरी गालियाँ तो खुद मैं भी नहीं जानता। मैं तो प्रेमाग्रही हूँ। यदि प्रेममूर्ति होता तो गोपियोंकी तरह गालियां लिख देता। कृष्णको "माखन-चोर" और "लुटेरा" आदि विशेषणोंसे गोपियाँ ही सम्बोधित कर सकती हैं। नरसिंह मेहता तो कृष्ण-जैसे अखण्ड ब्रह्मचारीको

१ अब्बास तैयबजी।

व्यभिचारी कहता है और कृष्ण उसकी गालियाँ खाकर उसकी ओरसे दहेज[1] देनेका इन्तजाम करते है।

यह सब किस तरह होता होगा — यह बात शुकदेव-जैसे आजन्म ब्रह्मचारी ही जान सकते है। गुजरातके आधुनिक इतिहासमे तो एक विशेषण "प्याज चोर" है, जिसका प्रयोग मैने श्री मोहनलाल पण्ड्याके लिए किया है। वह गोपियोकी गालियोसे कुछ मिलता-जुलता है। मै पाठकोको यह बात बता ही दूं कि सत्याग्रही गालियोकी सूची माँगनेवाले सज्जन भावनगरके ही है। मै आशा करता हूँ कि मैने गालियोके जो नमूने पेश किये है उनके अतिरिक्त गालियाँ वे खुद बना लेगे। यदि भावनगरके निवासी यह सबक सीख ले तो मुझे निश्चय है कि वे अब भी भावनगरमे बिना शर्त काठियावाड राजकीय परिषद् कर सकते है। परन्तु

"सतनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनु काम जोने।"[2]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६६. "एक मुस्लिम"

किसी भाईने "एक मुस्लिम" के नामसे वीसनगरके हिन्दू-मुस्लिम फसादके सम्बन्धमे एक गुमनाम पत्र भेजा है। इसके कुछ तथ्य प्रकाशित करने योग्य हो सकते है लेकिन चूंकि मै गुमनाम पत्रोको प्रोत्साहन नही देना चाहता और गुमनाम पत्रमे दिये गये तथ्योकी सचाईके बारेमे सदा सन्देह रहता है, इसलिए मै इस पत्रके विवरणको प्रकाशित नही कर सकता। यदि ये भाई यह चाहते हो कि उनका भेजा हुआ विवरण प्रकाशित किया जाये तो उन्हे ऐसा पत्र, जिसके तथ्य प्रमाणित किये जा सके फिर लिख भेजना चाहिए, क्योकि उनका गुमनाम पत्र फाड दिया गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

१ पुत्रीके पुत्र-प्रसवके अवसरपर नरसिंह मेहताके पास दामाद-पक्षको भेंट देनेके लिए कुछ भी नहीं था। इस परम्पराको उनकी ओरसे स्वयं कृष्णने पूरा किया।

२ अठारहवीं सदीके गुजराती कवि प्रीतमदासके गीतकी प्रथम पंक्तिका रूपान्तर।

६७. काठियावाड़ राजपूत परिषद्[1]

काठियावाडमे राजपूत परिषद् होनेवाली है। मेरी उसमे जानेकी वडी इच्छा है, परन्तु यह सम्भव नहीं होगा।

काठियावाड शूरवीरोकी भूमि थी। राजपूतोकी वहादुरी ससारमे प्रसिद्ध है। परन्तु प्राचीन वहादुरीकी स्तुतिसे आज राजपूत वहादुर नही हो सकते। ब्राह्मणोने ब्रह्मज्ञान छोडा, राजपूतोने रक्षा-धर्म छोडकर वणिक वृत्ति स्वीकार की और वणिक दान वन गये। तव यदि शूद्र सेवक न रहे तो इसमे उन्हे कौन दोप दे सकता है? चारो वर्णोके पतित होनेपर उनमे से एक पाँचवाँ वर्ण उत्पन्न हुआ — वह अस्पृश्य कहलाया। पाँचवे वर्णको उत्पन्न करके उसे दवाकर चारो वर्ण खुद भी दवे और पतित हुए।

ऐसी कठिन दशासे हिन्दुओका उद्धार कौन करेगा? यदि हिन्दुओकी रक्षा न हो तो मुसलमानोकी रक्षा भी नही हो सकती। वाईस करोडका पतन हो तो सात करोड नही टिक सकते। जव रेलगाडी चलती हो तव हम नजदीक नही खडे रह सकते, उनका तीव्र वेग हमे घसीट लेगा।

अत हिन्दुस्तानको आजाद करनेका उपाय हिन्दुओकी उन्नति करना है। हिन्दुओकी उन्नति शुद्ध रूपमे धार्मिक हो तभी हिन्दुस्तान वच सकता है। यदि हिन्दू पश्चिमके पशुवलका अनुकरण करने लगेगे तो खुद भी गिरेगे और दूसरोको भी गिरायेगे।

इस पतित हिन्दू-समाजका उद्धार कौन कर सकता है? भयभीत लोगोको निर्भय कौन वना सकता है? यह धर्म तो क्षत्रियोका है। अत यदि राजपूत-परिषद् अपना कर्त्तव्य समझने और उसका पालन करनेकी इच्छा करे तो उसे अपने धर्मका विचार करना पडेगा।

रक्षा करनेके लिए तलवारकी जरूरत नही है। तलवारका जमाना चला गया अथवा शीघ्र ही चला जायेगा। ससारने तलवारका अनुभव वहुत कर लिया। वह अव तलवारसे घवडा गया है। पश्चिम भी तलवारसे ऊव गया जान पडता है। जो मारकर रक्षा करता है वह क्षत्रिय नही, वल्कि जो मरकर रक्षा करता है वही क्षत्रिय है। जो भाग खडा हो वह वहादुर नही है, वल्कि जो छाती खोलकर खडा रहे और प्रहार किये विना प्रहार सहे वही क्षत्रिय है।

परन्तु थोडी देरके लिए मान ले कि तलवारकी आवश्यकता है, तो इससे भी क्या? रामने तलवार चलाई, किन्तु वे पहले चौदह साल वनमे तपस्या करके निर्मल हो चुके थे। पाण्डवोने भी वनवास भोगा था। अर्जुनको इन्द्रके ही पास जाकर दिव्य अस्त्र प्राप्त करने पडे थे। शस्त्रवलसे पहले तपोवलकी आवश्यकता होती है। यदि तपोवल न होगा तो यादवी (गृहयुद्ध) मच जायेगी और जिस प्रकार यादव अपने ही शस्त्रोसे कट मरे उसी प्रकार हमारे शस्त्र हमारा ही सहार कर डालेगे।

१. यह शायद जून, १९२४ में हुई थी। देखिए "परदा और प्रतिज्ञा", २२-६-१९२४।

अत राजपूत परिषद्का प्रथम कर्त्तव्य आत्मोन्नति है। राजपूत अपने हकोकी बात तो करेगे ही, परन्तु वह अपने कर्त्तव्यकी बात पहले करे। वे व्यसनोको छोडे, सादगी ग्रहण करे, गरीबसे-गरीब काठियावाडीको पहचाने, उसके दु खमे शरीक हो और उसकी सेवा करे। उनके सेवा करनेके इस हकको उनसे कोई नही छीन सकता। यदि काठियावाडके किसी भी मनुष्यको काठियावाड छोडना पडे तो राजपूतोको लज्जित होना चाहिए। जहाँ चरखा है, पीजन है, करघा है, वहाँ आजीविका तो है ही। काठियावाडी काठियावाडकी अमृत-जैसी वायुको छोडकर बम्बईकी दूपित वायुमे क्यो जाये? इसका जवाब दूसरे काठियावाडियोके पहले राजपूतोको देना चाहिए। यह लाछन काठियावाडके राजाओपर ही है। यदि काठियावाडके राजा प्रजाके हितका ही विचार करे तो काठियावाडकी प्रजाको यह देश-निकाला क्यो भोगना पडे? राजपूत परिषद्मे राजा लोग तो नही होगे, परन्तु यदि राजपूत चाहे तो राजाओको भी यह बात समझनी पडेगी। यह जमाना लोकतन्त्रका है। अत प्रजाजन जैसे होगे वैसा ही राजाको होना और रहना पड़ेगा। राजपूत जन-जागृतिमे खासी सहायता दे सकते है।

यदि परिपद्के सदस्य दूसरोके ऐब बतानेके बदले अपने ऐब दूर करनेमे और अधिक समय दे तो वे दूसरोको भी सन्मार्ग दिखा सकेगे। आजकल हम अपने कष्टोके लिए दूसरोको दोष देते है। हम भूल जाते है अथवा भूल जाना चाहते है कि अपने कष्टोके लिए खुद हम ही जिम्मेदार है। यदि जुल्मको बरदाश्त करनेवाले ही न हो तो जालिम क्या करेगा? जबतक हम अधीन हो जानेकी कमजोरीको कायम रखेगे तबतक अधीन करनेवाले तो मिलते ही रहेगे। हमारा अधीन करनेवालोको गालियाँ देना आसान परन्तु व्यर्थका उद्यम है। अपनी कमजोरियोको खोजकर दूर करना कठिन तो है, परन्तु फलदायक तो यही है। इस कमजोरीको दूर करनेका उपाय हमारे ही हाथमे है, अत उसे हमसे कोई नही छीन सकता।

राजपूत परिषद्के सदस्य इन विचारोको प्रथम स्थान देकर आत्म-निरीक्षण करे, उनसे मेरी यही प्रार्थना है।

मै अन्तमे उन्हे एक अनुभवसिद्ध बात बताये देता हूँ। वे भापणोसे और भापण करनेवालोसे सावधान रहे। उनसे दूर रहना अच्छा है। यदि वे चुपचाप काम करनेका तरीका अख्तियार करेगे तो काम सुधरेगा। भूखके दु खोका केवल रोना रोनेवाला मनुष्य किसी दूसरेकी भूखको शान्त नही कर सकता। परन्तु यदि एक जन्मत गूगा साधु पुरुष भूखेके पास एक मुट्ठी ज्वार-बाजरा ले जायेगा तो उससे भूखे आदमीकी आँखोमे जान आ जायेगी, उसके चेहरेपर लाली झलकने लगेगी और उसके ओठोपर मुसकान नजर आयेगी। उसकी आत्मा उस गूगे आदमीको दुआ देगी। ईश्वर हमे व्याख्यानोके द्वारा शिक्षा नही देता। वह तो सदा कर्मरत रहता है। जब हम सो जाते है तब भी वह जागता रहता है। उसे काम छोडकर बोलनेका समय ही नही रहता। राजपूत केवल काम करके ही काठियावाडके दूसरे वाचाल, राजनीतिपटु कार्यकर्त्ताओको पदार्थपाठ पढाये — यही उनसे मेरा निवेदन है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २५-५-१९२४

६८. वसन्त विजय

कविने[1] पाण्डुको मारकर तथा माद्रीको चितामे जलाकर वसन्तकी विजयका गान गाया है। आनन्दशंकरभाईने[2] 'वसन्त'के चैत्रमासके अंकमे कुछ इसी तरहका हिंसक विजय-गान गानेका प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न आनन्दशंकरभाईने मिलके कपडेके सम्बन्धमे मेरे कुछ विचारोके बारेमे कल्पना दौडाकर किया है। यदि इसमे उन्हे सफलता मिल गई तो बेचारी खादी कहीकी नही रहेगी। इसलिए हम ऐसी हिंसक विजयको रोकना अपना धर्म समझते है।

पाठक जानते है कि मै कदाचित् ही किसी पत्र अथवा व्यक्तिकी टीका करता हूँ। मुझे इस तरहकी टीका मिथ्या जान पडती है और उससे व्यर्थ वाद-विवाद बढता है तथा कभी-कभी द्वेषभाव भी उत्पन्न होता है। मै आनन्दशंकरभाईके लेखोके सम्बन्धमे निर्भय रहता हूँ। उनके और मेरे बीच मतभेद हो सकता है लेकिन गलतफहमी नही हो सकती। टिप्पणियाँ लिखते समय एक साथीने मुझे 'वसन्त' की उक्त टिप्पणी दिखाई। इसलिए मै इसका उत्तर देनेका अपना लोभ-संवरण नही कर सकता। लेकिन इससे पाठक यह न समझे कि 'वसन्त' से हमेशा ऐसी नोक-झोक चलती रहेगी। मेरा कर्त्तव्य अपने विचारोको जनताके सामने रखना और उत्पन्न शंकाओका परोक्ष रूपसे समाधान करना है। मै अपने आपको सदा सबसे पराजित हुआ ही मानता हूँ। मुझे लोगोको तर्कसे भी समझानेका आग्रह कभी नही रहा और मैने अनेक बार अनुभव किया है कि अधूरे मनुष्यके अधूरे विचारोको बेचारी अधूरी भाषा पूरी तरह कैसे व्यक्त कर सकती है। फिर यदि अपूर्णताकी इस त्रिपुटीमे पाठकका उतावलापन और विरोध भी आ मिले तो पाठककी सहज समझनेकी शक्ति और भी कम हो जाती है। ऐसी स्थितिमे कम बोलना और कार्यको ही अपना प्रभाव करने देना उचित होता है। मै अपनी इस मान्यताके कारण वाद-विवादमे नही पडता और इसीलिए मुझे ज्यादा अखबार पढनेकी जरूरत भी नही रहती।

'वसन्त'की यह टिप्पणी ही मेरे इस कथनका सुन्दर उदाहरण है। यदि आनन्द-शंकरभाई मेरे विचारोको पूरी तरह समझ सके होते तो उन्हे कुछ भी लिखनेकी जरूरत न रहती अथवा यदि रहती तो भी वे खादीके एकदेशीय प्रचारका सहर्ष स्वागत करते ओर इस तरह मेरे और गुजरातके कार्य एव स्वराज्यके मार्गको सरल करते। लेकिन वे ऐसा कैसे समझ सकते है? मैने इस सम्बन्धमे आगे और पीछे क्या लिखा है, इसे आनन्दशंकरभाई अथवा कोई भी क्यो पढे? जो कुछ पढा अथवा देखा उसीके आधारपर अपना निर्णय दे डाला। मै इस स्थितिको जाननेके बावजूद लिखता जा रहा हूँ, इसमे दोष मेरा ही है। अगर किसीको कुछ लिखना ही हो तो

१ मणिशंकर भट्टकी "वसन्त विजय" कविता **महाभारत**की कथाके आधारपर लिखी गई थी।

२ आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुव।

ऐसी भापामे लिखना चाहिए जिसका अनर्थ न हो सके। लेकिन जिसे ऐसी भापा प्राप्त है उसे क्या कुछ लिखनेकी जरूरत रह जाती है? अपूर्ण मनुष्य ही लिखता है। इसलिए हमे एक दूसरेकी अपूर्णताको सहन करना ही चाहिए। यदि हम उसे दूर करनेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा केवल मिठासको ही बनाये रखे तो यद्यपि हम पूर्ण तो न बन पायेगे तथापि अपनी अपूर्णताको कम अवश्य कर सकेगे।

पाठकोके लिए और मेरे लिए यह सुविधाजनक होगा कि मै आनन्दशकरभाईकी टीकाका उत्तर देनेकी अपेक्षा अपने विचारोको ही एक बार फिर लिख दूं। मेरे विचार निम्नलिखित है:

१. मुझे मिलोके वस्त्र-उद्योगसे द्वेष नही है, किन्तु मुझे उससे राग भी नही है।

२ अगर कपडेकी मिले न हो तो भी हिन्दुस्तानकी जरूरतका कपडा चरखेसे सूत कातकर और हाथ-करघेसे बुनकर तैयार किया जा सकता है। इसकी पुष्टिके लिए आवश्यक प्रमाण मौजूद है।

३. मिलोके कपड़ेके उद्योगको उत्तेजन देनेकी कोई जरूरत नही है, क्योकि उसको हानिका अन्देशा नही है।

४. हिन्दुस्तानके सात लाख गांवोके लिए खेतीके बाद एक ही घरेलू धन्धा है और वह है कातने-बुननेका।

५. खादीकी प्रथा नई है। उसे अभी स्थायी स्थान नही मिला है और उसे विदेशी कपडे और मिलके कपडोके मुकाबलेमे अपना मार्ग बनाना है।

६. आधुनिक प्रवृत्ति जनताके बहुत थोडेसे भागमें ही फैल पाई है। उसे भी अगर मिलके कपडोका प्रयोग करनेकी छूट हो तो खादी कौन और कब पहनेगा? खादीका थोडा-बहुत प्रचार उसी हालतमे सम्भव है जब यह छोटा-सा समुदाय खादी पहनना अपना धर्म समझे और आग्रहपूर्वक उसे अगीकार करे।

७. विदेशी कपडोका बहिष्कार आवश्यक है। विदेशी कपडेसे देशी मिलोको हानि पहुँचेगी। हिन्दुस्तान आज ही खादीमय हो जायेगा, ऐसा शुभ चिह्न मुझे दिखाई नही देता, इसलिए देशी मिलके कपडेके लिए पर्याप्त स्थान है। मिलके कपडेको खादीसे नही विदेशी कपडेसे खतरा है। अत मै यह अवश्य चाहता हूँ कि मिलके वस्त्र-उद्योग-को इस भयसे मुक्त करनेकी खातिर विदेशी कपडेपर इतना आयात-कर लगा दिया जाये जितनेसे देशी मिलके वस्त्र-उद्योगकी रक्षा हो सके।

८ चरखा और हथोडा भी यन्त्र है, मै ऐसा मानता हूँ। मैने सिद्धान्त रूपमे बाह्य यन्त्रकी अनावश्यकताको माना है और आज भी मानता हूँ। किन्तु साथ ही मेरी मान्यता यह भी है कि बाह्य वस्तुओके सग्रहके सम्बन्धमे सयम बरतना चाहिए। पश्चिमकी मान्यता इसके विरुद्ध है, अर्थात् उसके विचारानुसार यन्त्र जितने ज्यादा हो, उन्नति भी उतनी ही ज्यादा होगी। यन्त्रोको स्थान तो दोनो सिद्धान्तवादी देते है। प्राचीन सभ्यता इन्हे अनिवार्य समझकर गौण स्थान देती है, किन्तु आधुनिक सभ्यता उनको वाछनीय समझकर उनका स्वागत करती है।

९. इतिहाससे यह प्रमाणित नही होता कि सस्ते और बढिया विदेशी कपडेके सुलभ होनेसे खादीका नाश हुआ। अच्छी खादीसे विदेशी कपडा आज भी होड नही

कर सकता। ढाकाकी शवनम मलमल तो जगतसे लुप्त ही हो गई। विदेशी कपड़ा पहले-पहल जब यहाँ आया तब वह सस्ता भी नही था। इतिहास तो यह बताता है कि ईस्ट इडिया कम्पनीने कातने और बुननेके उद्योगोको जानबूझकर नष्ट किया और अनेक प्रकारके सरक्षणोको प्राप्त करके हमे विदेशी कपडा पहननेके लिए विवश कर दिया। मैंने इस इतिहासको अपने अज्ञानके कारण गढ नही लिया है बल्कि मैंने इसे रमेशचन्द्र दत्तके[1] ज्ञान-भडारसे प्राप्त किया है। इन तथ्योको स्वीकार करनेसे आजतक किसीने इनकार किया हो — यह मैंने नही देखा। यदि मेरी इस मान्यतामे कोई भूल हो तो मैं उसे अवश्य सुधार लूँगा।

१० खादीकी शक्ति अतुलनीय है। उसे बढानेके लिए खादीका मिलोके कपडेसे होड करना जरूरी नही है। वह तो निरन्तर बढ ही रही है। जो व्यक्ति इस बातकी परीक्षा करना चाहे उसे चाहिए कि वह चार वर्ष पहले बननेवाली थोडी-सी खादीकी तुलना आज जो बारीक खादी मिलती है उससे करे। दो वर्षकी कैद भुगतनेके बाद जेलसे बाहर आनेपर खादीमे होनेवाला परिवर्तन मुझे आश्चर्यजनक लगा। आज खादी घर-घर तैयार होती है। उसके लिए बडे-बडे साधनोकी भी जरूरत नही है और जबतक ससारमे सुरुचि और कलाप्रियता है तबतक खादीके प्रकारो और नमूनोमे उन्नति होती ही रहेगी। मिलोके कपडेका मोह ही उसके मार्गमे बाधक है। इस मोहको दूर करना असहयोगी-सहयोगी, स्वराज्यवादी-अस्वराज्यवादी, स्त्री-पुरुष और ज्ञानी-अज्ञानी — सभीका धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

६९. टिप्पणियाँ

मुसाफिरोकी गन्दी आदतें

रेलके तीसरे दरजेमें सफर करनेवाले एक महाशय लिखते हैं कि मुसाफिरोकी बुरी आदतोके कारण रेलके तीसरे दरजेकी मुसाफिरी असह्य हो गई है। इस दुखसे बचनेके लिए एक छोटी-सी झाडू और एक ढकनदार थूकदानी साथ रखनी चाहिए। बुहारीसे डिब्बेको साफ करते रहे और यदि कोई अन्दर थूकने लगे तो उसके मुँहसे थूकदानी लगा दे। ऐसा करनेसे यह दुख दूर हो सकता है।

इसमें कोई शक नही कि जिन्हे सफाई पसन्द है उन्हे तो ऐसी गन्दगी असह्य होती है। फिर भी तीसरे दर्जेमे सफर किये बिना हमारा छुटकारा नही। जब मैं तीसरे दर्जेमे ही सफर करता था तब मैंने पत्रिकाएँ प्रकाशित की थी और उन्हे यात्रियोमे बँटवाता भी था।[2] फिर मेरे काममे परिवर्तन हो गया, और मेरा पत्रि-

१ (१८४८–१९०९), भारतीय शासनके सदस्य, **इकनामिक हिस्ट्री ऑफ इडिया सिन्स द एडवेन्ट ऑफ द ईस्ट इडिया कम्पनी**के लेखक, १८९९ की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२ ये १९१६-१७ में गुजरातमें बाँटी गई थीं, देखिए खण्ड १३, पृष्ठ २८७।

काएँ बाँटना बन्द हो गया। इसके बाद मेरा स्वास्थ्य गिर गया, अत मेरा तीसरे दर्जेमे सफर करनेका सुख समाप्त हो गया और उसके साथ-साथ उसका दु ख भी। परन्तु उसकी मीठी याद मुझे अभी बनी हुई है और मैं उसे फिर ताजी करनेकी उम्मीद रखता हूँ।

यह आवश्यक है कि हरएक स्वयसेवक पत्रिकाएँ बाँटे और पढकर सुनाये। उसके साथ ही झाड़का प्रयोग भी करना चाहिए। थूकदानीको मुँहसे लगा देनेका काम कठिन है। इसमे मार खानी पड सकती है और फिर भी सम्भव है कि मुसाफिर उसमे थूकनेसे इनकार कर दे। झाड़का प्रयोग आवश्यक है। स्वयसेवक मुसाफिरोको डिब्बेमे कूडा-कचरा न डालनेके लिए भी समझाये। यदि वहाँ फिर भी कूडा-कचरा हो जाये तो वे उसे झाडसे प्रेमपूर्वक साफ कर दे। थूकदानीके इस्तेमालसे एक तरहकी गन्दगीकी जगह दूसरी तरहकी गन्दगी फैलनेका अन्देशा है। थूकदानी हर दफा थूकनेके बाद ठीक तरहसे साफ की जानी चाहिए। थूकदानी भी ऐसी हो जिसके भीतर जोड न हो, जो जग न खाये और आकारमे बड़ी हो। मैं तो बहुत-सा कागज साथ रखता था। जहाँ किसीने थूका हो वहाँ कागजसे साफ करनेसे एक तो हाथ खराब नही होता और दूसरे उस जगहकी सफाई भी अच्छी तरह हो जाती है। फिर यदि हाथ धोना चाहे तो धो भी सकते है। ऐसा करनेसे दूसरे थूकनेवाले शर्मिन्दा होते है और कम थूकते है। खेदकी बात तो यह है कि स्वयसेवक स्वय सलीका नही बरतते और सदा सफाईके नियमोका पालन नही करते। हम लोगोमे दूसरोकी सुविधाका खयाल बहुत ही कम दिखाई देता है। इसीलिए रेलमे, जहाजमे, हम जहाँ भी जाये वहाँ, हमें बेहद गन्दगी दिखाई देती है। यह बात तो तभी सुधर सकती है जब हमे बचपनसे ही सफाई-सुथराईके नियमोकी शिक्षा दी जाये और हम यह समझे कि उनका पालन किया ही जाना चाहिए। पाठकोको शायद यह मालूम न होगा कि रेलके डिब्बोमे इस तरह गन्दगी करना रेलके कानूनके अनुसार अपराध है। परन्तु इसके लिए किसीपर मुकदमा नही चलाया जाता, क्योकि जुर्म करनेवालोकी सख्या बहुत है और न करनेवालोकी बहुत कम। इसीसे यह कहा जाता है कि जिस कानूनको बहुसख्यक लोग माने उसीको थोडे लोगोके विरोधके करनेपर भी मनवाया जा सकता है। इसका अर्थ यही है कि कानूनके लिए अनुकूल वातावरणकी आवश्यकता है। विशेष अर्थ यह हुआ कि बहुतेरे कानून निरर्थक होते है। वातावरण तैयार हो जानेके बाद अल्पसख्यक खुद-ब-खुद रिवाजको देखकर उसके अनुसार चलने लगते है।

"लोकप्रिय" का अर्थ

एक शिक्षक पत्रमे लिखते है:[१]

"लोकप्रिय" का अर्थ तो जो लेखकने किया है वही मैंने अपने लेखमे[२] माना है। मैंने सिद्धान्तका अनुसरण करते हुए अपना विचार प्रकट किया है और उसके अनुसार

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

२. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४०३-५।

तो जो गांव पाठशालाकी सहायता न करे हम वहाँ पाठशाला न रखें और यदि रखें तो उसे "लोकप्रिय" न कहे। नवीन हलचलके उत्साहके कारण हमें ऐसा तो लग सकता है कि जगह-जगह पाठशालाएँ कायम करना उचित है, और समाज रुपया दे तो हम उन्हे क्यो न चलाएँ। फिर भी म ऐसी प्रवृत्तिको निर्दोष नही मानता। इसीलिए कितनी ही ईसाई पाठशालाएँ उनके उद्देश्यको देखते हुए निरर्थक मालूम होती है। हम देखते है कि एक जगह एकत्र किये गये धनका उपयोग किसी दूरस्थ स्थानपर किया जाता है और इसी कारण उसका दुरुपयोग भी होता है। फिर इस प्रकार हम जनताके जिस वर्गकी ऐसी सेवा करते है वह अपग हो जाता है, अत हम जिस हदतक पूर्वोक्त सिद्धान्तके अनुसार चलेंगे, मै मानता हूँ कि हम उसी हदतक ठीक रास्तेपर जायेंगे। इस न्यायके अनुसार स्वय जिस गाँवके लोग अपने बाल-बच्चे न भेजे और रुपया भी न दे, उस गाँवमे पाठशाला खोलनेमे खर्च करना फिजूल हो सकता है।

लेकिन इसपर कोई यह कह उठेगा कि इस न्यायके अनुसार तो अन्त्यजोके लिए एक भी पाठशाला नही खोली जा सकेगी, क्योकि अभी तो अन्त्यजोमे हमारा काम "लोकप्रिय" नही है। फिर कितने ही गाँवोमें तो सारा हिन्दू-समाज इसका विरोधी है, यदि विरोधी नही तो उदासीन अवश्य है। इससे यही जाहिर होता है कि सिद्धान्त एकागी नही होते। कितने ही सिद्धान्तोका, जिनमे से कुछ तो परस्पर विरोधी भी होते हैं, एक साथ प्रयोग करना पडता है। अत कहा जा सकता है कि सभी सिद्धान्तोको दृष्टिमे रखकर किया हुआ काम अधिकसे-अधिक फलदायी साबित होता है।

अन्त्यजोके तो हमने पख ही काट डाले हैं। हमने उनकी भावनाओको कुचल दिया है। अत उनके बीच बहुत-सा काम तो हमे प्रायश्चित्त रूपमे ही करना पडेगा। उनके लिए मदरसे, कुएँ और मन्दिर हमे ही बनाने हैं। यह हमारे ऊपर उनका कर्ज है। फिर यह काम लोकप्रिय नही हो सकता। जिन्हे यह प्रिय हो वे उसके लिए रुपया दें और फलकी आशा न रखकर काम करे। हमे यहाँ "लोकप्रिय" का अर्थ दूसरी तरह ही करना चाहिए और ऐसी उलझनके समय ही धर्म-सकट उपस्थित होता है। ऐसे अवसरोपर ही भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोका समन्वय करके कार्य करनेमे हमारी विवेक दृष्टिकी परीक्षा होती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

७०. नित्य कताई

एक जैन भाईने मुझे लिखा है कि उनके घरकी स्त्रियोने चरखा चलाना छोड दिया हे क्योकि कुछ मुनियोने जैन धर्ममे चरखा चलानेको निपिद्ध बताया है। उन्होने कहा कि चरखा चलानेसे वायुमे विद्यमान सूक्ष्म कीटाणुओकी हत्या होती है। यदि निम्न गीत[1] तीन सौ वर्ष पुराना हो तो यह गीत स्वत इन मुनियोको उनकी आपत्तिका उत्तर दे देता है। इसके अतिरिक्त सामान्य विवेक तो इन मुनियोकी बातको स्वीकार ही नही करेगा। हिंसा तो प्रत्येक कार्यमे होती है। शरीरकी प्रत्येक क्रियामे हिसा है। खाने, पीने और पहननेमे भी हिसा है। फिर जो उद्योग कपडा पहननेके लिए आवश्यक है उसके किये बिना किस तरह काम चल सकता है। यदि दूसरे लोग पानी भरते, खाना पकाते, सूत कातते और कपडा बुनते है तथा हम उनके कार्योके फलका उपभोग करते है तो हम भी उस पापके भागी बनते है। यह स्वाभाविक है। इसलिए यदि इन तीनो कार्योको हम अपने हाथोसे करे तो हम उसके विस्तारपर अकुश रख सकते हैं और पापपुजको कम कर सकते हैं। अपने हाथसे पानी भरनेवाला मनुष्य उसका उपयोग विचारपूर्वक ही करेगा। लेकिन नलके पानीको उपयोगमे लाते समय कौन सकोच करता है? यही बात समस्त उद्यमोपर लागू होती है। मै तो चरखा चलानेकी प्रवृत्तिको हर तरहसे अहिंसा-धर्मकी पोषक प्रवृत्ति मानता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२४

७१. विविध विषयोंपर

एक पारसी भाईने कलकत्तासे "भैया" शब्दके प्रयोगके सम्बन्धमे निम्न पत्र लिखा है.[2]

सौभाग्यसे एक करोड गुजरातियोमे से सभी इस "भैया" शब्दका प्रयोग नही करते; मुख्यत बम्बईमे रहनेवाले अथवा बम्बई-निवासी गुजराती ही इसका प्रयोग करते है। अत उत्तर भारतके भाइयोकी भावनाओको ठेस न पहुँचानेके विचारसे इतनी छोटी-सी संख्याके ध्यानमे "भैया" शब्दके दुरुपयोगकी बात लाना कठिन नही होना चाहिए।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें एक ऐसी स्त्रीकी कथा आती है जिसने अपने पतिके आजीविका अर्जित करनेमें असमर्थ होनेपर चरखा चलाकर अपने परिवारको सुखी और समृद्ध बनाया था।

२ यहाँ नही दिया जा रहा है। **नवजीवनके** १७-५-१९२४ के अकमें "भैया" शब्दके क्षोभकारक प्रयोगपर एक लेख था। यह पत्र इसी प्रयोगके स्पष्टीकरणमें लिखा गया था। देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५६६।

खादीकी बिक्री

“खादी समाचार विभाग” ने दूसरे वर्षका छठा अंक प्रकाशित कर दिया है। इसमें कुछ जानने योग्य बाते है। इसको पढ़नेसे पता चलता है कि उत्कल-बम्बई खादी समिति, केरल और मराठी मध्यप्रान्तमे “गाधी मास”[1] मे कमसे-कम २,६०,७८९ रुपयेकी खादी बेची गई। इसमे लोगोंने निजी रूपसे जो खादी खरीदी उनके आंकडे शामिल नही है। इसलिए कुल मिलाकर जितनी बिक्री हुई है उसके आंकडे उक्त आंकड़ोंसे ज्यादा होने चाहिए। इसके अतिरिक्त हमें उक्त आंकडे प्रकाशित करनेके समयतक कुछ अन्य प्रान्तोंके आंकडे नही मिले थे। इसका तात्पर्य यह है कि समस्त हिन्दुस्तानमें खादीकी बहुत बिक्री हुई होगी। तथापि जहां हमारा उद्देश्य प्रतिवर्ष कमसे-कम साठ करोड़ रुपयेकी खादी पैदा करना है वहां केवल चार अथवा पांच लाखकी खादीका उत्पादन क्या अर्थ रखता है?

रुईका निर्यात

इसी पत्रिकामें यह समाचार छपा है कि रुईकी २९,८१,३६१ गाँठे सन् १९२१-२२ में और ३३,६२,६०१ गाठें सन् १९२२-२३ में विदेशोंको निर्यात की गई थी। इतनी गाठोंके मूल्यका अधिकांश भाग तो हिन्दुस्तानके किसानोंको मिला, लेकिन उनके पास समय और आवश्यक कला होनेके बावजूद रुईसे कपडा बनाये जानेकी स्थिति तक जितनी भी क्रियाएँ है, उनकी मजदूरी नही मिली, इतना ही नही बल्कि उस मजदूरीके बराबरकी रकम देशके बाहर चली गई। तात्पर्य यह है कि यदि उन्हे एक सेर रुईका एक रुपया मिला तो उन्होंने उतनी ही रुईको कपडेके रूपमे फिर खरीदते समय कदाचित् रुपयेमे से चौदह आने विदेशोंको वापस दे दिये। ऐसा उलटा व्यापार केवल हिन्दुस्तानके लोग ही करते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २५-५-१९२८

१ गाधीजीके जन्म दिवसके उपलक्ष्यमें आयोजित।

७२. पत्र : मणिबहन पटेलको

जुहू
सोमवार [२६ मई, १९२४][1]

चि० मणि,

तुम तो अहमदाबाद पहले ही पहुँच गई। मेरी तीव्र इच्छा है कि तुम दोनो भाई-बहन आश्रममे एक अलग कमरा लेकर रहो। तुम चाहो तो छात्रालयमें भोजन किया करो, चाहो तो हाथसे बना लिया करो अथवा बाके साथ अनुकूल पडे तो वहाँ खा लिया करो। जैसा तुम दोनोको अनुकूल हो वैसा करना। वहींसे कालेज जा सकती हो।

बापूके आशीर्वाद

चि० मणिबहन,
मार्फत—वल्लभभाई बैरिस्टर
अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो. ४ — मणिबहेन पटेलने

७३. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको[2]

[२८ मई, १९२४ के पूर्व][3]

तब तो बहुत ही अच्छा किया। बहुत दिन जियो, दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक धर्म-वान बनो! सदा शुभ कर्म करो। कामना करता हूँ कि तुम्हारी देश-सेवामे सदा वृद्धि हो।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६९४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१. प्रकाशित पुस्तकके अनुसार।
२. बम्बईके एक गुजराती व्यापारी।
३. शान्तिकुमारजीने इस पत्रपर लिखा है कि गांधीजीने यह आशीर्वाद जुहूसे लिखकर भेजा था। गांधीजी जुहूसे अहमदाबादको २८ मई, १९२४को रवाना हुए थे।

७४. पत्र : वा० गो० देसाईको

वैशाख वदी १० [२८ मई, १९२४]

भाईश्री वालजी,

अभयचन्दभाईका पत्र आया। इसमें उन्होंने लिखा है कि वे जिस नौकरीके लिए इच्छुक हैं उसके मिलनेकी बहुत सम्भावना है। मैं देखता हूँ कि "रेटियान् संगीत[1]"में तुम्हारी टिप्पणी रह गई। इससे यह बात मेरी समझमें आ गई है कि प्रूफ स्वयं देखनेका तुम्हारा आग्रह कितना ठीक है। साथ ही साथ मुझे बेचारे स्वामी-के[2] कन्धोंपर कामका भारी बोझा देखकर तरस भी आता है। इस अवसरपर उनके पास उनकी सहायता करनेके लिए महादेव भी नहीं है। परन्तु तुम तो अशुद्धियोंकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट करते ही रहो। मेरी इच्छा तो यह है कि तुम अशुद्धियोंकी सूची प्रति सप्ताह मेरे पास भेजो ताकि मैं उसे प्रकाशित कर सकूँ। परन्तु तुम्हें यदि ऐसा करना अच्छा न लगे तो उसे मेरे अवलोकनार्थ तो भेजो ही। आज "एक्साईटमेंट" के कारण मुझे ज्वर आ गया है। यहाँ "एक्साईटमेंट" के लिए गुजराती शब्द क्या होगा?

मोहनदासके वन्देमातरम्

वा० गो० देसाई
स्टर्लिंग कैसिल
शिमला

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६००९) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य वा० गो० देसाई

१. यह लेख २५-५-१९२४ के **नवजीवन**में "रेंटियानो स्वाध्याय" शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। देखिए "नित्य कताई", २५-५-१९२४।

२. स्वामी आनन्द।

७५. तार : सरलादेवी चौधरानीको[1]

[२९ मई, १९२४ के पूर्व]

नाबालिगोको निश्चय ही सत्याग्रहमे शामिल नही होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, ३१-५-१९२४

७६. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

शनिवार [२९ मई, १९२४ के पूर्व][2]

भाई श्री ५ पण्डितजी,

आपका पत्र मिला।

ऐसी व्यवस्था करे जिससे रामभाऊ अवश्य ही जलवायु परिवर्तन करके स्वस्थ हो जाये।

स्त्रियोका मासिक धर्मके दिनोमे अलग बैठना आवश्यक और अनिवार्य धर्म नही है। कुमारिकाओंके लिए तो यह अनावश्यक ही है। हाँ, इससे स्वास्थ्यकी रक्षामे कुछ मदद जरूर मिलती है। विवाहित स्त्री उन दिनो विशेषरूपसे अलग रहती है ताकि वह अपने पतिकी पशुवृत्तिसे बच सके। मन्त्र-शक्तिकी दृष्टिसे रजस्वला स्त्रीके स्पर्शका क्या परिणाम होता है, इसकी जानकारी मुझे नही है। इस सम्बन्धमे नाथजीकी[3] बताई विधिसे चलना चाहिए। मुझे किशोरलाल भाईसे[4] मालूम हुआ है कि मन्त्रवान मनुष्यके लिए रजस्वलाके स्पर्शमे दोष तभी होता है जब उसे यह ज्ञान हो कि वह रजस्वला है। अगर मन्त्रवान मनुष्य यह नही जानता कि कोई स्त्री रजस्वला है और उसका स्पर्श कर लेता है तो इसका मन्त्रपर कोई प्रभाव नही पडता।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २५५) से।
सौजन्य लक्ष्मीबाई खरे

१. यह तार श्रीमती चौधरानीके उस कथित वक्तव्यके बारेमें भेजा गया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि तारकेश्वर सत्याग्रहमें उनका नाबालिग पुत्र दीपक एक स्वयंसेवककी तरह शामिल होना चाहता है। देखिए "सचिवको हिदायत", २३ मई, १९२४ को या इसके पश्चात्।

२. पण्डित नारायण मोरेश्वर खरेने नाथजीसे, जो १९२४ में आश्रममें ठहरे हुए थे [सर्प-] मन्त्र सीखा था। ऐसा लगता है कि गांधीजीने यह पत्र २९ मई, १९२४ को बम्बईसे आश्रममें लौटनेसे पहले लिखा होगा।

३. केदारनाथ कुलकर्णी। एक साधक, ये आश्रममें प्राय आते थे।

४. किशोरलाल मशरूवाला।

७७. हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार[1]

हिन्दुओंका आरोप

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीकी मार्फत टाँगानीकामें रहनेवाले एक हिन्दू सज्जनने मुझे इस आशयका सन्देश भेजा था कि "गांधीजीसे कह दीजिएगा कि मुलतानमें मुसलमानोंने जो बर्बरता[2] की उसकी जिम्मेवारी आपपर ही है।", मैंने पहले इस सन्देशका उल्लेख इसलिए किया क्योंकि तब मैं इस सबसे बड़े सवालपर लिखनेके लिए तैयार न था। परन्तु तबसे बहुत सारे पत्र मेरे पास आये हैं, जिनमें से कुछ तो विख्यात सज्जनों द्वारा लिखे हुए हैं। इनमें कहा गया है कि मोपलोंकी बर्बरताके लिए भी मैं ही जिम्मेवार हूँ। बल्कि सच तो यह है कि खिलाफत आन्दोलनके समयसे ऐसे जितने भी दंगे हुए जिनमें हिन्दुओंका नुकसान हुआ है या जिनसे उनका नुकसान होनेकी बात कही जाती है, उन सबके लिए मुझे ही जवाबदेह बताया गया है। इनकी दलील कुछ इस प्रकार की है "आपने हिन्दुओंसे कहा कि खिलाफतके मामलेमें मुसलमानोंका साथ दो। इस मामलेको आपने अपना कहकर उठा लिया, इस कारण इसको इतना महत्व मिल गया जितना अन्यथा कदापि न मिलता। आपकी इस कार्रवाईसे ही मुसलमान जागे और संगठित हो गये। इससे मौलवियोंको ऐसी इज्जत मिली जैसी पहले कभी न मिली थी और अब चूंकि खिलाफतकी समस्या समाप्त हो गई है, इन जाग्रत मुसलमानोंने हिन्दुओंके खिलाफ एक तरहका जेहाद छेड़ दिया है।" मुझपर लगाये गये आरोपका आशय मैंने समझमें आने लायक सीधी-सादी जुबानमें यहाँ रख दिया है। कितने ही पत्रोंमें भद्दी-भद्दी गालियाँ भी दी गई हैं।

यह तो हुई हिन्दुओंके इलजामकी बात।

मुसलमानोंके इलजाम

एक मुसलमान दोस्त लिखते हैं

> **मुसलमान कौम बड़ी भोली-भाली और धर्मनिष्ठ कौम है। इसलिए वह इस भुलावेमें आ गई कि खिलाफत बहुत खतरेमें है और उसकी हिफाजत सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानोंकी मिली-जुली कोशिशोंसे ही हो सकती है। ये भोले-भाले लोग आपके ओजपूर्ण भाषणोंसे जोशमें आकर सरकारी मदरसों, अदालतों, कौंसिलोंका बहिष्कार करनेमें सबसे पहले आगे आये। अलीगढ़की बहुत ही मशहूर संस्था, जिसे सर सैयद अहमदने अपने जीवन-भरके परिश्रमसे खड़ा किया और जो अपने ढंगकी पहली संस्था थी, बरबाद हो गई। क्या**

१ यह लेख बादमें प्रचार-पुस्तिकाके रूपमें भी प्रकाशित हुआ था।

२ सन् १९२३ के मार्च-अप्रैलमें अमृतसर, मुलतान तथा पंजाबके दूसरे इलाकोंमें जबरदस्त साम्प्रदायिक दंगे हुए थे।

आप हिन्दुओंकी कोई ऐसी संस्था दिखा सकेंगे जो इस कद्र बरबाद हुई हो? मैं ऐसे बीसियों लड़कोंको जानता हूँ जो विश्वविद्यालयकी उपाधि प्राप्त करके अपना और अपनी कौमका गौरव बढ़ा सकते थे; लेकिन उन्हें धर्मके नामपर अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़नेको प्रेरित किया गया। नतीजा यह हुआ कि वे बिलकुल बरबाद हो गये। इसके विपरीत, हिन्दू लड़कोंमें से बहुत कमने स्कूल-कालेज छोड़े और उन्होंने भी जब यह देखा कि आन्दोलन छिन्न-भिन्न हो रहा है तब वे फौरन वापस जाकर भरती हो गये। वकीलोंका भी यही हाल हुआ। उन दिनों आपने दोनों कौमोंमें एक तरहकी एकता कायम कर दी, और सारी दुनियामें शोहरत मचा दी कि यह एकता बहुत ठोस और पक्की है। बेचारे भोलेभाले मुसलमानोंने इस सबको भी सच मान लिया, फल यह हुआ कि अजमेर, लखनऊ, मेरठ, आगरा, सहारनपुर, लाहौर तथा दूसरी जगहोंमें उनके साथ बड़ा नृशंस व्यवहार किया गया। श्री मुहम्मद अली जैसे निहायत आला दरजेके पैदायशी अखबारनवीसको, जिनका गैर मामूली 'कामरेड' अखबार मुसलमान कौमकी इतनी अच्छी खिदमत कर रहा था, आपने अपने पक्षमें कर लिया और अब तो वे गोया हमारी कौमके ही नहीं रहे। आपके हिन्दू अगुआ लोग शुद्धि और संगठनके बहाने मुसलमान कौमको कमजोर बनानेकी कोशिश कर रहे हैं। फिर आपकी इस अदूरदर्शितासे कि कौंसिलोंमें नहीं जाना चाहिए, मुसलमान कौमको बहुत नुकसान हुआ है; क्योंकि तथाकथित फतवेके कारण कौमके काबिल लोगोंमें से ज्यादातर कौंसिलोंमें नहीं गये। इन तमाम बातोंपर गौर करते हुए क्या आप सच्चे दिलसे यह नहीं महसूस करते कि आप मुसलमानोंको — बेशक चन्द मुसलमानोंको ही — अपने दलमें रखकर मुसलमान कौमका गहरा नुकसान कर रहे हैं?

मैंने यह पत्र पूरा नहीं दिया है लेकिन इस उद्धृत अंगमें मुझपर मुसलमानों द्वारा लगाये गये आरोपका सार आ जाता है।

मैं बेकसूर हूँ

इन दोनों आरोपोंके बारेमें मुझे कहना होगा कि मैं बेकसूर हूँ, इतना ही नहीं मुझे अपने कियेपर तनिक भी पश्चात्ताप नहीं है। अगर मैं भविष्यदृष्टा होता और जो-कुछ हुआ है, वह सब पहले ही जान लेता तो भी मैं खिलाफत आन्दोलनमें अवश्य कूदता। यद्यपि दोनों कौमोंके सम्बन्ध आज तनावपूर्ण हैं, फिर भी दोनोंको लाभ तो हुआ ही है। जन-जागरण हमारे प्रशिक्षणका एक आवश्यक अंग था। यह चीज अपने-आपमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। मैं ऐसी कोई बात न करूँगा जिससे जनतामें जागरणके बजाय फिरसे तन्द्रा आ जाये। अब हमारी बुद्धिमानी इस बातमें है कि हम इस जन-जागरणको उचित दिशा दें। हम आज जो कुछ देख रहे हैं वह दुःखद तो अवश्य है, लेकिन हमें अगर स्वयं अपनेपर भरोसा हो तो इसमें हिम्मत हारनेकी कोई बात

नही है। आजका यह तूफान कलकी शान्तिका अग्रदूत ही है और वह शान्ति थकावट और निराशाजनित तन्द्रासे उत्पन्न शान्ति नही होगी बल्कि ऐसी शान्ति होगी जो अपनी शक्तिकी प्रतीतिमे उत्पन्न होती है।

लोग मुझसे यह आशा तो नही करेगे कि मै विभिन्न स्थानोमे हुए दगोके सम्बन्धमे निर्णय दूं। ऐसा निर्णय देनेकी मेरी इच्छा भी नही है, इच्छा हो भी तो मेरे पास तथ्य नही है।

मोपला लोग

दो शब्द इस तनावके कारणोके बारेमे भी कहूँगा।

इसमे कोई शक नही कि मलाबारकी घटनासे हिन्दुओका मन क्षुब्ध हो उठा है। तथ्य क्या है, यह कोई नहीं जानता। हिन्दुओका कहना है कि मोपलोकी बर्बरताका बयान नही किया जा सकता। डा० महमूदने मुझे बताया है कि उनकी ज्यादतियोके बारेमें तिलका ताड बनाया गया है, मोपलोके पास भी हिन्दुओके खिलाफ शिकायतके कारण थे और उनका कहना है कि जबरन मुसलमान बनानेका कोई मामला पेश नही किया गया, एक पेश किया गया था किन्तु वह प्रमाणित तो नही हो सका। अपने निष्कर्षमें डा० महमूद कहते है कि मेरी बातकी पुष्टि स्वय साक्षियोसे होती है। मोपला-उपद्रवके बारेमें दोनो पक्षोके कथनोका उल्लेख करके मैंने केवल जनतासे यह कहना चाहा है कि वह भी मेरे इस निष्कर्षसे सहमत हो सके कि असलियतकी तह तक पहुँचना असम्भव है और भविष्यमे हम कैसा आचरण करे, यह तय करनेके लिए इसकी जरूरत भी है।

मुलतान, आदि

मुलतान, सहारनपुर, आगरा, अजमेर आदिके बारेमे यह स्वीकार किया जाता है कि इन स्थानोमें हिन्दुओके ही जान-मालका अधिक नुकसान हुआ है। कहते हैं कि पलवलमे वहाँके हिन्दुओने एक कच्ची मसजिदको पक्का नही बनाने दिया। कहा जाता है कि उन्होने पक्की दीवारका एक हिस्सा गिरा दिया ओर मुसलमानोको गाँवके बाहर निकाल दिया। यह भी कहा जाता है कि जबतक मुसलमान यहाँ मसजिद न बनाने और अजान न देनेका वादा न करेगे तबतक उन्हे गाँवमे नही रहने दिया जायेगा। कोई एक सालसे ज्यादा अरसा हो गया यही हालत बनी है। कहा जाता है कि जिन मुसलमानोको उन्होने निकाल दिया था वे रोहतकके आसपास झोपडियाँ बनाकर पडे हुए है।

मुझे यह भी बताया गया है कि ब्याड, जिला धारवाडमे मुसलमानोने मसजिदके सामने बाजा बजानेपर ऐतराज किया, इसपर हिन्दुओने मसजिदको भ्रष्ट किया, मुसलमानोको पीटा और उनपर मुकदमे चलवाये।

ये दो मिसालें मै सिद्ध तथ्योके रूपमें पेश नही कर रहा हूँ, बल्कि महज यह दिखानेके लिए पेश कर रहा हूँ कि मुसलमानोको भी यह शिकायत है कि हिन्दुओने हमें बहुत सताया है।

इतना तो जरूर कहा जा सकता है कि जहाँ मुसलमान लोग साफ तौरपर कमजोर थे और हिन्दुओका ज्यादा जोर था (जैसा कि वर्षों पूर्व कटारपुर और आरामे था) वहाँ पडौसी हिन्दुओने उनके साथ बडी बेरहमीका बरताव किया। बात यह है कि जब खून उबल उठता है और पूर्वग्रहोका बोलबाला होता है, तब आदमी जानवर बन जाता है और वैसा ही व्यवहार करता है—फिर वह चाहे अपनेको हिन्दू कहता हो या ईसाई या और कुछ।

फसादोंका अड्डा

लेकिन इन फसादोंका अड्डा है पजाब। मुसलमानोकी शिकायत है कि फजल हुसेन साहबने डरते-डरते सरकारी नौकरियोमे मुसलमानोको भी वाजिब तादादमे रखने की कोशिश की और बस इसी बातपर हिन्दुओने तूफान बरपा कर दिया। ऊपर मैंने जिस पत्रसे उद्धरण दिया है, उसके लेखक बडी कटुताके साथ शिकायत करते हैं कि जहाँ कही हिन्दू किसी सरकारी विभागका प्रधान होता है, वहाँ वह किसी भी मुसलमानको किसी पदपर नही आने देता।

इस तरह इस तनावके कारण सिर्फ धार्मिक ही नही है। मैंने जिन आरोपोका उल्लेख किया है वे व्यक्तिगत हैं, लेकिन सर्वसाधारणका मानस व्यक्तिगत रायका ही प्रतिविम्ब होता है।

अहिंसासे ऊब गये

लेकिन इस तनावका तात्कालिक कारण बहुत ही ज्यादा खतरनाक है। मालूम होता है कि सोचने-समझनेवाली जनता अहिंसासे ऊब गई है। वह अभीतक यह नही समझ पाई है कि मैंने अहमदाबाद और वीरमगाँवके काण्डोके बाद, फिर बम्बईके उपद्रवोके बाद और अन्तमे चौरीचौराके बर्बर कृत्योके बाद सत्याग्रहको स्थगित क्यो कर दिया। चौरीचौराके बाद तो परिस्थिति असह्य हो गई और अक्लमन्दोने यह मान लिया कि अब सत्याग्रहको और इसीलिए निकट भविष्यमे स्वराज्यकी भी कोई आशा नही बची। अहिंसामे उनका विश्वास सतही था। दो साल पहले एक मुसलमान भाईने मुझसे सच्चे दिलसे कहा था: "मै आपकी अहिंसामे विश्वास नही रखता। मै तो यही चाहता हूँ कि कमसे-कम मेरे मुसलमान भाई इसे न अपनाये। हिंसा जीवनका नियम है। अहिंसाकी जैसी परिभाषा आप करते हैं, वैसी अहिंसासे अगर स्वराज्य मिलता भी हो तो वह मुझे नही चाहिए। मै तो अपने शत्रुसे अवश्य घृणा करूँगा।" ये भाई बहुत ईमानदार आदमी हैं। मै इनकी बडी इज्जत करता हूँ। मेरे एक दूसरे बहुत बड़े मुसलमान दोस्तके बारेमे भी मुझे ऐसा ही बताया गया है। हो सकता है, वह बात झूठी हो, पर जिन्होने मुझे बताया है वे तो झूठ नही बोलते।

हिन्दू भी विमुख

अहिंसाके प्रति विमुखताकी यह भावना अकेले मुसलमानोमे ही देखी जाती हो सो बात नही। हिन्दू भाइयोने भी ऐसी ही बातें कही हैं और शायद ज्यादा तीखेपनसे कही हैं। चूँकि मैं पूर्ण अहिंसामे विश्वास रखता हूँ और उसकी हिमायत करता हूँ इसलिए

कुछ लोगोने तो मुझे हिन्दू माननेतकसे इनकार कर दिया है। उनका कहना है कि मैं प्रच्छन्न ईसाई हूँ। मुझसे वडे असदिग्ध स्वरमे कहा गया है कि 'भगवद्‌गीता' का यह अर्थ करना कि उसमे विशुद्ध अहिंसा धर्मका उपदेश किया गया है, 'गीता' के अर्थका अनर्थ करना ही है। मेरे कुछ हिन्दू भाई मुझसे कहते है कि अमुक परिस्थितिमे 'भगवद्‌गीता' ने हिंसाको धर्म वताया है। अभी हालमे ही एक उद्‌भट विद्वान सज्जनने 'गीता' की मेरी व्याख्यापर नाक-भौह सिकोडते हुए कहा कि 'गीता' के वारेमे कुछ टीकाकारोके इस मतका कोई उचित आधार नही है कि 'गीता' मे दैवी और आसुरी शक्तियोके वीच होनेवाले सनातान सघर्षका चित्रण है और तनिक भी सकोच या दुर्वलता दिखाये विना अपने आन्तरिक कश्मलको दूर कर देना हमारा कर्त्तव्य वताया गया है।

अहिंसाके खिलाफ इन तमाम विचारोको इतने विस्तारसे देनेका प्रयोजन यह है कि साम्प्रदायिक समस्याका जो समाधान मैं वताने जा रहा हूँ, लोग अगर उसे समझना चाहते है तो इन विचारोको हृदयगम कर लेना जरूरी है।

मैं आज अपने चारो ओर जो कुछ देख रहा हूँ, वह तो अहिंसा-प्रसारके विरुद्ध उत्पन्न प्रतिक्रिया ही है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिंसाकी एक जवरदस्त लहर उठी चली आ रही है। हिन्दू-मुस्लिम तनाव अहिंसाके प्रति अरुचिका उग्र रूप है।

इस सवालका विचार करते समय मेरा खयाल ही न रखा जाये। मेरा धर्म तो मेरे और मेरे सिरजनहारके वीचकी वात है। अगर मैं हिन्दू हूँ तो सारे हिन्दू समाजके द्वारा वहिष्कृत हो जानेपर भी मैं हिन्दू ही वना रहूँगा। इतना तो मैं कहता ही रहूँगा कि धर्मोंका पर्यवसान अहिंसामें है।

सीमित अहिंसा

परन्तु मैंने लोगोके सामने अहिंसाके परमरूपको कभी रखा ही नही — भले ही इसका कारण केवल इतना ही हो कि मैं अपने-आपको इस योग्य नही मानता कि उस प्राचीन सन्देशको ससारके समक्ष रखूं। यद्यपि वुद्धिके धरातलपर मैंने अहिंसाके उस परम स्वरूपको पूरी तरह समझ लिया है और ग्रहण कर लिया है, लेकिन वह अभी मेरे रोम-रोममे भिदा नही है। मेरी शक्तिका आधार इतना ही है कि जिस वातको मैंने खुद अपने जीवनमें वार-वार आजमाकर नही देख लिया है उसपर आचरण करनेके लिए दूसरोसे नही कहता। तो मैं आज अपने देश भाइयोसे अनुरोध करता हूँ कि वे सिर्फ दो उद्देश्योके लिए अहिंसाको अपने अन्तिम धर्मके रूपमे अपना ले — एक तो विभिन्न जातियोके पारस्परिक सम्वन्धोके नियमनके लिए और दूसरे, स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए। हिन्दुओ, मुसलमानो, ईसाइयो, सिखो और पारसियोको अपने आपसी मतभेदोके निवटारेके लिए हिंसाका सहारा नही लेना चाहिए, और हमे स्वराज्य अहिंसात्मक तरीकेसे प्राप्त करना चाहिए। इसे मैं भारतके सामने कमजोरोके हथियारके तौरपर नही, वल्कि वलवानोके हथियारके तौरपर पेश करनेकी हिम्मत करता हूँ। धर्मके मामलेमे जोर-जवरदस्ती न हो, इसके वारेमे हिन्दू और मुसलमान दोनो वाते तो वहुत करते है, लेकिन कोई हिन्दू एक गायकी जान वचानेके

लिए अगर किसी मुसलमानकी जान ले ले तो इसे जबरदस्ती नही तो और क्या कहेगे? यह तो किसी मुसलमानको जबरन हिन्दू बनानेकी कोशिश करना ही हुआ। उसी तरह अगर मुसलमान हिन्दुओको मसजिदके सामने गाने-बजानेसे जबरदस्ती रोकनेकी कोशिश करे तो यह भी जबरदस्ती नही तो और क्या है? खूबी तो इस बातमे है कि शोरगुलके बावजूद आदमी परमात्माकी प्रार्थनामे तल्लीन हो जाये। दूसरे लोग हमारी धार्मिक भावनाओका खयाल रखे, इसके लिए अगर हम जोर-जबरदस्ती करेगे तो भावी पीढियाँ हमे अधर्मी और जगली ही मानेगी। फिर तीस करोड़ सख्यावाले राष्ट्रका सिर्फ एक लाख अग्रेजोको होशमे लानेके लिए हिसा करनेपर मजबूर हो जाना शर्मकी बात है। उन लोगोके हृदय-परिवर्तन करने या अगर आपकी मर्जी उन्हे इस देशसे निकाल देनेकी ही हो तो हमे इसके लिए शस्त्र बलकी नही, मनोबलकी जरूरत है। अगर हममे यह मनोबल नही होगा तो हम शस्त्रबल भी नही जुटा पायेगे और जब हममे मनोबल आ जायेगा तो हम देखेगे कि शस्त्रबलकी हमे जरूरत ही नही है।

इस तरह उपर्युक्त उद्देश्योके लिए अहिसा-धर्मको स्वीकार कर लेना हमारे राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए सबसे अधिक स्वाभाविक और परम आवश्यक शर्त है। इसके जरिये हम अपने समाजके सयुक्त शरीरबलको अपेक्षाकृत अच्छे कामोमे लगाना सीखेगे। आज तो हम उसे भाई-भाईकी निरर्थक लडाईमे, जिसमे दोनो ही दल बिलकुल टूट जाते है, नष्ट किये जा रहे है। इसके अलावा, जबतक सम्पूर्ण राष्ट्रका समर्थन प्राप्त न हो, हर शस्त्र-विद्रोह पागलपन ही है और अगर राष्ट्रका पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त हो तो असहयोग कार्यक्रमका कोई भी अग एक बूंद खून बहाये बिना हमे अपने उद्देश्य तक पहुँचा सकता है।

मै यह नही कहता कि चोरो, डाकुओ अथवा विदेशी आक्रमणकारियोका मुकाबला करनेमे भी आप हिंसासे अलग रहे। परन्तु वहाँ भी हम हिंसासे काम लेनेके अधिक योग्य तभी बन सकते है जब आत्मसयम करना सीखे। जरा-जरा-सी बातपर पिस्तौल तान लेना शक्तिका नही, दुर्बलताका लक्षण है। आपसमे लडने-झगडनेसे हिंसा करनेकी शक्ति नही बढती, बल्कि वह हमे पौरुषहीनताकी ओर ले जाता है। मेरा अहिसाका तरीका अपनानेसे शक्तिका ह्रास तो हो ही नही सकता, उलटे यदि राष्ट्र चाहे तो उससे खतरेके समय अनुशासित और सगठित हिंसाका प्रयोग करनेमे सफलता मिल सकती है।

सच्चे अहिंसावादी नहीं

जो लोग यह मान रहे है कि अहिंसाके प्रशिक्षणसे हम प्रमादी और अकर्मण्य बने जा रहे थे, वे अगर एक क्षण सोचकर देखे तो उन्हे मालूम हो जायेगा कि अहिंसाका जो एकमात्र सच्चा अर्थ है, उस अर्थमे हम कभी अहिंसापरायण रहे ही नही। हमने प्रत्यक्ष शारीरिक हिंसा नही की है, मगर हमारे दिलोमें तो हिंसाकी आग सुलगती ही रही है। बाह्यरूपसे हमने जो कुछ किया, यदि उसका सामजस्य हमने ईमानदारीके साथ मन और वचनसे भी अहिंसाका पालन करनेमे बैठाया होता तो आज हमको जो थकान महसूस हो रही है वह हरगिज न होती। अगर हम

स्वय अपने प्रति ईमानदारी वरतते रहते तो अवतक हमने अपने भीतर अनुपम मनोवल और सकल्पशक्तिका विकास कर लिया होता।

अहिंसाके वारेमे फैली हुई इस खाम-खयालीका लम्वा-चौडा जिक्र मैंने इसलिए किया कि मुझे यकीन है कि अगर हम उपर्युक्त दो उद्देश्योको सफल वनानेके लिए ही अहिंसामे अपना विश्वास, अगर पहले कभी ऐसा विश्वास रहा हो तो, एक वार फिर जमा सके तो दोनो सम्प्रदायोके वीचका वर्तमान तनाव वहुत हद तक दूर हो जाये। कारण, मेरी रायमे, इस तनावको दूर करनेके उपायोकी चर्चा करनेसे कोई लाभ केवल तभी हो सकता है जव आपसी सम्वन्धोमे हमारा रुख अहिंसात्मक हो। दोनो सम्प्रदायोके लोगोका यह समान लक्ष्य होना चाहिए कि दोनोमे से कोई भी पक्ष स्वेच्छाचारितासे काम नही लेगा, वल्कि जहाँ और जव कोई झगडा उठ खडा होगा, उनका निवटारा या तो आपसी पचायतमे अथवा अदालतमें जाना चाहे तो वहाँ कराया जायेगा। जहाँतक साम्प्रदायिक मामलोका सम्वन्ध है, अहिंसाका अर्थ इतना ही है। दूसरे शव्दोमे कहे तो जिस तरह मामूली दुनियादारीकी वातोमें हम एक-दूसरेके सिर फोडनेपर आमादा नही हो जाते उसी तरह धार्मिक मामलोमें भी वरतें। दोनो पक्षोके वीच यही समझौता आवश्यक है और यह तत्काल हो जाना चाहिए। इतना हो जाये तो मुझे यकीन है कि वाकी तमाम वाते अपने-आप ठीक हो जायेंगी।

धौंग और दव्वू

जवतक यह प्राथमिक शर्त पूरी नही की जाती, तवतक आपसी गलतफहमीको दूर करके किसी सम्मानीय और स्थायी समझौतेपर विचार करने योग्य वातावरण नही वन सकता। मान लीजिए कि दोनो कौमोने इस प्राथमिक शर्तको दोनोके हितकी वात मानकर स्वीकार कर लिया तो फिर हम उन वातोपर विचार करे जिनके कारण दोनोके वीच हमेशा तनातनी वनी रहती है। मुझे रत्ती-भर भी शक नही कि ज्यादातर झगडोमे हिन्दू लोग ही पिटते है, मेरे निजी अनुभवसे भी इस मतकी पुष्टि होती है कि मुसलमान आमतौरपर धीगाधीगी करनेवाला और हिन्दू दव्वू होता है। रेलगाडियोमे, रास्तोपर तथा ऐसे झगडोका निवटारा करनेके जो मौके मुझे मिले है उनमे मैने यही देखा है। क्या अपने दव्वूपनके लिए हिन्दू मुसलमानोको दोष दे सकते है? जहाँ कायर होगे वहाँ जालिम भी होगे ही। कहते है, सहारनपुरमें मुसलमानोने घर लूटे, तिजोरियाँ तोड डाली और एक जगह एक हिन्दू औरतको वेइज्जत भी किया। इसमें गलती किसकी थी? यह सच है कि मुसलमान अपने इस घृणित आचरणकी सफाई किसी तरह नही दे सकते। पर एक हिन्दूकी हैसियतसे मै तो मुसलमानोकी गुडागर्दीके लिए उनपर गुस्सा होनेसे कही अधिक हिन्दुओकी नामर्दीपर शर्मिन्दा होता हूँ। जिनके घर लूटे गये, वे अपने माल-असवावकी हिफाजतमे जूझते हुए वहीं क्यो नही मर मिटे? जिन वहनोकी वेइज्जती हुई उनके नाते-रिश्तेदार उस वक्त कहाँ गये थे? क्या उस समय उनका कुछ भी कर्त्तव्य नही था? मेरी अहिंसा-नीतिमे खतरेके वक्त अपने कुटुम्वियोको अरक्षित छोडकर भाग खडे होनेकी गुजाइश नही है। हिंसा और कायरतापूर्ण पलायनमे से यदि मुझे किसी एकको पसन्द करना पडे

तो मैं हिंसाको ही पसन्द करूँगा। जैसे मैं किसी अन्धे व्यक्तिके मनमें सुखद दृश्योंके देखनेका उत्साह नहीं भर सकता, उसी प्रकार किसी कायरको अहिंसा-धर्म भी नहीं सिखा सकता। अहिंसा वीरताकी पराकाष्ठा है। यह मेरा निजी अनुभव है कि हिंसाकी तालीम पाये हुए लोगोंके बीच अहिंसाकी श्रेष्ठता साबित करनेमें मुझे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई। पहले एक अरसे तक मेरे मनमें कायरताका निवास था और उस अवधिमें मनमें हिंसाके भाव उठा करते थे। लेकिन जैसे-जैसे मेरी कायरता दूर होने लगी, मैं अहिंसाकी भी कीमत समझने लगा। कर्त्तव्य-स्थलको खतरेसे भरा हुआ देखकर जो हिन्दू वहाँसे भाग खड़े हुए वे कुछ इसलिए नहीं भागे थे कि वे अहिंसा-परायण थे या वे मारनेसे डरते थे, वे इसलिए भागे कि वे मरने, यहाँतक कि किसी तरहकी चोट खानेको तैयार नहीं थे। खरगोश शिकारी कुत्तेसे डरकर भागता है सो अपने अहिंसक होनेकी वजहसे नहीं, वह बेचारा तो उसकी शक्ल देखकर ही घबरा जाता है और जान लेकर भाग खड़ा होता है। जो हिन्दू अपनी जान बचाकर भागे वे अगर हँसते हुए अपनी छाती खोलकर अपने स्थानपर खड़े रहते और वहीं मर-मिटते तो वे सच्चे अहिंसापरायण कहे जाते, सर्वत्र उनका यश और गौरव छा जाता, उनके धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ती और उनपर हमला करनेवाले मुसलमान उनके दोस्त बन जाते। अगर वे अपनी जगहपर खड़े रहकर दो-दो हाथ ही कर लेते तो इतना अच्छा तो नहीं फिर भी अच्छा ही होता। अगर हिन्दू यह चाहते हैं कि मुलसमान आततायी उनकी कद्र करें और मित्रवत् व्यवहार करें तो उन्हें बड़ेसे-बड़े खतरेका सामना करते हुए मर-मिटना सीखना चाहिए।

उपाय

लेकिन अखाड़े इसका उपाय नहीं हैं, वैसे मैं अखाड़ोंको बुरा नहीं समझता। बल्कि मैं तो शरीर बनानेके लिए उन्हें जरूरी मानता हूँ। पर उस हालतमें वे सबके लिए खुले होने चाहिए। किन्तु अगर अखाड़े हिन्दू-मुस्लिम झगड़ेमें आत्मरक्षाकी तैयारीके इरादेसे खोले जाते हैं तो उनसे काम नहीं चलनेका। मुसलमान भी ऐसा ही कर सकते हैं। ऐसी तैयारियोंसे चाहे वे छिपकर की जायें या खुले आम, शका और चिढ़ पैदा होनेके अलावा और कुछ नहीं हो सकता। रोगका तत्काल शमन करनेमें ये असमर्थ हैं। यह तो समाजके इनेगिने विचारशील लोगोंका काम है कि पच-फैसलेकी विधिको लोकप्रिय और अनिवार्य बनाकर ऐसे झगड़ोंको गैरमुमकिन बना दें।

बुजदिलीकी दवा शारीरिक प्रशिक्षण नहीं, बल्कि खतरोंको झेलनेकी आदत डालना है। जबतक मध्यमवर्गीय हिन्दू लोग, जो खुद ही बुजदिल होते हैं, अपने लड़के-बच्चोंको छुई-मुई बनाकर रखते रहेंगे और इस प्रकार उनमें भी अपनी बुजदिली भरते रहेंगे, तबतक खतरेसे दुम दबानेकी यह आदत और जोखिम सिरपर न लेनेकी ख्वाहिश बराबर बनी ही रहेगी। उन्हें हिम्मत बाँधकर अपने बच्चोंको अपने ही भरोसे रहनेका मौका देना चाहिए, जोखिममें पड़ने देना चाहिए, और यदि ऐसा करते हुए उन्हें प्राण गँवाना पड़े तो भी कोई हर्ज नहीं। शरीरसे बिलकुल कमजोर आदमीका भी बहुत मजबूत दिल हो सकता है और बड़ा हट्टा-कट्टा जुलू भी अंग्रेज छोकरोंके

सामने बकरी बन जाता है। हरएक गाँवको चाहिए कि वह अपने शेरदिल व्यक्तियोको खोज निकाले।

गुडे

गुडोको दोष देना भूल है। गुडे गुडागर्दी तभी करते है जब हम उनके अनुकूल वातावरणका निर्माण कर देते है। १९२१ मे[1] युवराजके आगमनके दिन बम्बईमें जो-कुछ हुआ, उसे मैने खुद अपनी आँखोसे देखा है। बीज हमने बोये थे, फसल गुडोने काटी। उनकी पीठपर हमारे आदमियोका हाथ था। जिस प्रकार मै कटारपुर और आराकी काली करतूतोके लिए बेहिचक वहाँके प्रतिष्ठित हिन्दुओको जिम्मेवार मानता हूँ, उसी प्रकार मुलतान, सहारनपुर और जिन दूसरी जगहोमे काले कारनामे हुए, वहाँके प्रतिष्ठित मुसलमानोको (किसी एक जगह सभीको नही) उनका जिम्मेदार माननेमे मुझे कोई सकोच नही है। अगर यह बात सच है कि पलवलमे हिन्दुओने कच्ची मसजिदकी जगह पक्की मसजिद नही बनने दिया तो यह काम गुडोका नही है। वास्तवमे इसका उत्तरदायित्व प्रतिष्ठित हिन्दुओपर ही है। प्रतिष्ठित लोगोको दोषसे मुक्त कर देनेकी प्रवृत्तिको कदापि प्रोत्साहित नही किया जाना चाहिए।

इसलिए मै यह मानता हूँ कि अगर हिन्दू लोग अपनी हिफाजतके लिए गुडोको सगठित करेगे तो यह बडी भारी भूल होगी। उनका यह आचरण खाईसे बचकर खन्दकमे गिरने-जैसा होगा। बनिये और ब्राह्मण अपनी रक्षा अहिसात्मक तरीकेसे न कर सकते हो तो उन्हे हिसात्मक तरीकेसे ही आत्मरक्षा करनी सीखनी चाहिए, अन्यथा उन्हे अपनी सम्पत्ति और बहू-बेटियोको गुण्डोके हाथो सौप देना होगा। गुडोकी एक अलहदा जाति ही समझिए, भले ही वे हिन्दू कहलाते हो चाहे मुसलमान। लोगोको बडी शानके साथ कहते सुना गया है कि अभी हालमे एक जगह अछूतोकी हिफाजतमे (क्योकि उन अछूतोको मौतका भय नही था) हिन्दुओका एक जुलूस मसजिदके सामनेसे (धूमधामके साथ गाते-बजाते हुए) निकल गया और उसका कुछ नही बिगडा।

यह एक पवित्र उद्देश्यसे करने योग्य कामका लौकिक दृष्टिसे किया गया उपयोग है। अछूत भाइयोसे इस तरहका नाजायज फायदा उठाना न तो आमतौरपर पूरे हिन्दू धर्मके हितमे है और न खास तौरसे अछूतोके। इस तरहके सदिग्ध उपायोका सहारा लेकर भले ही कुछ-एक जुलूस कुछ मसजिदोके सामनेसे सही-सलामत निकल जाये, पर इसका नतीजा यह होगा कि बढता हुआ तनाव ज्यादा बढेगा और उससे हिन्दू धर्मका पतन होगा। मध्यमवर्गीय लोगोको, यदि वे विरोधके बावजूद मसजिदोके सामनेसे बाजा बजाते निकलना चाहते हो तो, या तो वे पिटनेके लिए तैयार रहे या अपने आत्मसम्मानकी रक्षा करते हुए मुसलमानोको दोस्त बना ले।

हिन्दुओने अपने दलित भाइयोपर अतीतमे जो निर्योग्यताएँ लाद रखी थी और आज भी जो निर्योग्यताएँ वे उनपर लादे हुए है, उनके लिए उन्हे प्रायश्चित्त करना है। स्थिति यह है कि हमपर उनका ऋण है और हमे उस ऋणको चुकाना है। ऐसी

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ ४८५-८९।

स्थितिमे बदलेमे उनसे कुछ अपेक्षा करनेका सवाल ही नही उठता। अगर हम अपनी नामर्दीको छिपानेके लिए उनका इस्तेमाल करेगे तो हम उनके दिलमे ऐसी आशाएँ पैदा करेगे जिन्हे हम कभी पूरा नही कर पायेगे और तब अगर हमे प्रतिशोधका शिकार बनना पडा तो वह उनके साथ किये गये हमारे अमानुषिक व्यवहारका उचित दण्ड होगा। यदि हिन्दुओके दिलोमे मेरे लिए कोई स्थान है तो मै उनसे सविनय अनुरोध करूँगा कि वे मुसलमानोके सम्भावित हमलेसे बचनेके लिए अछूतोको ढाल न बनाये।

बढ़ता हुआ मनोमालिन्य

इस बढते हुए तनावका दूसरा सबल कारण यह है कि हमारे अच्छेसे-अच्छे लोगोके भीतर भी अविश्वासकी भावना बढती जा रही है। मुझे पण्डित मदनमोहन मालवीयजीसे सावधान रहनेकी चेतावनी दी गई है। कहा जाता है कि वे अपने मनसूबे जाहिर नही होने देते, वे मुसलमानोके दोस्त नही है, यह भी कहा जाता है कि मेरे प्रभावके प्रति वे ईर्ष्यालु है। जब मै १९१५ मे भारत लौटा तभीसे उन्हे बहुत करीबसे जानता हूँ। उनसे मेरा घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। उन्हे मै हिन्दू-ससारके श्रेष्ठ व्यक्तियोमे से मानता हूँ। सनातनी होते हुए भी वे बडे उदार विचार रखते है। वे मुसलमानोके दुश्मन नही है। किसीके प्रति मनमे ईर्ष्या रखना उनके लिए असम्भव ही है। उनका हृदय इतना विशाल है कि उसमे शत्रुओके लिए भी स्थान है। सत्ता प्राप्त करना उनका उद्देश्य रहा ही नही। आज जो शक्ति उन्हे प्राप्त है वह मातृ-भूमिकी दीर्घ और अखण्ड सेवाका फल है। ऐसी सेवाका दावा हममे से बहुत कम लोग कर सकते है। उनका और मेरा स्वभाव अलग-अलग है, लेकिन हम दोनोमे सगे भाइयो-जैसा प्रेम है। हमारे बीच और तो और कोई खटास तक पैदा नही हुई। हमारे रास्ते अलग-अलग है। इसलिए हमारे बीच प्रतिस्पर्धाका सवाल ही नही उठता और इसलिए ईर्ष्याकी गुजाइश भी नही है।

दूसरे सज्जन, जिनपर अविश्वास किया जाता है, लाला लाजपतराय है। मैंने तो लालाजीको एक बच्चेकी तरह खुले दिलवाला पाया है। उनका त्याग लगभग बेमिसाल है। मेरी उनसे हिन्दू-मुस्लिम समस्यापर एक बार नही, अनेक बार बाते हुई है। वे मुसलमानोसे दुश्मनी नही रखते। लेकिन मै यह स्वीकार करता हूँ कि वे यह नही मानते कि एकता तत्काल स्थापित हो सकेगी। वे मार्गदर्शनके लिए ईश्वरकी ओर देख रहे है। स्वय शकित रहते हुए भी वे हिन्दू-मुस्लिम एकतामे विश्वास रखते है, क्योकि जैसा कि उन्होने मुझसे कहा, वे स्वराज्यमे विश्वास रखते है। वे मानते है कि ऐसी एकताके बिना स्वराज्य स्थापित नही हो सकता। लेकिन वे यह नही जानते कि यह एकता किस तरह और कब होगी। मेरा समाधान उन्हे पसन्द है, परन्तु उन्हे इस बातमे शक है कि हिन्दू लोग उस समाधानमें (लालाजीके अनुसार) जो उदात्त भाव है उसका मर्म और मूल्य समझ सकेगे या नही। मै यहाँ इतना जरूर कह दूं कि मै अपने समाधानको कोई उदात्त समाधान न मानकर सर्वथा न्यायोचित और एकमात्र व्यावहारिक समाधान मानता हूँ।

स्वामी श्रद्धानन्दजीपर भी अविश्वास किया जाता है। मैं जानता हूँ कि उनके भाषण अकसर चिढ पैदा करनेवाले होते है। परन्तु वे हिन्दू-मुस्लिम एकता भी चाहते हैं। दुर्भाग्यसे उनका खयाल है कि हरएक मुसलमानको आर्यसमाजी बनाया जा सकता है, वैसे ही जैसे शायद अधिकाश मुसलमान हरएक गैर-मुस्लिमका किसी-न-किसी दिन इस्लाम कुबूल करना सम्भव मानते हैं। श्रद्धानन्दजी निडर और बहादुर आदमी हैं। उन्होने अकेले ही गगाके किनारे एक वीरान इलाकेको शानदार गुरुकुलके रूपमे बदल दिया। उन्हे अपने तथा अपने काममे सच्चा विश्वास है। पर उनमे उतावलापन है और वे आसानीसे चिढ जाते हैं। आर्य समाजकी परम्परा उन्हे विरासतमे मिली है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीको मैं बडे आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ। मैं मानता हूँ कि उन्होने हिन्दू धर्मकी भारी सेवा की है। उनकी बहादुरीके सम्बन्धमे कोई शका ही नही हो सकती। पर उन्होने अपने हिन्दू धर्मको सकुचित बना दिया। आर्य समाजकी 'बाइबिल' 'सत्यार्थ प्रकाश' को मैंने पढा है। यरवदा जेलमे जहाँ मैं आराम कर रहा था, दोस्तोने उसकी तीन प्रतियाँ मुझे भेजी थी। किसी अन्य इतने बडे सुधारककी इतनी निराशाजनक कोई कृति मैंने आजतक नही पढी। उन्होने सत्य और सिर्फ सत्यकी ही हिमायत करनेका दावा किया है। पर उन्होने अनजाने ही जैन धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म और खुद हिन्दू धर्मको भी गलत रूपमे पेश किया है। जिन्हे इन महान धर्मोकी थोडी भी जानकारी है, वे सहज ही देख सकते हैं कि इस महान् सुधारकसे कैसी-कैसी भूले हो गई हैं। उन्होने दुनियाके एक सबसे ज्यादा सहिष्णु और उदार धर्मको सकुचित बना डालनेकी कोशिश की है और यद्यपि वे खुद मूर्ति-पूजाके विरोधी थे, किन्तु उनके प्रयत्नोका फल बहुत ही सूक्ष्म ढगकी मूर्ति-पूजाकी प्रतिष्ठाके रूपमे ही प्रकट हुआ है। कारण, उन्होने 'वेद'के एक-एक अक्षरको पूज्य बना दिया और यह साबित करनेकी कोशिश की कि ज्ञान-विज्ञान-की सारी बाते 'वेदो'मे मौजूद हैं। मेरे तुच्छ विचारमे आर्य समाजके फूलने-फलनेका कारण 'सत्यार्थ प्रकाश' के उपदेशोमे निहित गुण न होकर उस समाजके सस्थापकका उच्च और महान् चरित्र है। जहाँ-कही आप आर्य समाजियोको देखेगे वहाँ आपको जीवन और स्फूर्ति दृष्टिगोचर होगी। परन्तु सकुचित दृष्टिकोण और विवादप्रिय स्वभाव होनेके कारण वे या तो दूसरे धर्मोके लोगोके साथ या जब वे न मिले तो आपसमे ही झगडते रहते हैं। स्वामी श्रद्धानन्दजीमे भी यह भावना पर्याप्त मात्रामे है। इन त्रुटियोके होते हुए मैं इन्हे असाध्य नही मानता। मुमकिन है कि आर्य समाज तथा स्वामीजीका जो चित्र मैंने यहाँ खीचा है, उससे वे नाराज हो पर यह कहनेकी आवश्यकता नही कि मेरी मशा उनका दिल दुखाना नही है। आर्य समाजियोसे मुझे प्रेम है, क्योकि मेरे कितने ही साथी-कार्यकर्त्ता आर्य समाजी हैं। स्वामीजीको तो मैं उन्ही दिनोसे चाहने लगा हूँ, जब मैं दक्षिण आफ्रिकामे था। हाँ, अब मैं उन्हे ज्यादा अच्छी तरह पहचानने लगा हूँ, पर इससे उनके प्रति मेरा प्रेम कम नही हुआ है। यहाँ भी मेरा प्रेम ही बोला है।

मुझे जिन हिन्दुओके बारेमे चेतावनी दी गई है, उनमे सबसे अन्तमे आते है श्री जयरामदास और डा० चौइथराम। जयरामदासके नामपर तो मैं कसम खा सकता

हूँ। इनसे ज्यादा सच्चा आदमी मुझे अपनी जिन्दगीमे अभी नही मिला। जेलमे उनका चलन हम लोगोके लिए ईर्ष्याकी वस्तु थी। उनकी सत्यपरायणताको दोपतक कहा जा सकता था। वे मुसलमान-विरोधी नही है। डा० चौइथरामको यद्यपि मैं इनसे भी पहलेसे जानता हूँ, पर मै इन्हे उतनी अच्छी तरह नही जानता। जितना जानता हूँ, उतने से मै उनके हिन्दू-मुस्लिम एकताके हामी होनेके अलावा और कुछ होनेकी कल्पना नही कर सकता। जिन लोगोके खिलाफ चेतावनी दी गई है, मैने उन सबके नाम नही गिनाये है। मुझे तो ऐसा ही भासता है कि यदि आज भी इन तमाम हिन्दुओ और समाजियोको हिन्दू-मुस्लिम एकताके पक्षमे करना बाकी ही रह गया है तो फिर एकता शब्दका मेरे लिए कोई मतलब ही नही बचता, और ऐसी हालतमे मुझे अपनी इस जिन्दगीमे एकता स्थापित करनेकी आशा ही नही रखनी चाहिए।

बारी साहब[1]

पर इन भाइयोके प्रति अविश्वास ही सवालका सबसे खराब पहलू नही है। मुसलमानोके विषयमे भी मुझे वैसा ही सचेत किया गया है, जैसा हिन्दुओके विषयमे। यहाँ मै सिर्फ तीन ही नाम लूँगा। मौलाना अब्दुल बारी साहब एक धर्मोन्मत हिन्दू-द्वेष्टाके रूपमे पेश किये गये है। मुझे उनके कुछ लेख दिखाये गये, जिन्हे मै नही समझ पाया। मैने इस विषयमे उन्हे परेशान ही नही किया, क्योंकि वे तो खुदाके एक भोले-भाले बन्दे है। मैने उनके अन्दर किसी तरहका छल-कपट नही देखा है। अकसर वे कोई बात बिना विचारे बोल जाते है, जिससे उनके अच्छेसे-अच्छे मित्र भी उलझनमे पड़ जाते है। पर वे क्षोभजनक बाते कह बैठनेमे जितनी जल्दी करते है, अपनी भूलकी माफी माँगनेको भी उतनी ही जल्दी तैयार रहते है। जिस वक्त जो बात वे बोलते है, उस वक्त उनका आशय भी सचमुच वही होता है। जिस तरह वे सच्चे दिलसे गुस्सा होते है उसी तरह वे सच्चे दिलसे माफी भी माँगते है। एक बार वे मौलाना मुहम्मद अलीपर बिना किसी उचित कारणके बिगड पडे थे। मै उस वक्त उनका मेहमान था। उनको लगा कि उन्होने मुझे भी बहुत कुछ भला-बुरा कह डाला है। उस समय मौलाना मुहम्मद अली और मै कानपुरकी गाडी पकडनेके लिए स्टेशन जानेकी तैयारीमे थे। हमारे विदा हो जानेके बाद उन्हे लगा कि उन्होने हमारे साथ बेजा बरताव किया है। मौलाना मुहम्मद अलीके प्रति तो उन्होने बेशक अन्याय किया था, मेरे प्रति नही। पर उन्होने तो कानपुरमे हम दोनोके पास अपनी तरफसे कुछ लोगोको भेजकर हम दोनोसे माफी माँगी। इस बातसे वे मेरी नजरोमे बहुत ऊँचे उठ गये। लेकिन, मै कबूल करता हूँ कि मौलाना साहब किसी भी वक्त एक खतरनाक दोस्त साबित हो सकते है। पर मेरा मतलब यह है कि ऐसा होते हुए भी वे दोस्त ही रहेगे। उनके साथ "खानेके और दिखानेके और" यह बात नही। उनके मनमे कोई दुराव-छिपाव नही होता। ऐसे दोस्तके हाथमे अपनी जिन्दगी सौंप देनेमे भी मुझे कोई हिचक नही होगी, क्योंकि मै जानता हूँ कि वे कभी छिपकर वार नही करेगे।

१, अब्दुल बारी।

अली-बन्धु

ऐसी ही चेतावनी मुझे अली-बन्धुओके बारेमे भी दी गई है। मौलाना शौकत अली बडेसे-बडे बहादुरोमे से है। उनमे कुर्बानीका बडा माद्दा है। उसी तरह उनमे ईश्वरकी सृष्टिके मामूलीसे-मामूली जीवको भी प्यार करनेकी असीम क्षमता है। वे खुद इस्लामपर फिदा है, पर दूसरे मजहबोसे वे नफरत नही करते। मौलाना मुहम्मद अली अपने भाईके प्रतिरूप ही है। मौलाना मुहम्मद अलीमे मैने बडे भाईके प्रति जितनी अनन्य निष्ठा देखी है, उतनी कही नही देखी। वे पूरे सोच-विचारके बाद इस निष्कर्षपर पहुँचे है कि हिन्दू-मुस्लिम एकताके सिवा भारतके उद्धारका रास्ता नही है। उनका "अखिल इस्लामवाद" हिन्दू-विरोधी नही है। इस्लामको बाहरी हमलोमे बचानेके लिए और उनकी आन्तरिक शुद्धिके लिए सारा इस्लामी ससार एक हो जाये, यह उनकी उत्कट अभिलाषा है, ऐसी अभिलाषापर भला किसको आपत्ति हो सकती है? उनके कोकनाडाके भाषणके एक हिस्सेको आपत्तिजनक बताकर मुझे दिखाया गया। मैने मौलाना साहबका ध्यान उस ओर दिलाया, उन्होने उसी दम कबूल किया कि हाँ, वाकई यह भूल हुई। कुछ भाइयोने मुझसे यह कहा है कि मौलाना शौकत अलीके खिलाफत सम्मेलनमे दिये गये भाषणमे भी कुछ आपत्तिजनक बाते है। यह भाषण मेरे पास है परन्तु उसे पढनेका समय मुझे नही मिल पाया है। मै यह जानता हूँ कि यदि उसमे सचमुच किसीका दिल दुखानेवाली कोई बात होगी तो मौलाना शौकत अली उसे उसी क्षण दुरुस्त करनेको राजी हो जायेगे। यह बात नही कि अली-बन्धुओमे कोई दोष है ही नही। लेकिन मै तो खुद भी दोषोसे भरा हुआ हूँ। इसीलिए इन दोनोको दोस्त बनाने और इसे अपनी एक बहुमूल्य निधि माननेमे मुझे कोई हिचकिचाहट नही हुई। अगर उनमे कुछ दोष है तो गुण भी बहुत है और मेरा उनके प्रति स्नेहभाव है। जिस प्रकार ऊपर बताये हिन्दू मित्रो-का परित्याग करके मै हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए हिन्दुओके बीच कोई पुख्ता काम नही कर सकता, उसी प्रकार मै उक्त मुसलमान दोस्तोके बिना एकताके लिए मुसलमानोके बीच भी कोई काम करनेकी आशा नही रख सकता। यदि हममे से लोग पूर्णताको पहुँचे हुए होते तो हमारे बीच झगडे होते ही क्यो? पर चूँकि बहुतेरे हम सब अपूर्ण प्राणी है, इसीसे हम सबको एक-दूसरेकी अनुकूल बाते खोजकर और ईश्वरपर भरोसा रखकर एक सामान्य ध्येयके लिए काम करते जाना चाहिए।

हमारे कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियोके प्रति भी अविश्वासका जो वातावरण बन गया उसीको दूर करनेके खयालसे मुझे कतिपय चुने हुए लोगोके बारेमे लिखना पडा है। मुमकिन है कि मै पाठकोको इन व्यक्तियोके सम्बन्धमे अपनी रायका कायल न कर पाया होऊँ तथापि जरूरी था कि वे मेरी रायसे अवगत हो जाते, भले ही उनकी राय मुझसे भिन्न हो।

सिन्धका वाकया

इस गहरे अविश्वासके कारण किसी मामलेके बारेमे सचाई जान सकना भी असम्भव-सा हो गया है।

सिन्धसे डा० चौइथरामने कुछ बाते लिख भेजी है। इन तथ्योको वे एक ऐसे मामलेसे सम्बन्धित बताते है जिसमे एक हिन्दूको जबरदस्ती मुसलमान बनानेकी कोशिश की गई। कहते है, उस आदमीको उसके मुसलमान साथियोने मार डाला, क्योकि वह इस्लाम कबूल करनेको तैयार नही था। यदि यह सच हो तो यह बहुत ही भयकर बात है। मैने मामलेके सम्बन्धमे जानकारी भेजनेके लिए सीधे सेठ हाजी अब्दुल्ला हारुँको तार किया। जवाबमे उन्होने तत्काल तार द्वारा सूचित किया कि लोग इसे आत्महत्याका मामला बताते है, लेकिन मै आगे जाँच-पडताल कर रहा हूँ। आशा है, सचाई सामने आ जायेगी। इस मामलेका जिक्र मैंने सिर्फ यह बतानेके लिए कर दिया कि सन्देहके ऐसे वातावरणमे काम करना कितना कठिन है। सिन्धके एक और मामलेके बारेमे मालूम हुआ है, लेकिन जबतक उसके सम्बन्धमे पूरी और प्रामाणिक बाते मालूम नही हो जाती, मै उसका विवरण नही देना चाहता। मेरा इतना ही निवेदन है कि यदि कोई ऐसी घटनाओके बारेमे सुने, फिर चाहे वह हिन्दुओके विरुद्ध हो या मुसलमानोके, तो उसे चाहिए कि वह अपना मन शान्त रखे और सिर्फ ऐसे तथ्य मेरे पास भेजे जिन्हे साबित किया जा सकता हो। मै वचन देता हूँ कि मै मामूलीसे-मामूली मामलेकी भी जाँच करूँगा और एक व्यक्ति जितना कर सकता है, उतना सब करूँगा। आशा है, जल्दी ही हमारे पास ऐसे कार्यकर्त्ता-ओकी पूरी एक टुकडी तैयार हो जायेगी, जिनका काम यही होगा कि ऐसी सभी शिकायतोकी जाँच करे और न्याय कराने तथा भविष्यमे ऐसे झगडे न हो, इसके लिए आवश्यक व्यवस्था करे।

बगालकी खबरें

बगालसे खबरे आ रही है कि यहाँ हिन्दू स्त्रियोपर ज्यादती हो रही है। वे अगर थोडी भी सच हो तो भी बहुत ही अधिक क्षोभजनक है। यह जानना कठिन है कि इस समय ऐसे अपराधोका विस्फोट-सा क्यो हुआ है। उसी तरह उन हिन्दुओकी बुजदिलीके सम्बन्धमे भी सयमित भावसे कुछ कह सकना कठिन है, जो उन भ्रष्ट की गई बहनोके नाते-रिश्तेदार और सरक्षक है। कामान्ध होकर बेकसूर स्त्रियोपर हैवानकी तरह ज्यादती करनेवालोकी पशुताके सम्बन्धमें तो क्या कहे? इन बदमाशोको खोज निकालना स्थानीय मुसलमानो और आम तौरपर बगालके सभी प्रमुख मुसलमानोका कर्त्तव्य है। उनकी खोज सजा दिलानेके लिए ही नही, बल्कि ऐसे अपराधोकी पुनरावृत्ति रोकनेके लिए जरूरी है। बदमाशोको वे जहाँ छिपे है वहाँसे खोजकर पुलिसके सुपुर्द कर देना कोई बडी बात नही है। परन्तु इससे समाजमे ऐसे अपराधोका होना बन्द नही हो जाता। इसके लिए कारणोका हटाया जाना जरूरी है और उनका हटाया जाना सर्वांगपूर्ण सुधारोसे ही सम्भव है। हिन्दू और मुसलमान, दोनो समाजोमे कुछ ऐसे लोगोको आगे आना चाहिए जो स्वय अपेक्षाकृत खरे चरित्रके हो और ऐसे अपराधियोके बीच जाकर काम करे। यही बात काबुलियो और पठानोके जुल्मके[1] बारेमे कही जा सकती है। हिन्दू-मुस्लिम सवालसे काबुलियोके जुल्मका कोई

१. देखिए खण्ड २०, पृष्ठ १५४-५७।

सम्बन्ध नही है। लेकिन अगर हम लाचार बनकर केवल पुलिसकी दयापर ही जिन्दा न रहना चाहते हो तो ऐसे मामलोको भी हमे हाथमे लेना होगा और उन्हे सुलझाना होगा।

शुद्धि और तबलीग

परन्तु जो बात इस तनावको कायम रखे हुए है, वह है शुद्धि आन्दोलनका मौजूदा तरीका। धर्मान्तरणके लिए जिस अर्थमे ईसाई धर्ममे स्थान है और कुछ कम अशोमे इस्लाममे, मेरे विचारसे उस अर्थमे हिन्दू धर्ममे उसके लिए कोई स्थान नही है। मुझे तो लगता है कि अपने प्रचारकी योजना बनानेमे आर्य समाजियोने ईसाइयोकी नकल की है। अपने धर्मके प्रति विश्वास पैदा करानेका यह आधुनिक तरीका मुझे नही जँचता। इससे हितके बजाय हानि ही हुई है। धर्मान्तरण विशुद्ध रूपमे हृदयकी ओर व्यक्ति-विशेष तथा उसके स्रष्टाके बीचकी चीज मानी जाती है, किन्तु आज इसका ऐसा पतन हुआ है कि इसके लिए मनुष्यकी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियोको उभारनेका तरीका अपनाया जाने लगा है। आर्य समाजी उपदेशकोको जो मजा दूसरे धर्मोपर कीचड उछालनेमे आता है, वह मजा और किसी बातमें नही आता। एक हिन्दूके नाते मेरी सहज बुद्धि तो यही कहती है कि सभी धर्म न्यूनाधिक सच्चे है। सबकी उत्पत्ति एक ही ईश्वरसे है। फिर भी सब धर्म अपूर्ण है, क्योकि वे हमें मनुष्यके द्वारा प्राप्त हुए है, और मनुष्य तो कभी पूर्ण नही होता। सच्चा शुद्धि-कार्य तो मै इसे मानूंगा कि हर व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अपने-अपने धर्ममें रहकर पूर्णत्व प्राप्त करनेकी कोशिश करे। ऐसी योजनामे चरित्र ही एकमात्र कसौटी होगा। एक धर्मको छोडकर दूसरे धर्मको स्वीकार करनेसे अगर नैतिक उत्थान न होता हो तो ऐसे धर्म-परिवर्तनसे क्या लाभ ? जब मेरे सहधर्मी लोग ही अपने आचरणमें रोज-रोज ईश्वरके अस्तित्वको अस्वीकार कर रहे हो तब फिर ईश्वरकी सेवाके लिए, क्योकि शुद्धि या तबलीगका मतलब यही मानना चाहिए, दूसरे धर्मके लोगोको मै अपने धर्मकी दीक्षा किस लिए दूं ? 'रगरेज पहले अपनी पगडी रग' वाली कहावत लौकिक मामलोसे धार्मिक मामलोपर कही अधिक लागू होती है। परन्तु ये मेरे निजी विचार है। अगर आर्य समाजियोको लगता हो कि उनकी अन्तरात्मा उन्हे इस आन्दोलनके लिए प्रेरित कर रही है तो इसे चलानेका उन्हे पूरा हक है। यह उत्कट अन्तर्नाद समयकी मर्यादा या अनुभवके अकुशको स्वीकार नही करता। यदि अन्तरात्माकी आवाजपर किसी आर्य समाजी या मुसलमानके अपने धर्मका प्रचार करनेके कारण ही हिन्दू-मुस्लिम एकता खतरेमे पड जाती है तो निश्चय ही वह एकता सतही है। हम ऐसे आन्दोलनोसे इतना क्यो घबराये ? लेकिन तब इन आन्दोलनोको शुद्ध भावसे प्रेरित होना चाहिए। अगर मलकाना लोग फिरसे हिन्दू धर्म अगीकार करना चाहे तो वे जब चाहे तब उन्हे ऐसा करनेका पूरा-पूरा हक है। परन्तु अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए दूसरे धर्मोकी निन्दा करनेकी प्रवृत्ति नही चलने दी जा सकती, क्योकि यह सहिष्णुताकी भावनाके नितान्त विपरीत है। इस ढगके प्रचारका मुकाबला करनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि खुले आम उसकी भर्त्सना की जाये। हरएक

आन्दोलन समादरणीय होनेका स्वाग रचता है, परन्तु जैसे ही उसकी पोल खुलती है वैसे ही उसके प्रति लोगोकी आदर-भावना समाप्त हो जाती है और आन्दोलन निष्प्राण बन जाता है। सुना है, आर्य समाजी और मुसलमान दोनो सचमुच ही स्त्रियोका अपहरण कर लेते है और तब उनके धर्मान्तरणकी चेष्टा करते है। मेरे सामने आगाखानी साहित्यका ढेर पडा हुआ है। उसे ध्यानसे पढनेकी फुरसत अभी मुझे नही मिल पाई है, किन्तु मुझसे कहा गया है कि सचमुच ही उसमे हिन्दू धर्मको बहुत विकृत रूपमे पेश किया गया है। उसमे महाविभव आगाखॉको हिन्दू अवतार बताया गया है। यही देखकर मै समझ गया कि उसमे क्या-कुछ होगा। खुद महाविभव आगाखॉ इस साहित्यके बारेमे क्या सोचते है, मुझे यह जाननेकी उत्सुकता है। कितने ही खोजे मेरे दोस्त है। मै उन्हे यह साहित्य पढनेको आमत्रित करता हूँ। एक सज्जनने मुझे बताया है कि आगाखानी सम्प्रदायके कुछ एजेट अनपढ गरीब हिन्दुओको पैसा उधार देते है, और बादमे कहते है कि अगर तुम इस्लाम कबूल कर लो तो तुमसे पैसा वापस न लिया जायेगा। इसे मै अवैध प्रलोभन देकर धर्मान्तरण करना कहूँगा। परन्तु सबसे ज्यादा बुरा तरीका तो दिल्लीके एक साहबका[1] है। इन्होने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित की है। उसे मै शुरूसे आखिर तक देख गया हूँ। उसमे इस्लामके उपदेशकोको इस बातकी विस्तृत हिदायते दी गई है कि वे किस तरह इस्लामके प्रचारका काम करे। शुरूआत इस ऊँचे असूलको लेकर की गई है कि इस्लाम तो सिर्फ अद्वैतका ही प्रचार कर रहा है। लेखकके अनुसार इस महासिद्धान्तका प्रचार हर मुसलमानको करना चाहिए — चाहे उसका अपना चरित्र कैसा भी क्यो न हो। इसमे भेदियोका एक छिपा महकमा खोलनेकी हिमायत की गई है। उस महकमेके लोगोका काम गैर-मुस्लिम लोगोके घरोका भेद लेना होगा। इस उद्देश्यके लिए वेश्याओ, पेशेवर गायक-गायिकाओ, फकीरो, सरकारी नौकरो, वकीलो, डाक्टरो, कारीगरो आदिकी सेवाएँ प्राप्त करनेकी बात कही गई है। अगर प्रचारका यह तरीका फैल गया तो इस्लामके पैगम्बरके महान् पैगामका अर्थ करनेवाले (उन्हे मै सच्चा धर्म-प्रचारक न कह सकूँगा) ऐसे छद्मवेषीकी छिपी निगहबानीसे एक भी हिन्दू घर बच नही पायेगा। प्रतिष्ठित हिन्दुओके मुँहसे मैने यह सुना है कि यह प्रचार-पुस्तिका निजामके राज्यमे बहुत पढी जाती है और इसमे सुझाये गये तरीकोके मुताबिक वहॉ काम भी खूब हो रहा है।

एक हिन्दूकी हैसियतसे मुझे इस बातपर अफसोस होता है कि उर्दूके एक नामी लेखक, जिनके पाठकोकी सख्या बहुत बडी है, ऐसे तरीकोको अपनानेकी जोरदार हिमायत कर रहे है जिनके नैतिक औचित्यमे सन्देह है। मेरे मुसलमान मित्रोने मुझसे कहा है कि कोई भी प्रतिष्ठित मुसलमान उसमे बताये तरीकोको पसन्द नही करता। लेकिन यहाँ सवाल तो यह है कि आम मुसलमानी जनताका एक बडा हिस्सा उन तरीकोको मानता है और उनके मुताबिक चलता है या नही। पजाबके अखबारोका एक हिस्सा तो घोर अश्लीलतापर उतर आया है। कभी-कभी तो उनमे लिखे गये

१. आशय ख्वाजा हसन निजामीसे है।

लेख बहुत ही गन्दे होते है। ऐसे कितने ही अशोको पढ जानेकी व्यथा मैंने सहन की है। इन पत्रोंका सचालन एक तरफ आर्य समाजी या हिन्दू लोग करते है और दूसरी तरफ मुसलमान। दोनोंने एक-दूसरेको गालियाँ देने और एक-दूसरेके मजहबकी बुराई करनेकी मानो होड बद ली है। सुना है, इन अखबारोके खरीदारोंकी तादाद भी खासी बढी है। अच्छे-अच्छे वाचनालयोमे भी ये अखबार जाते है।

मैंने यह भी सुना है कि गाली-गलीज और निन्दा-आलोचनाके इस अभियानको सरकारी गुरगोंकी शह है। इस वातपर एकाएक विश्वास नही होता, किन्तु यदि थोडी देरके लिए यह मान ले कि वात सही है तो भी पजावकी जनताको चाहिए कि वह इस शर्मनाक परिस्थितिमे निपट ले।

मै समझता हूँ कि मै इन दो समुदायोके वीचके तनावके मूल कारणो और इनको जारी रखनेवाले कारणोंपर विचार कर चुका हूँ। अव उन दो वातोकी जाँच करे, जिनके कारण सघर्ष होता ही रहता है।

गो-हत्या

पहला है गो-वध। यद्यपि गो-रक्षाको मै एक ऐसा तत्त्व मानता हूँ जो हिन्दू धर्मके केन्द्रमे स्थित है और यह इसलिए कि गो-रक्षाको अमीर-गरीब छोटे-वडे सभी अपना धर्म मानते है, फिर भी इस मामलेमे मुसलमानोके प्रति हमारा द्वेषभाव मेरी समझमे कभी नही आया। अग्रेजोके लिए रोज कितनी ही गाये कटती है, पर हम उनपर कुछ नही कहते। लेकिन जब गायको कोई मुसलमान कत्ल करता है तव हम आग-बबूला हो उठते है। गायके नामपर होनेवाले दगोमे सदा ही शक्तिका मूर्खतापूर्ण अपव्यय हुआ है। इनसे एक भी गायकी रक्षा नही हुई है उलटे मुसलमान ज्यादा हठीले बनते चले गये और फलत गाये ज्यादा कटने लगी है। मुझे बखूवी मालूम है कि १९२१ मे मुसलमानोके द्वारा राजी-खुशी और उदारतासे कोशिश करनेके परिणाम-स्वरूप जितनी गायोकी रक्षा हुई उतनी गायोकी रक्षा तो शायद हिन्दू लोग पिछले वीस वर्षोंके प्रयत्नोमे भी नही कर पाये है। गो-रक्षाकी शुरुआत तो हमसे ही होनी चाहिए। भारतमे मवेशियोकी जैसी दुर्गति है वैसी शायद दुनियाके किसी हिस्सेमे नही है। हिन्दू गाडीवानोको अपने जीर्ण-शीर्ण थके-माँदे वैलोको वेरहमीसे आर चुभोते हुए देखकर कई वार मेरी आँखे भर आई। हमारे ज्यादातर मवेशियोको भरपेट खानेको नही दिया जाता है। यह हमारे लिए लज्जास्पद है। गायोकी गरदनपर कसाईकी छुरी इसलिए चल पाती है कि हिन्दू खुद उन्हे बेच डालते है। ऐसी हालतमे एकमात्र कारगर और सम्माननीय उपाय यही है कि हम मुसलमानोसे मैत्रीभाव बनाये और गायकी रक्षाकी जिम्मेवारी उनकी शराफतपर छोड दे। गो-रक्षा समितियोको अपना ध्यान पशुओको अच्छी तरह खिलाने-पिलाने, उनके साथ होनेवाले क्रूरतापूर्ण व्यवहारको वन्द कराने, तेजीसे होनेवाली चरागाहोकी कमीको रोकने, मवेशियोकी नस्ल सुधारने, गरीब ग्वालोंसे गाये खरीद लेने और पिंजरापोलोको आदर्श स्वावलम्बी दुग्ध-शालाएँ वनानेकी ओर लगाना चाहिए। यदि हिन्दू ऊपर-बताई गई वातोमे से एकमे भी चूके तो वे ईश्वर और मनुष्यके सामने अपराधी ठहरेगे। मुसलमानोके

द्वारा होनेवाले गो-वधको न रोक सकनेसे वे पापके भागी नही बनते, किन्तु जब वे गायकी रक्षाके निमित्त मुसलमानोके साथ लड बैठते है, तब वे पाप अवश्य करते हैं और वह भी भयकर।

बाजा

मसजिदोके सामने बाजे बजाने और अब तो, मन्दिरोमे आरती करनेके मसलेपर भी मैंने प्रार्थना-पूर्वक सोचा-विचारा है। गो-हत्या जिस तरह हिन्दुओके लिए क्षोभका कारण है, उसी तरह बाजे और आरती मुसलमानोके लिए है और जिस तरह हिन्दू लोग मुसलमानोसे जबरदस्ती गो-हत्या बन्द नही करा सकते उसी तरह मुसलमान भी, तलवारके बलपर भी, हिन्दुओको बाजा बजाने या आरती करनेसे नही रोक सकते। उन्हे हिन्दुओकी भलमनसाहतपर भरोसा रखना चाहिए। एक हिन्दूकी हैसियतसे मैं तो हिन्दू भाइयोको बेशक ऐसी सलाह दूंगा कि सौदा करनेकी भावना न रखकर वे मुसलमान भाइयोकी भावनाओका खयाल रखे और जहाँतक हो सके, वहाँतक उन्हे निबाह लेनेकी कोशिश करे। मैंने सुना है कि कितनी ही जगह हिन्दू जान-बूझकर मुसलमानोको चिढानेके लिए ठीक नमाजकी शुरूआतके ही वक्त आरती शुरू कर देते है। यह एक विवेकहीन और अमैत्रीपूर्ण कृत्य है। मित्रता तो यह मानकर ही चलती है कि मित्रकी भावनाओका अधिकसे-अधिक खयाल रखा जायेगा। इसमे अलगसे सोचने-विचारनेकी जरूरत ही नही रहती। फिर भी मुसलमानोको हिन्दुओके बाजेको जोर-जबरदस्तीसे रोकनेकी उम्मीद नही रखनी चाहिए। मारपीटकी धमकीसे अथवा सचमुच मारपीटके डरसे किसी कामको करना अपने आत्मसम्मान और धार्मिक विश्वासको तिलाँजलि दे देने जैसा है। पर जो आदमी स्वय कभी धमकीसे नही डरता वह अपना व्यवहार भी अपने-आप ऐसा रखेगा जिससे दूसरोको चिढनेका मौका कमसे-कम आये और सम्भव हुआ तो वह ऐसा मौका आने ही नही दे।

समझौता

ऊपर कही हुई बातोको देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि हम अभी ऐसी अवस्था तक नही पहुँच पाये हैं जहाँ दोनो जातियोम किसी किस्मके समझौतेकी सम्भावना भी हो। मेरे सामने यह बात बिलकुल साफ हे कि समझौतेमे गो-वध तथा बाजेके बारेमे सौदेबाजीका सवाल ही नही उठता। यह काम तो दोनो पक्षोको अपनी-अपनी राजीखुशीसे करना चाहिए। इसे किसी समझौतेका आधार नही बनाया जा सकता।

निस्सन्देह राजनैतिक मामलोके लिए किसी न किसी तरहका समझौता या सहमति आवश्यक हे, परन्तु मेरे विचारसे तो कारगर समझौता तभी हो सकता है जब दोनो जातियोके बीच मैत्री भावना पुन स्थापित हो जाये। क्या आज दोनो पक्ष सच्चे दिलसे यह मानने के लिए तैयार हैं कि दोनो कौमोके विवादोको, चाहे वे मजहबी हो या गैर-मजहबी, निबटानेके लिए शरीर-बलका सहारा नही लिया जायेगा? मुझे तो यकीन हो चुका है कि अगर अगुआ लोग न चाहे तो सर्वसाधारण जनता कदापि लडना नही चाहती। इसलिए अगर अगुआ लोग इस बातपर सहमत हो जायें कि दूसरे तमाम सभ्य और उन्नत देशोकी तरह हम भी आपसी मारकाटको अधार्मिक

और वर्वरतापूर्ण कृत्य मानकर अपने सार्वजनिक जीवनसे उसका नामोनिशान मिटा दें, तो मुझे कोई सन्देह नही कि आम जनता तत्काल उनका अनुगमन करनेको तैयार हो जायेगी।

जहाँतक राजनीतिक मामलोका सवाल है, एक असहयोगीकी हैसियतसे मुझे उनमे कोई दिलचस्पी नही है। पर भावी समझौतेके वारेमे मेरी राय यह है कि वहुसख्यक पक्ष होनेके नाते हिन्दुओको चाहिए कि वे किसी प्रकारकी सौदेवाजी न करे और हकीम अजमलखाँ-जैसे किसी व्यक्तिके हाथमे कलम देकर कहे कि अव आप जो फैसला कर देगे वह हमारे सिर-आँखोपर होगा। सिखो, ईसाइयो, पारसियो आदिके साथ भी मैं ऐसा ही करना पसन्द करूँगा, वे अपनी इच्छासे हमे जो-कुछ दे देगे, उसीमे सन्तुष्ट रहनेको कहूँगा। मेरे विचारसे यही एकमात्र उचित, न्यायसगत, सम्मानजनक और शोभनीय समाधान है। यदि हिन्दू लोग विभिन्न जातियोके वीच एकता चाहते हो तो उनमे अल्पसख्यक जातियोपर विश्वास करनेकी हिम्मत तो होनी ही चाहिए। दूसरी किसी भी वुनियादपर किया गया समझौता अरुचिकर सिद्ध होगा। लाखो करोडो आम लोगोको कौसिल और नगरपालिकाओमे जानेकी इच्छा नही है और अगर हम सत्याग्रहका सही उपयोग समझ गये है तो हमे यह जान लेना चाहिए कि इसका उपयोग किसी भी अन्यायी शासकके खिलाफ किया जा सकता है और किया जाना चाहिए—फिर भले ही वह शासक हिन्दू हो या मुसलमान अथवा किसी और कौमका, और जो शासक अथवा प्रतिनिधि न्यायप्रिय होगा, वह हिन्दू हो या मुसलमान, दोनो हालतोमें अच्छा ही होगा। हम साम्प्रदायिक भावनाको समाप्त कर देना चाहते है। इसलिए वहुसख्यक लोगोको इस दिशामे पहल करनी चाहिए और अल्पसख्यकोमे अपनी सदाशयताके प्रति विश्वास उत्पन्न करना चाहिए। समझौता तो तभी सम्भव है जव कि अधिक शक्तिशाली पक्ष कमजोर पक्षकी ओरसे अनुकूल प्रतिक्रियाकी प्रतीक्षा किये विना कदम उठाये।

सरकारी विभागोकी नौकरियोके वारेमे मेरा खयाल यह है कि यदि इस क्षेत्रमे साम्प्रदायिक भावनाको दाखिल किया गया तो वह सुशासनके लिए घातक होगा। कोई भी प्रशासन दक्ष तभी हो सकता है जव उसकी वागडोर योग्यतम व्यक्तियोके हाथोमे हो। पक्षपात तो कतई नही होना चाहिए अर्थात् अगर हमे पाँच इजीनियरोकी जरूरत हो तो हर जातिमे से एक-एक इजीनियर न लेकर सवसे ज्यादा पाँच योग्य व्यक्तियोको चुना जाना चाहिए—भले ही वे पाँचो मुसलमान या पारसी ही हो। यदि आवश्यक समझा जाये तो सवसे नीचेकी जगहोपर नियुक्ति परीक्षाके आधारपर की जानी चाहिए और यह परीक्षा विभिन्न जातियोके लोगोसे गठित निष्पक्ष निकाय द्वारा ली जानी चाहिए। परन्तु इन नौकरियोका वँटवारा कौमोकी तादादके अनुपातमे हरगिज नही होना चाहिए। राष्ट्रीय सरकारके अधीन शिक्षाके क्षेत्रमे पिछडी जातियोके लोगोको विशेष शैक्षणिक सुविधा प्राप्त करनेका अधिकार होगा और यह अधिकार उन्हे सुगमतासे प्राप्त हो सकता है। पर जिन लोगोकी महत्वाकाक्षा सरकारमे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पानेकी हो, उनके लिए तो इन निर्धारित परीक्षाओमे उत्तीर्ण होना अनिवार्य रहेगा।

विश्वासका प्रतिफल विश्वास

मेरे लेखे तो आज देशके सामने एक ही मसला ऐसा है जिसका निपटारा तुरन्त किया जाना चाहिए और वह है हिन्दू-मुस्लिम समस्या। मै श्री जिन्नाकी रायसे सहमत हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम एकताका मतलब ही स्वराज्य है। जबतक इस अभागे देशमे हिन्दुओ ओर मुसलमानोके बीच हार्दिक और स्थायी एकता कायम नही होती तबतक मुझे तो कोई रास्ता दिखाई नही देता। मै यह भी मानता हूँ कि ऐसी एकता तत्काल स्थापित की जा सकती है, क्योकि एक तो दोनो जातियोके लिए यह अत्यन्त स्वाभाविक और आवश्यक है, दूसरे मुझे मानव-स्वभावमे विश्वास है। हो सकता है, ज्यादातर बातोके लिए मुसलमान जबावदेह हो। मै बहुतसे ऐसे मुसलमानोके भी निकट सम्पर्कमे आया हूँ जिन्हे "बुरा" कहा जा सकता है। फिर भी, मुझे ऐसा एक भी मौका याद नही आता, जिसमे मुझे उनके सम्पर्कमे आनेके कारण पछताना पडा हो। मुसलमान लोग बहादुर है, उदार है और जिस क्षण उनका शक रफा हो जाता है, उसी क्षणसे वे विश्वास भी करने लगते है। हिन्दुओको काँचके महलमे बैठकर अपने मुसलमान पडौसियोपर पत्थर फेकनेका कोई अधिकार नही है। खुद हमने दलित जातियोके प्रति क्या किया है, और आज भी कर रहे है इसकी ओर निगाह डालिए। अगर "काफिर" शब्द तिरस्कारका बोधक हे तो "चाण्डाल" शब्दमे उससे कितनी अधिक कुत्सा है? दलित जातियोके साथ हम जो व्यवहार कर रहे है उसकी मिसाल शायद दुनियाके किसी मजहबके इतिहासमे नही मिलती। अफसोस तो इस बातका है कि यह दुर्व्यवहार अब भी जारी है। वाइकोममें बिलकुल ही प्राथमिक मानवीय स्वत्वोके लिए कैसा सघर्ष छिडा है।[1] ईश्वर प्रत्यक्ष रूपसे सजा नही देता। उसकी गति न्यारी है। कौन कह सकता है कि हमारे आजके तमाम दुःख इस घोरतम पापके ही फल नही है? इस्लामकी तवारीखमे यद्यपि कही-कही नैतिक ऊँचाईसे गिरावट भी दिखाई देती है, फिर भी अनेक स्थलोपर बहुत शानदार बाते भी है। अपने उत्कर्षके दिनोमे उसमे असहिष्णुता नही थी। सारी दुनिया उसे प्रशसाकी दृष्टिसे देखती थी। जब पाश्चात्य ससार अन्धकारमे डूबा हुआ था, पूर्वी आकाशमे एक दीप्तिमान नक्षत्रका उदय हुआ, जिसने व्यथित ससारको प्रकाश दिया, सान्त्वना दी। इस्लाम कोई झूठा धर्म नही है। हिन्दू लोग आदरके साथ उसका अध्ययन करके देखे, फिर तो जिस तरह उसे मै चाहता हूँ, उसी तरह वे भी जरूर चाहने लगेगे। यदि इस देशमे उसमें विकृति और कट्टरता आ गई हे तो हमे स्वीकार करना चाहिए कि उसके लिए हम भी कुछ कम जिम्मेदार नही है। अगर हिन्दू अपना घर सभाल ले तो मुझे तनिक भी सन्देह नही कि इस्लाममें भी उसकी उदार परम्पराओके योग्य प्रतिक्रिया अवश्य दिखाई देगी। समस्याका समाधान हिन्दुओके हाथमे है। हमे अपना दब्बूपन अर्थात् कायरता छोडनी होगी। हमें अपने भीतर इतनी बहादुरी पैदा करनी चाहिए कि हम दूसरोका विश्वास कर सके। फिर तो कल्याण ही कल्याण है।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २९०-९१।

'यंग इंडिया'का प्राय यह सारा ही अंक हिन्दू-मुस्लिम एकताके सवालपर विचार करनेमे ही लगा देना पड़ा। पाठकगण इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। अगर वे मेरे इस विचारसे सहमत है कि आज भारतके सामने इतना महत्वपूर्ण और आवश्यक सवाल दूसरा नही है तो वे मुझे तुरन्त ही क्षमा कर देंगे। मेरे विचारसे इसी समस्याने ही हमारी प्रगतिका रास्ता रोक रखा है। इसलिए मैं पाठकोसे निवेदन करता हूँ कि इस वक्तव्यको वे पूरे ध्यानसे पढ़कर ऐसे विचार और तथ्य (जरूरी नही कि प्रकाशनार्थ ही हों) लिख भेजे जिनमे इस समस्यापर कुछ अधिक प्रकाश पड़ता हो या जो इस बयानमे मुझसे हुई तथ्य अथवा विचार-सम्बन्धी भूलोको सुधारनेमे सहायक हों।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-५-१९२४

७८. कांग्रेस-संगठन

मैंने कौंसिल-प्रवेशके प्रश्नपर अखबारोंके लिए दिये गये अपने वक्तव्यमे[1] यह कहा था कि जबतक मैं अपने विचारोंके प्रकाशमे इस प्रश्नका विवेचन न कर लूं कि कांग्रेस-संगठनको अपना काम किस प्रकार करना है तबतक मेरा वक्तव्य पूरा नही माना जा सकता। मेरा और स्वराज्यवादियोंका मतभेद सच्चा और महत्वपूर्ण है। मेरा खयाल है कि इन सच्चे मतभेदोंको साफ-साफ स्वीकार कर लेनेसे देशकी प्रगति में तेजी आयेगी, जब कि सिर्फ इन मतभेदोंको छिपानेके लिए वस्तुस्थितिपर लीपा-पोती करके कोई समझौता कर लेनेमे देशकी प्रगतिके मार्गमे बाधा ही पड़ती। अब दोनो पक्षोंको अपने-अपने मतोंके प्रतिपादनकी पूरी-पूरी छूट है, अलबत्ता हमारे सामान्य उद्देश्यको आंच नही आनी चाहिए।

इसलिए कांग्रेस-संगठनका काम किस प्रकार चलाना है, इसपर विचार करना आवश्यक है। यह बात तो मेरे सामने बिलकुल स्पष्ट है कि जिस प्रकार परस्पर दो विरोधी मत रखनेवाले राजनीतिक दल एक साथ मिलकर किसी शासन-तन्त्रका संचालन कुशलतापूर्वक नही कर सकते, उसी प्रकार स्वराज्यवादी और अपरिवर्तनवादी मिलकर कांग्रेसका संगठन भी कुशलताके साथ नही चला सकते। खिताबों आदिके बहिष्कारको मैं कांग्रेस-कार्यक्रमका बिलकुल ही अभिन्न अंग मानता हूँ। बहिष्कारके दो लक्ष्य है एक तो खिताब आदि प्राप्त लोगोंको समझा-बुझाकर उन्हे छोड़नेके लिए राजी करना, और दूसरे, कांग्रेसको बहिष्कृत संस्थाओंके प्रभावसे पूरी तरह मुक्त रखना। यदि पहला लक्ष्य तत्काल सफल हो गया होता तो हम अपने उद्देश्य तक तभी पहुँच गये होते। लेकिन अगर हमें कभी अहिंसात्मक असहयोगके कार्यक्रमके जरिये अपने उद्देश्य तक पहुँचना है तो दूसरा लक्ष्य भी उतना ही आवश्यक

१ देखिए "वक्तव्य एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको", २२-५-१९२४।

है। मेरे लिए तो बहिष्कार तभीतक राष्ट्रीय है, जबतक राष्ट्रीय कांग्रेस अपने संगठनमें उसको लागू करती है। खिताबयाफ्ता लोग, वकील, शिक्षक और कौंसिलोंके सदस्य एक तरहसे सरकारके प्रशासन-तन्त्रकी स्वयंसेवी शाखाओंके प्रतिनिधि ही हैं। इसलिए यदि इन लोगोंको कांग्रेसके पदाधिकारियोंके रूपमें रखे बिना कांग्रेसको नहीं चलाया जा सकता तो कांग्रेस सरकारी संस्थाओंके प्रभाव और आकर्षण तथा प्रतिष्ठाको कम नहीं कर सकती। कांग्रेसके असहयोग कार्यक्रमके पीछे जो विचार काम कर रहा था, वह यह था कि यदि ऐसे तत्त्वोंके प्रभावके बिना, बल्कि उसके बावजूद, कांग्रेस संगठनका काम हम प्रामाणिक और अहिंसक ढंगसे सफलतापूर्वक चला सकें तो सिर्फ इतने-से ही हमें स्वराज्य मिल जायेगा। हमारा संख्या-बल इतना जबरदस्त है कि अगर यह राष्ट्रीय संस्था बहिष्कार-आन्दोलनको कारगर ढंगसे चला सके तो यह एक दुर्दमनीय शक्ति बन जायेगी। इसलिए निष्कर्ष यही निकलता है कि कोई भी खिताबयाफ्ता व्यक्ति, सरकारी स्कूलका शिक्षक, वकालत करनेवाला वकील, विधायक, विदेशी अथवा मिलोंका बना देशी कपड़ा भी पहननेवाला व्यक्ति या ऐसे कपड़ोंका व्यापार करनेवाला आदमी कांग्रेसकी कार्यकारिणीका सदस्य न हो। ऐसे लोग कांग्रेसके सदस्य तो बन सकते हैं, लेकिन उसकी कार्यकारिणी संस्थाओंके सदस्य उन्हें नहीं बनाया जाना चाहिए। वे कांग्रेसकी बैठकोंमें प्रतिनिधि बनकर जा सकते हैं और उसके प्रस्तावोंको प्रभावित करनेकी कोशिश कर सकते हैं, लेकिन जब एक बार किसी विषयपर कांग्रेस अपनी नीति निश्चित कर ले तो उस नीतिमें विश्वास न करनेवाले लोगोंके बारेमें मेरा विचार यही है कि वे कार्यकारिणीसे बाहर ही रहें। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और तमाम स्थानीय कार्यकारिणी समितियाँ ऐसी ही कार्यकारिणी संस्थाएँ हैं, और उनमें सिर्फ ऐसे ही लोग हों जो कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नीतिमें पूरा-पूरा विश्वास रखते हों और उसपर अमल करनेको तैयार हों। कांग्रेस संगठनमें एकल संक्रामणीय मत [सिंगिल ट्रान्सफरेबल वोट] के नियमकी शुरुआत मैंने ही कराई है। लेकिन अनुभवोंसे स्पष्ट हो गया है कि जहाँतक कार्यकारिणी संस्थाओं-का सम्बन्ध है, यह नियम काम नहीं कर सकता। यदि कार्यकारिणी समितियोंको ऐसी संस्थाएँ बनाना है, फिलहाल जिनके जरिये कांग्रेसकी नीतिको कार्यरूप दिया जाना है तो इस विचारको छोड़ ही देना चाहिए कि इन संस्थाओंमें सभी मतोंके लोगोंको प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

हमें पूरी सफलता न मिलनेका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण यह है कि इन कार्यकारिणी संस्थाओंके सदस्योंका कांग्रेसके सिद्धान्ततक में विश्वास नहीं रहा है। कार्यसमिति द्वारा बारडोली प्रस्ताव पास किये जानेके तुरन्त बाद दिल्लीमें हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके सम्बन्धमें मैंने जो अपने विचार लिखे थे[1] आज भी मैं उन्हींपर कायम हूँ। उस समय मैंने बिलकुल ही साफ समझ लिया था कि यदि अधिकांश नहीं तो काफी सदस्य कांग्रेस-धर्मके अभिन्न अंगके रूपमें अहिंसा और सत्यमें विश्वास नहीं रखते। वे यह माननेको तैयार नहीं थे कि "शान्तिपूर्ण"का

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३९९-४०३, ४९२-९३ और ५२५-२९।

मतलब "अहिंसापूर्ण" है और "उचित" का मतलब "सत्य" है और मैं जानता हूँ कि आज हममे फरवरी, १९२२ की अपेक्षा हिंसा और असत्यकी भावना कही अधिक है। इसलिए, मैं अनुरोध करता हूँ कि जो लोग पचमुखी बहिष्कार तथा सत्य और अहिंसामें विश्वास नही रखते उन्हे कार्यकारिणी सस्थाओको छोड देना चाहिए। इसीलिए मैंने कौसिल-प्रवेश सम्बन्धी अपने वक्तव्यमे कहा है कि विभिन्न दल रचनात्मक कार्यक्रमको अपने-अपने सगठनोके जरिये ही पूरा करे। यदि पचमुखी बहिष्कार तथा सत्य और अहिंसामे पूर्ण विश्वास रखनेवाले लोग हो तो उनके लिए तो काग्रेसके अलावा और कोई सगठन ही नही है। इसलिए मेरे विचारसे स्वराज्य-वादियोंके लिए सबसे स्वाभाविक रास्ता यही है कि वे अपने ही सगठनोके जरिये रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करे। जहाँतक मैं देख पाता हूँ, उनके कामका तरीका बहिष्कारवादियोंके तरीकेसे भिन्न होगा। यदि वे कौसिल-प्रवेशको सफल बनाना चाहते है तो उन्हे अपनी सारी शक्तिका उपयोग उसी काममे करना चाहिए और इसलिए उनके लिए रचनात्मक कार्यक्रममे सहायता देनेका भी तरीका यही है कि वे कौसिलो और विधानसभाके जरिये उसे पूरा करनेकी कोशिश करे।

व्यक्तिश मैं तो ऐसी किसी रस्साकशीमें शरीक नही होऊँगा जिसमे प्रत्येक पक्ष काग्रेस कार्यकारिणीपर अपना-अपना आधिपत्य जमाना चाहता हो। अगर जरूरी ही हो तो वह सघर्ष आगामी दिसम्बरके काग्रेस अधिवेशनमे बिना किसी गरमागरमी या कटुताके किया जा सकता है। काग्रेस अधिवेशनका काम विचार-विमर्श करना और नियम बनाना है। लेकिन जो स्थायी सस्थाएँ है, वे विशुद्ध रूपसे कार्यकारिणी सस्थाएँ है, जिनका काम काग्रेस अधिवेशनमें पास किये गये प्रस्तावोपर अमल कराना है। मुझे बडी उतावली है। काग्रेस द्वारा स्वीकृत पूर्ण और विशुद्ध अहिंसात्मक असहयोग कार्य-क्रममें मेरा अटल विश्वास है और किसी कार्यक्रममे मेरा विश्वास है ही नही। यदि मुझे ऐसे अहिंसावादी और सत्यनिष्ठ कार्यकर्त्ता मिल जाये, जो मेरी ही तरह बहिष्कारो, चरखेकी क्षमता, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणमे विश्वास करते हो तो फिर मुझे यही महसूस होने लगेगा कि हममे से अधिकाश लोग जितना सोचते है, उससे कही अधिक जल्दी ही स्वराज्य आ रहा है। लेकिन, यदि हम अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीमे तू-तू, मैं-मैं करते चले जाये तो एक-दूसरेको बदनाम करने और एक-दूसरेके मार्गमें बाधा डालनेके अलावा और कुछ नही कर सकते। यदि दोनो दल बिना किसी द्वेषभावनाके ईमानदारीके साथ अलग-अलग (क्योकि और कोई रास्ता नही है) अपना-अपना काम करते रहे तो वे एक-दूसरेको काफी सहायता पहुँचा सकते है।

मुझे यकीन है कि आगामी बैठकमे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सभी सदस्य शामिल होगे। यदि हम एक-दूसरेके इरादोको खराब बताये बिना कार्यकी योजनापर शान्तिपूर्वक विचार कर सके और अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीको समान विचारोवाले लोगोकी समिति बना सके तो आगामी छ महीनोमे हम बहुत ज्यादा काम कर सकते है। मैं हर पुरुष और स्त्री सदस्यसे सादर अनुरोध करूँगा कि वे खुद इस कार्यक्रमके सम्बन्धमे अपने मनको टटोले। अगर इस कार्यक्रमके वर्तमान रूपमे उनका विश्वास न हो और वे मानते हो कि सिर्फ इसीके भरोसे स्वराज्य

प्राप्त नही हो सकता और अगर उनकी यह मान्यता सचमुच उनके निर्वाचकोकी भावनाओकी द्योतक हो तो मै कमेटीको बेहिचक यह सलाह दूँगा कि वह इस कार्य-क्रमपर पुन विचार करने और अगले वर्ष उसपर मोहर पानेकी आशासे उसमे आमूल परिवर्तन करनेतक का खतरा उठाये। निस्सन्देह इसे जनताका सच्चा समर्थन प्राप्त होना चाहिए। यदि ये दो शर्ते पूरी होती हो तो मुझे कोई सन्देह नही कि सविधानमे चाहे कुछ भी हो, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीका यह कर्त्तव्य है कि वह निन्दा और आलोचनाका खतरा उठाकर भी काग्रेसकी नीति बदल दे और वर्षके अन्ततक उपयोगी और ठोस काम करके दिखाये। गतिरोधसे तो हर हालतमे बचना ही है।

इतना सब लिख चुकनेके बाद मेरा ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित किया गया कि मेरे इन विचारोके कारण स्वराज्यवादी लोग जनताकी नजरोमे अपरिवर्तन-वादियोसे कमजोर और हीन दिखाई देने लगे है। मेरे मनमे ऐसा कोई विचार तो सपनेमे भी नही आ सकता। यहाँ योग्यताका तो कोई सवाल ही नही उठता, बात प्रकृति-भेदकी है। मेरे लिखनेका एकमात्र उद्देश्य इतना ही है कि काग्रेस कार्यकारिणीका काम कारगर ढगसे चलता रहे। यह तभी हो सकता है, जब सभी कार्यकारिणी सस्थाओका सचालन एक ही दलके लोग करे। यदि स्वराज्यवादियोके विचार ज्यादा लोकप्रिय हो तो कार्यकारिणी सस्थाएँ सिर्फ उन्हीके हाथोमे रहनी चाहिए। काग्रेसको तो बराबर जो विचार लोकप्रिय हो, उसीका प्रतिनिधित्व करना चाहिए, चाहे वह विचार अच्छा हो या नही। जो लोग लोकमतके विपरीत विचार रखते है — जरूरी नही है कि ऐसे लोग कमजोर और हीन ही हो — उनका कर्त्तव्य यही है कि वे बाहर रहकर ही जनमतको प्रभावित करनेकी कोशिश करे। यदि अपरिवर्तनवादी लोग परिवर्तनवादियोको सिर्फ इस कारणसे कि वे उनसे भिन्न विचार रखते है, किसी भी तरह अपनेसे हीन समझेगे तो वह अपने दायित्वके प्रति विश्वासघात होगा।

मेरा ध्यान इस बातकी ओर भी आकर्षित किया गया है कि कार्यकारिणी सस्थाओपर किसी एक ही दलके नियन्त्रणकी बातकी मेरी हिमायत, दिल्लीमे पास किये गये और पुन कोकनाडामे पुष्ट किये गये प्रस्तावकी भाषाके नही तो भावके विरुद्ध अवश्य है। मैने दोनो प्रस्तावोको ध्यानसे पढा है। मेरे विचारसे दिल्लीके प्रस्तावमे और विशेषकर कोकनाडाके प्रस्तावमे कार्यकारिणी सस्थाओके सयुक्त नियन्त्रणकी कोई बात नही कही गई है। कोकनाडा प्रस्तावमे सिर्फ दिल्लीके प्रस्तावकी पुष्टि ही नही की गई, बल्कि उसमे अहिंसात्मक असहयोगके सिद्धान्तपर जोर दिया गया है। अगर इन प्रस्तावोका आशय समझनेमे मुझसे गलती भी हुई हो तो मेरी दलीलपर उनसे कोई फर्क नही पडता। यह तो सिर्फ मेरी राय है, सदस्यगण उसे स्वीकार करे, चाहे न करे, ऐसा करनेमे मेरा उद्देश्य यही है कि काम फुर्तीसे हो। मुझे लगता है कि दोनो दल एक-दूसरेको कारगर ढगसे सहायता तभी पहुँचा सकते है जब वे अपने-अपने क्षेत्रोमें रहकर ही काम करे।

[अंग्रेजीसे]

यग इडिया, २९-५-१९२४

७९. पत्र : मणिवहन पटेलको

[२९ मई, १९२४ के पश्चात्][1]

चि० मणि,

वाह! कल तुम घर आये और चले गये[2]। अब सन्देश भेजती हो। रोगी किसी बार चाहे अपने वादेसे मुकर सकता है। उसे कोई भी वादा नहीं बाँधता। इसलिए अगर अब न आओ तो वह माफ रहेगा। फिर भी जब आना चाहो तब आ भी सकती हो। मैं तो एक ही बात जानता हूँ कि तुम किसी न किसी तरह चंगी हो जाओ।

वापूके आशीर्वाद

चि० मणिवहन पटेल
खमासा चौकी
अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
वापूना पत्रो–४. मणिवहेन पटेलने

८०. पत्र : अब्वास तैयवजीको

आश्रम
शुक्रवार [३० मई, १९२४][3]

वड़े जवान भाई साहव,

आप तो कमाल कर रहे हैं। मुझे आपके पत्र मिलते हैं। जब-जब आपके परिवारके लोग मुझसे मिलने आते हैं तब-तब मेरी आँखोंमें खुशीसे आँसू आ जाते हैं। मैं आपसे जिन कामोंकी आशा करता हूँ वे तो आप पूरे करते ही हैं, जब आशा नहीं करता तब भी आप कोई ऐसा काम उठा लेते हैं जो आप मानते हैं कि

१. साधन-सूत्रके अनुसार यह पत्र सावरमतीसे भेजा गया था, जहाँ गांधीजी २९ मई, १९२४को पहुँचे थे।

२. मणिवहन पटेल आश्रममें आई थीं और गांधीजीसे मिले विना ही चली गई थीं, क्योंकि वे उस समय सोये हुए थे।

३. अब्बास तैयवजीपर "जवान बूढ़ा" शीर्षकसे टिप्पणी १-६-१९२४के *नवजीवन*में छपी थी। उससे पहलेका शुक्रवार ३०-५-१९२४को पड़ता है।

मुझे पसन्द आयेगा, मैंने तो मीठा विनोद ही किया था पर आपने गुजरातीमे एक अति सुन्दर पत्र ही लिख भेजा। उसे 'नवजीवन' के पाठकोके सामने प्रस्तुत न करूँ, यह कैसे हो सकता है? आप 'नवजीवन' किसी दूसरेसे पढवाकर सुनते रहे।

अमीनाके[1] विवाहके निमन्त्रणपत्रोपर पते कई लोगोसे लिखवाये थे। मैंने आपका नाम भी सूचीमें डाला था; परन्तु बादमे काट दिया। आपको निमन्त्रणपत्र भेजनेका अर्थ यही होता कि कुछ रुपया आपसे भी लेना है। मैंने कुछ निमन्त्रणपत्र अपने गुजराती हिन्दू मित्रोके नाम यह दिखानेके लिए अवश्य भेजे है कि एक मुसलमानकी पुत्री मेरी ही पुत्री है। परन्तु उन लोगोके विवाहमे सम्मिलित होनेकी मुझे आशा नही है। वे अगर रुपया भेजेगे तो वह लिया हरगिज नही जायेगा। मैंने जो थोडा-सा पैसा इस सम्बन्धमे खर्च किया है वह इसलिए किया है कि मुझे अपनी मुसलमान बेटी अमीनाका पाणिग्रहण-सस्कार स्वय अपने हाथो कराना है और इमाम साहबकी ख्वाहिश भी यही है। अगर मुझे किसी हिन्दू लड़कीका विवाह-सस्कार करना हो तो मैं एक कौडी भी खर्च न करूँ। मैंने आपको निमन्त्रणपत्र केवल यह देखनेके लिए भेजा है कि वह कैसा है।

श्रीमती अब्बास, रेहाना और आपके कुटुम्बके अन्य लोग मुझसे मिलने प्राय. आते हैं।

यदि मेरी लिखावट आपसे पढते न बने अथवा आपको गुजराती लिखनेमे अडचन हो तो आप अपना पत्र अंग्रेजीमे ही लिखे और मुझे भी उत्तर अंग्रेजीमे देनेके लिए कहे।

मैं मीठे फल देनेवाले पेडको जड समेत नही खा जाना चाहता।

आपका भाई,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च]

मैं आपके पत्रकी बात इमाम साहबसे कहूँगा। आप रुपये कदापि न भेजें।

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९५४६) की फोटो-नकलसे।

१. इमाम बावजीरकी बेटी, जिनका विवाह ३१ मई, १९२४ को हुआ था।

८१. भेंट: 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे[1]

[साबरमती
३० मई, १९२४]

प्र०: महात्माजी, 'यंग इंडिया' में प्रकाशित अपने एक लेखमें आपने डा० महमूदका वक्तव्य दिया है। वक्तव्यमें कहा गया है कि ऐसा एक भी मामला सिद्ध नहीं हो पाया है, जिसमें मोपलोंने जोर-जबर्दस्तीसे हिन्दुओंका धर्म-परिवर्तन किया हो, जैसा कि हिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यसे बिलकुल स्पष्ट देखा जा सकता है। क्या आप इस वक्तव्यसे सहमत हैं?

उ० मैं चाहता हूँ कि आप मेरा लेख थोड़ी और सावधानीसे पढ़ते। मैंने सिर्फ डा० महमूदका विचार उसमें दिया है, अपना नहीं।

इसीलिए मैं पूछ रहा हूँ कि आपकी अपनी क्या राय है। आपने जब डा० महमूदका विचार प्रकाशित करना ठीक समझा तो साथ ही सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके डा० मुंजे और श्री देवधरके विचारोंको भी उसमें स्थान क्यों नहीं दिया?

मुझे नहीं मालूम, डा० मुंजेने मलाबारके बारेमें क्या लिखा है। डा० महमूदने खुद मुझे यकीन दिलाया था कि मलाबारके हिन्दुओंने उनके विचारकी पुष्टि की है। लेकिन मेरे लेखमें आपको सिर्फ यही एक बड़ी कमी क्यों दिखाई पड़ी? मैंने उसमें यह भी तो कहा था कि स्वभावसे ही हर मुसलमान आवारा है और मौलाना बारी साहब कभी बहुत ही खतरनाक दोस्त भी साबित हो सकते हैं। इससे जनतामें निश्चय ही एक सनसनी फैल जायेगी। आर्य समाजके बारेमें भी स्थिति ऐसी ही है। मैं तीन बार 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ चुका हूँ पर मुझे उससे घोर निराशा हुई है।

महात्माजी, मुझे आपसे और भी विषयोंपर बातें करनी हैं। अब वे किसी और अवसरपर करूँगा।[2]

बेशक, मैं चाहता हूँ कि जो भी बात आपके मनको बेचैन किये हो उसे आप निस्संकोच जैसीकी तैसी व्यक्त कर दें। मैं तो जो भी उचित लगेगा, लिखूँगा ही। आप प्रान्तीय स्वायत्त स्वशासनकी मंजूरीकी बाट बेसब्रीसे जोह रहे हैं। लेकिन मैं उससे अधिक चाहता हूँ, यदि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताके इस सवालको लेकर भारत-भरका छः महीने तक दौरा करूँ तो सरकार अपना यह उपेक्षाका रुख बदल देगी और घबरा उठेगी।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, १२-६-१९२४

१. नागपुरके हिन्दी दैनिक स्वातन्त्र्यका एक प्रतिनिधि ३० मई तथा ३ जूनको गांधीजीसे साबरमती आश्रममें मिला था। इस भेंटकी हिन्दी रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है।

२. देखिए "भेंट, 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे", ३-६-१९२४।

८२. पत्र : महादेव देसाईको

[३१ मई, १९२४][1]

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है अब तुम्हारी बहनको आराम हो गया होगा। मैंने 'ब्रह्मचर्य'के[2] अनुवादको गाडीमे ही सुधार लिया था। इसमे गलती तो एक भी नही थी, कही-कही कुछ बदला है। इसे प्रकाशित करनेका विचार है। बीसनगर सम्बन्धी लेख अभी मेरे पास ही है। मै उसमे सशोधन करना चाहता हूँ। क्या मुझे जगानेमे कोई दिक्कत आई थी।[3] यहाँ मुझे ठीक शान्ति प्राप्त है। मै एक बजे तक तो मौन ही रखता हूँ इसलिए काम भी बहुत-सा निबटा लेता हूँ। 'नवजीवन' का जो अगला अक निकालना है, मैंने उसकी सामग्री अभी छुई भी नही है। मै प्रात ६ बजेसे ७ बजे तक मौन रखता हूँ।

नरहरि कल यहाँ आ गये।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]
शनिवार

अभी-अभी तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। यदि बच्चूको परमैंगनेटके पानीसे नहलाया जाये तो वह सम्भवत अब भी बच सकती है। इस स्नानसे शीतला शान्त हो जाती है, इसमे सन्देह नही। लेकिन तुम्हारे जानेके बाद तुम्हारे विचारोंके सम्बन्धमे . .।[4]

भाई श्री महादेव देसाई
मार्फत, स्टेशन मास्टर, बलसाड

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ८८४४) की फोटो-नकलसे।

१. डाक खानेकी मुहरके अनुसार।

२. देखिए पृष्ठ १२१-२४।

३. गांधीजी २८ मईको बम्बईसे अहमदाबाद जा रहे थे। जान पड़ता है तब महादेव भाई बलसाडपर उनसे मिलने गये होंगे।

४. यहाँ वाक्य अधूरा है।

८३. भेंट: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

अहमदाबाद
३१ मई, १९२४

श्री गांधीसे पूछा गया कि 'यंग इंडिया' में कांग्रेस-संगठनके सम्बन्धमें लिखे गये उनके लेखको[1] देखते हुए क्या कांग्रेसमें दरार पड़ना अवश्यम्भावी नहीं हो गया है। उन्होंने उत्तर दिया

यह तो इस बातपर निर्भर करता है कि आप दरारका अर्थ क्या लगाते हैं। यदि आपका मतलब दो दलोंसे है तो कहूँगा कि हाँ, दो दल तो गया कांग्रेसमें[2] ही हो गये थे। कॉमन्स सभामें कई दल शामिल हैं, लेकिन आप उसे अंग्रेज-राष्ट्रमें दरार पड़ना तो नहीं कहते। अब कांग्रेसमें दो दल रहेंगे, लेकिन मुझे आशा है कि उससे दरार तो नहीं पड़ेगी। जैसे कामन्स सभामें सबसे अधिक लोकप्रिय दल ही हमेशा सत्तारूढ़ रहता है उसी तरह कांग्रेसके भीतरके सबसे लोकप्रिय दलको ही इस राष्ट्रीय संगठनकी बागडोर सँभालनी चाहिए और जैसे कि लिबरल दलवाले कंजरवेटिव दल या लेबर दलवालोंको अपनेसे छोटा माननेकी धृष्टता नहीं कर सकते और न करते हैं उसी तरह अपरिवर्तनवादी भी अपने-आपको अन्य दलोंसे ऊँचा नहीं मान सकते और न अन्य दलवाले ही अपने-आपको उनसे ऊँचा मान सकते हैं। मेरे सुझावमें कमसे-कम यह कोशिश तो की ही गई है कि दरार न पड़ने पाये और यदि वह कार्यक्षमताकी पक्की गारंटी न भी देता हो तो भी उसके लिए अत्यन्त अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करता है। मेरा मिली-जुली सरकारमें कभी यकीन नहीं रहा और ऐसे समयमें तो हरगिज नहीं जब बहुत महत्वपूर्ण बातोंपर मतभेद मौजूद हों, या आप चाहे तो कह सकते हैं कि जब ऐसी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियाँ मौजूद हों जिनके कारण एक-दूसरेके बिलकुल भिन्न और नितान्त विरुद्ध कार्य-प्रणालियाँ अपनाना आवश्यक हो जाये।

फिर श्री गांधीसे पूछा गया कि उनके खयालसे सरकारपर इसका क्या असर पड़ेगा और क्या इसके फलस्वरूप सुधारोंकी दिशामें जिस प्रगतिकी आशा की जा रही है, उसकी सभी सम्भावनाएँ समाप्त नहीं हो जायगी, इसपर उन्होंने कहा

मैं ऐसा नहीं समझता। मुझे मालूम है कि कुछ लोगोंका कहना है कि अगर मैं परिवर्तनवादी लोगोंके साथ मिलकर काम करने लगता तो सरकार थर्रा उठती। मेरा विचार इससे बिलकुल ही उलटा है। भारत सरकारकी बागडोर सँभालनेवाले अधिकारी मूर्ख नहीं हैं। वे काफी चालाक और सतर्क लोग हैं। वे जानते हैं कि

१ देखिए "कांग्रेस-संगठन", २९-५-१९२४।
२. सन् १९२२ में।

अगर कोई वास्तविक दवाव पडता है तो वह अपरिवर्तनवादियोका ही पडता है, क्योकि सविनय अवज्ञासे उनकी रूह काँपती है। सविनय अवज्ञाके लिए वे ही लोग सगठन कर सकते है जो उसीके लिए अपना सारा समय दे और उसीपर सारा ध्यान लगाये। अगर अपरिवर्तनवादी और परिवर्तनवादी एक-दूसरेकी राहमे रोडा अटकाते है तो सरकार अवश्य ही प्रसन्न होगी। मै तो ऐसी किसी वातमे शामिल नही होऊँगा और मै समझता हूँ कि ये दोनो दल भी इसमे शामिल नही होना चाहेगे। दोनो ही स्वराज्य हासिल करना चाहते है और जल्दीसे-जल्दी। इसलिए दोनो उसके लिए अपने-अपने ढगसे काम करेगे। लिवरल लोग चाहे स्वीकार करे या न करे, तथ्य यही है कि असहयोगियोके ही कार्योके परिणामस्वरूप सरकारमे लिवरलोकी पूछ होने लगी है। देशमे अगर कोई प्रगतिशील दल कौसिलोके वाहरसे सरकारपर दवाव डाले तो उससे सुधारोके समर्थकोको सदा ही सहायता मिलेगी। मै तो यहाँतक कहता हूँ कि अगर पूर्ण वहिष्कारके सभी समर्थक खत्म हो जाये तो कौंसिलोमे कौसिलवालोकी स्थिति वडी ही दयनीय हो जायेगी। इसमे मै यह मानकर चल रहा हूँ कि सर्वसाधारण हिसाका रास्ता कभी नही अपनायेगा। सभी निरकुश सरकारे जरूरी तौरपर जनशक्तिके उभारसे डरती है, खासतौरसे तव जव जनशक्तिका उभार अनुशासनवद्ध और शान्तिपूर्ण हो। वर्तमान सरकार, हिन्दुओ और मुसलमानोके वीच जो एकता वढ रही है, उससे डरती है और अगर खद्दरका कार्यक्रम कही सफल हो जाये, और जो जरूर ही होगा, तव तो उसके होश ही उड जायेगे। इससे सरकार जनताके दृष्टिकोणको स्वीकार कर लेगी और एक ऐसी अत्यन्त शान्तिमय क्रान्ति घटित होगी जैसी ससारने कभी नही देखी।

[अग्रेजीसे]

हिन्दू, २-६-१९२४

८४. वीसनगरके हिन्दू और मुसलमान

इस वावत मुझे ढेरो पत्र प्राप्त हुए है। पत्र-लेखक भी इन सव पत्रोके प्रकाशित किये जानेकी आशा नही करते। यह वात उनकी उदारताकी परिचायक है और इससे यह भी मालूम होता है कि मैने 'नवजीवन' पत्रके सचालनमें जो मार्ग अपनाया है वे उस मार्गकी कद्र करते है। जिस पत्रमे किसीपर आक्रमण किया गया हो उसे मै कदापि प्रकाशित नही करूँगा। जिससे कौमोमे परस्पर द्वेष फैले, मै ऐसी चीज भी नही छापूंगा। मै द्वेषभावसे तो एक अक्षर भी नही लिख सकता। यदि मैने वीसनगरके कौमी तनातनीको लेकर कुछ लिखा है तो वह सिर्फ दोनो कौमोको शान्त करने, समझाने-बुझाने और उनका एक-दूसरेके प्रति क्या कर्त्तव्य हो जाता है — यह सब वतानेके लिए ही लिखा है।

इस दृष्टिसे विचार करनेपर मुझे जितने पत्र प्राप्त हुए है उनमे से एकको भी प्रकाशित करना जरूरी नही है। वहुत दिन पहले मेरे पास महानुभावोंके भी पत्र

आया था। इसे भी मैंने अनिच्छाके कारण प्रकाशित नहीं किया। तथापि यह सोचकर कि मुझसे जाने-अनजाने अन्याय होनेकी शका भी लोगोके मनमे न आये, मैंने उस पत्रको प्रकाशित करना ठीक समझा। इस वीच मेरे पास आये हुए कुछ पत्रोसे तथा उनमें उक्त पत्रके कुछ मुद्दोका जवाव देखकर मुझे मालूम हुआ कि महासुखभाईका पत्र अन्य समाचारपत्रोंमे प्रकाशित हो चुका है और अव उनके प्रति न्यायकी दृष्टिसे भी उसे छापना आवश्यक नही रहा।

जिस पत्र-लेखकने मुझे खवर दी है उसके प्रति न्याय करनेकी भावनासे मैं इतना तो कह दूं कि "गाय-बैल" के वजाय "पशु" शव्दका प्रयोग तो मैंने ही किया है। पत्र-लेखकने तो "गाय-वैल" शव्द ही लिखे थे। सम्भव है इसमे अतिशयोक्ति हो, इस आशकासे मैंने विशेष शव्दको छोडकर सामान्य शव्दका प्रयोग किया था। दलीलके खयालसे विशेष शव्दकी जरूरत न थी।

मेरे पास अन्य कुछ पत्र आये हैं जिनसे प्रकट होता हे कि मुसलमान भाइयोसे श्री महासुखभाईके सम्वन्ध अच्छे हैं। हम सव आशा करते हैं कि वे इन सम्वन्धोका सदुपयोग करके दोनो कौमोको एक दिल करेगे तथा वीसनगरमे दोनोके वीचकी कडवाहटको मिटायेंगे। 'सफेद टोपी' पहननेवाले लोगोके अपने वचावमें लिखे गये पत्र भी मेरे सामने हैं और उनपर किये गये आक्षेपोसे भरे हुए पत्र भी। 'सफेद टोपी' पहननेवाले लोगोको अथवा जिन्होने कोई अयोग्य काम नही किया है उनको अपना वचाव करनेकी जरूरत ही नही हे। व्यक्तिके काम ही उसे वचाते हैं। जिसकी करनीमें दोष नही होता वही आक्षेपोको सहन करता है, क्योकि उसे विश्वास होता है कि सुकर्मके तेजको आरोपके वादल ज्यादा देरतक ढककर नही रख सकते। अत यदि 'सफेद टोपी' पहननेवाले लोगोने कोई अनुचित कार्य नही किया हे तो वे निर्भय रहें और यदि उनसे कोई अनुचित काम वन पडा है तो उन्हे उसको शुद्ध हृदयसे स्वीकार कर लेना चाहिए तथा फिर कभी ऐसा काम न करना चाहिए। यही उनका पश्चात्ताप होगा। 'सफेद टोपी' पहननेवाले सभी लोग अच्छे होते हैं ऐसा तो मैंने कभी नही माना। फिर अभी लोगोके दिलोमें खादीके प्रति प्रेम-भाव दृढ नही हुआ है। लेकिन जव सर्वत्र खादीका प्रयोग होने लगेगा तथा मिलोके कपडे शायद ही दिखाई देगे तव तो साह और चोर दोनो ही सफेद टोपीधारी होगे। खाना-पीना और कपडा पहनना तो साधु और असाधु दोनोके सामान्य कर्म हैं। इसलिए यह वाछनीय है कि सफेद टोपी पहननेवाले तथा समाजके अन्य लोग यह समझना वन्द कर दे कि 'सफेद टोपी' सद्‌गुणोके एकाधिकारकी सूचक है।

हिन्दुओ और मुसलमानोके सम्वन्धमे 'यग इडिया' मे मैंने जो लेख लिखा था उसका अनुवाद 'नवजीवन' मे प्रकाशित हो चुका है।[१] एकताके इच्छुक प्रत्येक हिन्दू और मुसलमानसे मेरी प्रार्थना हे कि वे इस लेखको ध्यानपूर्वक पढ जाये। ऊपर मैंने जिन पत्रोका उल्लेख किया है उनमे से एक पत्र एक मुसलमान भाईका भी है। सम्भवत उन्होने भी वह लेख समस्त पत्रोमें प्रकाशित करवानेके इरादेसे ही लिखा है।

१ देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५६१-६५।

वह प्रकाशित हुआ हो या न हुआ हो, लेकिन मुझे कहना चाहिए कि मुझे उसमे तटस्थता नही दिखती। मुझे हिन्दुओकी ओरसे जो पत्र प्राप्त हुए है उनमे शुद्ध सत्य ही है, सो मैं नही मानता। लेकिन इन मुसलमान भाईने तो तटस्थ होनेका दावा किया है और लिखा है कि खोज-बीन करनेके बाद उन्हे जो सत्य जान पडा है, उन्होने केवल उसीका निरूपण किया है। इतना होनेपर भी या तो वे बहुत भोले है या वीसनगरके मुसलमान भाई उनसे सत्यको पूरी तरह छुपानेमे समर्थ हो गये। जबतक दोषी होनेके बावजूद हममे अपने-आपको निर्दोष सिद्ध करनेकी प्रवृत्ति बनी रहेगी तबतक हमारे मनकी मलिनता कदापि दूर नही होगी। दोषको छिपानेमे ही दोषको बनाये रखनेकी इच्छा निहित है। इस स्थितिमे सच्चा समझौता नही हो सकता। जो भी हिन्दू अथवा मुसलमान अपने दोषको छिपाते है, वे अपने धर्मको बट्टा लगाते है। धार्मिक मनुष्य तो अत्यन्त शुद्ध भावसे अपने दोषको स्वीकार करता है और इसीलिए, ईश्वर अथवा खुदा उससे प्रसन्न रहता है। हम अपने दोषोको बडा माने और दूसरेके दोषोको दरगुजर करे — यह हमारा स्वभाव होना चाहिए। यह कुलीनताकी निशानी है। किन्तु हमारा वर्तमान व्यवहार इससे विपरीत ही है। लोगोके रजकणके समान दोषको हम पहाड-जैसा देखते है और अपना पहाड-जैसा दोष हमे रजकणसे भी छोटा दिखता है — इतना छोटा कि उसे देखनेके लिए हमे सूक्ष्मदर्शक यन्त्रकी जरूरत पडती है।

इस समय मैं वीसनगरके हिन्दुओ और मुसलमानोसे इससे अधिक कुछ नही कहना चाहता, लेकिन इतना तो उनसे अवश्य कहूँगा कि मैं वीसनगरके हिन्दुओ और मुसलमानोके झगडेको पल-भरके लिए भी नही भूला हूँ। मैं स्वय फिलहाल बाहर जा सकूं ऐसी स्थितिमे नही हूँ, लेकिन मैं अन्य भाइयोको भेजनेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। मौलाना मुहम्मद अलीने मुझसे कहा है कि बडौदा राज्यके हिन्दू और मुसलमान दोनो उनको अच्छी तरह जानते है और उनमे इतनी हिम्मत है कि वे इस झगडेको तो अकेले जाकर ही निपटा सकते है। इसलिए यदि आवश्यकता जान पडी तो मैं उनसे जानेका अनुरोध करूँगा। मुझे तो यह उम्मीद है कि वीसनगरके हिन्दू और मुसलमान दोनो अपने झगडेको स्वय ही शुद्ध भावसे निपटा लेगे, जिससे किसीको मध्यस्थता करनेके लिए न जाना पडे और इस तरह वे लोग अन्य प्रान्तोमे जहाँ झगडे हो रहे है वहाँके लोगोके सामने आदर्श प्रस्तुत करेगे। समस्त हिन्दुस्तानमे ऐसी भव्य स्थिति हो जानी चाहिए कि दुर्बल हिन्दूकी रक्षा मुसलमान करे और दुर्बल मुसलमानकी रक्षा हिन्दू करे। ऐसी स्थिति किसी न किसी दिन आयेगी भी अवश्य।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८५. टिप्पणियाँ

जवान बूढ़ा

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब्बास साहब मेरे मीठे उलाहनेको[१] सुनकर चुप रहनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। उन्हें गुजराती आती है। यह बात तो सभी गुजराती जानते हैं। अब उन्होंने मुझे गुजरातीमें पत्र लिखना शुरू किया है। मैं इसमें से कुछ अंश नमूनेके तौरपर पाठकोंके सामने प्रस्तुत करता हूँ।[२]

मैंने उनकी इस गुजरातीको सुधारे बिना ही पाठकोंके सामने पेश किया है मैं स्वयं कहाँतक सही लिखता हूँ, इस बातसे पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। "शिखर-निवासी"[३] मुझे बताते हैं कि मुझसे अभीतक भूलें होती हैं। मुझे कुछ भूलोंको देख-कर शर्म आती है। लेकिन चूँकि मैं स्वयं भूलोंसे भरा हुआ हूँ इसलिए अब्बास साहबकी सदोष गुजराती मुझे उनकी निर्दोष अंग्रेजीसे कहीं अधिक प्रिय है। जिस तरह मैं अपनी भूलोंके बावजूद गुजराती लिखना छोड़नेवाला नहीं हूँ उसी तरह अब्बास साहबको भी भूलें सुधारनेकी इच्छा हो तो सुधारकर, नहीं तो वैसे ही लगातार गुजरातीमें ही लिखते रहकर अन्य गुजरातियोंके दिलोंमें स्वभाषाके प्रति अभिमान जाग्रत करना चाहिए। उनका 'पुष्तक'[४] शब्द तो मुझे अत्यन्त मधुर लगता है। किन्तु यदि वे भविष्यमें अन्य गुजराती पुस्तकें न पढ़ें तो भी हमारी इच्छा है कि वे कम-से-कम 'नवजीवन' तो अवश्य पढ़ते रहें। 'शिखर निवासी' ने मेरी जिन भूलोंकी ओर संकेत किया है और जिनके लिए मैं शर्मिन्दा हूँ, मैं भविष्यमें जल्दी ही 'नवजीवन' में उन भूलोंकी एक फेहरिस्त प्रकाशित करनेवाला हूँ। इससे अब्बास साहब अपनी भूलोंपर शर्मिन्दा नहीं होंगे तथा मेरी भूलोंको सुधारके 'नवजीवन' पढ़ेंगे तथा अपेक्षाकृत अच्छी गुजराती लिखेंगे। अब्बास साहबकी सेवामें निरत लोगोंको उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि वे उनसे 'नवजीवन' पढ़वाकर सुनें।

अब्बास साहबने एक और ऐसी बात लिखी है जो गुजरातियों और हिन्दुस्तानके सभी लोगोंको प्रोत्साहन देगी। वे लिखते हैं "भाई साहब, आपने तो मुझे एक 'बूढ़े' के रूपमें सारे हिन्दुस्तानमें मशहूर कर दिया, लेकिन मैं तो अपने-आपको जवान समझता हूँ।" यदि हम इस बूढ़ेको दर्पण भी दे दें तो भी वह अपने-आपको बूढ़ा न मानेगा, क्योंकि उसका दिल जवान है। उनके साथ स्थान-स्थानपर भटकनेवाले लोग मुझे बताते हैं कि वे स्वयं थक जाते हैं, लेकिन अब्बास साहब कभी नहीं थकते। सच है, जो जवानोंसे भी अधिक काम करता है वह बूढ़ा होते हुए भी

१. गुजरातीमें पत्र न लिखनेके सम्बन्धमें।

२. यहाँ नहीं दिये गये हैं।

३. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ५२७-३०।

४. पुस्तक।

जवान है। जिसका एक भी बाल सफेद नही हुआ, जिसके सब दाँत मौजूद है, ऐसा युवक अगर आलस्यवश देश-सेवा नही करता तो वह जवान होनेके बावजूद बूढा है। हमारी कामना है कि हिन्दुस्तानमें अब्बास साहब-जैसे जवान-बूढे बहुतसे हो।

'कोई उत्साह नहीं'

भाई मोहनलाल पण्डयाने इस शीर्षकके अन्तर्गत प्रायश्चित्तके[1] रूपमे निम्न पत्र लिखा है।[2]

इस पत्रको पढकर अण्णा साहबका खून तो सेर-भर बढ जायेगा और सब लोग जहाँतक उनसे बन पडेगा राष्ट्रके काम-काजमे राष्ट्रभाषाका प्रयोग करने लगेगे। मै हिन्दी पढनेके अभिलाषी व्यक्तिको एक आसान रास्ता बताता हूँ। अगर उससे बन पडे तो उसे व्याकरणकी एक सरल पुस्तक पढ़ लेनी चाहिए। जहाँतक मेरा खयाल है, अब तो 'हिन्दी गुजराती शिक्षक' नामक पुस्तक प्रकाशित हो गई है। अगर मेरा यह खयाल ठीक है तो वह उसे खरीद ले। वह 'हिन्दी नवजीवन' पढे। यदि किसीको 'हिन्दी नवजीवन' के सम्पादकके रूपमें मेरी दी हुई इस सलाहमे पक्षपातकी गध आती हो तो वह चाहे तो कोई अन्य पुस्तक पढे। तीसरे, वह तुलसीदासजीकी सटीक 'रामायण' का पाठ करे। यदि वह 'रामायण' को सौ बार भी पढेगा तो भी फायदा ही है। टीकाकी हिन्दी सरल होती है। यदि वह इसके अतिरिक्त हिन्दीकी कोई अन्य पुस्तक न भी पढे तो भी कोई हर्ज न होगा। यदि हिन्दी बोलनेमें भूले हो तो भी उनकी कतई चिन्ता न करनी चाहिए। भूले करते-करते भूलोंको सुधारनेका अभ्यास हो जायेगा। भूलोकी चिन्ता न करनेकी सलाह आलसी लोगोंके लिए नही, वरन् मुझ-जैसे भाषा सीखनेके इच्छुक अध्यवसायी सेवकोंके लिए है। हिन्दी बोलते समय संस्कृत शब्दोका उपयोग कम ही करना चाहिए तथा सरल हिन्दी और उर्दूके सम्मिश्रणसे बनी भाषाका उपयोग करना चाहिए, जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही समझ सके। मै ऐसी मिश्रित भाषाको हिन्दुस्तानीका नाम देता हूँ।

भाई मोहनलाल पण्डयाने एक प्रायश्चित्तमें दूसरे प्रायश्चित्तको भी मिला दिया है। मेरे लेखोंमें कभी-कभी निराशाके विचार दिखाई देते है, लेकिन निराशाके वे विचार आशा उपजानेके लिए होते हैं। किसी भी मजदूर अथवा कार्यकर्त्ताको ('भारत सेवक' शब्द तो बहुत बडा है, भाई मोहनलालके पत्रपर टीका करते समय 'मजदूर' और 'कार्यकर्त्ता' शब्द कलमसे खुद-ब-खुद निकलते हैं) अन्य लोगोंकी चिन्ता नही करनी चाहिए। हमें ससार-भरका काजी नही बनना है। हमें यह विचार भी नही करना चाहिए कि हमारे आसपासके लोग तो कुछ नही कर रहे है। उत्साहका अर्थ है स्वय हममें वाष्पका होना। हम जिस तरह यन्त्रमें भापको भरकर तथा उसे इच्छापूर्वक छोड अथवा रोककर रेलगाडीको मनचाही गति प्रदान कर सकते है उसी तरह यदि

१. अण्णा हरिहर शर्माको अंग्रेजीमें निमन्त्रण भेजनेका।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

हम उन शरीररूपी यन्त्रमे उत्पन्न-भापको सचित कर रखे तथा अवसर आनेपर प्रयुक्त करे तो हम अपने उचित भारको गतिके साथ वहन कर सकते है। यदि हम अपनी शक्तिके अनुसार तनिक भी आलस्य अथवा चोरी किये विना काम करते रहे तो जनकने जिस तरह कहा था कि 'मिथिला नगरी आगमें जल जाये अथवा बच जाये उसका जनकपर क्या प्रभाव पडता है', उसी तरह हम भी कह सकते है। यदि गुजरातका प्रत्येक मजदूर या कार्यकर्त्ता अपने-अपने क्षेत्रमे रहकर एकाग्र मनसे अपना-अपना काम करे तो फिर स्वराज्य आया ही समझना चाहिए। तव मामा, अण्णा, काका अथवा इन-जैसे अन्य बूढे या जवान सम्वन्धी उनपर आक्षेप नही कर सकते तथा जो बहन अथवा भाई अपने बचे हुए समयमें चरखा ही चलायेंगे, एकसार—मोटा-पतला नही—और वलदार सूत तैयार करेंगे उन्हे लक्ष्मीदास[1] भी कुछ नही कहेंगे, इतना ही नही, अपितु नमस्कार करेंगे। सूत तो हिन्दुस्तानकी जीवन-डोरी है। "हरिने मुझे कच्चे धागेसे वांध लिया है। वे जिधर खीचते है, मैं उधर ही खिंच जाती हूँ।[2] मीरावाई इन धागेको अच्छी तरह जानती थी क्योंकि उसके मनमे उत्साह था। यदि मीरावाई कुशल कातनेवाली न होती तो हरिजीके प्रेमपाशकी धागेसे सुन्दर उपमा कैसे देती? भारत-माता भी हमे वैसे ही धागेसे वाँधकर गुलामीके वन्धनोसे मुक्त करना चाहती है।

मिलकी खादी

गुरुवारको बहुतने भाई और बच्चे मुझसे मिलने आये थे। मैंने उनके शरीरोपर मिलके वस्त्र देखे। मैंने उनसे अपने स्वभावानुसार विनोद किया तथा पूछा कि वे खादी क्यो नही पहनते? उन्होंने मुझे इसका यह उत्तर दिया, "हम तो खादी ही पहने हुए हैं।" मैं शर्मिन्दा हो गया। मैंने उसे जरा और गौरसे देखा। मेरी शका और भी दृढ़ हो गई। वादमे मैंने हाथसे कपडेकी जाँच की और कहा "यह खादी नही है।" मुझे इसका उत्तर मिला, "लेकिन भाई साहव! यह तो मिलकी खादी है।" मैं सावधान हुआ। खादी प्रचारमे जो मुश्किले है, मैं उन्हे अच्छी तरह समझ गया तथा मैंने इन भाइयोंसे कहा, खादीका अर्थ है हाथ-कते सूतका, हाथसे वुना कपडा। तात्पर्य यह है कि "मिलकी खादी" नामकी तो कोई चीज हो ही नही सकती। इन भाइयोंने अपने अज्ञानको स्वीकार किया और प्रतिज्ञा की कि वे आगेसे हाथ-कते सूतका हाथ-वुना कपडा अर्थात् खद्दर ही पहनेंगे।

उसी दिन कुछ पजावी भाई मिलने आये। उनके पास मैंने "जीन" का थान देखा। मैंने पूछा, यह क्या है? उन्होने थान मेरे आगे रख दिया। मैंने उसपर "स्वदेशी छाप" आसमानी रगमें छाप देखी। ज्यादा पूछताछ करनेपर मुझे मालूम हुआ कि खादीके नामसे ऐसा कपडा वहुत वेचा जा रहा है। इस तरहकी धोखाधडीका मुकावला कैसे किया जाये, यह एक वडा प्रश्न है। इसपर इस समय विचार नही किया जा

१. लक्ष्मीदास आसर, गांधीजीके एक अनुयायी।

२ "कांचे तांतणे मने हरीजीए बांधी,
जेम ताणे तेम तेमनी रे"

सकता। इस समय तो सिर्फ यही सुझाव दिया जा सकता है कि ऐसी पत्रिकाएँ प्रकाशित की जानी चाहिए और जगह-जगह वेची जानी चाहिए, जिनमे खादी क्या है, यह वताया गया हो। जो लोग खादी न पहने हो उन्हे स्वयसेवक अत्यन्त विनम्रतापूर्वक यह पत्रिका दे। लकडीकी वडी-वडी पट्टिकाओपर खादीके परिचय-वाक्य लिख लेने चाहिए और भाडेके नौकरोको नही वरन् वडे-वडे कार्यकर्त्ताओको उन पट्टिकाओको अपने गलेमे डालकर निकलना चाहिए। मै जव वाहर निकलनेकी स्थितिमे होऊँगा तव मै इन कार्यकर्त्ताओमे अपना नाम दर्ज करवा दूँगा। मै जवतक यहाँ हूँ तवतक अहमदावादके वाजारोमे इन पट्टिकाओको लेकर रोज एक घटे घूमनेके लिए तैयार हूँ। मै इस कामको दो महीने वाद कर सकूँगा। इस वीच यह काम तो तत्काल शुरू किया जा सकता है। मै यहाँ ऐसी पत्रिकाका मसविदा दे रहा हूँ। कोई अधिक अनुभवी प्रचारक, करना चाहे तो इसमे और भी सुधार कर सकता है।

भाइयो और वहनो, सावधान!

> खादीका अर्थ है हाथसे कते सूतका हाथसे वुना कपडा। कुछ व्यापारी मिलोंके सूतके कपडेको मिलकी खादी अथवा स्वदेशी खादी कहकर वेचते हैं। इससे हमारा मतलव पूरा नही होता। जो लोग सचमुच यह चाहते है कि गरीवोका पेट भरे उन्हे असली खादी ही पहननी चाहिए।

यह पोस्टर अथवा इस तरहके अन्य पोस्टर भी दीवारोपर चिपकाये जा सकते है। इस सम्वन्धमे यहाँकी नगरपालिका क्या कर सकती है, यह तो वल्लभभाई ही जाने।

केनियामें सत्याग्रह

मोम्वासासे एक सवाददाता लिखते है[1]

पत्रमें दी गई यह अन्तिम सूचना सच नही हो सकती। यदि सरकार किसीको जेलमे रखती है तो उसका उसको भोजन देना लाजिमी है। किन्तु हवालातियोंको वाहरसे भोजन मगानेकी अनुमति होती है। इस नियमके अन्तर्गत केनियाके सत्याग्रही भी अपने घरोंसे भोजन मँगाते है, यही इस सूचनाका अर्थ हो सकता है।

जव हम इन लोगोंके जेलमें जानेकी खवर पढते है तव हमें खयाल आता है कि हम कितने आगे वढ गये है। हमारे भाई जेल गये है, हम दस वर्ष पहले ऐसा समाचार पढकर उत्तेजित हो जाते थे। किन्तु आज हम उस तरहकी कैदकी खवर-का खयाल भी नही करते क्योंकि अव हम यहाँ जेलोंमे होनेवाले कष्टोंके अभ्यस्त हो गये है। हम समझ गये है कि स्वेच्छासे कष्ट सहे विना सुख नही मिलता। मै मानता हूँ कि केनियाके सत्याग्रहियोंके लिए कैद जेलोंके दुखोंको सहनेकी तालीम है। इतने भरसे उनपर होनेवाले अत्याचारोंके वन्द होनेकी सम्भावना कम ही है। उन्हे अभी और भी ज्यादा दुख झेलने होंगे अथवा जवतक हिन्दुस्तान स्वराज्य प्राप्त

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

नहीं कर लेगा तबतक बाट जोहनी पड़ेगी। उनमे जबतक सत्याग्रह करनेका उत्साह है तबतक निराश होनेकी कोई जरूरत नही है। यदि उम्मीद पूरी होनेमे देर लगती है तो उन्हे समझना चाहिए कि उनका सत्याग्रह कमजोर है। उनमे शक्ति हो तो 'व्यापार" के अलावा ऐसे बहुतसे कानून है जिन्हे चाहे तो वे विनयपूर्वक भग कर सकते है। जिनसे भूमिपर स्वामित्वसे सम्बन्धित, आत्मसम्मानकी रक्षासे सम्बन्धित तथा नागरिकतासे सम्बन्धित अधिकार छीन लिये जाये क्या उनके लिए मनुष्यकृत कानून बन्धनकारी हो सकते है? जहा राज्यतन्त्रका उद्देश्य समाज अथवा उसके किसी अगको दबाना हो वहा उस तन्त्रके मानवकृत कानून क्या उस दबाये हुए समाज अथवा उस अगके लिए बन्धनकारी हो सकते है? जहाँ कानूनका उद्देश्य उस समाजके विकास-की गतिको अवरुद्ध करना हो वहाँ उस समाजका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उस मानवकृत कानूनका उल्लघन करे। इसलिए कोई भी बाह्यशक्ति केनियावासियोंको नही रोक सकती। वे जब चाहे तब बन्धन-मुक्त हो सकते है। लेकिन मुझे विश्वास है कि इस लेखको पढकर कोई भी केनियावासी बिना सोचे-समझे कोई कदम नही उठायेगा। सविनय अवज्ञाका अधिकार हरएकको नही होता। जो कानूनका पालन स्वेच्छासे करना जानते है केवल वे लोग ही स्वेच्छासे, और ऐसा प्रसग उपस्थित होनेपर सविनय अवज्ञा भी कर सकते है। यह शस्त्र अनजानके हाथोंमे पड़कर उसीके लिए घातक हो जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८६. काठियावाड़ियोंके प्रति अन्याय

एक मित्रने मुझे मीठा उलाहना दिया है और कहा है कि मै आजकल काठिया-वाड़ियोंके प्रति अन्याय कर रहा हूँ। मै उनका परिचय वातूनी लोगोंके रूपमे दे रहा हूँ।[1] उन मित्रके विचारसे मेरे पत्रसे ऐसी ध्वनि निकलती है कि उनमे काम करनेवाला तो कोई भी नही है। उसके अलावा इनका कहना यह भी है कि मेरा अनुकरण करके अन्य लोग भी काठियावाडियोंके प्रति ऐसी ही राय बना लेते है और ऐसे ही विशेषणोंका प्रयोग करके उनकी भर्त्सना करते है। ये भाई आगे कहते है कि अन्तमे इसका परिणाम यह होगा कि हम काठियावाडी भी अपने सम्बन्धमे यह मानने लगेंगे कि हम ऐसे ही है और इस समय हममे जो लोग थोडा-बहुत काम करते है वे भी निठल्ले बन जायेंगे।

मेरी यह टीका सभी काठियावाडियोंपर लागू नही है। मैने तो यह मात्र राज-नीतिज्ञोंके सम्बन्धमे कहा था और वे भी सबके सब वाचाल है, मेरे कहनेका यह अभिप्राय भी नही है।

१. देखिए "काठियावाड़ क्या करे?", १८-५-१९२४।

मै स्वय राजनीतिज्ञोंके वर्गमें पैदा हुआ हूँ, लेकिन मै अपनेको वाचाल नही मानता। इसलिए सबसे पहले तो मै ही अपनी आलोचनाका अपवाद हूँ। फिर मेरे साथियोमें कितने ही ऐसे काठियावाडी है जो चुपचाप काम करते रहना ही जानते है। मेरा यह विशेषण उनपर भी लागू नही होता, इसलिए उसका व्यवहार तो केवल उन्ही लोगोके सम्बन्धमे किया गया है जिनपर वह लागू हो सकता है।

यह बात सच है कि यदि बातूनी लोग केवल अपवाद-रूप ही होते तो मेरी टीका अन्यायपूर्ण मानी जाती। मेरी इतनी शिकायत जरूर है कि प्राय राजनीतिज्ञ वाचाल और झगडालू प्रवृत्तिके है। चुपचाप रहकर काम करनेवाले लोग अपवाद रूप ही है। मै राजनीतिज्ञोंके परिवारमे पला-पुसा और बडा हुआ हूँ, मुझे इसका विपुल अनुभव है। मै अपने पिताजीकी तो पूजा किया करता था। माता-पिताके प्रति मेरी भक्ति श्रवण-जैसी थी। यदि इसमे अतिशयोक्ति हो तो भी इस बातमे कोई सन्देह नही कि मेरा आदर्श श्रवण था। लेकिन मुझमे विवेकका लोप कभी नही हुआ। इसीसे मै तब भी जानता था एव अब तो और भी ज्यादा जानता हूँ कि मेरे पिताजीका अधिकाश समय केवल गुप्त योजनाओमे ही जाता था। सवेरेसे ही बाते होने लगती और वे कचहरी जानेतक चलती। सभी लोग कानाफूसी करते रहते थे। बातोका सार केवल इतना ही होता था कि बनिये किस तरह नीचे पदोसे ऊँचे पदोपर पहुँचें तथा नागरो और ब्राह्मणोकी तुलनामे उनका प्रभाव किस तरह बढे। मेरे पिताका उद्देश्य यह था कि बनियोमे भी किसी तरह हमारा परिवार सबसे आगे हो जाये। मैंने आपके सामने यह एक पहलू रखा है। यह सब कहनेका अभिप्राय यह नही है कि इसमें परहितकी भावना तनिक भी नही थी, लेकिन उसका स्थान गौण था। वे मानते थे कि परहित उसी हदतक करना चाहिए जिस हदतक वह स्वार्थकी पूर्ति करते हुए किया जा सके। मेरे पिता राजनीतिज्ञोमें निकृष्टतम नही थे, बल्कि वे उत्कृष्टतम राजनीतिज्ञ माने जाते थे। ईमानदारीके लिए वे विख्यात थे। उस समय भी घूस देने और लेनेका चलन था, लेकिन वे उससे सर्वथा मुक्त थे। उनका हृदय विशाल था। उनकी उदारताकी कोई सीमा न थी। ऐसा अच्छा मनुष्य भी राजनीतिके विषाक्त वातावरणके प्रभावसे मुक्त नही रह सका था।

मेरा यह ज्ञान अनेक बार मुझे यह कहनेके लिए प्रेरित करता है कि मै नागरो और अन्य लोगोंके साथ शुद्धतम मैत्रीभाव रखकर अपने परिवारके उस पक्षपातपूर्ण रवैयेका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। मै उस वर्गमे पलने और बडा होनेके बावजूद वाचालतासे निकलकर कर्मनिष्ठतामे प्रवेश करके राजनीतिज्ञोंके उस पापका परिमार्जन कर रहा हूँ।

राजनीतिज्ञोंके वर्गके सम्बन्धमें जो बात चालीस-पचास वर्ष पहले सच थी वही आज भी सच है। राजनीतिज्ञोंका धन्धा ही तिकडम करते रहना है। इसके प्रति अरुचि ही मेरे देश-त्यागका एक कारण था। राजनीतिज्ञोंके वातावरणमें रहकर और मौन धारण करके केवल काम करते रहनेका अर्थ है, लोगोंकी पंक्तिसे आगे न बढना। प्रत्येक व्यक्तिका उद्देश्य पदोन्नति रहता था तथापि यह पदोन्नति अच्छे कार्योंका परिणाम नही

होती थी, बल्कि तिकडमका परिणाम होती थी। फलत रजवाडोकी नौकरीमे दाखिल हुए नही कि राजनीतिक दांव-पेचोकी शिक्षा शुरू हो गई।

अब हमारे बीच नया वातावरण तैयार हो रहा है। हम वाचालता और गुप्त योजनाओको छोडना चाहते है। इसलिए कुछ कर्मनिष्ठ काठियावाडी इस कृत्रिम वातावरणको दूर करनेके कार्यमे जुटते जा रहे है, तथापि सामान्य राजनीतिज्ञ तो अब भी पुराने वातावरणके गुलाम है।

इस सम्बन्धमे मेरे लिखनेका हेतु यही था कि काठियावाडके राजनीतिज्ञ इस स्थितिको समझकर उसमे तुरन्त सुधार करे और मेरा यह हेतु आज भी है।

काठियावाडियोके (अर्थात्) जिन राजनीतिज्ञोपर यह लागू होती है उनकी आलोचना सत्याग्रही शालिताका एक भाग है। इसलिए ऐसी टीका तो मुझ-जैसे लोग ही कर सकते है। जिनके मनमे काठियावाडियोके प्रति द्वेषभाव हो वे ऐसा कर ही नही सकते। लेकिन यदि कोई काठियावाडियोसे द्वेष रखनेवाला व्यक्ति मेरा अनुकरण करता हुआ यह सब कहे तो भी क्या हुआ? इससे जो तिकडमबाज नही है वे शान्त रहेगे और हँसेगे किन्तु जो तिकडमबाज है, बातूनी है, उन्हे भी सच्ची बात सुनकर रोष क्यो आना चाहिए? हमारा शत्रु हमारे जितने दोष देखता है उतने मित्र नही देख पाता। मित्रके दोषोको देखते हुए भी उसपर पूर्ण प्रेमभाव रखना सत्याग्रहीका विशिष्ट लक्ष्य है और यह दुष्प्राप्य है। इसलिए सामान्य रूपसे यह कहा जा सकता है कि शत्रु हमारे दोषोको जितनी अच्छी तरह बता सकता है उतनी अच्छी तरहसे मित्र नही बता सकता। इसलिए काठियावाडियोको मेरी सलाह है कि वे शत्रुकी टीका विनयपूर्वक और सम्मानपूर्वक सुने, उसपर विचार करे तथा उसमें जितना सत्य हो उसे ग्रहण करे।

मेरी आलोचनाका अनुकरण अन्य लोग करेगे, मै इस भयसे आलोचना करना बन्द कर दूं, मुझसे ऐसी अपेक्षा तो कोई नही करेगा। इसलिए काठियावाडियोकी आलोचनाका निमित्त लेकर गुजराती मात्रसे मेरा निवेदन है कि वे वाचालता छोड-कर सयममे निरत हो जायें। काठियावाडी यदि मुझे खास अपना आदमी मानते है तो वे मेरी बात सुनें और उसमे से सार ग्रहण करे। मेरे मनमे इस बातको लेकर अवश्य ही कुछ अभिमान है कि वे औरोकी नही तो मेरी बात अवश्य सुनेगे। लेकिन मै काठियावाड और गुजरातमे कोई भेद नही मानता। दोनोके निवासी गुजराती ही है। काठियावाड छोटा गुजरात है। गुजरातमें काठियावाड और कच्छ आदि मिला दें तो महा गुजरात बन जाता है। महा गुजरात हिन्दुस्तानका एक छोटा अग है। इस अगकी भाषा मै ज्यादा जानता हूँ। यह अग मुझे ज्यादा अच्छी तरहसे जानता है। इसलिए मुझे इसको कडवी दवा पिलानेका अधिक अधिकार है। महा गुजरात यदि कडवी दवा न पियेगा तो मै इसे और किसे पिलाऊँगा? इसके अलावा मै अपनी दवाकी परीक्षा करने किसके पास जाऊँगा?

अन्तमें मेरी इच्छा है कि काठियावाडी राजनीतिज्ञ वाचालतापर पूर्ण सयम रखते हुए चालबाजी छोडकर तथा चुप रहकर काम करते हुए मेरी आलोचनाको

झूठा सिद्ध करे। मुझे आलोचना करनेमें सुख नहीं मिलता। मैं आलोचनाके द्वारा काठियावाड़से पूरा काम लेनेकी उम्मीद करता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८७. मुझे क्षमा करें

मैं गुरुवारको[1] सुबह अहमदाबाद स्टेशनपर उतरूँगा, इस आशासे अहमदाबादके बहुतसे भाई और बहन स्टेशनपर एकत्रित हुए, लेकिन मैं उन्हें नहीं मिला। इससे उन्हें निराशा हुई। मैं इसके लिए उनसे क्षमा माँगता हूँ। वल्लभभाईने देखा कि मेरी प्रार्थना और उनके प्रयत्नोंके बावजूद लोग रुकेंगे नहीं, इसलिए उन्होंने गाड़ी रुकवाकर मुझे बीचमें ही[2] उतार लिया और शान्तिपूर्वक आश्रम पहुँचा दिया।

निराश हुए भाइयों और बहनोंने मुझे क्षमा कर दिया है, यह बात तो मैं तभी मानूंगा जब वे सब चरखा चलाने लगेंगे। वस्तुतः देखा जाये तो क्षमा उन्हींको माँगनी चाहिए। वे स्टेशनपर आये ही क्यों? मेरी प्रार्थनापर[3] ध्यान न देकर वे स्टेशन आये, इसमें दोष उनका ही है। इससे हाथ कते सूतके उत्पादनमें जितनी कमी हुई है, हिन्दुस्तानका उतना ही नुकसान हुआ है। इसलिए यदि ये निराश भाई और बहन कौतूहलवश नहीं वरन् प्रेमवश स्टेशन आये हों तो उनसे मेरी विनती है कि वे सूतकी इस कमीको पूरा करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८८. विद्यापीठ और आनन्दशंकरभाई

गुजरात विद्यापीठका एक विद्यार्थी और भक्त लिखता है।[4]

इस पत्रकी विषय-वस्तु, उसकी भाषा, इसके विचार और उससे झलकनेवाली देशभक्ति तथा विद्यापीठके प्रति अगाध प्रेमभाव मुझे इतने अच्छे लगे हैं कि मैंने पत्र लम्बा होनेके बावजूद उसे पाठकोंके सामने प्रस्तुत करना उचित समझा है। लेकिन आनन्दशंकरभाईसे मेरा परिचय इतना घनिष्ठ है कि उनके भाषणके जो अंश लेखकने उद्धृत किये हैं वे मुझे उनके योग्य नहीं लगे। मैंने सोचा कि पहले यह पत्र प्रकाशित

१. २९ मईको।

२. कांकरिया रेल्वे फाटकपर।

३. देखिए "मेरी प्रार्थना", २५-५-१९२४, जिसमें गांधीजीने गुजरातके भाइयों और बहनोंसे अनुरोध किया था कि वे उन्हें देखने स्टेशनपर न आयें, बल्कि अपना समय सूत कातनेमें लगायें।

४. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

मैं और तब आनन्दशंकरभाईका उत्तर मँगाऊँ। पर इससे अच्छा तो यह होगा कि पहले उन्हें पत्र लिखकर उनसे उत्तर मँगा लूँ और तब पत्र और उत्तर साथ-साथ प्रकाशित करूँ। ऐसा करनेसे ही पता चल सकता है कि मैंने शिष्य-बन्धु, विद्यार्थी तथा आनन्दशंकरभाईके साथ पूरा न्याय किया। इसके अतिरिक्त आनन्दशंकरभाईके प्रति मेरे मित्रभाव अथवा आदरभावको भी मैंने इसी मार्गसे सन्देहका स्रोत खोल दिया। परिणामत पाठक भी देख सकेंगे कि मैंने आनन्दशंकरभाईके उत्तर और उनके पत्रको साथ-साथ प्रकाशित करके ठीक ही किया है। हमारे समाचारपत्र तो — विशेषकर जब भाषण गुजरातीमें होते हैं — भाषणोंका पूरा विवरण दे ही नहीं पाते, यद्यपि ऐसा वे जान बूझकर नहीं करते, और यदि दे भी पाते हैं तो सम्पादक भाषणोंको पूरा छापनेके लिए जरूरी स्थान नहीं दे पाता। इससे बहुत बार उनके विवरण अधूरे रह जाते हैं तथा कई बार तो उनमें भाषणकर्ताके कथनका अनर्थ ही हो जाता है। ऐसी स्थितिमें किस विवरणको ठीक माने और किसको ठीक न माने यह निर्णय करना कठिन हो जाता है। इसी कारण सर फीरोजशाह मेहता अपने सब भाषणोंको लिखते थे। गोखले अपने भाषणके विवरणोंको जहाँतक सम्भव होता था स्वयं ही सुधारनेका आग्रह रखते थे। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें सभी भाषणोंको, जो समाचारपत्रोंमें अक्षरशः प्रकाशित हुए थे, सुधारनेका अधिकार इस सेवकके सिवा किसीको भी प्राप्त न था। उन्होंने [illegible] करके उनका सुधारनेका सारा भार अपने ऊपर ही रख छोड़ा था। मेरे भाषणोंकी दुर्दशा होती है, इसका मुझे कड़वा अनुभव है। इसमें संवाददाताओंका दोष नहीं है। स्थिति ही ऐसी है कि इक्के-दुक्के संवाददाता ही शुद्ध विवरण दे पाते हैं।

इस अनुभवको ध्यानमें रखकर मैंने आनन्दशंकरभाईको उपर्युक्त पत्र भेजा था और उनसे उत्तर लिख भेजनेकी प्रार्थना की थी। उनका उत्तर निम्न है।[1]

इस उत्तरके बाद मेरे पास कदाचित् ही कहनेको कोई बात रह जाती है। जिस दूसरी संस्थाकी स्थापनाकी अभिलाषा आनन्दशंकरभाईकी है उसीकी स्थापनाकी अभिलाषा मेरी भी है। किन्तु उसके लिए उपयुक्त समय और अनुकूल अवसर कदाचित् अभी नहीं आया है। मेरे विचारसे विद्यार्थी-वर्गकी भावना उत्तम प्रकारकी है, किन्तु मेरे शिक्षा-सम्बन्धी विचार तो उनके विचारोंसे बहुत आगे हैं। मेरी अल्पमतिमें तो शिक्षाका प्रयोग धनोपार्जनके लिए कभी नहीं किया जाना चाहिए। धनोपार्जनका साधन मात्र व्यापार ही होना चाहिए। आजीविकाका साधन मजूरी अर्थात् बुनाई, बढ़ईगिरी, दर्जीगिरी या ऐसा ही कोई आवश्यक धन्धा होना चाहिए। वैद्य, वकील और शिक्षक तथा ऐसे ही अन्य लोग मुख्य रूपसे पैसा कमानेके इरादेसे अपना-अपना धन्धा सीखते हैं और इसी रूपमें उनको चलाते हैं। इसे मैं अपने राष्ट्रकी नैतिक अवनतिका एक बहुत बड़ा कारण मानता हूँ। यह तो आदर्शकी बात हुई। इस तक हम नहीं पहुँच सकते तथापि इसके समीप जितने अधिक जा सकेंगे उतना ही अच्छा है इसमें मुझे कोई शंका नहीं है। विद्यापीठने यह आदर्श नहीं रखा है,

१ पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

लेकिन उसने राष्ट्रीय भावनाको प्रधानता दी है। जहाँ यह आदर्श है कि शिक्षाका उपयोग देश-सेवामें किया जाये और धनोपार्जनको गौण स्थान दिया जाये वहाँ "व्यक्तिगत उत्कर्ष" के लिए अवकाश ही नहीं है। "व्यक्तिगत उत्कर्ष" की भावनाका त्याग करनेवाले मनुष्यको ही विद्यापीठका आश्रय लेना चाहिए। गुजरातमें अथवा समस्त हिन्दुस्तानमें इस भावनाने अभी गहरी जड नहीं पकडी है, इसलिए यदि विद्यापीठके प्रारम्भिक कालमें ऐसी भावनासे युक्त विद्यार्थी कम हो तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य और प्रसन्नताकी बात तो यह है कि विद्यापीठकी छत्रछायामें हजारों विद्यार्थी अक्षरज्ञान प्राप्त कर रहे हैं तथा इसके साथ-साथ देश-सेवाकी भावनाको विकसित कर रहे हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-६-१९२४

८९. गुरुकुल कांगड़ीमें चरखा

इस गुरुकुलके विद्यार्थियोंको मैंने उनके वार्षिकोत्सवके समय एक खत भेजा था। उसके उत्तरमें एक खत कई दिन हुए मिला है। गुरुकुलके बालकोंका प्रेम चरखेपर कैसा है, यह जाहिर करनेके लिए मैं खतका थोडा हिस्सा पाठकोंके सामने पेश करता हूँ

> यद्यपि आपके सन्देशके लिए यह उत्तर बहुत ही अपूर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझते हैं — हम अपने काते हुए इस थोडे-से सूतकी श्रद्धापूर्ण भेंट आपके पूज्य चरणोंमें रखना चाहते हैं। यह सूत इसी राष्ट्रीय सप्ताहमें (७ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक) सात दिनतक चौबीस घंटे अखण्ड सतचक्र चलाकर हमने इसी प्रयोजनके लिए कातकर तैयार किया है कि हमारी तुच्छ भेंट स्वीकार हो। इसमें (चतुर्थ श्रेणीके) हममें से छोटे बालकोंका काता हुआ भी कुछ सूत अलग रखा है। यद्यपि यह अखण्ड चरखा चक्रकर नहीं काता गया है तथापि हम समझते हैं कि आपसे प्रेम रखनेवाले ये छोटे बालक अवश्य ही आपके प्रेमपात्र हैं। अत इनका प्रेमपूर्वक काता हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताहका सूत भी आपके चरणार्पित होनेके योग्य ही है।

हिन्दी नवजीवन, १-६-१९२४

९०. परिषदोंके नियोजकोंको इशारा

लोग कहते हैं "बडी-बडी सभाओं, जल्सों और व्याख्यानोंके दिन चले गये। अब चुपचाप काम करनेके दिन आ गये है।" लेकिन परिषदो अथवा जलसोंके संयोजक हमेशा चाहते हैं कि खूब धूमधाम हो। इस मोहमें वे कई बार सत्यको भूल जाते हैं और भोली-भाली जनताको धोखा देकर परिषद्की तैयारी करते हैं। एक पत्रिकामें लिखा है

> बहुत हर्षकी बात है कि अधिवेशन बहुत बडी धूमधामसे होना निश्चित हुआ है। महात्मा गांधी, अली-बन्धु, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर किचलू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, देवदास गांधी, शंकरलाल बैंकर, राजगोपालाचारी, सेठ जमनालाल बजाज, मौलाना अ० जफरखां, श्रीमती गांधी, बीअम्मा साहिबा, तपस्वी सुन्दरलाल, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती सुभद्राकुमारी आदि-आदि प्रमुख नेताओंके पधारनेकी सम्भावना है।

सम्भव है कि स्वागतकारिणी सभाने ऐसे नेताओंको निमन्त्रणपत्र भेजा हो, लेकिन जबतक कमसे-कम उनकी तरफसे इस आशयका जवाब न मिले कि 'आनेकी कोशिश करेंगा' तबतक ऐसा लिखना कि उनके पधारनेकी सम्भावना है, अयथार्थ है। लोगोंके मनमें रस पैदा करनेकी इच्छा कितनी ही अच्छी हो तो भी यह कार्य अनुचित ही है। लोग एक-दो बार धोखेमें आ सकते हैं, लेकिन थोडे ही समयमें कार्यकर्त्तागण अपनी प्रतिष्ठा और लोगोंका विश्वास खो बैठते हैं। अब्राहम लिंकनने ठीक ही कहा है "हम थोडे लोगोंको हमेशा धोखा दे सकते हैं और सब लोगोंको कुछ समय धोखा दे सकते हैं, लेकिन सब लोगोंको हमेशा धोखा देना अशक्य है।"

हिन्दी नवजीवन, १-६-१९२४

९१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

साबरमती

ज्येष्ठ सुदी १ [३ जून, १९२४][1]

भाई श्री ५ घनश्यामदासजी,

आपका खत मीला है। मैंने अत्यज मंडलके नेताको लीख भेजा है कि आपने रू० ३०,००० देनेकी प्रतिज्ञा नहिं की है।

१ यहाँ प्रेषीकी जातिमें दो फिरकोंके उल्लेखसे पता चलता है कि यह पत्र १३-५-१९२४ और २०-५-१९२४को गांधीजी द्वारा प्रेषीको लिखे गये पत्रोंके साथ ही लिखा गया होगा। १९२४ में ज्येष्ठ सुदी १, ३ जूनको पडी थी।

ज्ञातिमे दो फिरके हो गये हैं यह बात यदि बुरी है तो भी आपका फिरका दूसरेसे विनययुक्त रहनेसे झहर फैलता रुक जावेगा। यह तो है कि शाति और झगडा दोनो साथ-साथ नहि चल सकते हैं। एकको ही ग्रहण करके उसीका सेवन करनेसे उसका फल मीलता है। झगडेका फल हम यूरोपमे देख रहे हैं। सच्ची महोबत है हि नहि। शातिका प्रयोग समाजोमे अबतक ठीक ढगसे हुआ नहि है।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०४७) से।
सौजन्य घनश्यामदास बिडला

९२. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

ज्येष्ठ सुदी १ [३ जून, १९२४][1]

चि० परशुराम[2],

तुम्हारा पोस्टकार्ड मीला। 'रामायण'का अभ्यास खूब ध्यानसे करना। एक बार पढनेसे काफी नहि होगा। मेरा विश्वास है कि 'रामायण' तुमको शातिप्रद होगा। सब बीमार खेर तो रहे?

बापूके आशीर्वाद

परशुराम मेहरोत्रा
यू० पी० खद्दर बोर्ड
कानपुर

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४९६०) से।
सौजन्य परशुराम मेहरोत्रा

१. डाकखानेकी मुहरसे।
२. आश्रमवासी और गांधीजीके सचिव।

९३. भेंट : 'स्वातन्त्र्य' के प्रतिनिधिसे

[साबरमती
३ जून, १९२४]

प्रश्न : क्या आपने यरवदा जेलसे अपनी रिहाईके बाद अपने लेखोंके स्वरमें कोई परिवर्तन महसूस किया है?

उत्तर : जी, हाँ, परिवर्तन आया है।

आपने अहिंसाको बिलकुल धर्म-जैसा मानकर उसपर इतना अधिक आग्रह किया है कि कांग्रेसको अपने स्वयंसेवकोंके सम्बन्धमें आत्मरक्षाका प्रस्ताव पास करना पड़ा।

इस तरहका प्रस्ताव पास करना कांग्रेसके लिए उचित नहीं था। अहिंसाकी मैंने जो परिभाषा दी थी, उसमें यह अर्थ शामिल था।

महात्माजी, क्या आप नहीं मानते कि कमसे-कम कांग्रेस नेताओंको आपकी परिभाषा अस्पष्ट मालूम पड़ी?

जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। हर धर्मके अनुयायीको स्वयं अपने धार्मिक ग्रन्थोंमें अहिंसाके समर्थनमें प्रमाण खोजने चाहिए। मैं अहिंसाका प्रचार इसी दृष्टिसे कर रहा हूँ कि लोगोंको अपने-अपने धर्म-ग्रन्थोंके अनुसार अहिंसाका वास्तविक अर्थ खोजनेकी प्रेरणा मिले।

प्रतिनिधिने इसके बाद महात्माजीसे चोर, डाकू या विदेशी आक्रमणकी पृष्ठ-भूमिमें अहिंसाकी मर्यादाएँ बतलानेके लिए कहा। गांधीजीने विख्यात सन्त, एकनाथ महाराजका किस्सा सुनाते हुए कहा कि एक बार उनके घरपर चोर घुस आये। महाराजने उस परिस्थितिमें ईश्वरसे प्रार्थना की कि ऐसा न हो कि चोरोंको उनके घरसे खाली हाथ लौटना पड़े।

महात्माओंके लिए तो यह सम्भव है, पर साधारण जनोंके लिए यह सम्भव नहीं है। आप ऐसी परिस्थितिमें साधारण जनोंको क्या करनेकी सलाह देते हैं।

हमें चोरों इत्यादिसे अपनी रक्षा करनी चाहिए। आपने जो अन्तर बतलाया है वह बिलकुल ठीक है।

क्या आपके विचारसे अंग्रेज भी इसी श्रेणीमें नहीं आते?

जी नहीं, आजकलके अंग्रेज इस श्रेणीमें नहीं आते। ईस्ट इंडिया कम्पनीको उस श्रेणीमें रखा जा सकता था। पर क्या डाकुओंकी सन्तानको भी आप डाकू ही कहेंगे?

अगर डाकुओंकी सन्तान अपने पूर्वजोंका ही पेशा करे तो क्या उनको डाकू ही नहीं कहा जायेगा?

नहीं, जी, नहीं। आजकलके अंग्रेज ऐसे नहीं हैं, इसलिए हमें अहिंसापूर्ण आचरण करना चाहिए। हमें अंग्रेजोंको सत्तासे च्युत करनेके लिए अपनी इच्छाशक्तिकी जरूरत है, हथियारकी नहीं और फिर जबतक कांग्रेस अहिंसाको नीति मानकर चलती है, तबतक तो हमारा आचरण अहिंसापूर्ण ही रहना चाहिए। मैंने 'मेरा जीवन-कार्य'[1] शीर्षक लेखमें अपने इस अर्थका खुलासा किया है। उसमें मैंने फाँसी पाये एक बन्दी और जेलरका दृष्टान्त दिया है। मुझे कांग्रेसकी आगामी बैठकमें इस पूरे प्रश्नका अन्तिम रूपसे निबटारा कराना है।

महात्माजी, क्या आपने नागपुरके हिन्दू-मुस्लिम विवादोंके सम्बन्धमें सरकारी जांच-समितिके सामने मुसलमानों द्वारा प्रस्तुत गवाहियाँ पढ़ ली हैं? मुसलमान गवाहोंने कहा कि लोकमान्य तिलक हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ऐसे झगड़े करानेके लिए जिम्मेदार थे और हर मुसलमानको यह हक है कि वह कभी भी अपने घरको मसजिदमें बदल ले।[2]

नहीं, मैंने वे गवाहियाँ पढ़ी नहीं हैं। मैं उन्हें पढ़ूँगा अवश्य। लोकमान्यको ऐसे साम्प्रदायिक झगड़ोंके लिए जिम्मेदार ठहराना घोर कृतघ्नता है। लोकमान्यने स्वयं मुझसे कहा था कि यदि मुसलमानोंको सौ फीसदी प्रतिनिधित्व देकर भी स्वराज्य हासिल किया जा सके तो वे (लोकमान्य) ऐसे समझौतेपर हस्ताक्षर करनेके लिए तैयार हैं। डा० मुंजेने मुझसे खास तौरपर अनुरोध किया है कि मैं नागपुरके बारेमें कुछ भी न लिखूँ।

महात्माजीने आगे कहा कि लोगोंको अपनी मुक्तिका मार्ग स्वयं ही खोजना चाहिए। उन्होंने इसपर खेद प्रकट किया कि देशके नेताओंने अहिंसापूर्ण असहयोगके उनके अपने तरीकेकी उपयोगिताके प्रश्नपर काफी गम्भीरतासे विचार नहीं किया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-६-१९२४

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ३७०-७३।

२. प्रतिनिधिने इस प्रश्नके साथ ही गांधीजीको बयानोंकी प्रतियाँ दीं और अनुरोध किया कि वे इनको पढ़ लें।

९४. टिप्पणियाँ

तारकेश्वरमें सत्याग्रह

तारकेश्वरकी स्थितिके सम्बन्धमें मेरे पास कितने ही तार आये हैं। दो तारोंमें मुझे वहाँ जानेके लिए बुलाया गया है। अभी मेरे वहाँ जानेका सवाल नही उठा, कारण और कुछ नहीं तो यह तो है ही कि शरीर लम्बी यात्राके श्रमको बरदाश्त करने लायक नहीं है। लेकिन वाइकोमके बारेमें मैंने जो-कुछ लिखा है, वही आम तौरसे तारकेश्वरपर भी घटता है। मन्दिरपर कब्जा करनेके लिए किसी तरहसे भी जोर-जबरदस्तीका प्रयोग या प्रदर्शन नहीं किया जाना चाहिए। रेलवे मजदूरोंका दल स्वयंसेवक बन जाये और रेलकी पटरीपर बैठकर ट्रेनको जानेसे रोकने वगैरहका जो समाचार आया है, वह अगर सच हो तो, यह सत्याग्रह नहीं है — बल्कि यदि कमसे-कम कहा जाये तो भी यह एक निन्दनीय काम अवश्य था। दुराचारी माने जानेवाले महन्तके कब्जेसे भी हम किसी सम्पत्तिको इस तरह एक बारगी और जबरदस्ती नहीं छीन सकते।

अपने हाथो अपनी कब्र

कांग्रेस-संगठनपर मैंने जो लेख 'यंग इंडिया' में लिखा है,[1] उसके बारेमें कहा गया है कि मैं अपने हाथो अपनी कब्र खोद रहा हूँ। यह कथन मुझे पसन्द आया। कारण सत्यकी कब्र खोदनेकी बनिस्बत खुद अपनी कब्र खोदनेसे बढकर खुशी मुझे और किसी बातसे नहीं होगी, मैं तो केवल सत्यके ही लिए जिन्दा रहना चाहता हूँ। मेरे एक बडे सम्माननीय अंग्रेज मित्र हैं, जिन्होंने मुझे दक्षिण आफ्रिकामें बहुत सहायता दी थी। उन्होंने एक बार मुझसे कहा था कि "आप जानते हैं, मैं क्यो आपके आन्दोलनमें दिलोजानसे सहायता कर रहा हूँ? इसलिए कि आप अल्पमतमें हैं। मैं मानता हूँ कि सत्य हमेशा अल्पमतकी ही ओर होता है। इसलिए अगर मैंने आपको बहुमतमें देखा और हमारी मित्रताके रहते हुए भी, मैंने आपका विरोध किया तो आप ताज्जुब न करें।" मैं अक्सर ऐसा सोचता रहा हूँ और आज तो और भी ज्यादा सोचता हूँ कि क्या उन मित्रकी बात सही नहीं थी, और क्या आज वे इस नतीजेपर तो न पहुँचे होते कि चूंकि इस समय मैं बहुमतवाला माना जाता हूँ, इसलिए इस वक्त मेरा ही पक्ष गलतीपर होगा। पर उन मित्रकी बात सही हो या गलत, मैं आशा करता हूँ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी मुझे अल्पमतमें रखते हुए जरा भी नहीं हिचकिचायेगी और मैं यह आशा भी करता हूँ कि मैं अपने विश्वासके प्रति झूठा साबित न होऊँगा। मैं उन्हें यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं अपनी शिकस्त होनेपर भी उसी उत्साहके साथ काम करूँगा। शायद जैसा मैं उन दिनो करता

१ देखिए "कांग्रेस संगठन", २९-५-१९२४।

था जब परिस्थितियोंका प्रवाह मेरे अनुकूल था। अगर हमें भारतवर्षकी सेवा करनी है तो हमें अपने साधनको साधकोंसे ऊँचा समझना चाहिए। साधक तो आते-जाते रहते हैं, लेकिन उद्देश्य तो बड़ेसे-बड़े व्यक्तिके चले जानेके बाद भी कायम रहता है।

आर्य समाजी विरोध

आगराके आर्य समाजकी तरफसे मुझे निम्नलिखित तार मिला है:

> **आर्यसमाज, ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी, 'सत्यार्थ प्रकाश' और शुद्धि-आन्दोलनके बारेमें आपने जो कड़े शब्द कहे हैं[1] आगरा उनके प्रति अपना विरोध प्रकट करता है। उसे विश्वास है कि आर्य-समाजके सिद्धान्तोंका पूरा परिचय न होनेके कारण आपने अनजानेमें वे सब बातें कही हैं। वह आपसे सादर प्रार्थना करता है कि आप अपने विचारोंपर फिरसे गौर करें और उनसे जो उद्वेग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है, उसे दूर करें।**

मैं इस तारको इसलिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि मुझे विश्वास है कि आगरा समाजका मत बहुत हदतक आर्य समाजका ही मत है। उसके उत्तरमें मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मैंने समाज या ऋषि दयानन्द या स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमें एक भी शब्द गहरा विचार किये बिना नहीं लिखा है। मैं अपनी रायको आसानीसे दबा कर भी रख सकता था। लेकिन जब कि उसका प्रस्तुत प्रकरणसे सम्बन्ध है तब सत्यको देखते हुए मैं ऐसा नहीं कर सका। हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्यका दानव हमारे सामने खड़ा है। उसके नाशकी मुल्कको सख्त जरूरत है। इसे तथ्योंको दबाकर या उनकी ओरसे आँखें मूँदकर नहीं किया जा सकता। ऐसे मौकोंपर जो बात सच्ची दिखाई दे उसे कहना जरूरी हो जाता है — फिर वह चाहे कितनी ही कड़वी क्यों न हो। लेकिन मैं इस बातका दावा नहीं करता कि मुझसे भूल नहीं हो सकती। अभीतक मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दी है जिससे मैं अपने विचार बदल लूँ। मैं यह भी नहीं कह सकता कि इस विषयका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' को जरूर पढ़ा है। स्वामी श्रद्धानन्दजीसे मेरा गहरा परिचय है। इसलिए मैंने ये बातें सोच-समझकर ही लिखी हैं। अगर कोई आर्य समाजी मुझे यह समझा दे कि किसी भी बातमें मुझसे गलती हुई है तो मैं खुशीके साथ अपनी गलतीको कबूल करूँगा, उसके लिए माफी मागूँगा और अपने तमाम गलत बयान वापस ले लूँगा।

दण्ड या पुरस्कार?

थोरोने कहा है कि स्वेच्छाचारी शासनके अधीन खुशहाली अपराध है और गरीबी गुण। दूसरे शब्दोंमें, ऐसी सरकारका कोप-भाजन बनना खुशीकी बात है। ऐसी सरकारकी दयादृष्टिके प्रति शंका रखना चाहिए। इस तरह विचार करें तो मद्रासके प्रकाशित 'स्वराज्य' को जो दण्ड दिया गया है उसे उसकी सार्वजनिक सेवाओंके लिए पुरस्कार

1. गान्धीजीके "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", २९-५-१९२४ देखिए।

स्वरूप गिनना चाहिए। इसलिए मैं तो श्री प्रकाशमको[1] इस बातके लिए बधाइयाँ ही दूँगा कि मद्रास सरकारकी काली-सूचीमें उनके अखबारका नाम सर्वप्रथम है। उन्हें यह पुरस्कार देनेके लिए उस सरकारके भारतीय सदस्य जिम्मेदार हैं, इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होता। वे और कुछ कर ही नहीं सकते या तो उन्हें सरकारको कायम रखनेके लिए यह सब करना होगा, या फिर पद-त्याग करना होगा। उनका विश्वास ऐसा ही है कि यह सरकार देशके कल्याणके लिए कायम है। अहिंसात्मक असहयोगका उद्देश्य इस भ्रमका पर्दा हटानेकी प्रक्रिया शीघ्रतासे सम्पन्न करना है। यह प्रक्रिया बहुत धीमी गतिसे चल रही है। कारण यह कि हम असहयोगमें बहुत थोड़ा ही विश्वास रखते हैं और अहिंसामें तो और भी कम।

ऐशो-आराम देगी, लेकिन शक्ति नहीं

शान्तिनिकेतनसे बड़ो दादा[2] लिखते हैं:[3]

> आप चाहते हैं कि हम जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंका उत्पादन अपने ही हाथोंसे करें और इस तरह शक्ति सम्पादन करें।
>
> . यह अपेक्षा रखना मूर्खता ही है कि सरकार हमें सचमुच कोई ऐसी शक्ति हासिल करने देगी जो उसकी मनचाही करनेकी शक्तिको निष्फल बना सके।

क्या यह सोलहों आने सच नहीं है कि नगरोंमें रहनेवाले लोग गरीबोंको पूरा पैसा न देकर अपने ऐशो-आरामकी चीजें प्राप्त करते हैं और उधर सारी शक्ति एक ऐसी सरकारके हाथोंमें है, जो इस जनताके प्रति तनिक भी जिम्मेदारी महसूस नहीं करती और उसके दुःख-दर्द और जरूरतोंका कोई खयाल नहीं करती?

पीड़ितोंका त्राता चरखा

बाबू भूपेन्द्र नारायण सेन द्वारा भेजा गया निम्नलिखित पत्र[4] पाठकोंको अवश्य ही रोचक लगेगा

इस पत्रसे प्रकट होता है कि छोटे पैमानेपर किया हुआ संगठन क्या-कुछ कर सकता है और ठीक ढंगसे चरखे दिये जानेपर लोग उन्हें कितनी आसानीसे अपना लेते हैं। आज जिन्हें पेटकी खातिर भीख माँगनी पड़ रही है, चरखा उन सबको आत्म-सम्मानी दस्तकार बना देगा। वह शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर सबको एकताके सूत्रमें इतनी अच्छी तरह बाँध देगा जितना और किसी तरीकेसे सम्भव नहीं है।

१. टी० प्रकाशम, आन्ध्रके कांग्रेसी नेता, संयुक्त मद्रास राज्यके प्रथम मुख्यमन्त्री।

२ द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, दार्शनिक, रवीन्द्रनाथ ठाकुरके भाई।

३ यहाँ अंशतः दिया जा रहा है।

४ पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र लेखकने जून, १९२२ को बाढ पीड़ितोंके बीच दुआडोंडा गाँव जिला हुगलीमें श्री प्रफुल्लचन्द्र सेनने चरखेकी सहायतासे जो सराहनीय काम किया था, उसका विस्तृत विवरण दिया था।

ब्रह्मचर्य या आत्मसंयम

२५ मई, १९२४के 'नवजीवन'मे मैंने इस सूक्ष्म विषयपर एक लेख लिखा था, जिसका महादेव देसाई द्वारा प्रस्तुत अनुवाद इस अकमे दिया जा रहा है।[1] इस अनुवादको 'यग इडिया'में छापते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है, क्योकि मेरे सामने इस विषयपर भारतके दूसरे स्थानोसे भी आये बहुतसे पत्र मौजूद हैं। बिखरे हुए विचारोको इस लेखमे सिलसिलेसे प्रस्तुत किया गया है, उससे पवित्र जीवन व्यतीत करनेके लिए हार्दिक प्रयत्न करनेवाले लोगोको कुछ सहायता मिल सकती है। जिन लोगोंने इस विषयकी जिज्ञासा की थी, वे सबके-सब हिन्दू हैं और इसलिए स्वभावत यह लेख उन्हींको लक्ष्य करके लिखा गया है। अन्तिम अनुच्छेद सबसे महत्वपूर्ण है और उसका सम्बन्ध उन बातोसे है, जिन्हे व्यावहारिक जीवनमे उतारना है। ईश्वर और अल्लाह, दोनो शब्दोका महत्त्व एक ही है। भावना यह है कि हम अपने भीतर ईश्वरके अस्तित्वका अनुभव करे। सभी पाप हम लुक-छिपकर करते हैं। जिस क्षण हम यह अनुभव कर लेगे कि ईश्वर हमारे कामको तो क्या, विचारोको भी देखता है, उसी क्षण हम मुक्त हो जायेगे।

आचार्य गिडवानीके बारेमें

पण्डित जवाहरलाल नेहरूने नाभाके प्रशासकके नाम इन शब्दोंमें एक पत्र भेजा है:

> मैंने अभी-अभी २२ तारीखके यंग इंडियामें, श्री गिडवानीके कारावासके सम्बन्धमें श्री मो० क० गांधीके नाम लिखा गया आपका १२ मईका पत्र पढ़ा।[2] इस पत्रमें कहा गया है कि आपने मुझको तथा आचार्य गिडवानी और श्री के० सन्तानम्को दी गई सजा इस शर्तपर रद की थी कि हम यह राज्य छोड़कर चले जायें और बिना अनुमतिके उसमें वापस न आयें। लेकिन मुझे तो इस घटनाके बारेमें जो-कुछ याद है, उसके अनुसार स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। मेरा खयाल था और अभी भी है कि हमारी सजा बिना किसी शर्तके रद की गई थी। जहाँतक मुझे याद आता है, दण्ड-प्रक्रिया संहिताकी धारा ४०१के अधीन जारी किये गये सजा रद करनेवाले आदेशमें, और जिसपर आदेश लिखा हुआ था, उसमें भी ऐसी किसी शर्तका, यथा बिना अनुमतिके या अनुमति लेकर नाभा राज्यमें हमारे वापस लौटनेका कोई उल्लेख नहीं था। [illegible] जेल सुपरिंटेंडेंट और पुलिसके प्रमुखके साथ — जो वहाँ मौजूद थे — हमारी बातचीतसे और भी साफ हो गया था। बादमें हमें एक दूसरे कागजपर लिखे गये उस आदेशकी सूचना मिली। इस आदेशको प्रशासनिक आदेश (एडमिनिस्ट्रेटिव आर्डर) कहा गया था। उसमें हमें राज्य

१. [illegible]

२. [illegible]

छोड़कर चले जाने और बिना अनुमतिके वापस न आनेका हुक्म दिया गया था। इस दूसरे कागजमें हमारी सजाओंका अथवा उनके रद किये जानेका कोई उल्लेख नहीं था। आदेशोंकी प्रतिलिपियाँ प्राप्त करनेके लिए मेरी प्रार्थना मंजूर नहीं की गई और न मुझे स्वतः उनकी प्रतिलिपि तैयार कर लेनेकी अनुमति दी गई। मुझसे कहा गया कि आपने प्रतिलिपि देनेकी साफ मनाही कर दी है। मुझे प्रसन्नता होगी, यदि आप कृपया मुझे बतायें कि सजा रद करनेवाले आदेशके सम्बन्धमें मैंने जो तथ्य ऊपर लिखे हैं, वे सही हैं या नहीं। यदि आप मुझे सजा रद करनेके आदेश तथा 'प्रशासनिक आदेश' की प्रतिलिपियाँ भेज दें तो उसके लिए भी मैं आभार मानूंगा। मैं आशा करता हूँ, आप स्वीकार करेंगे कि ये प्रतिलिपियाँ मुझे दे देना, मेरे प्रति मात्र न्याय करना ही होगा, क्योंकि इन्हींको देखकर मैं जान सकता हूँ कि मेरी ठीक स्थिति क्या है।

पण्डित जवाहरलाल नेहरूके पत्रसे सिद्ध होता है कि आचार्य गिडवानीकी पुरानी सजाको फिरसे लागू कर दिया जाना तथा उनको जेल भेज दिया जाना यदि अवैध नहीं तो सर्वथा अनुचित अवश्य है। निश्चय ही इन तीनों देशभक्तोंको अपनी रिहाईकी शर्तें देखनेका अधिकार था। जैसा कि पहले ही दिखा चुका हूँ, आचार्य गिडवानीने अवज्ञाकी भावनासे प्रवेश नहीं किया था। उन्होंने मानवताके हितके लिए ही प्रवेश किया था। जनता भी यह जानना चाहेगी कि पण्डित जवाहरलाल नेहरूको प्रशासक क्या जवाब देता है

विलासिता और आलस्य

खद्दरके प्रचार-कार्यमें जो कठिनाइयाँ हैं, उनके बारेमें एक सज्जनने मुझे एक लम्बा पत्र भेजा है। मैं यहाँ इस पत्रके सम्बद्ध अंशोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ :

> हमारे प्रान्तमें बहुत कताई होती है। अगर मैं कहूँ कि हमारे गाँवोंमें प्रत्येक महिला कातती है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ भी इस कलाको जानती हैं और चरखा चलाती हैं। इस प्रान्तमें बुनकर भी बहुत बड़ी संख्यामें हैं। इस प्रान्तमें खद्दरका उत्पादन बहुत बड़े परिमाणमें किया जा सकता है। खद्दरके उत्पादनके लिए जब मैं यह विशाल क्षेत्र देखता हूँ तो मुझे लगता है कि मुझे भी काम करना चाहिए और कसकर करना चाहिए। किन्तु जब मैं कांग्रेस कमेटीके खद्दर-भण्डारमें जाता हूँ तो देखता हूँ कि बहुत कम लोग हमारा कपड़ा खरीदते हैं। जिन लोगोंने खद्दर पहिनना शुरू किया था, उन्होंने भी मिलके सूतके कपड़े और कुछने तो विदेशी कपड़े भी पहनना शुरू कर दिया है।
>
> कांग्रेसने जनताकी भावनाओंको जगाया। जनताने विदेशी कपड़े छोड़ दिये, कुछने तो उन्हें जला भी दिया। उन्होंने खद्दर अपना लिया। किन्तु

उसके दोष साफ दिखाई देने लगे। नतीजा यह है कि अब वे उसे पहनना नहीं चाहते। दोष ये हैं :

१. खद्दर बहुत वजनी होता है, महिलाओंको वह पसन्द नहीं आता।

२. भारी होनेके कारण उसे धोना कठिन होता है।

३ खद्दर बच्चोंका कपडा नहीं है, क्योंकि बच्चोंके कपड़ोंको बार-बार धोना पड़ता है और खद्दरको बार-बार धोना मुश्किल होता है।

४. खद्दरमें विविधता नहीं है और उसपर पक्का रग नही चढाया जा सकता।

५ खद्दरपर धूल ज्यादा जमती है।

६. खद्दर मिलके कपडोंसे महँगा है। हम हाथका कता सूत एक रुपयेका एक पौंड खरीदते हैं, जब कि अमृतसरमें भारतीय मिलका कपडा उसी भावसे यानी एक रुपयेका एक पौंड बिकता है।

धनवान लोग उसे इसलिए नहीं पहनना चाहते क्योंकि यह उनकी रुचिके अनुकूल नहीं होता, और गरीब लोग इसे इसकी कीमत, धुलाईका खर्च और दूसरे खर्चोंके कारण नहीं पहन पाते।

गांवोंमें कृषक वर्गके लोग ही इसका उपयोग करते हैं। उन्हें अपने खेतोंसे कपास मिलती है। उनकी स्त्रियां ओटने और कातनेका काम करती हैं। उन्हें पिंजाई और बुनाईका पैसा देना पड़ता है, जो बहुत नहीं होता क्योंकि गांवोंमें मजदूरी बहुत कम देनी पड़ती है। खादी उनके लिए एक ऐसी चीज है जिसे वे अपने दूसरे काम करते हुए, बिना ज्यादा खर्च और मेहनतके तैयार कर लेते हैं। उसका उपयोग करके वे पैसा बचा लेते हैं, जो उन्हें उतनी आसानीसे नहीं मिलता, जितनी आसानीसे शहरके लोगोंको मिलता है।

[illegible]

बहुत कठिन भी नही है। यदि हम पतली चपातियाँ चाहते हैं तो उन्हे पतला बेलते है, न कि उनकी खोजमे और कही जाते है। उसी प्रकार, यदि हमे महीन कपडा चाहिए तो हमे महीन सूत कातना चाहिए। यदि महिलाए इतनी आलसी है कि महीन सूत नही कात सकती तो उन्हे खद्दरके भारी होनेकी शिकायत करनेका कोई अधिकार नही है और अगर हम बच्चोको दिखावेके लिए नही, बल्कि उनकी सुरक्षाके लिए कपडे पहनाते है तो उनके लिए खद्दर बहुत ही उपयुक्त कपडा है। खद्दर उतनी ही विविधता दे सकती है, जितना मिलका कपडा। किन्तु इसके लिए आवश्यकता है अपने पूर्वजोके मौलिक कौशलको पुनरुज्जीवित करनेकी। खद्दर आज मिलके कपडेसे महँगा है, क्योकि अभी हमने इस राष्ट्रीय कुटीर उद्योगको दृढ आधारपर प्रतिष्ठित नही किया है। किन्तु यदि हम स्वतन्त्र होना चाहते है तो निश्चय ही हमे मूल्यका विचार नही करना चाहिए। खद्दर पहननेवाले सैकडो लोगोका यह अनुभव है कि यद्यपि प्रति गजके हिसाबसे खद्दर महँगा है, फिर भी चूकि उसके प्रयोगसे उनकी रुचि सादी हो जानेके कारण उन्हे कम कपडेकी जरूरत पडती है, इसलिए खद्दर पहिनना सस्ता ही पडता है। गरीबोके लिए वह महँगा नही होता, क्योकि वे स्वय कपास पैदा करके उसकी ओटाई, धुनाई और कताई करके खुद ही कपडा भी बुन सकते है। यदि बारीकीसे देखे तो इस दलीलका जवाब यह है कि लोग पजाबी बहनो-के बीच निरन्तर प्रचार-कार्य करे और उनसे कहे कि वे २० नम्बरसे कमका सूत न काते। कोई भी ऐसा व्यक्ति जो कताईके काममे सिद्धहस्त हो, उनके तकुओको इस प्रकार बैठा सकता है, जिससे वे बहुत अधिक अतिरिक्त श्रम और समय लगाये बिना ऊँचे नम्बरका सूत कात सकती है।

कातनेवाला किसे कहते है?

लोग बहुधा मात्र धागा खीच सकनेके बलपर ही कहने लगते है कि वे कात लेते है। लेकिन यह खयाल गलत है। नानबाई वह है, जो सेककर ऐसी रोटी तैयार करे जो खाई और पचाई जा सके। मगर उसका सिर्फ रोटी सेकना-भर जानना काफी नही है। उसे उन सभी प्रक्रियाओका ज्ञान होना चाहिए जिनके जरिये आटेसे रोटी बनाई जाती है और उसे आटेकी विविध किस्मोकी भी जानकारी होनी चाहिए; और सचमुच हर नानबाईको इस सबका ज्ञान होता है। इसी प्रकार कातनेवाला वह है जो एक-सा और ठीक बटा हुआ ऐसा सूत काते, जो बिना कठिनाईके बुना जा सके। यदि धागा आवश्यकतासे कम या अधिक बटा हुआ हो तो वह बुनाईके कामका नही होगा और चूकि बिना अच्छी पूनियोके ठीक कातना सम्भव नही है, इसलिए कातनेवालेको पिंजाई करना और पूनी बनाना भी आना चाहिए। उसे विभिन्न किस्मकी कपासोके रेशोके बारेमे भी बता सकना चाहिए तथा जितने नम्बरका सूत कातनेके लिए उससे कहा जाये — मान लीजिए ३० नम्बरका सूत कातनेको कहा जाये तो — उतने नम्बरका सूत उसे कात सकना चाहिए। इसी प्रकार जो बढई अपने औजारोको तेज नही कर सकता अथवा उनकी मरम्मत नही कर सकता, वह किसी कामका बढई नही है। उसी प्रकार वह कातनेवाला भी किसी कामका नही है, जो अपनी धुनकी या चरखेकी मरम्मत नही

कर सकता अथवा तकुएको सीधा नही कर सकता। कई लोग चरखा बिगड़ जानेके कारण ही कातना छोड देते है। इसलिए मेरी रायमे, कताईकी परीक्षामे, मैने जो बातें कही हैं, वे सभी आ जानी चाहिए। इस प्रशिक्षण-क्रमसे सीखनेवालोको डर नही जाना चाहिए। जो काममे मन लगायेगे, उनके लिए यह काफी आसान है। असल बात यह है कि यह काम सजीदगीके साथ उठाया जाना चाहिए।[1]

जिसमे आस्थाका बल है, वह सब-कुछ कर सकता है और उसे सब-कुछ आसान ही लगता है। जिसमे आस्था नही है, उसे हर काम कठिन लगता है। कताई सीखनेका मतलब है सुस्ती छोडकर मेहनतकश बनना। किसी बातका मौखिक उपदेश करनेके बजाय स्वय ही उसे करके दिखाना चाहिए। स्वराज्य भाषणोसे नही मिल सकता, उसे तो कर्मके बलपर ही प्राप्त किया जा सकता है। कताई ही एक ऐसा काम है, जिसे सब लोग अपना सकते है। जब लोग चरखेकी उपेक्षा करने लगे, तभी भारत परतन्त्र और दरिद्र हुआ, चरखेको फिरसे अपने उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करनेमे ही उसकी समृद्धिका मार्ग है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९५. हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम एकताका सवाल भारतीय देशभक्तोके सामने मौजूद सवालोमे सबसे जबरदस्त है। पिछले हफ्ते उसपर मै अपना लम्बा-चौडा बयान[2] दे चुका हूँ। अब यहाँ उसीका सार दे रहा हूँ। इन दोनो मजहबोको माननेवाले लोग इस मामलेमे अपना-अपना फर्ज किस तरह अदा करते है, इसी आधारपर भावी पीढियाँ इनके बारेमे अपना निर्णय देगी। हिन्दू-धर्म और इस्लामके उसूल चाहे कितने ही अच्छे क्यो न हो, दोनोकी खूबियो और खामियोका निर्णय सिर्फ इसी बातसे किया जा सकता है कि ये समष्टि-रूपमे अपने अनुयायियोपर कैसा असर डालती है।

अब उस वक्तव्यका सार सुनिए

कारण

१ इस तनावका दूरवर्ती कारण है मोपलोकी बगावत।

२ श्री फजल हुसैन द्वारा पजाबके शिक्षा विभागमे मुसलमानोकी तादादके मुताबिक सरकारी नौकरियोका बँटवारा करनेका प्रयत्न और फलत हिन्दुओ द्वारा उसका विरोध।

१. इससे आगेका हिस्सा ९-६-१९२४ के 'नवजीवन' में प्रकाशित गांधीजीके एक लेखसे लिया गया है, जिसमें उन्होंने बहुत अंशोंतक इसी विषयकी चर्चा की थी। इस लेखका शीर्षक भी यही है लेकिन यहाँ जो अनुच्छेद जोड़ा जा रहा है, वह **यंग इंडिया**में नही है।

२. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम तनाव: कारण और उपचार", २९-५-१९२४।

३ शुद्धि-आन्दोलन।

४ सबसे अधिक सबल कारण है अहिंसासे लोगोका ऊब उठना और इस अन्देशेका होना कि ज्यादा दिनोतक अहिंसाकी तालीम मिलनेसे दोनो कौमें प्रतिशोध और आत्मरक्षाके नियमको भूल जायेगी।

५ मुसलमानोका गो-वध और हिन्दुओका वाजा।

६ हिन्दुओकी कायरता और इस कारण मुसलमानोके प्रति उनका अविश्वास।

७ मुसलमानोका आततायीपन।

८ हिन्दुओकी नेकनीयतीपर मुसलमानोकी वेऐतवारी।

उपचार

१ इसके समाधानकी सबसे बढ़िया कुंजी है तलवारके नियमके बजाय पच-फैसलेके नियमको अपनाना।

न्यायप्रिय लोगोके मतको इतना प्रबल होना चाहिए कि पीडित पक्षोके लिए कानूनको अपने हाथोमे ले लेना असम्भव हो जाये। हरएक मामला या तो खानगी पचायतोमे पेश किया जाये, और अगर सम्बन्धित पक्ष असहयोगमे विश्वास न रखते हो तो मामलेको अदालतमे दायर किया जाये।

२ इस अज्ञान-जनित आशकाको दूर किया जाये कि ऐसेमे हिंसाकी जगह भीरुतामूलक अहिंसा आ जायेगी——अहिंसाको भीरुतामूलक कहना भारी भूल है।

३ अगर कौमके अगुआ एकताके कायल हो तो वे परस्पर बढते हुए अविश्वासके बदले विश्वासकी भावना जागृत करे।

४ हिन्दुओ और मुसलमानोको आततायीसे डरना छोड देना चाहिए और मुसलमानोको चाहिए कि वे अपने हिन्दू भाइयोको आतकित करना अपनी शानके खिलाफ समझे।

५ हिन्दुओको यह न सोचना चाहिए कि हम मुसलमानोसे जबरन गो-हत्या वन्द करा लेगे। वे मुसलमानोके साथ दोस्ती करके यह विश्वास रखे कि मुसलमान लोग अपने हिन्दू पडोसियोका खयाल करके खुद ही अपनी खुशीसे गो-हत्या वन्द कर देगे।

६ मुसलमानोको भी यह नही सोचना चाहिए कि वे हिन्दुओको मसजिदोके सामने बाजा बजाने या आरती करनेसे जबरदस्ती रोक सकते है। उन्हे हिन्दुओको अपना दोस्त बनाना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि वे मुसलमानोकी उचित भावनाओका खयाल जरूर करेगे।

७ हिन्दुओको चाहिए कि वे निर्वाचित सस्थाओमे प्रतिनिधित्वके सवालको मुसलमानो तथा दूसरी अल्पसख्यक जातियोपर छोड दे और वे निर्णायक जो निर्णय दे उसको सच्चे दिलसे और शोभनीय ढगसे मजूर करके उसपर अमल करे। अगर मेरा वस चले तो मै हकीम अजमलखांको एकमात्र सरपंच नियुक्त कर दू और उन्हे पूरी आजादी दे दू कि उन्हे जो ठीक लगे उसके मुताबिक वे मुसलमानो, सिखो, ईसाइयो, पारसियो तथा दूसरी जातियोसे सलाह-मशविरा करे।

८ राष्ट्रीय सरकारके अधीन नौकरियाँ योग्यताके अनुसार दी जाये। योग्यताका निर्णय सभी कौमोके प्रतिनिधियोका एक परीक्षा-बोर्ड करे।

९ शुद्धि या तबलीगके काममे जहाँतक यह शुद्धि या तबलीगका ही काम है, खलल नही डाला जा सकता, लेकिन दोनोका काम सचाई और ईमानदारीके साथ होना चाहिए और वे लोग ही इस कामको करे जो चरित्रवान सिद्ध हो चुके हो। दूसरे मजहबपर कोई चोट न की जाये। छिपे तौरपर किसी किस्मका प्रचार-कार्य न किया जाये और पुरस्कारका प्रलोभन न दिया जाये।

१० ऐसा लोकमत तैयार किया जाये कि अश्लील और गाली-गलौज भरे सभी लेखो, खासकर पजाबके कुछ अखबारोमे छपनेवाले ऐसे लेखोका प्रकाशन बन्द हो जाये।

११ अगर हिन्दू अपनी कायरता नही छोडेगे तो कुछ भी नही बनेगा। यह अधिकाशत हिन्दुओके ही हित-अहितका सवाल है। इसलिए उन्हीको सबसे ज्यादा त्याग करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

लेकिन यह उपचार अमलमे किस तरह लाया जाये? इन खब्ती हिन्दुओको कौन समझाये कि गो-रक्षाका सबसे अच्छा तरीका है गायके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करना। मुसलमान भाइयोके पीछे पडे रहनेसे कुछ भी नही बनेगा, और हठधर्मी मुसलमानोको कौन समझाये कि जब कोई हिन्दू मसजिदके सामने बाजा बजाता है तो उसका सिर फोडना धर्म नही अधर्म है। या फिर हिन्दुओके दिलमे यह बात कौन उतारे कि अगर लोकनिर्वाचित और धर्मनिरपेक्ष सरकारी सस्थाओमे अल्पसख्यक जातियोके प्रतिनिधि ज्यादा भी रहे तो उससे उनका कोई नुकसान नही होगा? ये कुछ मुनासिब सवाल है, जिनसे इस समस्याके समाधानके मार्गकी कठिनाइयाँ स्पष्ट हो जाती है।

किन्तु अगर उक्त उपचार ही एकमात्र सच्चा उपचार है तो सभी कठिनाइयोपर विजय प्राप्त करनी पडेगी। सच पूछिए तो जो कठिनाइयाँ है, वे ऊपरी ही है। अगर थोडे-से हिन्दू और थोड़े-से मुसलमान भी ऐसे हो जिनका इस उपचारमे जीवन्त विश्वास हो तो बाकी सब काम आसान है। बल्कि सच तो यह है कि अगर दोनो कौमोमे से किसी एकमे भी ऐसे जीवन्त विश्वासवाले कुछ लोग हो तो भी यह उपचार आसानीसे काममे लाया जा सकता है। बस वे एक हृदय होकर अपना काम करते जाये, दूसरे लोग तो अपने-आप उनका अनुगमन करने लगेगे। सिर्फ एक ही पक्षका इस बातको मान लेना काफी है क्योकि इस उपचारमे सौदेबाजीकी जरूरत नही है। उदाहरणके लिए, हिन्दुओको चाहिए कि वे गायोके मामलेमे मुसलमानोको परेशान करना छोड दे और सो भी ऐसी कोई आशा रखे बिना कि मुसलमान लोग अपने-आप इस सम्बन्धमे कोई मुरौवत दिखायेगे। प्रतिनिधित्वके सम्बन्धमे भी मुसलमानोकी जो-कुछ माँग हो उसे वे स्वीकार कर ले। इस मामलेमे भी वे बदलेकी कोई आशा न रखे और अगर मुसलमान लोग हिन्दुओके बाजे या आरतीको जबरदस्ती बन्द करनेपर जिद करे तो भले ही एक-एक हिन्दूको वही मर मिटना पडे, किन्तु वे प्रतिहिसा-स्वरूप अपना हाथ उठाये बिना भजन-आरती जारी रखे। तब मुसलमान लोग शर्मिन्दा हो जायेगे और बहुत ही थोडे दिनोमे सही रास्तेपर आ जायेगे। चाहे तो मुसलमान भी ऐसा ही

घर प्रचार करनेके लिए, ऐसे दिनोंके सिवाय जब मैं चौबीसों-घटे यात्रापर होऊँ, कमसे-कम आध घटा रोज निष्ठामे चरखा चलानेके लिए तैयार हूँ? क्या मैं सिर्फ खादीका ही इस्तेमाल करनेके लिए तैयार हूँ?

(४) क्या मैं सरकारी खिताबों, स्कूलो, अदालतो और कौसिलोंके वहिष्कारमे विश्वास रखता हूँ?

(५) अगर मैं हिन्दू हूँ तो क्या मैं इस बातको मानता हूँ कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मके सिरपर एक कलक है?

(६) क्या मैं शराबखोरी और नशेबाजीको पूरी तरह उठा देनेमे विश्वास रखता हूँ, हालाँकि इसके परिणामस्वरूप उनसे प्राप्त होनेवाला सारा राजस्व एक ही सपाटेमे खत्म हो जायेगा?

मेरी अपनी रायमे तो जो व्यक्ति काग्रेस-कार्यक्रमकी इन बातोंको न मानता हो, उसे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीमे नही रहना चाहिए। इन तमाम बातोंकी ओर ध्यान दिलानेकी जरूरत इसलिए हुई कि मैं जानता हूँ कि बहुतेरे सदस्य अहिंसा और सत्यमे विश्वास नही रखते। मैंने यह भी सुना है कि काग्रेसकी कार्यकारिणी सस्थाओमे ऐसे वकील लोग हैं जिन्होने वकालत नही छोडी है, ऐसे सदस्य हैं जो हमेशा केवल खादी ही नही पहनते, ऐसे असहयोगी हैं जो राष्ट्रीय पाठशालाओकी प्रबन्ध-समितियोमे हैं और जो खुद अपने लडकोको सरकारी स्कूलोमे भेजते हैं, और अन्तमे, ऐसे व्यापारी भी हैं जो विदेशी या मिलोके बने कपडोका व्यापार करते हैं और फिर भी काग्रेसकी कार्यकारिणियोके सदस्य हैं। जिन लोगोपर काग्रेसके कार्यक्रमको लागू करानेकी जिम्मेवारी है, यदि वे खुद ही उसके मुताबिक न चले तो मैं यही कहूँगा कि उस कार्यक्रमको सफल बनाना गैरमुमकिन है। जो वकील खुद वकालत करता है, वह अपने भाईसे किस तरह कह सकता है या कैसे उससे आशा रख सकता है कि वह वकालत छोड दे? या वह शख्स जो खुद चरखा नही चलाता, किस तरह दूसरेको उसे चलानेकी जरूरत समझा सकता है।

मैं समितिसे निवेदन करना चाहता हूँ कि वह प्रामाणिक कार्यक्रम बनाये। अगर किसी दूसरे कार्यक्रमके पक्षमे बहुमत हो तो मैं अल्पमतवालोसे कहूँगा कि वे काग्रेस कमेटीमे न रहे और उसके बाहर रहकर उस कार्यक्रमके अनुसार काम करे। काग्रेसके प्रस्तावोके आदेशोकी बहुत अधिक अवहेलना होती रही है। इसलिए मैं यह सुझाव भी देना चाहता हूँ कि सदस्योको चाहिए कि वे हर माहके अन्तमे कमसे-कम १० नम्बरका, कमसे-कम १० तोला, अच्छा बँटा हुआ एक-सा सूत खुद कातकर भेज दिया करे। अगर रोज आध घटा काता जाये तो एक महीनेमे दस तोला सूत आसानीसे काता जा सकता है। हर मासकी १५ तारीखके पहले-पहले यह सूत खादी बोर्डके मन्त्रीके पास पहुँच जाना चाहिए। जो इसमे गफलत करे, उसके बारेमे समझा जाये कि उसने इस्तीफा दे दिया। इसी तरह जो लोग अपने-अपने क्षेत्रोसे हाथ-धुनाई, हाथ-कताई, हाथ-बुनाई और हाथसे कते सूतका हिसाब हर माह न भेजे, उनके बारेमे भी यही माना जाये कि उन्होने इस्तीफा दे दिया। हिसाब हर माहकी १५ तारीखसे पहले मन्त्रीके पास पहुँच जाना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि ये शर्तें उन लोगोंके लिए मुश्किल हैं जो काम करना नहीं चाहते हैं, लेकिन उन लोगोंके लिए आसान हैं जो वाकई काम करना चाहते हैं। अगर कौमके चुनिन्दा प्रतिनिधि काम न करें तो कार्यक्रमको पूरा करनेका कोई तरीका नहीं है।

हमारे काम करनेके तरीकोंमें बड़ी ढिलाई रही है। अब वक्त आ गया है कि हम अपनी ढील-ढाल जरा कम करें। यह इलजाम लगाया जाता है कि यह कार्यक्रम प्रेरणादायक नहीं है और सूत कातनेवालोंका मुल्क स्वराज्य नहीं पा सकता। इस इलजामसे मैं डरता या घबराता नहीं हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि ठोस कामसे ज्यादा प्रेरणादायक और कोई चीज नहीं होती और अगर हमें इस देशसे फाकाकशीका नामोनिशान मिटाना हो और आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र होना हो तो हमारे लिए एक बार फिरसे धुनियों, कतैयों और बुनकरोंकी कौम बने बिना कोई चारा नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-६-१९२४

९७. जेलके अनुभव – ७

सत्याग्रही कैदियोंका आचरण

पिछले प्रकरणके अन्तमें मैंने कुछ मित्रों द्वारा पेश की जानेवाली जो दलील दी है, वह विचारणीय है। किसी अन्य कारणसे नहीं तो कमसे-कम इस कारणसे अवश्य कि बहुतसे लोग इस दलीलमें ईमानदारीसे विश्वास करते हैं और बहुतोंने १९२१ और १९२२ में, जब हजारों लोग जेल गये थे, इसके अनुसार आचरण भी किया था।

पहली बात तो यह है कि जेलसे बाहर भी हमारा उद्देश्य सरकारको परेशान करना नहीं है। जबतक हमारा आचरण सही है, हमें इस बातसे कोई मतलब नहीं कि सरकार परेशान होती है अथवा नहीं। हमारे असहयोगसे सरकारको जितनी परेशानी होती है, उतनी परेशानी तो और किसी चीजसे नहीं हो सकती। लेकिन, फिर भी हम वकीलों और विधायकोंके रूपमें असहयोग करते ही हैं, क्योंकि यह हमारा कर्त्तव्य है। मतलब यह कि अगर हमें यह मालूम हो कि असहयोगसे शासकोंको खुशी होती है तब भी हम असहयोग करेंगे ही। किसीको खुशी हो या नाराजगी, इस ओरसे हम इतने उदासीन इसलिए हैं कि हम मानते हैं, इससे अन्ततः हमारा अपना लाभ ही होगा। लेकिन जेलोंमें ऐसा असहयोग नहीं चल सकता। हम जेलोंमें अपने किसी स्वार्थपूर्ण उद्देश्यकी पूर्ति करने नहीं जाते। वहाँ तो हमें सरकार अपराधी मानकर ले जाती है। इसलिए जिस प्रकार जेलोंसे बाहर हमारा यह काम है कि हम उदाहरणके लिए, सरकारके न्यायालयों या स्कूलों अथवा कौंसिलों या खिताबोंका बहिष्कार करके उसे यह दिखा दें कि हम इन सदिग्ध लाभोंके बिना भी अपना काम चलानेको तैयार हैं और इस तरह उसके मनका भ्रम दूर कर दें, उसी प्रकार जेलोंमें हमारा काम यह है कि

हम आदर्श (और सरकार द्वारा अपेक्षित) आचरण करके वहाँ भी उसके मनका भ्रम दूर कर दे।

पता नही हममे से सभीको उस बातकी प्रतीति है या नही कि असहयोग हुल्लड-बाजी करके प्रतिपक्षीको भयभीत करनेकी नही, बल्कि उसके हृदयको छूने और उसकी बुद्धिको प्रभावित करनेकी प्रक्रिया है। अहिंसात्मक आन्दोलनमे हुल्लडबाजी करके डर फैलानेके लिए कोई स्थान ही नही है।

मैने सत्याग्रही बन्दियोकी तुलना अकसर युद्धबन्दियोसे की है। सिपाही जब शत्रु द्वारा बन्दी बना लिये जाते है तो वे शत्रुके साथ मित्रवत् व्यवहार करने लगते है। यदि कोई सिपाही युद्धबन्दीके रूपमे शत्रुके साथ धोखेबाजी करे तो यह उसके लिए कलक-की बात होगी। मेरी दलीलमे इससे कोई फर्क नही पडता कि सरकार सत्याग्रही कैदियोको युद्धबन्दी नही मानती। यदि हम युद्धबन्दियो-जैसा आचरण करे तो शीघ्र ही हमारे साथ सम्मानका व्यवहार किया जाने लगेगा। जेलोको हमे ऐसी निष्पक्ष सस्था बना देनी चाहिए जिसमे हमारा सरकारके साथ सहयोग कर सकना उचित ही नही, कुछ हदतक धर्म बन जाता है।

यदि हम एक ओर जानबूझकर जेलके नियमोको तोडे और साथ ही दूसरी ओर सजा देने और कडाई बरतनेकी शिकायत करे तो हमारा यह आचरण बहुत असगत होगा और इसे शायद ही आत्मसम्मानपूर्ण माना जाये। उदाहरणके लिए, ऐसा नही हो सकता कि हम तलाशीका विरोध और उसकी शिकायत भी करे और साथ ही अपने कम्बलो और कपडोमे निषिद्ध चीजे भी छिपाकर रखे। उस सत्याग्रहमे जिसे मै जानता हूँ ऐसी कोई चीज नही है जिसकी आड लेकर हम किसी विशेष प्रसगके आ जाने-पर झूठ बोल सकते हो अथवा कोई दूसरी धोखेबाजी कर सकते हो।

जब हम यह कहते है कि यदि हम जेल अधिकारियोका चैनसे बैठना मुश्किल कर दे तो सरकार सुलहका हाथ बढानेपर मजबूर हो जायेगी, तब इसमे दरअसल या तो सरकारकी सूक्ष्म प्रशसा हो जाती है या फिर हम उसे बहुत भोली समझ बैठते है। जब हम ऐसा मान लेते है कि हम जेल अधिकारियोका चैनसे बैठना मुश्किल कर देगे तो भी सरकार चुपचाप बैठी देखती रहेगी और हमे बिलकुल पस्त कर देनेवाली कडी सजा देनेमे आगा-पीछा करेगी, तब यह सचमुच सरकारकी प्रकारान्तरसे प्रशसा ही हो जाती है। वैसा माननेका, मतलब तो यह है कि हम प्रशासकोको इतना शालीन और दयालु समझते है कि हमारे द्वारा दण्डके योग्य पर्याप्त कारण उपस्थित किये जाने पर भी वे हमे कडी सजा देगे ही नही। सच तो यह है कि अवसर आनेपर वे मर्यादाके समस्त विचारको ताकपर रखकर सिर्फ नियम-विहित सजा ही नही, बल्कि नियम-विरुद्ध सजा देनेमे भी सकोच नही करेगे और न आज कर ही रहे है।

यह मेरा सुविचारित दृढ मत है कि यदि हमने बराबर ऐसी ईमानदारी और मर्यादाके साथ काम किया होता जो सत्याग्रहियोके लिए शोभनीय है तो सरकारका सारा विरोध समाप्त हो जाता और इतने अधिक कैदियो द्वारा ऐसा प्रामाणिक व्यवहार करनेका परिणाम कमसे-कम इतना तो अवश्य होता कि सरकार लज्जित

होकर यह स्वीकार कर लेती कि ऐसे खरे और निर्दोप लोगोको इतनी वडी सख्यामें जेलमे वन्द करके उसने भूल की है। क्योकि उसका क्या यही आरोप नही है कि अहिंसा तो हिंसा करनेके लिए एक आवरण-मात्र है? इसलिए क्या यह सच नही है कि जव कभी हम कोई हुल्लडवाजी करते हैं तो दरअसल क्या सरकारके मनका काम ही नही कर जाते?

इसलिए मेरे विचारसे तो जेल जानेपर सत्याग्रहियोके रूपमे हमारा कर्त्तव्य है कि

१ हम नितान्त प्रामाणिक व्यवहार ही करे,

२ जेल अधिकारियोके व्यवस्था कायम रखनेके कार्योमे उनसे सहयोग करे,

३ सभी उचित अनुशासनोका पालन करके अन्य कैदी भाइयोके लिए उदाहरण पेश करे,

४ हम किसी भी प्रकारकी रियायत न माँगे, और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे नितान्त आवश्यक होनेकी परिस्थितिको छोडकर ऐसी कोई विशेष सुविधा पानेका हक न जताये जो मामूलीसे-मामूली कैदीको प्राप्त नही है,

५ जिस चीजकी हमे ऐसी जरूरत हो उसकी माँग करनेमे कभी न चूके और अगर वह चीज न मिले तो क्षुव्ध न हो,

६ हमे जो काम दिया जाये उसे अपनी शक्ति-भर करे।

हमारे ऐसे ही व्यवहारसे सरकारकी स्थिति कठिन और विपम वन सकती है। उसके लिए ईमानदारीके वदले ईमानदारी वरतना कठिन होगा क्योकि एक तो उसमें निष्ठाका अभाव है, दूसरे चूंकि उसने ऐसे अवसरकी कल्पना भी नही की। हमारी ओरसे वह हुल्लडवाजीकी ही उम्मीद करती है और दुगुनी हुल्लडवाजी करके उसे दवा देती है। अराजकतापूर्ण अपराधका सामना तो उसने सफलताके साथ कर लिया, लेकिन अहिंसाके सामने तो उसे अभीतक सिवा झुक जानेके कोई रास्ता सूझ नही रहा है।

सत्याग्रही इस विचारसे प्रेरित होकर जेल जाता है कि वह नम्रतापूर्वक कष्ट सहकर अपना ध्येय हस्तगत कर लेगा। वह ऐसा मानता है कि किसी न्यायसम्मत उद्देश्य-के लिए चुपचाप कष्ट सह लेनेका अपना एक खास गुण है, जो तलवारके मुकाविले लाख दर्जे ऊँचा है। इसका मतलव यह नही है कि जव हमारे साथ हमारे आत्मसम्मान-को ठेस पहुँचानेवाला व्यवहार किया जाये तव भी हम विरोध न करे। उदाहरणके लिए, यदि कोई अधिकारी हमे गालियाँ दे या हमारा खाना ठीकसे परोसकर देनेके वजाय हमारी ओर फेक दे, जैसा कि अकसर किया जाता है, तो हमे अपने प्राणोकी वाजी लगाकर भी उसका विरोध करना चाहिए। गालियाँ देना और अपमान करना अधिकारीके कर्त्तव्य-क्षेत्रमे नही आता। इसलिए, हमें ऐसे व्यवहारका विरोध करना ही चाहिए। लेकिन हम तलाशीका विरोध नही कर सकते, क्योकि यह तो जेलका एक नियम है।

मैंने मूक कष्ट-सहनके वारेमे जो वाते कही है, उनका कोई यह अर्थ भी न लगाये कि सत्याग्रहियो-जैसे निर्दोप कैदियोको पक्के अपराधियोकी श्रेणीमें रखनेके खिलाफ भी कोई आन्दोलन नही किया जाना चाहिए। हाँ, इतना अवश्य है कि कैदी होनेके

नाते हम किसी कृपाकी याचना नही कर सकते। हमे पाके अपराधियोके साथ रहनेमे ही सन्तोष मानना चाहिए, वल्कि इस तरह हमे उनमे नैतिक सुधार करनेका भी जो अवसर मिलता है, उसका स्वागत करना चाहिए। फिर भी, अपनेको सभ्य कहनेवाली सरकारसे यह आशा तो की ही जाती है कि वह अत्यन्त स्वाभाविक विभाजनोकी आवश्यकता को समझेगी।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ५-६-१९२४

९८. मणिलाल गांधीके पत्रपर टिप्पणी

मेरे पुत्र मणिलाल गाधीके एक पत्रका निम्नलिखित अनुवाद पाठकोको पसन्द आयेगा। पत्रमे श्रीमती नायडूके दक्षिण आफ्रिकामे किये गये वहुत ही ठोस कामका वर्णन है।[1]

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ५-६-१९२४

९९. सी० एफ० एन्ड्रयूजके पत्रपर टिप्पणी

श्री एन्ड्रयूजने सीधे-सादे और सुन्दर-सुडौल भील वच्चोको खद्दरके कुरते और टोपियाँ पहने देखा था। उसे देखकर उन्होने अपने एक व्यक्तिगत पत्रमे मुझे आडे हाथो लिया है। पूछा है कि "उनके लिए आप खद्दरकी लगोटी ही क्यो काफी नही मानते?" इसका उत्तर देनेके लिए तो अमृतलाल ठक्कर ही सबसे अधिक उपयुक्त है। यदि मै अपनी वात कहूँ तो मुझे लगोटी ही ज्यादा अच्छी लगने लगी है, इतने सारे कैदियोको सिर्फ जाँघिये पहने देखनेके वाद तो और भी ज्यादा। परन्तु श्री ठक्करके सामने समस्या इतनी सरल-सी नही है। वे किसी जेलके नही वल्कि एक स्कूलके सुपरिन्टेन्डेन्ट है, जहाँ उनका काम वालको और वालिकाओमे निर्भीक पौरुष और नारीत्वकी भावना पैदा करना है। इन खुशदिल शरारती वच्चोके दिमागमे

१. पत्र यहाँ नही दिया जा रहा है। उसमें सरोजिनी नायडूको दक्षिण आफ्रिका-यात्राके अच्छे परिणामोका उल्लेख था, जिनमें वर्ग क्षेत्र विधेयकका खतम किया जाना भी शामिल था। उसमें कहा गया था: "श्रीमती नायडूके सुझावपर डर्वनमें दक्षिण आफ्रिकी भारतीय काग्रेसकी वैठक हुई और श्रीमती नायडूकी अध्यक्षतामें वहुत अधिक काम किया गया और वह भी एक ऐसी पवित्रताकी भावनासे, जैसी पहले कभी नही देखी गई।. . .आपके जानेके वादसे यहाँके भारतीयोकी दशा निराश्रित वालको-जैसी हो रही है। पर श्रीमती नायडूने एक हद दर्जेकी निराशापूर्ण परिस्थितिको भी अत्यन्त ही आशाप्रद परिस्थितिमें वदल दिया है।"

बडे आडे-सीधे प्रश्न उठते रहते है। हमारा सुपरिन्टेन्डेन्ट ऐसे तरह-तरहके कपडे क्यो पहनता है, भले ही वे कितने भी असुविधाजनक लगे और हम सिर्फ लगोटी बाँधे ही क्यो फिरे? शिक्षक यदि ऐसे टेढे सवालोका सन्तोषप्रद उत्तर देना चाहे तो उसे वही पहनना और खाना चाहिए जिसकी वह अपने शिष्योसे अपेक्षा करता है। भारतके जलवायुमे जाँघिया जो असलमे लगोटीका ही एक बडा रूप है, आरामदेह चीज है। उसे पहननेवाले लोग कुरता या बंडी लेकर क्या करेगे?

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ५-६-१९२४

१००. प्रेमका अभाव या अतिरेक

राम, शकर, भरत इत्यादि अवतारोके लिए मैने एकवचनी प्रयोग किये है। इसपर वैष्णव भाई प्रेमसे उलहना देते है। उन्हे इस बातसे दु ख हुआ है कि मैने 'राम' को 'श्रीरामचन्द्र प्रभु' और 'भरत' को श्री 'भरतसूरी' नही लिखा और विनयपूर्वक अनुरोध करते है कि मुझे अबसे इन पवित्र नामोका उल्लेख आदरपूर्वक करना चाहिए। इन भाईको मै खानगी खत लिखकर जवाब दे देता, परन्तु इस खयालसे कि इससे कदाचित् किसी अन्य वैष्णवके दिलको भी चोट पहुँची हो, मै इस बातका विचार पाठकोके सामने करता हूँ। पत्र-लेखक शायद इस बातको न जानते होगे कि मै खुद भी वैष्णव हूँ और मेरे कुटुम्बके इष्टदेव श्री रामचन्द्र प्रभु है। मैने यहाँ एक बार रामको 'श्री रामचन्द्र प्रभु' केवल इन भाईको सन्तुष्ट करनेके लिए लिख दिया है, पर खुद मुझे तो 'राम' नाम ही प्रिय है।

'श्री रामचन्द्र प्रभु' मुझे अपनेसे बहुत दूरके मालूम होते है। इसके विपरीत 'राम' तो मेरे हृदयमे राज्य कर रहे है। जहाँ मैने राम, भरत आदि पवित्र नामोका प्रयोग किया है वहाँ मेरी दृष्टिमे तो मेरी भक्ति ही टपकती है। अगर ये वैष्णव भाई ऐसा दावा करे कि रामके प्रति उनका प्रेम मुझसे ज्यादा है तो मै उनपर रामके दरबारमे दावा करूँगा और रामराज्यमे न्याय मेरे पक्षमे होगा।

हनुमानने जैसी प्रेमकी परीक्षा दी थी वैसी ही परीक्षा देनेकी इच्छा मेरी भी होती है। जो प्रियसे-प्रिय होता है वह निकटसे-निकट रहता है। उसे तो 'तू' ही कह सकते है। "तुम" या 'आप' से दूरी सूचित होती है। मै अपनी माँको किसी दिन 'तुम' या 'आप' कह देता तो वह रोती, क्योकि तब वह समझती कि उसका बेटा उससे दूर हो गया है।

मेरी जिन्दगीमे एक ऐसा समय था जब मै रामको 'श्री रामचन्द्र' के रूपमे पहचानता था। परन्तु वह समय अब चला गया है। राम तो अब मेरे घर आ गये है। उन्हे अगर मै 'तुम' या 'आप' कहूँ तो वे मुझपर रोष करेगे। मेरे न माँ है, न बाप है और न भाई, ऐसा आश्रय विहीन हूँ मै। मेरे तो अब राम ही सर्वस्व है। वही मेरी माँ, वही मेरा पिता, वही मेरा भाई और वही मेरा सर्वस्व है। मै तो उसीके जिलाये जी

रहा हूँ। सारी स्त्री-जातिमे मुझे वही दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए मैं सभी स्त्रियो-को माँ या बहनके बराबर मानता हूँ। मैं सभी पुरुषोमें भी उसीको देखता हूँ, इसलिए सबको अवस्थाके अनुसार पिता, भाई या पुत्रकी तरह मानता हूँ। मैं उसी रामको भगी और ब्राह्मणमे देखता हूँ। इसलिए दोनोका अभिवादन करता हूँ।

राम पास रहता हुआ अब भी शायद मुझसे दूर हो। इसीलिए मुझे उसको 'तू' कहकर पुकारना पडता है। जब उससे मेरा चौबीसो घटे तादात्म्य रहेगा तब तो मुझे उसे 'तू' कहनेकी भी जरूरत न रहेगी। दूसरे लोग मेरी माँके लिए 'तू' का प्रयोग नही करते थे। वे तो अनेक आदरसूचक विशेषणोका प्रयोग करते थे। इसी तरह अगर राम मेरा न होता तो मैं भी जरूर उसका अदब-लिहाज रखता। परन्तु वह अब मेरा है और मैं उसका गुलाम हूँ। इसलिए चाहता हूँ कि वैष्णव जन उससे जुदा होनेका बोझ मेरे सिरपर न रखे। जिस प्रेमके लिए शिष्टाचारकी जरूरत हो क्या वह प्रेम है? तमाम भाषाओमे और तमाम धर्मोमे ईश्वरको 'तू' सर्वनामसे ही सम्बोधित किया गया है।

द्राविड प्रान्तमे अव्वाई माई नामक मीराबाई-जैसी एक महा तेजस्विनी भक्त स्त्री थी। वह नित्य विष्णु मन्दिरमे बैठी रहती थी। वह कभी अपनी पीठ मूर्तिकी तरफ कर लेती और कभी अपने पैर उसके सामने फैलाकर बैठ जाती। एक दिन कोई भावुक किन्तु बाल-भक्त मन्दिरमे दर्शन करनेके लिए आया। ईश्वरके साथ अव्वाई माईका कितना गहरा सम्बन्ध था, यह बात उसे मालूम न थी। उसने आँखे तरेरकर अव्वाई माईको कुछ सत्याग्रही गालियाँ सुनाईं। अव्वाई माई खिलखिलाकर हँस पडी। उसके हास्यसे सारा मन्दिर गूँज उठा। अव्वाई माई उस भक्तसे बोली — "बेटा! आ यहाँ बैठ जा। बच्चा! तू कहाँसे आया है? तूने मुझे तीखी बात कही, परन्तु तू एक बात बता। मैं बूढी हो गई, परन्तु मुझे कोई जगह ऐसी नही मिली जहाँ भगवान् न हो। जहाँ-कही मैं पैर फैलाती हूँ वही वह सामने खडा दिखाई देता है। अब यदि तू कोई जगह बता दे जहाँ वह न हो तो मैं जरूर उसी ओर पैर फैलाऊँगी।"

वह बाल-भक्त था विनयी। अज्ञानके कारण अव्वाई माईको पहचान नही पाया था। इतना सुनते ही वह गद्गद् हो गया। उसकी आँखोसे मोती-जैसे आँसू बह उठे और माईके अँगूठोपर टपकने लगे। माईने अपने पैर खीचे, किन्तु उसने उसके पैर पकड लिये और कहने लगा, "माँ मुझसे भूल हुई। मुझे क्षमा करो, मेरा उद्धार करो।" माईने पैर खीच लिये और उसे अपनी छातीसे लगाकर चूमने लगी। फिर खिलखिलाई और कहने लगी — "जा, इसमे क्षमा करनेकी क्या बात है? तू तो मेरा बेटा है। मेरे ऐसे कितने ही बेटे है। तू समझदार है। इससे तेरे मनमे ज्यो ही कुछ शका उठी, तूने मुझसे कह दी। जा, श्रीरग भगवान तेरी रक्षा करेगे। परन्तु बेटा, इस माँकी याद रखना।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-६-१९२४

१०१. टिप्पणियाँ

एक भूल

मैंने 'नवजीवन' मे लिखा था कि मजदूरोके बच्चोके स्कूलोंके सब बच्चे खादीके ही कपडे पहनते है। किन्तु 'मजूर सन्देश' में ऐसी कोई खबर नही छपी है। उसमे तो यही है कि इन बच्चोमे से अधिकाश खादीके कपडे पहनने लगे है। उक्त भूल मेरी भूल थी। उतावलीमें ऐसी भूलें हो जाती है, पाठक यह समझकर मुझे क्षमा करेंगे। 'मजूर सन्देश' के सम्पादक अतिशयोक्ति करके कोई विशेष लाभ उठानेकी इच्छा नही रखते। अतिशयोक्तिसे कार्य नही बढता। वह वस्तुत पिछडता है। जो स्थिति है नही, "मौजूद है", कहनेसे वह मौजूद नही हो जाती। हिन्दुस्तानकी भुखमरी एक तथ्य है। यह कोई करुण रस प्रधान नाटक नही है। हिन्दुस्तानके करोडो हड्डियोके ढाँचे करुणाकी मूर्ति बने हुए है। हम उनमे नाटक खेलकर रक्त-मास नही भर सकते। स्वराज्य भी सच्चा खेल है, इसलिए हम जितना करेंगे उतना ही फल मिलेगा। असली खादी एक गज बिकेगी तो उससे हिन्दुस्तानके गरीबोंकी जेबोंमे आठ दस आने पैसे जायेंगे।

उर्दूमें 'यग इडिया'

एक मुसलमान भाई कराचीसे लिखते है, "आप गुजरातियोंके लिए गुजराती 'नवजीवन', हिन्दी भाषियोके लिए 'हिन्दी नवजीवन' और अग्रेजी पढे-लिखे लोगोके लिए अग्रेजीमें 'यग इडिया' निकालते है। मुसलमानोकी सात करोडकी आबादी है, और उनमे से अधिकतर केवल उर्दू जानते है। क्या आप उनके लिए 'नई जिन्दगी' अर्थात् 'उर्दू नवजीवन' प्रकाशित करके उन्हे आभारी नही करेंगे? यदि ऐसा किया जा सके तो हिन्दू-मुस्लिम झगडे कम होंगे और दोनोके बीच मैत्रीकी गाँठ मजबूत होगी। जबसे गुजराती 'नवजीवन' आरम्भ हुआ है तबसे मेरे मनमे ऐसी हविस अवश्य पैदा हुई है, लेकिन मुझे उसकी आवश्यकताके बारेमे सन्देह है। मै ऐसा पत्र नही निकालना चाहता जिसका खर्च हमारे सिर पडे। उर्दू नवजीवन पढनेवाले मुसलमान भाइयोंके अच्छी सख्यामे मिल जानेपर ही 'उर्दू नवजीवन' निकाला जा सकता है। मैंने मुसलमान भाइयोंसे बातचीत की है। उनका अभिमत 'उर्दू नवजीवनके' विरुद्ध है। मै इसीलिए शान्त हो गया हूँ। उन्होंने मुझे बताया है कि उर्दूके अखबार 'यग इडिया'का खासा हिस्सा ले लेते है।

एक निमन्त्रण पत्र

एक भाई अकोलासे लिखते है कि यहाँसे लगभग २० मील दूर एक सज्जन रहते है। वे नागपुरके काग्रेस अधिवेशनके[1] बादसे खादीका ही इस्तेमाल करते है। जो मनुष्य पिछले दो सालसे खादी पहन रहा हो, वे उसीके हाथका बना और परोसा

१ दिसम्बर १९२० में।

भोजन करते है। अब उनकी लडकीका विवाह होनेवाला है। उन्होने खादीधारी दामादकी खोज की और वैसा दामाद मिलनेपर ही सगाई की। उन्होने जो कुकुम-पत्री भेजी है उसमे लिखा है, "कृपया विवाहमे खादी पहनकर ही आये। यदि वैसा न कर सके और विवाहमे न आ सके तो मुझे यह बात बुरी नही लगेगी।" हम इस धीरज और दृढताके लिए इन भाईको बधाई देते है। यदि हममे भी उन्ही-जैसी दृढता हो तो हमे इसका अनुकरण करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन ५-६-१९२४

१०२. भेंट : 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के प्रतिनिधिसे

[साबरमती आश्रम अहमदाबाद
५ जून, १९२४]

श्री गांधीने आज दोपहर बाद साबरमती आश्रममें 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के विशेष प्रतिनिधिको मुलाकात देनेकी कृपा की। मुलाकात बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनके उस विचित्र प्रस्तावके सम्बन्धमें थी, जिसमें श्री अर्नेस्ट डेके[1] हत्यारे गोपीनाथ साहाकी "देशभक्ति" के बारेमें प्रशंसा की गई थी। कहा जाता है कि श्री दास और उनके अनुयायियोने उस प्रस्तावका समर्थन किया था। परन्तु श्री गांधीने नि संकोच होकर कडेसे-कड़े शब्दोमें प्रस्तावके मुख्य आशयकी निन्दा की, पर उन्होने श्री दासके विचारोके सम्बन्धमें उनसे व्यक्तिगत तौरपर बात किये बिना उनके द्वारा उठाये गये कदमके बारेमें अपनी राय प्रकट करनेसे इनकार कर दिया।

श्री गांधीसे मेरा पहला प्रश्न यह था : "मै समझता हूँ कि आपने श्री अर्नेस्ट डेकी हत्याके सम्बन्धमें श्री दास द्वारा अपनाये गये रुखके बारेमे बंगाल प्रान्तीय सम्मेलनमे कलकत्तासे आया हुआ तार पढ लिया होगा। उसमें कहा गया है कि श्री दास और उनके अनुयायियोने प्रस्ताव पास कराते समय श्री डेकी हत्याके लिए गोपीनाथ साहाकी निन्दा करनेके साथ ही उनकी देशभक्ति और उनके ध्येयकी सराहना करते हुए इस हत्याको उच्चादर्शपूर्ण और सराहनीय बतलाया है। क्या आपकी भी राय वही है जो श्री दासकी है?

श्री गांधीने उत्तरमे कहा :

मै नही जानता कि इसके बारेमे श्री दासकी क्या राय है। आपने एसोसिएटेड प्रेसका जो तार मुझे दिखाया है, उसके अलावा मैने इस सिलसिलेमे अन्य ऐसी कोई

१ एक अंग्रेज जो शासनतन्त्रसे किसी प्रकार भी सम्बन्धित नहीं था, पर जिसे गलतीसे एक उच्च पुलिस अधिकारी समझकर जानसे मार दिया गया था।

वस्तु नही देखी हे जिससे मुझे श्री दासकी राय मालूम हो सके। इसलिए यदि आप कोई ऐसा काल्पनिक प्रश्न पूछे कि किसी व्यक्तिका उद्देश्य कितना ही भला क्यो न हो, उसके लिए किसीकी हत्या करना मैं ठीक मानूंगा या नही तो उसका उत्तर मैं अवश्य दूंगा। मेरा दो टूक उत्तर यही होगा कदापि नही। आपके द्वारा पूछे गये प्रश्नका उत्तर मैं जान-बूझकर ही सीधे-सीधे नही दे रहा हूँ। कारण यह हे कि ऐसे वडे-वडे सम्मेलनोकी कार्यवाहियोके जो सक्षिप्त विवरण तार द्वारा भेजे जाते है, उनको मै भरोसेके लायक नही मानता, फिर चाहे वे समाचार पक्षपातरहित व्यक्ति द्वारा ही क्यो न भेजे गये हो। इसलिए जवतक मुझे पूरी तरहसे यह न मालूम हो जाये कि वगाल-सम्मेलनमे क्या हुआ और श्री दासने उसमे ठीक-ठीक क्या कहा, तवतक मैं उनके रुखके बारेमे कोई मत प्रकट न करूँगा, और सच तो यह हे कि मै जब एक वार उनमे जुहू तटपर मिला था तो उन्होने मुझे आगाह कर दिया था कि मैं उनके खिलाफ कही गई किसी भी वातपर यो ही यकीन न कर लूँ, क्योकि उन्होने वताया था कि उनका प्रभाव कम करनेकी साजिश चल रही है।

क्या आपका खयाल हे कि वह प्रस्ताव नैतिक अथवा राजनीतिक दृष्टिसे या आपके अहिंसा सिद्धान्तकी दृष्टिसे उचित ठहराया जा सकता है?

मेरी रायमे, अहिंसाके मेरे अपने सिद्धान्तसे किसी भी हत्याका मेल नही बैठ सकता और राजनीतिक हत्याको नैतिक अथवा राजनीतिक दृष्टिसे उचित ठहराया जा सकता हे या नही, यह तो अलग-अलग व्यक्तिगत दृष्टिकोणो और मान्यताओकी वात है। मैं ऐसे वहुत-से भारतीयो और यूरोपीयोको भी जानता हूँ, जो मानते हैं कि राजनीतिक कारणोमे की गई किसी हत्याको ऊँचेसे-ऊँचे नैतिक मानदण्डसे उचित ठहराया जा सकता है। स्पष्ट ही है कि मैं इस दृष्टिकोणसे कतई सहमत नही।

लोक-मानसपर और खासकर निरक्षर और अज्ञानी लोगोके मनपर इस प्रस्ताव-का प्रभाव क्या पडेगा इसके बारेमें आपका क्या मत है?

श्री गाधीने कहा कि जवतक मैं इस मामलेमें श्री दासके विचारोको खुद उन्हींसे वातचीत करके न जान लूँ, तवतक मैं इस सम्बन्धमे कुछ भी नहीं कह सकता। हाँ, अगर प्रस्तावके शब्द ठीक वही हे, जैसे मुझे दिखाये गये हे तो मै अवश्य ही उसे दुर्भाग्यपूर्ण और काग्रेसके सिद्धान्तोसे असगत मानता हूँ। ऐसे प्रस्तावसे अपढ और वेसमझ लोग गुमराह हुए विना न रहेगे।

क्या आपका खयाल हे कि वगाल प्रान्तीय सम्मेलन द्वारा पारित इस प्रस्तावमें निहित सिद्धान्तको यदि कोई राजनीतिक दल अपना ले तो वह भारतके हितकी दृष्टिसे लाभप्रद रहेगा?

मैं जानता ही नही कि प्रस्तावमे हे क्या-क्या। आपने मुझे जो तार दिखलाया है, उसमे प्रस्तावका पूरा पाठ तो है नही। लेकिन फिर भी तारमे उसका जो आशय व्यक्त किया गया है, वह यदि सही हो तो उसका अर्थ लगाना मेरे लिए कठिन होगा ओर क्योकि यदि गोपीनाथ साहाका कृत्य निन्दनीय था — और मेरी तुच्छ सम्मतिके

अनुसार वह निन्दनीय है ही तो उनके कृत्यमे ऐसी और कौन चीज थी जिसे उनकी देशभक्ति माना जा सकता और जिसकी हम प्रशसा करते? इसीलिए मै तो कल्पना भी नही कर सकता कि गोपीनाथ साहाको श्रद्धाजलि अर्पित करनेमे जो सिद्धान्त निहित है, वह किसी भी राजनीतिक दलके द्वारा अपनाये जाने योग्य है।

क्या आप मानते है कि काग्रेसके वर्तमान गठन और सिद्धान्तको देखते हुए वह ऐसे किसी सिद्धान्तको मान्यता दे सकती है?

नही।

क्या आप गोपीनाथ साहा-जैसे हत्यारोको देशभक्तोकी श्रेणीमें रखेंगे?

गोपीनाथ साहा-जैसेको भी मै देशभक्त अवश्य कहना चाहूँगा, लेकिन एक अनिवार्य विशेषणके साथ ही — अर्थात् मै उन्हे "गुमराह करनेवाला" देशभक्त कहूँगा। उनके आत्मत्याग, मृत्युके प्रति उनका उपेक्षा भाव तथा उनके देश-प्रेमपर सन्देह किया ही नही जा सकता, लेकिन इसी कारण मै जहाँ उनको गुमराह करनेवाला देशभक्त कहूँगा, वहाँ उनके कामकी निन्दा भी कडेसे-कडे शब्दोमे करूँगा और मै ऐसे किसी भी प्रस्तावका समर्थन नही करूँगा, जिसमे उनके इरादेकी तारीफ की गई हो। हम तो व्यक्तिके कामके बारेमें ही अपनी कोई धारणा बना सकते है और उसका काम यदि समाजके लिए बुरा और हानिप्रद हो तो हम उसके इरादेको ही देखकर उसकी तारीफ नही कर सकते। मेरी विनम्र सम्मतिमे ससारका सबसे अधिक अपकार वे ही लोग करते है जिनके इरादे तो नेक होते है लेकिन जो अपने इरादे पूरे करनेके लिए कुकृत्य करनेसे नही हिचकते। लोगोके दिलोमे युगोसे एक अन्धविश्वास घर किये हुए है अर्थात् किसी भी साधनको उनके उद्देश्यके आधारपर ही भला या बुरा ठहराया जाना चाहिए। पर चूँकि मेरे नजदीक यह बात हाथ-कगनकी तरह स्पष्ट है और प्रत्यक्ष है कि साधन और साध्यमे कोई भेद नही किया जा सकता और काममे लाये गये साधनोका स्पष्ट और प्रत्यक्ष फल ही उसका उद्देश्य होता है, इसीलिए मै सरकारकी वर्तमान शासन-प्रणालीका और उचित-अनुचितका विवेक किये बिना की गई उसकी प्रवृत्तियोका भी अपनी सारी शक्ति लगाकर विरोध कर रहा हूँ।

क्या मै अब आपको उन दिनोकी याद दिला सकता हूँ जब बगालमें राजनीतिक अपराधोका दौर शुरू ही हुआ था? विदेशोमें लोगोका खयाल है कि यदि आपने अपना अहिंसक असहयोग आन्दोलन शुरू न किया होता तो बंगालमें अराजकतावादी गतिविधियाँ बन्द न होती। उनका यह भी कहना है कि अराजकतावादी गतिविधियाँ इसी आन्दोलनके कारण स्थगित हुई थीं, लेकिन आपके जेल चले जानेपर आन्दोलनका प्रभाव कम हो जानेसे विप्लववादी लोगोने अपनी गतिविधियाँ फिर शुरू कर दी है। क्या आप मेरे इस विश्लेषणसे सहमत है?

मै ऐसा अवश्य मानता हूँ कि बगालमे अराजकतावादियोकी गतिविधियोमे अहिसात्मक आन्दोलनके कारण ही शिथिलता आई थी। इस आन्दोलनके लिए भी उतने ही आत्म-त्यागकी जरूरत थी जितना आत्म-त्याग दिखानेकी क्षमता विप्लवकारियोमे हो सकती है। बगालमे आज जो विप्लववादी प्रवृत्तियाँ फिर उभरती दिखाई पड

रही है, इनके पीछे उनका यह विश्वास काम कर रहा है कि अहिंसाका तरीका असफल रहा है।

क्या आप बंगालमें राजनीतिक अपराधोंकी रोक-थाम करने तथा वहांके युवकोंको मन, वचन और कर्मसे अहिंसा सिद्धान्तका समर्थक बना डालनेका कोई अमली कदम उठानेकी सोच रहे हैं?

हां, मैं अपने इन गुमराह मित्रोंको सही राहपर लानेके उपाय जरूर सोच रहा हूँ। मैं जान-बूझकर "मित्र" शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ। इसलिए कि उनकी आत्म-त्यागकी भावनाके लिए मेरे हृदयमें किसीसे भी कम प्रशंसात्मक भावना नहीं है। पर मैं यह भी जानता हूँ कि उनके काममें देशका बड़ा अहित होता है। इसके फलस्वरूप अंग्रेजोंका इन देशपर अपना शासन कायम रखना नामुमकिन भले हो जाये, परन्तु भारतको इस रास्ते चलकर कभी भी स्वराज्य नहीं मिल सकता। मेरा निश्चित मत है कि भारतकी आत्मा तत्त्वत: अहिंसामय और विनयशील है। इसलिए भारतमें हिंसाके पनपनेके लिए अनुकूल वातावरण नहीं है। ईश्वरकी कृपासे यदि मैं स्वस्थ रहा तो आशा है कि मैं अराजकतावादी गतिविधियोंका मुकाबला कर सकूंगा और अराजकतावादियोंको दिखा दूंगा कि स्वराज्य प्राप्त करनेके मेरे कार्यक्रममें विशुद्ध और कष्ट-साध्य आत्मत्यागकी गुंजाइश कहीं अधिक है और यदि वे पूरे उत्साहसे मेरा समर्थन करें तो वे अपने इरादोंके लिए ही नहीं अपने कामोंके लिए भी लोगोंकी श्रद्धाके पात्र बन जायेंगे। तब अदनेसे-अदना भारतीय भी बिना किसी संकोचके, दूसरे किसीको जोखिममें डाले बगैर उनके कामोंका अनुकरण करने लगेगा।

इसके पश्चात् हमारे प्रतिनिधिने दूसरे विषयकी चर्चा छेड़ दी, मध्य प्रान्तके स्वराज्यवादियोंके विद्रोहकी चर्चा। उसने कहा कि डा० मुंजेने इस आशयका वक्तव्य दिया है कि स्वराज्यवादी लोग अब अपनी सारी शक्ति कांग्रेसपर से श्री गांधीका प्रभाव खत्म करनेमें लगायेंगे और यह करेंगे कि कांग्रेस दलमें भाई-भाईका संघर्ष अनिवार्य हो जाये। इस वक्तव्यसे तो यही लगता है कि स्वराज्यवादियोंने विद्रोहकी ठान ली है। क्या आपका खयाल है कि मध्य प्रान्तसे बाहरके स्वराज्यवादी भी डा० मुंजेके विचारोंसे कमोवेश सहमत हैं? क्या आपको ऐसी आशंका है कि स्वराज्यवादी लोग आपके सिद्धान्त और कार्यक्रमके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा उठायेंगे। उस हालतमें क्या आप उनके प्रति अपनी तटस्थता त्यागकर उनके विरुद्ध प्रचार शुरू करेंगे?

मैं नहीं जानता कि डा० मुंजेके विचारोंसे और भी बहुत-से स्वराज्यवादी लोग सहमत हैं या नहीं। वे सहमत हों या न हों, मुझे इससे कोई परेशानी नहीं, क्योंकि इसमें किसी भी पक्षकी प्रतिष्ठाकी हानि होने नहीं जा रही है, भले ही इसका कारण सिर्फ यही हो कि मैं "भाई-भाई" की लड़ाईमें शामिल नहीं होऊँगा। इस तरहकी कोई भी लड़ाई तो तभी चल सकती है जब दो पक्ष लड़ाईपर आमादा हों, किसी एकके चाहनेसे नहीं। राजनीतिक कामका मेरा जो कार्यक्रम है, उसमें ऐसी हर सम्भावना-से बचकर चलनेकी कोशिश रहती है। मेरे कथनका अभिप्राय ठीक वही है जो

मेरे कथनका शाब्दिक अर्थ है। मतलब यह कि मैंने दोनो पक्षोके हितका ध्यान रखकर ही काग्रेस कार्यकारिणी कमेटियोपर एकपक्षीय नियन्त्रणकी बात रखी है और यदि मै देखूँगा कि स्वराज्यवादी लोग काग्रेस कार्यकारिणी कमेटियोपर अपना अधिकार जमानेकी जरा भी कोशिश करते है तो मै अपने तई उनकी मुखालफत नही करूँगा, मै उनको अधिकार कर लेने दूँगा। उसके बाद मै काग्रेसके बाहर एक दूसरा सगठन बनाऊँगा और काग्रेसके कार्यक्रममे विश्वास रखनेवाले लोगोसे काग्रेससे अलग रहकर इस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए कहूँगा। इस तरह मै स्वराज्यवादियोसे कभी भी टक्कर नही लूँगा। मुझे उनके विरुद्ध प्रचार करनेकी कोई जरूरत ही नही रह जायेगी।

[अग्रेजीसे]

टाइम्स ऑफ इडिया, ६-६-१९२४

१०३. मथुरादास त्रिकमजीको[1] लिखे पत्रका अंश

[६ जून, १९२४][2]

मैंने तुम्हारा कृष्णदासके नाम लिखा पत्र पढ लिया है। लेख 'यग इडिया' मे देखनेको मिलेगा। यदि काग्रेसके सदस्य चरखेकी शक्तिमे विश्वास रखते है तो उन्हे चरखा अवश्य चलाना चाहिए। मै बैठकमे[3] वाद-विवाद कदापि न होने दूँगा। यदि मेरे सुझाव सब लोगोको स्वीकार नही हुए तो मै वहाँ विवादमे नही पडूँगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१०४. पत्र : वसुमती पण्डितको

साबरमती

ज्येष्ठ सुदी ५ [७ जून, १९२४][4]

चि० वसुमती,

मै तुम्हारे पत्रकी बाट ही जोह रहा था। अब तुम्हारी तबीयत ठीक हो गई होगी। मुझे यहाँ गर्मी बिलकुल नही लगती। रातको तो अच्छी खासी ठडक हो जाती है। अक्षर स्याहीसे लिखनेकी आदत डालो और सुन्दरसे-सुन्दर। किसी पुस्तक या दूसरी

१. मथुरादास त्रिकमजी, गाधीजीकी बहनके नाती।

२. प्रकाशित साधन-सूत्रके अनुसार।

३. अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी २७ जूनसे ३० जून १९२४ तक अहमदाबादमें की गई बैठकमें।

४. पत्रमें मणि, राधा और कीकी बहनके स्वास्थ्यके जिक्रसे पता चलता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था, क्योंकि गाधीजीने मार्च और अप्रैल, १९२४ के दौरान जो पत्र लिखे थे उनमें इस बातका उल्लेख मिलता है। उस वर्षमें ज्येष्ठ सुदी पचमी, ७ जूनको थी।

किसी चीजकी जरूरत हो तो मँगा लेना। स्वास्थ्य बिलकुल ठीक कर लेना। मणिकी तबीयत अच्छी है। राधाकी ज्यादा अच्छी है। कीकी बहनकी तबीयत भी ठीक ही है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च] जमनादास और प्रभुदास आबू गये हुए हैं। पाँच-छः दिनमें वापस आयेंगे।

गंगास्वरूप वसुमतीबहन
[illegible] आरामभवन
देवलाली

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ८८३) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१०५. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्का ध्येय

एक मित्रने काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के सम्बन्धमें एक लम्बा पत्र लिखा है। मैं यहाँ उसका एक अंश[1] उद्धृत करता हूँ:

मेरी रायमें का० रा० परिषद्का ध्येय यह होना चाहिए:

(१) ऐसे काम करना जिनसे हरएक रियासतमें राजा और प्रजाका सम्बन्ध जनताके लिए कल्याणकारी बने।

(२) ऐसे उपाय करना जिनसे हरएक राज्य और उसकी प्रजाके बीचके निकटके सम्बन्ध बनें और वे एक-दूसरेको लाभ पहुँचायें।

(३) ऐसे उपाय करना जिनसे समस्त काठियावाड़की प्रजाकी आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उन्नति हो। परिषद्का प्रत्येक कार्य शान्ति और सत्यके ही रास्तेसे किया जाये।

परिषद् राजाओंको अंग्रेजी सरकारके कब्जेसे निकालनेकी जिम्मेदारी नहीं उठा सकती। यदि उसका ध्येय यह रखा गया तो राजा और प्रजा दोनोंकी हानि होगी।

राजा लोग सरकारके मातहत हैं। वे ऐसी परिषद् करनेकी बातसे सहमत नहीं हो सकते। यही नहीं, उन्हें अपनी आजादीकी हलचल पसन्द भी हो, फिर भी उसकी उन्हें मुखालफत ही करनी होगी। इसलिए जबतक राजा लोग खुद आजादीको अपना ध्येय बनाकर उसके लिए खुले तौरपर आन्दोलन न करें अथवा करनेके योग्य न बनें तबतक मैं इस दिशामें किये गये प्रजाके कामोंको फिजूल और हानिकर ही मानता हूँ।

राजाओंके अन्याय और जुल्मके खिलाफ लोकमत तैयार करना तो परिषद्का काम होना ही चाहिए। यह बात पहले नियममें आ जाती है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

हरएक राज्यकी प्रजा अपने-अपने स्थानीय सवालोका निपटारा भले ही करे; परन्तु काठियावाडमे एक ही तरहके लोग रहते है, इसलिए उसे समस्त काठियावाडकी परिषद् करनेका अधिकार हे और यह उसका फर्ज भी है। परिषद् सारी प्रजाके सामान्य सवालोकी चर्चा तो कर ही सकती हे, साथ ही वह विभिन्न स्थानोके प्रश्नोको भी हाथमे लेकर उनके विषयमे समस्त प्रजाका मत तैयार करके, उस मतके द्वारा मुकामी सवालोके हलमे सहायता कर सकती है।

मै "राजनीतिक" शब्दका व्यापक अर्थ एक पिछले अकमे स्पष्ट कर चुका हूँ। मै मानता हूँ कि इसका सच्चा अर्थ वही हे। परिषद्को लोकप्रिय बनानेका काम अब किया जाना है। लोकप्रियताका अर्थ इतना ही नही हे कि लोग उसकी सभाओमे आने लगे, बल्कि इसका यह अर्थ है कि लोग परिषद्की मार्फत अपने दु खोको दूर करानेके उपाय खोजे और परिषद्की सलाहके अनुसार चले। किन्तु इस कामसे पहले परिषद्के कार्यकर्त्ताओको लोक-सेवा करनी चाहिए। उन्हे देहातके लोगोमे जाकर काम करना चाहिए और उन्हीकी तरह गरीबी अपनाकर सादगीसे रहना चाहिए।

उन्हे राज्योसे दुश्मनी नही ठाननी चाहिए। हमारा असहयोग राजाओसे नही है। हमने अभी राजाओसे आशा नही छोडी है और मैने तो हरगिज नही छोडी है। ऐसा नही कि मै राजाओके जुल्मोसे अनजान हूँ। मै उनके अनियन्त्रित और बेजा खर्चसे बहुत व्यथित हूँ। उन्हे स्वदेशवासकी बनिस्बत यूरोपवास ज्यादा पसन्द है। यह खतरनाक बात है। परन्तु मै उसके लिए उनको दोष नही देता। यह भी अग्रेजी शासन-प्रणालीका ही एक फल है। राजा लोग लडकपनसे बिलकुल पराधीन रहते है। अग्रेजी शिक्षक उनके सरक्षक बनते है। उन्हे निर्देश होता है कि वे राजाओको अग्रेजोके समान बनाये, उनमे अग्रेजी शासनका प्रेम पैदा करे और अग्रेजोकी तमाम बातोमे उनकी रुचि उत्पन्न कराये। हम कितने ही धनी लोगोमे भी यूरोपके प्रति ऐसा झुकाव देखते है। राजा लोगोमे यह कुछ अधिक मात्रामे दिखाई देता है। दोनोके इस विदेश-प्रेमका कारण एक ही है। मेरी पक्की राय है कि यदि काठियावाडमे अर्थात् देशी राज्योमे लोकमत तैयार हो और वह जड पकड ले तथा लोग निर्भय बन जाये तो हमारे राजा जल्दी ही उसके आगे झुक जाये।

राजा लोगोमे बहुतेरे ऐब है। फिर भी मै उन्हे सरल मानता हूँ। वे ईश्वरसे डरते है। उनमे लोकमतका डर तो बहुत होता है। ये दोनो मेरे निजी अनुभव है। परन्तु जहाँ लोकमत हो ही नही अथवा जहाँ लोग महज खुशामदी हो, वहाँ राजा बेचारा क्या करे? जब राजाओको उनका दोष बतानेवाला और कडवी बाते कहनेवाला कोई नही मिलता तो वे निरकुश बन जाते है, और फिर उन्हे सरकारकी मदद भी प्राप्त है। इस प्रकार परिस्थितियाँ उनकी शत्रु और अवनतिका कारण बन जाती है। हाँ, यह सच है कि राजा बडे भोडे ढगसे जुल्म करते है। इसलिए वह हमे बहुत खलता है। इसके विपरीत सरकारका जुल्म सुधरे हुए ढगसे चलता है। इसलिए वह असह्य नही लगता। फिर अग्रेजी शासनमे तो कितने ही सहयोगी मिल जाते है और लोकमतकी सहायता भी उपलब्ध रहती है, देशी राज्योमे अभी थोडे ही साहसी

लोग हिम्मतवर निकलते है। इसलिए उन्हे दबा देना आसान होता है। ऐसा होते हुए भी मै मानता हूँ कि यदि थोडे से भी विनयी, नम्र, सुशील और विवेकवान् लोकसेवक पैदा हो जाये तो राजा लोग उनके सामने झुकेगे और उनका यह झुकना डरके कारण नही, कार्यकर्त्ताओंके गुणके कारण होगा।

यदि हम मनमे राजाओंके प्रति शका रखकर काम शुरू करेगे, उनकी बुराई ही परखनेका इरादा रखेगे और उनकी अच्छी बातोकी ओर देखेगे तक नही तो हम राजाके वहीखातेमे पहलेसे ही खर्चकी मदमे दर्ज कर लिए जायेगे और फिर जमाकी मदमे दर्ज होनेके लिए बहुत मेहनत करनी होगी।

इससे कोई यह न समझे कि मै भीरुतामे वृद्धि कर रहा हूँ। मै उद्दण्डता और नम्र निर्भयताका भेद बता रहा हूँ। आमका पेड ज्यो-ज्यो बढता है त्यो-त्यो झुकता है। इसी तरह बलवान्का बल ज्यो-ज्यो बढता जाता है त्यो-त्यो वह नम्र होता जाता है और उसमे ईश्वरका डर बढता जाता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२८

१०६. मेरे विचार

एक भाईने मेरे विचारोपर किसी जैन मुनिकी राय लिख भेजी है और वे चाहते है कि मै उसपर कुछ कहूँ। मुनिजीकी राय और उसपर मेरी टिप्पणी इस तरह है

(१) अगर गांधीजीके खयालातके मुताबिक सोलहो आने काम होने लगे तो इससे जैन धर्मको नुकसान पहुँचेगा।

मुझे विश्वास है कि अगर मेरे विचार कार्यरूपमे परिणत हो जाये तो उससे संसारका कल्याण ही होगा। संसारका कल्याण जैन धर्म अथवा किसी दूसरे मजहबको नुकसान पहुँचा ही नही सकता। अहिंसाका मतलब है प्रेम। शुद्ध प्रेमके ही बलपर सुधार करनेके तरीकेसे नुकसान होना कैसे मुमकिन है?

(२) खादीसे अन्त्यजोंका फायदा है, मगर इससे जैनोंका तो बेहद नुकसान है।

यह राय मेरी समझमें नही आ सकती। अन्त्यज क्या कभी श्रावक हो ही नही सकता? फिर श्रावकोंको नुकसान पहुँचनेका अर्थ तो यही हो सकता है कि जैन लोग विदेशी कपडेकी जो तिजारत करते है उसके टूट जानेका अन्देशा हो सकता है। परन्तु अगर उनका यह व्यापार समाप्त भी हो जाये तो वे दूसरा व्यापार कर सकते है। वे खादीकी ही तिजारत क्यो न करे? जैनोके अलावा दूसरे लोग भी विदेशी कपडेका व्यापार करते है। फिर दूषित व्यापारका बन्द होना तो अन्तत धार्मिक दृष्टिसे वाञ्छनीय ही माना जायेगा।

(३) व्यापारी चाहे कोई भी काम करे, उससे उसे पाप नही लगता।

यह बात जैन धर्मके मुताबिक नही हो सकती। मैंने किसी भी मजहबमे ऐसा विचार नही देखा।

(४) गांधीजीके स्तुति-स्तोत्रोमे बहुत अतिशयोक्ति की जाती है। उनमे महावीरके समान गुणोका आरोप करना नामुनासिब है।

मै इस रायसे बिलकुल सहमत हूँ। यदि स्तुतिकार मेरी तारीफके पुल बॉधना छोडकर केवल अपने कर्त्तव्यका पालन करनेमे ही लगे रहे तो यह मेरी बहुत बडी स्तुति होगी और उसमे न तो अत्युक्तिकी गुंजाइश रहेगी और न किसी अन्य दोषकी।

(५) अन्त्यज चाहे कितना ही पवित्र क्यो न हो जाये, फिर भी वह है तो आखिर अन्त्यज ही।

इस विचारमे न तो धर्म है और न विवेक।

(६) गांधीजी अपनेको कट्टर वैष्णव मानते है। परन्तु इससे उनका मतलब कुछ और ही है। यदि गांधीजीके तमाम विचार कार्यान्वित हो जाये तो तमाम धर्मोका नाश हो जायेगा। गांधीजी ढोगी है।

मेरा विश्वास तो यह है कि यदि मेरे सभी विचारोके अनुसार काम होने लगे तो सभी मजहबोकी बढती हो और तमाम मजहबी झगडे समाप्त हो जाये। अगर मै कहूँ कि मै ढोगी नही हूँ तो इसे कौन मानने लगा? इसलिए ढोगीपनके इल्जामका मुनासिब जवाब तो मेरी मौतके बाद ही मिलेगा।

उन्होने मुझपर इसके अलावा दूसरे इल्जाम भी लगाये है। परन्तु मैने ऊपर वे ही दिये है जो खास-खास है। जिन भाईने इन इल्जामोको लिखकर मेरे पास भेजा है, उसको तथा दूसरे लोगोको, जिन्हे मेरे विचार पसन्द है, मै सलाह देता हूँ कि वे मेरे विचारोकी शाब्दिक सफाई देनेके फेरमे हरगिज न पडे। यह भी एक तरहसे मेरे विचारोपर अमल करना ही है। जो लोग मेरे विचारोके अनुसार चलते है उन्हे तो यह देहाती कहावत याद रखनी चाहिए — "आम खानेसे मतलब, पेड गिननेसे क्या?" आरोपोका उत्तर देनेसे द्वेष पैदा होता है, वक्त फिजूल जाता है और एक-दूसरेके प्रति मनमे दुर्भाव प्रबल होते है सो अलग। फिर हमे यह भी समझना चाहिए कि यह माननेकी कोई जरूरत नही कि सभी आरोप द्वेषसे प्रेरित होकर ही लगाये जाते है। मेरी त्रुटियोको देखनेवाले कितने ही लोग सच्चे दिलसे इस बातको मानते है कि मेरे बहुत-से कामोसे देशको नुकसान ही पहुँच रहा है। उचित तो यह है कि हमारे मित्रोपर जो दोष लगाये जाये हम उनकी छानबीन करके देखे और अगर हमे उनमे से कोई दोषारोपण उचित मालूम पडे तो हम उसे उस मित्रको बता दे। इन्सान अपने विरोधी पक्षकी बात सुननेके लिए तैयार नही रहता, परन्तु जब उनके मित्र उसे उसका दोष बताते है तब अगर उसमे जरा भी सरल भाव हो तो वह उससे तुरन्त चेत जाता है और विनयपूर्वक आत्म-निरीक्षण करने लगता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०७. महा गुजरातका कर्त्तव्य

यह समय पत्रकी कसौटीका है। यदि हम अपना सच्चा स्वरूप जगतके सामने रखे और खुद भी उसे समझे तो मेरा विश्वास है कि हम अपनी लडाई आधी जीत लेगे। यदि हम अपना वास्तविक मूल्य जान ले और लोगोको भी वही वताये तो हम आगे वढ सकते है। लेकिन जो मनुष्य अथवा समुदाय जगतके सामने अपने असली स्वरूपको न रखकर कोई दूसरा ही स्वरूप रखता है वह जगतको और अपने आपको धोखा देता है। वह आगे तो वढता ही नही है। जैसे मृग-मरीचिकाके जलसे प्यास नही वुझती और हम उसके पीछे भागकर व्यर्थ श्रम करते है, वैसे ही अपना सही स्वरूप छुपाकर दूसरा स्वरूप दिखाना समयका दुरुपयोग करना ही है।

मैने जेल जाते समय[1] चारो-ओर मिथ्या आडम्वर देखा और मुझे अव भी वही दिखाई दे रहा है। हम सवका इस मिथ्या आडम्वरसे छुटकारा पा जाना आवश्यक है। इस विचारसे मै अ० भा० का० क० की आगामी वैठकमें[2] कुछ वातो-का स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ। मै जानता हूँ कि कांग्रेस कमेटीके सदस्योका चुनाव लोकतन्त्रीय पद्धतिसे किया जाता है। मैने उसमे कोई परिवर्तन करनेका सुझाव नही दिया है। मैने तो उस नियमको वदले विना ऐसा मार्ग सुझाया है जिससे हम वस्तुत जैसे है वैसे ही दिख सके। मैने इसीलिए यह सलाह भी दी है कि जवतक खितावो, सरकारी स्कूलो, अदालतो, विधान-परिषदो और विदेशी कपडेके वहिष्कारका प्रस्ताव वना हुआ है तवतक इस समस्त कार्यक्रममें जिनकी श्रद्धा न हो उन सवको चाहिए कि वे कांग्रेस कमेटीसे हट जाये।

कांग्रेस क्या निर्णय करती है, यह हमे वादमे मालूम होगा। गुजरात क्या करना चाहता है यह तो हम आज भी जान सकते है। प्रत्येक प्रान्त अपनी स्थितिको साफ कर सकता है और ऐसा करना उनका कर्तव्य भी है।

मेरी दृष्टिसे सवसे वडा रचनात्मक कार्य चरखा चलाना है। उसकी स्वराज्य प्राप्तिकी शक्तिमे जिसका विश्वास न हो वह कांग्रेसमे रहकर क्या कर सकता है? हाँ, सदस्य कांग्रेसके उपर्युक्त प्रस्तावको वदल सकते है अथवा वदलवानेकी कोशिश कर सकते है। लेकिन जवतक यह प्रस्ताव मौजूद है तवतक उन्हे कांग्रेसकी कार्य-कारिणी कमेटियोसे अलग रहना चाहिए।

लेकिन यदि उनको चरखेकी शक्तिमे विश्वास हो तो उन्हे चरखेके शास्त्रको पूरी तरह समझ लेना चाहिए और अच्छेसे-अच्छा सूत कातनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिए। इतना ही नही वरन् उन्हे थोडा वहुत सूत कांग्रेसको भेट करना चाहिए। मेरी माँग तो प्रतिमास केवल दस तोले सूतकी है। इतना सूत प्रतिदिन आधा घटा चरखा चलानेमे आसानीसे काता जा सकता है।

१ मार्च १९२२ में।

२. जो २७ जूनको अहमदावादमें होनेवाली थी।

यदि यह काम जोर-जबरदस्तीसे कराया जाये तो फलदायी नही होगा। आनन्द आयेगा तो रुचि भी बढेगी। जिसके पास ज्यादा समय रहेगा, वह आधे घंटेसे सन्तोप नही मानेगा। आधा घटा तो कमसे-कम समय है, अधिकसे-अधिक नही। जितनी स्थायी समितियाँ है वे सब कार्यकारिणी समितियाँ है। यदि इनके सब सदस्य इस तरह सूत काते तो उसका अर्थ क्या हुआ? यदि गुजरातके प्रत्येक नगर या कस्बेमे कार्यकारिणी समिति हो तो हमे प्रत्येक नगर या कस्बेमें अच्छे कातनेवाले मिल जायेंगे। परिणामस्वरूप प्रत्येक नगर या कस्बा थोडे ही अर्सेमे खादीमय हो जायेगा। बुनकर तो जितने चाहिए उतने मिल जायेगे, परन्तु एक-सार और पक्का मजबूत सूत ही नही मिलता। यदि हिन्दुस्तानका प्रत्येक गाँव सूत कातने और कपडा बुनने लगे तो कितना बडा लाभ हो? एक व्यक्ति द्वारा काते गये सूतसे भले ही न-कुछ पैसा मिले किन्तु समुदाय द्वारा तैयार किये गये सूतसे काफी पैसा मिल जायेगा। बूँद-बूँदसे सरोवर भरता है। यदि प्रत्येक भारतीयकी वार्षिक आयमे एक-एक रुपयेकी वृद्धि हो तो उसका प्रतिव्यक्ति बहुत कम असर होगा, यह समझा जा सकता है, लेकिन उसका कुल मिलाकर जो असर होगा उसमे भारी शक्ति निहित है। एक चीटी क्या कर सकती है? लेकिन चीटियोका दल क्या नही कर सकता? दलकी शक्तिका मूल तो एक चीटी ही है। उसी तरह समुदायकी कताईकी शक्तिका मूल प्रत्येक कातनेवाला है। ऐसी है कातनेवालेकी महिमा।

लेकिन कहा जा सकता है, "यदि समुदाय काते तब तो नि सन्देह, प्रत्येकके परिश्रमकी कीमत है, लेकिन यदि केवल एक अथवा दो-चार लोग ही काते तो उससे क्या लाभ होगा?" ऐसे प्रश्न वे ही लोग कर सकते है जो अभी भ्रममे पडे हुए है। व्यक्ति शुरू नही करेगा तो समुदाय क्या करेगा? ससारमे आजतक समुदायने कोई सुधार नही किया है, उनका आरम्भ तो व्यक्ति ही करता है। सबका आरम्भ एकसे ही होता है। एकके बिना सब-कुछ महत्वहीन है। एकको लम्बी तपश्चर्या करनी पडती है, यह स्पष्ट है। जब समुदाय एकके अडिग विश्वासको देखता है तभी उसपर असर होता है और जो सुधार जितना ज्यादा मूल्यवान होगा उसे स्वीकार करनेमे समुदाय उतनी ही देर लगायेगा। स्वराज्य प्राप्ति-जैसा महान् कार्य अल्प तपश्चर्यासे पूरा नही किया जा सकता।

इस बातको समझनेवाले लोग निराश न हो। लेकिन समुदायकी ओरसे उत्तर मिलनेमे ज्यो-ज्यो देर होगी त्यो-त्यो उक्त एक व्यक्तिके उत्साहमे — उसके तपमे — वृद्धि होगी। ऐसी दृढ श्रद्धाके सामने समुदायकी उदासीनता कबतक टिक सकती है?

इस समय गुजरातसे मेरी माँग है कि वह मुझे चरखेके प्रति ऐसे श्रद्धावान लोग दे। मुझे उम्मीद है कि इस मासके अन्ततक प्रत्येक कार्यकर्त्ता अच्छा चरखा ले लेगा और सूत कातना भी शुरु कर देगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०८. टिप्पणियाँ

आगाखानी भाई

मेरे हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी लेखपर[1] आलोचनाओंकी झडी लग गई है। यह लेख बहुत लोगोंको पसन्द आया है, किन्तु उससे लोगोंके मनमे बहुत क्रोध भी उत्पन्न हुआ है। मैं इन टीकाओंमें से कुछके अंश समय-समय पर 'नवजीवन'मे प्रकाशित करता रहूँगा। मैंने अपने लेखमे खोजा भाइयोंकी प्रवृत्तिकी जो चर्चा की है, उससे उन्हे खेद हुआ है और क्रोध भी। उन्होंने मुझे पत्र लिखनेकी अपेक्षा मेरे पास आना अधिक ठीक समझा है। इस बातसे मुझे तो बहुत खुशी हुई। इससे मैं उनके मनको भी समझ सका हूँ। वे यह अनुभव करते हैं कि मुझे उनसे मिले बिना कोई टीका करनी ही नही थी। मैंने उन्हे बताया कि मुझे सारे निवेदनमे दोनों पक्षोंको प्रस्तुत करना था। मैंने ऐसा ही किया भी है और जिस बातके बारेमें मुझे स्पष्ट जानकारी नहीं थी मैंने उसके बारेमे लिखा है कि अमुक प्रवृत्तिके सम्बन्धमे अमुक प्रकारके आरोप किये गये हैं। मैंने कहा है कि उनकी जो पुस्तकें मेरे पास आई हैं, मैं उन्हे अवश्य पढ़ूँगा और उनपर अपनी राय दूँगा। अगर मुझे ऐसा लगा कि गलत सूचना दी गई थी तो मैं यह बात भी स्वीकार करूँगा और क्षमा भी माँगूँगा। लेकिन यदि इन लेखोंसे मेरे मनपर जैसा खबर देनेवाले कहते हैं वैसी ही छाप पड़ी और मैं उनकी बातसे सहमत हुआ तो फिर खोजा भाई इससे दुःख नहीं मानेंगे। मैंने उनसे यह भी कहा है कि माननीय आगा खाँ, हिन्दू-धर्ममे अवतारका जो अर्थ लिया गया है, उस अर्थमें अवतार हैं, यह बात मेरे गले नही उतरती। फिर वे 'ओम्' शब्दका जैसा प्रयोग करते हैं और उसके जो रूप देते हैं वह भी मेरी दृष्टिसे हिन्दू धर्मकी मान्यताओंके विरुद्ध है।

लेकिन उनका कहना है कि यदि उनका वही मत है तो उन्हे क्या करना चाहिए? मैंने उनसे इसके उत्तरमे कहा है कि उन्हे उसपर दृढ रहना चाहिए और मुझे अपने मतानुसार बोलने और लिखनेका अधिकार दिया जाना चाहिए। वे फिर दृढतापूर्वक कहते हैं कि किसीको भी सांसारिक प्रलोभन देकर खोजा नही बनाया जाता। मुझे यह बात सुनकर बहुत खुशी हुई है। मैंने उन्हे विश्वास दिलाया है कि अपने पत्र-प्रेषकोंको मैं यह बात बता दूंगा और अगर वे अपने कथनके पक्षमे प्रमाण नही देंगे तो मैं 'नवजीवन'मे इस बातको भी प्रकाशित कर दूंगा। अन्तमे उन्होंने यह भी कहा कि खोजा लोगोंकी पूर्णावतारकी कल्पना नई है। 'नवजीवन'के पाठकोंपर ऐसा प्रभाव भी पड सकता है, जब कि हकीकत यह है कि उनकी पूर्णावतार और 'ओम्' विषयक मान्यता बहुत पुरानी है और उनके पास इसके प्रमाण हैं।

१. देखिए "हिन्दू-मुस्लिम तनाव : कारण और उपचार", २९-५-१९२४।

स्वार्थपरता

एक भाई तीसरे दर्जेके बहुत-से मुसाफिरोकी गन्दी आदतोके सम्बन्धमे 'नवजीवन' मे छपी टीकाको[1] पढकर लिखते है।[2]

इस भाईने सँकरे गलियारेमे पडे रहकर असुविधा झेली और बादमे उन्हे अनुग्रहके रूपमे जो जगह दी गई उन्होने उसे लेनेसे इनकार कर दिया। इसके लिए मै उनको बधाई देता हूँ। जिन्होने उन्हे जगह दी वे यदि तनिक भी शिष्टताका व्यवहार करना चाहते थे तो उचित यह था कि जब उक्त भाई डिब्बेमे आये थे, वे उन्हे तभी जगह दे देते। विवेक तो यही कहता है कि यदि तगी होनेके बावजूद कोई सवारी डिब्बेमे चढ आये तो हम उसे जगह दे दे। सच बात तो यह है कि हम लोग अभी कौटुम्बिक भावनामे बहुत आगे नही बढ सके है। सगे-सम्बन्धियोके लिए तगी झेलनेका धर्म हमने सीख लिया है। हम जान-पहचानके लोगोके लिए भी थोडी-बहुत तगी झेल लेते है। किन्तु इन दोनोके लिए कष्ट सहनेमे कोई विशेषता नही है। हम एक तीसरे वर्गके लोगोके लिए भी असुविधा सहते है और वह वर्ग है बलवान लोगोका। यह बात निस्सन्देह अनुचित है। किन्तु बेचारे गरीब मुसाफिरोसे तो हम उनकी जगह छीन लेनेके लिए भी तैयार हो जाते है। यदि हम राष्ट्रीय भावना विकसित करना चाहते है तो हमारा धर्म है कि हम गरीबोके लिए पहले जगह करे। हमारा पडौसी विशेषत वह है जिसे हम जानते न हो, भूखा हो तो हम उसे खिलाकर खाये, प्यासा हो तो उसे पिलाकर खुद पानी पिये और अपनी सुविधाका ध्यान न करके उसको सुविधा दे। यदि हम अपने प्रत्येक देशवासीके लिए यही भावना रखे तो यह भावना राष्ट्रीयताकी भावना है और अगर मनुष्य-मात्रके प्रति रखे तो धर्म-भावना हुई। यदि हम धर्म-भावनाका विकास न भी करे तो हमे कमसे-कम राष्ट्रीयताकी भावनाका विकास तो करना ही चाहिए।

चुगीकी सीमा

धोलका ताल्लुका परिषद्[3] द्वारा पास किये प्रस्तावोमे से दो प्रस्ताव विशेष ध्यान आकर्षित करते है

इनमे से एकसे पता चलता है कि शियाल बगौदरा आदि गाँवोके समीप चुगीका समय बाँध दिया है। इसके अनुसार लोग शामसे सुबह तक चुगी नाकेके इस तरफ नही आ सकते। ऐसा नियम बनानेवाले अधिकारी या तो किसानोके जीवनसे सर्वथा अनभिज्ञ है या उनकी भावना और सुविधाके प्रति लापरवाह है। इस देशमे किसान लोग अधिकतर रातको ही यात्रा करते है। किसान रातके दो बजेके बाद कभी नही सोते। वे सवेरे-सवेरे गाडी जोत देते है अथवा किसी दूसरे काममे लग जाते है। ऐसी आदतवाले लोगोके लिए ऐसी हदे बाँधकर रोकनेका अर्थ हुआ उन्हे

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-५-१९२४।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३ यह परिषद् धोलका, उत्तर गुजरातमें मई, १९२४ को हुई थी।

[illegible]। इस प्रश्नका निराकरण तुरन्त किया जाना चाहिए। ताल्लुका [illegible] प्रान्तीय कमेटीको कोई प्रस्ताव पास करनेसे [illegible] जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और [illegible] यह भी जान लेना चाहिए। यदि किसानोंमें तनिक भी [illegible] उपाय अपने भाषणमें बता ही दिया है। लेकिन [illegible] तो बहुतसे कदम उठानेकी जरूरत है।

[illegible] विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-६-१९२४

१०९. पत्र : देवचन्द पारेखको

ज्येष्ठ सुदी ६ [८ जून, १९२४][1]

भाईश्री देवचन्दभाई,

किसी व्यक्तिने मुझे यह [illegible] भेजा है। रेखांकित पंक्तियोंको पढ़ जाइये। क्या यह बात सच है? और यदि सच है तो यह काम किसका है?

मणिभाई, देवदास और बा मेरे साथ निकलेंगे। बहुत करके दशमीकी साँझको।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७३२) की फोटो-नकलसे।

११०. भेंट : 'हिन्दू' के प्रतिनिधिसे

अहमदाबाद
८ जून, १९२४

. महात्माजीने मुझे अपने पास बैठनेको कहा और मेरा आनेका उद्देश्य पूछा। मैंने श्रद्धापूर्वक उनके पास जाकर प्रणाम किया। उत्तरमें वे अपने स्वभावके अनुकूल झुके और मुसकुराये। मैंने उनको बताया कि मैं उनके दर्शन करने तथा उनसे भेंट करनेके लिए आया हूँ। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझे भेंट देना स्वीकार किया। नीचे प्रश्नोत्तर दिये जा रहे हैं।

मैंने प्रारम्भमें उनके स्वास्थ्यके बारेमें पूछा। उन्होंने बताया कि वे अच्छे होते जा रहे हैं। फिर कुछ समय तक दूसरे मामलोंपर चर्चा होती रही और फिर बातचीत भेंटके मुख्य विषयपर आ गई।

१. बा और देवदास भावनगरके लिए ११ जून, १९२४ को रवाना हुए थे। देखिए "पत्र : वसुमती पण्डितको", ११-६-१९२४। इस वर्ष ज्येष्ठ सुदी ६, ८ जूनको पड़ी थी।

मैंने पूछा: आपने पहले तो "शान्तिपूर्ण और वैध" का "अहिंसात्मक और सत्य-पूर्ण" ऐसा सख्त अर्थ सूचित नही किया था जैसा कि आपने अ० भा० कां० क० की दिल्लीमें हुई बैठकके बाद दिया?

हो सकता है कि मैंने कलकत्ता कांग्रेसमे अपने अर्थको स्पष्ट न किया हो। क्यो कि मै समझता था कि इनका इस अर्थके सिवा कोई दूसरा अर्थ हो ही नही सकता ओर प्रत्येक व्यक्तिने इनका यही अर्थ समझा है।

तब फिर आप अपने अर्थको दूसरोपर क्यो लाद रहे है? उन्होंने कहा:

मै 'शान्तिपूर्ण और वैध' शब्दोका अर्थ अहिंसात्मक और सत्यपूर्ण ही लगाता हूँ, किन्तु मै उसे दूसरोपर नही लादना चाहता। यदि मै ऐसा करूँ तो वह मेरे धर्मसे असगत बैठेगा। मुझे अपना अर्थ बादमे स्पष्ट अवश्य करना पडा, क्योकि मैंने सोचा कि लोगोने इसका अर्थ गलत लगाया है।

आपने अपने हालके वक्तव्यमें अधिक जोर प्राप्त-परिणामोंपर नहीं, मनोवृत्ति-पर दिया है; किन्तु कलकत्ता कांग्रेसके अवसरपर आपने कहा था कि असहयोग आन्दोलन निश्चित उद्देश्योकी पूर्तिके लिए अर्थात् खिलाफत और पंजाबके प्रति किये गये अन्यायके प्रतिकारके लिए शुरू किया गया है। आपने उस समय मनोवृत्तिपर इतना जोर नही दिया था। क्या इसमें कोई असगति नही है?

मै मनोवृत्तिको बहुत अधिक महत्व नही देता। मै उसे केवल वही तक महत्व देता हूँ जहाँतक उसका प्रभाव विभिन्न समस्याओको हल करनेपर पडता है।

आप जानते है कि कांग्रेस अपनी नीति निश्चित करती है और उस नीतिपर अमल कराने तथा उसके पर्यवेक्षण करनेके लिए अपनी कार्यकारी समितियाँ बनाती है। यदि कांग्रेस अपनेको दिये गये विवेकाधिकारके अनुसार अपनी नीतिपर अमल करनेके लिए स्वराज्यवादियोको चुन ले तो क्या आप उस समय भी सोचेगे कि स्वराज्यवादियोकी स्थिति कांग्रेसकी नीतिसे मेल नही खाती, खासकर उस हालतमे जब किसी दूसरेकी अपेक्षा कांग्रेस ज्यादा अच्छी तरह इस बातको जानती है कि उनमें मतभेद है?

यह भी मेरे द्वारा ग्रहण की गई स्थितिके सम्बन्धमे फैली हुई गलतफहमी है। मै जानता हूँ कि कांग्रेस-मतदाता जिसे चुनना चाहे चुन सकते है। इसके लिए वे स्वतन्त्र है। किन्तु मै कांग्रेसका एक विनम्र कार्यकर्त्ता हूँ और साथ ही एक मतदाता भी हूँ। इसलिए मै अपने स्वतन्त्र विचारके अधिकारका उपयोग कर रहा हूँ और मतदाताओका पथ-प्रदर्शन इस तरह करनेके लिए प्रयत्नशील हूँ कि वे अपने कार्यक्रमके अनुकूल ऐसे ही प्रतिनिधियोको चुने, जिन्होने उसपर पूर्ण रूपसे अमल करनेकी शपथ ली हो। मै इसी प्रकारकी अपील मतदाताओके वर्तमान प्रतिनिधियोसे भी करता हूँ कि जहाँ उन्हे असहयोगके प्रस्तावका पालन करना है, वहाँ उनका यह कर्त्तव्य भी है कि वे या तो उस कार्यक्रमपर पूर्ण रूपसे अमल करे या अपने पदोसे त्यागपत्र दे दे और निर्वाचकोसे उन्ही लोगोको चुननेके लिए कहे जो उस कार्यक्रमपर विश्वास करते है।

यदि स्वराज्यवादियोका कार्यक्रम असहयोगके लिए अनिवार्य-मनोवृत्तिके नितान्त विपरीत है तो फिर आप उनके कार्यक्रमका अनुमोदन सफलताकी दृष्टिसे प्राप्त होनेवाले परिणामके आधारपर कैसे करते हैं? इसपर महात्माजीको हँसी आ गई, उन्होने कहा

यदि स्वराज्यवादियोका कार्यक्रम सफल हो जायेगा तो मैं सबसे पहले उस दलमे शामिल होने जाऊँगा और उसे बधाई दूंगा। तब मैं अपने अहम् और अपनी विचारधाराको एक किनारे रख दूंगा।

इसके बाद बातचीत हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर आ गई। मैंने पूछा बहुतसे हिन्दुओका खयाल है कि आपने अभी हालमें हिन्दू-मुस्लिम तनातनीपर जो लेख[1] लिखा है उसमें आपने मुसलमान भाइयोकी अपेक्षा उनसे अधिक त्याग करनेकी माँग की है और यह अन्याय है।

पहली बात तो यह है कि मैंने हिन्दुओसे पर्याप्त मात्रामे त्यागकी माँग नही की है, किन्तु यदि वे केवल अधिकसे-अधिक त्याग करे तो मैं एक दिनमे, न केवल स्वराज्य प्राप्त करनेका वादा करता हूँ बल्कि यह वादा भी करता हूँ कि हिन्दू सदैव प्रगति करेगे और मुसलमान उनकी मुट्ठीमे रहेगे।

किन्तु आप उन आर्यसमाजियोसे क्या कहते हैं जिनका कहना है कि आपने अपने लेखमें उनके साथ भी अन्याय किया है। उनका खयाल है कि आपने मौलाना अब्दुल बारी और मौलाना मुहम्मद अलीकी पीठ ठोकी है और उनका समर्थन किया है। आप वैसा ही स्वामी दयानन्द सरस्वती और श्रद्धानन्दजीके लिए भी कर सकते थ। जान-बूझकर आर्यसमाजकी निन्दा करनेमें क्या आपका कोई विशेष उद्देश्य है? क्या आप इस सम्बन्धमें अपनी स्थिति स्पष्ट करेगे?

जरूर। किन्तु मैंने दोनो मौलानाओमे से किसीका जरा भी समर्थन नही किया है। मैंने तो स्पष्ट शब्दोमे कहा है कि मुहम्मद अलीने काग्रेसमे भाषण देते हुए अछूतोके विभाजनका जो उल्लेख किया है, वह अनुचित है और उन्होने अपनी भूलको स्वीकार कर लिया है। मैं इसके लिए उनकी प्रशसा करता हूँ। मैंने यह भी कहा है कि अब्दुल बारीके नामसे ऐसे वक्तव्य छपे हैं जिनकी कोई सफाई नही दी जा सकती। इसीलिए मैंने उन्हे खतरनाक मित्र बताया है। मैं इन दोनो मित्रोके विरुद्ध इसलिए अधिक कुछ कहनेमें असमर्थ हूँ, क्योकि मैं इससे अधिक कुछ नही जानता। इसी प्रकार मैं आर्यसमाजियोके ख्यातनामा सस्थापक [दयानन्दजी] तथा श्रद्धानन्दजी-को भी जानता हूँ। इसलिए मैंने उनका ध्यान उस बातकी ओर, जिसे मैं उनकी कमजोरी समझता हूँ, खीचनेमे सकोच नही किया है। मेरा उद्देश्य स्पष्ट है। यदि मैं इन मुख्य व्यक्तियो तथा परस्पर सघर्परत मुख्य धर्मोके बारेमे वह सब-कुछ न कहता जो मैंने अनुभव किया है तो मैं अपने प्रति ओर अपने उद्देश्यके प्रति झूठा साबित होता। मैं इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि आर्यसमाज और श्रद्धानन्दजी समाजकी

१ देखिए पृष्ठ १३९-५९।

जितनी सेवा कर चुके है, उससे अधिक करे। इसलिए मैंने एक आलोचकके नाते नही बल्कि एक मित्र और शुभेच्छुके नाते उनका ध्यान उनकी सकीर्णताओकी ओर आकर्षित किया है। फिर भी मेरे कथनसे सारे भारतके आर्यसमाजी क्षेत्रोमे क्षोभ फैल गया है। हम सभी इन दिनो बड़े भावुक हो गये है और इसीलिए हम आलोचनासे अधीर हो उठते है तथा उसे सहन नही कर सकते, यह बात मेरी समझमे आती है। हम अपने विरुद्ध की गई किसी भी आलोचनाको सहन नही करते, फिर चाहे वह बहुत ही मैत्रीपूर्ण ढगसे भी क्यो न की गई हो। किन्तु मुझे इसमें जरा भी सन्देह नही कि यदि मै स्वय ठडा रहूँ तो यह आंधी अपने-आप शान्त हो जायेगी, और चूँकि अभी फिलहाल तो मेरा मानसिक सन्तुलन बिगड़ता नही दिखता इसलिए अपने विरुद्ध की गई इस तमाम रोषपूर्ण नुक्ताचीनीका मुझपर कोई असर नही पड़ा है।

देरी हो रही थी, इसलिए मैंने महात्माजीसे कहा कि एक प्रश्न और पूछकर मै अपना काम समाप्त मान लूँगा। मैंने प्रश्न किया: "आपके खद्दरके कार्यक्रमका उद्देश्य भारतको आर्थिक मुक्ति दिलाना है अथवा आप इसके जरिये लोगोके मनोभावोको राष्ट्रीयताकी ओर मोड़ना चाहते है? यदि पहली बात है तो फिर आप लोगोमें राष्ट्रीयताकी भावना जगानेका सुगठित प्रयत्न किये बिना स्वराज्य ले लेनेकी आशा कैसे करते है? यदि दूसरी बात ठीक है तो क्या खद्दरका वर्तमान कार्यक्रम लोगोमें उस भावनाको जागृत करनेके लिए पर्याप्त होगा?

यदि खद्दरके कार्यक्रमको सफलता मिल गई तो नि सन्देह उससे भारतको आर्थिक मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। मेरा विचार है कि जबतक जनता अपनी आर्थिक मुक्ति प्राप्त नही कर लेती तबतक सुयोजित प्रयत्न करना सम्भव नही है। इसके अतिरिक्त सुयोजित प्रयत्न किये बिना खद्दरके कार्यक्रमको कार्यरूपमे परिणत करना असम्भव है। फिर खद्दरके सफलीभूत कार्यक्रमका यही अर्थ तो है कि खुद अग्रेज राष्ट्रवादी बन जाये या कमसे-कम ऐसे बन जाये कि वे भारतीय आन्दोलनको निष्पक्ष दर्शकके रूपमे देख सके। अब वे भारतको उसका शोषण करनेके उद्देश्यसे अपना गुलाम बनाये रखनेमे सफल नही होगे।

. . . महात्माजी, क्या आपको आशा है कि अ० भा० का० क० का जो अधिवेशन निकट भविष्यमें यहाँ होने जा रहा है उसमें आपके इन दोनो वक्तव्योमें व्यक्त किये गये विचारो और पदाधिकारियोके लिए रखी गई कड़ी कसौटियोका अनुमोदन होगा?

यह कहना मेरे लिए कठिन है कि कांग्रेस कमेटीके सदस्य उसके आगामी अधिवेशनमे क्या करेगे। किन्तु यदि मेरी सुझाई गई सभी कठोर कसौटियोको अत्यधिक बहुमतसे अस्वीकार कर दिया जायेगा तो मुझे इससे जरा भी आश्चर्य नही होगा। मै चाहता हूँ कि मुझे या तो ऐसे लोगोका स्पष्ट बहुमत मिले जो हृदयसे इस कार्य-क्रममे विश्वास करते हो और जो हर हालतमे उसे कार्यरूप देनेके लिए कृतसकल्प हैं, अथवा मै बिलकुल ही अल्पमतमे रह जाऊँगा। इस समय हमारे दिमागोमे जो जबरदस्त

अनिश्चितता भरी हुई है, वह मेरे लिए असह्य है। इसने हमारी वास्तविक प्रगतिको नितान्त असम्भव बना दिया है।

किन्तु यदि जनताके प्रतिनिधियोंके विचार आपके कार्यक्रमके पक्ष और विपक्षमें लगभग समान हों तो फिर आप क्या करना चाहेंगे?

एक तो दोनों तरफ मत लगभग बराबर हों इसे मैं सम्भव नहीं समझता। असलमें तो कोई एक स्पष्ट समझौता हो जायेगा और मतदानकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। किन्तु यदि मत लेने ही पड़ें और दोनों पक्षोंके मत लगभग बराबर रहें तो मेरा खयाल है कि ईश्वर हमें कुछ-न-कुछ ऐसी शक्ति देगा कि हम साफ-साफ दो दलोंमें विभक्त हो सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९-६-१९२४

१११. भाषण : गुजरात विद्यापीठमें[1]

१० जून, १९२४

भाई कृपलानी, विद्यार्थियो, भाइयो और बहनो,

आज सुबह मेरे सम्मुख तीन पत्र पढ़नेके लिए प्रस्तुत किये गये थे।[2] इनमें से एकमें कहा गया है कि आपसे हो सके तो आप विद्यापीठको दियासलाई लगा दें। विद्यापीठने अबतक कुछ भी अच्छा काम नहीं किया है। लेखक विद्यापीठमें शिक्षा पाये हुए व्यक्ति हैं। दूसरे पत्रमें कहा गया है कि विद्यार्थी विलासप्रिय हैं और अनेक प्रकारके रसास्वादन करते हैं। मैंने अपने लड़केको यह समझकर विद्यापीठमें भेजा था कि वहाँ विद्यार्थी सादगीमें रहते होंगे और उनका चरित्रबल बढ़ता होगा। अब मुझे क्या करना चाहिए? तीसरा पत्र मद्राससे आया है। लेखकने इसमें लिखा है कि मेरा आजका भाषण ऐसा होना चाहिए जिससे सारे हिन्दुस्तानको मार्ग-दर्शन मिले।

ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या कहूँ? मैं इन तीनोंमें से कौन-सा कार्य करूँ? मैं तो इनमें से एक भी काम नहीं करना चाहता। जिस विद्यापीठको स्थापित करनेमें मेरा कुछ हिस्सा है उसे मैं क्यों जला डालूँ? एक अंग्रेज चित्रकारकी कथा है। उसने विनोदके खातिर अपना एक चित्र बाजारमें लटका दिया और उसके नीचे लिख दिया

१ गांधीजीने यह भाषण अहमदाबाद स्थित गुजरात विद्यापीठके सत्रारम्भके अवसरपर कुलपतिकी हैसियतसे दिया था।

२ १० जून, १९२४ के हिन्दूमें प्रकाशित भाषणके विवरणमें कहा गया है "आज सुबहसे ही आप छात्रोंके सम्बन्धमें विचार कर रहा था, किंतु मैं अपना विचार केवल आपपर ही केन्द्रित नहीं कर सका। मैं यह भी सोच रहा था कि हिन्दू-मुस्लिम समस्याको हल करनेका सर्वोत्तम उपाय क्या है। इसी बीच देवदासने मुझे ये तीन पत्र लाकर दिये और कहा कि मुझे इनको छात्रोंके सम्मुख भाषण देनेसे पहले अवश्य पढ़ लेना चाहिए।"

कि इसमे जिसे जहाँ भी कोई ऐब दिखाई दे, इसमे वही एक चिह्न लगा दे। दूसरे दिन उस चित्रमे एक इंच जगह भी निशानोसे खाली नही बची। किन्तु फिर भी उसने कहा -- जबतक मुझे इस चित्रसे सन्तोष है, तबतक मै इसे नही जलाऊँगा।

मुझे सुबह यही चित्रकार याद आया। मुझे उसकी दृष्टि ठीक मालूम हुई। यदि हम दोषोकी खोज करने लगे तो उनका पार पाना कठिन होगा। ईश्वरने मनुष्यमे मोह-जैसी चीज रख दी है। हम उसके वशवर्ती होकर अपना काम करते रहते है। आप तो इन तीनो पत्रोमे जो सार हो उसीको ग्रहण करे। पहले तीखे आलोचकने लिखा है कि न तो विद्यार्थियोमे कुछ दम है और न अध्यापकोमे। वे चाहते है कि मै उनका वह पत्र 'नवजीवन' मे छापूँ और उसपर अपनी टिप्पणी भी दूँ, किन्तु मै न तो उसे छापूँगा और न टिप्पणी ही दूँगा। यह आरोप किया गया है कि विद्यार्थी सादगीसे नही रहते। इसमे कितना तथ्य है, इसपर आपको विचार करना चाहिए। मद्रासी भाईसे तो मै निपट लूँगा। अगर मेरा यह भाषण प्रकाशित नही किया गया तो वे यही समझेगे कि मैने सचमुच कोई महत्वपूर्ण भाषण दिया होगा।

यह तो हुई प्रस्तावना। मुझे आपके सम्मुख क्या कहना है, इसपर मैने विचार अवश्य ही किया है। विचार नही किया है, यह मै नही कह सकता, क्योकि मुझे झूठी आत्मनिन्दा करनेकी आदत नही है। मेरे पिछले विचार दो वर्ष तक यरवदा आश्रममे[1] शान्तिपूर्वक चिन्तन करनेसे और भी दृढ हो गये है। जो चीज मैने देशके सामने रखी है मुझे उसपर जरा भी पश्चात्ताप नही है। हमने गुजरात विद्यापीठकी स्थापना की, महाविद्यालय कायम किया, उसमे सिन्धियो और दक्षिणात्योको लाकर भर दिया और गुजरातियोके लिए स्थान नही रखा -- मुझे इसका भी कोई पछतावा नही है। गुजरातका धर्म है कि वह दक्षिण और सिन्धसे अच्छी बाते ग्रहण करे। यदि श्री कृपलानी अपने आपको बिहारी मानते हो तो हमे उनको बिहारी मानकर ग्रहण करना चाहिए। उन्हे गुजरातमे भी कुछ ग्रहण करने योग्य मिलेगा। यदि वे बिहारमे बुनकर थे तो यहाँ कातना और पीजना सीखेगे और तब कहेगे कि वे जितने बिहारी है, उतने ही गुजराती है। किन्तु उनसे ऐसा कराना आपके ही हाथोमे है। वे सिन्धसे आये है, इसलिए हमारे मेहमान है। हम गुजरातीको तो गालियाँ भी देते है। हमने इनको अपनी गरजसे रखा है, इसलिए वे हमे जो कुछ सिखायेगे हम इनसे वही सीखेगे। इसमे गुजरातकी कोई हानि नही है, लाभ ही है। मेरा वश चले तो मै इस विद्यालयमे एक भी गुजरातीको न रखूँ और दाक्षिणात्यो और सिन्धियोको ही भर दूँ। मै उनसे कहूँ कि वे सभी काका और मामा-जैसे बने। यदि हमे सब लोग काका और मामा-जैसे मिल जाये तो हमे और क्या चाहिए।

हमने विद्यापीठकी स्थापना किसलिए की है? असहयोगके लिए? असहयोग किससे? क्या सरकारी कालेजोके विद्यार्थियो और अध्यापकोसे? नही। हमारा असहयोग उनसे बिलकुल नही है। हमारा असहयोग तो पद्धतिसे है। हमारा यह असहयोग

१. यरवदा जेल जहाँ गांधीजी मार्च, १९२२ से फरवरी, १९२४ तक कैद रहे थे।

किस तरहका है और इस असहयोग द्वारा हम क्या करना चाहते है इसपर विचार करते हुए मुझे दो गाथाएँ याद आ गई। एक है बाघ और बकरेकी। एक बाघ और बकरा पास-पास रखे गये। बाघ था पिंजडेमें और बकरा था बाहर। बकरेको अच्छा दाना-पानी दिया जाता था। किन्तु बकरा फिर भी दिनपर-दिन सूखता जाता था। ऐसे में एक विचक्षण मनुष्यने समझ लिया कि बकरा बाघके पास होनेसे नही पनप रहा है। बाघकी नजरसे दूर हटाये जानेपर वह मामूली दाना-चारा खाकर भी उछलने-कूदने लगा और मोटा-ताजा हो गया।

दूसरी कहानी नर नारायण चन्दावरकरने लिखी है। वह मैने जेलमे पढी थी। नर नारायण एक दिन पूनामें घूमने जा रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि एक बुढिया एक मेमनेको घर ले जा रही है। मेमना एक साहबके घरका था। वहाँ उसके लिए खाने-पानेकी सुविधाका तो पूछना ही क्या? परन्तु उसे वहाँ चैन नही था। जब बुढिया उसे ले जा रही थी तब वह उछल-कूद रहा था और बुढियाको खींचे डाल रहा था क्योंकि वह अपने घर जा रहा था। वह पराधीनतासे स्वतन्त्रतामे जा रहा था। कोई भी जीवधारी हो, वह स्वतन्त्रतामे ही फूल-फल सकता है परतन्त्रतामे नहीं। इसी बातको तुलसीदासने अपनी अनुपम वाणीमे इस तरह कहा है—"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।"

सरकारी शिक्षण-संस्थाओंमे अच्छीसे-अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध होती है, योग्य अध्यापक मिलते है और बडी-बडी इमारतें बनी होती है, किन्तु वहाँ फिर भी हमारे ललाटपर तो वही काला दाग लगा रहता है। हमारे भाग्यमे तो नौकरी—बाबूगिरी—के सिवा अन्य कुछ लिखा ही नहीं है। बहुत हुआ तो वकालत सूझ सकती है। किन्तु अब तो वकालत भी नहीं सूझती। हमें तो अब ग्रेजुएट होनेपर ३० रुपयेसे शुरू होनेवाली नौकरी ही सूझती है। ज्यादासे-ज्यादा आगे बढे तो गुजरात कालेजमें अध्यापक हो गये। बस, यही हमारी हद है। यहाँ महाविद्यालयमें तो जैसे-तैसे पढाई होती है, अक्षर-ज्ञान जितना मिल जाये वही गनीमत। महाविद्यालयकी इमारतपर छप्पर हुआ तो हुआ वरना वह भी नदारद। मकान मालिक जब चाहे नोटिस देकर निकाल बाहर कर सकता है। विद्यापीठके लिए वल्लभभाई दर-दर भीख माँगते फिरते है और विद्यापीठ कल रहेगा या नहीं यह सवाल भी हमेशा बना रहता है। ऐसी हालत है। गुजरात कालेजपर तो सूर्य अस्त ही नही होता। विद्यापीठपर रोज सूर्य उगता है, और रोज अस्त होता है। दुनियाका कुदरती कानून यही है। हमे इस कानूनपर ही चलकर अपना उद्धार करना है।

हम अपना आदर्श ऊँचा ही रखेगे। हम ऊँचे आदर्शतक पहुँच नही सकते और हमसे भूले होती है, यह ठीक है। हमसे पाप हो जाता है, यह भी ठीक है, परन्तु हम पापको पुण्य रूप तो नही बताते।

"सा विद्या या विमुक्तये", यह हमारा आदर्श है। भाई किशोरलालने[1] मुझसे कहा कि क्या हम इस महान् सूत्रका सकुचित अर्थ करके उसका दुरुपयोग तो नही

१. किशोरलाल मशरूवाला।

कर रहे है? भाई किशोरलालकी वातपर मुझे वहुत विचार करना पडता है। मै उनकी बातपर रुककर विचार किये विना नही रह सकता। मैने विचार करके देखा कि इस सूत्रका दुरुपयोग नही हो रहा है। जो इस मुक्तिको पा सकता है वही उस मुक्तिको पा सकता है। जो इतनी छोटी-सी मुक्तिको भी प्राप्त नही कर सकता उसे वडी मुक्ति कैसे मिल सकती है? अतएव मुक्तिके प्राकृत, वास्तविक दोनो अर्थोको ध्यानमे रखते हुए हमारा आदर्श यही है।

मैने इस विद्यापीठको जन्म दिया, इस कारण आज मेरे चित्तमे जरा भी अशान्ति अथवा जरा भी पश्चात्ताप नही है। यदि महाविद्यालयके तमाम लडके चले जाये और सरकारी कालेजमे भरती हो जाये तो भी मै तो प्रसन्न ही रहूँगा और कहूँगा कि ये कैसे नासमझ है और मै कितना समझदार हूँ। हिन्दुस्तानके उद्धारका दूसरा उपाय ही नही है। हम सव लोग महामोहमे ग्रस्त है। इससे हमे यह वात दिखाई नही देती। मै तो मरते दम तक यही कहूँगा कि मेरी दृष्टिमे वहिष्कारके सिवा कोई दूसरा उपाय ही नही है। जब मै देखूँगा कि स्थिति ऐसी आ गई है कि हम पूरा सहयोग कर सकते है तभी मै मुँहसे दूसरी वात निकालूँगा। तबतक तो मै, चाहे सारा हिन्दुस्तान मुझे छोड दे, बहिष्कारपर ही अटल रहूँगा। मै यह वात इसलिए कह रहा हूँ कि मै एक अनुभवी मनुष्य हूँ और मैने अपने इस विचारके पीछे वरसो दे डाले है। मै यह भी कह सकता हूँ कि मैने इसके लिए तपश्चर्या की है। दूसरी वात मेरे मुँहसे निकल ही नही सकती। जिस मनुष्यको यह मालूम है कि पाँच बीसी सौ होते है, क्या वह यह कहेगा कि चार वीसी या छ बीसी सौ हो सकते है? यरवदा-आश्रममे मेरे विचार अधिक दृढ ही हुए है।

यह सवाल है कि पढाई खत्म हो चुकनेके वाद लडके क्या करे? कृपलानीजीने भावी जीवनके विषयमे मेरे कहनेके लिए कोई वात नही छोडी है। मुख्य वात यह है कि हम भयसे अपना उद्धार करना चाहते है। मै कहता हूँ कि आपको नौकरी करनी हो तो आप खुशीसे करे और अक्षरज्ञानको वेचना हो तो उसे भी वेचे। यहाँ तो मै यह कहना चाहता हूँ कि एक अग्रेज युवक क्या करता है। मै अग्रेजोका तिरस्कार नही करता। वहुत-से लोग शायद इस बातको न जानते हो कि मै अग्रेजोपर मुग्ध हूँ। उनसे मैने बहुतेरी वाते सीखी है। मै अग्रेजोका अनुकरण त्याज्य नही मानता। मै तो अपनी आजाद जमीन चाहता हूँ। फिर उसमे मै रग चाहे जहाँसे लाकर भरूँ। मेरे साथी अग्रेज मित्रोने मुझे कभी यह नही पूछा कि यदि वे मेरे साथ न रह सकेगे तो उनका क्या होगा? वे अपनी आजीविका छोड-छोडकर मेरे साथ आये है। उनकी जरूरतोके वारेमे मेरा अन्दाज गलत निकला। फिर भी उनमे से किसीने भी मुझे ऐसी कडवी वात नही कही कि मैने गलत अन्दाज क्यो लगाया? वे जानते थे कि मैने शुद्ध भावसे अन्दाज लगाया था। फिर उनमे से हरएकके मनमे यह वात रही कि क्या मै गाधीका जिलाया जीऊँगा? मुझे जिलानेवाला तो ईश्वर है। जिस पुरुषने — चैतन्यरूप प्रभुने — आपको पैदा किया है वही आपको रोटी भी देगा। क्या मुसलमान और क्या हिन्दू सब इस वातको जानते है? परन्तु आज तो

मुसलमान 'कुरान' को भूल गये है और हिन्दू 'गीता' को। वे उसके वजाय निकम्मा अर्थशास्त्र लिये बैठे है। वे भूखो मरनेसे बचनेके लिए दुनिया-भरका सघर्ष कर रहे है। वे नही जानते कि जिन लोगोने ऐसा सघर्ष नही किया वे भी भूखो नही मरे है। और ऐसा सघर्ष करे भी किसलिए? विद्यालयमे क्या सीखना है? अपने ध्येयके विषयमे दृढता-मात्र। इग्लैडकी पाठशालाओमे भी विद्यार्थियोको आजीविकाकी चिन्ता नही करने दी जाती। वहाँके शिक्षक कहते है—"पढकर पुरुषार्थ करना और अपनी रोटी आप पैदा करना।" इसीसे आप देखते है कि लोग इस छोटेसे टापूमे से निकलकर कहाँ-कहाँ जाते है। मेरे अनेक अग्रेज मित्र आज दुनियामे घूम रहे है। इसपर कोई कहेगा—"परन्तु उनपर ब्रिटिश झडेकी छाया जो है?" वे अपना पेट ब्रिटिश झडेकी छायामे नही भरते। हाँ उससे उनकी रक्षा जरूर होती है। अगर कोई उनको मारता है तो ब्रिटिश झण्डा फहर उठता है और तोपे चलने लगती है। हमे इस रक्षाकी जरूरत नही है। परन्तु आज प्रस्तुत विषय यह नही है। प्रस्तुत विषय तो यह है कि आप लोग इस बातका विचार ही न करे कि भविष्यमे आपकी आजीविकाका क्या होगा। आपके हृदयोमे यह बात जम जानी चाहिए कि आप भगी-के कामसे पुरुषार्थ करके रोजी कमा लेगे। बुनकरका काम करके रोजी कमा लेगे। परन्तु ऐसा काम कभी नही करेगे जिससे आपका सिर नीचा हो जाये। आप किसीके दरवाजेपर भीख माँगने नही जायेगे। फिर माँ-बाप या भाई-बहनकी चिन्ता किसलिए? अन्धेरेमें रोशनी करनेके लिए एक चिराग काफी होता है। इसी तरह अगर आप अपने कुटुम्बमें एक सपूत निकले तो भी काफी है। यदि आपके सिरपर माँ-बाप और भाई-बहनोके पोषणका भार आ पडे तो आप अपनी बहनसे कहे कि मै तुम्हे खिलाकर ही खाऊँगा। परन्तु तुम्हे रबडी-मलाई नही, रोटी मिलेगी। बहन भी आपको मेहनत करते हुए देखकर बैठी नही रहेगी, बल्कि स्वय भी जुट जायेगी और आजीविका कमानेमें आपकी मदद करेगी। इस तरह अगर आपमे हिम्मत होगी तो सब बाते ठीक हो जायेगी।

अब रही बीचवालोकी बात। आप पूछेगे, फिर हमे अब क्या करना चाहिए? हमे क्या आशा करनी चाहिए? आपको कोई आशा नही करनी चाहिए। मै आपसे कहता हूँ कि अगर आपका विश्वास अध्यापकोपर से उठ जाये और आपको यह मालूम हो कि अध्यापक यहाँ धन कमाने आये है, ढोग करने आये है और बडे बनने आये है तो आप उन्हे छोडकर चले जाये। एक मनुष्यने कहा, आपको धनका लोभ चाहे न हो, परन्तु आप आडम्बर तो करते है, क्योकि आपको महात्मा जो बनना है? बात सच है। अत अगर आपको यह मालूम हो कि अध्यापक बडे बनना चाहते है तो आप उनको छोड दे। छोडे ही नही, बल्कि बाहर उनकी खूब निन्दा करे। अध्यापको और विद्यार्थियोमे कोई करार नही है। अगर अध्यापक चरित्रवान हो तो भी आप अपना सारा भार उनपर न डाल दे। विद्याका दान कौन दे सकता है? कोई नही। अध्यापकोका काम है आपके भीतरके गुणोको परखकर बाहर लाना। इनको उज्ज्वल और विकसित तो आप ही कर सकते है। "शिक्षा" शब्दका भी

अर्थ यही है — जो भीतर हो उसे बाहर लाना। अत पढाई क्या होगी, इस विषयमे आपको निश्चिन्त रहना चाहिए। आप अध्यापकोपर विश्वास रखकर जो कुछ वे सिखाये उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करे।[1]

अपने सदाचारकी रक्षा करना खुद आपके हाथोमे है। आपके सदाचारकी रक्षा अध्यापकोके द्वारा नही हो सकती। आपको यह बात हमेशा याद रखनी चाहिए। आप यहाँ रास-रग और आमोद-प्रमोदके लिए नही आये है। आपका आमोद-प्रमोद है आपका अध्ययन, आपका बाहुबल और पुरुपार्थ। आप अपने हाथ-पैर हिलाना सीखे। विद्यार्थी पहले अपग बन जाते है और फिर कहते है कि अब अखाडेमे जाकर हट्टे-कट्टे बनेगे। आप अखाडेमे जानेसे हट्टे-कट्टे नही बनेगे। आप पहले हृदय-बल प्राप्त करे। तब आपको शरीर-बल प्राप्त हो सकेगा।

मै आपसे प्रार्थना करता हूँ — ईश्वरसे तो प्रार्थना क्या करूँ, मै उसके सम्मुख तो रहता ही हूँ, अत मेरी प्रार्थना आपसे ही है। आप खुद अपनी तथा अध्यापकोकी कीर्ति बढाये। हमारा यह विद्यापीठ सारे देशके लिए एक नमूना है। गुजरातने शिक्षा-विषयक असहयोगको सफल कर दिखाया है। यह ठीक है या नही, अथवा ठीक है तो किस हदतक है, इसका निर्णय तो भविष्यमे होगा।

मै अध्यापकोसे भी विनय नही करना चाहता, क्योकि मै भी उन्हीमे से हूँ। आज तो मै यही विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि शिक्षा-विषयक यह असहयोग सफल होता है या नही, यह बात आपपर ही निर्भर है। मै चाहता हूँ कि आज आप यही विचार लेकर घर जाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

११२. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ सुदी १० [११ जून, १९२४][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा दूसरा पत्र मिला। जितने पत्र तुम लिखोगी, मुझसे भी केवल उतने ही पानेकी अपेक्षा करना। अभीतक तो ऐसा ही हो पाया है। मुझे तुम्हारा पत्र जिस दिन मिला था, उसी दिन उत्तर दे दिया था। मिल गया होगा। रामदास और अन्य लोग आबूसे लौट आये है। मालूम होता है, वहाँ उन्हे बहुत लाभ हुआ।

१. यहां हिन्दूमें छपे विवरणमें यह भी मिलता है, "आप उनमें श्रद्धा रखें, अपने कर्तव्यका पालन करें और अपने बीच स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयताकी भावनाको विकसित करें। आप इस प्रकार इस विद्यापीठकी, जिसमें आप शिक्षा पाते हैं, कीर्ति बढायें।"

२. डाकखानेकी मुहरके अनुसार। ११ जूनको जेष्ठ सुदी नवमी पड़ती थी, अत: जेष्ठ सुदी १० भूलसे दी गई जान पड़ती है।

तुम वहाँ जा सकती तो कितना अच्छा होता। अब देवलालीमे ही बनी रहो और अपनी तबीयत पूरी तरह सुधारो। मेरा स्वास्थ्य ठीक है। प्रभुदास अभी आबूसे नही लौटा। देवदास और बा आज भावनगर गये है।[1]

बापूके आशीर्वाद

वसुमती बहन
कोठारी आरोग्यभवन
देवलाली

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४८) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

११३. सन्देश : सौराष्ट्र राजपूत परिषद्को

वरतेज
११ जून, १९२४

राजपूतोकी पहली परिषद् होने जा रही है और मैं इस अवसरपर केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप परिषद्का प्रारम्भ धर्मके आधारभूत सत्योका पालन करते हुए करे। आप वहाँ अपने अधिकारोके सम्बन्धमे अनेक प्रस्ताव पास करेगे, किन्तु मेरा निवेदन है कि आप अपने कर्त्तव्यको न भूले। जो लोग अपने कर्त्तव्यका पालन निष्ठाके साथ करते है उन्हे ईश्वर सदैव अधिकार प्रदान करता है। आप गरीबोके संरक्षक बननेका प्रयत्न करे, तब आप यह समझ जायेंगे कि चरखा उनका जीवन ही है। आप स्वयं चरखा चलाकर उनमे चरखेका प्रचार करे। मुझे आशा है, आप आज केवल हाथसे कती और बुनी खादी पहननेका व्रत लेगे। इससे आपको गरीबोका आशीर्वाद मिलेगा। मैं इससे ज्यादा कुछ नही कह सकता।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-६-१९२४

१. देखिए "पत्र : देवचन्द पारेखको", ८-६-१९२४।

११४. जेलके अनुभव — ८

जेलोंकी अर्थ-व्यवस्था

जिसे जेलोका कुछ भी अनुभव है, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि जेल सारे विभागोमे सबसे ज्यादा दरिद्र विभाग है। जेलोमे प्रत्येक वस्तु अत्यन्त मामूली किस्मकी और भद्दी होती है। वहाँ मानवीय श्रमके खर्चमे अपव्यय तथा पैसे और वस्तुओके मामलेमे कजूसी बरती जाती है। अस्पतालोमे इससे बिलकुल उलटा होता है तथापि दोनो ही ऐसी सस्थाएँ है जो मानवीय रोगोका उपचार करनेके उद्देश्यसे बनी है — जेल मानसिक रोगोके लिए और अस्पताल शारीरिक रोगोके लिए। मानसिक-रोग अपराध है और इसलिए दण्डनीय माने जाते है तथा शारीरिक रोग प्रकृतिके अनपेक्षित प्रकोप है और वे इसलिए दण्डनीय नही माने जाते बल्कि शरीर-रोगीके साथ तो स्नेहका व्यवहार किया जाता है। वास्तवमे, इस प्रकारका भेद करनेका कोई कारण नही है। मानसिक और शारीरिक, दोनो ही प्रकारके रोगोका उद्भव एक ही कारणसे होता है। यदि मै चोरी करता हूँ तो वह नियम भग करता हूँ, जिससे कोई स्वस्थ समाज शासित होता है, और यदि मै पेटके दर्दसे पीडित हूँ तो मै उन्ही नियमोका भग करता हूँ, जिनसे कोई स्वस्थ समाज शासित होता है। शारीरिक रोगोके प्रति नरमीका व्यवहार करनेका एक कारण यह भी है कि तथाकथित उच्चवर्गीय लोग निम्नवर्गके लोगोकी अपेक्षा, शारीरिक स्वास्थ्यके नियमोका कदाचित् अधिक बहुतायतसे भग करते है। उच्च वर्गके लोगोको भोडी चोरियाँ करनेकी कोई जरूरत नही पडती, इसलिए भी कि स्पष्ट चोरियाँ होते रहनेसे उनकी जीवनचर्यामे व्यवधान उत्पन्न हो सकता है और वे यह भी अच्छी तरह जानते है कि उनकी ठगविद्या — जो समाजमे चल जाती है — भोडी चोरियोकी अपेक्षा समाजके लिए कही अधिक हानिकर होती है। यह भी एक विचित्र बात है कि गलत उपचारके कारण ही दोनो सस्थाएँ पनप रही है। अस्पताल इसलिए पनप रहे है कि रोगियोको प्रश्रय दिया जाता है, तथा उनका मन रखा जाता है और जेल इसलिए पनप रही है कि कैदियोको सुधारसे परे समझ-कर दण्ड दिया जाता है। यदि मानसिक या शारीरिक, प्रत्येक रोगको एक स्खलन माना जाता, फिर भी यदि प्रत्येक रोगी या कैदीके साथ दयालुता और सहानुभूतिके साथ बर्ताव किया जाता — न कि कठोरता अथवा अनुचित अनुग्रहका — तो अस्पताल और जेल, दोनोकी सख्यामे कमी होते जानेकी प्रवृत्ति दिखाई देने लगती। स्वस्थ समाजके लिए न जेलकी जरूरत है, न अस्पतालोकी। होना तो यह चाहिए कि प्रत्येक रोगी और प्रत्येक कैदी अस्पताल या जेलसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य-का व्रती प्रचारक बनकर बाहर निकले।

किन्तु अब मुझे यह तुलनात्मक विवेचन समाप्त कर देना चाहिए। पाठकोको यह जानकर आश्चर्य होगा कि जेलोमे कजूसी मितव्ययिताके नामपर की जाती है। यद्यपि सारा काम — उदाहरणके लिए, पानी खीचना, आटा पीसना, रास्ते और पाखाने साफ

करना, रसोई बनाना — कैदियोंसे ही लिया जाता है, फिर भी कैदी आत्मनिर्भर होना तो दूर, अपने भोजनका पैसा भी नहीं निकाल पाते और अपने सारे परिश्रमके बावजूद, कैदियोंको रुचिकर भोजन भी नहीं मिलता और उसके बनानेका ढंग भी उपयुक्त नहीं होता। इसका कारण केवल इतना ही है कि उन कैदियोंको जो रसोई बनाने इत्यादिका काम करते हैं, सामान्यतः अपने काममें दिलचस्पी नहीं होती। उन्हें यह काम ऐसे लोगोंकी देखरेखमें करना पड़ता है जो उनके प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं रखते। यह समझना बहुत आसान है कि कैदी यदि परोपकारी जीव होते और इसलिए उन्हें अन्य लोगोंके हितकी चिन्ता होती तो वे जेलमें जाते ही क्यों! अतः यदि कोई अधिक युक्तिसंगत और अधिक नैतिक प्रशासन पद्धति अपनाई गई होती तो जेल आजकी तरह घोर अपराधियोंकी खर्चीली बस्तियाँ होनेके बजाय, बड़ी सरलताके साथ स्वावलम्बी सुधार संस्थाएँ बन जातीं। यदि मेरा वश चले तो मैं पानी खींचने, आटा पीसने आदिमें होनेवाले श्रमके भयानक अपव्ययको बचा लेता। यदि बागडोर मेरे हाथमें होती तो मैं आटा बाहरसे खरीदता, पानी मशीनसे खिचवाता और कैदियोंको सभी प्रकारके फुटकर कामोंके बजाय खेती, हाथकी कताई और हाथकी बुनाईके काममें लगाता। छोटी जेलोंमें तो कताई और बुनाईका काम ही रखा जाये। आज भी अधिकांश केन्द्रीय जेलोंमें बुनाई होती है। बस, इसमें पिंजाई और हाथकी कताईको ही जोड़नेकी जरूरत है। आवश्यकतानुसार सारी कपास जेलोंमें ही उत्पन्न की जा सकती है। यह पद्धति हमारे राष्ट्रीय कुटीर उद्योगको लोकप्रिय बनायेगी, और जेलोंको आत्मनिर्भर। इस प्रकार सभी कैदियोंके श्रमका उपयोग लाभदायक कामोंके लिए [सपारिश्रमिक] होते हुए भी प्रतिस्पर्द्धात्मक कामोंके लिए नहीं होगा — जैसा कि अभी कुछ हदतक है। यरवदा जेलके अन्तर्गत एक छापाखाना है। इस छापेखानेमें काम करनेवाले अधिकतर कैदी ही हैं। मैं इसे सामान्य छापाखानोंके साथ अन्यायपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा मानता हूँ। यदि जेल उद्योगोंमें प्रतिस्पर्द्धा करें तो उनका सारा खर्च निकालकर बचत हुई दिखाई जा सकती है। किन्तु मेरा उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि प्रतिस्पर्द्धामें पड़े बिना भी जेलोंको आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है, साथ ही उसमें आनेवाले कैदियोंको कोई ऐसा घरेलू उद्योग सिखाया जा सकता है, जो उनकी रिहाईके बाद उन्हें स्वतन्त्र व्यवसाय दे सके और इस प्रकार उन्हें सम्माननीय नागरिकों-जैसा जीवन-यापन करनेकी दिशामें पूरा-पूरा प्रोत्साहन दे।

साथ ही मैं सामान्य सुरक्षाका खयाल रखते हुए कैदियोंके लिए यथासम्भव घर-जैसा वातावरण प्रस्तुत करूँगा। इस प्रकार मैं उन्हें अपने सम्बन्धियोंसे मिलने, पुस्तकें प्राप्त करने, यहाँतक कि शिक्षा पानेकी भी सब सुविधाएँ दूँगा। मैं अविश्वासके स्थान पर समुचित विश्वासकी स्थापना करूँगा। वे जो भी काम करेंगे मैं उन्हें उसका श्रेय दूँगा और पका हुआ भोजन या उसकी सामग्री उन्हें ही खरीदने दूँगा।

मैं अधिकांश सजाओंकी अवधि अनिश्चित रखूँगा, जिससे कि उन्हें समाजकी सुरक्षा और अपने खुदके सुधारके लिए जितना आवश्यक है उससे एक क्षण भी अधिक जेलमें न रोकना पड़े।

मै जानता हूँ कि इसके लिए आमूल पुनर्गठनकी जरूरत है। आजकल फौजकी नौकरीसे निवृत्त लोगोको वार्डर आदि रखा जाता है। इस पुनर्गठित व्यवस्थामे बिलकुल दूसरे ही ढगके लोग आवश्यक होगे। किन्तु मै यह भी जानता हूँ कि यह सुधार बिना बहुत ज्यादा अतिरिक्त खर्चके किया जा सकता है।

फिलहाल जेल धूर्तोके लिए आरामगाह और साधारण सीधे-सादे कैदियोके लिए यन्त्रणा-गृह होते है। अधिकाश कैदी सीधे-सादे ही होते है। चलते-पुरजे कैदियोको तो वे जो चाहते है मिल जाता है, किन्तु सीधे-सादे और कम हिकमती कैदियोको, जो आवश्यक होता है, वह भी नही मिल पाता। उस योजनामे, जिसकी मात्र मोटी रूपरेखा खीचनेका प्रयत्न मैने किया है, बदमाश कुटिलता त्यागे बिना चैनसे नही रह पायेगे और सीधे-सादे निर्दोष कैदियोको परिस्थिति विशेषमे जितना सम्भव है उतना अनुकूल वातावरण मिलेगा। ईमानदारी लाभका और बेईमानी घाटेका सौदा सिद्ध होगा।

यदि ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि कैदी अपने भोजनका मूल्य कामके रूपमे चुकाये तो वे निठल्ले नही बैठेगे और केवल खेती तथा कपासके मालका उत्पादन और इनसे सम्बन्धित हस्तकलाएँ रखने-भरसे आपकी देखरेखपर होनेवाला भारी खर्च बहुत कम हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११५. अस्पृश्यता और स्वराज्य

एक सज्जन गम्भीर भावसे लिखते है

यह "अस्पृश्यता" शब्द ही मुझे बिलकुल ऊँटपटाँग लगता है, क्योकि ऐसा कोई वर्ग विशेष तो है नहीं जिसे "स्पृश्य" कहा जाता हो। ऐसा तो बहुत कम ही होता है कि हम सचमुच किसीके पास जाकर उसे छूते हो — आवश्यकता ही आ पड़े तो बात दूसरी है। तथाकथित 'अस्पृश्यो' को छोडकर अन्यके सम्बन्धमें तो आमतौरपर यही देखा जाता है कि वे परस्पर किसीके निकट आने या बगलसे होकर गुजर जानेका खयाल नहीं करते। स्थिति यही है; कोई भी किसीके पास न अदबदाकर जाता है, न उसके बदनको हाथ लगाता है। सभी लोग अगर इसी तरह अपने कामसे-काम रखें और "अस्पृश्यो" को भी अपनी राह चलने दें तो क्या इस पेचीदे मसलेका हल नहीं निकल आता?

मुझे यकीन है, आप यह हरगिज नहीं चाहते कि लोग "अस्पृश्यता" के पापको धोनेकी खातिर किसी "अस्पृश्य" के पास जायें और उसके बदनको हाथ लगायें। अगर आप यह मानते है कि स्पर्श करना कोई जरूरी बात नहीं है तो आप इस कुप्रथाको "अस्पृश्यता" की संज्ञा क्यो देते है? आपके "अस्पृश्यता" शब्दका

प्रयोग करनेसे तो यही ध्वनि निकलती है कि इस बुराईको दूर करनेके लिए "अस्पृश्यो" का शरीरत स्पर्श करना जरूरी है। मुझे तो लगता है कि कुछ हदतक इस आन्दोलनके प्रति कट्टरपंथियोके विरोधका कारण यही हे। मेरा ख्याल है कि हम अपने भाईको भी रोज-रोज नहीं छूते और इसलिए यदि हम इस समस्याको हल करना भी चाहे तो भी हमारा किसी दूसरे व्यक्तिका स्पर्श करना न जरूरी है और न अन्यथा उपयोगी। इसलिए उस समुदायकी आज जो स्थिति है, उसको व्यक्त करनेके लिए "अनुपगम्यता" शब्द ज्यादा उपयुक्त होगा। बाहरसे हम उन्हे कितना भी गले क्यो न लगायें, हमारे दिलोंमें सहिष्णुताकी भावनाके बिना स्थितिमें सुधार सम्भव ही नहीं हे।

और फिर मेरी समझमें यह बात भी नहीं आती कि इस कुप्रथाके अस्तित्वका स्वराज्यकी स्थापनासे क्या सम्बन्ध है। कुछ भी कहिए, "अनुपगम्यता" हिन्दू समाजकी अनेक बुराइयोमें से एक हे। सम्भव हे वह दूसरी बुराइयोके मुकाबले कुछ बडी हो। किन्तु जहां समाज हे वहाँ इससे मिलती-जुलती बुराइयाँ तो रहेंगी ही। क्योंकि ऐसा कौन-सा समाज है जिसमें बुराइयाँ न हो? इसे स्वराज्यके मार्गमें बाधक क्यो माना जा रहा है और इसके निवारणको आप स्वराज्य प्राप्त करनेकी योजनाकी पूर्व-शर्तकी तरह क्यो पेश करते हैं? क्या स्वराज्य-प्राप्तिके बाद इस समस्याका समाधान सम्भव नहीं हे? तब अगर लोग राजी-खुशीसे इस कुप्रथाको न छोड सके तो इसे कानून बनाकर तो दूर किया ही जा सकता है।

हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच स्थायी एकता स्थापित होना निहायत जरूरी है, यह बात मैं बखूबी समझ सकता हूँ, क्योंकि इन दो बडे समुदायोके आपसी झगडेसे सरकार फायदा उठा सकती है और उसकी आड लेकर हमारी माँगें अनिश्चित कालतक टालती जा सकती हे। इस कुप्रथाके सामाजिक, धार्मिक और मानवीय पहलुओको भी मैं समझ सकता हूँ, लेकिन यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि इसे ऐसी राजनीतिक समस्या किस प्रकार माना जा सकता है, जिसका समाधान किये बिना स्वराज्यकी प्राप्ति असम्भव हो।

मेरा झगडा शब्दको लेकर नही है। लेकिन जिस प्रणालीकी बदौलत हिन्दू लोग एक बहुत बडी संख्यामे जानवरोसे भी अधम स्थितिमे पहुँचा दिये गये है, उस प्रणालीको मैं अन्तरात्मासे घृणा करता हूँ। निस्सन्देह यदि इन बेचारे पचमोको — मैं अस्पृश्य शब्दका प्रयोग नही कर रहा हूँ — अपनी राह चलने दिया जाये तो यह कठिन समस्या अपने-आप हल हो जाये। लेकिन, दुर्भाग्यवश, न उनकी अपनी कोई राह है और न उसपर चलनेकी समझ। क्या किसी जानवरकी अपनी खुदकी कोई राह या समझ हुआ करती है — मालिककी राह ही उसकी राह और मालिकका मन ही उसका मन है। क्या पचम लोग किसी भी स्थानको अपना स्थान कह सकते है? जिस सडकको वह साफ करता है और जिसे स्वच्छ बनाये रखनेके लिए अपना पसीना बहाता है,

उस सडकपर भी वह नही चल सकता। जिस प्रकारकी पोशाक दूसरे लोग पहनते है, वैसी पोशाक पहननेतक की आजादी उसे नही है। पत्र-लेखक महोदय सहिष्णुताकी वात करते है। यह कहना कि हम हिन्दू लोग अपने पचम भाइयोके प्रति तनिक भी सहिष्णुता दिखाते है —भापाका दुरुपयोग करना है। हमने ही उन्हे पतनके गर्तमे गिराया है और फिर हम ही उनकी इस गिरावटको उनके पुनरुत्थानके खिलाफ एक कारण वतलानेकी धृष्टता करते है।

मेरे लेखे तो स्वराज्य वही है जिसमे सावारणसे-साधारण देशवासी भी आजाद हो। जव हम सवके-सव कष्ट भोग रहे है, अगर ऐसे समयमे भी हम पचमोकी हालत सुवारनेका विचार न करे तो स्वराज्यके मदमे चूर हो जानेपर इसकी सम्भावना नही रहेगी। यदि हमारे लिए स्वराज्यकी एक पूर्व शर्तके तौरपर कुछ देकर भी मुसलमानोके साथ अमनसे रहना जरूरी है तो पचमोको भी शान्तिसे जीनेका अधिकार देना उतना ही जरूरी है। जबतक हम ऐसा नही करते तवतक हम न्यायपूर्वक और आत्म-सम्मानके साथ स्वराज्यकी वात नही कर सकते। मेरी दिलचस्पी भारतको सिर्फ अग्रेजोकी दासतासे ही मुक्त करनेमे नही है। मै तो इस देशको हर तरहकी दासतासे मुक्त करनेपर तुला हुआ हूँ। मै किसी "साँपनाथ" की जगह "नागनाथ" को प्रतिष्ठित नही करना चाहता। अत मेरे लिए स्वराज्य आन्दोलन आत्म-शुद्धिका आन्दोलन है।

[अग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११६. आर्यसमाजी भाई

सारे हिन्दुस्तानके आर्यसमाजी भाई मुझपर वडा तीव्र रोप प्रगट कर रहे है। मेरे पास ऐसे पत्र आये पडे है जिनमे आर्य समाज, उसके महान् सस्थापक तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके सम्बन्धमे हिन्दू-मुसलमानवाले वक्तव्यमे किये मेरे उल्लेखका आवेशपूर्ण विरोध किया गया है। ये खत और तार गाजियावाद, मुलतान, दिल्ली, सक्खर, कराची, जगराँव, सिकन्दरावाद, लाहौर, सियालकोट, इलाहावाद, इत्यादि जगहोसे आये है। इनमे उन पत्रोकी गिनती नही की गई है, जो लोगोने निजी तौरपर मुझे लिखे है। इनमे लगभग सभी पत्र-प्रेपक यह अपेक्षा रखते है कि मै उनके ऐतराजोको प्रकाशित भी करूँ। कितने ही महाशयोने तो मुझसे इसका आग्रह भी किया है। मै इन सज्जनोका मनोरथ पूरा न करपानेके लिए उनसे माफी चाहता हूँ। वहुतसे पत्रो और तारोका मजमून पिछले हफ्तेमे प्रकाशित तारसे[1] मिलता-जुलता है। आर्यसमाज, 'सत्यार्थप्रकाश', ऋपि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्दजी और शुद्धि आन्दोलनपर, उनके खयालमे मैने जो हमला किया है, उसपर इन सवमे क्रोध प्रकट किया गया है। मुझे अफसोसके साथ कहना पडता है कि मेरे विचार अभीतक ज्योके-त्यो वने हुए है। सामान्य दलीलोसे भरे हुए

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-६-१९२४।

इन सब तारो और पत्रोको मैने बडे ध्यानसे पढा है। जिन लोगोने आर्यसमाज सम्बन्धी बातोकी अनभिज्ञताको मेरे इस तरह लिखनेका कारण बतलाया है, उन्होने यह शायद इसलिए किया है कि मैं इसका सहारा लेकर बच निकलूँ। लेकिन मेरी बदनसीबी है कि मैने अपने बच निकलनेकी कोई गुजाइश नही छोडी। मै यह नही कह सकता कि मै 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा आर्यसमाजके सामान्य सिद्धान्तोसे ना-वाकिफ हूँ। मै नही कह सकता कि आर्यसमाजके बारेमे मेरी राय पहलेसे अच्छी नही थी, बल्कि मैने पूरी श्रद्धा और भक्तिके साथ उसका अध्ययन किया है। ऋषि दयानन्दके व्यक्तिगत चरित्रबलके प्रति मेरा हमेशा असीम आदरभाव था और आज भी है। उनके ब्रह्मचर्यको मैने अपने लिए हमेशा अनुकरणीय वस्तु माना है। उनकी निर्भयताका मै प्रशसक रहा हूँ। इसके अलावा, अगर मेरे अन्दर प्रान्तीयताका भी कोई भाव हो तो ऋषि दयानन्द मेरी ही तरह एक काठियावाडी थे, यह भी मेरे लिए कम फख्रकी बात नही है। पर मै लाचार था। मुझे अपनी इच्छाके खिलाफ उन नतीजोपर पहुचना पडा और मैने उन्हे प्रकाशित भी तभी किया जब वह प्रसगानुकूल जान पडा। अगर इस मौकेपर मै अपनी राय दबा जाता तो वह मेरी कायरता होती। समाजी भाइयोसे मेरी प्रार्थना है कि प्रामाणिक रूपसे प्रकट की गई मेरी रायसे क्रोधित होनेके बदले वे मेरी आलोचनाको सीधे अर्थमे ले। उसकी छान-बीन करे, मुझे यदि कर सकते हो तो अपनी बातका कायल करे और अगर मै उनकी बातका कायल न हो सकूँ तो ईश्वरसे मेरे लिए दुआ मांगे। दो चिट्ठियोमें चुनौतीके साथ कहा गया हे कि मैं अपने निर्णयोके सबूत पेश करूँ। बात वाजिब है। आशा है मैं जल्दी ही अपने निर्णयोकी पुष्टिमे 'सत्यार्थ प्रकाश' के कुछ अनुच्छेद प्रस्तुत कर सकूंगा। ये सज्जन कृपा करके मुझे धार्मिक वाद-विवादमें न घसीटें। मैं तो सिर्फ वह सामग्री उनके सामने पेश कर दूंगा जिसके सहारे मैं उन धार्मिक नतीजोपर पहुँचा हूँ। स्वामी श्रद्धानन्दजीके विषयमे मेरे लिए सबूत या दलील पेश करनेका कोई सवाल पैदा नही होता। उनसे अपनी मित्रताका दावा मै पिछले लेखमे कर ही चुका हूँ। उसपर ध्यान देकर आलोचकगण यदि इस मामलेमे उनके और मेरे बीचमें न पडे तो मेहरबानी होगी। फिर उनके सम्बन्धमे मेरी राय कुछ भी हो, मैं उनके साथ नही झगडूंगा। उनकी आलोचना मैंने एक मित्रकी हैसियतसे की है। शुद्धिके बारेमे भी "जिस अर्थमे ईसाई धर्ममे उसका स्थान है या कुछ कम अशोमे इस्लाममे", यह कहकर मैंने उसे जिस तरह सीमित किया है, मेरे आलोचक क्रोधान्ध होकर उसे नजर अन्दाज कर गये हैं। यह बात और है और यह कहना कि हिन्दू धर्ममे मत-परिवर्तन होता ही नही, बिलकुल दूसरी बात है। हिन्दू-धर्मके पास शुद्धिका अपना एक निराला ही ढग हे। परन्तु यदि आर्यसमाजी लोग मेरी रायसे सहमत न हो तो कमसे-कम मुझे अपनी रायपर कायम रहनेकी इजाजत दे। अगर आर्यसमाजी भाई मेरे निवेदनको फिरसे पढे तो उन्हे मालूम हो जायेगा कि मैंने यह कहा है कि अगर वे चाहते हो तो उन्हे अपनी हलचल जारी रखनेका पूरा-पूरा हक हे। दो रायोका मिल जाना सहिष्णुता नही हे। सहिष्णुताके मानी तो यह है कि दो आदमियोके मतमे पूर्व-पश्चिमका अन्तर हो तब भी दोनो एक-दूसरेको निबाह ले।

अन्तमे, मैने अपने निवेदनमे यह भी नही कहा कि समाजी या मुसलमान औरतोको उडाते ही है। मैने तो यह लिखा है कि "मै सुनता हूँ" कि वे ऐसा करते है। मैने जो बात कानपर आई उसे कहकर दोनो पक्षोको यह मौका दे दिया कि वे इस इल्जाम को झूठा सावित करे। जो कुछ कहा जा रहा था, वातावरणको निर्मल करनेकी दृष्टिसे। क्या उस सवको प्रकाशित कर देना ज्यादा अच्छा नही हुआ?

आर्यसमाजी मित्रोसे मै कहूँगा कि उनका यह विरोध उनमे सहिष्णुताकी कमी जाहिर करता है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओ और सार्वजनिक सस्थाओके इतने तुनक-मिजाज होनेसे कैसे काम चल सकता है? उन्हे तो कठोरसे-कठोर टीका भी हँसकर सहन करनी चाहिए।

और अब मुझे उनसे एक प्रार्थना करनी है — आपमे से लगभग वहुतेरे भाई मेरी टीकापर अपना विरोध प्रकाशित कर चुके। इसका मुझे रज नही है। मै आपको यकीन दिलाता हूँ कि आपके दु खसे मै दुखी हुआ हूँ। मैने वह टीका दु खित हृदयसे ही लिखी थी और अब यह देखकर कि उससे वहुतोके दिलको चोट पहुँची है, मै दु खित हुआ हूँ। मै आपका दुश्मन नही हूँ, वल्कि मै तो आपका मित्र होनेका दावा करता हूँ। समय आनेपर इसका सबूत आपको मिलेगा। आप किसी व्यक्ति या धर्मसे झगडना नही चाहते। आप लोगोने लगभग अपने सभी पत्रोमे यही कहा है। मैने आर्यसमाजकी, उसके सस्थापककी और स्वामी श्रद्धानन्दजीकी जो प्रशसा की है उसे हृदयगम कीजिए। आर्य समाजने हिन्दू समाजकी वुराइयाँ दूर करनेका जो काम किया है उससे मै अनभिज्ञ नही हूँ। मै जानता हूँ कि आर्यसमाजने हिन्दू धर्मको कलकित करनेवाली कितनी ही कुप्रथाओको मिटानेकी कोशिश की है। परन्तु पिछली कमाईपर कोई कबतक जीवित रह सकता है? आप शब्दोका अतिक्रमण करके धर्मकी भावनाको समझे और उसका प्रचार करे। आप शौकसे इनकार कीजिए, पर मै फिर कहता हूँ कि आपके शुद्धि-आन्दोलनमे मुझे पादरियोके धर्म-प्रचारकी पद्धतिकी वू आती है। मै चाहता हूँ कि आप इससे ऊँचे उठे। अगर आप अपने ही क्षेत्रको सुधारनेका आग्रह करे तो आपका पूरा समय और पूरी शक्ति उसीमे लग सकती है। मेरी तरह अगर आप भी मानते हो कि आर्यसमाज हिन्दू धर्मका एक अग है तो हिन्दूको हिन्दू वनानेका प्रयत्न कीजिए। अगर आप आर्यसमाजको हिन्दू धर्मसे जुदा मानते हो तो मेरा खयाल है कि फिर आप उनकी राय नही वदल पायेगे। पहले अपनी जगह जाननेकी कोशिश कीजिए। मैने आपपर टीका इसलिए की है कि मै वर्तमान राष्ट्रीय और धार्मिक आन्दोलनमे आपका सहयोग चाहता हूँ। अगर आर्यसमाज उस सकुचितताको छोडकर, जो मुझे दिखाई दी है, व्यापक दृष्टि धारण कर ले तो उसका भविष्य उज्ज्वल है। अगर आप यह कहते हो कि आप पूरे विकसित हो चुके है तो मुझे जरूर रज होगा और तव चूँकि मुझे आपमे उदारता नही दिखाई देती, आपका मुझपर गुस्सा करना मुनासिव नही है। वल्कि मुनासिव यह है कि कि आप अपनेको उदाराशय वनाकर, मेरे अज्ञानको नजरअन्दाज करे, और धीरजके साथ उसे दूर करनेका प्रयत्न करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११७. टिप्पणियाँ

समरथको नहिं दोष गुसाँई

मेरे एक घनिष्ठ यहूदी मित्र बात करते-करते अकसर एक मुहाविरेका प्रयोग किया करते थे — "रबी मे" इसका अर्थ यह निकलता है कि देशमे जो शख्स सबसे बडा हो वह चाहे जैसा भयकर जुर्म नि शक होकर कर सकता है, नि शक होकर ही नही, "समरथको नहि दोप गुसाँई" के न्यायके मुताबिक अपने कुकृत्योके लिए वह लोगोकी वाहवाही तक प्राप्त कर सकता हे। यह बात आज ओ'डायर-नायरके मुकदमेपर मौजू बैठती है। इस मुकदमेमे आरम्भसे ही जजने पक्षपात दिखाया। प्रतिदिन, अखबारोमे इस मामलेके बारेमे जो खबरे छपती थी, उनको पढकर जनताका मन व्यथित होता रहा। मुकदमेका फैसला क्या होगा, यह तो पूर्व निश्चित-सा था, पर निराशाके बीच भी लोगोको यह आशा लगी हुई थी कि फैसला लिखते हुए अपने उपसहारमे जज महोदय कुछ-न-कुछ न्याय तो करेगे ही। लेकिन यह होता कैसे। जो बुरेसे-बुरा हो सकता था, वह होकर रहा। जिस कार्यको करनेमे किसी हिन्दुस्तानीको अपनी जानसे हाथ धोना पड सकता हो, वही काम एक अग्रेज जज बेखटके कर डाल सकता है।

सर माइकेल ओ'डायरकी चुनौतीको मजूर करके सर शकरन् नायरने सारे ब्रिटिश सविधान और ब्रिटिश जनताको कसौटीपर रख दिया था, पर इस कसौटीपर वे खरे नही उतरे। ऐसे सीधे-से मामलेमे भी सर शकरन् नायर-जैसे जानेमाने राजभक्तके साथ न्याय नही हुआ। यदि सर माइकेल ओ'डायर हार जाते तो उससे ब्रिटिश साम्राज्य नष्ट न हो गया होता। उसकी झूठी प्रतिष्ठाको थोडा-सा धक्का जरूर लगता। ब्रिटिश जनता इस बातके लिए मानो वचनबद्ध है कि जबतक उसके निष्ठावान सेवक उस साम्राज्यके पक्षमे काम कर रहे है, जो उनकी समृद्धिका स्रोत है, तबतक वे लोग यदा-कदा गलती ही क्यो न कर बैठे, वह उनकी हिमायत करेगी। मै जानता हूँ कि सर शकरन् नायरकी इस हारमे प्रत्येक भारतवासीकी सहानुभूति उनके साथ है। मै तो पहलेसे ही जानता था कि इस मुकदमेका अजाम क्या होनेवाला है। शैतानकी आतकी तरह बढते जानेवाले इस निर्जीव मुकदमेको सर शकरन् नायर जिस जीवटसे लड रहे थे, उसे देखकर मेरे मनमे उनके प्रति प्रशसाका जो भाव था वह बढता चला गया। इस मुकदमेसे इस शासनके विरुद्ध मौजूद आरोपोमे एक और जबरदस्त आरोप जुड गया है। इस शासनतन्त्रका विनाश तो किया ही जाना चाहिए।

गलत रास्ता

लेकिन हम असहाय है — ऐसा मानकर हमे अपना धैर्य नही खो बैठना है। सिराजगज सम्मेलनने हमे एक गलत रास्ता दिखाया है। गोपीनाथ साहाके सम्बन्धमे सम्मेलन मे जो प्रस्ताव[1] पास किया गया उसका पाठ अब मुझे मिल गया हे और इस समय वह

१ देखिए "भेंट, 'टाइम्स ऑफ इडिया' के प्रतिनिधिसे", ५-६-१९२४।

मेरे सामने है। दु खके साथ कहना पड़ता है कि 'टाइम्स ऑफ इडिया' के प्रतिनिधिने इस प्रस्तावका जो मजमून मुझे दिखाया था, यह पाठ तो उससे बहुत अधिक बुरा है। (४ जूनके) 'फॉरवर्ड' मे प्रस्ताव छपा है। वह इस प्रकार है

> **यह सम्मेलन अहिंसाकी नीतिमें अपना दृढ विश्वास प्रकट करता है, किन्तु साथ ही गोपीनाथ साहाने श्री डेको हत्याके सिलसिलेमें फासीकी सजा पाकर जिस देशभक्तिका परिचय दिया है, उसके लिए उनके प्रति सादर श्रद्धाजलि अर्पित करता है।**

इस प्रस्तावको मै अहिसाके व्यगके अलावा और कुछ नही मान सकता। अगर इसमे अहिसा शब्दको न घसीटा गया होता तो प्रस्ताव कम अशोभन होता। अगर गोपीनाथ साहाके किसी कार्यको उनकी देशभक्तिका द्योतक माना जा सकता है तो वह उनका हत्या-कार्य ही है, न कि उसके परिणामस्वरूप मिलनेवाली फॉसीकी सजा। वे मरनेका सकल्प करके नही, बल्कि जिस व्यक्तिको घृणित मानते थे, उसे मारनेका सकल्प करके चले थे। वे जानते थे कि इसमे उनके फॉसीपर लटका दिये जानेका खतरा है। इससे उन्हे बहादुर तो माना जा सकता है, किन्तु लाजिमी तौरपर देशभक्त नही। कारण, हर हत्यारा जानता है कि वह जोखिमका काम कर रहा है और इसलिए उसे बहादुर कहा जा सकता है। इसलिए अगर उनके किसी कार्यमे देशभक्ति थी तो इतनी ही कि उन्होने किसीके प्राण लिये। यदि हम अहिसाको केवल व्यावहारिक नीति ही माने, तो भी हत्याका उससे मेल नही बैठता। स्वय अहिसापर दृढ रहकर कष्ट झेलना और हिंसापूर्वक किसी दूसरेको चोट पहुँचाना, ये दोनो कार्य एक ही सासमे देशभक्तिपूर्ण नही माने जा सकते। हर देशप्रेमीकी देशभक्तिका तकाजा है कि जबतक उसका देश अहिंसाकी नीतिपर चल रहा है, तबतक हत्या आदि कार्यो द्वारा वह उसमे व्यवधान न डाले और अगर कोई हत्या करता है तो अहिंसाकी नीतिपर चलनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध लोगोके कर्त्तव्यकी इतिश्री इतनेसे ही नही हो जाती कि वे किसी भी तरह उस कार्यसे अपना नाम न जुडने दे, बल्कि उन्हे चाहिए कि वे उस कृत्यकी खूब डटकर भर्त्सना करे — क्योकि और कुछ नही तो उनका इतना कर्त्तव्य तो है ही कि जनमत तैयार करके वे ऐसे कृत्योकी रोक-थाम करे। यदि हत्यारेका प्रेरक-भाव विमलतम हो तो भी उसकी इस प्रकार भर्त्सना करना आवश्यक है। व्यावहारिक राजनीतिमे महत्व सिर्फ कार्यका होता है, न कि कार्य और परिणामोसे स्वतन्त्र किसी उद्देश्य या मनोवृत्तिका। यदि प्रस्तावमे अहिंसाकी नीतिमे फिरसे विश्वास व्यक्त न किया गया होता तो निसन्देह मेरी इन दलीलोमे कोई बल न रहता। लेकिन मै यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि जिस घडीतक काग्रेस उस सिद्धान्तको लेकर चलती रहेगी जिसको लेकर वह इस समय चल रही है, तबतक अपने सिद्धान्तके प्रति निष्ठा रखनेवाले हर काग्रेस-जनका यह परम कर्त्तव्य है कि वह मनसा, वाचा, कर्मणा राजनीतिक हिसाके प्रत्येक कृत्यको धिक्कारे। इसलिए बगाल प्रान्तीय काग्रेस कमेटीसे मेरा नम्र निवेदन है कि वह या तो सम्मेलनके उस प्रस्तावसे अपनेको पूर्णरूपेण विच्छिन्न कर ले या अगर इस प्रस्तावका, जो बहुत बडे मतसे पास हुआ प्रतीत होता है, कोई खुलासा उसके पास हो तो उसे जनताके सामने रखकर अपनी स्थिति स्पष्ट करे।

'महात्मा' से बचाइए

मेरे नामके साथ 'महात्मा' शब्द जोडनेकी बातपर सिराजगज सम्मेलनमे जो-कुछ हुआ, उससे मुझे बहुत कष्ट पहुँचा है। एक सज्जन बोलते समय मेरे नामके साथ यह शब्द नही लगा रहे थे। इसपर कुछ लोगोने, जिन्हे मेरे नामके साथ 'महात्मा' शब्द जोडनेका मोह-सा हो गया है, शोर-गुल मचाकर उन सज्जनका बोलना मुश्किल कर दिया और कुछने उनसे यह शब्द जोडनेके लिए अनुनय-विनय की। मेरा कहना है कि इन दोनो ही प्रकारके लोगोने इस प्रकार न तो मेरा और न हमारे उद्देश्यका ही कोई भला किया है। उन्होने अहिसाके ध्येयको हानि पहुँचाई और मुझे कष्ट दिया। उनकी जोर-जबरदस्तीसे उन सज्जनने यदि इस विशेषणका प्रयोग किया भी होता तो इससे उन्हे क्या आनन्द आ सकता था? लेकिन उन सज्जनको मै इस बातके लिए बधाई देता हूँ कि उन्होने दबावमे आकर उस शब्दका प्रयोग करनेके बजाय सम्मेलनसे अलग हो जानेका साहस दिखाया। मेरा विचार है कि मैं जिस उद्देश्यको लेकर चल रहा हूँ, उन सज्जनने मेरे अन्ध-प्रशसकोकी बनिस्बत उसे अधिक अच्छा समझा है। मै अपने सभी प्रशसको और मित्रोको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि वे 'महात्मा' शब्दको भूलकर मुझे सिर्फ 'गाधीजी' के रूपमे याद करे, जैसा कि उन सज्जनने पूरी शिष्टताके साथ किया, अथवा वे मुझे सिर्फ गाधी ही कहे, तो उससे मुझे अधिक खुशी होगी। मेरा सबसे बडा सम्मान इसीमे है कि मित्रगण, मै जिस कार्यक्रमको लेकर चल रहा हूँ उसे अपने जीवन और आचरणमे उतारे और अगर उस कार्यक्रममे उनका विश्वास न हो तो वे उसका जितना हो सकता है उतना विरोध करे। कर्मके इस युगमे अन्ध-श्रद्धाका कोई मूल्य ही नही है। श्रद्धा-पात्रको उससे अकसर परेशानी होती है और दु ख भी।

एक उपयुक्त प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं[1] —

> आपने स्वराज्यवादियोसे लगभग यह कह दिया है कि वे काग्रेसकी कार्य-कारिणी समितियोसे तत्काल त्यागपत्र दे दें। इसमें यह बात मान ली गई है कि देशमें उनकी सख्या कम है और यदि सारे देशमें नहीं तो कमसे-कम काग्रेसमें अपरिवर्तनवादियोका बहुमत है। यह बात सच है कि गयामें साफ तौरपर उनका बहुमत था। परन्तु दिल्ली और कोकनाडाके अधिवेशनोमें दोनो दलोकी सदस्य-सख्या सदिग्ध रही। देशका वायुमण्डल तो नि सन्देह ही अपरिवर्तन-वादियोके पक्षमें रहा है, क्या इसका कारण यह नही था कि आपका यरवदा जेलमें रहना और लोगोके हृदयमें आपके व्यक्तित्वके प्रति भक्ति-भावसे पूर्ण होना था। लेकिन क्या अब हमें इस बातका निश्चित तौरपर पता नहीं लगा लेना चाहिए कि हम लोग स्वतन्त्र रूपसे अपरिवर्तनवादियोके पक्षमें या यो कहिए कि परिवर्तनवादियोके विपक्षमें है या नहीं? . .

१ अंशत उद्धृत किया जा रहा है।

मै मानता हूँ कि पत्र-लेखककी आपत्तिमे काफी जोर है। मुझे अन्देशा है कि यह बहुत मुमकिन है कि अपरिवर्तनवादियोने मेरे प्रति वफादारी निभानेकी भावनासे ही प्रेरित होकर मूल कार्यक्रमके पक्षमे अपनी राय दी हो। अगर यही बात हो तो अब उन्हे इस अटपटी स्थितिसे मुक्त कर दिया जाना चाहिए। यह अच्छा हुआ कि पत्र-लेखकके पहले ही मैंने यह बात कह दी थी कि अगर अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके वर्तमान सदस्य काग्रेसके कार्यक्रममे विश्वास न रखते हो तो वे मेरा साथ छोड देनेमे तनिक भी सकोच न करे। राष्ट्र-कार्य ही सर्वोपरि है। राष्ट्र-कार्यके सामने हमे अपने प्रिय-से-प्रिय व्यक्तियोको उठाकर एक तरफ रख देना चाहिए। राष्ट्र-कार्यके प्रति हमारी वफादारीके सामने दूसरे तमाम विचार गौण होने चाहिए। मै सिर्फ इतना चाहता हूँ कि सभी ईमानदारीसे और कार्यक्षमता बढानेकी दृष्टिसे काम ले। पूरे कार्यक्रमपर जिन लोगोका विश्वास न हो, उन्हे चाहिए कि वे उन लोगोके लिए अपनी जगह खाली कर दे जिनका उसपर विश्वास है। यदि सब लोग या बहु-सख्यक लोगोका उसमे विश्वास न हो तो उन्हे नया कार्यक्रम बनाना चाहिए और उसे पूर्ण करना चाहिए। मै तो काग्रेसके प्रस्तावोके पीछे भी आँख मूँदकर चलनेके पक्षमे नही हूँ। काग्रेसका लक्ष्य है -- स्वराज्य। अगर पिछले छ महीनोके अनुभवने हमे इससे अच्छा उपाय सुझा दिया हो तो हमे सहर्ष उसका अवलम्बन करना चाहिए। काग्रेसके जिन प्रस्तावोमे कभी हमारा विश्वास ही नही रहा, जिनके प्रति अब हमारा विश्वास हिल चुका है, उनके अनुसरणका ढोग करनेके बजाय यदि हम अपने-अपने विश्वासोके अनुसार ही चले तो यह काग्रेसके प्रति अधिक ईमानदारीकी बात होगी। अगर इन छ महीनोके अनुभवने हमारा झुकाव स्वराज्यवादियोके मतकी तरफ कर दिया हो तो हमे स्पष्टरूपसे, साहस-के साथ यह बात कह देनी चाहिए और निस्सकोच स्वराज्यवादियोके साथ हो जाना चाहिए। मै विरोध कर रहा हूँ केवल ढोग और ढकोसलेका। उनसे हमारा काम चौपट हो जायेगा। अगर हम वकालत जारी रखनेवाले वकीलोके बिना काग्रेसके सगठनोको न चला सकते हो तो हम बखुशी अदालतोका बहिष्कार समाप्त कर दे। और अगर चरखेमे हमारा विश्वास न हो तो उसकी बात भी छोडिए। चरखेके प्रति जबानी वफादारीसे तीस करोड लोगोके लिए सूत मुहैया नही किया जा सकता, जिसकी हमे जरूरत है। दूसरे शब्दोमे कहे तो हमे वही करना चाहिए जो सभी सफल सस्थाओने आजतक किया है अर्थात् उन सस्थाओका काम ऐसे लोगोके सुपुर्द कर देना चाहिए जिनका उन कामोकी उपयोगितामे पूरा-पूरा विश्वास हो। जिस सस्थाका मुख्य काम लोगोको कताईकी शिक्षा देना और उसे लोकप्रिय बनाना हो, उसका काम कोरे भाषणकर्त्ताओसे नही चल सकता। और न कताई करनेवाले लोग उन वाद-विवाद सभाओका सचालन कर सकते है जिनमे वक्तव्य-कलाको ही सर्वाधिक महत्त्वकी वस्तु माना जाता हो।

एक और मित्रने दूसरी आपत्ति उठाई है, जो ठीक है। उनका कहना है कि अगर अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी विशुद्ध रूपसे कार्यकारिणी समिति होती तो आपकी बात सही हो सकती थी। पर वे कहते है कि यह सभी तरहके मसलोपर विचार और बहस करनेवाली समिति भी है और चूंकि यह आगामी काग्रेसके लिए

प्रस्ताव तैयार करती हे, इसलिए वह व्यवहारत विधायक समिति भी है। जबतक किसी कार्यकारिणी समितिके सदस्योको यह मालम नही हो कि उन्हे किन नियमोका पालन करना है तबतक ऐसी कोई समिति कैसे चुनी जा सकती हे। मेरी रायमे यह ऐतराज बिलकुल ठीक हे। मगर यहाँ भी मेरी बात कटती नही है, क्योकि मैंने तो सिर्फ इस बातपर अपनी राय ही दी है कि काग्रेसके प्रस्तावोपर अगले छ महीनोमे किस तरह अमल किया जा सकता हे और किया जाना चाहिए। काग्रेसके कार्यमे किसी जाब्तेकी कठिनाईको आडे नही आने देना चाहिए और अगर काग्रेसकी कार्यकारिणी समितियोके सम्बन्धमे मेरा विचार काग्रेसजनोको ठीक लगता हो तो इन मित्र महोदयने जो कठिनाई बताई हे उसे अगले सालके लिए तो आसानीसे दूर किया जा सकता हे — यह व्यवस्था करके कि कार्यकारिणी समितियोका चुनाव काग्रेस-अधिवेशनके बाद दुबारा हो। मेरी रायको, अगर वह कुछ महत्त्व रखती हो तो सदस्यो और मतदाताओके लिए सिर्फ दिग्दर्शनके रूपमे लेना चाहिए। मुझे यह राय इसलिए देनी पडी हे कि उस कार्यक्रमको पूरा करनेकी जिम्मेदारी बहुत हदतक मुझपर ही है। इसलिए अपनी राय देते समय मैंने यह भी जतला दिया हे कि कारगर ढगमे मेरी सेवाका उपयोग किस तरह किया जा सकता है।

आगाखानी खोजे[1]

ऊपर जो-कुछ कहा है वह 'नवजीवन' के इसी अकमे प्रकाशित दो अनुच्छेदोका अविकल अनुवाद है। अब मैं पत्र-लेखकोको आमन्त्रित करता हूँ कि वे अपने इस कथनके समर्थनमे अपनी दलीले और तथ्य भी भेजे कि खोजा धर्मोपदेशकोने लोगोसे अपना धर्म स्वीकार करानेके लिए उन्हे सासारिक सुख-सम्पदाका लोभ दिखाया है।

मुसलमानोकी तरफदारी

अब फिर मुझपर मुसलमानोकी तरफदारी करनेका आरोप पहलेसे दोगुने जोरके साथ लगाया जा रहा हे। आलोचकोकी बातोका आशय यह हे कि मैं हिन्दुओके दोपोको बहुत बढाकर दिखाता हूँ और मुसलमानोके दोपोको घटाकर। एक तरहसे मैं इस आरोपको सहर्ष स्वीकार करता हूँ। यदि हम सही निर्णय देना चाहते है तो हमे इस सुन्दर सहज नियमके अनुसार चलना चाहिए कि चीजोको उनके सही परिप्रेक्ष्यमे देखे। लेकिन हम तो उस नियमके खिलाफ चलनेके आदी हो गये हैं। हम अपने दोपोको तो घटाकर आँकते हैं और अपने प्रतिपक्षके दोपोको बहुत-चढाकर। इससे असहिष्णुताकी भावना बढती हे। अगर हममे उदारता और सहिष्णुता हो तो हम अपने प्रतिपक्षियोको भी उसी तरह देखनेका प्रयत्न करेगे जिस तरह वे खुद अपनेको देखते हैं। इस कोशिशमे हम पूरी तरह कामयाब तो नही होगे, लेकिन उससे हमे सही परिप्रेक्ष्य प्राप्त हो जायेगा। इसलिए जिस चीजको हिन्दुओके दोपोका अतिरजन समझा जा

१. मूलमें इसके पहले गुजराती नवजीवनमें प्रकाशित एक टिप्पणीका अनुवाद दिया गया है देखिए "टिप्पणियाँ", ८-६-१९२४।

रहा है वह ऊपरसे ही अतिरंजना लगती है, वास्तवमे बात वैसी है नही। एक आलोचकका कथन है "लेकिन क्या आप यह चाहते है कि मौलाना अब्दुल बारीको आपकी तरह हम भी खुदाका भोला-भाला बन्दा मान ले। हम संयुक्त प्रान्तके लोग तो उन्हे घमण्डी, मिथ्याभाषी और अविश्वसनीय व्यक्तिके रूपमे जानते है।" मैं उन्हे यह यकीन दिलाना चाहता हूँ कि अगर मौलाना साहब, जैसे उन लोगोको लगते है मुझे भी वैसे ही लगते तो मै कहनेमे कोई संकोच न करता। उनके खिलाफ मैं जो अधिकसे-अधिक जानता हूँ सो मैंने ही कह दिया है, अर्थात् यह कि वे एक खतरनाक दोस्त है। मुझको वे झूठे तो कभी नही मालूम पडे। कुछ आलोचक समझते हैं कि मैं मुसलमानोसे राजनैतिक मतलब गाँठनेके लिए उनकी चापलूसी कर रहा हूँ। वे ऐसा हरगिज न माने। मेरे लिए यह गैर-मुमकिन बात है, क्योंकि मै जानता हूँ कि खुशामदसे एकता स्थापित नही हो सकती। हमे भूलसे भी शिष्टाचार और सौजन्यको चापलूसी और अशिष्टताको निर्भीकता नही मान बैठना चाहिए।

एक मुसलमानके दिलका गुबार

हिन्दू-मुस्लिम एकताकी समस्यापर मेरे वक्तव्यके सम्बन्धमे एक मुसलमान भाईने पत्र लिखा है। उसके कुछ अंश नीचे दे रहा हूँ। वे कहते है

> 'मुझे ज्यादा शर्म तो हिन्दुओंकी बुजदिलीपर आती है। जो घर लूटे गये उनमें रहनेवाले लोग अपनी सम्पत्तिकी रक्षा करते-करते मर क्यों नही गये?' आपके इन वाक्योंसे हिन्दुओंमे उत्तेजना फैलनेकी आशंका है। मुझे दुःख है कि आपने ऐसी बातें लिखीं। . . . आपकी इन बातोंका नतीजा क्या हो सकता है, यह सोचते भी डर लगता है।

मुझे तो अपने इस कथनमे कोई खतरनाक बात दिखाई नही देती। अगर मेरे वक्तव्यके परिणामस्वरूप हिन्दुओमे ऐसी शक्तिका संचार हो जाये जिससे वे खतरा आ पडनेपर अपनी रक्षा कर सके तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। जबतक हम एक-दूसरेसे डरना न छोड देंगे, तबतक हमे एकताकी उम्मीद नही रखनी चाहिए। पत्र-लेखकने कोई दूसरा तरीका भी तो नही सुझाया। जो हिन्दू अपने पडोसीसे दिन-रात डरा करता हो उसको मै सिवा इसके क्या सलाह दे सकता हूँ कि या तो उसे अपने बचावमे अपना हाथ उठाये बिना अहिंसात्मक ढँगसे मर-मिटना चाहिए या हिंसात्मक ढंगसे घूँसेका जवाब घूँसेसे देकर अपनी रक्षा करनी चाहिए? वे आगे लिखते है

> कोई भी समझदार हिन्दू या मुसलमान आपकी इस रायको नहीं मानेगा कि पण्डित मालवीयजी मुसलमानोके दुश्मन नही है। वे तो मुसलमानोंके खुल्लम-खुल्ला दुश्मन हैं; सूरजकी रोशनीकी तरह उनकी दुश्मनी साफ देखी जा सकती है। मैं तो कहता हूँ कि खुद हिन्दू भी आपकी इस बातको सच नहीं मानेंगे। लाला लाजपतराय भी पण्डित मालवीयजीकी श्रेणीके ही है। जयरामदास और चौइथरामके बारेमें तो आप खुद अपने ही साथ बेइन्साफी कर रहे हैं।

मुसलमानोके साथ उनका सलूक हर अखबार पढनेवालेके सामने दिनके उजालेकी तरह साफ है। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि आप इन हिन्दू-नेताओकी तारीफ और मुसलमान नेताओकी बुराई करके हिन्दू-मुस्लिम एकताको एक डग भी आगे नहीं बढा पायेंगे।

इसी तरह हिन्दू मित्र मुझसे कहते है कि मैं जबतक अली भाइयो और मौलाना बारी साहबपर एतबार रखे रहूँगा तबतक हिन्दू-मुस्लिम एकता गैरमुमकिन है। इन सभी मित्रोको समझ लेना चाहिए कि यदि वर्तमान हिन्दू और मुस्लिम नेताओका विश्वास न किया जाये तब तो दोनो समुदायोमे एकताकी आशा ही नही की जा सकती, और की भी जा सकती है तो इन नेताओकी मृत्युके बाद ही। यही भाई आगे कहते है

> आपको आगाखानी साहित्य और तबलीगका जिक्र करनेकी क्या जरूरत थी? उनके कारण हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनको कोई भी नुकसान नहीं पहुँचता। वे तो निहायत शान्तिपूर्ण ढगसे तबलीगका काम चला रहे हैं। आप मुसलमानोके प्रचारके निकृष्ट तरीकोको सामने रखते हैं। पर जरा शुद्धि-आन्दोलनको तो देखिए। आपने यह लिखकर एक बडा खतरा मोल ले लिया है कि उस पुस्तिकामें लिखी तदबीरोके मुताबिक निजामकी रियासतमें व्यापक रूपसे काम किया जा रहा है। यह लिखकर आपने अनजाने ही एक मुस्लिम रियासतपर चोट की है।

इन पत्र-लेखक महोदयका रुख उन कार्यकर्त्ताओके रुख जैसा है जिनकी सख्या बढती जा रही है और जो यह चाहते है कि हम जैसा सोचते है वैसा न कहे और चुप्पी साधे रहे। मैं इस बातको तो समझ सकता हूँ कि हर गन्दी चीज लोगोके सामने न रखी जाये, पर जो बाते साफ तौरपर हमारी नजरोके सामने आती है और जो हर शख्सके दिमागमे चक्कर काट रही हो, उनकी ओरसे आँखे बन्द नही की जा सकती। अपने जोशकी धुनमें लेखक इस बातपर ध्यान देना भूल गया है कि मैंने किसी भी मुस्लिम रियासतपर चोट नही की। मैंने तो इतना ही कहा है कि "सुना है", तबलीगका आपत्तिजनक काम निजामकी रियासतमे व्यापक रूपसे चल रहा है।

पत्र-लेखक महोदय आगे कहते है

> मेरी समझमें नहीं आता कि गो-वध और बाजा एक ही श्रेणीमें कैसे आ सकते हैं। मुसलमानोके लिए 'कुरान' में गायकी कुरबानीका हुक्म है मगर हिन्दुओको ऐसी कोई धर्माज्ञा नहीं है कि वे मसजिदोके सामने बाजा बजायें। हिन्दुओको सरकारी अस्पतालो और दफ्तरोके सामने बाजा बन्द करना पडता है, मगर उनकी हठवादिता उन्हे मसजिदके सामने बाजा बन्द करनेकी इजाजत नहीं देती।

लेखक इस बातको जान ले कि 'कुरान' मे मुसलमानोके लिए गायकी कुरबानी करना जरूरी नही बताया गया है। यह जरूर कहा जाता है कि 'कुरान' मे कुछ

अवसरोंपर अमुक प्राणियोंकी कुरबानीका हुक्म है और इनमें गाय भी शामिल है। किन्तु गायकी कुरबानी कोई अनिवार्य बात नहीं है। तथापि यह देखते हुए कि उसकी अनुमति दी गई है, यह चीज अनिवार्य तब हो जाती है, जब कोई तीसरा पक्ष मुसलमानोंसे जबरदस्ती उसे बन्द कराना चाहे। इसी तरह हिन्दुओंके लिए भी मसजिदोंके सामने बाजा बजाना जरूरी नहीं है, किन्तु जैसे ही मुसलमान डंडेके जोरपर मसजिदके सामने हिन्दुओंके बाजेको बन्द कराना अपना हक मानने लगता है वैसे ही हिन्दुओंके लिए भी बाजा बजाना कर्त्तव्य बन जाता है। इसलिए दोनों पक्षोंको चाहिए कि वे इन दोनों मसलोंको आपसमें मिलजुलकर तय कर लें।

धर्म-परिवर्तनपर भोपाल राज्यका परिपत्र

एक महीनेसे ऊपर हो गया जब कुछ मित्रोंने मेरे पास धर्म-परिवर्तनके सम्बन्धमें भोपाल राज्यके कानूनकी एक प्रति भेजी थी। उसपर मैंने उस समय जान-बूझकर कुछ नहीं कहा, क्योंकि उस समय मैं हिन्दू-मुस्लिम तनावके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकाशित करनेकी स्थितिमें नहीं था और मैं इस मामलेकी कुछ और जानकारी प्राप्त कर लेना चाहता था। इस बीच मैंने इस विषयपर डा० अन्सारीके विचार पढ़े हैं।

परिपत्रका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है

७ जुलाई, १९२० के जरीदेकी प्रति, ५ जुलाई, १९२० का प्रस्ताव संख्या १७

भोपालकी महाविभव शासिकाने शाहजहानी दण्डसंहिता, नियम १, १९१२ के खण्ड ३०० अर्थात् भोपालकी संगृहीत दण्ड संहिताके खण्ड ३९३ के अनुसार आदेश दिया है कि खण्ड ३९३ (क) के बाद निम्नलिखित अंश जोड़ दिया जाये, यह अंश प्रकाशन तिथिसे ही लागू हो जायेगा और अमलमें लाया जायेगा :

इस्लाम स्वीकार करनेके बाद उसका त्याग

खण्ड ३९३ (क): जो भी व्यक्ति एक बार इस्लामको स्वीकार कर लेनेके बाद अपना यह धर्म छोड़ेगा, वह तीन सालकी सख्त या सादी कैदकी सजा या जुर्मानेका अथवा दोनोंका भागी होगा।

यह सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंके सूचनार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

कहा नहीं जा सकता कि इसमें जो तिथियाँ दी गई हैं वे सही हैं अथवा नहीं। अगर उन्हें सही मान लिया जाये तो इसका मतलब है कि यह कानून अभी हालका बना हुआ है। लेकिन इसके हालके बने हुए या बहुत पुराने होनेसे कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल यह है कि विशुद्ध इस्लामकी दृष्टिसे यह कानून अच्छा है या बुरा। हमारे सामने आदर्श यह है कि दोनों — और दोनों ही क्यों, सभी — धर्मोंके सम्बन्ध परस्पर शान्तिपूर्ण हों और अगर लोग चाहें तो एक धर्मको छोड़कर दूसरे धर्मको स्वीकार कर लें। दूसरे शब्दोंमें, हमारा आदर्श यह है कि धर्मके मामलेमें कोई जोर-जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। हम हिन्दुओं और मुसलमानोंमें से कुछ लोग

इस आदर्शको व्यवहार-रूप देनेका प्रयत्न कर रहे हैं। यदि इस्लामके अनुसार इस धर्मको स्वीकार कर लेनेके वाद इसे छोडकर पुन अपना पहला धर्म अगीकार कर लेना दण्डनीय न हो तो उक्त कानूनको इस्लामकी भावनाके विरुद्ध मानना चाहिए और इसीलिए उसे जल्दीसे-जल्दी रद कर दिया जाना चाहिए। यदि वस्तुस्थिति वैसी ही हो जैसा मैंने वताया हे तो मुझे आशा है कि मुसलमान नेता भोपालकी महाविभव वेगम साहिवासे यह कानून रद कर देनेका अनुरोध करेंगे।

नरम दल और खादी

एक नरमदलीय मित्र लिखते हैं

> **मैं खादीके सवालपर वरावर सोचता रहा हूँ और अपने सहयोगियोके साथ उसपर विचार-विमर्श भी करता रहा हूं। मैंने पाया हे कि खादीके गुणोके सम्बन्धमें कोई मतभेद नही हे। परन्तु जव खादीके प्रचारके आन्दोलनका सम्वन्ध आपकी इस उक्तिके साथ जोडा जाता हे कि खादी तो सविनय अवज्ञाकी एक तैयारी हे तभी कठिनाई उपस्थित हो जाती है। अगर खादी-आन्दोलनको अलग रखा जाये और वह असहयोग आन्दोलनका हिस्सा न हो तो मैं समझता हूँ कि खादी-आन्दोलन ज्यादा विस्तृत और व्यापक हो सकेगा।**

पत्र-लेखकने जिस पूर्वग्रहका उल्लेख किया है वह उतना ही पुराना है जितना कि असहयोग आन्दोलन। मैंने असख्य अवसरोपर यह दिखानेकी कोशिश की है कि सिवा सत्याग्रहीके किसी भी शख्सको खादीके सम्बन्धमे सविनय अवज्ञाका खयाल न करना चाहिए। सविनय अवज्ञाका खादीके साथ कोई प्रत्यक्ष सम्वन्ध नही है। खादीकी पुन प्रतिष्ठाके पूर्व मैंने सविनय अवज्ञाकी कितनी ही लडाइयाँ लडी हैं। उदाहरणके लिए खेडाके सत्याग्रही खादीके वारेमे कुछ नही जानते थे। यहाँतक कि वोरसदके सघर्षमे भी वल्लभभाईके नेतृत्वमे चलनेवाले कार्यकर्त्ताओने खादीका व्रत नही लिया था। काग्रेसके स्वयसेवकोके अलावा किसीके लिए यह लाजिमी नही था कि वह सत्याग्रहियोमे अपना नाम लिखानेके पहले खादी पहने। कारण साफ था। वह स्वराज्य स्थापित करनेकी लडाई नही थी। स्वराज्यकी स्थापनाके निमित्त सविनय अवज्ञाके लिए मैंने खादीको जो अनिवार्य वताया है, उसके दो कारण हैं। पहला तो यह कि जवतक यहाँ घर-घरमे खादीका प्रचार न हो जाये तवतक मैं स्वराज्यको असम्भव मानता हूँ। दूसरा यह कि सर्वसाधारणको अनुशासनवद्ध करनेमे यह वहुत सहायक होगी ओर यह तो निर्विवाद है कि अनुशासनके विना सार्वजनिक सविनय अवज्ञा असम्भव है। नरम दलवालोको तथा दूसरे लोगोको भी यह समझना चाहिए कि सविनय अवज्ञाको टालनेका सवसे अच्छा रास्ता यही हे कि हर आदमी काग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमको अपना ले — विशेषकर उसके तीन अगोको। अगर हम सव लोग एक मन होकर हिन्दुओ और मुसलमानोके वीच एकता स्थापित करनेके लिए काम करे और घर-घरमे हाथ-कती खादीका प्रचार कर सके और यदि हिन्दू लोग एक होकर अस्पृश्यताके अभिशापको मिटा दे तो स्वराज्य सामने दिखाई देने लगेगा। कुछ ऐसे

अंग्रेज भी है, जो खादी पहनते है, किन्तु सविनय अवज्ञा या असहयोगके साथ हमदर्दी रखनेके खयालतक का वे विरोध ही करेंगे।

नारायणवरम् और अस्पृश्यता

नीचे जो ममस्पर्शी विवरण दे रहा हूँ, उससे अस्पृश्यताके अभिशापके विरुद्ध एक जबरदस्त आन्दोलन छेडनेकी आवश्यकता प्रकट हो जाती है

> तीनको छोड़कर बाकी सभी सार्वजनिक गलियोमें पचमोको आने-जाने दिया जाता था। ये तीनो गलियाँ कल्याण वेंकटेश्वर मन्दिरके उत्तर, दक्षिण तथा पूर्वमें पड़ती है। पूर्व दिशामे जो गली है वह मन्दिरके सामने पड़ती है। तीनो गलियोमें अधिकाशत. ब्राह्मण ही रहते है। मन्दिरकी जमीनपर अधिकाशतया पंचम लोग खेती करते थे। पचम लोग पहले धानको लाकर मन्दिरसे कुछ दूरीपर ही जमा कर देते थे किन्तु मन्दिरके अधिकारियोके लिए उसे वहाँसे उठाकर ले जाना कठिन होता था। इसलिए उन्होने पचमोको उक्त गलियोसे धान ले आने और उसे मन्दिरके मुख्य फाटकपर रख देनेकी छूट दे रखी थी। इसके बाद गाँवमें एक अनौपचारिक ढंगकी पचायतकी स्थापना हुई। पचायतके ब्राह्मण-अध्यक्षका सफाईके लिए पंचम मेहतरोके बिना काम नहीं चल सकता था। उसने उन्हे गाँवमें रहने, गाँवमें ही अपना खाना पकाने और रातमें सोनेकी भी इजाजत दे दी। एक ब्राह्मण सज्जनने दिन-रातमें दुश्मनोसे अपनी सुरक्षाके लिए पंचम नौकर रख लिये। उन्हे इन ब्राह्मणोकी गलियोमें खाने और रातमें सोनेकी इजाजत दे दी गई। यह नई बात पुराणपंथी हिन्दुओकी दृष्टिमें बहुत आपत्तिजनक है। फिर भी किसीने आपत्ति नहीं की।
>
> फिर श्री सी० वी० रगम् चेट्टीने ताल्लुका बोर्ड स्कूलके पास मुख्य गलीमें ९-३-१९२४ को पंचमोके लिए एक बुनाई स्कूल खोला। कृपापूर्वक और साहसके साथ श्री रगा स्वामी आयंगारने स्कूलके लिए अपने मकानका उपयोग करनेकी अनुमति दे दी, इसलिए स्कूल उन्हींके घरमें खोला गया। विधान सभाके सदस्य श्री सी० दोराईस्वामी आयंगारने स्कूलका उद्घाटन किया। दो ब्राह्मणोने, जिनकी श्री रगम् चेट्टीसे निजी शत्रुता है, विरोध शुरू किया। उन्होने कुछ दलाल जुटाये और ग्रामवासियोकी एक सभा बुलाई। इसमें उन्होने माँग की कि श्री रगम् चेट्टी पंचम बुनाई स्कूलको गाँवसे हटा ले, क्योकि पचमोका गाँवमें रहना शास्त्रोके विरुद्ध है। जब उनसे पूछा गया कि यदि बात ऐसी है तो फिर पहले तीन अवसरोपर पचमोको क्यो नहीं रोका गया, तब उन्होने जवाब दिया कि उस समय तक शास्त्रोकी यह व्यवस्था उनकी नजरोसे नहीं गुजरी थी। श्री रगम् चेट्टीने वहाँसे स्कूल हटानेसे इनकार कर दिया। इसपर अधिकाश ब्राह्मणोने उनका तथा हनुमान पुस्तकालय और वाचनालयका बहिष्कार शुरू कर दिया। उन्होने अन्य जातियोके मुखियोसे भी बहिष्कार करनेका अनुरोध

किया। उनका अनुरोध किसीने नहीं माना। इसपर ब्राह्मणोंने उन गलियोंसे भगवानका रथ निकालना बन्द कर दिया।

एक ब्राह्मण सज्जन, जो वार्षिक ब्राह्मण-उत्सवके लिए बहुत बड़ी रकम इकट्ठी करते हैं, चाहते थे कि कमसे-कम इस उत्सवके दौरान स्कूल बन्द रहे। श्री चेट्टी इस शर्तपर स्कूल बन्द करनेको तैयार थे कि ब्राह्मण लोग बहिष्कार उठा लें। ब्राह्मणोंके प्रवक्ताके रूपमें सभामें मन्दिरके अमीनने कहा कि अब बहिष्कार नहीं किया जायेगा। इसपर श्री चेट्टीने १७ दिनोंके लिए स्कूल बन्द करा दिया।

पंचम लोग त्यौहारोंके दिन भी खरीद-फरोख्त करने, सफाई करने और यदि मालिकोंके घर कोई छोटा-मोटा काम हुआ तो वह काम करनेके लिए निर्बाध रूपसे गाँवमें आते-जाते हैं। उनके इन मालिकोंमें ब्राह्मण भी हुआ करते हैं। एक दिन सुबह बुनाई स्कूलका एक पंचम विद्यार्थी गाँवमें आया और उसने पुस्तकालयके बगीचेमें कुछ काम किया। लगता है, दोपहर बाद बुनाई स्कूलमें वह कुछ सुस्ताने लगा। स्कूलमें पीछे खुलनेवाला कोई दरवाजा नहीं था। इसपर मन्दिरका अमीन कुछ लोगोंको साथ लेकर उसके पास गया और उन लोगोंने उसके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया। फिर वे सब पुस्तकालय गये और वहाँ उन्होंने श्री रंगम् चेट्टीपर आरोप लगाया कि उन्होंने अब भी स्कूल खोल रखा है और उन्हें गालियाँ दीं। रंगम् चेट्टी उन लोगोंको लेकर बुनाई स्कूल आये और दिखा दिया कि स्कूल सचमुच बन्द है। इसके बाद कुछ बदमाशोंको पैसा दिया गया और वे नशेमें चूर होकर श्री रंगम् चेट्टीके पास पहुँचे। लेकिन श्री चेट्टी किसी तरह उनके चंगुलसे बच निकले। इसके बाद मन्दिरके अमीनने एक सार्वजनिक सभा की, उसमें तथ्योंको गलत रूपमें पेश किया, सभी मुखियोंको पियक्कड़ोंके जरिये डराया-धमकाया और उन सबको श्री रंगम् चेट्टीका बहिष्कार करनेपर मजबूर किया। पंचम भी बुलाये गये। उन्हें डरा-धमकाकर यह कह दिया गया कि वे अपने बच्चोंको बुनाई स्कूलमें न भेजें। सभा खत्म होनेपर श्री रंगम् चेट्टीके घरपर पत्थर फेंके गये। मुझे विश्वस्त सूत्रोंसे ज्ञात हुआ है कि उनकी हत्याका षड्यन्त्र किया जा रहा है। पुट्टूरके पुलिस इन्स्पेक्टर नारायणवरम् आकर सही स्थिति देख गये हैं। सुना है, वे गिरोहके कुछ मुखियोंके खिलाफ कार्रवाई करनेकी बात सोच रहे हैं। हत्यारोंसे अपनी जान बचानेके लिए श्री रंगम् चेट्टीके मित्रोंने उन्हें गाँव छोड़ देनेपर विवश किया और अब वे अपने भाईके साथ २३, नारायण मुदाली स्ट्रीट, जी० टी०, मद्रासमें रह रहे हैं। यदि कोई उनकी रक्षाके लिए सामने आ जाये तो वे आज भी नारायणवरम् जाकर स्वयं खर्च उठाकर यह सेवा-कार्य फिर शुरू करनेको तैयार हैं।

हम श्री सी० वी० रगम् चेट्टीसे आशा करते है कि वे किसी प्रकारकी सुरक्षा-की प्रतीक्षा किये बिना अपने कर्त्तव्य-स्थलपर वापस चले जानेका साहस दिखायेगे। किसी भी सत्कार्यमे हमारा एकमात्र सरक्षक ईश्वर है। यदि उनकी हत्याकी नौबत आ जाये तो उन्हे खुशी-खुशी उसका भी सामना करना चाहिए। उससे यह अभिशाप तुरन्त मिट जायेगा। शर्त इतनी है कि उनका अपना आचरण बेदाग हो।

करघा . एक पैतृक सम्पत्ति

असमसे हाथ-कता कुछ बहुत ही अच्छा सूत भेजते हुए श्री एन्ड्रयूजने लिखा है

यह सूत एक आश्रमके छोटे-छोटे बच्चोकी ओरसे भेजा जा रहा है। मै अभी-अभी वहाँ गया हुआ था। इसका सचालन श्री फूकन और उनके सहयोगी कार्यकर्त्ता कर रहे है। आश्रम उन्हीके खूबसूरत मकानके पास है। आश्रमकी देखरेख उनकी बहन करती है और बच्चे ही वहाँके कुशल दस्तकार है। काश! आप अपनी आखोसे देखते कि वे सब वहाँ कितने प्रसन्न है।

असममे एक चीज बहुत ध्यान देने लायक है, और उसे आप जानते है। हर विवाहित लडकीमे अपने हाथो कपड़ा बुन सकनेकी अपेक्षा रखी जाती है। इसी कारण आपने इस प्रान्तको 'भव्य असम' कहा। हर घरमे एक करघा है। ये हैडलूम (करघे) अकसर 'हेयरलूम' (पैतृक सम्पत्ति) हुआ करते है -- यहाँ मैने अग्रेजीका उसके मूल अर्थमें प्रयोग किया है, और हमें इससे उस समयके इग्लैडकी याद आ जाती है जब वहाँ भी कताई और बुनाई सुन्दर कलाओके रूपमे प्रचलित थी। अब तो ये कलाएँ वहाँ हिब्रू लोगोके बीच ही जीवित रह गई है। वे अब भी अपने घरेलू करघोपर 'लेविस ट्वीड'के नामसे प्रसिद्ध, मजबूत और टिकाऊ कपड़ा तैयार करते है, यह पाश्चात्य ससारमे और कही नहीं होता। वहाँ लोग चरखा पाँवसे चलाते है, क्योकि कताईमें उनको हाथोसे ऊन पकडनेकी जरूरत होती है। कताई करनेवाला तीन पैरोके स्टूलपर बैठता है। पिछली बार जब मै इंग्लैड गया तो वहाँ मैने अपने ही नगर बर्मिघमके सैली ओकमें चरखोका उपयोग होते देखा, अन्तर इतना ही है कि यहाँ कातनेवाली कन्याएँ न होकर गृहिणियाँ थीं। . . । मेरा खयाल है कि अब वह दिन आ रहा है जब ये विस्मृत कलाएँ पाश्चात्य ससारमें फिरसे अपना पुराना स्थान प्राप्त कर लेगी। जैसे हाथके प्रेससे अब भी ऐसी सुन्दर छपाई की जाती है जैसी मशीनके प्रेससे असम्भव है, वैसे ही जब कभी सुन्दर और टिकाऊ चीजोकी जरूरत होगी, हस्त कलाओका पुनरुत्थान होगा।

अफीम

असममे अफीमकी स्थितिके बारेमे श्री एन्ड्रयूज लिखते है

यह सुन्दर प्रान्त अफीमके अभिशापसे बुरी तरह ग्रस्त है। मुझे विश्वास है कि काग्रेस इसके दुष्परिणामोको पूरी जाँच-पड़ताल करेगी, ताकि अफीमसे

प्राप्त राजस्वके सम्बन्धमें भारत सरकारकी नीति जेनेवा-सम्मेलनके सामने रखी जा सके। यहाँ पिछली रात जब मैंने एक सभामें श्रोताओंके सामने कहा भारत सरकारने घोषणा की है कि यहाँके लोगोंको अफीम खानेका "अधिकार" है तो लोग तिरस्कारके साथ हँस पड़े। काश! उस तिरस्कारपूर्ण हँसीको जेनेवाके अफीम-सम्मेलनके लोग सुन पाते। इतनेसे ही सम्मेलनके प्रतिनिधियोंको इस विषयमें भारतके लोकमतका सही अन्दाज हो जाता। अब मुझे इस बातका यकीन हो गया है कि यहाँ असममें अफीम-बन्दीकी दिशामें पर्याप्त काम होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११८. 'छोप' या कताई-प्रतियोगिता

एक पंजाबी मित्र कताई-प्रतियोगिताओंके बारेमें, जो कभी पंजाबमें सभी जगह होती थी और जिनका रिवाज, हम आशा करते हैं, मिटने नहीं दिया जायेगा, इस प्रकार लिखते हैं। लेखके साथ इन सज्जनने ऐसी एक प्रतियोगितामें भाग लेनेवाली बहनोंका, जो अपना-अपना चर्खा चला रही हैं एक चित्र भी भेजा है। यह चित्र प्रेषकके हाथका ही है।

> बीस या पच्चीस वर्ष पहले, पंजाबके गाँवों तथा शहरोंमें भी, वहाँकी स्त्रियों द्वारा कताई-प्रतियोगिताओंके आयोजित किये जानेका — जिन्हें छोप कहते थे — रिवाज बहुत आम था। इस आम प्रतियोगितामें सभी उम्रकी स्त्रियाँ भाग लेती थीं। इन प्रतियोगिताओंमें छोटी-छोटी लड़कियाँ भी अपने छोटे-छोटे चरखे लिए हुए सहायक सेनाके रूपमें शामिल हुआ करती थीं। ये बहनें दो बजे रातसे ही उठ जाती थीं। सबके पास बराबर-बराबर तोलकी धुनी हुई रुई होती थी और वे स्त्रियाँ इस रुईकी पूनियाँ बनाकर नियत समयपर बड़ी लगन और तत्परताके साथ सूत कातना शुरू कर देती थीं। यह प्रतियोगिता बहुधा सात या आठ बजे समाप्त कर दी जाती थी, ताकि स्त्रियाँ अपने-अपने निजी और घरेलू कामकाज निबटा सकें। वे चरखा चलाती हुई राम-वनवास, गोपीचन्दके वैराग्य अथवा पूरन भगतके साधु जीवनसे सम्बन्धित पवित्र गीत आह्लादपूर्ण स्वरमें गाती जाती थीं और उनके चरखोंकी मधुर गूंज गुन-गुनाहट वाद्यका काम देती थी। इन छोपोंके स्वस्थ और शुद्ध वातावरणका अनुमान ही किया जा सकता है, वर्णन नहीं। दुःखकी बात है कि ऐसे आनन्दित कर देनेवाले दृश्य अब बहुत दुर्लभ हो गये हैं और उनको देखनेके अवसर कभी-कभी ही आते हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १२-६-१९२४

११९. मु० रा० जयकरको लिखे पत्रका अंश

[१२ जून, १९२४]

. . .आपने रामदासके वारेमे मुझे पत्र लिखनेकी कृपा की, धन्यवाद। मैं आपकी इस वातसे सहमत हूँ कि रामदासकी आवाज सुरीली है और वह इस आयुमे भी वहुत प्रगति कर सकता है, किन्तु वह वेचारा अभीतक अपना लक्ष्य स्थिर नही कर पाया है। यदि वह वम्वईमे ही वना रहता तो सगीतकी तालीम भी जारी रह सकती थी। वह विशेष रूपसे सगीतके लिए वम्वई नही जायेगा। कृपया मेरा तथा उसका धन्यवाद स्वीकार करे।

[अग्रेजीसे]

स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

१२०. पत्र : के० माधवन नायरको

१२ जून, १९२४

प्रिय माधवन नायर,

आपने लिखा[1], वडा अच्छा किया। उत्तरके लिए पत्र डा० महमूदके पास भेज दिया गया है। समितिने मेरे विचारोको पसन्द किया, यह जानकर खुशी हुई।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अग्रेजी पत्र (जी० एन० ५६७३) की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र प्राप्त नहीं हुआ।

१२१. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ सुदी ११ [१३ जून, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा आजका पत्र सुन्दर है। अक्षर साफ और ठीक लिखे हुए हैं। इसपर मैं तुम्हे दसमे चार नम्बर अवश्य दे सकता हूँ। प्रभुदास आबूसे आ गया है। अब वहाँ कोई नही रहा। राधा पैदल चलकर यहाँ आई है। आशा है कि वह जहाँ ठहरी है वहाँ धीरे-धीरे स्वस्थ हो जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४५) से।
सौजन्य वसुमती पण्डित

१२२. पत्र : वा० गो० देसाईको

ज्येष्ठ सुदी १२ [१४ जून, १९२४]

भाईश्री वालजी,

आपके दोनो पत्र मिल गये थे। आप दुवारा प्रूफ देखना चाहते थे यह मुझे मालूम नही पडा। आपका पहला लेख तो प्रकाशित हो चुका हे। इसमे मेडताका[2] खेडता हो गया है। आपकी माताजी यहाँ आ गई हैं। आपके भाईको नौकरी मिलनेमे कुछ बाधा आ गई जान पडती है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१०)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वालजी गो० देसाई

१. डाकखानेकी मुहरसे ।

२. २५-५-१९२४ के **नवजीवन**में चरखेके सम्बन्धमें प्रकाशित एक लेखमें किसी कविताका उद्धरण दिया गया था। उसमें मेडताके स्थानपर, जो राजस्थानका एक नगर है, खेडता छप गया था। देखिए "मेड़ताका खेड़ता", १५-६-१९२४ ।

१२३. सूरत जिला

दो वर्ष पहले सूरत जिला गुजरातमे सबसे आगे था। पैसा इकट्ठा करनेमे आगे, चरखा चलानेमे आगे, राष्ट्रीय स्कूल स्थापित करनेमे आगे। इसको देखते हुए उससे जितनी प्रगतिकी आशा की जा सकती थी उतनी प्रगति फिलहाल दिखाई नही देती। चन्दा उगाहनेका काम मन्द है, चरखा भी ढीला चलता है, राष्ट्रीय स्कूलोकी नीव मजबूत नही हुई है।

इसका कारण स्पष्ट है। सारे देशमे मतभेदोकी जो हवा फैली हुई है उसका असर सूरतपर भी हुआ है। बीती बातोपर विचार करनेसे लाभ नही। आज क्या किया जाये, यही प्रश्न सामने है।

पहला कार्य तो सूरत नगरपालिकाके भूतपूर्व २२ पार्षदोपर ४०,००० रुपयेकी जो डिगरी हुई है, उसके विरुद्ध कार्रवाई करना है। यह डिगरी २२ पार्षदोपर नही वरन् पूरी भूतपूर्व नगरपालिकाके विरुद्ध हुई है। इसे नगरपालिकाके विरुद्ध भी नही कहना चाहिए क्योकि जो नागरिक इसका समर्थन करते थे और जिन मतदाताओने सदस्योको चुना था यह उनपर हुई है। इसीलिए इस पैसेको अदा करनेकी जवाबदेही सूरतके असहयोगी नागरिकोपर है।

असहयोगियोका उत्तरदायित्व पैसा देकर ही खत्म नही हो जाता। २२ प्रतिनिधियोको अपनी ओरसे पैसा देना पडे ऐसा तो सूरतके असहयोगी कभी न होने देगे। लेकिन उनका उत्तरदायित्व तो यह है कि वे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे जिससे सरकार इस डिगरीका इजराय ही न करा सके। इसका एकमात्र उपाय तो स्वय इस डिगरीके विरुद्ध ही स्थानीय सत्याग्रह करना है। इसका अर्थ है नागरिक सरकारको विनयपूर्वक लिखे कि यदि वह इस डिगरीकी रकम वसूल करेगी तो नागरिक अपना विरोध प्रकट करनेके लिए दूसरे कर नही देगे। किसीने भी चालीस हजार रुपयेका उपयोग निजी रूपसे नही किया है। इसलिए सरकार चाहे तो डिगरीका पैसा वसूल करे; परन्तु इसके साथ-साथ वह कर उगाहनेके भारको भी वहन करे। यदि सब करोकी अदायगी बन्द करना मुश्किल हो तो जो कर बन्द करने योग्य जान पडे उनको लोग बन्द कर दे।

एक समय ऐसा था जब हम ऐसे कदम उठाना आसान काम समझते थे। अब लोगोका उत्साह मन्द पड गया है, इसलिए ऐसे कदम उठाना मुश्किल जान पडता है। लेकिन गुजरातमे बोरसदका[1] उदाहरण ताजा है इसलिए यह कदम मुश्किल नही लगना चाहिए।

१. गुजरातमें खेड़ा जिलेके बोरसद ताल्लुकेमें सरकार द्वारा लगाये गये दण्ड-करके विरोधमें दिसम्बर १९२३ में सत्याग्रह किया गया था। फलस्वरूप सरकारको जनवरी, १९२४ में यह कर वापस ले लेना पड़ा था।

अब दो शब्द स्वराज्यवादियोसे। जो स्वराज्यवादी विधान परिषदोमे गये है वे सरकारको लिख सकते है कि यदि सरकारका विचार इस तरह डिगरीका पैसा वसूल करनेका हो तो वे लोग विधान परिषदोमे नही रह सकते। कुछ लोग कह सकते है कि सरकारको तो यही चाहिए। ऐसा सम्भव है, लेकिन हमे तो अपने कर्त्तव्यका ही विचार करना है। यदि ऐसी छोटी-छोटी बातोके लिए विधान परिषदोके सदस्य निरुपाय हो तो वे विधान परिषदोमे रहकर ही क्या करेगे?

मेरा तो यह विश्वास है कि यदि पक्के असहयोगी और स्वराज्यवादी परस्पर फिर मिल जाये तो सूरत जैसा पहले था फिर वैसा ही हो जाये और अग्रस्थान ग्रहण कर ले। हॉ, इतना जरूर है कि ऐसा करनेके लिए आत्मविश्वासकी जरूरत होगी। यदि विधान परिषदोमे पहुँचे हुए हमारे लोग उन सभाओसे तग आकर भी उनसे बाहर आ जानेकी बुद्धिमत्ता नही दिखाते तो उनका पहला तेज फिर नही लौटेगा। यदि असहयोगके समस्त अगोमे अन्धविश्वास नही, बल्कि ज्ञानमय विश्वास हो तभी हमारा कार्य चमकेगा। शान्तिमे, सत्यमे और पच बहिष्कारोमे हमारी श्रद्धा होनी चाहिए। यदि वह न हुई और लोकमतके या मेरे मतके अधीन होकर कार्य किया गया तो विफलता ही हाथ आयेगी।

असहयोग और अहिंसा (मर्यादित) प्रयोगकी अवस्थासे निकल चुके है। अब जो लोग उन्हे समझ गये हैं उनके लिए वे सिद्ध-प्रयोग अर्थात् सिद्धान्त बन चुके है। उनके लिए तो स्वराज्य आज मिले अथवा कल, उसे प्राप्त करनेका साधन केवल शान्तिमय असहयोग ही है।

इतना सूरत-शहरपर आई हुई आपत्तिके सम्बन्धमे।

और बारडोलीका क्या कहना है? बारडोली तो ढाई वर्ष पहले तैयार मानी जाती थी।[1] आज क्या वह उससे अधिक तैयार है? वहाँ कितने कार्यकर्त्ता काम कर रहे है? मैंने बारडोलीके बारेमे बहुत-कुछ सुना है, लेकिन मै इस समय अधिक नही कहूँगा।

वहाँसे मुझे आजतक जो खबरे मिली है वे आशाजनक नही है। वहाँ अभी अस्पृश्यता कायम है। कालीपरज[2] अभीतक उजली नही बनी। दुबले[3] सबल नही हुए। राष्ट्रीय स्कूल अब गये, तब गये। खादीका काम भी जैसे-तैसे चल रहा है। मेरी तीव्र इच्छा होती है कि मै बारडोली जाकर लोगोसे इन सब शिकायतोका उत्तर मॉगूँ। बारडोलीके प्रतिनिधियोने ईश्वरको साक्षी मानकर मुझे जो वचन दिया था वह आज भी मेरे हृदयमे अकित है। उन्होने प्रतिज्ञा की थी कि वे अस्पृश्यताका निवारण करेगे, कालीपरज जातिको उजलीपरज बनायेगे, दुबलोके दु खोको हरेगे और बारडोलीको खादीमय बनायेगे। आज तो मै यह आशा करता हूँ कि बारडोलीके लोग मुझसे कहे, "हम तो आपके जेल जानेके छ महीने बाद ही तैयार हो गये

१ २९ जनवरी, १९२२ को हुई बारडोली ताल्लुका परिषद्में गाधीजीका सविनय अवज्ञा आन्दोलनको आरम्भ करनेका सुझाव स्वीकार किया गया था।

२ और ३ दक्षिण गुजरातकी पिछडी जाति।

थे। हम तो आप जब कहे तब सविनय-अवज्ञा करनेके लिए तैयार हैं।" मैं जानता हूँ कि बारडोली इस सीमातक तैयार नही है। प्रश्न तो यह है क्या वह तैयार हो भी सकेगी? और अगर हो सकेगी तो कबतक? इस बारेमे कार्यकर्त्ता क्या कहते है?

अभी यह लिख ही रहा था कि प्रागजीकी[1] गिरफ्तारीका तार मिला। इनकी गिरफ्तारी अर्थपूर्ण है। वे तो मुक्त हो गये; लेकिन क्या इससे वहाँके लोग भी अपने कर्त्तव्यसे मुक्त हो गये? अब सूरत जिलेका क्या कर्त्तव्य है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१२४. मेड़ताका खेड़ता

"रेटियानो स्वाध्याय" नामक कविता प्रेषक "शिखरनिवासी" ने लिखा है कि उस लेखमे[2] एक "भयकर भूल" रह गई है। एक भूल तो केवल हिज्जेकी है। दूसरी अनजानेमे हो गई है। मैंने जो कुछ टिप्पणीके रूपमे दिये जानेके लिए लिखा था वह प्रस्तावनाके रूपमे दे दिया गया और "शिखरनिवासी" ने जो सुन्दर प्रस्तावना भेजी थी वह रह गई। किन्तु "शिखरनिवासी" ने जिस भूलकी ओर मेरा ध्यान खीचा है वह इनके अलावा है। 'मेडता' की जगह 'खेडता' छप गया है। मेडता राजस्थानमे एक नगर है। मैं "शिखरनिवासी" की इस बातसे सहमत हूँ कि यह एक "भयकर भूल" है। अन्य भूलोकी सूची भी बनाई जा रही है। उन्हे "शिखर-निवासी" किसी-न-किसी दिन पाठकोके सामने रखेगे ही। मैं कई बार "लीन" शब्दके स्थानपर तल्लीन शब्दका प्रयोग करता हूँ, ऐसा "शिखरनिवासी" भाईका कहना है। "तल्लीन" का अर्थ "उसमे लीन" होनेके कारण मुझे "गानेमें तल्लीन" न कहकर "गानेमें लीन" कहना चाहिए था। पाठक इस भूलको सुधार ले।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१. प्रागजी खण्डुभाई देसाई।

२. देखिए "नित्य कताई", २५-५-१९२४।

१२५. देशी रियासतोंमें सत्याग्रह

एक भाई लिखते हैं [1]

यदि मेरे लेखोसे ऐसी ध्वनि निकलती प्रतीत हुई हो तो मुझे उसके लिए खेद है। सत्याग्रहके लिए मर्यादा केवल सत्य और अहिंसाकी ही होती है। जहाँ ये दोनो हो वहाँ सत्याग्रह किया ही जा सकता है। इसी दृष्टिसे विचार करते हुए मेरी मान्यता है कि मेरे लेखोमे कुछ विरोध नही होता।

हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य प्राप्तिकी खातिर देशी रियासतोमे सत्याग्रह नही किया जा सकता। वहाँ तो वह स्थानीय समस्याओंको लेकर ही किया जा सकता है। लेकिन यदि [आग्रहमे] असत्यका तनिक भी अश हो तो देशी रियासतो अथवा अन्य किसी भी जगह सत्याग्रह नही किया जा सकता। उद्देश्य सत्यपूर्ण हो तथापि यदि लोग शान्ति न बनाये रख सके, क्रोध करे, सत्य-भाषण करनेमे सकोच करे और कष्ट-सहनके लिए तैयार न हो तो वे सत्याग्रह आरम्भ नही कर सकते।

सामान्य दृष्टिसे देखते हुए मुझे फिलहाल सारे देशका वातावरण सत्याग्रहके प्रतिकूल दिखाई देता है। यहाँ द्वेष, असत्य, और अशान्ति इत्यादिकी बहुत वृद्धि हुई है। सत्याग्रहका अर्थ विरोधीको परेशान करना ही हो गया है। लोग नाम तो सत्याग्रहका लेते हैं परन्तु दुराग्रह करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसे अवसरोपर जहाँ सत्याग्रहका कारण उपस्थित हो वहाँ भी सत्याग्रहीको सावधानीसे काम लेना चाहिए। लेकिन यदि सावधान रहते हुए भी यह जान पडे कि ऐसा प्रसग उपस्थित हो गया है कि जब सत्याग्रह करना अनिवार्य हे तो वहाँ सत्याग्रही कदापि किसीके रोके नही रुकेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१ पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-प्रेषकने लिखा था **नवजीवन**में अभी हाल में ही प्रकाशित हुए आपके कुछ लेखोंसे सामान्य पाठक यह समझता है कि आप देशी रियासतोंमें सत्याग्रह करनेके विरुद्ध हैं।

१२६. आज बनाम कल

जिन भाईने देशी रियासतोमे सत्याग्रह करनेके सम्बन्धमे प्रश्न किया है वे ही एक पत्रमे[1] लिखते है।

इस लेखपर विचार करते समय पाठक भावनगरकी परिषद्‌को भूल जाये। मैंने तो इस परिषद्‌का उल्लेख यहाँ उदाहरणके रूपमे ही किया है। मैं परिषद्‌के बारेमे अपने विचार व्यक्त कर चुका हूँ। उसे भावनगरमे न करनेके जो कारण मैंने बताये हैं, वस्तुत उसके वे ही कारण हैं, दूसरे नही। अगर हम इतना याद नही रखेगे तो हम सम्भवत एक मामलेको सुलझानेका प्रयत्न करते हुए दूसरेको उलझा लेगे।

मुझे तो नही लगता कि सत्याग्रहके सम्बन्धमे मेरे पहलेके और हालके लेखोमे कोई विरोध अथवा अन्तर हो सकता है। यह सच है कि जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती जाती है वैसे-वैसे हमे नई प्रतीत होनेवाली शर्ते दीखने लगती है, परन्तु विचारवान मनुष्य तुरन्त समझ सकता है कि ये शर्ते मूल सिद्धान्तमे ही समाविष्ट हैं। उदाहरणार्थ अहमदाबादकी काग्रेसमे[2] तय किया गया था कि शान्ति मन, वचन और कर्मसे रखी जानी चाहिए। यह कोई नई शर्त नही थी। जब यह अनुभव हुआ कि लोग मनमे तो हिसा पोपते रहते है केवल कर्म द्वारा करते नही, तब यह स्पष्ट करनेकी जरूरत हुई कि कोई भी मनुष्य तभी अहिसानिष्ठ माना जायेगा जब वह मन, वचन और कर्मसे अहिसक होगा अर्थात् यह कहा गया कि दिखावटी शान्ति वास्तविक शान्ति नही है। यह तो कोई नई बात नही मानी जा सकती। सदाचारकी शर्त और अन्य शर्ते सत्याग्रहके सचालकोके लिए है और वे पहले भी अवश्य ही थी। हम सामान्य कार्योमे भी सदाचारकी आवश्यकता महसूस करते हैं। तब फिर अगर सत्याग्रहमे वह आवश्यक जान पडे तो इसमे आश्चर्यकी कोई बात नही। मैंने विशाल जनसमुदायोसे ऐसी कडी शर्तोके पालनकी आशा कभी नही की है। इस आशाके साथ तो बोरसदमे भी सत्याग्रह[3] नही किया जा सकता था। उसमे आम लोगोके पालनके लिए केवल दो ही शर्ते थी। उन्हे लडाईमे पशुबलका उपयोग नही करना होगा और जो नेता कहे, उन्हे वही करना होगा।

मैंने भावनगर और वाइकोमके सत्याग्रहियोके सम्बन्धमे यह मान रखा है कि वे काग्रेस कमेटियोके सदस्य हैं। यदि काग्रेसके कार्यकर्त्ता काग्रेसके प्रस्तावोको जानते हुए भी उसकी सामान्य और स्थायी शर्तोका पालन तक नही करते तो वे सत्याग्रह करनेके योग्य कैसे माने जायेगे? यदि वे एक कार्यके सम्बन्धमे ली गई प्रतिज्ञाका पालन नही करते तो दूसरी प्रतिज्ञाका पालन किस तरह करेगे? स्वराज्यका सत्याग्रह तथा खादीके साथ सीधा सम्बन्ध है। स्वराज्यवादीके लिए कोई दूसरा सत्याग्रह

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है।

२ दिसम्बर, १९२१ में।

३. यह १९२३-२४ में वल्लभभाई पटेलके नेतृत्वमें किया गया था।

१२७. गुजराती आर्यसमाजियोंके प्रति

मुझे हिन्दुस्तानके सभी हिस्सोसे आर्यसमाजोके तार और पत्र मिले है और मै उनका जवाब 'य० इ०'[1] मे दे चुका हूँ। गुजरातके आर्यसमाजी भी क्रोधित हुए है। मै यह आशा जरूर रखता था कि कमसे-कम वे तो मेरे अर्थका अनर्थ नही करेगे, क्योकि वे मुझे शायद ज्यादा समझते है। गुजराती [आर्यसमाजियो] के पाँच पत्र तो मै पढ चुका हूँ — अभी और भी होगे। उन्हे भी बहुत दु ख हुआ है। वे मुझे माफ करे। जो बात मुझे सच मालूम होती है उसे मै सरल भावसे कहता हूँ। इसमे दु ख माननेकी क्या जरूरत है, यह बात मेरी समझमे नही आ रही है। यदि हमे किसीकी अप्रिय बातसे निरन्तर दु ख होता रहे तो हममे सहिष्णुता कब और किस तरह आयेगी?

इन पाँचो पत्रोमे मुझे दलीलोके द्वारा बात समझानेकी कोशिश बहुत कम की गई है। एक महाशय तो इतने क्रुद्ध हो गये कि उन्होने मुझे आत्महत्या करनेकी सलाह दी है। वे लिखते है

> **अब अगर आपके द्वारा लाभ पहुँचता हो तो भी देश उसे नही लेना चाहता; इसलिए यह पत्र लिखकर मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि अब आप रामनाम भजें और स्वर्ग प्राप्त करनेकी कोशिश करे।**

दूसरे लिखते है कि मैंने हमेशा मुसलमानोको ही बढावा दिया है। एक सज्जनने हिन्दुओके दु.खोकी कहानी अखबारोसे निकाल-निकालकर भेजी है।

इन सब बातोका बहुत-कुछ जवाब मेरे 'य० इ०' मे लिखे लेखमें आ जाता है। यहाँ इतनी बात और कहना चाहता हूँ कि यह सारा क्रोध असहिष्णुताका ही द्योतक है। अभी हममें एक दूसरेकी टीकाको सहन करनेकी शक्ति नही आई है। सार्वजनिक जीवनमें ऐसी शक्तिका आना बहुत जरूरी है। हिन्दुओपर जो मुसीबते गुजर रही हो उनकी जाँच करनेके लिए मै तैयार हूँ, मै अखबारोमे छपनेवाली तमाम बातोको माननेके लिए तैयार नही। मेरा सभी पाठकोसे निवेदन है कि वे अखबारोमें छपी बातोका बहुत-सा हिस्सा झूठ ही समझें। यदि मेरे नाम पत्र भेजनेवाले भाई मुसलमानोके अखबारोको पढेगे तो वे देखेगे कि उनमें हिन्दुओपर कितने ही आक्षेप किये जाते है। हिन्दू लोग उनका क्या जवाब दे सकते है? किन्तु हिन्दू अखबारोकी तरह उनके अखबारोमें भी बहुत-सी बातें गढी हुई रहती है। यदि हिन्दू किसी सगठनके द्वारा अपने डरको दूर कर सकते हो तो मै उस सगठनमें शामिल हो सकता हूँ। किन्तु मै 'सगठन' का अर्थ सिर्फ 'अखाडा' ही समझता हूँ। मै उसमें नही पडता, क्योकि मै जानता हूँ कि इससे तात्कालिक बचाव सम्भव नही है। उसके लिए तो स्वभावमें निर्भयता लानी चाहिए। यदि वह अखाड़ेके द्वारा आ सकती

१. देखिए "आर्यसमाजी भाई", १२-६-१९२४

हो तो हिन्दू खुशीसे अखाड़े बनाये। मैंने यह तो कभी नही लिखा कि अखाडे बनाये ही न जायें। मैने आजतकके पुरानी वस्तुओंके अखाडोंका कभी विरोध नही किया, बल्कि उनके लिए मैंने अपनी पसन्दगी व्यक्त की है। मेरे कहनेका मतलब सिर्फ इतना ही है कि हिन्दुओंके लिए मुसलमानोंके हमलेसे अपना बचाव करनेका उपाय सगठन नही है। ऐसे सगठनोंसे झगडा बढता ही है, घटता नही।

यदि हम सारे भारतसे इस तरहके सवाल पूछें तो इस प्रश्नका निपटारा हो सकता है। क्या हम हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य चाहते है? क्या उसकी जरूरत है? अगर हम उसे चाहते है और वह आवश्यक है तो हिन्दुओंको प्रतिकारकी तैयारी छोडनी ही होगी, नही तो फिर शरीरबलके द्वारा सरकारका और उसी प्रकार मुसलमानोका भी मुकाबला करके अपनी शक्ति बढाकर शान्ति प्राप्तिके लिए खपना पडेगा। यह भी हिन्दुओं और मुसलमानोंके सम्बन्धमे तो असम्भव है। और जहाँतक सरकारका सम्बन्ध है, अंग्रेजोंके साथ दुश्मनी ठानकर उन्हे यहाँसे बाहर निकाल देनेका हेतु भी है, और कदाचित् वह सम्भव भी हो जाय, क्योंकि अंग्रेज लोग इस देशको अपना देश नही मानते। यदि वे यहाँसे ऊब उठें तो अपने देशको चले जा सकते है। परन्तु हिन्दुओंकी तरह मुसलमानोंका देश तो यही है। मै उन्हे हिन्दुस्तानसे भगा देना तो बिलकुल असम्भव मानता हूँ। अतएव, एकमात्र उपाय यह है कि हम उनके साथ शान्तिपूर्वक रहे अन्यथा अपने जीवनकी बागडोर अंग्रेजी सरकारके हाथ सौंप दें।

अब हम इस बातका विचार करें कि हमे करना क्या है, मुसलमान लोग हमारी स्त्रियोंका जो अपहरण करते है, हमे उससे बचना है। इस तरहका बचाव कोई भी हिन्दू खुद अपनी जानको हथेलीपर रखकर ही कर सकता है। सभी मुसलमान तो स्त्रियोंका अपहरण करते नही है? फर्ज करें कि कुछ लोग धर्मके नामपर ऐसा करते है। परन्तु हिन्दू-स्त्रियोंका अपहरण क्या कुछ हिन्दू स्वय नही करते? फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू अपहरणकर्त्ता अपनी विषय-वासनाकी तृप्तिके लिए करता है। किन्तु यदि उनके समक्ष रक्षा करनेकी शक्ति हममे न हो तो वह शक्ति हममे कौन भर देगा? ऐसी व्याधियोंका स्थायी और तुरन्त फलदायी इलाज मै बता चुका हूँ। वह है सत्याग्रह अर्थात् बिना प्रहार किये बचाव करते हुए खुद मर मिटना। ऐसा सत्याग्रह तो स्त्री और बालक भी कर सकते है। इसका अभ्यास तमाम हिन्दू क्या न करें? प्रहार करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए शरीरबल बढ़ानेकी जरूरत है और मरनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिए आत्मबल बढानेकी।' यदि समझमे बैठ जाये तो आत्मबलका विकास अपेक्षाकृत ज्यादा आसान है। शरीरसे अपग मनुष्य भला शरीरबल कैसे बढा सकता है? किन्तु आत्मा तो किसीकी भी अपग नही होती। हम स्थिर चित्तसे विचार करें तो इतना सीख ही सकते है कि यदि कोई हमारे स्वजनोंपर हमला करे तो हम उनकी हिफाजत करते हुए मर मिटें। परन्तु ऐसी तैयारी करनेके लिए हमें शान्त बने रहनेकी आदत डालनी चाहिए। हमे अपना गुस्सा रोककर उसमे नवीन शक्ति पैदा करनी चाहिए। यदि हम ऐसी शक्ति पैदा करना चाहते हो तो हमें अखबारोंके लेखोको पढकर आग-बबूला नही हो जाना

है। जिस जगह रक्षा करने जानेको हमारा मन कहे, हमे उसी जगह पहुँच जाना चाहिए और वहाँ मर मिटना चाहिए।

जिस प्रकार योद्धाओकी सेना बन सकती है उसी प्रकार सत्याग्रहियोका सघ बन सकता है। हजारो धारालाओके लिए अकेले रविशकर पर्याप्त हो रहे है। रविशकर तो अभी जीवित है। सैकडो रविशकर पैदा होकर निर्बल हिन्दुओको हमलोसे बचा सकते है और ऐसा करते हुए निर्बलको बलवान् भी बना सकते है।

यह तो हुई हमलोकी बात। गायकी रक्षाके लिए तो हिन्दुओको मुसलमानोसे जबरदस्ती हरगिज नही करनी चाहिए, मुसलमानोके दिलोको जीतकर ही गायोकी रक्षा की जानी चाहिए।

जहाँतक हो सके हिन्दू मस्जिदोके सामने बाजे न बजाये, मुसलमानोके साथ सलाह-मशविरा करे और अगर मुसलमान माने ही नही और बेजा दबाव डाले तो फिर हिन्दू बिलकुल न दबे, बराबर बाजे बजाते रहे और ऐसा करते हुए मर जाये।

इसके अलावा दूसरी बाते भी है, परन्तु वे छोटी-छोटी है जैसे धारासभामे कितने मुसलमान जाये। मै तो जितने जाना चाहे उतने जाने देना चाहता हूँ। मेरी रायमे अभी यह सवाल ही पैदा नही होता। जो लोग असहयोगका पालन कर रहे है, उनके लिए धारासभा या सरकारी नौकरियोका विचार करनेकी बात ही नही उठती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१२८. वल्लभभाईकी परेशानी

मैने जबसे 'नवजीवन'का सम्पादन-कार्य हाथमे लिया है, वल्लभभाई तभीसे एक बडी कठिनाईमे पड गये है। वे मेरे नामपर दस लाख रुपया इकट्ठा करके गुजरातकी सेवा करना चाहते है। वे इस स्वार्थरहित कार्यमे 'नवजीवन' से मदद लेते थे। अब तो मै सम्पादक हो गया हूँ, अत मै अपने लिए धन एकत्रित करनेकी बात अपने ही पत्रमे प्रकाशित करनेकी धृष्टता कैसे कर सकता हूँ? इस सकोचके कारण वल्लभभाईकी विनयपत्रिकाओका 'नवजीवन' मे छपना बन्द हो गया है।

अब समस्या यह है यदि वल्लभभाईको दस लाख रुपये न मिल पाये तो वे मेरे बहिष्कारका आदेश जारी कर देगे और मुझसे सम्पादकका पद छीन लेगे। लेकिन यदि मै इस भयसे उनकी इन पत्रिकाओको छापता रहूँ तो मै निर्लज्ज और साथ ही कायर भी माना जाऊँगा। मुझे सम्पादक-पदका त्याग नही पुसायेगा और खुले तौरपर निर्लज्ज बननेकी बात भी नही पुसा सकती। इसलिए मैने मध्यम मार्ग अपनानेका विचार किया है और वह यह है कि मुझे वल्लभभाईका भ्रम दूर कर देना चाहिए।

सीधी बात यह है कि यदि गुजरातको रचनात्मक कार्य पसन्द हो तो वल्लभभाईको पैसेकी जरूरत तो पड़ेगी ही। बहुत-से लोग रचनात्मक कार्यके निमित्त न

सही, मेरे नाममे पैसा देनेके लिए तैयार हो जायेंगे, इस लोभसे ही धन-याचनाके साथ मेरा नाम जोड़ा गया था। वल्लभभाईको पैसेसे काम है, फिर चाहे वह किसी भी नामसे क्यो न मिले? यदि गुजरात यह मानता हो कि वल्लभभाईने गुजरातकी अच्छी सेवा की है, उन्होने गुजरातके लिए फकीरी ली है और लोगोको सिखाई है, और यदि वह यह मानता हो कि उसके पैसेका दुरुपयोग नही होता, उसका हिसाब रखा जाता है और प्रकाशित भी किया जाता है, यदि उसे लगता हो कि विद्यापीठका काम कठिन होनेपर भी बहुत मूल्यवान है, उसके द्वारा हमारे हजारो बच्चे आजादीकी तालीम हासिल कर रहे है, खादीका प्रचार हो रहा है और अन्त्यजोकी सेवा हो रही है — यदि सभी गुजरातियोका ऐसा विश्वास हो तो गुजरात गाधीकी झोलीमे अर्थात् स्वराज्यकी थैलीमे अथवा गरीबोकी थैलीमे दस लाख रुपया डाल दे। "नाच न जाने आगन टेढा" कहावतको चरितार्थ करते हुए, सभी व्यापारकी मन्दी आदिका बहाना बता सकते है, लेकिन यदि लोग व्यापारकी मन्दीके बावजूद खाते है, पीते है, विवाह और अन्य कार्य करते है तो वे देशके इस आवश्यक कार्यको भी करे। यदि प्रत्येक गुजराती यह मानता है कि गुजरातमे काग्रेसकी नैया खेना उसका कर्त्तव्य है तो वह इसमे 'फूल नही तो पँखुडी' अवश्य डाल दे और वल्लभभाईकी परेशानी दूर कर दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१२९. "चमड़ेके तस्मेके लिए भैंस"

एक भाईने मुझे "लक्ष्मीका विनाश" नामक चौपतिया भेजी है। उसमे न तो प्रकाशकका ही नाम है और न छापेखानेका ही। यह चौपतिया मुफ्त बाँटी जा रही है। इसमे लेखकका उद्देश्य अपनी पुस्तके बेचकर पैसा कमाना है। लेकिन उसने इस तुच्छ उद्देश्यसे प्रेरित होकर मुसलमान समाजपर आक्रमण किया है। नमूनेके रूपमे कुछ पक्तियाँ दे रहा हूँ। "मुसलमान यवन है।" "हम जिनको प्रोत्साहन देते है, वे कैसे लोग है? वे मुर्गो, बकरियो और गायोकी गर्दनोपर छुरी चलाते है।" "आप जिनके हाथका छुआ पानी तक नही पीते उनके प्रति दयाभाव कैसा?" "आप मुसलमानोसे बही-खाते क्यो खरीदते है?" "आपका धर्म दयामय है और यवनोका पापमय।" इसमे ऐसी और भी धर्मान्धतापूर्ण बाते भरी है। इसमे मेरे नामका भी दुरुपयोग किया गया है। मुझे उम्मीद है कि चौपतियाको कोई हिन्दू छुएगा भी नही। मुझे इससे भी अधिक उम्मीद इस बातकी है कि इसका लेखक स्वय ही अपने दयाधर्मको भगकर बैठनेके कारण पश्चात्ताप करेगा और पुस्तिकाकी प्रतियोको जला डालेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१३०. कार्यकर्त्ताओंसे

उपरोक्त अश मैने एक भाईके पत्रसे[1] उद्धृत किया है। मैने इसे सक्षिप्त करनेके विचारसे कुछ विशेषण काट दिये है। प्रत्येक कार्यकर्त्ताको एकान्तमे वुलाकर वात करनेका मेरे पास समय ही नही है। लेकिन जिन लोगोको कोई खास जानकारी हो, मैं उन्हे अपनी वह खास जानकारी अथवा अपने वे खास सुझाव भेजनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ। वहुत-से लोग मुझसे भी ज्यादा खराब लिखावटमे पत्र भेजते है। उनसे मै प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझपर दया करे और साफ अक्षरोमे लिखा करे। वहुत लोग लम्वी-लम्वी प्रस्तावनाएँ लिख मारते है। आधा पत्र पढनेके वाद ही उनके कथनका हेतु समझमे आता है। मेरा उनसे निवेदन है कि वे प्रस्तावना न लिखा करे। वहुतसे लोग अपने पत्रको विशेपणोसे अलकृत करते है अथवा यो कहे कि विगाडते है। मै उन्हे विशेषणोको न प्रयुक्त करनेकी सलाह देता हूँ। मै तो इस प्रकारके पत्र चाहता हूँ

"आपकी १५-६-२४ के 'नवजीवन'मे की गई माँगके सम्वन्धमे निवेदन है कि मैने स्वय काग्रेसका काम छोड दिया है, क्योकि अ, व, अथवा म ने, जिनके साथ मेरा सम्वन्ध था, अमुक समय अमुक अनुचित कार्य किया था अथवा उनके और मेरे विचार परस्पर मिल नही रहे थे, अथवा उन्होने मेरे प्रति अमुक आचरण किया था अथवा मेरे ही विचार अव वदल गये है। मेरा विश्वास अहिसा, सत्य, चरखे अथवा वहिष्कारपर से उठ गया है। मेरी सलाह है कि काग्रेस जव अमुक सुधार करेगी, अमुक कार्योको त्याग देगी अथवा अमुक कार्यकर्त्ताओको निकाल देगी कार्य तभी चल सकेगा।"

यदि मुझे ऐसे स्पष्ट तथ्योसे युक्त पत्र प्राप्त हो तो मुझे मदद मिलेगी। सार्वजनिक जीवनमे कुछ निजी वातोपर पर्दा डाले रखना मेरे विचारसे लोकहितके विरोधी वात है। लेकिन मुझसे परिचित लोग जानते है कि मै नाम तो प्रकाशित ही नही करता। मै पत्रोको इकट्ठा नही करता और मैने अमूल्य पत्रतक फाडकर फेक दिये है। मै केवल सार्वजनिक उपयोगके पत्रोको ही सँभालकर रखनेका यत्न करता हूँ लेकिन प्राप्त तथ्योका कतई उपयोग न किया जाये, इस शर्तके साथ भेजा गया पत्र तो मुझे विलकुल ही नही चाहिए, क्योकि मुझे ऐसी किसी वातको जाननेकी इच्छा नही रहती जिसका सार्वजनिक रूपमे उपयोग न किया जा सके। मुझे कोई सज्जन गुमनाम पत्र भी न लिखे। मेरे पास ऐसे पत्र अव भी आते रहते है। उपर्युक्त पत्रसे पता चलता है कि हमारा सार्वजनिक जीवन अभी निर्मल नही हुआ है। इस हदतक हमारा असहयोग आन्दोलन निष्फल माना जायेगा अथवा वह कितना सफल हुआ है

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि गांधीजीको गुजरातमें फिर कार्य आरम्भ करनेसे पहले वास्तविक स्थितिकी पूरी जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए।

यह बात सार्वजनिक जीवनकी स्वच्छतासे ही आँकी जा सकती है। हम वर्तमान शासन-तन्त्रका विरोध कर रहे हैं क्योंकि हमें विश्वास हो गया है कि वर्तमान तन्त्र मलिन है। इसका अर्थ ही यह हुआ कि हम स्वयं अपेक्षाकृत स्वच्छ हैं और स्वच्छ तन्त्रकी स्थापना करना चाहते हैं। इसलिए हमारे सार्वजनिक जीवनमे स्वच्छता आनी चाहिए और वह भी इस हदतक कि हमारा विरोधी भी उसे देख सके और फिर स्वीकार करे। असहयोग आन्दोलनका मतलब ही शत्रुको मित्र बनाना है। जिसे इस सूत्रपर विश्वास न हो वह कभी शान्त असहयोगी नही बन सकता।

लेकिन हममें एक दोष है, उसपर भी विचार कर लेना आवश्यक है। हम दूसरोंमें और अपने साथियोंमें भी दोष देखनेके लिए तत्पर रहते हैं। हम उनके गुण तो देखते ही नहीं हैं। परिणामस्वरूप हम उनकी केवल निन्दा ही करते रहते हैं। एक लोकसेवक बहुत काम करता है तथापि यदि वह कही आँखें लाल करता है अथवा तीखी बात कहता है तो हम उसे बिल्कुल निकम्मा मान लेते हैं। यदि उसने हमारी आवभगत नहीं की अथवा उसने हमारी बात नहीं समझी तो उसकी सारी सेवा मिट्टीमें मिल गई। मुझे ऐसे स्वभावका अनुभव बहुत हुआ है, इसीलिए मैं लोगोंको परनिन्दाकी इस आदतके विरुद्ध भी सावधान कर देना चाहता हूँ।

इस तरह पाठकोंके आगे दोनो पक्षोंको प्रस्तुत करनेका हेतु यह है कि जिसने उजला पक्ष अर्थात् केवल दूध ही देखा हो वह निरीक्षण करे और यदि उसे मैल दिखाई दे तो उसे स्वीकार करे तथा जिसकी नजरमे मैल-ही-मैल आया हो वह अच्छाइयाँ भी देखनेका प्रयत्न करे। यदि वह इसके बाद तटस्थ भावसे पत्र लिखेगा, तो उसके पत्रमें दिया गया समाचार हमारे लिए सहायक होगा।

अन्तमें मुझे यह भी कहना है कि मैं कर्णधार नहीं बनना चाहता। कर्णधार तो वल्लभभाई हैं ही। मेरा काम तो यथासम्भव सलाह देना ही है। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के सम्पादनका कार्य मेरे हाथमें है, यह कार्य मेरे लिए पर्याप्त है। यदि लोग इस कार्यको मुझसे ले लेंगे तो मेरे पास आश्रमका कार्य है। आज तो मैं आश्रमके कामके लायक भी नही रहा हूँ, क्योंकि मेरे पास इन दोनो पत्रोंके कार्यसे कोई समय ही नही बचता। इसलिए इस समय गुजरात और समस्त राष्ट्रके लिए मेरा उपयोग केवल सलाहकारके रूपमे ही हो सकता है। तथ्यपूर्ण पत्र मुझे अपने विचारोंको व्यवस्थित करनेमें बहुत सहायता देते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१३१. टिप्पणी

मिथ्या भ्रम

एक सज्जन लिखते है कि कितने ही बूढे लोग अपने पौत्रोको देखकर, उन बच्चोके बापकी ओर मुँह करके यह कहते और उनके प्रति अपना स्नेह प्रकट करते है· "हम और तुम तो काफी पहन-ओढ चुके, और अब खादी पहनने लगे है। परन्तु यदि हमने इन कोमल बच्चोको अभीसे खादी पहना दी तो इन बेचारोका कुछ भी लाड-प्यार न हुआ समझो।" उक्त सज्जन पूछते है कि ऐसे धर्म-सकटके समय क्या करना चाहिए? मुझे तो इसमे कुछ भी धर्म-सकट नही दिखाई देता। हम बडे-बूढोके इस लाड-प्यारकी भावनाका खयाल करके नन्हे-मुन्नोका भविष्य कैसे विगाड सकते है, अथवा हिन्दुस्तानकी फाकेकशी मिटानेके इस महान् सघर्षको धक्का कैसे पहुँचा सकते है? हम जिस चीजका इस्तेमाल करना अपना धर्म समझते है, उसे हम ऐसे प्रेमके वशीभूत होकर किस तरह छोड सकते है? फिर यह महज भ्रम है कि विदेशी या देशी मिलोका कपडा ज्यादा महीन होनेके कारण ज्यादा अच्छा होता हे। आज कितने ही बच्चे ऐसे है जो महीन कपडोको नही छूयेगे और खादी ही पहनेगे। बच्चोकी तो हम जैसी आदत डालते है वैसी ही पड जाती है। मेरी तो यही समझमे नही आता कि मिलके कपडे पहनानेमे कौन-सा दुलार है? कुछ साल बाद जब सब लोग खादी पहनने लगेगे, हम यह भी मानने लग जायेगे कि खादी पहनानेमे ही प्यार है। निर्दोष बालकोके छोटे-छोटे शरीरोपर सफेद दूध-जैसी खादी जितनी फबती हे उतने रग-बिरगे, शरीरसे चिपकनेवाले और मैलखोरे कपडे कभी नही फबते। फिर हमारे देशकी आबोहवामे तो बालकोको बहुत ही कम कपडा पहनाना ठीक हे। हमारे बालकोके लिए जूते, मोजे और ज्यादा कपडे बीमारियोके घर है। यह उन्हे नाजुक बनानेका रास्ता हे और इसमे फजूलखर्ची होती हे। हम बच्चोको उनका झूठा दुलार करके शुरूमे ही बुरी आदत डाल देते है। यह कैसा अन्याय है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-६-१९२४

१३२. पत्र : नवीनचन्द्रको

ज्येष्ठ सुदी १४, १९८० [१६ जून, १९२४]

तुमने पूछा है, जीवनके उच्चतम आदर्शको व्यवहारमे उतारनेके लिए क्या करना चाहिए? तनिक विचार करनेसे मालूम होगा कि इसका उत्तर प्रश्नमे ही निहित है। यदि कोई आपसे पूछे, मुझे जो वस्तु अच्छी लगती है उसे खानेके लिए मैं क्या करूँ तो आप उससे कहेगे आप उसे खाये। इसी तरह आदर्शके अनुसार चलते-चलते हमे सत्यके आचरणका भान हो जायेगा। सच पूछो तो असली कठिनाई आदर्शके प्रति रुचि उत्पन्न करनेकी है। प्राय ऐसा होता है कि जिस वस्तुके बारेमे हम यह मानते है कि वह हमे अच्छी लगती है, वह हमे वास्तवमे अच्छी नही लगती। यदि सत्य-पालन आदर्श हो तो हमे सत्यका आचरण करना चाहिए। यदि ब्रह्मचर्य आदर्श हो तो उसका पालन करते हुए हमे आनन्दका अनुभव होना चाहिए। यदि शरीर आदर्श हो तो हमे रुई धुनने, सूत कातने और कपडा बुननेमे आनन्द आना चाहिए और यदि आपने सेवाका आदर्श बनाया हो तो आपको सेवा करते हुए कभी थकना नही चाहिए। यदि हम अध्यापन कार्य द्वारा सेवा करना चाहते हो तो हमे उसके लिए अपनी सामर्थ्य-भर प्रयत्न करना चाहिए।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (जी० एन० २१७०) से।

१३३. जे० बी० पेटिटके पत्रपर टिप्पणी[1]

[१७ जून, १९२४के पश्चात्]

इसे बनारसीदासको दिखा दे। उन्हीसे पूछिए कि यह उनसे किसने कहा था कि उनके द्वारा माँगी गई रकमका एक भाग श्री पेटिटने देनेका वचन दिया है।

अग्रेजी प्रति (एस० एन० ९९७८) की फोटो-नकलसे।

१. उक्त टिप्पणी जे० बी० पेटिटसे प्राप्त उनके १७ अगस्त, १९२४के निम्न पत्रकी पीठपर लिखी मिली है, "मुझे याद नहीं कि मैंने कभी पण्डित बनारसीदासके वेतन तथा उनके व्ययका एक अंश भी उन्हें देनेका वादा किया है। ऐसा खयाल पड़ता है कि इस प्रकारकी सहायताके लिए पण्डित बनारसीदासका एक पत्र एक वर्षसे भी अधिक पहले आया था और वह आई० आई० सी० ए० की समितिके सामने रखा गया था। समितिने उसे अस्वीकार कर दिया था। समिति चाहती थी कि श्री बनारसीदास सबके पूरा समय काम करनेवाले कर्मचारी बन जाय, किन्तु श्री बनारसीदासने ऐसा करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की, इसलिए उनकी अर्जी नामजूर कर दी गई। इसलिए मेरा खयाल है, समिति उनके खर्चके लिए कोई रकम

१३४. तार: गंगाद्दीन छावनीवालाको[1]

[१८ जून, १९२४ या उससे पूर्व]

कर सकते हैं। यदि वे लोग कोशिश करें तो खद्दरका प्रचार अधिक प्रभावकारी ढंगसे होना सम्भव है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-६-१९२४

१३५. पत्र: वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ वदी १ [१८ जून, १९२४][2]

चि० वसुमती,

आजकी लिखावट ऐसी नहीं है कि दसमें चार अंक भी दिये जा सकें। इसमें नित्य सुधार किया जाना चाहिए। तुम्हें छपी हुई वर्णमाला सदा पास रखनी चाहिए। यदि तुमने कापी न खरीदी हो तो यहाँसे भेज दूंगा। बा और देवदास आ गये हैं। वे प्रागजीको उनकी जेल-यात्राके अवसरपर विदाई देने आज सूरत जा रहे हैं। तुमने उनकी गिरफ्तारीकी खबर तो पढ़ी ही होगी। यहाँ भी कुछ छींटे पड़े हैं। अब तो बरसात आये तभी चैन मिले। तुम्हारे अंग्रेजी अक्षर ठीक हैं, लेकिन उनमें भी सुधारकी गुंजाइश है। मैं जो यह सब लिख रहा हूँ उसका मंशा तुम्हें शर्मिन्दा करना नहीं है, बल्कि उत्साहित करना है।

बापूके आशीर्वाद

वसुमतीबहन
लीलावती आरोग्यभवन
देवलाली

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४६) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

देना शायद ही स्वीकार करेगी। किन्तु यदि आप चाहते हैं कि मैं उनके प्रार्थनापत्रको फिरसे समितिके सामने रखूँ तो आपका पत्र पानेपर मैं ऐसा प्रसन्नतापूर्वक करूँगा। देखिए "पत्र: कामाक्षी नटराजनको", १५-८-१९२४।

१. यह तार उस तारके उत्तरमें दिया गया था जिसमें गांधीजीसे पूछा गया था कि असहयोगियोंको छावनी क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहिए या नहीं।

२. डाकखानेकी मुहरसे।

१३६. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

ज्येष्ठ वदी १ [१८ जून, १९२४][1]

सुज्ञ भाईश्री,

वावू साहव (यशवन्त प्रसाद), वीरभाई और दिनकररावके वीच जो मुकदमा चल रहा है मैं यह पत्र उसके वारेमें ही लिख रहा हूँ। वीरभाई और मार्कण्डराय मेरे पास आये थे। उसके वाद ही मुझे इस मामलेकी थोडी-वहुत जानकारी मिल पाई है। वीरभाई और वावू साहव तो यह मामला पंचोंको सौंपनेके लिए तैयार हैं, लेकिन दिनकररावके वारेमें कोई कुछ नहीं कह सकता। क्या आप सव पक्षोंको वुलाकर ओर उन्हें पंच निर्णयके लिए राजी करके इस पारिवारिक कलहको अदालत-में ले जाये जानेसे नहीं रोक सकते? एक मामलेकी सुनवाई तो २५ तारीखको भावनगरमें होनेवाली है। आपसे प्रार्थना है कि आप इस सम्वन्धमें जो-कुछ करना चाहते हों उससे पहले ही करें। इस परिवारसे मेरी अपेक्षा आपकी घनिष्ठता अधिक है, इसलिए मैं आपको क्या सलाह दूं? चूंकि आप सरकारी अधिकारी हैं इसलिए कोई-न-कोई तो आपके पास आयेगा ही। आप ऐसा समझें कि मैं तीनों पक्षोंकी ओरसे आपके पास आया हूँ।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१८०) से।
सौजन्य महेश पट्टणी

१३७. पत्र : अब्बास तैयबजीको

१८ जून, १९२४

भाई साहव,

आप तो सचमुच कमाल करते हैं। आपके गुजराती पत्र अंग्रेजी पत्रोंसे वहुत वेहतर हुआ करते हैं। मुझे आपके गुजराती पत्रोंमें आपकी झलक मिलती है और आपके अंग्रेजीमें लिखे पत्रोंमें आपकी अंग्रेजीकी।

चरखेसे निकलता हुआ तार आज आपके और खुदाके वीच आता दिखता है, पर आगे चलकर आप इसी तारपर खुदाको नाचता हुआ देखेंगे। जहाँ श्रद्धा होती है वहाँ आप उसे हाजिर ही समझें।

१ गांधीजीने ३ जुलाई, १९२४ को मेपीको लिखे अपने पत्रमें भी दिनकररावका उल्लेख किया है, अत सम्भवत यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। उस वर्ष ज्येष्ठ वदी १, १८ जूनको पड़ी थी।

आपको बुढापेमे भी वर्षाकी ठड नही लगी इसका एक कारण तो है आपका निरन्तर बढता हुआ युवको जैसा-उत्साह और दूसरा है आपका सेवा-कार्य। जो लोग खुदाका नाम लेकर खुदाका ही काम करनेके लिए घरसे निकलते है, अगर उन्हे खुदा ही नही बचायेगा तो वह खुदा कैसा?

मै चाहता हूँ कि आप ऐसा यत्न करे कि श्रीमती अब्बास, बेटी रेहाना तथा अन्य कुटुम्बियोको भी चरखेकी धुन लग जाये।

आप चाहे जितने और जैसे पत्र लिखे मै आपको उन सबके लिए पहले ही इकट्ठा क्षमादान किये देता हूँ।

आपका,

मोहनदास गाधी

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ९५४७) की फोटो-नकलसे।

१३८. टिप्पणियाँ

वाइकोम सत्याग्रह

कहा जाता है कि तियोके[1] धर्मगुरु श्री नारायण महाराजने वाइकोम सत्याग्रहके मौजूदा तरीकोको नापसन्द किया है। उनका कहना है कि स्वयसेवकोको बाड लगाये हुए रास्तोसे लगकर चलना चाहिए और बाडोको लाँघ जाना चाहिए। उनको मन्दिरोमे जाना चाहिए और दूसरे लोगोके साथ भोजन भी करना चाहिए। उन्होने मुलाकातमे जो-कुछ कहा है, उसका सार ही मैने यहाँ दिया है। फिर भी ये लगभग उन्हीके शब्द है। जो काम करनेकी सलाह दी गई है, वह सत्याग्रह नही है, क्योकि बाडोको लाँघना स्पष्ट हिंसा है। यदि बाडोको तोडा जा सकता हो तो फिर मन्दिरोके दरवाजे ही क्यो न तोड डाले जाये और उनकी दीवारोमे ही छेद करके क्यो न घुसा जाये? शारीरिक बलका प्रयोग किये बिना स्वयसेवकगण पुलिसकी कतारोको चीरकर कैसे जा सकते है? मै एक क्षणके लिए भी ऐसा नही कहता कि इन तरीकोसे तिया लोग, यदि वे मजबूत है और काफी तादादमे मरनेके लिए तैयार है तो अपना मकसद हासिल नही कर सकते। मै तो सिर्फ यह कहता हूँ कि यदि ऐसा हुआ तो उसका मतलब यह होगा कि उन्होने अपना मकसद उन तरीकोसे पूरा किया, जो सत्याग्रहके तरीकोके खिलाफ है और फिर इससे वे एक भी पुराने खयालके हिन्दूको अपनी रायके मुआफिक न कर सकेगे, यह तो अपनी राय लादना कहलायेगा। एक मित्र, जिन्होने इस मुलाकातका हाल एक अखबारसे काटकर भेजा है, लिखते है कि मुझे चाहिए कि मै इन गुरुके हिंसामूलक सुझावके कारण वहाँकी कांग्रेस कमेटीको यह सत्याग्रह बन्द करनेकी सलाह दूं। मुझे लगता है कि ऐसा करना

१. केरलकी एक जाति-विशेष।

यह मान लेनेके बराबर है कि अपने तरीकोंमे हमारा विश्वास नही है और हम हिंसाकी ओरसे जा बैठे हैं। जबतक उस सत्याग्रहके सचालक अपने लिए निर्धारित मर्यादाका पूरा-पूरा पालन करते रहेंगे, तबतक सत्याग्रह बन्द करनेका कोई कारण नही है। इन महोदयने चौरी-चौरा काण्डका उल्लेख किया है। इस उल्लेखसे प्रकट होता है कि या तो उनके विचार स्पष्ट नही हैं या वे वस्तु-स्थितिको ही नही जानते। बारडोलीका सत्याग्रह इसलिए स्थगित किया गया था कि चौरी-चौरा काण्डमे काग्रेस और खिलाफतके लोग भी शामिल थे। जब वाइकोमके सत्याग्रहसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे लोग निजके ज्ञान गुरुकी रायको ठीक मानते हो, प्रायश्चित्तका, अर्थात् सत्याग्रहके बन्द करनेका सवाल तभी उठ सकता है, अन्यथा नही। इसलिए वाइकोम सत्याग्रहके सचालकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे दुगुने जोशसे अपने कामको आगे बढाये और साथ ही जो लोग इस आन्दोलनमे शामिल है, उनके आचरणपर और कडी नजर रखे। कार्यसिद्धिमे समय चाहे ज्यादा लगे या कम, यही वह रास्ता है जिसपर चलकर आत्मशुद्धि और कष्ट-सहनके द्वारा पुराने खयालके लोगोको शान्तिपूर्ण ढगसे अपनी रायके मुआफिक किया जा सकता है। इसके सिवा कोई दूसरा उपाय है ही नही।

"झूठा" का मतलब

सिमलासे एक स्वराज्यवादी मित्र मेरे अभी हालमे ही लिखे लेखोमे आये हुए "हिंसामूलक" और "झूठा" विशेषणोके बारेमे मुझे लिखते हैं

> मैं समझता हूँ कि इन विशेषणोका प्रयोग करते समय आपका मतलब उन लोगोसे है जो त्रिविध बहिष्कारके प्रति "झूठे" साबित हुए हैं। मैं आपसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि आप अपनी किसी टिप्पणीमें इसका खुलासा कर दें। जिस प्रकार यहाँके कितने ही प्रमुख व्यक्तियोको इससे दुःख पहुँचा है, दूसरी जगहोंके लोगोको भी इसी प्रकार जरूर दुःख हुआ होगा। मैंने तो आपकी बातका उक्त अर्थ ही समझा है। लेकिन मेरा खयाल है और विशेषकर इसलिए कि आप कदापि यह नहीं चाहते कि आपकी बातका कोई व्यक्ति गलत अर्थ लगा ले। इस विषयमें यदि आप अपनी टिप्पणियोमें कुछ लिखनेकी कृपा करे तो व्यर्थ नहीं जायेगा।

यदि इस गलतफहमीकी ओर इन मित्रने मेरा ध्यान आकर्षित करनेकी कृपा न की होती तो मुझे मालूम भी नही पडता कि ऐसी कोई गलतफहमी हुई है। झूठका जो वातावरण-आज हमें चारो ओरसे घेरे हुए है, अपने हालके सभी लेखोमे मैंने उसीके बारेमें लिखा है। मेरा आक्षेप सभीपर है। मैं ऐसे अपरिवर्तनवादी लोगोको जानता हूँ जो अपने शरीरकी हदतक भी खादीके प्रस्तावका अमल नही करते। मेरी रायमें उनका यह कार्य निश्चय ही अप्रामाणिक है। अदालतोके बहिष्कारमे जब हम विश्वास न करते हो और फिर भी उसके बहिष्कारमे विश्वास दिखानेका दम्भ करें, जैसा कि हमने किया है, तो हमारा यह ढग अप्रामाणिक है। हममे बहुत-से लोग

ऐसे है जो मन, वचन और कर्मसे अहिंसाको नही मानते और फिर भी वे अहिंसा नीतिके हामी होनेका दावा करते है, अत ऐसे हम सभी लोग, चाहे परिवर्तनवादी हो या अपरिवर्तनवादी, झूठे है।

विशेष अधिवेशन

मुझे मालूम हुआ है कि डा० पट्टाभि सीतारामैयाने अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी आगामी बैठकमे एक विशेष अधिवेशनके लिए प्रस्ताव पेश करनेका अपना इरादा सूचित किया है। विशेष अधिवेशन बुलानेका कोई कारण दिखाई नही देता। काग्रेसके प्रस्ताव मौजूद ही है। उनके अर्थके विषयमे कोई मतभेद नही होना चाहिए। यदि ऐसा मतभेद हो तो भी दोनो पक्ष, एक-दूसरेसे मतभेद कायम रखते हुए भी, काममे जुट सकते है। जरूरत सिर्फ इस बातकी है कि सदस्यगण, अब आगामी छ महीनोमे काम किस प्रकार करना चाहिए, इसका निर्णय कर ले। काग्रेसके अधिवेशनमे उसकी नीतियाँ निश्चित की जा सकती है। विशेष अधिवेशन हमारी अनिश्चितता, उदासीनता और निष्क्रियता दूर करनेमे कुछ भी मदद न कर सकेगा। मेरा निश्चित मत है कि जबतक एक पक्ष दूसरे पक्षपर देशकी प्रगतिका बाधक होनेका आरोप लगाता रहेगा तबतक उक्त तीनो बुराइयाँ बनी ही रहेगी। मेरी रायमे तो जो लोग अपनी विवेक-बुद्धिका पूरा उपयोग करते हुए कार्य करते रहते है, वे प्रगतिमे कभी बाधक नही होते। लेकिन वह व्यक्ति प्रगतिमे अवश्य ही बाधक होता है जो जडतावश न तो खुद सोचता-विचारता है और न अपने मनसे ही काम करता है, अथवा न इस भयसे ही कुछ कर पाता है कि कही दूसरे उससे नाराज हो जायें। दूसरेके दिलको चोट लगे तब भी हममे जरूरत पडनेपर "ना" कहनेकी हिम्मत होनी ही चाहिए।

आग भडकानेवाला साहित्य

एक मित्रने मुझे "रगीला रसूल" नामक एक पुस्तिका भेजी है, जो उर्दूमे लिखी गई है। लेखकका नाम नही दिया गया है। प्रकाशक है -- आर्य पुस्तकालय लाहौरके प्रबन्धक। पुस्तिकाका नाम ही बहुत उद्वेगकारी है। उसकी विषय-वस्तु भी उसीके अनुरूप ही है। उसके कुछ अश ऐसे है, जिनका अनुवाद प्रस्तुत करूँ तो उससे पाठकोकी परिष्कृत भावनाको धक्का लगेगा। मैंने मनमें सोचा कि पुस्तिकाको लिखने या छापनेके पीछे लोगोका रोष भडकानेके अलावा और क्या उद्देश्य हो सकता है। पैगम्बर साहबके लिए अपशब्दोका प्रयोग करने या उनका उपहास करनेसे कोई मुसलमान अपने धर्मसे विमुख नही हो सकता और न ऐसे हिन्दूको ही कुछ लाभ हो सकता है जिसके मनमें अपने धर्मके प्रति शकाएँ हो। इसलिए धर्म-प्रचारके कार्यकी दिशामें इस पुस्तिकाका कोई महत्व नही है और इससे जो हानि हो सकती है, वह तो स्पष्ट ही है।

एक दूसरे मित्रने 'शैतान" शीर्षक एक पर्चा भेजा है। यह एक सफेका पर्चा है और इसका मुद्रण पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस, लाहौरमें हुआ है। इसमें भी मुसलमानोंको ऐसी गालियाँ दी गई है, जिनका अनुवाद करना उचित नही होगा। मै जानता हूँ

कि मुसलमानोंने भी अपने पर्चोंमे हिन्दुओंको ऐसी ही गालियाँ दी है। लेकिन इससे हिन्दुओं या आर्यसमाजियों द्वारा दी गई गालियोंका औचित्य सिद्ध नही होता और न जवाबी कार्रवाईकी दृष्टिसे इसे ठीक कहा जा सकता है। मैने तो इन पुस्तिकाओं और पर्चोंकी ओर कोई ध्यान ही न दिया होता, यदि मुझे यह न बताया जाता कि इनकी पाठक-संख्या बहुत बड़ी है। स्थानीय नेताओंको चाहिए कि वे इनका प्रकाशन बन्द करानेका या कमसे-कम इनको निन्दित ठहरानेका उपाय खोज निकाले और इनके बजाय ऐसा स्वस्थ साहित्य प्रकाशित करे जिसमे दोनो पक्ष एक-दूसरेके धर्मके प्रति सहिष्णुता बरतें।

एकके मुकाबले तीन

एक मुसलमान भाईने लिखा है कि भोपाल राज्यका धर्मत्याग सम्बन्धी कानून तो निस्सन्देह बुरा है ही, लेकिन उसके खिलाफ जो आन्दोलन चल रहा है उसमे भी कोई तत्त्व नही है। उनका कहना है कि यह कानून पुराना है और कभी अमलमे नहीं लाया गया। वे दृढतापूर्वक कहते है कि उस राज्यमें हिन्दुओंके साथ बहुत न्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता रहा है और बहुतसे हिन्दू प्राय राज्यके ऊँचेसे-ऊँचे पदोंपर रहे है। वे आगे कहते है

> लेकिन क्या आपको मालूम है कि पलोल, रीवाँ और भरतपुरकी हिन्दू रियासतोंमें क्या-कुछ हो रहा है? पलोलकी चर्चा तो आपने स्वयं भी की थी। भरतपुरमें तीन मसजिदें गिराई जा चुकी हैं। कहते हैं, रीवाँ राज्यमें इस आशयका आदेश जारी है कि यदि कोई हिन्दू मुसलमान बनेगा तो उसे एक सालकी सजा दी जायेगी और उसे मुसलमान बनानेवाले व्यक्तिको दो साल की।

यदि ये तथ्य सही हों तो हिन्दुओंको ऐसे कानूनके खिलाफ शिकायत करनेका कोई कारण नही रह जाता, जो किताबमे ही बन्द है। मेरी व्यक्तिगत राय तो यह है कि एक अन्यायके प्रति दूसरा अन्याय कर देनेसे न्याय हासिल नही होता। इस सिद्धान्तके अनुसार अन्याय जहाँ-कही दिखाई पडे उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए। जहाँ-कही धर्म-परिवर्तन कानूनकी दृष्टिसे दण्डनीय है वहाँ असहिष्णुता है, ऐसा मानना चाहिए। उसे मिटा देना हमारा धर्म है। लेकिन हिन्दुओंको सबसे पहले अपना निवेदन रियासतोंके सामने रखना है।

केनियाके भारतीय

केनियाके भारतीय अत्यन्त ही कठिन परिस्थितियोमे बहादुरीके साथ अपना संघर्ष चला रहे है। सर्वश्री गुलाम हुसेन, अलादीन, अहमदभाई करीम, वलीभाई इस्माइल, कासिम नूरमुहम्मद तथा अन्य बहुतसे लोग भी जेल जा चुके है। और अब समाचार मिला है कि श्री देसाईको भी वही इज्जत दी गई है। केनियाके भारतीय इस युद्धको जारी रखनेके लिए बधाईके पात्र हैं। लेकिन सविनय अवज्ञाके लिए जो कानून चुना गया है, उसका सम्बन्ध बहुत थोडे ही भारतीयोसे है और उस कानूनको

तोडनेके लिए सजा भी थोडी ही दी जाती है। इसलिए अगर केनियाके भारतीय तबतक युद्धको जारी रखनेके लिए कटिबद्ध हैं जबतक कि उनके साथ न्याय नही किया जाता तो उन्हे सविनय अवज्ञाके लिए राज्य द्वारा बनाये गये नैतिकतासे सम्बन्ध न रखनेवाले कुछ ऐसे कानून खोज निकालने होगे, जिनके विरोधमे लोग चाहे तो अपेक्षाकृत अधिक सख्यामे सघर्षरत हो और तीव्रतर कष्ट-सहनका अवसर प्राप्त करे। केनिया कमेटीसे, जिसकी बैठक लन्दनमे हो रही है, उन्हे कुछ दिनोके लिए राहत मिल सकती है। यहाँ आन्दोलन करनेसे भी वहाँ उनको प्रोत्साहन मिल सकता है, लेकिन सच्चा उपाय तो उन्हीके हाथमे है। उन्हे अपने खिलाफ किसी भी सही शिकायतका कारण न रहने देना चाहिए और साथ ही सविनय अवज्ञा शुरू करके एक सर्वसामान्य उद्देश्यके लिए बहुत दिनोतक कष्ट-सहन करनेकी हिम्मत दिखानी चाहिए। तब सफलता मिले बिना न रहेगी।

मूक साधनाका महत्त्व

बडोदादा (द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर)ने मुझे निम्नलिखित पत्र[1] भेजा है

मेरी इच्छा है कि बडोदादाके पत्रमें निहित इस सुन्दर विचारको सभी कार्यकर्त्ता अपने मनमे सजोकर रखे और उन्हीकी तरह ऐसा माने कि जब नाम मिट चुकेगे, सभी सच्चे काम तब भी धरतीपर बने रहेगे।

१८१४ और १९१४

खादी प्रतिष्ठानके बाबू क्षितीशचन्द्र दास गुप्ता कहते है कि सिर्फ कलकत्तेसे ही १८१४ मे दो करोड (आजके १२ करोडके बराबर) की खादी निर्यात की गई थी और १९१४ मे भारतने ६६ करोड रुपयेके कपडेका आयात किया। फिर अगर हम एक दरिद्र राष्ट्र बनकर रह गये है तो इसमे आश्चर्य ही क्या। यदि हमने कताई और बुनाईके बदले कोई और उद्योग छोड दिया होता तो आज हमारी दशा इतनी बुरी न होती। हम वैसा नही कर सके क्योंकि हमारे राष्ट्रीय उद्योगकी हत्या जान-बूझकर की गई है और उसके हत्यारोने उसके बदलेमे हमें कोई और उद्योग भी नही दिया।

त्रिवेन्द्रम जेलमें चरखा

त्रिवेन्द्रम सेट्रल जेलके एक सत्याग्रही कैदी श्री के० कुमार लिखते है

> आजका दिन मेरे जीवनके सबमे आनन्ददायक दिनोंमें से है, क्योंकि (एक मास पूर्व) आजके ही दिन मैं गिरफ्तार करके जेल भेजा गया था। . . . मौन रखकर कताई करते हुए जितना सूत तैयार किया है, उसे भेज रहा हूँ . . .। यहाँ लगभग ६ बजे सुबहसे लेकर ६ बजे शामतक हर रोज चरखा चलता है। . . .मैं हर रोज कमसे-कम तीन घटे कताई करता हूँ . . .।

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

हममें से कुछ लोग हिन्दी या उर्दू सीख रहे हैं, हम 'गीता' और 'पुराणों' का भी पाठ करते हैं। ६ बजे सुबह हम प्रार्थना करते हैं, जिसमें जाति या धर्मका खयाल किये बिना सभी लोग शामिल होते हैं . . . अधिकारी लोग हमारा बड़ा खयाल रखते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१३९. फिरसे आर्यसमाजियोंकी चर्चा

कितने ही आर्यसमाजी भाइयोंने आर्यसमाजके सिद्धान्तों और उनकी श्रेष्ठताके बारेमें मेरे अज्ञान (उनका ऐसा ही खयाल है) पर लम्बे-चौड़े लेख लिखकर भेजे हैं। मैं चाहता था कि उनमेंसे कमसे-कम एक पत्र तो अवश्य छाप सकूँ ताकि पाठकोंको यह मालूम हो जाये कि आर्यसमाजी मेरी टीकाको किस दृष्टिसे देखते हैं। अन्तमें मुझे एक ऐसा पत्र मिल गया और उसे मैं खुशीके साथ प्रकाशित कर रहा हूँ। पत्र-लेखक हैं गुरुकुल कांगड़ीके आचार्य रामदेवजी। उसमें से मैंने सिर्फ एक अनुच्छेद निकाल दिया है। मेरी रायमें यह अंश जल्दीमें लिखा गया होगा और वह उनकी योग्यताके अनुरूप भी नहीं था। उसके निकाल डालनेसे उनकी दलील कमजोर नहीं पड़ती और आर्यसमाजके संस्थापकके उत्साहपूर्ण गुणगानमें भी किसी तरहकी कोताही नहीं आती। आचार्य रामदेवजीका पत्र नीचे देता हूँ[1]

मैं हमेशासे यह कहता आया हूँ कि मेरे जीवनमें धर्मका स्थान प्रमुख और राजनीति उसकी अनुवर्तिनी है। मेरे राजनीतिक क्षेत्रमें आनेका कारण यह हुआ कि मैं अपने धार्मिक जीवन अर्थात् सेवामय जीवनको उससे प्रभावित हुए बिना व्यतीत न कर सका। यदि उसमें मेरे धार्मिक जीवनमें बाधा पड़े तो मैं उसे आज ही त्याग दूँ। इसलिए मैं इस सिद्धान्तसे सहमत नहीं हो सकता कि एक राजनीतिक नेता होनेके कारण मुझे धार्मिक बातोंके विषयमें नहीं बोलना चाहिए। मैंने आर्य-समाजके बारेमें इतना इसलिए लिखा कि मैंने देखा कि वह अपनी उपयोगिताको खोता जा रहा है और उसकी मौजूदा कार्रवाइयोंसे देशको हानि पहुँच रही है। चूँकि हम दोनोंके विचारोंका उद्गम स्थान एक ही है, इसलिए एक हितैषी और हिन्दू होनेके नाते मैं इन भाइयोंसे अपनी बात जोरसे कहनेका हक मानता था। यदि वहाँ मैं विभिन्न धर्मोंके गुण-दोषोंकी समीक्षा करता तो अवश्य ही मुझे इस्लामके बारेमें भी अपने विचार प्रकाशित करने पड़ते।

मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने मूल वेदोंको नहीं पढ़ा है। फिर भी मुझे उनका इतना ज्ञान अवश्य है कि मैं अपनी कोई राय बना सकूँ। आचार्य रामदेवका यह खयाल गलत है कि महर्षि दयानन्दके उपदेशोंके सम्बन्धमें मेरे खयाल पहले से ही

१ पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। गांधीजीके उत्तरमें उक्त पत्रकी प्रायः सभी बातें आ जाती हैं।

खराब थे। आचार्य रामदेवने जिन बड़े-बड़े लोगोंका उल्लेख ऊपर किया है उनके द्वारा उस महान् सुधारककी की गई प्रशस्तिके ठीक-ठीक शब्द क्या हैं सो तो मुझे मालूम नहीं, पर उनके साथ प्रशस्तिमें शामिल होते हुए भी मैं अपनी इसी रायपर कायम रह सकता हूँ।[1] मैं अपनी पत्नीकी त्रुटियोंको जानता हूँ, पर इस कारण मैं उसे कम स्नेह नहीं करता। मेरी आलोचना करनेवाले लोगोंने यह मान लेनेकी गलती की है कि चूँकि मैंने उनके समाज-संस्थापकपर टीका-टिप्पणी की है, इसलिए मेरा उनके प्रति प्रेम और आदर नहीं है। मैं आचार्य रामदेवको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' के तमाम समुल्लासोंको पढ़ा है। उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी व्यक्तिके नैतिक उपदेशके उच्च होते हुए भी उसका दर्शन संकुचित हो सकता है। मेरे कितने ही मित्र जो नैतिक दृष्टिसे मुझे और मेरी नैतिक शिक्षाओंको बहुत ऊँचे दरजेका मानते हैं, मेरे जीवन-सम्बन्धी विचारोंको संकुचित और कट्टरतासे पूर्ण मानते हैं। मैं उनकी इस आलोचनाका बुरा नहीं मानता, हालाँकि मैं मानता हूँ कि जीवन-विषयक मेरा दृष्टिबिन्दु विशाल है और मैं मनुष्य-जातिके अत्यन्त सहनशील लोगोंकी श्रेणीमें आ सकता हूँ। मैं अपने आर्यसमाजी मित्रोंको यकीन दिलाता हूँ कि यदि मैंने उनकी आलोचना की है तो उसी दृष्टिसे जिस दृष्टिसे मेरी आलोचना उन्हें करनेका अधिकार है। इसलिए हम दोनोंका हिसाब चुकता हुआ। वे मुझे देशमें सबसे अधिक अज्ञानी और असहिष्णु समझना चाहें तो समझें, लेकिन मैंने जो सम्मति व्यक्त की है मुझे उसपर कायम रहनेकी स्वतन्त्रता दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१४०. अग्नि-परीक्षा

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी अगली बैठकमें मैं नीचे लिखे चार प्रस्ताव पेश करना चाहता हूँ

१ इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि स्वराज्यकी स्थापनाके लिए चरखा और हाथकती खादीके आवश्यक माने जानेपर भी और कांग्रेसके द्वारा सविनय अवज्ञाके लिए पेशबन्दीके तौरपर उनकी स्वीकृति होते हुए भी देशके तमाम कांग्रेस संस्थाओंके सदस्य खुद ही अबतक हाथकताईकी उपेक्षा करते रहे हैं, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि विभिन्न प्रातिनिधिक कांग्रेस संगठनोंके सभी सदस्य बीमारी अथवा लगातार सफरकी हालतको छोड़कर, रोज कमसे-कम आध घंटा चरखा चलायेंगे और कमसे-कम १० नम्बरका १० तोला एकसा और पक्का सूत अखिल भारतीय खादी बोर्डके मन्त्रीके पास भेज देंगे। यह हर महीनेकी १५ तारीखतक उन्हें मिल

१. आचार्य रामदेवने इस सन्दर्भमें श्री अरविन्द, ह्यूम, सर सैयद अहमद, रानडे, तेलंग और बिशन नारायण दर आदिके नामका उल्लेख किया था।

जाये, पहली किश्त १५ अगस्त, १९२४ तक उनके पास पहुँच जाये और किश्तें उसके बाद हर महीने बराबर भेजी जाती रहे। जो सदस्य नियत तारीख तक नियत तादादमे सूत नही भेजेगा उसका पद खाली समझा जायेगा और मामूलके मुताबिक उसकी जगह दूसरे सदस्यसे भर दी जायेगी। पदच्युत शख्स विभिन्न सगठनोकी[1] सदस्यताके लिए होनेवाले अगले आम चुनावो तक फिरसे खडे होनेका अधिकारी नही होगा।

२ चूंकि इस बातकी शिकायतें पहुँची है कि प्रान्तीय मन्त्री तथा काग्रेस सगठनोके दूसरे पदाधिकारी उन हिदायतोकी तामील नही करते, जो काग्रेसके विधिवत् नियुक्त अधिकारियोकी तरफसे उनके नाम समय-समयपर भेजी जाती हैं, इसलिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी निश्चय करती है कि उक्त बातोके लिए जिम्मेदार जो पदाधिकारी विधिवत् नियुक्त अधिकारियोके आदेशोकी तामील नही करेगा वह अपनी जगहसे खारिज समझा जायेगा और उसकी जगहपर मामूलके मुताबिक दूसरा शख्स रख लिया जायेगा और वह पदच्युत व्यक्ति अगले साधारण चुनाव[2] तक फिरसे चुने जानेका पात्र नही समझा जायेगा।

३ अ० भा० का० क० की रायमे यह वाछनीय है कि काग्रेसके मतदातागण सिर्फ उन्ही लोगोको पदाधिकारी चुने जो खुद काग्रेसके ध्येयके अनुसार तथा उसके विविध असहयोग प्रस्तावोके अनुसार, जिनमे पचविध बहिष्कार अर्थात् मिलके कपडो, सरकारी अदालतो, स्कूलो, खिताबो और धारासभाओके बहिष्कार शामिल हैं, चलते हो। अ० भा० का० क० यह भी निश्चय करती है कि जो सभ्य इन पाँचो बहिष्कारो को न मानते हो और खुद उनके मुताबिक अमल न करते हो तो वे अपनी जगहोसे इस्तीफा दे दे और उन जगहोके लिए नया चुनाव किया जाये — इस्तीफा देनेवाले सज्जन चाहे तो चुनावके लिए फिरसे उम्मीदवार हो सकते है।[3]

४ काग्रेस स्वर्गीय गोपीनाथ साहाके द्वारा श्री डेकी हत्यापर अपना अफसोस जाहिर करती है और मृतात्माके परिवारके प्रति अपनी समवेदना प्रकट करती है। काग्रेसको इस बातकी गहरी प्रतीति है कि इस हत्याके पीछे भ्रमपूर्ण ही क्यो न हो देशप्रेम अवश्य था। फिर भी यह समिति इसकी और ऐसे तमाम राजनैतिक खूनोकी सख्त निन्दा करती है और साथ ही अपना मत प्रबलताके साथ व्यक्त करती है कि ऐसे सभी कृत्य काग्रेसके ध्येय और उसके शान्तिमय असहयोगके प्रस्तावोसे असगत हैं और उसकी यह राय भी है कि ऐसे कामोसे स्वराज्यकी प्राप्तिमे बाधा उत्पन्न

१ यद्यपि यह दण्डात्मक धारा गांधीजी द्वारा पेश किये गये प्रस्तावमें शामिल थी, लेकिन बादमें स्वराज्यवादियोंके विरोधका खयाल करके उन्होंने इसे निकाल दिया, देखिए "भाषण और प्रस्ताव दण्ड विषयक धारापर", २८-६-१९२४।

२ बादमें गांधीजीने इसे सशोधित रूपमें प्रस्तुत किया, देखिए "प्रस्ताव अ० भा० का० क० की बैठकमें", २९-६-१९२४।

३ इसमें दो बार सशोधन हुआ। पहले कार्यकारिणी समितिमें और फिर गाधीजी द्वारा अ० भा० का० क० में प्रस्तुत किये जानेके थोड़े पहले।

होती है और वे उस सविनय अवज्ञाकी तैयारीमे बाधक होते है, जो अ० भा० का० क० की रायमे, शुद्धसे-शुद्ध बलिदानको उत्साहित करती है और जो पूर्ण शान्तिमय वातावरणमे ही किया जा सकता है।'

दिखाई तो पडता है, इस मौकेपर तो मै ठीक वही काम कर रहा हूँ जिससे बचनेकी इच्छा करनेका मै दावा किया करता हूँ — अर्थात् काग्रेसमे दल पैदा करना और देशमे विवाद खडा करना। फिर भी मै पाठकोको यकीन दिलाता हूँ कि यह हालत ज्यादह दिनोतक न रहेगी। जहाँतक मेरे प्रयत्नका सवाल है मै इसे ज्यादा दिनोतक नही टिकने दूँगा। अनिश्चितताके वातावरणको समाप्त करनेकी जैसी व्यग्रता और आतुरता मेरे मनमे है वैसी ही दूसरोके मनमे भी होनी चाहिए। अगर हमे अपनी ठीक स्थिति समझनी हो तो कुछ-न-कुछ वाद-विवाद लाजिमी होता है। मेरे सम्बन्धमे लोग ऐसा मानते है कि मै कुछ चमत्कार करके दिखा दूँगा और देशको उसके लक्ष्यतक पहुँचा दूँगा। खुशकिस्मतीसे मेरे मनमे ऐसा कोई भ्रम नही है। हाँ, मै एक क्षुद्र सैनिक होनेका दावा अवश्य करता हूँ और अगर पाठक मेरी बात पर हँसे नही तो मै उनसे यह भी कह देना बुरा नही समझता कि मै एक कुशल जनरल भी हो सकता हूँ — केवल उन्ही शर्तोपर जो सेनामे हुआ करती है। मेरे पास ऐसे सैनिक होने चाहिए जो आज्ञा पालन करते हो, जो अपनेतई और अपने जनरलमे विश्वास रखते हो और जो आदेशोका पालन खुशी-खुशी करते हो। मेरी कार्यविधि हमेशा खुली और तयशुदा होती है। कुछ निश्चित शर्ते रहती है। उनकी पूर्तिपर सफलता निश्चित होती है, पर ऐसी हालतमे बेचारा जनरल क्या कर सकता है जब उसके सैनिक उसकी शर्तोको मानते तो हो, पर खुद उनका पालन न करते हो और हो सकता है कि उनका इन शर्तोमे विश्वास भी न हो। इन प्रस्तावोकी तजवीज इसलिए की गई कि इससे सैनिकोके गुणोकी परख हो जाये।

बल्कि इसे यो कहना अधिक ठीक होगा कि सैनिकोकी हालत तो बडी अच्छी है क्योकि वे अपना जनरल खुद चुनते है। उनके भावी जनरलके लिए सेवाकी शर्त जान लेना जरूरी है। मेरी हालत वही है जो १९२० मे थी। पर जितने दिन बीते है उतना ही मेरा विश्वास बढ गया है। अगर मेरी सेवा चाहनेवालोके बारेमें भी यही ठीक हो तो मेरा तन और मन — उनका ही है। दूसरी किसी तजवीजमे मेरा विश्वास नही है। इसलिए दूसरी किसी शर्तपर वे मुझे नही पा सकते। इसलिए नही कि मै राजी नही हूँ, बल्कि इसलिए कि मै उपयुक्त नही हूँ। जहाँ किसी ३५ बरसके हट्टे-कट्टे छः फुट नौजवानकी जरूरत हो वहाँ अगर कोई सफेद बालवाला ५५ बरसका बूढा जिसके दाँत टूट गये हो और जिसकी तन्दुरुस्ती अच्छी न हो, दरख्वास्त लेकर हाजिर हो तो कैसे काम चल सकता है?

इसलिए इन चार प्रस्तावोको जनरलकी जगहके लिए मेरी दरख्वास्त ही समझिए। इसमे मेरी योग्यता और मर्यादाएँ दोनो आ जाती है। इसमे अगर कोई

१ यह प्रस्ताव कौंसिलमें पास किया गया था। देखिए "प्रस्ताव: अ० भा० कां० क० की बैठकमें", २९-६-१९२४।

प्रभुत्व लादने या किसी असम्भव मांगको पेश करनेकी बात नही है। अगर सदस्यगण यह समझे कि मै गलतीपर हूँ तो उन्हे स्वय अपने तथा देशके प्रति सच्चा बना रहनेकी खातिर मेरा जरा भी मुलाहिजा नही करना चाहिए। मै मानता हूँ कि कोई शख्स ऐसा नही है जिसके बिना देशका काम रुक सकता हो। हममें से हरएक अपनी जन्मभूमि और उसके द्वारा मानव-जातिका ऋणी है। जिस घडी वह अपना ऋण चुकाना छोड दे उसी घडी उसे खारिज कर दिया जाना चाहिए। मौजूदा सेवा-कार्योका भार सौपते समय किसीकी पिछली सेवाओपर ध्यान देनेकी जरूरत नही है — फिर वे कितनी ही उज्ज्वल क्यो न हो। एक आदमीके खयालसे तो क्या सौ आदमियोके खयालसे भी देशहितकी बलि नही दी जा सकती, बल्कि देशहितपर उनीका या उन्हीकी कुरबानी कर दी जानी चाहिए। मै अ० भा० का० क० के सदस्योंमे निवेदन करता हूँ कि वे एक दृढ उद्देश्यको लेकर, बिना पक्षपात और मिथ्या भावुकता और भावनाओके अधीन हुए, इस प्रस्तावपर विचार करे। मेरी आपसे विनय है कि आप आँख मूंदकर मेरे पीछे न चले। मै कहता हूँ, इसलिए किसी बातका ठीक होना लाजिमी नही है। आपको खुद ही निर्णय करना चाहिए और आपको स्वय अपनी इच्छा और क्षमताका ठीक ज्ञान होना चाहिए। इतने दिनोके सम्पर्कमे आप यह तो जान ही गये होगे कि मै एक बेढब साथी हूँ और एक कडाईसे काम लेनेवाला आदमी हूँ। पर अब आप मुझे और भी ज्यादा सख्त पायेंगे।

मैने यह दलील पढी है कि खादी से स्वराज्य नही मिल सकता। यह पुरानी दलील है। अगर हिन्दुस्तानको यूरोपके नफीस कपडोकी — फिर वे चाहे मैनचेस्टरके बने हो, चाहे बम्बईकी मिलोके — चाह हो तो उसे करोडो भाई-बहनोके लिए स्वराज्यकी बातका खयाल ही छोड देना चाहिए। अगर हमारा विश्वास चरखेके पैगामपर हो तो हमे खुद चरखा कातना चाहिए। मै विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हे इससे बडी प्रेरणा मिलेगी। अगर हम शान्तिमय उपायोसे और इसलिए शान्तिमय अवज्ञाके द्वारा स्वराज्य लेना चाहते है तो शान्तिमय वायुमण्डल तैयार किये बिना चारा नही। अगर हम हजारोकी भीडमे व्याख्यान झाडनेके बदले वहाँ लोगोको चरखा कातकर दिखाये तो शान्तिमय वायुमण्डल तैयार हो सकेगा। अगर मुझसे हो सके तो मै तो काग्रेस सगठनोके हरएक सदस्यका मुँह तबतक के लिए बन्द कर दूँ — स्वय अपना और शायद शौकत अलीका छोडकर — जबतक कि स्वराज्य न मिल जाये। मै हरएकको चरखेपर बैठा दूँ या किसी कताई-केन्द्रकी व्यवस्था सौप दूँ। अगर यह मूक चरखा किसीके मनमे श्रद्धा, साहस और आशा पैदा नही कर सकता तो उसे चाहिए कि वह साफ-साफ ऐसा कह दे।

दूसरे और तीसरे प्रस्तावको पहले प्रस्तावका पूरक समझिए।

चौथे प्रस्तावके द्वारा हमारी अहिंसात्मक नीतिकी जाँच होगी। मै गोपीनाथ साहा सम्बन्धी प्रस्तावपर देशबन्धु दासका वक्तव्य पढ चुका हूँ। पर उससे पिछले सप्ताहमे कही गई मेरी बातमे कोई अन्तर नही आता। जबतक काग्रेस अपने वर्तमान

ध्येयपर कायम है और उसे मानती है तबतक मेरे तजवीज किये इस प्रस्तावमे समझौतेकी कोई गुंजाइश नही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१४१. हिन्दू क्या करे?

हिन्दू-मुस्लिम एकता सम्बन्धी मेरे वक्तव्यके बारेमे मेरे पास बहुतेरे पत्र आये है। पर उनमे कोई बात नई या मार्केकी नही। अतएव मैंने उन्हे प्रकाशित नही किया। परन्तु बाबू भगवानदासने इस बारेमे एक पत्र लिखकर कुछ सवाल किये है। उस पत्रको[1] मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ और उसमे उठाये सवालोके उत्तर भी दे रहा हूँ।

पहले दो सवालोका जवाब तो खुद लेखकने ही दे दिया है। किन्तु वह मेरी रायमे आंशिक रूपसे ही सच है। यद्यपि हिन्दुस्तानके अधिकांश मुसलमान और हिन्दू एक ही 'नस्ल' के है तो भी धार्मिक वातावरणने उनको एक-दूसरेसे भिन्न बना दिया है। मैं इस बातको मानता हूँ और मैंने देखा भी है कि विचारोके कारण मनुष्यका रूप और स्वभाव बदल जाया करता है। सिख लोग इस बातकी ताजा मिसाल है। मुसलमान बहुधा अल्पसंख्यक ही है और इसलिए समुदायके रूपमे वे आततायी बन गये है। फिर वे एक नई परम्पराके वारिस है। इससे उनमे जीवनकी इस अपेक्षाकृत नई प्रणालीके अनुरूप साहस दिखाई देता है। मेरी रायमे तो 'कुरान' मे अहिंसाका मुख्य स्थान है, पर १,३०० सालसे साम्राज्य विस्तार करते आनेके कारण मुसलमान जाति लड़ाकू जाति हो गई है। इसलिए उन्हे धींगामस्तीकी आदत पड़ गई है। गुण्डापन धींगामस्तीका एक स्वाभाविक परिणाम है। हिन्दू लोगोकी सभ्यता बहुत प्राचीन है और उनमे अहिंसा समायी हुई है। उनकी सभ्यता उन सारे अनुभवोंमे से कबकी गुजर चुकी है जिनमे से ये दो नई जातियाँ अभी गुजर ही रही है। अगर हिन्दू धर्ममे आजकलके अर्थमें कभी साम्राज्यवादिता रही भी हो तो एक तो वह जमाना बीत गया है इसलिए और दूसरे उसने या तो स्वयं सोच-विचारकर या कालचक्रकी गतिके अधीन होकर उसका त्याग कर दिया है। यहाँ अहिंसा भावकी प्रधानता होनेके कारण शस्त्रास्त्रोंका प्रयोग कुछ ही जातियों तक सीमित हो गया और उन जातियोंने उच्च कोटिके अध्यात्मवादी विद्वान और त्यागी लोगोंके अनुशासनमे चलना सदा अपना धर्म माना। इसलिए समाजके रूपमे हिन्दुओंके पास वे सांसारिक उपकरण नहीं है जो लड़ने-भिड़नेके लिए आवश्यक होते है। परन्तु अपने आध्यात्मिक प्रशिक्षणको अक्षुण्ण न रख सकनेके कारण वे शस्त्रोंकी जगह किसी दूसरे कारगर साधनका प्रयोग करना भूल गये और शस्त्रोंकी उपयोग-विधिके न जानने तथा उसके प्रति झुकाव न

[1] देखिए परिशिष्ट ३।

होनेके कारण उनमे इतनी नम्रता आ गई कि जिसे भीरुता और दब्बूपन भी कहा जा सकता है। इस तरह यह दुर्गुण उनके सौजन्यका एक स्वाभाविक परिणाम वन गया है।

ऐसा मत रखते हुए भी मेरी यह धारणा नही है कि हिन्दुओकी हदवन्दीकी खासियतका—जो कि वुरी तो है ही—उनकी भीरुतासे कोई खास सम्वन्ध है। आत्मरक्षाके लिए अखाडोके उपयोगपर जो मेरा विश्वास नही है, उसका कारण भी यही है। शारीरिक वलको वढानेके लिए मैं उनको उपयोगी मानता जरूर हूँ, मगर आत्मरक्षाके लिए तो मैं आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षाको ही पुनरुज्जीवित करना पसन्द करूँगा। आत्मरक्षाका सवसे अच्छा और चिरस्थायी साधन है—आत्मशुद्धि। मैं इन मिथ्या भयोसे डरनेवाला नही हूँ। अगर हिन्दू लोग सिर्फ आत्म-विश्वास रखे और अपनी परम्पराके अनुसार आचरण करते रहे तो उन्हे गुण्डेपनसे डरनेकी कोई जरूरत ही न रहे। वे जिस घडी वास्तविक आध्यात्मिक शिक्षाको फिरसे अपना लेगे, उसी दिनसे मुसलमानोके दिलपर उसका असर पडने लगेगा और ऐसा हुए विना रह नही सकता। अगर मेरे पास कुछ ऐसे हिन्दू युवकोकी एक टोली हो, जो खुद अपनेमे भरोसा रखते हो और इसलिए मुसलमानोमे भी जिनका भरोसा हो तो उनका यह दल कमजोर लोगोके लिए ढाल वन जायेगा। वे (हिन्दू युवक) यह सिखा देगे कि विना मारे किस तरह मरा जा सकता है। मेरे विचारसे दूसरा रास्ता है ही नही। जव हमारे पूर्वज लोगोपर सकट आ पडता था तव वे तपस्या—आत्म-शुद्धि करते थे। वे शरीरको असमर्थ समझकर दीनभावसे परमेश्वरसे प्रार्थना करते और तवतक प्रार्थना ही करते रहते जवतक वह उनकी पुकारपर दौडनेके लिए मजवूर नही हो जाता था। लेकिन इसपर मेरे हिन्दू मित्र कहेगे—हाँ, मगर ईश्वरने तो अवतारोको धनुष-वाण या चक्र सुदर्शन लेकर ही भेजा। मैं इसकी यथार्थतासे इनकार नही करता। हिन्दुओसे मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू होनेके नाते वे कारणकी अवहेलना करके फल प्राप्त नही कर सकते। जब हम काफी तपस्या कर चुकेगे तव कही सग्रामके योग्य वन सकते है। मैं पूछता हूँ कि क्या हम पर्याप्त मात्रामे शुद्ध वन गये है। व्यक्तिगत पवित्रताकी वात तो दूर रही, क्या अस्पृश्यता-सम्वन्धी अपने पापतक का प्रायश्चित्त हमने तत्पर भावसे किया है? क्या हमारे धर्माचार्य और धर्मगुरु ठीक वैसे ही है जैसा उन्हे होना चाहिए? जवतक हम मुसलमानोके छिद्र ढूँढनेमे ही अपनी सारी शक्ति लगाते रहेगे तवतक मानो हम अपने हाथ-पैर अधरमे ही मारते रहेगे। जो वात अग्रेजोके लिए हे, वही मुसलमानोके लिए भी। अगर हमारे दावे सच है तो अग्रेजोके हृदय जीतनेकी अपेक्षा मुसलमानोके हृदयको जीतना वहुत ही कम कठिन है। लेकिन हिन्दू मेरे कानमे आकर कहते है कि हमे अग्रेजोसे तो कुछ उम्मीद है पर मुसलमानोसे नही। मैं उनसे कहता हूँ कि अगर आपको मुसलमानोसे कुछ आशा नही है तो अग्रेजोसे आप जो आशा रखते है, वह निराशामे परिणत हुए विना नही रहेगी।

दूसरे सवालोका जवाव सक्षेपमे दिया जा सकता है। समाजके अगुआ लोगोको गुण्डोकी जरूरत महसूस हुई, इसलिए उनकी वन आई। अगुआ लोग एक-दूसरेपर

अविश्वास रखते थे। जहाँ कारण स्पष्ट हो वहाँ अविश्वास कदापि उत्पन्न नही होता। जब बहुतसे ऐसे कारण इकट्ठे हो जाते हैं जिनमे वास्तविकता कम और कल्पना ही अधिक होती है तब अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। हम अभी इस बातको प्रत्यक्ष नही कर पाये हैं कि हमारे स्वार्थ एक है। प्रत्येक पक्ष धुंधले तौरपर यह मानता हुआ नजर आता है कि वह दूसरेको किसी-न-किसी तरकीबसे हटा सकता है। पर मुझे यह कबूल करते हुए जरा भी संकोच नही होता, जैसा बाबू भगवानदासने कहा है कि हमारा यह न जानना भी कि हम किस किस्मका स्वराज्य चाहते हैं, इस पारस्परिक अविश्वाससे बहुत-कुछ ताल्लुक रखता है। पहले मेरा खयाल ऐसा नही था। लेकिन उन्होने मुझे यरवदा जेलमे सर जॉर्ज लॉयडके मेहमान होनेके पहले ही अपने मतका बहुत-कुछ कायल कर लिया था और अब तो मै पूरी तरह उसी मतका हो गया हूँ।

वक्तव्यमे मैने 'सहमतिके क्षेत्र' की बात कही है। उससे मेरा अभिप्राय दोनो सम्प्रदायोके तमाम व्यक्तियो और समुदायोके बीच सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक मामलो — जैसे धार्मिक बातोमे मतभेदके मुद्दोको उभारने — की अपेक्षा मुझे दोनो पक्षोमे समान रूपसे विद्यमान अच्छी बाते खोजनेमे लग जाना चाहिए। अपने धार्मिक विचारो-पर कायम रहते हुए मै जहाँ-जहाँ हो सकता है, सामाजिक बातोमे दोनोके बीचकी खाईको पाटनेका प्रयत्न करना पसन्द करूँगा। राजनैतिक क्षेत्रमे कार्यकी एकताके लिए अपने रास्तेसे कुछ हट जाना भी मुझे पसन्द होगा।

दोनोके झगडोका फैसला करनेके लिए मैने पंचके रूपमे हकीम साहबका नाम बेशक लिया और वह इसलिए कि उनके प्रति सब लोग आदरभाव रखते है। पर मै तो ऐसे मुसलमानोके हाथोमे भी कलम देते हुए न हिचकूँगा, जिनकी धर्मान्धता और हिन्दुओके प्रति बुरे खयालात पहलेसे सर्वविदित हो, क्योकि एक हिन्दू होनेके नाते मुझे जानना चाहिए कि अगर वह हर प्रान्तमे मुसलमानोको ज्यादा जगहे दे देगा तो भी मेरी उससे कुछ हानि न होगी। निर्वाचन-संस्थाओमे जगहोके दे देने या ले लेनेमे सिद्धान्तकी हानि नही होती। इसके अलावा तजुरबेने मुझे यह सिखाया है कि जब सारी जिम्मेदारी एक ही व्यक्तिके सिरपर रख दी जाती है तब वह अपनी आन-बानका खयाल रखकर काम करता है और अपने स्वाभिमानका या ईश्वरका यह डर उसे गम्भीरता प्रदान कर देता है।

अन्तमे, किसी घोषणापत्र या अन्य किसी ऐसी चीजसे तबतक काम बननेवाला नही है, जबतक हममे से कुछ लोग — फिर वे कितने ही कम हो — उसके अनुसार चलने न लग जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-६-१९२४

१४२. पत्र : वसुमती पण्डितको

[२० जून, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने अक्षरोको तो छापेके जैसे सुन्दर बना डालो। तुमने अभ्यास पुस्तिकाके बारेमे कुछ भी नही लिखा हे। रामदास और बा कल सूरतसे लोट आये। प्रागजीका मुकदमा मुल्तवी हो गया है। वहाँ निश्चित रहकर अपना स्वास्थ्य सुधारो। राधाकी गाडी जैसे-तैसे चल रही है, मणि तेजीसे तरक्की कर रही है। यहाँ पानी अभी नही बरसा है, बूंदाबाँदी हो जाया करती है।

बापूके आशीर्वाद

वसुमती बहन

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४७) से।

सौजन्य वसुमती पण्डित

१४३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

ज्येष्ठ बदी ५ [२१ जून, १९२४][2]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला हे।

कार्य सिध्ध हो या न हो तो भी हमारे अहिसक हि रहना चाहिये। यह सिद्धात-को प्राकृत रूपसे बतानेका है। ठीक कहना यह है कि अहिसाका फल शुभ ही है। ऐसा हमारा दृढ विश्वास है इसलीये फल आज मीलो वा वर्षोके वाद उससे हमे कुछ वास्ता नही हे। २०० वर्षके आगे जिनको जवरदस्तीसे इस्लाममे लाये[3] गये उससे इस्लामको लाभ हो ही नही सकता क्योकि इससे बलात्कारकी नीतिको स्थान मिला है। इसी तरह यदि किसीको बलात्कारसे या फरेबसे हिन्दु बनाया जाये तो उसमे हिंदी धर्मका नाशकी जड है। सामान्यत तात्कालिक फल देखकर हमे धोखा खाना है। वडी समाजमे दो सो वर्ष कोई चीज नहि है।

१ डाकखानेकी मुहरसे।

२ यह पत्र प्रेषीके ११ जून, १९२४ को लिखे पत्रके उत्तरमें लिखा गया था। १९२४ में ज्येष्ठ बदी ५, २१ जूनको पडी थी।

३ मूलमें यहाँ लागे है।

कानूनके जरीयेसे किसीकी बुरी आदत छुडाना इतने ही से पशुबल नही कहा जाय — कानूनसे शराबका धदा बध करना और इसलिये शराबियोका शराबका छोडना बलात्कार नहि है। यदि ऐसा कहा जाय कि शराब पीनेवालोको बेत लगाये जायेगे तो अवश्य पशुबल माना जाय। शराब बेचनेका इसका कर्तव्य नही है।

आपका,
मोहनदास

[पुनश्च]

य इ के बारेमे स्वामी आनन्द कहते है आपको बील भेजा गया है

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०११) से।
सौजन्य घनश्यामदास बिडला।

१४४. पत्र : मु० रा० जयकरको

[२१ जून, १९२४]

प्रिय श्री जयकर,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। मित्रगण चाहे तो आपको लिखे गये मेरे पत्रका उपयोग कर सकते है। मै चाहता हूँ कि इस सम्बन्धमे हम दोनोके बीच सम्पर्क बना रहे। उनका कार्य निष्कलक रहे, इस बारेमें मै केवल आपपर निर्भर हूँ। मै तो यह चाहता हूँ कि वे अपने चरित्रके बलपर ही धन एकत्र करे। कमी पडनेपर हम बादमें हाथ बँटा सकते है। आपको मेरे स्वास्थ्यके विषयमे चिन्ता है, इसके लिए आभारी हूँ। वर्तमान परिस्थितिमें जितना विश्राम सम्भव है उतना ले रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

१४५. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

ज्येष्ठ वदी ५ [२१ जून, १९२४][1]

अ० भा० काग्रेस कमेटीकी बैठकके अवसरपर आना चाहो तो आ सकते हो लेकिन इस बैठकमे भाग लेनेका विचार या हठ त्याग देना चाहिए। प्रवेशपत्र देनेका काम जहाँतक मुझे मालूम है मौलाना मुहम्मद अलीके हाथमे ही होगा। प्रवेशपत्र जितने कम दिये जाये उतना ही अच्छा होगा।

[गुजरातीसे]

वापुनी प्रसादी

१४६. पत्र : अब्बास तैयबजीको

२१ जून, १९२४

भाई साहव,

यह पत्र[2] पढकर वापस भेज दे। मेरा अनुमान सही निकला।

मोहनदास गाधीके
खुदा हाफिज

अब्बास तैयबजी
वडौदा शिविर

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० १०४६८) की माइक्रोफिल्मसे।

१ साधन-सूत्रके अनुसार।
२ उपलब्ध नहीं है।

१४७. टिप्पणियाँ

चरखेकी धुन

एक बूढ़े मित्र[१] अपने पत्रमें नौजवानोंकी त्रुटियाँ बताते-बताते आत्मनिरीक्षणमें लीन हो गये। वे लिखते हैं[२]

इन मित्रने चरखा अभी-अभी चलाना शुरू किया है। ऐसी हालतमें यह भी कुछ कम बात नहीं है कि वे सूत कातते समय दुनियाको भूल जाते हैं। मुझे यकीन है कि जब सूतका तार आसानीसे और अच्छा निकलने लगेगा तब उन्हें अपने हृदयमें भगवानकी झलक दिखेगी और भगवान सूतके तारपर नाचते दिखाई देंगे। इस जगतमें ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसमें भगवान न हो? हम देखते हुए भी अन्धे हैं — इसीसे वे हमें नहीं दिखाई देते। चरखेमें भारतका संकट दूर होगा, भूखोंको रोटी मिलेगी, स्त्रियोंकी लाज बचेगी, काहिलोंकी सुस्ती मिटेगी, स्वराज्यवादीको स्वराज्य मिलेगा और संयम पालन करनेवालोंको सहायता मिलेगी। जब यह पवित्र भाव चरखेके साथ जुड़ जायेगा तब जरूर सूतपर भगवान नाचने लगेंगे और मेरे बुजुर्ग मित्रको चरखा चलाते हुए भगवानके भी दर्शन होंगे। जैसी जिसकी भावना होती है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

सोमाली देशमें चरखा

सोमाली देशके एक खोजा व्यापारी श्री मुहम्मद हासम चमन लिखते हैं कि सोमाली देशमें बहुत-सी औरतें बुनाईका काम करती हैं। अबतक वे मिलके सूतका कपड़ा बुनती थीं, किन्तु अब वहाँ चरखा भी चलने लगा है। अभी उसका प्रचार तो बहुत नहीं हुआ है, किन्तु काफी तेजीसे होता जा रहा है। सोमाली अरबोंपर हिन्दुस्तानके आन्दोलनका काफी असर हुआ है। भाई चमनका विश्वास है कि सोमाली देशमें चरखा बड़ी तेजीसे फैलेगा। उन्होंने यह भी लिखा है कि वहाँ पाठशालाएँ मुफ्त चलाई जाती हैं, ऐसा कहा जा सकता है। हर बच्चेको प्राथमिक शिक्षा केवल धार्मिक दी जाती है। तमाम बालकोंके लिए 'कुरान शरीफ' पढ़ना अनिवार्य है। यहाँ मकान बाँसके बने होते हैं और उनका खर्च नहींके बराबर होता है। हर बालक रोज एक मुट्ठी ज्वार देकर पाठशाला जाता है और वही मास्टरका वेतन है। अन्तमें भाई चमन यह भी बताते हैं कि यद्यपि सोमाली देशमें सिर्फ अरबोंकी आबादी है और हिन्दू व्यापारी इने-गिने हैं, फिर भी वहाँ हिन्दू व्यापारी आरामसे रहते हैं और अरब लोग उनके साथ मित्रभावसे बर्ताव करते हैं। हमारे देशमें हिन्दू और मुसलमान क्यों लड़ते हैं?

१. [illegible], देखिए "[illegible]", १८-३-१९२५।

२. [illegible]

विवाहमें खादी

एक भाई वढवानसे लिखते है, झालावाड वीशा श्रीमाली स्थानकवासी शाखासे तीन सौ परिवार किसी कारणसे अलग हो गये है। उन्होंने कई बातोमे होनेवाले अपने खर्च भी घटा लिये है। उनका एक निश्चय यह भी है कि विवाहमे कन्या खादीके वस्त्र और चन्दनका चूडा पहने। यदि दूसरे लोग भी इस प्रकारका नियम बना ले तो वे कई दिक्कतोसे बच जाये और गरीबोको बहुत मदद मिले। किन्तु इन भाईने साथ ही यह भी लिखा है कि इन परिवारोमे अन्य अवसरोपर अभी तक विलायती वस्त्र पहननेका ही चलन है और यह चलन सम्भवत जारी भी रहे। यदि तीन सौ परिवारोका यह छोटा-सा समुदाय चाहे तो सभी अवसरोपर खादीके ही प्रयोगका प्रण ले सकता है। वढवानमे तैयार की हुई खादी भण्डारमे भरी पडी है। खादीके सम्बन्धमे इतना आन्दोलन किये जानेपर भी थोडी ही खादी तैयार हुई। यदि वह भी नही खपती तो इससे यही प्रकट होता है कि अभी खादी सार्वत्रिक नही हुई है, इतना ही नही, वह थोडे-से लोगोमे भी जड नही जमा पाई है। कितने दुखकी बात है कि काठियावाडकी छब्बीस लाखकी आबादी हर वर्ष दस लाखकी खादी भी नही खरीद सकती।

एक पाठशालामें

एक शिक्षिका लिखती है [1]

एक बहनकी भावनासे ही कितना कार्य हो सकता है, यह इस बातका एक अच्छा उदाहरण है। यदि किसान माँ-बापोकी सभी पुत्रियाँ भी इस प्रकार अपने पीहरसे रुई मँगायें, बालकोसे पिंजवायें, उसका सूत कतवायें, और खादी बुनवायें और उसके कपडे सिलवायें तो कितना लाभ हो, इसका हिसाब लोग स्वयं लगा कर देख सकते है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन २२-६-१९२४

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। उसमें लिखा था कि मैं अपने पिताके खेतकी उगाई हुई कपाससे पाठशालामें काते हुए सूतका बना एक रूमाल गांधीजीके लिए भेज रही हूँ।

१४८. परदा और प्रतिज्ञा

मैने उपर्युक्त शीर्षक इस खयालसे नही रखा कि दोनो बातोमे किसी प्रकारका कुछ सम्बन्ध है। फिर भी मैं काठियावाड राजपूत-परिषद्के सिलसिलेमे इन्ही दोनोके विषयमे कुछ लिखना चाहता हूँ और इसीलिए मैंने इन दोनो शब्दोको साथ-साथ ले लिया है। परिषद्के एक दर्शक लिखते है कि परिषद्मे बेहद जोश था। लगभग पन्द्रह हजार राजपूत इकट्ठा हुए होगे। स्त्रियोकी संख्या भी अनुमानसे बहुत ज्यादा थी। वहाँ कमसे-कम एक हजार स्त्रियाँ आई होगी। स्त्रियोके लिए यह संख्या सचमुच बहुत भारी कही जा सकती हे। परन्तु परदेका इन्तजाम इतना सख्त किया गया था कि अनजान लोगोको तो मालूम भी नही हो सकता था कि परिषद्के पण्डालमे स्त्रियाँ भी बैठी हुई है। स्त्रियाँ ठहरनेके मुकामोसे मण्डपतक इस खूबीके साथ लाई जाती थी कि किसीको मालूम तक नही हो पाता था कि स्त्रियाँ जा रही है।

परिषद्के कार्यकर्त्ता ऐसे बढिया इन्तजामके लिए धन्यवादके पात्र अवश्य है, परन्तु परदेके इस अस्तित्वपर तो खेद ही प्रकट करना पड सकता हे। कह सकते है कि अब परदेकी आवश्यकताका जमाना नही रहा। रामराज्यमे परदा था ऐसा प्रतीत नही होता है? हाँ, अभी रामराज्य आया नही हे यह सच है, परन्तु अगर हम उसे लाना चाहते हो तो हमे आजसे ही वैसा आचरण प्रारम्भ कर देना चाहिए। हमे यह दिखा देना है कि हम परदेके न रहनेपर भी मर्यादाकी रक्षा कर सकते है। जिन लोगोमे परदेका रिवाज नही है, कोई यह नही कह सकता कि उनमें मर्यादा-का खयाल कम है। जब हम औरतोको अपनी मिल्कियत समझते थे और उनका हरण किया जा सकता था, तब परदेकी जरूरत भले ही रही हो। यदि पुरुषोंका हरण होने लगे तो उन्हे भी परदेमें रहना पडे। जहाँ ऐसी हालत है कि मनुष्य देखते ही बेगारमे पकड लिया जाता है वहा आज भी पुरुष परदेमे अर्थात् छिपकर रहते है। परन्तु पुरुषकी कुदृष्टिसे स्त्रियोको बचानेका इलाज परदा नही, बल्कि पुरुषकी पवित्रता है।

पुरुषको पवित्र बनानेमे स्त्री बहुत सहायक हो सकती है। परदेमे रहनेवाली डरी हुई स्त्री पुरुषको भला कैसे पवित्र बना सकती है? यदि उसे छूनेसे ही पुरुषसे उद्धार करनेकी आशा रखी जाये तो वह पुरुषको कैसे सुधार सकती है? फिर स्त्रियोको परदेमें रखना मानो उनमे एक बुराई पैदा करना है। मेरा मत है कि परदा सदाचारका पोषक नही, बल्कि बाधक है। सदाचारके पोषणके लिए सदाचारकी शिक्षा, सदाचारमें वातावरण और स्त्रियोंके नीतियुक्त आचरणकी आवश्यकता है। मैने परदेके सम्बन्धमें जो लिखा है सो परिषद्का दोष दिखानेके लिए नहीं। वहाँ तो सहसा परदा उठा देना कठिन काम था, परन्तु भविष्यके लिए कुछ राजपूतों-का इसके लिए तैयार हो ही जाना चाहिए।

अब रही प्रतिज्ञा। मैने सुना है कि लोगोने प्रतिज्ञा भी अच्छी सख्यामे ली है। यह भी सुना है कि वह सच्चे दिलसे ली गई है। उसे लेते समय विधिका पालन समुचित रूपसे किया गया था। इसलिए हमे आशा रखनी चाहिए कि उसका पालन पूर्णरूपेण किया जायेगा, परन्तु मेरा अनुभव तो यह है कि बडे-बडे सम्मेलनोमे ली गई प्रतिज्ञाएँ वहीकी-वही रह जाती है। इसका मतलब यह नही है कि प्रतिज्ञाएँ ली ही न जाये। मेरा मत और अनुभव तो यही है कि प्रतिज्ञाके बिना मनुष्य आगे बढ ही नही सकता। प्रतिज्ञाका अर्थ है मरते दमतक किसी बातपर दृढ रहनेका निश्चय। ऐसे निश्चयके बिना कोई काम नही हो सकता। 'यथाशक्ति' का कुछ अर्थ नही। प्रतिज्ञासे मनुष्यको अक्षय शक्ति मिलती है। 'यथाशक्ति' करनेकी इच्छा रखनेवाला कभी-न-कभी तो निर्बलताका परिचय देता ही है। उस समय वह निस्सहाय हो जाता है। परन्तु ऐसे समयमे प्रतिज्ञा मनुष्यको बचा लेती है। मनुष्य ईश्वरको साक्षी करके अनेक व्रत धारण करता है। जब उसकी शक्ति चली जाती है, तब अनाथोका वह नाथ उसके पास आकर खडा हो जाता है।

हमने बदकिस्मतीसे प्रतिज्ञाका मान घटा रखा है। लोग प्रतिज्ञा लेते समय विचार नही करते, इसीसे वे उसका [समुचित] पालन नही कर पाते। हम प्रतिज्ञाका पालन न करनेकी टेव पड जानेसे लगभग यह मानने लगे है कि उसका पालन करनेकी जरूरत ही नही है। हम आशा करते है कि जिन राजपूत भाई-बहनोने प्रतिज्ञाएँ ली है, वे उनका पालन करेगे।

परिषद्की सादगी काग्रेसके अनुकरणके योग्य थी। इस बडे जनसमूहको सिर्फ दाल-रोटीके सिवा और कोई भोजन नही दिया गया। बडे समुदायोमे इससे अधिककी सम्भावना भी नही है, और वह शोभनीय भी नही है। सिख लोग भी अपने सघोमें इसी तरहकी सादगी रखते है। सादगीका सबक अभी काग्रेसको सीखना है। इससे खर्च और मेहनत दोनो बच जाते है, शरीरमे स्फूर्ति बनी रहती है और स्वास्थ्य भी नही बिगडने पाता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-६-१९२४

१४९. कपड़ा बुनवानेवालोंसे

जो सूत कातते है, उन्हे कपडा बुनवानेकी सुविधा नही मिलती, ऐसी शिकायते अकसर सुननेमे आती है। बीजापुरमे (जहाँ कलोल होकर जाते है) श्री गगास्वरूप गगावहन मजमूदार एक कार्यालय चलाती है। वहाँ निम्न दरोपर खादी बुनाईकी व्यवस्था है

पना इचोमे	लम्बाई	मोटा सूत दर	महीन सूत दर	विशेष लहरदार बुनावट, दर
२४	प्रति १५ गज	२.४ आना	२ ८ आ०	२ १२ आ०
२८	” ” ”	२ १२ आ०	३ ० ०	३ ८ आ०
४२	” ८ ”	२ १२ आ०	३ ० ०	
४८	” ” ”	३ ० ०	३ ४ आ०	

बुनवानेके लिए सूत उपर्युक्त पतेपर भेजा जा सकता है। इस सम्बन्धमे अधिक जानकारी हासिल करनेके लिए इसी पतेपर पत्र लिखकर पूछ सकते है। इस उत्पादन केन्द्रने चुडगर पोल, अहमदाबादमे रीचीं रोडपर एक शुद्ध खादी भण्डार खोला है। जिसे जरूरत हो वह वहाँसे रुपया सेरकी दरसे पूनियाँ भी खरीद सकता है।

कपडा बुनवानेवालोको याद रखना चाहिए कि अगर वे चाहे जैसा मोटा-झोटा और बिना नाप-जोखका सूत भेजेंगे तो कदाचित् उनकी इच्छा पूरी नही होगी। कमसे-कम एक तानेके लायक सूत तो भेजना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूत अच्छा और बटदार न होगा तो माल ठीक नही उतरेगा। पूनियाँ बेचनेकी व्यवस्था है, यह ठीक है, लेकिन यह बहुत आवश्यक है कि सब अपनी-अपनी जरूरतकी रुई पीज ले, पीजनेकी क्रिया बहुत आसान है। रोज थोड़ा-सा कातनेवाले मनुष्यके लिए अपनी जरूरत-भरकी रुई धुन लेना बहुत ही सुगम है। जितनी रुई आध घटेमे धुनी जा सकती है, उससे अच्छा सूत कातनेमे कमसे-कम चार घटे लग जाते है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, [illegible]

१५०. बुनाईकी कमाई

मैंने बुनाईके कामसे होनेवाली आयके सम्बन्धमें अपने-अपने अनुभव भेजनेकी जो माँग की थी मुझे उसके फलस्वरूप कुछ पत्र मिले हैं। मैं उनमें से कुछ पठनीय पत्र इन आगे देता हूँ। खम्भातसे भावसार चन्दूलाल छगनलाल लिखते हैं।[1]

यह खेदकी बात है कि भाई चन्दूलाल ताने और बानेमें विदेशी सूतका उपयोग करते हैं। हम उम्मीद करते हैं कि वे कष्ट करके भी हाथके कते सूतका उपयोग करने लगेंगे। लेकिन उक्त तथ्यसे देखा जा सकता है कि यदि हाथका सूत मिले और खादीकी यथोचित खपत हो तो कोई भी बुनकर-कुटुम्ब अवश्य ही पर्याप्त कमाई कर सकेगा। भाई चन्दूलाल स्वयं और खम्भातके अन्य भावसार लोग खादी ही पहनते हैं। इस बातसे अन्य बुनकरोंको भी शिक्षा लेनी चाहिए। विदेशी कपडेका व्यापार करनेवाले लोग भी स्वयं खादी जरूर पहन सकते हैं।

उमराव विजयशंकर काशीरामने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है[2]

यह अनुभव केवल हाथ कते सूतका व्यवहार करनेवाले और नौसिखिया बुनकरका है। इसलिए यह हमारे लिए अधिक उपयोगी है। यह बात स्पष्ट है यदि हाथका कता सूत एकसार और बटदार हो तथा बुनकर अधिक अनुभवी हो तो वह अपनी आयमें वृद्धि कर सकता है।

तीसरा अनुभव भाई जीवनलाल चम्पानेरियाने भेजा है। वह निम्नलिखित है।[3]

जैसा जीवनलालने लिखा है, मैंने भी बुनकरकी नहीं वरन् बुनकर-परिवारकी आय दोसे-तीन रुपयेतक बताई है।

१ यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेसे मेरी नौकरी चली गई थी, इसलिए मैंने कुछ ही महीनोंमें बुनाईका अपना पुराना पारिवारिक धंधा सीख लिया और इससे मैं ८, ९ घंटे काम करके ५० रुपया मासिक कमा लेता हूँ। किन्तु उन्होंने हाथ कते सूतके अभावमें विदेशी सूतका उपयोग करनेकी बात लिखी थी।

२. यह भी यहाँ नहीं दिया गया है। लेखकने इसमें बताया था कि यदि कोई मनुष्य १० से १२ घंटे तक प्रतिदिन काम करे तो हाथ कते सूतसे ६ से ७ गज तक खादी बुनी जा सकती है। अन्य प्रक्रियाओंको पूरा करता हुआ भी वह चार दिनमें १६ गज खादी बुन सकता है और १५ रुपया प्रति माहकी आय कर सकता है। यह आय एक ग्रामीण अध्यापक या मुहर्रिरकी आयसे अधिक है। उनकी आय तो ८ से १० रुपये प्रतिमास तक ही होती है।

३ यह पत्र भी यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था, मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि गांधीजीने, एक बुनकर २ से ३ रुपये तक रोजाना कमा सकता है, यह हिसाब कैसे लगाया। बोरसदकी भावसार जातिका एक परिवार, जिसमें पति, पत्नी और एक लड़का या लड़की हो, १.३७ रुपये रोजसे अधिक नहीं कमाता और चूँकि पूरे परिवारको अपनी आजीविका चलानेके लिए काममें जुटा रहना पड़ता है, इसलिए बाकायदा पढ़ना-लिखना तो दूर, वे सभ्यता और संस्कृतिकी मोटी-मोटी बातें भी नहीं जान पाते। परिणामस्वरूप उनके जीवन शुष्क और नीरस हो गये हैं।

उक्त तीनों उदाहरणोंसे हम देखते हैं कि बुनकरका माल-भोक्ताके पास सीधा नहीं जाता अपितु व्यापारीकी मार्फत जाता है। सामान्यतः तो ऐसा ही होता है। यदि बुनकर व्यापारीका काम भी करे और कारीगर अपना अंकुश रखे तो स्पष्ट है कि उनकी कमाईमें इजाफा होगा। यदि सभी जगह आन्ध्र-जैसा सूत काता जाये तो उससे बिक्रीके योग्य साड़ियाँ तैयार की जा सकती हैं और उनको बेचकर अवश्य ही अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है।

साधारण बुनकरको नैतिक उन्नतिका अवकाश नहीं मिलता ऐसी शिकायत है और वह ठीक भी है। जो कारीगर परिवार युगोंसे बुनाईका धन्धा करते आते हैं उनमें अक्षरज्ञान और नीतिज्ञानका अभाव रहता है। यह स्थिति जाति-प्रथाके कठोर पालनका परिणाम है। शिक्षित लोगोंने आजकल मानो अपना एक अलग वर्ग ही बना लिया है। वे अन्य लोगोंकी ओर अर्थात् कारीगरों और किसानोंकी ओर ध्यान ही नहीं देते हैं। हम सभी शिक्षित लोग कारीगरों और ऐसे ही अन्य वर्गोंकी पीठपर सवार हैं। मेरा तो दृढ़ मत है कि यदि शिक्षित वर्ग अशिक्षितोंकी पीठसे नीचे उतर जाये तो अशिक्षितोंके सामने जो समस्याएँ आती रहती हैं न आयें। हमारी आजकी प्रवृत्तिका उद्देश्य यही है। शिक्षित वर्गके अनेक लोग श्रमका महत्व समझने लगे हैं और अशिक्षित वर्गके शोषणके पापको भी देखने लगे हैं। जबतक और कुछ नहीं होता, समझदार बुनकर अधिक नियमित होकर और अपनी कलाको अधिक व्यवस्थित करके थोड़ा अवकाश निकाल सकता है। ज्यों-ज्यों खादीकी प्रवृत्ति बढ़ती जायेगी त्यों-त्यों बुनाईका काम और सम्बन्धित धन्धे सुव्यवस्थित और सुदृढ़ होते जायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-६-१९२४

१५१. तीन प्रश्न

एक सज्जन लिखते हैं :—

(१) क्या कताई-बुनाई करनेसे मनुष्य शूद्र नहीं बनता है?

(२) जो मनुष्य अपने बुद्धिबलसे ज्यादा कमाई करता है उसका भी कताई-बुनाई करके आजीविका पैदा करना क्या अर्थशास्त्रके प्रतिकूल नहीं है?

(३) क्या सबका कताई-बुनाई करना श्रम-विभाजनके सिद्धान्तको नष्ट नहीं करता है?

मेरे ख्यालसे शूद्र वह है जो नौकरी या दूसरोंकी मजदूरी करके आजीविका प्राप्त करता है। इस हिसाबसे जितने आदमी नौकरी करते हैं सब शूद्र होते हैं। जो मनुष्य स्वतन्त्र धन्धा करता है उसको शूद्र कैसे माना जाये? इसमें मैं वर्णाश्रमकी कुछ भी हानि नहीं देखता हूँ।

अव दूसरा प्रश्न। मेरी मति मुझे यह वताती है कि ईश्वरने हमे वुद्धि आत्म-दर्शनके लिए दी हे। आजीविका कृषि इत्यादिमे प्राप्त करनी चाहिए। जगत्मे जो अनीति होती हे उसका वडा सवव वुद्धिका दुरुपयोग हे। वुद्धिके ही दुरुपयोगसे जगतमें वडी असमानता फैल गई है। करोडो भीख माँगते है और सौ-दोसौ करोडपति वनते है। सच्चा अर्थशास्त्र वह है जिससे प्रत्येक स्त्री-पुरुषको शारीरिक उद्यमसे आजीविका मिले। प्राचीनकालमे हमारे ऋषि लोग कृषि करते थे, गोशाला रखते थे। विद्यार्थी जगलोमे जाकर लकडियाँ लाते थे, इत्यादि।

अव रहा तीसरा प्रश्न। श्रम विभाजनकी कुछ भी हानि नही होती है। क्योकि वढई, सुनार इत्यादिको वुनाई करनेकी सलाह नही दी जाती। जो नौकरी करते है, वकालत करते है, जिनके पास कुछ भी धन्धा नही है, उनको वुनाईसे आजीविका पैदा करनेकी सलाह अवश्य दी जाती है। कताईको तो मै आधुनिक कालमे और इस क्षेत्रमे यज्ञ समझता हूँ। वच्चे, वूढे, स्त्री, पुरुष, धनिक, गरीब सवके लिए कताई आवश्यक यज्ञ है। भले लोग भूखो मरते है। वे कताई करके पेट भरे। परन्तु दूसरे सव उनके निमित्त प्रतिदिन ईश्वरके नामका स्मरण करते हुए काते।

हिन्दी नवजीवन, २२-६-१९२४

१५२. पत्र : गंगाबहन वैद्यको[1]

ज्येष्ठ वदी ६ [२२ जून, १९२४][2]

पूज्य गगावहन,

आपका पत्र मिला। आप एक महीनेमे यहाँ आ सकती है, मुझे यह जानकर हर्ष हुआ। जव हमारा मन दु:खी हो तव निश्चय ही दूसरोके दोष देखनेकी अपेक्षा अपना ही दोष देखना अच्छा होता हे।

आप अपनी पुत्रवधूको कदापि नही छोड सकती। आप अपने पुत्रसे सलाह करके काफी लम्वे अर्सेतक अलग रहे तो मै समझता हूँ पुत्रवधू शान्त हो जायेगी। यदि इतने थोडेसे समयतक भी अलग रहना सम्भव न हो तो आप दु:खको अनिवार्य मानकर सह ले। कोई माता अपने सयाने पुत्रसे पृथक् रहे, इसमे आश्चर्यकी कोई वात नही हे। पुत्र आज्ञाकारी है, इसलिए मेरे विचारसे आपको उससे अलग रहनेमे भी कोई कठिनाई नही होगी। वह आपको जरूरतके मुआफिक पैसा देता रहे। यह जरूरी नही है कि वहूको यह वात वताई जाये। यदि पृथक् होनेपर भी सम्वन्ध मधुर

१ आश्रमकी प्रमुख महिलाओमें से एक। सन् १९२५ में इन्होंने आश्रममें महिलाओंके लिए स्वतन्त्र हिन्दी वर्गकी माँग की थी और यह खोला भी गया था। इस वर्गको स्वय गाधीजी हिन्दी पढाने लगे थे।

२ गगावहन अपनी लडकीके दो वच्चोके साथ आश्रममें सन् १९२४ में पहुँची थीं। ज्येष्ठ वदी ६, २२ जूनको थी।

रहे तो किसी दिन मिलन अवश्य होगा। इसीका नाम कौटुम्बिक असहयोग है। जो असहयोग सहयोगकी खातिर किया जाता है वह धर्म है।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१२) से।
सौजन्य गंगाबहन वैद्य

१५३. पत्र : वसुमती पण्डितको

ज्येष्ठ वदी ७, [२३ जून, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा सुन्दर अक्षरोंमें लिखा पत्र मिला। अब तो लगता है कि तुमको १० में से ५ नम्बर दिये जा सकते हैं। कापी भेज दूंगा।

यदि त्रुटियाँ अधिक हों तो उनमें से मुख्य-मुख्य चुन लो। पूरी शक्तिसे उन्हींको सुधारो। बाकी सुधार अपने-आप हो जायेंगे।

तुम्हें मानसिक चिन्ता करनेकी निश्चय ही मनाही है। मन ही हमारा मित्र है और मन ही शत्रु। इसपर अंकुश रखना तो हमारा ही काम है। इसके लिए किसी डाक्टरी दवाकी जरूरत नहीं। तुम अपने मानसिक दुःखमें मुझे पूरा साझेदार बनाओ। जिस दिन तुम पहले-पहल मुझे मिली थीं मेरी दृष्टि उसी दिनसे तुमपर गड़ी हुई है। तभीसे मैंने तुम्हें अपनी सुशील बेटीके रूपमें माना है। मैं जानता हूँ कि मैं तुम्हारे दुःखमें जितना भाग लेना चाहता था उतना नहीं ले सका हूँ क्योंकि मैं तुम्हें उतना समय नहीं दे सका। यह मेरे ही अपंगपनका द्योतक है। लेकिन तुम अपने मानसिक दुःखको अवश्य ही भुला दो। यही वास्तविक और सच कहें तो एकमात्र सुधार है।

रामदासको तुम्हारा पत्र दे दूंगा। अगर वह आना चाहेगा तो उसे रोकूँगा नहीं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च]

मैंने [पिछले पत्रमें] ज्येष्ठ बदी अमावस्या लिखा हो सो तो याद नहीं आ रहा है। यदि लिखा हो तो गलतीसे लिखा समझना।

प्रतिनिधिने मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५४७) से।
सौजन्य वसुमती पण्डित

१. वसुमती बहनको गांधीजीके १३, १६ और २० जून, १९२४ को लिखे पत्रोंसे प्रतीत होता है कि यह पत्र भी उन्होंने उसी वर्षमें लिखा होगा। इस वर्ष ज्येष्ठ बदी सप्तमी, २३ जूनको पड़ी थी।

१५४. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिसे[1]

[अहमदाबाद,
२४ जून, १९२४]

आपने जो कुछ देखा है, उसके बावजूद क्या आपको यह विश्वास है कि आप आपसी कलहको रोक सकेंगे? श्री गांधीने उत्तर दिया

अवश्यमेव। मुझे तो ऐसी कोई बात नजर नही आती जिससे मै आन्तरिक झगड़ोंको न होने देनेके बारेमे निराश हो जाऊँ। हो सकता है आपसी कलहका लोग अलग-अलग अर्थ लगाये किन्तु मुझे यकीन है कि कोई भद्दे झगडे सामने नही आयेंगे। मै अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको चाहे वे स्वराज्यवादी हो या अपरिवर्तनवादी, इतना देशभक्तिपूर्ण अवश्य मानता हूँ कि वे किसी भी अन्य प्रश्नकी अपेक्षा देशके कल्याणका विचार पहले करेंगे। यह सर्वथा सत्य है कि स्वराज्यवादी अपने विचारोके बारेमे उतने ही उत्कट हैं जितना मै स्वय अपने विचारोंके बारेमे हूँ। मै उन्हे भी देशप्रेमके लिए उतना ही श्रेय देता हूँ जितना अपने-आपको देता हूँ। इस स्थितिमें मुझे ऐसा कोई भी कारण नजर नही आता जो दोनो पक्षोंके लिए एक समझौतेपर पहुँचना और अपने-अपने विचारके अनुसार कार्य करना असम्भव कर दे।

श्री गांधीसे दूसरा प्रश्न यह पूछा गया "क्या आप ऐसा नहीं मानते कि नवयुवक कार्यकर्ताओंके लिए चरखा चलाना बड़ा ही नीरस कार्य है?" उत्तरमें उन्होंने कहा :

यह केवल उन्ही लोगोंको बहुत नीरस लग सकता है जिन्होने उसे चलाया नही है और यह सोचनेका कष्ट नही किया कि वह आर्थिक उन्नति तथा एकताकी दृष्टिसे कितना उपयोगी है। जिन्होंने पश्चिमी परिस्थितियाके अनुसार स्थिर किये गये पाश्चात्य लेखकोंके अर्थशास्त्रके सिद्धान्तोंके आधारपर अपने विचार बनाये हैं उनका ध्यान भारतकी विशेष परिस्थितियोंकी ओर नही गया है। मै बार-बार कह चुका हूँ कि भारतकी समस्या पूर्ण रूपसे उसकी अपनी विशिष्ट समस्या है। मैंने जिन बातोंकी वकालत की है लोग उनके बारेमें चाहे कुछ भी निर्णय दे, किन्तु इतिहास चरखेके सम्बन्धमें एक ही निर्णय देगा और वह यही है कि चरखा ही एकमात्र ऐसा साधन था जो भारतको अपने पैरोंपर खडा कर सकता था। मै जानता हूँ कि इसमे कठिनाइयाँ बहुत बडी-बडी है, किन्तु वे दुस्तर नही है और वे निश्चित रूपसे एवरेस्टकी चोटीपर पहुँचने जैसी कठिन भी नही है, और यदि किसी दिन कुछ बहादुर अग्रेज इस साहसिक कार्यमे सफल हो गये तो इससे ससारको क्या लाभ होगा यह विशेषज्ञ ही जाने, किन्तु इतना तो एक साधारण व्यक्ति भी बता सकता है कि चरखेकी

१ गांधीजीसे यह भेंट साबरमती आश्रममें दोपहर बाद की थी।

सफलताका क्या अर्थ निकलेगा। मुझे विश्वास है कि ज्यो ही काग्रेसके कार्यकर्त्ता इस साधारण-से आविष्कारकी सम्भावनाओको महसूस करने लगेगे त्यो ही चरखा बहुत ही थोडे समयमे भारतीय घरोमें स्थान प्राप्त कर लेगा और वह गाँवके सादे-से चूल्हेके बाद हमारे समाजकी दूसरी महत्त्वपूर्ण वस्तु बन जायेगा।

[अग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-६-१९२४

१५५. खुला पत्र: अ० भा० कां० कमेटीके सदस्योके नाम

[२६ जून, १९२४ से पूर्व]

प्रिय मित्रो,

काग्रेसको राष्ट्रकी सबसे बडी प्रातिनिधिक सस्था मानना ठीक ही है। यह बात अलग है कि वह देशकी उन्नति कर सकती है या नही। मेरी रायमे काग्रेसका विधान प्राय सर्वागपूर्ण है और उसमे राष्ट्रके पूरे-पूरे प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था है। पर चूँकि खुद हममे ही खामियाँ है, हमने उसके अमलमे बडी लापरवाही दिखाई है। देशके कितने ही हिस्सोमे हमारे मतदाताओकी सख्या लगभग शून्यपर पहुँच गई है। पर फिर भी जो सस्था ४० सालसे चल रही है और जिसने अबतक कितने ही तूफानोको झेल लिया है, वह अवश्य ही देशमे सबसे अधिक शक्तिशालिनी बनी रहेगी। हम अपनेको उसके चुने हुए प्रतिनिधि मानते है।

काग्रेसने १९२० मे एक प्रस्ताव[1] पास किया। यह एक वर्षमे स्वराज्य प्राप्त करनेकी गरजसे रचा गया था। उक्त सालके खत्म होनेतक हम स्वराज्यसे थोडी ही दूर रह गये थे। पर चूँकि हम उस समय उसे न प्राप्त कर सके, इसलिए अब हमे यह नही मान बैठना चाहिए कि वह अनिश्चित कालके लिए मुल्तवी हो गया है। बल्कि इसके विपरीत हमे पिछले जैसा आशावादी बना रहना चाहिए। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि हमारे आसपासके निरुत्साहपूर्ण वायुमण्डलसे हमे जितनी अवधिमे स्वराज्य प्राप्त करनेकी उम्मीद हो सकती है, उससे भी पहले स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए कृतसकल्प हो जाना चाहिए।

इसी भावनासे प्रेरित होकर मैने आपके विचारार्थ इन प्रस्तावोकी रूपरेखा तैयार की है। कोई एक सप्ताहसे वे देशके सामने पेश है। उनपर जो टीका-टिप्पणी हुई है उसमे से थोडी-बहुत मै पढ चुका हूँ। मै मानता हूँ कि मुझे अपने निश्चयोका दुराग्रह नही है। पर इन टीका-टिप्पणियोसे मेरा मत परिवर्तित हो नही पाया है। मेरे कोई खेत-खलिहान नही है, अगर चिन्ता कुछ है तो उस उपायको खोज निकालनेकी हैं

१ देखिए खण्ड १९, परिशिष्ट १।

जिसके द्वारा हमारे स्वराज्य-प्राप्तिके रास्तेके तमाम विघ्नोकी जडपर कुठाराघात किया जा सके।

खादीपर मेरी श्रद्धा है। चरखेमे मेरा विश्वास है। इसके दो स्वरूप है—एक रुद्र दूसरा माँगलिक।

हमारे स्वतन्त्र राष्ट्रीय अस्तित्वके लिए जिस एकमात्र बहिष्कारकी आवश्यकता है वह है विदेशी कपडेका वहिष्कार। यह बहिष्कार खादीके रुद्र रूपके द्वारा सम्भव होगा। खादीका यह रुद्र रूप ही हमारी आत्माको हीन वनानेवाले ब्रिटिश स्वार्थका नाश कर सकता है। जब वह स्वार्थ नष्ट हो जायेगा केवल तभी हम इस लायक होगे कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञोके साथ बराबरीसे बात कर सके। आज तो वे अपने स्वार्थमे ऐसे अन्धे बने हुए है जैसा कि इस स्थितिमे कोई भी और हो सकता है।

मॉगलिक रूपमे वह ग्रामवासियोको एक नया जीवन और नई आशा प्रदान करता है। वह लाखो भूखे-पेट लोगोको अन्न दे सकता है। खादीके द्वारा हम गॉववालोके सम्पर्कमें आयेगे और हमे उनके सुख-दु ख अपने सुख-दु ख लगेगे। लाखो लोगोके लिए यदि कोई सर्वोत्तम शिक्षा हो सकती है तो वह यही है। यह जीवनदायिनी है। अतएव मुझे इस वातमे जरा भी हिचकिचाहट न होगी कि स्वराज्य प्राप्त होनेतक मै काग्रेसको खादीका उत्पादन और खादीका ही प्रचार करनेवाली सस्थाके रूपमे वदल दूँ—ठीक उसी तरह जिस तरह मै उसे, अगर शस्त्र-सचालनका कायल होता और उसके द्वारा इग्लैडसे युद्ध करनेके लिए तैयार होता तो केवल शस्त्रास्त्रोकी शिक्षा देनेवाली सस्था बना डालता। काग्रेस उसी अवस्थामे सच्ची राष्ट्रीय सस्था हो सकती है जव वह अपनी सारी शक्ति सिर्फ उसी काममे लगाये जिससे देशको जल्दीसे-जल्दी स्वराज्यके समीप लाया जा सकता है।

चूँकि मै इस वातका कायल हूँ कि खादीमे हमे स्वराज्य दिला सकनेकी शक्ति है। इसीलिए मैंने खादीको अपने कार्यक्रममे सबसे प्रधान स्थान दिया है। अगर मेरी तरह आपका विश्वास उसपर न हो तो आप निस्सकोच उसे एकबारगी रद कर दीजिए। पर अगर आप भी उसके कायल हो तो आप भी मेरे द्वारा प्रस्तुत वातोको ऐसा माने कि कमसे-कम इतना तो किया ही जाना चाहिए। मै आपको यकीन दिलाता हूँ कि अगर मुझे ऐसी आशका न होती कि आपपर अनुचित बोझ पड जायेगा तो मै आपसे रोजाना ४ घण्टे चरखा चलानेकी प्रार्थना करता—वजाय आध घटेके।

इस सिलसिलेमे मुझे स्वराज्यवादियोके वारेमे अपना अविश्वास कवूल करना चाहिए। मुझे मालूम हुआ है कि औरोकी वनिस्बत उनमे खादीका इस्तेमाल घटता जा रहा है। यह देखकर मेरे चित्तको बडी व्यथा हुई कि कितने ही स्वराज्यवादी लोगो-ने खादीको आखिरी नमस्कार कर लिया है और अब वे विदेशी कपडा पहनने लगे है और कुछ लोगोने धमकी दी है कि अगर आप हमारे पीछे इसी तरह पडे रहेगे तो हम खादी और चरखेको विलकुल छोड देगे। मैंने सुना हे कि वहुतेरे अपरिवर्तन-वादियोकी भी लगभग ऐसी ही हालत हे। अब भी वे प्रसगोपात्त समारोहोपर ही खादी पहनते है। वे घरपर तो विदेशी या मिलका कपडा पहननेमे सकोच नही मानते।

मुझे खुश करनेके लिए खादी पहनना एकदम निरर्थक है और खास-खास मौकोपर पहनना कोरा ढकोसला। क्या आप इस बातसे सहमत नही है कि हमे अपने राष्ट्रीय जीवनसे सरपरस्ती जाहिर करने या पाखण्डपूर्ण आचरण करनेको निर्मूल कर दिया जाना चाहिए और यदि आप खादीकी सामर्थ्यके कायल हो तो आप उसे इसलिए न अपनाये कि मै उसकी हिमायत करता हूँ, बल्कि इसलिए कि वह आपके जीवनका एक अग हो गया है। बडे लाटके यहाँ होनेवाले समारोहोमे शामिल होनेके लिए एक खास पहनावेमे जाना पडता है। यह बात ठीक है। मगर मुमकिन है आगे चलकर किसी भी दिन खादी पहनकर आनेकी मुमानियत कर दी जाये और फिर एक कदम बढकर छोटी और बडी धारासभाओमें भी खादी पहनकर न आनेका हुक्म जारी हो सकता है।

एक अन्य मुश्किल सवाल वकालत करनेवाले वकीलोका है। मुझे तो यह साफ दिखाई देता है कि अगर हम उनके बिना काग्रेसका काम नही चला सकते तो हमे साफ तौरपर यह बात कबूल करके उस बहिष्कारको समाप्त कर देना चाहिए। मै मजूर करता हूँ कि धारासभाके बहिष्कारके समाप्त कर दिये जानेके बाद अदालतो-का बहिष्कार भी स्वभावत दूसरा कदम हो जाता है। अगर धारासभामे जानेसे कुछ सुविधाएँ प्राप्त हो सकती है तो अदालतोमे वकालत करनेसे भी कुछ सुविधा जरूर होगी। हम सब इस बातको जानते है कि स्वर्गीय मनमोहन घोषने अपनी वकालतकी सारी आमदनी गरीबोकी सहायतामें लगाकर अनुपम सेवा की। अगर सरकारी सस्थाओमे कोई बात आकर्षक और मोहक न होती तो उनकी हस्ती ही न रही होती। पर यह कोई नई बात नही है। हमारा युद्ध शुद्ध आत्मयज्ञका युद्ध है। हम देशके स्थायी लाभके लिए इन सस्थाओमे सन्देहास्पद, अस्थायी और आशिक लाभका त्याग करते है। अगर हमारे अन्दर इज्जत नामकी कोई चीज हो तो क्या हमे यह उचित नही है कि और किसी कारणसे नही तो सिर्फ इसी कारणसे कि हमारे आन्ध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा दूसरी जगहके जिन वकीलोकी सनद रद कर दी गई है, हम उन्हीकी खातिर अदालतोका बहिष्कार जारी रखे? हम प्रतिष्ठाकी परम्पराको तभी स्थापित कर सकेगे जब हम समाजके अदनासे-अदना व्यक्तिकी भी प्रतिष्ठाका खयाल रखेगे। इसलिए वकालत करनेवाले वकीलोको सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रतिष्ठाके सामने कौटुम्बिक परिस्थितियोका विचार नही किया जा सकता। यह सोचनेकी भूल हरगिज न करनी चाहिए कि हमारे भीतर आत्म-सम्मानकी भावनाका लोप हो जानेपर भी हम एक वर्षके अन्दर स्वराज्य पा सकेगे। जबतक काग्रेस स्वाभिमानी, पराक्रमी, मान-धनी, तेजस्वी, नि स्वार्थ और ऐसे बलिदानी देशभक्त पैदा न करेगी जो किसी भी बातका त्याग करनेसे मुँह न मोडे, तबतक हमारे इस दीन देशमे वह स्वराज्य दीर्घकालमे भी स्थापित नही हो सकता जिसमे गरीबसे-गरीब व्यक्ति भी भाग ले सकता हो। भले ही आप और मै देशकी इस नोच-खटोचमे कुछ ज्यादा फायदेमे रहे, पर यकीनन आप उसे स्वराज्य नही कहेगे।

क्या अब स्कूलोके बारेमे भी कुछ कहना आवश्यक है? अगर हम अपने बच्चोको सरकारी स्कूलोमे पढानेका मोह न रोक सके तो फिर शिक्षा-प्रणालीके हमारे विरोधका

कोई अर्थ मेरी समझमें नही आता। यदि सरकारी पाठशालाएँ, अदालतें और धारा सभाएँ इतनी अच्छी चीजें है कि हम उनकी ओर खिंचे बिना नही रह सकते तो फिर हमारा विरोध सम्बन्धित व्यक्तियोंके प्रति है, प्रणालीके साथ नही। असहयोगकी कल्पना तो ऐसे उद्देश्यके लिए पेश हुई है। अगर हमारी यही इच्छा हो कि प्रणाली ज्योंकी-त्यों रहे, सिर्फ अंग्रेजोंके बजाय हम लोग वहां जा बैठे तो मै मानता हूँ कि हमारा बहिष्कार बेकार बिलकुल ही नही, हानिकर भी है। सरकारकी इस नीतिका स्वाभाविक परिणाम होगा हिन्दुस्तानको यूरोपके सांचेमें ढालना और जहां हम यूरोपके रगमें-रग गये कि बस हमारे अंग्रेज प्रभु खुशी-खुशी सरकारकी बागडोर हमारे हाथोमें दे देंगे। बड़े आनन्दसे तालियोंके शोरपर वे हमारा स्वागत करेंगे। उस विनाशकारिणी पद्धतिमे मेरी कोई दिलचस्पी नही है। इतना अवश्य है कि मेरी जितनी थोड़ी-बहुत शक्ति है वह सबकी-सब मै उसके खिलाफ लगा दूंगा। मेरा स्वराज्य तो हमारी सस्कृतिकी आत्माको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें है। मै बहुत-से नये पाठ लिखना चाहता हूँ किन्तु वे लिखे होंगे भारतीय पाटीपर। मै खुशीसे पश्चिमसे भी कुछ बातें ले लूंगा, पर तब जबकि मै उसका मूल्य उसे अच्छे-खासे सूद समेत लौटा सकूं।

इस दृष्टिसे देखनेपर पाचो बहिष्कार काग्रेसके लिए अत्यन्त आवश्यक है। वे जनताके स्वराज्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

ऐसे भारी प्रश्नका निर्णय केवल हाथ ऊँचे उठाकर नही किया जा सकता। दलीलोंसे भी यह हल होनेवाला नही है। इसका निर्णय हम सबको अपनी अन्तरात्मा की पुकारपर ध्यान देकर करना चाहिए। इसमे से हर व्यक्तिको चाहिए कि हम एकान्तमें जाकर ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह हमे निश्चित राह दिखाये।

यह आजादीकी लड़ाई आपके और मेरे लिए कोई खिलवाड नही है। यह हमारे जीवनकी सबसे अधिक गम्भीर वस्तु है। इसलिए अगर मेरा बनाया कार्यक्रम आपको न जँचे तो आपका कर्तव्य है कि आप चाहे जो हो, उसे तत्काल रद करें।

मातृभूमिकी सेवामे
आपका साथी,
मोहनदास करमचन्द गाधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१५६. जेलके अनुभव — ९

कुछ कैदी वार्डर

कैदियोंको जेलके अधिकारी या वार्डर नियुक्त करनेकी पद्धतिपर मैं पहले ही विचार कर चुका हूँ। मैं इस पद्धतिको बिल्कुल खराब और पतनकारी मानता हूँ। जेलके अधिकारी इस बातको जानते हैं। वे कहते हैं कि इसे मितव्ययिताके ध्यान-से अपनाया जाता है। उनका खयाल है कि जेलोंका प्रशासन, बिना कैदी अधिकारियोंकी सहायता लिये आज जितने वैतनिक कर्मचारी होते हैं उनके द्वारा दक्षतापूर्ण नही चलाया जा सकता। इसमे कोई सन्देह नही कि जबतक पिछले अध्यायमे मेरे द्वारा सुझाया गया सुधार प्रारम्भ नही किया जाता, तबतक जेलका खर्च बहुत ज्यादा बढाये बिना उक्त पद्धतिको समाप्त कर देना सम्भव नही है।

जो हो, इस अध्यायमें जेलोंके सुधारपर और अधिक विचार करना मेरा उद्देश्य नही है। यहा तो मै केवल उन कैदी अधिकारियोंसे सम्बन्धित अपने सुखद अनुभवों-का वर्णन करना चाहता हूँ, जो मेरी देखभाल करने और मुझपर नजर रखनेके लिए नियुक्त किये गये थे।

जब श्री बैंकर और मैं यरवदा सेन्ट्रल जेलमे स्थानान्तरित किये गये, तब वहाँ एक पहरेदार और एक 'बरदासी' था। बरदासी क्या होता है, यह उसके नामसे ही स्पष्ट है — मात्र एक टहलुआ। वह कैदी पहरेदार, जिससे पहले-पहल हमारी पहचान हुई, पजाबकी तरफका एक हिन्दू था। उसका नाम था हरकरन। उसे खून करनेके अपराधमे सजा मिली थी। उसका कहना था कि खून पहलेसे सोच-विचार कर नही, बल्कि एकाएक गुस्सेमे आकर किया था। धन्धेसे वह अदना व्यापारी था। उसे चौदह सालकी सजा हुई थी, जिनमे से लगभग नौ साल वह काट चुका था। वह काफी बूढा था। जेलके जीवनका उसपर बुरा असर पडा था। वह हमेशा कुछ सोचमे डूबा रहता था और रिहाईके लिए बेचैन रहता था। इसलिए वह उदास रहा करता था और चिडचिडा हो गया था। उसे अपने इस ऊँचे ओहदेका खयाल बना ही रहता था। जो उसकी आज्ञा मानते और उसकी सेवा-करते उनपर वह मेहरबान रहता था, किन्तु जो उसके मार्गमे आडे आते, उन्हे वह हर तरहसे परेशान करता रहता था। उसे देखकर कोई यह नही कह सकता था कि उसने खून किया होगा। उर्दू वह धडल्लेसे पढ लेता था और वह धार्मिक वृत्तिका था। वह उर्दूमे भजन बाँचा करता था। यरवदाके पुस्तकालयमे हिन्दी, उर्दू, मराठी, गुजराती, सिन्धी, कन्नड, तमिल आदि कई भारतीय भाषाओंमे कैदियोंके लिए कुछ पुस्तके हैं। हरकरनमे जेलके नियमोंकी अवज्ञा करके छोटी-मोटी चीजे छुपाकर अपने पास रखे रहनेका दोष था। बहुमत उसके साथ था। छोटी-मोटी चीजे भी न चुराना मिथ्या दम्भ और मूर्खता माना जाता। जो कैदी इस अलिखित कानूनका पालन न करता, उसके साथी उसका जीवन दूभर

कर देते। सामाजिक वहिष्कार उसके लिए छोटेसे-छोटा दण्ड होता। यदि जेलका प्रागण वारह इचकी गहराईतक खोदा जाये तो उसमे से चम्मचो, छुरियो, वर्तनो, सिगरेटो और इसी प्रकारकी अन्य चीजोके रूपमे अनेक गुप्त भेद वाहर निकलेगे। यरवदाका सवसे पुराना वाशिन्दा होनेके नाते हरकरन कैदियोके लिए चोधरी ही वन गया था। यदि किसी कैदीको किसी चीजकी जरूरत होती तो वह उसे हरकरनसे मिल सकती थी। मुझे अपनी पाव रोटी और नीवू काटनेके लिए छुरीकी जरूरत थी, यदि मै उसके जरिये छुरी लेना मजूर करता तो हरकरन छुरी लाकर दे सकता था। इसके वाद भी अगर मै अधीक्षकसे ही उसे माँगनेकी लम्वी-चौडी कार्रवाईमे पडना चाहूँ तो फिर यह मेरी मर्जी, और इसमे झिडक दिये जानेकी सम्भावना भी थी। जव हम दोनो दोस्त हो गये तव उसने मुझे अपने हेरत अगेज तमाम कारनामे मुनाये कि कैसे वह अधिकारियोको चकमा देता था, कैसे वह अपने और दूसरोके लिए स्वादिष्ट पकवान प्राप्त करता था, जो चाहिए उसे प्राप्त करनेके लिए कैदी कौन-कौनसी चतुर चाले चलते है, और क्यो (उसकी रायमे) इन चालोका सहारा न लेना असम्भव है— यह सव वह मुझे वडे विस्तार और वडे तपाकके साथ सुनाया करता था। जव उसे यह अन्दाज लगा कि मेरी न तो उन कारनामोमें रुचि है और न मै उसके धन्धेमें शामिल होना चाहता हूँ तो वह वडे अचरजमे पड गया। वादमे, अपना सारा भेद खोल देनेकी जो गलती वह कर वैठा था, उसको कुछ-न-कुछ दुरुस्त करनेकी कोशिश की और मुझे यह विश्वास दिलाना चाहा कि वह मेरी वात समझ गया है और आगे ऐसे काम नही करेगा। किन्तु मुझे इसमे शक है! उसका पश्चात्ताप दिखावा था। किन्तु इससे पाठकको यह धारणा नही वना लेनी चाहिए कि कारागारके अधिकारी ऐसी हरकतसे वाकिफ नही है। ये वे राज है जिन्हे हरएक जानता है। अधिकारी इनके वारेमे जानते हो इतना ही नही वरन् वहुधा वे उन कैदियोसे सहानुभूति भी रखते है, जो अपने सुख और आरामके लिए इस तरहके काम करते रहते है। अधिकारी "जियो और जीने दो" के सिद्धान्तमे विश्वास करते है। जो कैदी, अपने वरिष्ठ अधिकारियोकी उपस्थितिमे सही व्यवहार करता है, उनकी आज्ञाओका पालन करता है, अपने साथियोसे झगडता नही और अधिकारियोको परेशानीमे नही डालता, वह अधिक आराम पानेके लिए लगभग किसी भी नियमको तोडनेके लिए स्वतन्त्र है।

तो, हरकरनसे पहली मुलाकात कुछ खास अच्छी नही रही। वह जानता था कि हम लोग 'असाधारण' कैदी है। [किन्तु वह भी मानता है कि] एक प्रकारसे मै भी तो 'असाधारण' ही हूँ। आखिर मै भी तो जेलका एक अफसर हूँ और लम्वे अरसेतक सम्मानपूर्ण सेवा कर चुका हूँ। मेरे लिए तो आदमी-आदमी सव वरावर है। श्री वैकर मुझसे दूसरे दिन सवेरे ही अलग कर दिये गये। अव हरकरनने मुझपर अपनी सत्ताका पूरा जोर आजमाना शुरू कर दिया। मुझे यह नही करना चाहिए, वह नही करना चाहिए। मुझे अमुक हदके अन्दर ही रहना चाहिए। इसका मैने हकीमजीको लिखे गये अपने पत्रमे उल्लेख किया है। किन्तु वह जो-कुछ भी

कहता या करता था, उसके लिए उससे रुष्ट होने अथवा प्रतिशोध लेनेका तनिक भी विचार मेरे मनमे नही आया। मै अपने काम और अध्ययनमे इतना व्यस्त था कि हरकरनके सीधे-सादे, बचकाने आदेशोके बारेमे सोचता भी नही था। मै क्षण-भर ऐसे आदेशोका मजा-भर ले लेता। हरकरनको आखिर अपनी भूल मालूम हुई। उसने जब देखा कि मै न तो उसकी बेमतलबकी अफसरीसे अप्रसन्न होता हूँ, न उसपर कोई ध्यान ही देता हूँ तो वह हतप्रभ हो गया। ऐसा हो सकता है, यह उसने सोचा भी नही था। अत उसने वही मार्ग अपनाया, जो अब उसके लिए खुला रह गया था अर्थात् यह मान लेना कि औरोमे और मुझमे कुछ अन्तर जरूर है। मेरी प्रतिक्रिया उसके ढगकी नही हुई, वह मेरे ढगकी प्रतिक्रियापर आ गया। मेरे इस अहिसात्मक असहयोगका नतीजा निकला मुझसे उसका सहयोग। सब प्रकारका अहिसात्मक असहयोग, चाहे वह व्यक्तियोके बीच हो या समाजोके, चाहे शासको और शासितोके बीच, अन्तमे अवश्य ही हार्दिक सहयोगको जन्म देता है। जो हो, मै और हरकरन पक्के दोस्त हो गये। जब श्री बैंकर वापिस मेरे पास भेज दिये गये, तब रही-सही कसर भी पूरी हो गई। कारागारमे उनके अनेक कामोमे से एक काम था मेरे यत्किंचित् गुणोका ढोल पीटना। उनका खयाल था कि हरकरन और अन्य लोग मेरी महत्ताको समझते नही है, दो या तीन दिनमे ही मेरी इतनी सार-सभाल होने लगी मानो मै ऊनके कपडोमे लपेट रखने लायक कोई नन्हा-सा बच्चा होऊँ। मै उसकी निगाहमे इतना महान् हो गया कि मुझे अपनी कोठरी स्वय बुहारने या कम्बलोको धूप दिखाने नही दी जा सकती थी। हरकरन पूरा खयाल तो रखने ही लगा था, किन्तु अब वह इतना अधिक खयाल रखने लगा कि मुझे परेशानी मालूम होने लगी। अब मेरा स्वय कुछ करना, यहाँतक कि एक रूमाल धोना भी सम्भव नही रहा। हरकरन मेरे रूमाल धोनेकी आवाज सुनता तो गुसलखानेमे घुस आता और रूमाल मुझसे छीन लेता। अब चाहे अधिकारियोको शक हो गया हो कि हरकरन हमारे लिए कुछ अवैध काम करता है या फिर चाहे वह बिलकुल आकस्मिक घटना हो, किन्तु हरकरनको हमारे पाससे दूर कर दिया गया, जिसका हमे अफसोस हुआ। कदाचित् यह बिछोह हमारी अपेक्षा उसे अधिक खला। हमारे साथ उसकी बडे ही ठाठकी गुजरती थी। हमारी भोजन-सामग्री तथा मित्रोके द्वारा बाहरसे भेजे गये फल आदिमे से उसे खूब खानेको मिलता और सो भी खुल्लमखुल्ला। और चूँकि जेलमे हमारी शोहरतका ढिढोरा पिट गया था, हमारे सम्पर्कसे वह कैदियोकी निगाहमे और ऊँचा चढ गया।

जब मुझे अपने कोठरीके बरामदेमे सोनेकी इजाजत मिल गई तो अधिकारियोने सोचा कि अब मुझे एक ही पहरेदारके भरोसे छोडना जोखिमकी बात होगी। कदाचित् यह नियम भी रहा हो कि जिस कैदीकी कोठरी खुली रहती हो, उसकी देख-रेखके लिए दो पहरेदार रहे। यह भी हो सकता है कि एक और पहरेदार मेरी सुरक्षाके लिए बढा दिया गया हो। कारण कुछ भी हो, रातके लिए एक और पहरेदार तैनात कर दिया गया। इसका नाम था शाबास खॉ। मैने कारण कभी पूछा नही, किन्तु मुझे

लगा कि हरकरन हिन्दू है तो सन्तुलनके लिए दूसरा मुसलमान चुना गया। शावाश खाँ एक ताकतवर बलूची था। वह हरकरनका समकालीन था। दोनो एक दूसरेको अच्छी तरह जानते थे। शावास खाँको भी खूनके अपराधमे सजा हुई थी। जिस कबीलेका वह था, उसमे झगडा हो जानेमे खून हुआ था। शावास खाँ जितना ऊँचा था उतना ही चौडा। उसके डीलडौलको देखकर मुझे हमेशा शौकत अलीकी याद आती। शावाश खाँने मुझे पहले ही दिन आश्वस्त कर दिया। उसने कहा, "मै आपपर निगरानी बिलकुल नही रखूंगा। मुझे अपना दोस्त समझिए और जो मर्जीमें आये कीजिए। मै आपकी किसी बातमे दखल नही दूंगा, आप कोई काम कराना चाहें और मै उसे कर सकूंगा तो मुझे बहुत खुशी होगी।" शावाश खाँने जो कहा, वही किया। वह हमेशा नम्रताका व्यवहार करता था। वह हमेशा कारागारके सुस्वादु मिष्टान्न लाता और मुझसे स्वीकार करनेको कहता और मेरे इनकार करनेपर उसे हार्दिक दु ख होता। वह कहा करता था, "आप नही जानते — अगर हम ये कुछ चीजे न हथियाये तो रोज-रोज वही चीजे खाते-खाते जिन्दगी दूभर हो जाये। आप लोगोकी बात दूसरी है। आप ईमानकी खातिर आये है। यह बात आपको सहारा दिया करती है, जब कि हम जानते है कि हम गुनाह करके आये है। हम लोग तो बस जितनी जल्दी हो, बाहर जाना चाहते है।" शावाश खाँ जेलरका कृपापात्र था। उसकी तारीफ करते-करते जोशमें आकर एक दिन उन्होने कहा था, "उसकी तरफ देखिए। मेरी नजरमे वह बडा ही शरीफ आदमी है। गुस्सेमे आकर वह खूनकर बैठा, जिसके लिए सच्चे दिलसे पछताता है। यकीन मानिए कि [जेलके] बाहर भी, शावाश खाँसे ज्यादा अच्छे आदमी बहुत नही मिलेंगे। यह समझना गलत है कि सभी कैदी पक्के अपराधी होते है। शावाश खाँको मैने बहुत ही विश्वसनीय और शिष्ट पाया है। यदि मेरे हाथमे सत्ता होती तो मै उसे आज ही मुक्त कर देता।" जेलरका खयाल गलत नही था। शावाश खाँ सचमुच अच्छा आदमी था। उस जेलमें केवल वही एक भला कैदी हो सो बात नही थी। यहाँ हम यह भी समझ लें कि नेक उसे जेलने नही बनाया था, वह पहलेसे ही नेक था।

जेलोमें यह रिवाज है कि किसी भी कैदी-अधिकारीको बहुत समयतक एक ही कामपर न रखा जाये। हमेशा तबादले होते रहते है। यह एहतियात जरूरी है। वर्तमान पद्धतिके अधीन कैदियोको घनिष्ठ सम्बन्ध बनानेका अवसर नही दिया जा सकता। अत हमे कैदी-अधिकारियोका अत्यन्त विविध अनुभव हुआ। लगभग दो महीने बाद शावाश खाँकी जगह आदन आ गया। इस वार्डरका परिचय मै पाठकको आगामी अध्यायमे दूंगा।

[अंग्रेजीसे]

यग इडिया, २६-६-१९२४

१५७. "तुमसे तो ऐसी आशा नहीं थी!"

एक प्रतिष्ठित मित्र लिखते है.

यदि हम अवसर रहते कारगर प्रयत्न न करेगे तो आज जो-कुछ पंजाव पर गुजर रही है, कल वही सयुक्त प्रान्तपर गुजरेगी। अवधमें हिन्दू-मुसलमानोमें तनाजा वढ रहा है। नमूनेके तौरपर मै वारावकीके सम्वन्धमें नीचे कुछ तथ्य दे रहा हूँ। उस शहरके म्युनिसिपल वोर्डपर गहरे इलजाम लगाये गये है। उसके मुसलमान सदस्य जो पहले पक्के असहयोगी थे और अब भी है, वे इस्तीफा दे चुके है। इसलिए म्युनिसिपल वोर्डमें अव हिन्दू सदस्य ही रह गये है। उन इलजामोके वारेमें विस्तारपूर्वक जाँच करनेका समय मुझे नहीं मिला, किन्तु एक वात लगभग सर्वविदित है और उससे मुसलमानोके दिलमें कटुता पैदा हो रही है। इन हिन्दू सज्जनोने कानून वना दिया है कि "वोर्डको जितनी दरख्वास्तें दी जायें, वे सब हिन्दी लिपिमें होनी चाहिए। किसी अन्य लिपिसे लिखी हुई दरख्वास्तें नहीं ली जायेंगी।

उक्त समाचार पाकर मुझे आश्चर्य और दु ख हुआ क्योकि वारावकीपर, यदि मुझे ठीक याद है तो मौलाना शौकत अलीको गर्व था। वे वारावकीके हिन्दू और मुसलमान, दोनोकी वडी तारीफ किया करते थे। मै अब भी उम्मीद करता हूँ कि मेरे सवाददाताको गलत खवर लगी होगी। मै विश्वास नही करता कि हिन्दू सदस्योके वारेमे जो कहा गया है, उन्होने वैसी कोई विचारहीन कार्रवाई की होगी। यदि वे हिन्दी-लिपिको मुसलमानोसे स्वीकार करानेके लिए जवरदस्ती करेगे तो वे हिन्दीको हानि ही पहुँचायेगे। हिन्दुस्तानमे जहाँ-कही हिन्दुस्तानी प्रान्तीय भाषा है वहाँ लोगोको इस वातकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे अपनी दरख्वास्ते देवनागरीमे लिखे या उर्दूमे। अन्तमे कौन-सी लिपि मजूर होगी यह तो दोनो लिपियोके आन्तरिक गुणो-पर ही अवलम्बित है।

मै यह नही समझ पाया कि मुसलमान सदस्योने इस्तीफा क्यो दिया। मै आशा करता हूँ कि वारावकीसे कोई सज्जन पूरी वात लिख भेजेगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-६-१९२४

१५८. अकालियोका संघर्ष

लोगोको यह आशा हो गई थी कि अकाली नेताओं और पंजाब सरकारके बीच गुरुहकी जो बातें हो रही हैं, वे फलीभूत हो जायेगी और गुरुद्वारेका मसला सन्तोषजनक रीतिसे हल होगा तथा अकालियोंके कष्ट-सहनका अन्त आ जायेगा। पर अगर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिकी खबर सच हो तो कहना होगा कि सरकारका मनसूबा कुछ और ही था। कहते हैं, अकाली नेता सब तरहसे तैयार थे, पर सरकार उन कैदियोंको छोड देनेका वायदा करने तकके लिए तैयार नही हुई, जिन्हे उसने इसलिए नही कि उन्होंने हिंसा-कृत्य किये थे या करनेकी कोशिश की थी, बल्कि इसलिए कैद कर रखा है कि उन्होने गुरुद्वारा आन्दोलनमें योग दिया था।

ऐसी हालतमें बहुत मुमकिन है अकालियोका संघर्ष और भी जोर-शोरके साथ चलाया जाये। सम्भव है, सरकार भी ज्यादा दमन करे। खुशकिस्मतीसे अब हम दमनके आदी हो गये हैं। उसका डर हमारे दिलसे निकल गया है। अकालियोंने दिखा दिया है कि वे किस धातुके बने हैं।

हमें देखना यह है कि अकाली जिस सवालको एक अहम धार्मिक सवाल मानते हैं, उसके लिए उन्होंने अबतक कितना कष्ट सहा है। ननकाना-हत्याकाण्ड[1], कुंजी-प्रकरण[2], गुरुका बागके पाशविक अत्याचार या जैतोके गोलीबारके[3] बारेमें मैं यहाँ कुछ न कहूँगा। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समितिको गैरकानूनी करार देनेके बारेमे भी मैं कुछ नही कहूँगा। काग्रेसने इसे उन तमाम सार्वजनिक संस्थाओंके लिए जो कि सरकारकी मुखालिफत करती है, एक चुनौती ही माना है। जैतोके गोलीबारके बादसे, अकाली लोग यह समझकर कि गिरफ्तारियोंके लिए किया गया हमारा सत्याग्रह कही हिंसात्मक न समझा जाये, प्राय हर पन्द्रहवें दिन ५०० आदमियोका एक शहीदी जत्था गिरफ्तारीके लिए जैतो भेजते रहे हैं और बिना किसी हुज्जत या विरोधके गिरफ्तार होते गये हैं। गिरफ्तारीके बाद वे एक खास रेलगाडीमे बिठाकर एक निर्जन स्थानमे भेज दिये जाते और वहाँ बिना मुकदमा चलाये तथा बिना किसी आरोपके रोक लिये जाते हैं। उन्हे सिर्फ रसद दे दी जाती है। उन्हे अपनी रसोई खुद पकानी होती है। वहाँकी आबोहवा फसली बुखारको लानेवाली मानी जाती है। और वहाँ इतनी घास खडी है कि वह जगह एक तरहका जेलखाना ही हो गया है। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ लोग तो बुखार और सर्दी लग जानेसे मर भी गये हैं। इस तरह कोई तीन हजारसे ऊपर कैदी तकलीफ भोग रहे हैं। शहीदी जत्थेके अलावा पिछले ९ महीनोसे २५ आदमियोका एक छोटा जत्था भी रोज जैतोकी हदमे जा रहा है। वे बावल नामके एक स्टेशनपर

१ देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ४०४-८।

२ देखिए खण्ड २२, पृष्ठ १८१-८२।

३ देखिए खण्ड २३, पृष्ठ २२५-२६।

ले जाकर छोड दिये जाते है। वे वहांसे जहां चाहें जा सकते है। अपने मुकामपर पहुँचनेतक इन अकालियोको अकसर वडी तकलीफोका सामना करना पडता है। यह क्रूर पद्धति घडीके काँटोकी तरह नियमसे जारी है और मत्ताधारियोपर उसका कुछ असर हो रहा हो सो नजर नही आता।

तो ये जत्थे ऐसा कष्ट किसलिए सह रहे है? सिर्फ इसलिए कि वे अखण्ड पाठ कर सके, जिसमे नाभाके अधिकारियोने उद्दण्डताके साथ दस्तन्दाजी की और जो पाठ अब भी रोका जा रहा है। अकालियोने वार-वार यह वात कही है कि एक ओर जहाँ हमारा दावा है कि हमे महाराजा नाभाके मामलेकी निष्पक्ष और खुले तौरपर तहकीकात चाहने और करानेका हक है वहाँ दूसरी ओर हम अखण्ड पाठकी ओटमे उनके पक्षमे आन्दोलन नही करना चाहते। अखण्ड पाठकी मुमानियतका खुलासा इसके सिवा कुछ हो ही नही सकता कि इसके द्वारा अकालियोका वह दुर्दमनीय तेज कुचल डाला जाये, जिसने अकाली लोगोके सुधार-आन्दोलनका सगठन किया और जो इसे चला भी रहा है।

अकालियोकी माँगे विलकुल सीधी-सादी है। जहाँतक मै जानता हूँ, वे इस प्रकार है

(१) ऐतिहासिक गुरुद्वारोपर सिखो द्वारा निर्वाचित केन्द्रीय समितिका कब्जा।
(२) हर सिखको किसी भी आकारकी कृपाण रखनेका अधिकार, और
(३) जैतोमे अखण्ड पाठ करनेका अधिकार।

स्पष्ट ही ये माँगे ऐसी है जिनपर कोई ऐतराज नही किया जा सकता और जिनकी पूर्ति तत्काल कर देनी चाहिए। ऐसी कोई दूसरी कौम नही है जिसने अकालियोकी तरह अपने लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए इतनी वीरता, त्याग और कौशलका परिचय दिया हो। उनकी तरह किसी जातिने इतनी खूबीके साथ निष्क्रिय प्रतिरोधकी भावना कायम नही रखी। भारतीय सरकारको छोडकर और कोई भी सरकार होती तो उसने उन माँगोको कबका सही मान लिया होता, उनकी कुरवानियो-की कद्र की होती और उनको दुश्मनोके बदले अपना स्वेच्छा-प्रेरित सहायक बना लिया होता। परन्तु भारतीय सरकार यदि लोकमतकी परवाह करती होती तो वह इतने व्यापक विरोधके भडकनेका अवसर ही क्यो देती।

हिन्दू, मुसलमान तथा दूसरी जातियोका कर्त्तव्य इस मामलेमे स्पष्ट है। उन्हे इन सिख सुधारकोको अपना नैतिक समर्थन देकर उनकी सहायता करनी चाहिए और सरकारको स्पष्ट रूपसे यह जता देना चाहिए कि पूर्वोक्त मामलेमे अकालियोको सारे भारतका नैतिक समर्थन प्राप्त है। मै जानता हूँ कि जो अविश्वास आज भारतीय वायुमण्डलमे व्याप्त है उससे अकाली भी अछूते नही वचे। हिन्दुओ और शायद मुसलमानोको भी उनकी बातोपर यकीन नही है। वे उनकी गतिविधिको सन्देहकी दृष्टिसे देखते है। कहा जाता है कि इसके पीछे इरादा कुछ और ही है, उनकी महत्वाकाक्षा सिख-राज्य स्थापित करनेकी है। अकालियोने कहा है कि हमारी ऐसी नीयत कदापि नही है। सच पूछिए तो इस खण्डनकी जरूरत भी नही है और भविष्यमे

अगर वे ऐसी कोशिश करें तो उन्हें कोई रोक भी नही सकता, क्योंकि अगर सभी उनके उत्तराधिकारी लोग ऐसी अयोग्य महत्वाकाक्षा रखे तो आजके तमाम सिखो द्वारा प्रकट घोषणाओको वे आसानीसे रद्दीके ढेरमे फेक सकते है। अतएव हमारी सुरक्षा सिर्फ इसी बातमे है कि हम सब लोग सबकी आजादीके लिए मिलकर काम करनेका दृढ निश्चय करें। यह साफ है कि व्यावहारिक दृष्टिसे भी सिखोके सुधार-आन्दोलनको देशका नैतिक समर्थन प्राप्त होनेसे, सिखोके दिलमे ऐसी अयोग्य महत्वाकाक्षाके बारेमें विचार कम हो जायेंगे। वास्तवमे देखा जाये तो यह पारस्परिक सन्देह हमारी स्वतन्त्रताके रास्तेमे अवश्य ही बाधक होता है, क्योंकि इसकी बदौलत भिन्न भिन्न जातियोंमे हार्दिक सहयोग नहीं होने पाता और इस तरह यह इस सुन्दर देशका शोषण करनेवाली शक्तियोको सुदृढ बनाता है और शायद उस महत्वाकाक्षा-को भी सम्भाव्य बना देता है जो अभी स्पष्टतया असम्भव ही है। इसलिए हमे चाहिए कि हम हर जातीय हलचलको उसके गुण-दोषकी ही दृष्टिसे देखे और यदि वह अपने आपमे निर्दोष हो और उसके लिए प्रयुक्त साधन सम्मानपूर्ण, खुले और शान्तिमय हो तो हम उसका मुक्तकण्ठसे समर्थन करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-९-१९२८

१५९. टिप्पणियाँ

जा-मीन बनाम आमीन

एक मित्र लिखते है

> आपने भविष्यके लिए एक स्पष्ट कार्यक्रम दिया है, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मैं जानता हूँ, यह कोई नया कार्यक्रम नहीं है, आप पुराने कार्यक्रमको ही दोहरा रहे हैं, लेकिन वह हमें नया लगता है, उसे देखकर हम चौंक-से उठे हैं। इसका कारण यह है कि हम सही रास्तेसे भटक गये हैं। डेनिश भाषामें एक मुहावरा है — "जा-मीन," अर्थात् "हाँ, लेकिन —" यह उस भाषाके "आमीन" शब्दसे लगभग उलटा अर्थ देता है। आमीनका अर्थ सिर्फ "हाँ" है। हममें से अधिकांश लोग "जा-मीन" में ही विश्वास रखते जान पड़ते हैं। हम लोग यही कहते जान पड़ते है कि 'हाँ, हमने वायदा तो किया था कि हम सरकारी संस्थाओंका बहिष्कार करेंगे, अपने ऊपर जुल्म करनेवालोंकी गुलामी नहीं करेंगे, लेकिन इनके बिना हमारा काम कैसे चल सकता है?' यह "लेकिन" का चक्कर शैतानके दिमागकी उपज है।

दुर्भाग्यसे ये शैतान महोदय सदा हमारे साथ रहते है। वे हमारी कमजोरियोंको उभाड़ते हैं, उनके जरिये हमपर अपना असर डालते है और अपने माया-जालमे फँसा लेते है। राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंको शैतानके पंजेसे निकलना होगा और सब "लेकिनो" को

स्वाहा कर देना होगा। यदि उनका मतलब बिना किसी शर्तके "हाँ" हो, तभी वे बहिष्कारोंके लिए "हाँ" कहे। यदि वे बहिष्कारोंमें विश्वास करते हुए भी अपनी कमजोरीकी वजहसे "हाँ" नही कह सकते हो तो उन्हें यह बात खुले तौरपर मजूर करनी चाहिए। इससे उनको और देशको असीम लाभ होगा।

डा० महमूद और बलात् धर्म-परिवर्तन

हिन्दू-मुस्लिम तनावके सम्बन्धमे अपने वक्तव्यमे मैंने बलात् धर्म-परिवर्तनकी चर्चा की थी। उसके बारेमे मुझे बहुतसे पत्र प्राप्त हुए है — कुछ गुस्सेसे भरे हैं और कुछमे गालियाँतक दी गई हैं। एक पत्र ऐसा जरूर था जो शान्त चित्तसे और सोच-समझकर लिखा गया था। वह पत्र श्री माधवन नायरने लिखा था और उसमे, डा० महमूदपर मैंने जो-कुछ कहनेका आरोप लगाया था, उसका विरोध किया था। पत्रको मैंने डा० महमूदके पास भेज दिया और उन्हे उसका जवाब देनेको लिखा है ताकि पाठकोके सामने स्वय डा० महमूदका कथन प्रस्तुत कर सकूँ। लेकिन डा० महमूद मेरा पत्र पानेसे पहले ही उसी विषयपर मेरे नाम एक पत्र डाकमे डाल चुके थे। बात यह हुई थी कि स्वय डा० महमूदके पास भी विरोधके बहुतसे पत्र पहुँचे थे। उनका मूल पत्र उर्दूमे है। मै उसके सम्बन्धित अशोका अनुवाद नीचे दे रहा हूँ

> मेरे पास बहुतसे हिन्दू दोस्तोके खत आये है। वे मुझपर इलजाम लगाते है कि मैंने मलाबारके बारेमें आपको गलत खबरे दीं। बाज खतोमें मुझे जी-भर कर सख्त गालियाँ भी दी गई है। मेरे खयालमें उन लोगोका गुस्सा करना ठीक ही है। आपको कही गलतफहमी हुई है। मैंने आपसे अर्ज किया था कि खतना करके जबरदस्ती मुसलमान बनानेकी मिसाल नहीं मिलती। सिर्फ एक वाकिआका जिक्र किया गया, जो कि जनाब एन्ड्रयूजने देखा था — और उसकी ठीक तरहसे तहकीकात नहीं हो सकी थी। बाकी, सिरपर फंज टोपी पहनाकर, औरतोको कुरती पहनाकर या चोटी काटकर मुसलमान बनानेकी तो बहुत-सी मिसाले है। जो नोट मैंने शुएबको लिखवाया था, उसमे भी यही था। मेहरबानी फरमाकर 'यग इडिया'में इसकी तरमीम कर दीजिए, नही तो कुछ असके बाद इसपर भी अखबारोमें बहस शुरू हो जायेगी।

देखता हूँ, मेरे हाथो डा० महमूदके साथ अन्याय हो गया है। मै तो खतना करके ही बलात् धर्म-परिवर्तन किये गये लोगोकी बात सोच रहा था। इसी खयालसे हिन्दुओके दिलको सबसे अधिक चोट पहुँची। जो हो, कमसे-कम मुझे तो सबसे ज्यादा इसी बातसे चोट पहुँची।

डा० महमूदने जिस वक्तव्यका जिक्र ऊपर किया है, वह इस प्रकार है.

बलात् धर्म-परिवर्तन

> (क) खतना करके। कोई चश्मदीद गवाह नहीं। कोई सीधा सबूत नहीं मिलता। कोई मिसाल नहीं दी गई। हिन्दुओंमें से विश्वसनीय लोग कहते हैं

तीन-चार मामले ऐसे हुए हैं। इस तरहकी एक घटनाका सीधा सबूत यही है कि कहते हैं, श्री एन्ड्रयूजने एक खतना किये हुए आदमीको देखा था। मैंने उसकी तसदीक नहीं कराई।

(ग) कलमा पढ़ाकर, (१) जबरदस्ती, (२) महज डरसे कलमा पढ़ना, जिसमें दरअसल जबरदस्ती न की गई हो।

(ग) चोटी काटकर।

(घ) हिन्दू मर्दोंको टोपी पहनाकर।

(ङ) हिन्दू औरतोंको कुरती पहनाकर।

(ग) से लेकर (ङ) तकमें तकरीबन १,८०० से २,००० लोगोंतक का (हिन्दुओंके अनुसार) धर्म-परिवर्तन किया गया। मुसलमान लोग इस संख्याको कुछ सौ बताते हैं।

मैंने सोचा कि मेरा वक्तव्य स्पष्ट है। यद्यपि मैंने श्री एन्ड्रयूजका नाम नहीं लिया था, लेकिन यह बात सबको मालूम थी कि उन्होंने खतनेके एक ऐसे मामलेका जिक्र किया है, जो उन्होंने खुद देखा था। इस बातपर ध्यान रखनेसे मेरा आशय समझनेमें कोई गलती नहीं हो सकती। पर अब मैं देखता हूँ कि मैंने जबरन् मुसलमान बनाये हुए आदमियोंकी तादाद कम बताकर लोगोंको, डा० महमूदपर पक्षपाती होनेका आरोप लगानेका अवसर दे दिया और इस तरह उन्हें बड़ी नाजुक स्थितिमें डाल दिया। अनजानेमें की गई अपनी इस गलतीपर मुझे अफसोस है। तनावके समय बहुत सावधानी रखना या बहुत तौलकर बात करना सम्भव नहीं होता। डा० महमूदके साथ न्याय करनेकी कोशिश करते हुए मुझसे उनके साथ अन्याय हो गया है। मैं पाठकोंको यकीन दिलाता हूँ कि हरएक मामलेमें मैंने वस्तुस्थितिके निकट ही रहनेकी कोशिश की है और मैंने कोई अतिरंजना नहीं की है। जो कागजात मेरे पास हैं उनके अनुसार तो सभी पक्ष बहुत अधिक और भयंकर रूपसे दोषी सिद्ध होते हैं। लेकिन हर मामलेमें मैंने इलजामोंको बहुत ही नरम रूपमें रखा है और जहाँ मैं अपनी राय कायम नहीं कर सका, वहाँ मैंने उन्हें सिर्फ सम्बन्धित पक्षोंकी जबानी पेश कर दिया और इस प्रकार उन इलजामोंको हलका बनाया।

निजामकी रियासतमें नहीं

हिन्दू-मुस्लिम तनाव सम्बन्धी अपने वक्तव्यमें मैंने कहा था कि मुझे यह बताया गया है उस खतरनाक प्रचार-पुस्तिकाके मुताबिक निजामकी रियासतमें कार्य हो रहा है।[1] उस वक्तव्यको पढ़नेपर ख्वाजा हसन निजामी साहबने मेरे पास नीचे लिखा तार भेजा है

मेरी जिस पुस्तिका 'दार-ए-इस्लाम' में लिखी बातोंके सम्बन्धमें आपने अपने वक्तव्यमें शिकायत की है, उसके बारेमें मैं इस्लाम और हिन्दू-मुस्लिम

१ देखिए "हिन्दू मुस्लिम तनाव कारण और उपचार", २९-५-१९२४।

एकता तथा आपके प्रिय व्यक्तित्वकी खातिर आपकी सलाह माननेको तैयार हूँ --- बशर्ते कि उससे इस्लामके प्रचार, मुसलमानोके सुधार और सगठन और आर्यसमाजके प्रकट तथा अप्रकट प्रयत्नोका असर दूर करनेके उस काममें, जिसे करनेके लिए मैं धर्मत बाध्य हूँ, कोई बाधा न पडे। मैंने आपत्तिजनक बताई जानेवाली बातोमें से बहुत-सी बातें तो उस पुस्तकके बादके संस्करणोमें से पहले ही निकाल दी थी और अब आपकी इच्छाका खयाल रखते हुए मैं अगले संस्करणोमें और भी अधिक सुधार करनेको तैयार हूँ। आप जो-कुछ सुझाव भेजना चाहे, पुस्तिकाका ताजा उर्दू संस्करण पढकर भेजें। सुझाव हिन्दी अनुवाद पढकर न भेजें, क्योकि जो हिन्दी अनुवाद छापे गये है, वे सिर्फ भ्रम उत्पन्न करने और सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए ही है।

तारके बाद ही इसी आशयका एक पत्र भी उन्होने भेजा, और गत सप्ताह उन्होने आकर मुझसे मिलने और खुद अपना मतलब समझानेकी इज्जत बख्शी। उन्होने मुझसे कहा कि बच्चोको भगा ले जाने वगैराके जितने इलजाम मुझपर लगाये जाते है वे सबके-सब बिलकुल बेबुनियाद हैं और उस पुस्तकको प्रकाशित करनेमे मेरा उद्देश्य वह नही था, जो आपने समझा है। बदकिस्मतीसे यह भेट उस वक्त हुई जबकि मैं मौन रखे हुए था, इसलिए मैं उनकी पुस्तिकाके बारेमे उनपर अपनी राय जाहिर न कर सका। ख्वाजा साहब इस बातके लिए बहुत उत्सुक थे कि मैं निजाम साहबकी रियासतकी हदके भीतर प्रचारके बारेमे उनके द्वारा दिया हुआ आश्वासन प्रकाशित कर दूं। इसलिए मैंने उक्त तार और मुलाकातका साराश खुशीसे प्रकाशित कर दिया है। फिर भी, यहाँ यह लिख देना आवश्यक है कि कथित प्रचारकी खबर मुझे विश्वसनीय व्यक्तियोसे मिली थी। उस खबरकी ताईद करनेवाले पत्र भी मुझको मिले है और मेरे साथी मुझसे कहते हैं कि उस प्रकारकी शिकायतें देशी भाषाओके अखबारोमे अकसर छपा करती हैं। इसलिए निजाम साहबकी रियासतमे जो-कुछ हो रहा है, उसके बारेमे कोई प्रत्यक्ष जानकारी न होनेके कारण अपनी कोई राय कायम किये बिना दोनो तरफकी बातोको प्रकाशित कर देनेके अलावा मैं और क्या कर सकता हूँ। इस मामलेमे निजाम साहबकी सरकार जो-कुछ कहना चाहे, उसको भी मैं खुशीसे अवश्य प्रकाशित कर दूँगा।

जहाँतक ख्वाजा साहबकी पुस्तिकाका सम्बन्ध है, यद्यपि यह एक प्रशसनीय बात है कि वे उसमे ऐसे परिवर्तन करनेको तैयार है जो कि उनके धर्मसे सगत हो, फिर भी जिस बातकी जरूरत है वह कुछ विशेष और भिन्न प्रकारकी भी है। यद्यपि ख्वाजा साहबने उद्देश्यके कुत्सित होनेकी इस बातका प्रतिवाद किया है, फिर भी उस पुस्तिकासे, जिसको कि मैंने मूल उर्दूमे पढा है, वह अर्थ भी निकाला जा सकता है, जो मैंने निकाला है। जिन मुसलमान मित्रोको मैंने वह पुस्तिका दिखाई है, वे मेरे अर्थसे सहमत है। इसलिए यदि मैं सुझाव देनेका विचार भी करूँ तो यह काफी नही होगा कि मेरे सुझावके मुताबिक ख्वाजा साहब अपनी पुस्तिकामे परिवर्तन कर दे, जरूरी तो यह होगा कि वे खुद अपने विचारकी गलतीको देखें

और उस बातको समझें कि उन्होंने प्रचारके आपत्तिजनक तरीके सुझाकर वास्तवमें इस्लामको हानि पहुँचाई है। इसलिए इस्लामके प्रचारमें जो-कुछ जायज और प्रशसनीय है उसकी दृष्टिसे उन्हें उस पुस्तिकामें आमूल परिवर्तन करना चाहिए। कहनेकी जरूरत नही कि जिस तत्परतासे ख्वाजा साहब अपना मतलब समझानेके लिए आगे आये हैं और जिस तरह उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए अपनी आतुरता व्यक्त की है, उसकी मैं सराहना करता हूँ।

मेरे लिए नई बात[1]

एक सज्जन लिखते है कि खबर है, आपने ऐसा कहा कि "सात बकरोंकी अपेक्षा एक गायकी बलि चढाना ज्यादा अच्छा है।" फिर वे मुझसे कहते है कि या तो इस बातसे इनकार कीजिए या उसे मजूर कीजिए, और यदि मजूर करते है तो उस हालतमे उसका कारण भी बताइए। पत्र-प्रेषकने जिस बातका उल्लेख किया है, मुझे याद नही पडता कि वैसी कोई बात मैंने कभी कही थी, और जिस-किसीने मुझे वैसी बात कहते सुना हो वे उस अवसरकी याद मुझे दिला दें तो मैं कृतज्ञ होऊँगा। पत्र-प्रेषकके अनुसार ऐसा माना जाता है कि मैंने वह बात 'यंग इंडिया' के सम्पादककी हैसियतसे कही है। उस हालतमे तो वह मुझे आसानीसे दिखा दी जा सकती है। परन्तु मैंने जो-कुछ कहा या लिखा होगा, वह तो इतना ही हो सकता है कि यदि मैं लोगोको अहिंसापूर्वक राजी कर सकूं तो मैं उनको इस बातपर राजी करना चाहूँगा कि वे बकरोंकी भी उसी प्रकार रक्षा करे जिस प्रकार मैं चाहूँगा कि वे गायकी करे। जैसा कि मैं इन पृष्ठोमे पहले लिख चुका हूँ, मेरे लिए मनुष्यसे नीचेकी श्रेणीके प्राणियोंमें गाय सबसे श्रेष्ठ है। मनुष्यसे नीचेकी श्रेणीके सभी प्रकारके प्राणियोंकी ओरसे वह सबसे श्रेष्ठ प्राणी, मनुष्यसे उनके प्रति न्याय करनेकी मूक प्रार्थना कर रही है। ऐसा लगता है जैसे वह अपनी कातर आँखोसे (पाठक उन आँखोंकी ओर उसी सवेदनासे देखें जिस सवेदनासे मैं देखता हूँ) कह रही हो कि "तुम हमें मार डालने और हमारा गोश्त खाने या दूसरी तरहसे हमारे साथ बुरा बरताव करनेके लिए नहीं, बल्कि हमारे मित्र और सरक्षक बननेके लिए हमारे ऊपर तैनात किये गये हो।"

शाबाश, दिल्ली[1]

तो आखिर हिन्दू-मुस्लिम तनावके सम्बन्धमें दिल्लीने ही सबसे आगे बढकर पच-फैसला बोर्ड सगठित किया। सिर्फ दो साल पहले हर आदमीको दिल्लीमे हिन्दू-मुस्लिम एकता पूरी तरह सुरक्षित दिखाई देती थी। हकीम साहब वहाँ बेताजके बादशाह थे और स्वामी श्रद्धानन्दकी स्थिति ऐसी थी कि वे जुम्मा मस्जिदमे मुसलमानोके सामने खडे होकर भाषण कर सकते थे। बेशक, यदि हिन्दू और मुसलमान मिल-जुलकर प्रयत्न करे तो उनमें इतनी क्षमता है कि वे दिल्लीमे दोनो जातियोके बीच स्थायी रूपसे शान्ति स्थापित कर सकते हैं। यदि दिल्ली-जैसा केन्द्रस्थ स्थान ऐसी साम्प्रदायिक शान्ति स्थापित कर ले तो मुझे इस बातमें तनिक भी सन्देह नही कि

दूसरे स्थान भी उसका अनुकरण करेंगे। मुझमे इतनी हिम्मत नही कि पाठकोके "ज्ञान-वर्धन"के लिए मैं दिल्लीसे प्राप्त उस सारे घातक साहित्यको प्रकाशित करूँ, जिसमें दोनो पक्षोने एक-दूसरेका बहुत ही विकृत चित्र प्रस्तुत किया है। लेकिन पाठक इस बातके प्रति आश्वस्त रहे कि मैंने अपने वक्तव्यमे जो-कुछ कहा है, वह सब उस साहित्यमें मिल जायेगा। यदि सम्बन्धित पक्ष इतना-भर कर दे कि अपने-अपने आरोप बोर्डके सामने पेश कर दे और उनके बारेमे बोर्डका कोई अधिकृत निर्णय प्राप्त कर ले तो यह एक बहुत बडी नियामत साबित होगी।

सिखोका आत्मसंयम

बहुत ही गम्भीर उत्तेजनाके बावजूद कलकत्तेके सिखोने जिस आश्चर्यजनक आत्मसयमका परिचय दिया, उसके लिए वे जनताकी हार्दिक बधाईके पात्र है। शोरगुल मचाती हुई शंकालु भीडने सर्वथा निराधार शकाओके वशीभूत होकर कलकत्तेमे कुछ सिखोकी निर्मम हत्या भी कर दी थी। सभी स्थानोके सिखोमे इतनी क्षमता है कि वे अपनी रक्षा आप कर सकते है और अगर चाहे तो बदला भी ले सकते है। लेकिन इस अवसरपर वे बिलकुल शान्त रहे। वे बहादुर है, इसलिए उन्होने महसूस कर लिया कि इस शरारतके पीछे कोई जातिगत विद्वेष नही है। आँख मूँदकर किसी बातका सहज ही विश्वास कर लेनेकी प्रवृत्तिसे ग्रस्त भीडने किसी और जाति-पर शका हो जानेपर भी उतनी ही लापरवाहीसे उसके सदस्योकी भी हत्या कर दी होती। परीक्षा और उत्तेजनाके अवसरपर कलकत्तेके सिखोने सही आचरणका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अधिकारियोंकी ढील

पाठकोको स्मरण होगा कि नाभा राज्यके प्रशासकने मुझे जो जवाब दिया था, उसको देखनेके बाद पण्डित जवाहरलाल नेहरूने उन्हे एक पत्र[1] लिखकर उनके इस कथनका खण्डन किया था कि उनकी तथा आचार्य गिडवानी आदि उनके साथियो-की रिहाई कुछ शर्तोपर हुई थी। यह पत्र गत २४ मईको भेजा गया था। अब तक उसका जवाब न पाकर पण्डित नेहरूने १९ जूनको याददिहानीके तौरपर एक दूसरा पत्र लिखा है। वह नीचे दिया जा रहा है

> २४ मईको मैंने आपको रजिस्ट्रीसे एक पत्र भेजा था, जिसमें मैंने आपसे यह अनुरोध किया था कि आचार्य गिडवानी और श्री के० सन्तानम् तथा मेरी सजाको रद करनेके आदेशकी और यदि उस समय हम लोगोके बारेमें कोई और आदेश जारी किया गया हो तो उसकी भी प्रतियाँ मुझे भेज दी जायें। अबतक न मुझे पत्रका कोई उत्तर मिला है और न आदेशोकी प्रतियाँ ही।
>
> मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि 'यंग इंडिया' के सम्पादक महोदय-को आपने अपना इस आशयका जो वक्तव्य भेजा है कि आचार्य गिडवानी,

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ५-६-१९२४, उपशीर्षक 'आचार्य गिडवानीके बारेमें'।

श्री सन्तानम् और मैं कुछ शर्तोंपर रिहा किये गये थे, वह बिलकुल गलत है और उन आदेशोंका तथा दूसरे कागज-पत्रोंका मुलाहिजा करनेसे आपको भी इस बातका यकीन हो गया होगा। मुझे भरोसा है कि इस बातका यकीन हो जानेसे आप पिछले वक्तव्यको शीघ्र दुरुस्त करेंगे और इस बातको साफ कर देंगे कि आचार्य गिडवानी और सन्तानम्की तथा मेरी रिहाई बिना किसी शर्तके हुई थी। इसलिए आचार्य गिडवानीको फिरसे मुकदमा चलाये बिना और सजा दिये बगैर कोई शर्त तोड़नेके कथित अपराधपर जेल नहीं भेजा जा सकता, क्योंकि शर्त रखी ही नहीं गई थी।

मैं आपसे फिर अनुरोध करता हूँ कि आप सजा रद करनेवाले आदेशकी एक नकल मुझे भेज दें। मैं आपसे यह भी साफ-साफ जान लेना चाहता हूँ कि क्या नाभा राज्यकी हदमें मुझे प्रवेश करनेकी मनाही है और अगर है तो किस आदेशके मुताबिक। अभी फिलहाल तो नाभा जानेका मेरा कोई इरादा नहीं है, पर अगर मेरी इच्छा वहाँ जानेकी हो गई तो मैं जानना चाहता हूँ कि मेरा स्वागत वहाँ किस तरह किया जायेगा।

हमें आशा करनी चाहिए कि प० जवाहरलाल नेहरूके इस सीधे सवालका उत्तर मिलनेमें अब और देर न होगी। अमूमन अधिकारीगण लोगोंकी पूछताछका जवाब देनेमें बेजा देरी करते है — खासकर उस हालतमें जब ऐसी पूछताछ परेशानी पैदा करनेवाली होती है। अगर इसका जवाब न मिला या असन्तोषजनक ही मिला तो वैसी हालतमें सम्भव है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री सन्तानम् कार्यसमितिसे इस बातकी इजाजत चाहे कि उन्हे वहाँ जाकर गिरफ्तार होने दिया जाये। अपने एक साथीके प्रति कर्त्तव्यके खयालसे भी ऐसा करना आवश्यक हो सकता है। पण्डित नेहरूके पत्रके आखिरी हिस्सेमें तो स्पष्टत उनकी तरफसे ऐसी चुनौतीकी भनक मिलती है। यह बात कुछ समझमे आने लायक नही है कि जब आचार्य गिडवानीके जैतो हत्या-काण्डके अवसरपर नाभा राज्यमें प्रवेश करते समय सविनय अवज्ञासे उनका कोई सम्बन्ध नही था तब उन्हे जेलमे क्यो रखा जाये। उन्होने केवल मानव धर्मकी भावनासे प्रेरित होकर ऐसा किया था और इसके लिए श्री जिमड-जैसे निष्पक्ष व्यक्तिकी गवाही मौजूद है।

नगरपालिकाएँ

एक स्थानीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्री लिखते है

आपने लोगोंसे इन (सरकारी) सस्थाओंसे अलग रहनेका आग्रह तो किया है किन्तु आपने उन लोगोंके बारेमें कुछ भी नहीं कहा जिन्होंने जिला बोर्डों और नगरपालिकाओंपर कब्जा कर रखा है। मैं जानता हूँ कि अपरिवर्तन-वादियोंमें भी बहुत-से ऐसे लोग है जो अब भी यही मानते है कि उनके जिला बोर्डों और अर्ध-सरकारी सस्थाओंमें जानेसे असहयोगके सिद्धान्तमें कोई

खलल नहीं पहुँचता। क्या उन्हे सरकारी नियन्त्रणमें काम नहीं करना पड़ता? क्या वे शिक्षा-प्रणाली या स्वास्थ्य-सफाईके क्षेत्रमें किसी प्रकारका कारगर परिवर्तन करा सकते है?

जहाँतक काग्रेसके प्रस्तावोका सम्बन्ध है, काग्रेसके सदस्योके लिए उन संस्थाओमें जाने और पदाधिकारी बननेतक का मार्ग खुला हुआ है। सच तो यह है कि बादके एक प्रस्तावके अनुसार काग्रेस जनोसे इन सस्थाओपर कब्जा करनेको भी कहा गया है। सरकारके नियन्त्रणमे होनेके कारण सिद्धान्तत तो ये सस्थाएँ सरकारी सस्थाओकी श्रेणीमें ही आती है। किन्तु हमारे असहयोगका स्वरूप विशिष्ट है और वह केवल उन खास सस्थाओसे ही सम्बन्धित है जिनके पीछे हमारा नैतिक बल तोडनेका उद्देश्य ही प्रधान है और जो सरकारकी प्रतिष्ठाको कायम रखनेमें सबसे ज्यादा सहायक है। इसलिए जिन सरकारी सस्थाओका काग्रेसने स्पष्ट रूपसे बहिष्कार नही किया है, उनके सम्बन्धमे सबसे अच्छी योजना उनको इस कसौटीपर कसना ही है कि उनसे रचनात्मक कार्यक्रममे कितनी सहायता मिलती है। यदि उनसे उस कार्यक्रममे बाधा पहुँचती है तो मेरी स्पष्ट राय है कि काग्रेसजनोको वे सस्थाएँ छोड देनी चाहिएँ। मेरे पास कई स्थानोसे ऐसे पत्र आये है जिनमे शिकायत की गई है कि काग्रेसजनोके नगरपालिकाओ और जिला बोर्डोमे प्रवेश करनेके कारण समस्त रचनात्मक कार्य ठप हो गये और कुछ स्थानोमे तो काग्रेसजन ही एक-दूसरेके खिलाफ उम्मीदवार बनकर खडे हुए थे। इसमे शक नही कि जहाँ-कही ऐसी परिस्थिति हो, वहाँ काग्रेसजनोको अलग ही रहना चाहिए। काग्रेसजनोका आपसमे एक-दूसरेके खिलाफ उम्मीदवार होना तो मेरी समझमे ही नही आता। काग्रेसजन एक अनुशासनमे बँधे हुए है और केवल वही काग्रेसजन चुनावोमे उम्मीदवार हो सकते है, जिन्हे सम्बन्धित काग्रेस कमेटी उसके लिए चुने। जहाँतक (प्राथमिक) शिक्षा और स्वास्थ्य-सफाईपर नियन्त्रण कर सकनेका प्रश्न है, आम तौरसे यह कहा जा सकता है कि उन मामलोमे नगर-पालिकाओको बहुत-कुछ अधिकार है। बहरहाल, चूँकि नगरपालिकाएँ ज्यादातर चुने हुए प्रतिनिधियोकी सस्थाएँ है, इसलिए उचित अवसर आनेपर उनके जरिये सविनय अवज्ञाकी काफी गुंजाइश है।

खतरनाक रिवाज

(१२ जूनके) 'हिन्दू' मे मैने अभी एक विवरण पढा, उसे मेरे साथ हुई भेटका विवरण बताया गया है। मुझे एक सज्जनके साथ बहुत देर तक बातचीत करनेकी बात याद पडती है, पर मुझे यह जरा भी खयाल नही था कि वे भेटकर्ताके रूपमे आये है। मैने समझा कि उनके मनमे कुछ वास्तविक शकाएँ है और उनका वे समाधान कराना चाहते है। इसीलिए मैने उनकी ओर बहुत ध्यान नही दिया और धीरजके साथ उनके तमाम सवालोके जवाब दिये। चूँकि मेरे पास वक्त बहुत ही कम था, अतएव साधारणतया उन्हे भेट देनेसे मैने जरूर इनकार कर दिया होता और इतनी लम्बी भेट तो कभी न देता। मेरे पास छिपानेकी कोई बात नही है। अगर लोगोको मुझसे या मेरी निस्बत कोई बात मालूम हो जाये और वे उसे प्रकाशित करना चाहे

तो उसके लिए वे पूरी तरह आजाद है। लेकिन कोई मेरी बातोको गलत रूपमे पेश करे, यह चीज निश्चय ही मुझे नापसन्द है। अगर वे छापनेके पहले मुझे दिखा दे तो मुझे कोई एतराज न हो। तथाकथित भेटका छपा हुआ विवरण, मैंने जो-कुछ कहा उसका विकृत रूप है। मिसालके तौरपर उसमे कहा गया है कि मैंने "हर मुसलमानको लफगा" बताया है। मैंने तो कभी सपनेमे भी यह खयाल न किया होगा कि हर मुसलमान लफगा है। मै हकीम साहबको लफगा नही मानता, और हकीम साहब ही क्यो, मै अपने इतने सारे मुसलमान दोस्तोमे से किसीको भी लफगा नही मानता। मै कितने ही उद्दण्ड मुसलमानोको जानता हूँ, लेकिन ऐसा याद नही आता कि लफगा शब्दका जो स्वीकृत अर्थ है उस अर्थको चरितार्थ करनेवाले किसी लफगे मुसलमानसे मै मिला होऊँ। और वैसे मै हर मुसलमानको उद्दण्ड भी नही समझता। मुझपर यह कहनेका इलजाम लगाया गया है कि "सरकार अभी तो मेरी उतनी परवाह नही कर रही है, पर ज्यो ही मैंने देशमे छ महीनेका एक दौरा किया कि उसकी रूह काप उठेगी।" अब इनपर मेरा कहना यह है कि एक ओर जहाँ बडे अभिमानके साथ मै यह मानता हूँ कि सरकार कभी मेरी बातो और कामोको उदासीनताकी दृष्टिसे नही देखती और वही दूसरी ओर मुझमे इतनी विनम्रता है कि मै ऐसा न मानूं कि मेरे किसी दौरेसे उसकी रूह काँप उठेगी। हाँ, अगर किसीकी भी कोशिशसे सच्ची हिन्दू-मुस्लिम-एकता कायम हो जाये तो उसकी रूह जरूर काँप उठेगी। मुलाकात करनेवाले सज्जनने एक खद्दर कार्यकर्ताकी धोखेबाजीकी भी चर्चा की है। यह तो किसीके सौजन्यका सरासर दुरुपयोग करना है। बात यह हुई कि मैंने उन्हे उस बातचीतके दौरान मौजूद रहने दिया जो मै अपने कुछ साथी कार्यकर्ताओसे कर रहा था। उस दौरान किसी कथित धोखेबाजीकी भी चर्चा हुई थी। मुझे अबतक पता नही चला है कि दरअसल ऐसी कोई धोखेबाजी कही की भी गई थी या नही। मैंने यहाँ कुछ जबरदस्त गलतबयानियोके नमूने सामने रखे है। इसमे कोई शक नही कि "मुलाकाती सज्जन" ने सदाशयतासे ही ये बाते लिखी है, लेकिन अपनी जिम्मेदारीको न समझकर काम करनेवाले ऐसे सदाशय मित्र दुराशय प्रतिपक्षियोसे भी ज्यादा नुकसान पहुँचाते है। अतएव जो लोग मुझसे मिलने आते है उनसे मेरी प्रार्थना है कि जबतक मै एक जिम्मेदारी सँभाले हुआ हूँ, तबतक वे मुझपर मेहरबानी रखे रहे। मेरे इस जिम्मेदारीसे मुक्त हो जानेपर वे मेरे लेखो और कार्योके सम्बन्धमे जैसा चाहे वैसा करे। मेरी मुलाकात या बातचीतका विवरण पढनेवाले लोगोसे भी मेरा निवेदन है कि वे तबतक उन्हे विश्वसनीय न माने जबतक उन्हे मैंने प्रमाणित न कर दिया हो।

मशीन-कताई बनाम हाथ-कताई

एक मित्रने जो किसी समय चरखेके बडे भारी समर्थक थे नीचे लिखे आशयका पत्र भेजा है।

> आपकी यह [चरखा सम्बन्धी] हलचल फिजूल है। आप 'यग इडिया' और 'नवजीवन'में पुरानी और बासी बातें भरनेमें अपने शरीर और मनको

शक्ति क्यो खर्च कर रहे है? मुझे उनको पढनेमें सार दिखाई नहीं देता? मैंने अनुभवसे देखा है कि चरखा किसी कामका नहीं है। लोगोने उत्साहकी पहली लहरमें जो चरखे खरीदे, वे अब पड़े-पड़े सड रहे है। उनसे कोई काम नहीं बननेका।

मै आपका ध्यान एक दूसरी बातकी ओर दिलाना चाहता हूँ, जो उससे बेहतर है। हाथ-कताईकी जगह मशीन-कताई शुरू कर दीजिए। हरएक ताल्लुकेमें एक कताई कारखाना खोल दिया जाये और उसका मुनाफा राष्ट्रकी सम्पत्ति माना जाये। कारखानोंको सिर्फ देशभक्त लोग ही चलायें; अपने लाभके लिए नहीं, बल्कि देश-प्रेमसे प्रेरित होकर। सूत सिर्फ मुकामी बुनकरोमें ही बाँटा जाये। जो कपड़ा तैयार हो, वह उसी ताल्लुकेमें रहे। इससे समय और किरायेकी फिजूलखर्ची बच जायेगी। आप यदि पहले एक ताल्लुकेमें इसकी आजमाइश करें तो वह देशकी बडी सेवा होगी।

यह दलील ऊपरसे अच्छी दिखाई देती है और ऐसे आदमीकी तरफसे पेश की गई है, जिन्होने अपने ढगसे चरखेको आजमाकर देखा है, इसलिए मै उन लोगोके लिए, जो इसी किस्मके विचार रखते हो, इस दलीलकी जाँच करना चाहता हूँ। पाठकोको यह बतलानेकी जरूरत नही है कि यह तजवीज उतनी ही पुरानी है जितना कि खादी-आन्दोलन। कहावतके खोटे सिक्केकी तरह वह फिर-फिर कर वापस आती है।

यह मित्र इस मूलभूत सत्यको भूल गये है कि चरखेके द्वारा उन करोडो लोगोको एक काम और उसके जरिये कुछ आमदनी मिल जाती है, जिनको फाकाकशीसे बचनेके लिए अतिरिक्त आमदनीकी जरूरत है। हर घरमे करघा रखना नामुमकिन है। हर गाँवमे एक करघा और हर घरमे एक चरखा, यह नियम होना चाहिए। यदि हरएक ताल्लुकेमे एक कताईका कारखाना खडा करे तो इसका नतीजा यही होगा कि मुट्ठी-भर लोगो द्वारा बहुतसे लोगोके शोपणको राष्ट्रीय रूप मिल जायेगा। ताल्लुका-मिलोमे सब लोगोको काम नही मिल सकता। इसके अलावा हमको कमसे-कम २,००० ताल्लुकोके लिए मशीने बाहरसे मँगानी होगी। फिर, लोगोको उनकी व्यवस्था और कामकी तालीम देकर विशेषज्ञ बनाना होगा। कल-कारखाने घास-पातकी तरह अपने-आप हर जगह नही फैल सकते, पर चरखे फैल सकते है। चरखेकी नाकामयाबीका असर किसीपर नही होता, परन्तु एक ताल्लुकेके कारखानेकी असफलतासे उस ताल्लुकेके लोगोपर मुसीबत आ जायेगी। मेरी रायमे इन मित्रकी बात बिलकुल अव्यावहारिक है। फिर भी मैंने उनसे कहा है कि अगर इसपर उनकी श्रद्धा हो तो वे इसे आजमाकर देखे। मुझे तो अपनी ही नाव खेनी है, क्योकि दूसरी कोई चीज मुझे आकर्षित नही करती। मेरे लिए तो चरखेका निराला ही जादू है।

हो सकता है कि मै इतना जड होऊँ कि मुझे उसकी असफलता नजर ही नही आती। वैसे यह बात नही कि यदि कोई मुझे मेरी गलती दिखा सके तो मै उसे देखनेको तैयार नही हूँ।

जिस दिन मुझे इन मित्रका पत्र मिला उसी दिन मुझे एक दूसरे मित्रका भी पत्र मिला, जिसमें वे कहते हैं कि उन्हे कल-कारखानेका अनुभव दस वरससे है। उन्होने मशीन-कताई और हाथ-बुनाईको आजमाकर देखा है और अब वे हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके रोजगारमें लगे हुए हैं। वे कहते हैं कि यदि हमे अपने आर्थिक कष्टोसे छुटकारा दिलानेकी शक्ति किसी चीजमे है तो वह हाथ-कताई और हाथ-बुनाईमे ही है। वे आखिर दम तक यह कहते रहनेके लिए तैयार हैं कि यही हमारी आर्थिक दुरवस्थाका हल है। मै यह अनुभव यहाँ इसलिए दे रहा हूँ कि लोग इसे भी आजमाकर देखें। अभी तो सारा प्रयोग ही इतनी प्रारम्भिक अवस्थामें है कि उसपर कोई मुस्तकिल राय कायम नही की जा सकती, परन्तु इतनी बात तो साफ है कि चरखा ही आज बहुतेरे गरीब घरोमें राहत देनेका जरिया बन रहा है और दूसरी कोई चीज़ उसकी जगह नही ले सकती। और निम्नलिखित उक्ति चरखेके लिए जितनी सचाईके साथ कही जा सकती है, उतनी किसी दूसरी चीजके लिए नही

"इसपर किया हुआ श्रम व्यर्थ नही जाता और इसमें निराशाके लिए स्थान नही है। इसका स्वल्प भी महान् सकटोसे बचा सकता है।"

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, २६-६-१९२४

१६०. भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें[1]

अहमदाबाद
२७ जून, १९२४

अध्यक्षने पण्डित मोतीलाल नेहरू द्वारा नियमका प्रश्न उठाये जानेपर श्री गाधीसे उसका स्पष्टीकरण करनेके लिए कहा। श्री गाधी हिन्दीमें बोले।[2] उन्होने

१. गांधीजीने अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी २७ जूनसे लेकर २९ जून तककी बैठकमें चार प्रस्ताव पेश किये थे। उनके द्वारा पहला प्रस्ताव पेश किये जानेपर पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा श्री चित्तरजन-दासने प्रस्तावका विचारार्थ पेश किया जाना ही नियमके विरुद्ध बतलाया। श्री दासका कहना था कि धारा २१ के अन्तर्गत केवल नये विषयपर ही विचार किया जा सकता है। जबतक कोई नया प्रश्न नहीं उठाया जाता तबतक काग्रेस अपने नियम बनानेके अधिकारोंका उपयोग कर सकती है। धारा ३१ के अन्तर्गत कताईको अनिवार्य बनानेका यह प्रस्ताव वैध नहीं हो सकता, क्योंकि इससे निर्वाचकोंके अपना प्रतिनिधि चुननेके मूल अधिकारका उल्लघन होता है। इसके अतिरिक्त इस प्रस्तावसे पदेन सदस्योंपर, जैसे भूतपूर्व अध्यक्षोंपर, अनुचित प्रहार होता है और उन्हें जो सवैधानिक अधिकार इस समय उपलब्ध हैं, उनसे वे वंचित होते हैं। गाधीजीके भाषणके विवरण अ० प्रे० ऑफ इडियाके सवाददाता तथा हिन्दूके विशेष सवाददाताने प्रस्तुत किये गये थे। यह विवरण उन दोनोंके आधारपर तैयार किया गया है। प्रस्तावके लिए देखिए, "अग्नि परीक्षा", १९-६-१९२४।

२ मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है। यहाँ अग्रेजीसे अनुवाद दिया गया है।

कहा कि मैं अपना प्रस्ताव पेश करते हुए कांग्रेस संविधानसे बाहर नहीं जा रहा हूँ। धारा २१ और ३१में, जिनका आश्रय पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा श्री दास ले रहे हैं, कुछ शर्तें दी गई हैं। मेरे विचारमें इससे शर्तोंका उल्लंघन नहीं होता। मैं यह मानता हूँ कि जब कांग्रेसका अधिवेशन नहीं हो रहा होता तब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको पूरे अधिकार प्राप्त रहते हैं। मेरे प्रस्तावोंसे चुनावका अधिकार सीमित नहीं होता, उनमें तो निर्वाचकोंको केवल आवश्यक कार्रवाई करनेकी सलाह दी गई है।

उन्होंने आगे कहा कि इस तरहके नियम, जिनमें सदस्योंसे कांग्रेसके कार्यक्रम-पर सुचारु रूपमें अमल करानेकी व्यवस्था हो, बनानेका पूरा अधिकार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको ही है। निश्चय ही निर्वाचकोंको अपना प्रतिनिधि चुननेका निर्बाध और पूरा अधिकार है। किन्तु वे एक बार चुनाव हो जानेपर अपने प्रतिनिधियोंके आचरणपर किसी प्रकार भी नियन्त्रण नहीं रख सकते। केवल अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ही ऐसा कर सकती है। निस्सन्देह इस कमेटीका यह कर्त्तव्य है कि वह कोकानाडामें पास किये गये कांग्रेसके प्रस्तावोंपर अमल करानेकी दिशामें आने-वाली सभी रुकावटोंको दूर करे। इन प्रस्तावोंमें असहयोग कार्यक्रमको पूर्णरूपसे स्वीकार किया गया है और उनसे कार्य करनेकी पद्धतिका सुचारु संचालन सुनिश्चित हो जाता है। यदि यह दलील दी जाये कि प्रान्तीय कमेटियोंको सदस्यताकी शर्तें लगानेके उद्देश्यसे अपने नियम स्वयं बनानेका अधिकार है तो इसीसे यह अर्थ निकलता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको भी, जो सारी सत्ताका मूल स्रोत है, अपनी सदस्यतापर शर्तें लगानेका वैसा ही अधिकार है।[1]

श्री गांधीने भाषण जारी रखते हुए कहा कि एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई है। कांग्रेसने कुछ प्रस्ताव पास किये हैं। अब अ० भा० कांग्रेस कमेटीको उनपर अमल कराना है। भूतपूर्व अध्यक्षोंके बारेमें मेरा कहना है कि उन्हें भी सलाह तो दी जा सकती है। यदि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ अपने नियम आप बनायें तो अ० भा० कांग्रेस कमेटीको अपने नियम बनानेका और भी विशेष और विस्तृत अधिकार है। इसलिए मेरे प्रस्ताव किसी भी प्रकार नियम-विरुद्ध नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २८-६-१९२४

१. यह अनुच्छेद हिन्दूके विशेष संवाददाताकी रिपोर्टसे लिया गया है।

१६१ पत्र : एक शोकाकुल पिताको

२८ जून, १९२४

प्रिय मित्र,

मेरे पुत्रको लिखे गये जॉर्ज जोजेफके पत्रसे मालूम हुआ कि ऐसे समय जब आपका बहादुर बेटा कृष्णस्वामी जेलमें है, आपकी बेटी नही रही। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि आपका एक लड़का पागल है। चार पुत्रोंका पिता होनेके कारण मैं इस शोकावस्थामें आपकी दशाको समझ सकता हूँ। ईश्वरमें हमारा विश्वास केवल तभी सिद्ध होता है जब हम इस प्रकारका शोक सहन करनेमे समर्थ बनते है, शोकको मौन होकर सहना हमारे विश्वासका दृढ़तर प्रमाण प्रस्तुत करता है। ईश्वर आपको इसके लिए आवश्यक बल दे। जब मैं आफ्रिकी जेलोंमें तमिल सीख रहा था, तब मैंने तमिलकी यह सुन्दर लोकोक्ति पढ़ी थी, "जो असहाय है, उनका एकमात्र सहायक ईश्वर ही होता है।"[1] मैं तमिल लगभग भूल गया हूँ, किन्तु इस कहावतकी मधुर ध्वनि मेरे कानोंमे आज भी गूंज रही है। इससे मुझे अक्सर बल मिलता है। ईश्वर करे उससे आपको भी बल मिले।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ६८३३) की फोटो-नकलसे।

१६२. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें

अहमदाबाद
२८ जून, १९२४

भाइयो,

मैंने अपने उत्तरदायित्वको भली भाँति समझकर ही इन प्रस्तावोंका मसविदा तैयार करके यहाँ आपके सामने उन्हें पेश करनेकी जिम्मेदारी ली है। सौभाग्यसे अथवा दुर्भाग्यसे मैं कार्यकारिणी समितिके[2] सदस्योंमेंसे अधिकांश लोगोंको इन प्रस्तावोंके पक्षमें तैयार कर सका हूँ, मुझे जो-कुछ कहना था उसके विषयमें मैं 'यंग इंडिया' मे लगभग सभी कुछ लिख चुका हूँ। इसलिए अब इन प्रस्तावोंको पेश करते समय मेरे पास कहनेके लिए कुछ विशेष नही बचा है। यह बात मेरे ध्यानमें है कि मैं जिन प्रस्तावोंको पेश करने जा रहा हूँ उनके सम्बन्धमें लोगोंमें भारी

१ गांधीजीने यहाँपर तमिल लिपिमें लिखा है 'दिक्कट्रवर्कुं दैवमे तुणै'।
२ जिसकी बैठक २६ जूनको हुई थी।

मतभेद उठ खडा हुआ है और परस्पर बहुत अधिक कटुता उत्पन्न हो गई है। इतना ही नही इन मतभेदोको लेकर आजतकके साथी हमसे बिछुड जाये, इस बातकी नौबत आ सकती है। और मैं इस सम्भावनासे बेखबर नही हूँ। मैने यहाँ "साथी" शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया है, क्योकि "मित्रता" एक ऐसी डोरी है जिसे चाहे जितना खीचे वह कभी टूटती नही। उसका यही स्वभाव है। और मैं यह बताये देता हूँ कि देशबन्धु[1], पण्डित मोतीलाल, मौलाना आजाद और अन्य अनेक लोग आज भले ही मेरे विरुद्ध खडे हुए दिखाई देते हो, लेकिन इससे हमारे बीच मित्रताका जो सम्बन्ध है वह कभी टूटनेवाला नही है। जिस मनुष्यको सार्वजनिक जीवनमे भाग लेना है उसे समय आनेपर अपने निकटतम मित्रोसे अलग होने और नये साथियोकी तलाश करनी पड सकती है। ऐसा प्रसग उपस्थित होनेपर उसका सामना नम्रतासे परन्तु दृढतापूर्वक करना चाहिए। मालवीयजी और मैं दोनो विरोधी दलोमे है, लेकिन इससे कोई यह नही कह सकता कि हमारी मित्रतामे कभी कोई कमी आई है।

मतभेद होनेपर दो मित्रोमे परस्पर मैत्री भी अवश्य टूट जानी चाहिए — ऐसा मानना तो गम्भीर भूल है। हाँ, इससे एक साथ मिलकर काम करनेका सुयोग अवश्य खतम हो जाता है, फिर भी हमारे साथके बारेमे चाहे कुछ भी कहा जाये, इतिहास इस बातकी साक्षी अवश्य देगा कि हमारी मित्रता जैसी थी वैसी ही अखण्डित रही है।

मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे इन प्रस्तावोपर इस तरहकी भावना मनमे रखकर ही विचार करे। देशमे जैसी स्थिति है मुझे उसकी झाँकी कल मिली। मैने कई वर्षोतक वकालत की है और मेरा अनुभव है कि लोग जब एक बार किसी मुद्दे पर अपनी राय कायम कर लेते है तब उसके विरोध अथवा समर्थनमे तरह-तरहकी कानूनी बारीकियाँ ढूंढ निकालनेमे दिक्कत नही पडती और इसी कारण मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि मैने अपने प्रस्तावोके विधि-सम्मत होनेके पक्षमे जो दलीले दी है यदि वे भी मेरे तत्सम्बन्धी दृष्टिकोणसे रगी हुई हो तो इसमे आश्चर्यकी कोई बात न होगी। मैं यह स्वीकार करनेके लिए भी तैयार हूँ कि मुझसे मतभेद रखनेवाले सज्जन, जो मेरे इन प्रस्तावोको काग्रेसके सविधानके नियमोका उल्लघन करनेवाला मानते है और इसलिए उन्हे अवैध कहते है, वे प्रामाणिक रूपसे ऐसा मानते है।

श्री श्रीनिवास आयगार[2] और मेरे बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे बीच निकटतम मैत्रीका नाता है, ऐसा मैं कह सकता हूँ। उन्होने आज सुबह मेरे पास आकर मुझसे पूछा, "आपने कही यह तो नही कहा है, यदि दोनो पक्षोके मत समान आये तो मैं काग्रेससे निकल जाऊँगा?" मैने यह बात कही तो है, तथापि मैं इन प्रस्तावोको पेश करनेका आग्रह रखता हूँ। इसका कारण यह है कि मैं, आप और सारा देश इस समय कहाँ है — मैं यह बात जान लेनेके लिए उत्सुक हूँ। यदि मैं यह देखूं कि इससे झगडा-फसाद ही बढेगा और कडवाहटके अलावा कुछ हाथ नही

१. चित्तरजन दास।

२. मद्रासके वकील और काग्रेसी कार्यकर्ता, १९२६ में गोहाटी काग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष।

लगेगा और मेरे पक्षने भी मेरे प्रति व्यक्तिगत वफादारीके कारण ही मेरे पक्षमें मत दिये है तो मै काग्रेससे अपना सम्बन्ध तोड लूंगा।

मेरी स्थिति विषम है। आज देश मुझसे नेतृत्वकी आशा रखता है। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मै कुछ निश्चित शर्तोपर ही नेतृत्व कर सकता हूँ। लेकिन इसके लिए मुझे अपनी जरूरतके साधनो और उपकरणोकी खोज करनी होगी। इसीलिए मैंने आज देशमे मतभेद उत्पन्न होने और प्रियसे-प्रिय मित्रोसे जुदा होनेकी जोखिम उठाकर भी इन प्रस्तावोको पेश किया है।

लेकिन आज जो स्थिति है उसमे मेरी अक्ल काम नही करती। इसलिए आपको या तो किसी दूसरे नेताकी तलाश करनी होगी या नेतृत्वकी मेरी शर्तें स्वीकार करनी होगी। मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि इसके अलावा और कोई रास्ता नही है। विना किसी प्रयोजनके कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर विधि-सम्मत सविधानका उल्लघन नही करना चाहता। मैंने तीसरे प्रस्ताव[1] मे उल्लघन किया है। मैंने कहा है कि कोई सविधान तभीतक अच्छा कहा जा सकता है जबतक वह हमे आगे बढनेमें मदद दे। जब वह हमे पीछे खीच रखने अथवा कायर बनानेमे कारणीभूत होता जान पडे तब हमे ऐसा नही होने देना चाहिए। यह सच है कि यदि काग्रेस प्राणवान् सस्था है तो वह आपको सविधानका ऐसा उल्लघन करनेपर दण्ड देगी। मैं तो कहता हूँ कि यदि काग्रेस दण्डित करे और हमे निकाल बाहर करे तो हममे वहाँसे निकल जाने और अधिक अच्छे सेवकोके लिए जगह खाली करनेकी हिम्मत होनी चाहिए। लेकिन यदि हम यह मानते हो कि हम वर्तमान सविधानको रौदे बिना और आगे बढे विना स्वराज्यको निकट नही ला सकेगे तो सविधानको ताकपर रखना और उसका उल्लघन करना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है। ऐसा होनेपर भी जब मैंने देखा कि कार्यकारिणी समिति मेरे प्रस्तावोको अपनी सिफारिशके रूपमें अ० भा० का० कमेटीके आगे रखनेके लिए तैयार है तब मैंने अपने तीसरे प्रस्तावमे कुछ परिवर्तन कर दिये।

मैं आज सुबह तीन बजेसे अपने मनमे सोच रहा हूँ कि इस अवसरपर मेरा धर्म क्या है। मैंने चारो ओरसे विचार करके देखा। पण्डितजीके मेरे विरुद्ध कानूनी आपत्ति सम्बन्धी प्रस्तावपर प्राप्त मतोसे पता चलता है कि बगालको छोडकर अधिकतर प्रान्त इस तरहके कार्यक्रमको स्वीकार करनेके पक्षमे है। वस्तुत देखा जाये तो कलका मतदान परिस्थितिका सच्चा चित्र उपस्थित करता है। यदि यह अ० भा० काग्रेस कमेटीकी मन स्थितिका सच्चा परिचायक हो तो मेरा इस निर्णयपर पहुँचना उचित ही हुआ है कि अधिकाश प्रान्त इन प्रस्तावोके पक्षमे है। इसलिए मैंने सभी प्रान्तोके एकमत होनेकी सम्भावनापर विचार किया। खादी कोई छोटी-मोटी चीज नही है। इसलिए नही कि हम खादी पहनने लगे है, बल्कि इसलिए कि खादीने हमारे जीवनमे एक ऐसी वस्तुके प्रतीकके रूपमे प्रवेश किया है जिसे हम किसी अन्य तरीकेसे नही पा सकते है। इस समय अकेली खादी ही हमे एक सूत्रमे बाँध सकती है। इसके द्वारा

१ प्रतिनिधियोंके चुनावसे सम्बन्धित।

हीं हम देगके आम लोगोके साथ निकटताका सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। आप विधान परिषदो अथवा अदालतोमे जाकर देशको सूत्रबद्ध नही कर सकेगे।

अभी कल ही एक देशी मजिस्ट्रेटने एक नौजवान असहयोगीको[1] जेल भेजा है। जो सरकार हमे कुचल डालना चाहती है मै तो उसके दमनकी कुछ भी परवाह न करनेवाले हजारो नौजवानोको कटिबद्ध खडा देखना चाहता हूँ। मै तो मातृभूमिकी वेदीपर दस हजार प्रागजी-जैसे युवकोकी आहुति देनेके लिए तैयार हूँ, क्योकि मै देखता हूँ कि सरकारकी अदालतोकी ऐसी अवमानना करना हम लोगोके लिए जरूरी हो गया है। मै विना किसी सकोचके कहना चाहता हूँ कि यदि हम ऐसा कर सके तो इस नौकरशाहीके लिए लोगोकी भावनाओको इस प्रकार गर्वपूर्वक कुचलना असम्भव हो जाये। मुझे लगता है, हमे सरकारको यह दिखा देनेकी जरूरत है कि वह हमको कुचल नही सकती और कुचलनेकी हिम्मत भी नही कर सकती।

पण्डितजी[2] स्वय भी जानते है कि अकेली विधान परिषदे स्वराज्य दिलानेके लिए पर्याप्त नही है। पण्डितजीके मतानुसार विधान परिषदे सव-कुछ नही है। वे भी चाहते है कि सारा देश उनके पीछे रहे। वे चाहते है कि सविनय अवज्ञाके उत्साहसे उद्वेलित जनसमुदाय उनके पीछे चले ताकि वे अपने विधान परिषदोके कार्यको प्रभावकारी वना सके। मै कहता हूँ कि इस सम्वन्धमे उनका विधान परिषदोमे किया गया कार्य कुछ अधिक लाभप्रद नही हो सकता। हममे से कुछ लोगोके जीवनमे विधान परिषदे भले ही महत्वपूर्ण स्थान रखती हो, परन्तु तीस करोड लोगोके जीवनकी दृष्टिसे इनका कोई महत्व नही है और मै आपसे इन तीस करोड लोगोके जीवनको ध्यानमे रखकर ही इन प्रस्तावोपर विचार करनेकी प्रार्थना कर रहा हूँ। क्या आप अपने लाखो और करोडो देशी भाइयो और बहनोके जीवनमे प्राण फूंकनेके लिए उत्सुक है? क्या आपको गाँवोमे वसी हुई इस गरीव प्रजाके वीच जाकर उसे सुसगठित नही करना चाहिए? आप उस स्थितिकी कल्पना करे जब ५,००० लोग वडी-वडी सभाओका आयोजन करके उनमे लम्बे-लम्वे भाषण देनेके वजाय गाँव-गाँव कातने और पीजनेवालोके रूपमे फेरी लगायेगे और स्वय धुनकर और कातकर लोगोको हिन्दुस्तानकी खातिर सूत कातनेके लिए कहेगे। श्रद्धा और बुद्धिकी प्रखरताके विना यह चित्र आपके हृदयपर खिच नही सकता। चरखा हिन्दुस्तानकी तीस करोड जनताके साथ आपको एक सूत्रमे वाधनेवाली कामधेनु है और यदि आप लोगोके साथ इतना निकटताका नाता जोडना चाहते हो तो आपको इस कसौटीपर खरा उतरना ही होगा।

आप तनिक विचार करके देखे। एकमात्र चरखा ही निम्नसे-निम्न देशवासियोसे हमारा नाता जोडता है। मै चरखेको एक व्यर्थकी देवमूर्ति नही बना देना चाहता। यदि मुझे दिखाई दे कि यह स्वराज्य प्राप्तिके कार्यमे विघ्नरूप है तो मै उसे तुरन्त जला दूंगा। मै इस तरहसे मूर्तिभजक भी हूँ और इस अर्थमे मुसलमान हूँ, तथापि

१ प्रागजी देसाई।

२ प० मोतीलाल नेहरू।

मै मूर्तिपूजक भी हूँ। यदि मुझे ऐसा जान पडे कि नर्मदा नदीका एक पत्थर भी मुझे अपने इष्टदेवपर चित्त एकाग्र करनेमे मदद देगा तो मै उसे अवश्य सजोकर रखूंगा और उसकी पूजा करूँगा। इस अर्थमे मै हिन्दू हूँ।

मेरे एक अन्य मित्रका कहना है कि इस चरखेको इस तरह जपकी माला बना डालना ठीक नही है। मै स्वीकार करता हूँ कि मेरे लिए तो चरखा जप-माला ही बन गया है और मै इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि आप सबको भी मेरी इस चरखा सम्बन्धी श्रद्धाकी छूत लग जाये। यदि आप केवल मुझपर ही श्रद्धा करते हो और चरखेपर नही तो आप निश्चित जाने कि आप धुएँको मुट्ठीमे बाँधने-की कोशिश कर रहे है। आप २,००० गज सूत मेरे सिरपर मारेगे तो इससे क्या बनेगा? मेरा समाधान इतना करनेसे ही नही होगा। मुझे फाँसीपर लटकानेके लिए तो एक ही व्यक्ति द्वारा भेजा हुआ सूत पर्याप्त है। लेकिन मै इस तरहकी मौत तो नही चाहता। मै तो देशकी खातिर जीना और देशकी खातिर ही एक निष्कलक मनुष्यके रूपमे — देशके सबसे अधिक निष्कलक मनुष्यके रूपमे — मरना चाहता हूँ। मै आपको ऐसी श्रद्धासे ओतप्रोत देखना चाहता हूँ, और यदि आपमे ऐसी श्रद्धा हो तभी आप मेरे पक्षमे मत दे। याद रखे कि आपको मेरी श्रद्धा नही वरन् स्वय अपनी श्रद्धाको देखना है। आपमे श्रद्धाका होना जरूरी है।

अब मै जो मेरे विरुद्ध मत देना चाहते है उनसे दो शब्द कहता हूँ। कुछ लोगोने मुझपर आरोप लगाया है कि मैने प्रस्तुत प्रस्तावोको पेश करनेमे ब्रिटिश नौकरशाहीका ढग अख्तियार किया है। हम इस नौकरशाहीसे इसलिए नाराज है कि हमने इसकी स्थापना नही की है और इसके कर्मचारियोकी नियुक्ति भी हमने नही की है। लेकिन यदि हम अनुशासनकी खातिर अपने व्यवहारके बारेमे जान-बूझकर कोई नियम बनायें और उसे अपने लिए बन्धनकारी माने तो हमें उसके प्रति रोष प्रदर्शित क्यो करना चाहिए? इसके अतिरिक्त मै आज आपके सामने जो-कुछ पेश कर रहा हूँ वह तो एक ऐसा सिद्धान्त है जो अनादिसे चला आ रहा है और वह यह है कि हम जो-कुछ कहे उसके अनुसार चले। यदि हम दृढनिश्चयी, साहसी और बलवान् राष्ट्रकी रचना करना चाहते है तो हमे स्वय अपने ऊपर कडेसे-कडे नियम लगाने होगे। सैनिक शिविरमे जाकर देखिए। मै तो सैनिक शिविरमे रहा भी हूँ और मैने उसमे स्वय काम भी किया है। उसमे आपको कई दिनोतक फाका करना पड सकता है, जिसे मुँहसे भी न लगाया जा सकता हो, ऐसा पानी पीना पड सकता है और कभी-कभी अफसरोकी ठोकरे भी खानी पड सकती है, और वह भी हँसते-हँसते। यह हालत तो उन शिविरोकी है जिनमे पैसे लेकर दूसरोके लिए लडनेवाले सैनिक रहते है। हम तो स्वेच्छासे देशकी सेवा करनेके लिए निकले हुए स्वयसेवक है और जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि है। हमारे सम्बन्धमे सैनिक शिविरकी उपर्युक्त शर्ते कितनी कडाईसे लागू होनी चाहिए? आप अनुशासनके नियम लागू करनेपर नाराज कैसे हो सकते है? यदि आप अन्त करणसे इस तरहके अनुशासनके विरुद्ध है तो आप खुशी-खुशी इसमे से निकल जाये और बाहर निकलकर देशके लोकमतको अपनी ओर करनेके कार्यमे जुट जाये, इसीमे आपकी शोभा है। लेकिन

आपको यह समझ लेना चाहिए कि आप जो प्रस्ताव एक बार पास कर दे उसपर पूरी तरहसे अमल करना आपका पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है। इस कर्त्तव्यके आगे हममे से सर्वश्रेष्ठ मनुष्यको भी झुकना चाहिए।

यदि हम तैयार न हो, यदि हममे फूट हो और यदि अग्रेज हमे आज ही स्वराज्य दे दे तो भी हमारे पारस्परिक झगडे-फसादोकी कोई सीमा न होगी। मेरा कहना है कि यदि अग्रेजोके जानेके बाद उनके स्थानपर अफगान अथवा जापानी आनेको हो तो स्वराज्यकी योग्यता सम्बन्धी हमारी सारी बाते और कोशिशे निकम्मी है। मै तो यह देखना चाहता हूँ कि आप अग्रेजोसे स्वराज्य अपने बलपर ले, मैं आपको भेटके रूपमे स्वराज्य लेते हुए देखना नही चाहता। ब्रिटिश ससद हमारे सम्बन्धमे क्या कहती है, मुझे इसकी परवाह रत्ती-भर भी नही है। उसी तरह यूरोपके लोगोकी हमारी प्रवृत्तिके बारेमे क्या राय है, मुझे इसकी भी कोई चिन्ता नही है, लेकिन एक सामान्य नागरिक हमारे सम्बन्धमे क्या कहता है, मै यह जाननेके लिए अवश्य ही बेचैन हूँ।

मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि हम तनिक भी विचार करे तो हमे सहज ही यह दिखाई दे जायेगा कि इससे जल्दी पूरा होनेवाले कार्यक्रमकी कल्पना नही की जा सकती। इस कार्यक्रमको अमलमे लाते ही स्वराज्य मिला समझिए। १९२०–२१ के प्रसिद्ध वर्षमे आपने कुछ अशतक इस कार्यक्रमपर अमल किया था। उसका प्रभाव क्या हुआ था यह सभी जानते है। यह सब गाधीकी खातिर किया गया हो सो बात नही है। गाधीको तो अनेक बाते बेहद प्यारी है। यदि गाधीने उन सबको देशके आगे रखा होता तो लोग कदाचित् उसे दुत्कार कर हटा देते। लेकिन गाधी तो देशकी नाडी देख चुका है। वह अपने कार्यक्रमके लिए मर मिटनेको तैयार है। यदि आप मुझे आज त्याग देगे तो आप मुझे बडबडाते हुए अथवा मुँह बिगाडकर नही बल्कि विनयपूर्वक और प्रसन्नतासे बाहर जाता हुआ देखेंगे। मै बाहर रहकर स्वतन्त्र सघ अथवा मण्डलकी स्थापना करनेका प्रयत्न करूँगा। मै आपके कार्यमे विघ्न नही डालूँगा। मै अडगा लगानेकी नीतिमे विश्वास नही रखता। मै तो नितान्त शुद्ध और निर्मल असहयोगमे ही विश्वास रखनेवाला व्यक्ति हूँ और आपके साथ भी असहयोग करूँगा।

यदि आप इन प्रस्तावोको बहुमतसे पास करना चाहते है तो उसकी क्या कीमत चुकानी पडेगी? आपको इसे समझ लेना है। आपको हर महीने खादी सघको कमसे-कम २,००० गज सूत देना पडेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि आपको भी मेरी ही तरह चरखेके पीछे पागल होना पडेगा। यदि आपकी श्रद्धा इतनी प्रखर नही है तो आप इन प्रस्तावोको अवश्य अस्वीकृत कर दें। यदि आपको ऐसा जान पडे कि इस कदमको उठाना आत्मघात करना है तो आप इसके विरुद्ध मत दें और काग्रेसके आगामी अधिवेशनमें लोगोको अपनी ओर करनेका प्रयत्न करे। सच पूछिए तो काग्रेस किसी एक व्यक्तिकी थाती नही है। जो व्यक्ति देशकी अधिकसे-अधिक सेवा करेगा, वह तो उसीके हाथमें रहेगी। ऐसा कहा जाता है कि इन प्रस्तावोको पास करानेका मेरा उद्देश्य काग्रेसपर अधिनायकत्व प्राप्त करना है। जबतक मेरा दिमाग दुरुस्त

है तबतक ऐसा कहा जाये तो मुझे इसकी कोई परवाह नही। मै तो अपने आपको देशका एक अदना सेवक मानता हूँ। लेकिन सेवा करनेवाले लोगोका एक ऐसा वर्ग भी है जो कुछ निश्चित शर्तोपर ही सेवा करना स्वीकार करता है और ये शर्ते कभी-कभी किसी-किसी व्यक्तिको अधिनायकत्व स्थापित करनेकी इच्छा-जैसी जान पडती है।

मै तो ईश्वरका नाम लेकर और उसे साक्षी मानकर अपनी शर्ते आपके सामने रखता हूँ और इतना ही कहता हूँ कि इसमे मेरी इच्छा आपकी सेवा करनेके अलावा और कुछ नही है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-७-१९२४

१६३. भाषण और प्रस्ताव : दण्ड विषयक धारापर[1]

अहमदाबाद

२८ जून, १९२४

अध्यक्षने कहा : मैंने जिस प्रस्तावका सुझाव रखा था वह केवल ३७के विरुद्ध ६७ मतोसे पास हुआ है। जो स्वराज्यवादी बैठक छोडकर चले गये और जिन्होने मतदान नहीं किया — यदि उनके मत भी जोड लिये जायें तो मेरी जीत बहुत ही कम वोटोसे होती है। इसलिए मैंने कमेटीको दण्ड विषयक धारा हटा देनेकी सलाह दी है। बैठकमें उपस्थित एक सदस्यने[2] कहा है कि ऐसा करना सविधानकी भावनाके अनुकूल नहीं होगा।

श्री गाधीने इसका उत्तर देते हुए कहा : मैं आपको एक पूर्वोदाहरण देता हूँ। अमृतसर काग्रेसमें विषय-समितिमें रौलट अधिनियम विरोधी आन्दोलनके दिनोमें पजाबमें भीड द्वारा किये गये उपद्रवोके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पास किया गया था, किन्तु वह बादमें मेरे कहनेपर लगभग तुरन्त ही रद कर दिया गया।[3]

१ देखिए पिछला शीर्षक, गाधीजीका भाषण समाप्त हो जानेपर दण्ड विषयक धाराको हटानेके लिए रखा गया सशोधन गिर गया और मूल प्रस्ताव पास कर दिया गया। इसके बाद कमेटीकी बैठक औपचारिक रूपसे स्थगित कर दी गई थी किन्तु उसके तुरन्त बाद ही उसकी बैठक अनौपचारिक रूपसे गाधीजीकी अध्यक्षतामें पुन बुलाई गई।

२ शुऐब कुरैशीने कहा सदनके लिए यह उचित नहीं कि वह कुछ ही क्षण पहले पास किये गये अपने प्रस्तावको खुद ही रद कर दे। उनका विचार था कि गाधीजीकी सलाह मानकर सदन एक बुरा उदाहरण सामने रखेगा।

३ गाधीजीका समर्थन पट्टाभि सीतारामैयाने किया। इसके बाद बैठक औपचारिक बैठकके रूपमें परिवर्तित हो गई। उसकी अध्यक्षता पदेन अध्यक्ष होनेके कारण मुहम्मद अलीने की। तब गाधीजीने दूसरा प्रस्ताव रखा।

इस तथ्यको देखते हुए कि जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक जारी थी, कुछ सदस्योंने अनिवार्य कताई सम्बन्धी प्रस्तावकी दण्ड विषयक धाराके विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करनेके लिए बैठकमें से उठकर चला जाना आवश्यक समझा और इस बातको भी देखते हुए कि प्रस्ताव ३७ के विरुद्ध केवल ६७ मतोंसे पास हुआ है और साथ ही इस बातको भी देखते हुए कि यदि कुछ लोग बैठकमें से चले न जाते और अपना मत प्रस्तावके विरुद्ध देते तो प्रस्ताव गिर जाता, कमेटी यह उचित और श्रेयस्कर समझती है कि इस प्रस्तावसे दण्ड विषयक धारा, परिचयात्मक धारासहित निकाल दी जाये।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २९-६-१९२४

१६४. कुछ प्रश्न

यदि हमारे साथी हमसे जान-बूझकर दुर्व्यवहार करें, बिना कारण नाराज रहें और ईर्ष्यासे जलें तो हमें क्या करना चाहिए?

मेरे पास जो पत्र आते है उनमे यह और इस तरहके दूसरे प्रश्न होते है। मै उनमे से कुछ सवालात दे रहा हूँ। हमे अयोग्य व्यवहार करनेवालेके साथ योग्य व्यवहार करना चाहिए, जो हमसे अप्रसन्न हो उससे प्रसन्न रहना चाहिए और ईर्ष्या करनेवालेपर प्रेमभाव रखना चाहिए — मै तो इसके अलावा इस ससारमे शान्ति-पूर्वक रहनेका कोई दूसरा रास्ता नही जानता। इस तरह व्यवहारका इरादा करनेके बाद ऐसा करना सुगम और स्वाभाविक हो जाता है। जब ऐसा सरल व्यवहार करना सम्भव न हो तब एक-दूसरेसे अलग हो जाना चाहिए।

२. साधारण बातोंके सम्बन्धमें मतभेद हो और लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार व्यवहार करना चाहें तो हम क्या करें?

इस बातसे तो सामाजिक जीवनके अनुभवकी कमी सूचित होती है। यदि सभी अलग-अलग रास्तोंपर चले तो हमे जिसका रास्ता सबसे अच्छा लगे उसका साथ देना चाहिए। इस तरह अन्तत दो साथी तो हो ही जायेंगे। यदि वे सच्चे, दृढ और नम्र होगे तो अन्य लोग उनसे खुद-ब-खुद आ मिलेगे। जो मनानेसे नही मानता वह अन्तमे विवश होनेपर हार मान जायेगा।

३. यदि किसी मनुष्यका विश्वास हो कि दूसरा कार्यकर्त्ता सचमुच संस्थाको हानि पहुँचा रहा है तो उसे क्या करना चाहिए?

उसे नम्रतापूर्वक हानि पहुँचानेवाले भाईको उसकी भूल बता देनी चाहिए। यदि वह स्वीकार न करे तो स्वय उससे अलग हो जाना चाहिए ताकि हम उस

[1] इस दूसरे प्रस्तावका समर्थन वल्लभभाई पटेलने किया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक दूसरे दिन ८-३० बजे सुबहके लिए स्थगित हो गई।

हानिके भागीदार बननेसे बच जाये। इस तरह सरल भावसे बरताव करनेसे सस्थाकी हानि करनेवाले मनुष्यको और हमको तीनोको लाभ होगा।

४ यदि किसी स्थानपर मुख्य कार्यकर्ता व्यभिचारी देखनेमें आये तो हमें क्या करना चाहिए ?

यह नाजुक और भयकर प्रश्न है। सभीकी नजर नेताके आचरणपर रहा करती हे और किसीके मनमे उसके प्रति द्वेप भी हो सकता है। दुर्वल लोगोको दूसरोके अवगुण देखनेके अलावा और कुछ नही सूझता। इसलिए आप ऐसी भयकर अफवाहोपर कदापि विश्वास न करे। सभी नेताओके वारेमे जो-कुछ कहा जाता है, उस सभीको सच मान ले तो इस जगतमे एक भी मनुष्य साथ देनेके योग्य न वच रहे। दोप तो सभी मनुष्योमे होते हैं। तुलसीदासका कहना है कि जड-चेतन सव दोपमय हैं। सन्तरूपी हस दोपरूपी वारि-विकारको तजकर गुणरूपी दूव ही ग्रहण करते हैं।[1] लेकिन हम आँखोसे देखी हुई घटनाको अनदेखी नही कर सकते। हमने खुद न देखी हो, किन्तु हमारी इच्छा न रहते हुए भी हमे ऐसे प्रमाण मिल जाये मानो हमने वस्तुत वह देखी है तव हम क्या करे ? यदि हममे नम्रता और निर्भयता हो तो हम वह वात उस नेतासे अवश्य कहे और उससे नेतृत्व छोडनेका अनुरोध करे। अगर वह वैसा न करे तो हम उसी कारणको वताकर स्वय उसका त्याग कर दे।

इससे एक महत्त्वपूर्ण सवाल उठता है। जवतक नेता सार्वजनिक जीवनमे और उससे सम्वन्धित कार्योमे भूल न करे तवतक हम उसके व्यक्तिगत जीवनपर कैसे विचार कर सकते हैं ? यदि हम ऐसा करनें लगे तो हम सभी नेताओके चरित्रके चौकीदार वन वैठेगे और उनको अपना-अपना जीवन अत्यन्त कटु जान पडेगा। इसलिए यदि हम नेताके व्यक्तिगत जीवनको सार्वजनिक जीवनसे सर्वथा अलग मानकर उसके व्यक्तिगत जीवनके प्रति विलकुल उदासीन रहे तो क्या काम नही चल सकता ? सामान्य रूपसे ऐसी दलील कदाचित् उचित जान पडे, लेकिन यह हमारे सघर्षके सम्वन्धमे विलकुल लागू नही होती। हमने अपने सघर्षको आत्म-शुद्धिका सघर्ष माना है। हम आत्म-शुद्धिके द्वारा इस आसुरी राजनीतिको नष्ट करना चाहते हैं। इसलिए हमारे साधक और साधन दोनो पवित्र होने चाहिए। हम अपने सघर्षमे व्यक्तिगत जीवन और सार्वजनिक जीवनमे अन्तर नही कर सकते। लेकिन हम जानते हैं कि हमारे निजी जीवनका हमारे सार्वजनिक जीवनपर भारी असर पडता है। हम सुधारक हैं और सुधारकका व्यक्तिगत जीवन पवित्र होना चाहिए, ऐसी प्राचीन कालकी मान्यता है और यह यथार्थ है। हम यहाँ एक दृष्टान्त देते हैं। हम भोले ग्रामीणोके वीच काम करते हैं। गाँवकी अनेक जातियाँ नीति और अनीतिका अन्तर नही जानती। वे तो हमारा स्वागत विश्वासपूर्वक करती है। उनकी स्त्रियाँ, वहने और वेटियाँ कार्यकर्ताओके पास निसकोच आती रहती हैं। यदि हमारा एक भी कार्यकर्ता इनको

१ जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सत हस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥

कुदृष्टिसे देखता है तो फिर क्या होगा? स्पष्ट दिखाई देता है कि समाज-सुधारोके काममे हमारी मुख्य पूंजी प्रत्येक कार्यकर्त्ताके निजी जीवनकी पवित्रता है। यदि हमारे कार्यकर्त्ताओके जीवनमे अपवित्रता आ जाये तो हमारा काम कागजकी नावकी भाँति स्वय डूब जायेगा, हमे भी डुबो देगा और जनता भयभीत हो उठेगी। हमारे कुछ कार्यकर्त्ताओमे ऐसी सडाँध पैदा हो गई है, मुझे इस आशयके पत्र मिले है। उनमे सत्य कितना है और झूठ कितना है, यह तो मै नही जानता।

कच्छमे एक कार्यकर्त्ताने भारी भूल की थी। वह खादी प्रचारका काम करता था। उसकी अपवित्रताकी बात सबको मालूम हुई। इससे वहाँके कार्यको बडी हानि पहुँची। उस कार्यकर्त्ताको वह स्थान छोडकर जाना पडा। सुना है कि अब वह प्रायश्चित्त स्वरूप एकान्त सेवन कर रहा है। यदि उसे शुद्ध पश्चात्ताप हुआ होगा तो वह फिर कभी सेवा-क्षेत्रमे आ सकेगा, लेकिन उसकी अपवित्रतासे जो धक्का लगना था सो तो लग ही गया।

इसलिए प्रत्येक कार्यकर्त्ताके प्रति दीनभावसे मेरी यह विनती है कि आप सँभल-कर चले। आपका मन आपके वशमे न हो, आपकी दृष्टिमे मैल हो, श्रवणेन्द्रियमे मैल हो, आपके हाथमे मैल हो और आपके पाँव आपको अयोग्य स्थानपर ले जाते हो तो आप वहाँसे एकदम हट जाये, प्रायश्चित्त करे और सेवाकार्यको छोड दे। आप यह निश्चित माने कि पवित्र बननेकी क्रियामे ही सच्ची सेवा है। आप बिना पवित्र हुए सार्वजनिक क्षेत्रमे बने रहकर दोषोकी गठरी बडी न करे। निरन्तर याद रखे कि आप अग्निकुण्डमे बैठे है। यदि आप सयमरूपी अपने अभेद्य परिधान-मे भी छिद्र हो जाने देगे तो अग्नि उसी राह प्रविष्ट होकर आपको भस्म कर डालेगी। जिसका मन अपने वशमे नही है वह दूसरोको अपने अनुशासनमे रखनेका विचार ही कैसे कर सकता है?

५. कार्यकर्त्ताओमें शौकीनी बढ़ गई है। उन्हें हर समय सवारी चाहिए। घोड़ा-गाड़ी मिले तो उनका काम बैलगाडीसे नहीं चल सकता और उनके लिए मोटरके आगे तो घोडागाड़ी और बैलगाड़ी दोनो ही बेकार हैं।

मै अब स्वय अपग हो गया हूँ इसलिए मेरी कलममे सवारीके बारेमे टीका करनेकी जो शक्ति पहले थी वह अब नही रही है। तिसपर भी मै खेडाके सघर्षके पुराने पवित्र दिनोका स्मरण दिलाते हुए कहना चाहता हूँ कि आग्रह तो उलटा रखना चाहिए। अपने दो पाँवो-जैसे घोडे है कहाँ? जबतक पाँव चलते है तबतक सवारीका विचार ही नही करना चाहिए और बैलगाडी हो तो घोडागाडीका विचार न करे तथा घोडागाडी हो तो मोटरकी बात न सोचे। मोटरमे जाने योग्य जल्दीका प्रसग हो तो हमारा प्रमुख स्वय कहेगा और तब मोटरका उपयोग अवश्य किया जा सकता है। लेकिन स्वेच्छासे तो 'पैरगाडी' को ही मान दिया जाना चाहिए। हमे हजारो कार्यकर्त्ताओकी जरूरत है। अगर हजारो कार्यकर्त्ताओके लिए घोडागाडीकी व्यवस्था करनी पडे 'तब तो हमारा सघ द्वारका कदापि नही पहुँचेगा'।[1]

१. गुजराती कहावत।

६ यदि कार्यकर्त्ताको जहां-जहां जाये वहां-वहां आतिथ्यकी अपेक्षा हो तो?

तब तो कार्यकर्त्ताको अपना पद छोड ही देना चाहिए। मैंने सुना है कि कुछ गांवोमे तो लोग स्वयंसेवक या कार्यकर्त्ताके नामसे ही कांपने लगे थे। कहते हैं कार्यकर्त्तागण मिष्टान्न, ठंडा पानी, नरम बिस्तर आदि अनेक प्रकारकी सुविधाएँ माँगते थे और इसलिए बेचारे ग्रामवासियोको कार्यकर्त्तासे सेवा लेनेके बदले उसकी सेवा करनी पडती थी।

कार्यकर्त्ताकी स्थिति तो यह होनी चाहिए कि वह गाँवके लिए भार-स्वरूप कदापि न बने। वह अपना खाना अपने साथ बांधकर ले जाये। गाँववालोंसे मात्र निर्मल जलकी अपेक्षा करे। उसके साथ लोटा तो होना ही चाहिए, ताकि तालाब, नदी अथवा कुँआ दीख पडनेपर वहां जाकर स्वयं ही पानी भर ले। जहाँ स्वच्छ भूमि मिले वहीं विश्राम कर ले। उसे पलग और गद्दे शोभा नही देते। वह सेवाकी अपेक्षा नही रखता। क्योकि वह तो स्वयं ही लोगोकी सेवा करनेके लिए निकला है। इसलिए वह आतिथ्यके अभावमें निराश नही होता। वह हुक्म देने नहीं, हुक्म बजानेके लिए जाता है। इसलिए उसे सबसे अत्यन्त नम्रतापूर्वक बोलना चाहिए। उसे सेवाका काम भाता है और वह उसकी आत्माका आहार बन जाता है। अत यदि उसे बदलेमें गालियां मिलती हैं तो भी वह सेवा करता रहे। "अवगुण बदले गुण करे, सो नर ज्ञानी जान" — यह अनुभवी और व्यवहारकुशल कविकी वाणी है। प्रत्येक कार्यकर्त्ताको ऐसा ज्ञानी होना चाहिए। हमें गुजरातमें और कई अन्य भागोमें सफलता नही मिली है। इसका सबसे बडा कारण यह है कि हम स्वयं अपनेको सेवक कहते हैं, किन्तु दूसरोंसे आशा यह रखते हैं कि वे हमें स्वामी मानें, हम अपना नाम कार्यकर्त्ताओमे लिखते हैं और अपना काम दूसरोंसे करवाते हैं।

हम ग्रामीणोपर भार-स्वरूप न हो, मैं ऐसा बराबर लिखता आ रहा हूँ, किन्तु इससे कोई यह न समझे कि हमे गन्दगी सहन करनी है। मैं ऐसे कुछ आलसी कार्यकर्त्ताओंको जानता हूँ जो स्वयं बहुत मैले रहते हैं और यदि साफ स्थानोपर जाते हैं तो उन्हें भी गन्दा कर देते हैं। सेवकके लिए जिस तरह मरते दमतक अपनी स्वच्छता बनाये रखना जरूरी है उसके लिए उसी तरह बाह्य स्वच्छताको बनाये रखना भी जरूरी है। हमारे कपडोमें भले ही पचास पैवन्द लगे हो, परन्तु वे साफ अवश्य हो। हमारा लोटा दर्पणके समान स्वच्छ होना चाहिए। यदि कार्यकर्त्ता जिस स्थानपर जाये वह मलिन हो तो उसे उसको स्वच्छ करके लोगोको स्वच्छताका पदार्थपाठ पढाना चाहिए। पाखाना गन्दा हो तो वह उसे अपने हाथोसे साफ करे। यदि वह जगलमे जाये तो अपने साथ छोटी कुदाली ले जाये और शौचमे पहले और बादमें उसका उपयोग करे। यदि हम मैलेको साफ मिट्टीसे ढँक दिया करे तो मक्खियो और अन्य जीवोका उपद्रव कम हो जाये और लोगोके शरीर-स्वास्थ्यमे वृद्धि हो। कार्यकर्त्ताओंको आरोग्यके नियमोका ज्ञान अवश्य होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६५. डाका पड़नेपर

जब घाटकोपरमे[१] डाके ज्यादा पडने लगे तब वहाँके निवासी घबरा गये। ऐसी स्थितिमे सभी घबरा जाते है। अब नगरपालिकाने उचित उपाय किये है। इस कारण तथा बरसातमे डाकुओके लिए भागनेकी सुविधा कम हो जानेके कारण डाके पडनेका भय बहुत कम हो गया है। इसलिए घाटकोपरके वासियोको तात्कालिक उपाय क्या करने चाहिए, इसपर विचार करनेकी जरूरत नही रहती।

लेकिन अतिरिक्त पुलिसकी व्यवस्था करना कोई सही उपाय नही है। ऐसे उपाय तो हमेशा किये गये है, लेकिन उससे डाके बन्द तो नही हुए। अमेरिका-जैसे बहुत ही उन्नत देशमे चलती गाडियोमे डाके डाले जाते है। साहसिक लुटेरे दिन-दहाडे राहगीरोको सार्वजनिक मार्गोपर लूट सकते है। चोरियाँ तो होती ही रहती है। अनेक अनुभवी पर्यवेक्षकोकी मान्यता है कि सभ्यताकी प्रगतिके साथ-साथ अपराध भी बढे है। फर्क सिर्फ इतना है कि अपराधका स्वरूप बदल गया है। लोगोके परिष्कारके साथ-साथ अपराध करनेके तरीके भी परिष्कृत हो गये है। अपराधोको खोज निकालनेकी शक्तिके साथ-साथ अपराध छिपानेकी शक्तिमे भी वृद्धि हुई है, अर्थात् हम जहाँके तहाँ बने हुए है।

अब हम यह देखे कि लोग डाकू कब और किन परिस्थितियोमे बनते है। जगलोमे बसनेवाले अपरिग्रही साधुओको कोई नही लूटता। उन्हे लूटनेवालेको मिलेगा भी क्या? डाकू पैसेके लोभसे ही डाका डालता है। यदि लोग पैसेके लोभकी सीमा निर्धारित कर ले तो लूटपाट भी अपेक्षाकृत कम हो जायेगी। यदि सबके पास एक-सा पैसा हो तो लूटपाटका धन्धा ही बन्द हो जायेगा। लेकिन हमे समझ लेना चाहिए कि ऐसी शुभ स्थिति कमसे-कम आजके जमानेमे तो अवश्य ही नही आ सकेगी।

फिर भी हमे उपर्युक्त सिद्धान्तको ध्यानमे रखनेकी जरूरत है। हम भले ही धनके लोभकी सीमा निर्धारित न करे, परन्तु हमे डाकुओकी स्थितिको समझनेका प्रयत्न तो करना ही चाहिए। यदि वे भूखो मर रहे हो तो हम उन्हे कोई उद्योग करना सिखाये और यदि उन्होने लूटमारको ही आजीविका कमानेका साधन बना लिया हो तो हम उन्हे उस अनीतिके अनौचित्यसे अवगत कराये। यह काम सुधारकका है। इसलिए इसके लिए साधु सबमे उपयुक्त होगे। साधु वह नही है जो भगवा पहन कर भीख माँगता है बल्कि साधु वह है जिसका हृदय भगवे रगमे रग गया है और जो सेवा-धर्मपरायण है।

डाकुओके सुधारका कार्य जब डाकू डाका डाल रहे हो तब आरम्भ नही किया जा सकता। ऐसा काम तो आज ही शुरू कर दिया जाना चाहिए। उसमे धनकी बहुत ज्यादा अथवा तनिक भी आवश्यकता नही होती। उसके लिए बहुतसे लोगोकी

१ बम्बईका एक उपनगर।

जरूरत भी नही है। यदि यह परम्परा आरम्भ हो जायेगी तो वह आगे चलती रह सकती है। आधुनिक कालके सुधारकोने यह भी किया है। सहजानन्द, चैतन्य, और रामकृष्ण आदिने इस दिशामे बहुत-कुछ किया था। वह सुधार स्थायी नही हो सका, अथवा उससे लूटमार बन्द नही हो पाई—ऐसा कहकर अथवा इस मान्यताके आधार-पर कोई उनके प्रयत्नोकी अवगणना न करे। ऐसे सुधार व्यापक नही होते, क्योकि वे प्राय एकपक्षीय होते है।

हम ऐसा मानते है कि धनिक वर्गमे ऐसे सुधार करनेकी कोई आवश्यकता नही है। सच तो यह है कि लूटमारका धन्धा धनिक वर्गकी लूटका ही प्रतिबिम्ब है। धनिक वर्गकी सूक्ष्म लूट-खसोट ही डाकुओमे स्थूल रूप धारण करती है। इसलिए सुधारकको धनिक वर्गकी सूक्ष्म लूट और गरीबोकी स्थूल लूटमार दोनोको मेटनेका काम हाथमे लेना होगा, तभी बात बनेगी। यह कार्य आचार्यो, फकीरो और सन्यासियो इत्यादिका है। वे लोग ही समाजकी नीतिके सच्चे रक्षक और चौकीदार हो सकते है और इसी कारण लूटमारको दूर करनेका कार्य भी उन्हीका है।

यह काम चलता रहेगा और डाके तो पडते रहेगे। ऐसे कामोमे "हथेलीपर सरसो" नही जम सकती। ये तो धीरे-धीरे ही होते है। इस बीच धनिक वर्ग अपनी सम्पत्तिकी रक्षा कैसे करे?

पुलिसकी मददसे एक हदतक रक्षा हो सकती है। सब खामियोके लिए, सब दोषोके लिए सरकार उत्तरदायी है—ऐसा कहनेका रिवाज पड गया है। यह अच्छा है और बहुत हदतक सही भी है। आज तो विदेशी राज्य है, इसलिए उसे दोष देना सुगम है। कल जब स्वराज्य होगा तब भी हम अपूर्ण रहेगे और स्वराज्य सर-कारको गालियाँ देगे। लेकिन तब सरकार हम स्वय होगे इसलिए वर्तमान सरकार-पर दोषारोपण करनेके स्वभावका त्याग करना भी स्वराज्यका शिक्षण कहा जायेगा। लूटपाटका सारा दोष सरकारके मत्थे मढना अपनी दुर्बलताको स्वीकार करना है। जगलोमे रहनेवाले लोगोकी रक्षाके लिए सरकार कहाँतक पुलिस रख सकती है। जिन लोगोमे आत्मरक्षा करनेकी सामर्थ्य ही नही, वे स्वराज्यका उपभोग कैसे कर सकते है? अपग लोगोके भाग्यमे गुलामी लाजिमी है। इसलिए लोगोको सभी स्थानो-पर आत्मरक्षाकी तैयारी कर रखनी चाहिए। इस दृष्टिसे विचार करे तो घाटकोपर-जैसे उपनगरोके निवासियोको और अन्य सभी जगहोके भारतीयोको अपना बचाव करना सीख लेना चाहिए। घर-घरके नवयुवकोको आत्मरक्षाकी तालीम लेना जरूरी है। भाडेके लोगोसे यह काम कराया जा सकता है, लेकिन उसमे जोखिम बहुत है। यदि मध्यम वर्गके लोग अपनी रक्षा अपने-आप करनेके बजाय पैसे देकर अन्य लोगोसे करायेगे तो वे इस तरह पैसे देकर भी केवल अपने सरदार ही तैयार करेगे। जिन्हे परिग्रह करना है उन्हे अपना बचाव करनेके लिए तैयार रहना ही होगा।

यहाँतक तो मेरी टीका हिन्दू-मुसलमान सभीपर लागू होती है। हिन्दुओके मार्गमे वर्णाश्रम-प्रथासे उत्पन्न कठिनाइयाँ बाधक होती है, यह विचार भ्रामक है। मनुष्य-मात्रमे ये चारो गुण होने चाहिए—ज्ञान, शौर्य, वाणिज्य और सेवाभाव, वर्ण-विशेषमे उसका विशेष गुण प्रधान रहे, वर्णाश्रमका केवल इतना ही अर्थ हो

सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्णका धन्धा — आजीविकाका साधन — उसका विशेष गुण होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि ब्राह्मणको ज्ञान देकर, क्षत्रियको रक्षा करके, वैश्यको व्यापार करके तथा शूद्रको सेवा करके मुट्ठी-भर बाजरा लेनेका अधिकार है। लेकिन जो मनुष्य सकट आनेपर अपनी रक्षा नही कर सकता वह अधूरा है और समाजपर बोझ है। अपनी रक्षा आत्मबल अथवा शरीरबल द्वारा की जा सकती है। जिसने आत्मबलका विकास नही किया वह अपनी तथा अपने सगे-सम्बन्धियोकी रक्षा शरीरबलसे करनेके लिए बँधा हुआ है। दोनोको अपनी जान देनेकी तालीम हासिल करनी है। आत्मबलसे युक्त मनुष्य शरीरको तुच्छ जानकर डाकुओको दण्ड दिये बिना मरेगा जब कि शरीरबलसे युक्त मनुष्य उनको मारता हुआ मरेगा। सब आत्मबलका विकास करनेके लिए तैयार नही हो सकते। फिर द्रव्यार्थी और आत्मार्थी ये दो परस्पर विरोधी अर्थवाले भी है। जबतक द्रव्यार्थी द्रव्यकी लोलुपता नही छोडता तबतक वह पूरा आत्मार्थी नही बन सकता। लेकिन यदि आज दोनोमे से एक भी भय देखकर भाग निकले तो वह कापुरुष ठहरता है। इसलिए दोनोको ही अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार आत्मरक्षाकी शक्तिका विकास करना है। घाटकोपर-जैसे उपनगरोमे रहनेवाले लोगोका स्पष्ट धर्म है कि वे स्वय अर्थात् प्रत्येक परिवारमे से कुछ लोग डाकुओका सामना करनेके लिए प्रशिक्षण प्राप्त करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६६. मै हारा

कभी-कभी कुछ सज्जन मेरे पास आकर मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहते है। एक स्वामीजीने मेरे पास आकर इस आशयकी बाते की "दूसरे लोग अस्पृश्यताके बारेमे चाहे कुछ कहते रहे, परन्तु आपको तो इसका नामतक मुँहसे न निकालना चाहिए, क्योकि आप धर्मका नाम लेकर बाते करते है। इससे लोगोको धोखा होता है। अगर धर्म-शास्त्रोमे अस्पृश्यताको पाप माना गया हो तो, या तो उन वचनोको पेश करके आप साबित कर दीजिए, नही तो मै वेदोके प्रमाणोसे यह दिखला सकता हूँ कि उनमे अस्पृश्यताका पूर्ण समर्थन है। यदि अस्पृश्यता नष्ट हो जायेगी तो सनातन धर्मका लोप हो जायेगा।"

मै उनकी बात सुनकर परेशान हो गया। मैने तो सिर्फ यही उत्तर दिया, "मै तो वाद-विवाद करनेमे हमेशा अपनेको हारा हुआ समझता हूँ। मै आपसे शास्त्रार्थ नही कर सकता। मै पहलेसे ही यह बात कबूल कर लेता हूँ कि मै आपसे बहसमे हार जाऊँगा किन्तु मै फिर भी यह जरूर कहता रहूँगा कि हिन्दू धर्ममे अस्पृश्यताका होना महापाप है।" परन्तु मै इससे स्वामीजीको सन्तोष नही दे सका। मैने अपने मनमे पूरा सन्तोष अवश्य माना। मुझे लगा कि मै तो यह मुख्तसिर जवाब देकर बच गया हूँ। जब स्वामीजी आये तब मै 'य० इं०' और 'नवजीवन' के पाठकोको

मनन्तुष्टिके नित्य कर्ममे लीन था। मै बातचीतमे एक क्षण भी गँवानेके लिए तैयार नही था। इसलिए मुझे तो 'नन्ना' रामबाण दवा मालूम हुई। हमारे बडे-बूढोने हमे अनुभवके कुछ सूत्र बता रखे है। मेरे लिए इतना पर्याप्त था। "एक नन्ना छत्तीस रोग हरे" इस कहावतका लाभ मुझे बहुत बार मिला है। मैने तो यह समझा है कि एक नन्ना छत्तीस ही नही बल्कि छत्तीस सौ रोगोकी दवा है।

शास्त्रार्थका पेशा वकीलके पेशेकी तरह है। शास्त्रार्थ स्याहका सफेद और सफेद-का स्याह करके दिखा सकता है। इस बातका अनुभव किसे नही है? बहुतसे वेद-वादरत मनुष्य वेदमे अनेक बातोके प्रमाण प्रस्तुत करते है और अन्य लोग उन्ही वेदोमे उन्ही बातोके बारेमे विरुद्ध बात उतने ही जोरसे सिद्ध कर देते है।

मै अपने-जैसे प्राकृत मनुष्योको एक ऐसा आसान तरीका बताता हूँ जिसको मैने काममे लाकर देख लिया है। मैने हरएक धर्मका विचार करके उसका महत्तम समापवर्तक निकाल रखा है। कुछ सिद्धान्त अटलसे मालूम होते है। वे अनुभवसे भी गलत सिद्ध नही हुए है। भक्त तुलसीदासने दोहेके एक पदमे कहा है 'दया धर्मका मूल है।' 'सत्यके सिवा दूसरा धर्म ही नही है', यह सनातन वचन है। किसी भी धर्ममे इन सूत्रोका खण्डन नही किया गया। ऐसे हरएक वचनको, जिसके लिए धर्म-शास्त्रका वचन होनेका दावा किया गया हो, सत्यकी निहाईपर दयारूपी हथोडेसे पीटकर देखना चाहिए। अगर वह पक्का मालूम हो और टूट न जाये तो उसे ठीक समझना चाहिए अन्यथा हजारो शास्त्रार्थियोके रहते हुए भी 'नेति' 'नेति' ही कहना चाहिए। अखाकी अनुभव-वाणीमें शास्त्रार्थ एक "अन्धा कुँआ" है। जो उसमे गिरता है वह गोते ही खाता रहता है। आत्मा एक है। शरीर-मात्रमे उसीका निवास है। ऐसी दशामें अस्पृश्य कौन हो सकता है?

यहाँ हमें अस्पृश्यताका अर्थ भी समझ लेना चाहिए। रजस्वला स्त्री अस्पृश्य है। श्मशानमे लौटा हुआ मनुष्य अस्पृश्य है। मैला उठानेपर जबतक स्वच्छ न हो तबतक हर आदमी अस्पृश्य है। इस अस्पृश्यताको तो हम अपने माता-पिताके प्रति भी पालते है। परन्तु यदि रजस्वला माता बीमार हो और उस समय उसका लडका अस्पृश्यताका विचार करके उसकी सेवा न करे तो वह नरकवासी होगा। सम्भव है उस सेवासे वह थोडी देरके लिए अस्पृश्य हो जाये। मैला उठानेवाले सब अन्त्यज है। वे मैला उठाकर न नहाये और हम उनको छूकर नहाना चाहे तो नहा ले। परन्तु ऐसे मामूली और व्यावहारिक विचारसे अन्त्यजोकी पृथक जाति बना देना, उन्हे गाँवके एक अलग मुहल्लेमे बसा देना, उनको जानवरोसे भी अधिक त्याज्य मानना, वे चाहे मरे या जिये उनका खयालतक न करना, उनको जूठा और सडा-गला खाना देना, उनके बाल-बच्चोको न पढाना, वे बीमार हो जाये तो उनको दवा-दारूकी मदद न देना, उन्हे मन्दिरोमे न पैठने देना और कुँओपर पानी न भरने देना—यह धर्म नही, अधर्म है। हम इसे हिन्दू धर्मका अग मानकर हिन्दू धर्मकी जड उखाडनेकी तैयारी कर रहे है।

ऐसी अस्पृश्यता आत्मघाती है। यह असहिष्णुताकी पराकाष्ठा है। इसे दूर करनेका प्रयत्न करना और इस प्रयत्नमे अपने प्राण देना हरएक हिन्दूका परम धर्म है। मुझे इस विषयमे जरा भी सन्देह नही रह गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६७. प्रागजी और सूरत

"हूई तेरी सूरत बेहाल, आज सूरत तू रोता है।"

सूरतके मजिस्ट्रेटने प्रागजी खण्डुभाई देसाईको दो वर्ष, तीन महीनेकी कैद दे कर उन्हे सरकारी मेहमानके रूपमे आमन्त्रित किया है। वे अब मेरे पडोसी हो गये है।[1] वे साबरमती जेलमे कबतक सरकारके अतिथि बने रहेगे सो तो सरकार जाने।

यदि प्रागजी शुद्ध सत्याग्रही है तो उन्होने खोया कुछ नही है, वे झझटोसे छूट गये है, और फिर भी देशकी पर्याप्त सेवा कर सकते है। ऐसी मेरी दृढ मान्यता है। इसलिए उन्हे तो मै बधाई ही देता हूँ।

जिस लेखपर उन्हे कैदकी सजा दी गई है वह लेख इस समय मेरे पास नही है, इसलिए मै उसपर अपनी निश्चित राय नही दे सकता। सच्ची बधाईके पात्र तो केवल वे लोग ही है जो शुद्ध स्फटिक मणिकी भाँति निर्दोप होते हुए भी जेल जाते है। इसमे भ्रमकी कोई गुजाइश नही है।

तथापि मै इतना तो जानता हूँ कि प्रागजीको कैदकी सजा देनेवाली सरकार निष्पक्ष नही है। यदि प्रागजीका लेख मै लिखता तो मै अभिमानपूर्वक कह सकता हूँ कि सरकार मुझे जेल न भेजती। लेकिन मै निरभिमान रहकर इतना तो कह ही सकता हूँ कि उसी लेखपर वह श्री शास्त्रियरको[2] भी जेल नही भेजेगी। और यदि कोई अग्रेज इसमे भी कडा लेख लिखे तो उसे तो सरकारकी ओरसे बधाई ही मिलेगी। अत सामान्य दृष्टिसे देखें तो प्रागजी बिलकुल निर्दोप है। उनके मनमे लोगोको टेढे रास्तेपर चलनेके लिए उकसानेका खयालतक भी न था, यह मै जानता हूँ। इसलिए यह अन्तत प्रागजीके लिए श्रेयस्कर ही है। प्रागजीको जेलका अनुभव है। वे दक्षिण आफ्रिकामे जेलोका काफी अनुभव प्राप्त कर चुके है। वे कष्टोसे डरने-वाले व्यक्ति नही है। उनका स्वदेशाभिमान उच्च कोटिका है।

फिर भी मैने सूरतके सम्बन्धमें कवि नर्मदाशकरकी[3] उपर्युक्त कडी क्यो उद्धृत की है? इसका कारण यह है कि सूरत आज मुझे निस्तेज-सा जान पडता है। प्रागजी सूरतके प्रख्यात सेवकोमें से है। उनसे सूरत अपरिचित नही है। प्रागजी-जैसे

१. साबरमती जेल, आश्रमके समीप ही है।

२. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।

३. १९ वीं शताब्दीके गुजराती कवि जो अपनी देशभक्तिपूर्ण रचनाओंके लिए प्रसिद्ध थे।

व्यक्तिके जेल जानेसे इन दो स्थितियोमे से एक स्थिति उत्पन्न होनी चाहिए थी — या तो उनके पीछे बहुतसे लोग जेल जानेकी बात सोचे और जेल जाये या सूरतके लोग रचनात्मक कार्यमे जुट जायें। लेकिन आज तो सूरत सोया हुआ जान पडता है। सूरतपर ४०,००० रुपयेका जुर्माना किया गया है।[1] सूरत इसे अभीतक पिये बैठा है। सूरतके राष्ट्रीय स्कूलोकी स्थिति त्रिशकु-जैसी है। सूरतकी काग्रेसकी तिजोरीमें पैसा नही है।

मेरी प्रार्थना है कि सूरतके कार्यकर्त्ता स्वय जागे और सूरतको जगायें। सूरतके निस्तेज हो जानेका विचारतक असह्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६८. खुदाका गुनाह या कुदरतका ?

एक भाई अपने पत्रमें[2] इस प्रकार लिखते है

ये भाई कुदरत शब्दका जो अर्थ करते है यदि हम इस शब्दका यही अर्थ करे तो मेरा मौलाना मुहम्मद अलीसे हुई बातचीतके उक्त प्रसगमे "खुदा" शब्दको रखना ही उचित था। यदि कोई मोटर-दुर्घटना हो जाये तो सभी लोग अपनी हाजतको भी रोककर घायलोकी मददके लिए दौड पडेगे। उसमे मेरे-जैसे क्षुद्र "महात्मा"की जरूरत नही पडेगी। मै यह भी मानता हूँ कि उस समय हाजतको रोककर भाग पडनेका परिणाम बुरा नही होगा, क्योकि दयाभावके प्रभावसे शरीरमे जो परिवर्तन होता है वह हाजतको रोकनेके दुष्परिणामोका शमन कर देता है। इसके अतिरिक्त कुदरतके कायदोको जाननेवाला आदमी ऐसे समयमे उपवास करके हाजत रोकनेसे होनेवाले दुष्परिणामोको दूर कर सकता है।

इसलिए इन भाईने "कुदरत" शब्दका प्रयोग जिस अर्थमे किया है उससे मेरे कथनका अभिप्राय प्रकट नही होता।

मै अपने "महत्त्व" की खातिर भी अपने दोषोको नही छिपा सकता। मै अपने आपको अति प्राकृत मनुष्य मानता हूँ। यदि मुझमे कोई चमत्कार है तो वह सत्य और अहिंसाकी अनन्य सेवा करनेकी महती आकाक्षाका होना ही है। पत्रलेखकका यह कहना कि 'यदि मेरे-जैसा आदमी खुदाका ऐसा गुनाह कर सकता है जिससे कि उसे ऐसी भयकर बीमारीका शिकार होना पडे तब तो सामान्य मनुष्य खुदाके गुनाहसे बचे रहनेकी आशा ही नही कर सकता', उचित नही है। मै स्वय पामर हूँ, इस

१ देखिए "सूरत जिला", १५-६-१९२४।

२ पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र प्रेषकने कहा था कि पूना अस्पतालमें मौलाना मुहम्मद अलीके इस प्रश्नके उत्तरमें कि "आप-जैसे व्यक्तिको यह बीमारी कैसी ?" आपने कहा था, "मैंने खुदाका कोई गुनाह किया होगा" -- आपको खुदाकी जगह कुदरत कहना था।

कारण किसीको पस्तहिम्मत होनेकी जरूरत नही है। अन्तस्ताप ही वस्तुत भयकर बीमारी है। एपेन्डिक्स अर्थात् अनावश्यक अवयवकी इस सूजनको एपेन्डिसाइटिस कहते है। मै इसे भयकर बीमारी नही मानता। बल्कि मै तो बुरा बोलने और बुरा काम करनेको ही भयकर बीमारी मानता हूँ। ईश्वरीय नियम इतने सूक्ष्म है और उनका पालन करना इतना कठिन है कि हमसे अनजानमे भी भूले हो जाती है। उन भूलोसे बचनेमे ही आत्माका आरोग्य अथवा कल्याण निहित है। यदि इस तरह बचकर चलनेवाले मनुष्यको कोई शारीरिक व्याधि हो जाये तो उससे निराश होनेका कोई कारण नही है।

अब मै अपनी मतिके अनुसार खुदाके गुनाहका रूप समझाता हूँ। मै पहले भोजनके विषयको लेता हूँ। मैं मिताहारके महत्वको तो बहुत अच्छी तरह समझता हूँ। मैने मिताहारके नियमका यथाशक्ति पालन भी किया है। लेकिन जिसका बहुत ज्यादा समय विचारमे जाता हो और जिसे हृदयकी गहराईमे पैठकर नित्य नई खोज करनी हो, उसे अल्पाहारी होना ही चाहिए। उसे शरीरकी क्षीणतासे नही डरना चाहिए। मै इस अर्थमे अल्पाहारी नही था, कभी रहा नही और आज भी नही हूँ। मै शरीरकी क्षीणताके सम्बन्धमे उदासीन नही हुआ हूँ। मै अपना स्वास्थ्य बनाये रखना चाहता हूँ और सोचना तथा विचारना भी चाहता हूँ। मै इसी द्वन्द्वमें पडा हूँ। मेरे प्रयोग जारी है, लेकिन अभी मुझे अपने अल्पाहारका माप नही मिला है। यह बात जादूसे सिद्ध नही हो सकती। स्वाभाविक रूपसे किये गये परिवर्तन ही टिके रह सकते है। इसके अतिरिक्त अल्पाहारी होनेके बावजूद मनुष्यको रसोपर विजय प्राप्त करनी पडती है। मैं अस्वाद-व्रतके पालनका आग्रह रखता हूँ तथापि मै अभी इसकी सिद्धिसे बहुत दूर हूँ। मैने अपने आहारमे केवल बकरीका दूध रखा है। किन्तु मैने इसमे से भी अपने मनको स्वाद लेते हुए पकडा है। जबतक वह स्वाद बना हुआ है तबतक मुझे बीमारीका भय बना है। स्वादको न जीतना ही "खुदाका गुनाह" है।

लेकिन मै अपने विकारोपर भी काबू कहाँ पा सका हूँ? जिन्होने मेरे जेलके अनुभव पढे है वे जानते होगे कि मेरी किस्मतमे जेलमे भी लडाइयाँ ही लिखी थी। मैने अपने पूरे अनुभव तो दिये ही नही है। मैने घरेलू लडाइयोकी ओर भी इशारा तक नही किया है। जो लोग धार्मिक दृष्टिसे इन लडाइयोको लडते है वे अच्छी तरह जानते है कि इनमे कितना सन्ताप सहन करना पडता है। यदि हम इन लडाइयोको राग-द्वेषसे मुक्त होकर लड सके तो हमें शारीरिक व्याधियाँ कदापि न सताये। मै तो क्रोधके वशमे हूँ। मुझे अच्छा, अच्छा लगता है और बुरा, बुरा लगता है। मै इसे प्रकट नही होने देता तो इससे क्या होता? किन्तु इसे प्रकट न होने देनेके लिए कितना प्रयत्न करना पडता है सो तो मै ही जानता हूँ। राग-द्वेषको वशमे करनेमे जितना प्रयत्न करना पडता है, बिजली-जैसा बडा आविष्कार करनेमें उसका सौवाँ हिस्सा भी नही करना पडता और इस विजयको प्राप्त करनेके बाद जो सुख मिलता है, वह न्यूटनको गुरुत्वाकर्षणकी शोध करनेसे जितना आनन्द मिला होगा, उसकी अपेक्षा कही अधिक होता है। जेलमें क्रोध करनेके अनेक प्रसग आते थे। इन सभी अवसरोपर

मनको वशमें रखना कठिन होता था। जेलके वातावरणके विरुद्ध लडाई करनेमे बहुत प्रयत्न करनेकी जरूरत पडती है। ऐसे समय क्रोधादिसे उत्पन्न विकार शरीरपर अपना असर डाले विना नही रहते। और आखिरमे स्वप्न-विकारके वारेमे तो मै लिख ही चुका हूँ। जवतक विचार सम्वन्धी विकार जीत नही लिये जाते तवतक शरीरको भयकर व्याधियोका भय वना रहेगा।

सच वात तो यह है कि हमने अभी मनोविज्ञानमे चचु प्रवेश ही किया है। वैद्यो, हकीमो और डाक्टरोने शरीरको तो वहुत चीथा है। किन्तु उन्होने मनका विश्लेपण ही नही किया, उन्होने स्वय विकारवश होकर केवल शरीर सम्वन्धी परिवर्तनोको देखकर व्याधियोके निवारणके उपाय खोजनेमे अपना कालक्षेप किया है।

शरीरपर मनोविकारोका असर कितना भयकर होता है, उन्होने इस वातकी सूक्ष्म जाँच ही नही की हे। वाह्य औषधिकी सहायताके विना इन्द्रियदमन द्वारा किस तरह व्याधियोसे वचा जा सकता है, इसकी खोज तो अभी होनी ही है। यह भी कहा जा सकता है कि ऐसी खोजे हुई तो थी, लेकिन हमने उन्हे भुला दिया है। यदि आधुनिक हकीम और वैद्य आत्माको ध्यानमे रखकर व्याधियोपर विचार करे तो वे वाह्योपचारके वजाय अवश्य ही आन्तरिक उपचारका पुनरुद्धार करेगे। वे अनेक प्रकारकी सीरम — रक्तोदकी पिचकारियाँ देकर शरीरको दूषित करनेके वजाय आरोग्य-पालन करनेके प्राकृतिक अथवा ईश्वरीय नियमोका निरूपण कर सकते हैं। मैंने कुछ इसी विचारको ध्यानमे रखकर आरोग्यकी पुस्तक लिखी थी।[१] मुझे तो उसी दिशामे वहुत सारे प्रयोग करने थे। मै इन प्रयोगोको करते-करते वीमार पड गया। मै इससे आत्म-विश्वास खो वैठा हूँ और मुझपर सत्याग्रहकी लडाइयोका उत्तरदायित्व आ पडा है, यह मेरे रास्तेमें दूसरी रुकावट है। अगर मुझे इससे मुक्ति मिले तो मै अपने प्रयासोको फिर आरम्भ करूँ।

इस वीच अव पाठक यह अच्छी तरह समझ ले कि मुझे तो जो-जो व्याधियाँ हुई है उनका मुख्य कारण मै स्वय ही हूँ — ऐसा मेरा दृढ विश्वास है। यदि मै अव भी अपने विचारोमे निर्विकार हो सकूँ तो मेरा शरीर इस जन्ममे ही नीरोगी हो जाये, क्षीण होनेके वावजूद वज्रवत् वन जाये और छूत आदिके भयसे मुक्त हो जाये।

इस लेखसे पाठकोको यही सार निकालना चाहिए कि वे मनोविकारोको जीतकर ही आरोग्यवान हो सकते है। यदि वे विकारोको जीतनेका प्रयत्न करते हुए वीमार पड जाये तो वे इससे घवराये नही, अपितु अपना प्रयत्न जारी रखे। वे इष्ट फलकी प्राप्ति न होनेपर हताश न हो, वरन् श्रद्धा रखकर निरन्तर प्रयत्नशील वने रहे। शरीर तो लाड-दुलारके वावजूद एक-न-एक दिन नष्ट होगा ही। वह कव नष्ट होगा हमे इसकी कोई खवर नही है। अत काँचकी चूडियोसे भी नाजुक इस वस्तुका अति मोह न रखा जाये और अपने मनको छलनेकी अपेक्षा हम यह माने

१ गुजरातीमें इस पुस्तकके अध्याय सबसे पहले १९१३ में 'इंडियन ओपिनियन' में लेखमालाके रूपमें प्रकाशित हुए थे। देखिए "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान", खण्ड ११ और १२।

कि उसे जो थोडी-वहुत व्याधियाँ सताती है उसका कारण ईश्वरके सामान्य नियमोका उल्लघन है।

ये नियम अत्यन्त कठिन है, हमे यह माननेकी झूठी आदत पड गई है। सभी कहते है, इसलिए यही ठीक है, ऐसा हम आलस्यवश मान लेते है। हम उत्साहपूर्वक प्रयत्न करनेसे यह अनुभव कर सकते है कि विकारोके अधीन होना मनुष्यका स्वभाव नही, अपितु उनपर विजय प्राप्त करना उसका स्वभाव है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१६९. टिप्पणियाँ

खादी वनाम मिलका कपड़ा

धारवाड जिलेसे एक भाई लिखते है [१]

मेरे पास ऐसे पत्र कई वार आते है। इनसे पता चलता है कि खादी भले ही टिकाऊ न हो, वह प्रति गज मिलके कपडेसे भले ही महँगी हो और सूत कच्चा होनेसे उसकी वनी खादी भले ही तुरन्त फट जाये, लेकिन यह वात नही भूलनी चाहिए कि खादीसे जो सादगी आती है, इससे वह सस्ती पडती है। खादीके कपडे चार या पाँच पहननेकी इच्छा ही नही होती। मलमलके वस्त्र-मात्रसे सन्तोष नही होता। ऐसा कहनेका अभिप्राय यह नही है कि खादीका जो प्रभाव उपर्युक्त सज्जन-पर हुआ है, वही प्रभाव सब लोगोपर होता है अथवा इस प्रभावका कारण स्वत खादीमे निहित है। इसका कारण खादीके आसपासका वातावरण और उसमे निहित भावना है। खादीसे सैकडो लोगोके जीवनमे महान परिवर्तन हुआ है। यह तो ऐसी वात है, जिसे कोई भी मनुष्य थोडा ध्यान दे तो देख सकता है।

मृतक-भोज अथवा कारज

इन्ही सज्जनने अपने ऊपर आये हुए एक धर्म-सकटकी वात भी लिखी है। उनकी जाति-विरादरीके लोग उनकी माताका स्वर्गवास होनेपर उनसे जाति-भोज देनेका आग्रह कर रहे है। उन्हे स्वय इसपर कोई श्रद्धा नही है। प्रत्युत उनकी मान्यता है कि ऐसे भोजोसे नुकसान होता है। दूसरी ओर यदि वे कारज नही करते तो जाति-विरादरीके लोगोका मन दुखता है। ऐसे सकटके समय क्या करना चाहिए, यह सवाल है। यदि समाजकी पुरानी कुरीतियाँ दूर करनी हो तो इस मामलेमे पहल करनेवाले लोगोके सामने ऐसे धर्म-सकट आयेंगे ही। ऐसे समयमे विनय और दृढता, ये दो गुण ही काम देते है। उन्हे विरोधियोके विरोधको विनयपूर्वक सहन करना

१. यहाँ पत्रका अनुवाद नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने पत्रमें लिखा था कि उन्हें विदेशी कपड़ेकी बनिस्बत खादी बहुत सस्ती जान पड़ी है, और जबसे उन्होंने उसे पहनना शुरू किया है तबसे उन्हें सामान्य कार्य करनेमें कोई अप्रतिष्ठा अनुभव नहीं होती।

चाहिए और अपने विचारपर दृढ़तापूर्वक डटा रहना चाहिए। हमे जाति-विरादरीके लोगोको खुश रखनेके लिए भी अधर्मका आचरण नही करना चाहिए। मृत्यु-भोज देनेसे पितरोको पुण्य-लाभ होनेकी कोई सम्भावना नही है। मृत्युके वाद दान देनेकी प्रथा सभी जगह प्रचलित जान पड़ती है—दानके इरादेसे नही प्रत्युत इस खयालसे कि कोई हमे कंजूस या विरादरीके मतकी उपेक्षा करनेवाला न मान वैठे। इस प्रकारके भोजमे जितना रुपया लगनेकी सम्भावना हो उतना रुपया जातिके वालक-वालिकाओकी शिक्षा-दीक्षाके निमित्त दे दें तो यह उद्देश्य पूरा हो जाता है। हम मिथ्याभिमानसे अथवा भयवश जो पैसा विवाह अथवा मृत्यु-जैसे प्रसगोपर खर्च करते है यदि उतना पूरा-पूरा अथवा उसमेसे अधिकाश वचाना सीख जायें तो हमारे सामने पैसेकी जो दिक्कत सदा वनी रहती है वह न रहे। लेकिन भगवान जाने यह कैसी माया है कि ऐसे मामलेमें ज्ञानी मनुष्य भी ज्ञान खोकर, मूढ वनकर कर्ज लेता और कारज करता है। लेकिन हम सभी खादीके इस सादगीके युगमें उन खर्चोसे वच सकते है।

अनुकरणीय

कराडमें[1] हिन्दू और मुसलमानोके वीच कटुता उत्पन्न हो गई थी। कुछ मुसलमानोने हिन्दू-मूर्तियाँ तोड दी थी और इस विषयमे कुछ मुसलमान गिरफ्तार किये गये थे और उनपर अदालतमे मुकदमा शुरू कर दिया गया था। अव कांग्रेस कमेटीके मन्त्रीने तार द्वारा सूचित किया है कि कराडमे हिन्दू-मुसलमानोकी सार्वजनिक सभा हुई। सार्वजनिक सभामे मुसलमानोने क्षमा मागी और पछतावा भी जाहिर किया। उन्होने मूर्तियाँ तोडनेवालोका पता लगानेकी जिम्मेदारी भी स्वीकार की और यह भी कवूल किया कि वे इस वातकी जमानत लेंगे कि आगे कभी मूर्तियाँ नही तोडी जायेंगी। हिन्दू-मुसलमान दोनो मिलकर भविष्यमें आपसी व्यवहारके लिए नियम वनायेंगे और मूर्ति तोडनेसे जो नुकसान हुआ है, उसकी भरपाई मुसलमान कर देंगे।

समझौतेके वाद उन्होंने कलक्टरको मुकदमा वापस लेनेकी अरजी दी। उपर्युक्त समझौता हो गया, उसकी जाचकर लेनेके वाद कलक्टरने मुकदमा वापस लेनेकी स्वीकृति दी। लगता है, समझौता सच्चे मनसे किया गया है। दिल्लीमे पचोके चुनावकी प्रथा शुरू हो गई है और कराडने उसका प्रशसनीय अनुकरण किया है। हम आशा करते है कि जहाँ-जहाँ हिन्दू-मुसलमानोके वीच कटुता है, वहाँ दोनो परस्पर मिलकर समझौता कर लेंगे, और इसीमे दोनोका हित है, ऐसा मानकर वे मिलकर रहेंगे और एक-दूसरेकी मदद करेंगे। यदि दोनो कौमें वात समझ ले और सच्चे दिलसे मिल जाये तो फिर आगे चलकर गलतफहमी पैदा नही होगी। वुरहानपुरमे[2] कराड-जैसा ही प्रसग उत्पन्न हो गया है, ऐसा सुननेमें आया है। क्या वहाँके हिन्दू-मुसलमान भी परस्पर मिलकर समझौता नही कर लेंगे।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, २९-६-१९२४

१ महाराष्ट्रका एक नगर।
२. महाराष्ट्रका एक नगर।

१७०. सुन्दर सुधार

एक भाई लिखते हैं, "प्रेमका अभाव या अतिरेक" लेखमें[1] आपने 'तू' शब्दके प्रयोगको वहुत अच्छी तरह समझाया है। लेकिन उसमें एक वाक्य ऐसा है जिससे फिर वही "आप" का सम्वन्ध ध्वनित होता है। आपने लिखा है, "राम मेरा है और मैं उसका गुलाम हूँ।" इसके वजाय यदि आप यह लिखते, "राम मेरा है और मैं राम-का हूँ", तो इससे "तू" की व्याख्या निखर उठती। उनका यह कहना विलकुल सच्चा जान पड़ता है। "मैं उसका गुलाम हूँ", यह अलगावका सूचक है और "मैं रामका हूँ" यह तन्मयताका। लेकिन यदि यह भाव मनमें न हो तो भाषामें कहाँसे आये? अभी सम्भवतः मुझे गुलामी ही अधिक प्रिय है। शायद, अभी मुझे अलगाव भाता है। तभी मुझे गुलाम होनेकी वात याद आई। अच्छाई माई होना सहल नही है, यह विचार प्रतिक्षण मनमें उठा करता है। यदि हम भाषाका प्रयोग अपने अन्तरके विचारोंको व्यक्त करनेके लिए ही करें तो जो ध्वनि मनमें होगी वही निकलेगी। मुझे अभी भगवानका साक्षात्कार नही हुआ है, तव मैं उस साक्षात्कारकी भाषा कहाँसे लाऊँ? लेकिन मैं प्रयत्न तो अवश्य करूँगा। पाठकगण भी करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-६-१९२४

१७१. प्रस्ताव: अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें[2]

अहमदावाद

२९ जून, १९२४

इसके वाद श्री गांधी वोले। उन्होंने स्वराज्यवादियोंसे कहा कि वे चरखेके कार्य-क्रमपर अमल करें। उन्होंने यह आशा भी प्रकट की कि लोग इसपर सद्भावसे अमल करेंगे। इसके वाद श्री गांधीने अपना दूसरा प्रस्ताव पेश किया:

प्रस्ताव २. चूंकि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने यह वात लाई गई है कि यथोचित अधिकार प्राप्त अधिकारियों तथा संगठनों द्वारा समय-समयपर जारी की गई हिदायतोंका कभी-कभी उचित पालन नहीं किया गया है, इसलिए यह निश्चित किया जाता है कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारी समितियोंको इसके

१. देखिए पृष्ठ २०१–०२।

२. २९ जूनकी रातको आश्रममें मोतीलाल नेहरू, चित्तरंजन दास तथा अबुल कलाम आजादके साथ वातचीत करनेके बाद गांधीजीने यह दूसरा प्रस्ताव पेश किया था। इसमें किये गये संशोधन उन्हींके थे। इस प्रस्ताव तथा अन्य प्रस्तावोंके मसविदोंके लिए देखिए "अग्नि-परीक्षा", १९-६-१९२४।

विरुद्ध उचित अनुशासनात्मक कार्रवाई करनेका अधिकार होगा जिसमे पदच्युत करना भी शामिल है। ऐसे मामलोमे, जहाँ प्रान्तीय अधिकारियोकी गलती हो, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणी समितिको ऐसी अनुशासनात्मक कार्रवाई करनेका अधिकार होगा जिसे प्रान्तीय कमेटियोकी सम्बन्धित समितियाँ उपयुक्त समझे। इस कार्रवाईमे पदच्युत करना भी शामिल है।

प्रस्ताव पेश करते हुए श्री गाधीने कहा कि कल रात पण्डित मोतीलाल नेहरू, चितरजनदास तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद मेरे पास आये थे और उन्होने मुझसे पूछा था कि कल पास किये गये प्रस्तावमें से मैने दण्ड-विषयक धारा क्यो निकाल दी है। उन्होने मुझसे यह भी पूछा था कि उस समय मेरे मनकी वृत्ति क्या थी। मैने उन्हे वही बात बताई जो कल बैठकमे बताई थी और वह यही कि उस धाराके पक्षमें वास्तविक बहुमत नहीं था। इसलिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सामने प्रतिष्ठापूर्ण मार्ग यही था कि वह उस धाराको रद कर दे। श्री दासकी दण्ड-विषयक धाराके विरुद्ध उठाई गई आपत्तियोको विस्तारपूर्वक समझाते हुए श्री गाधीने कहा कि श्री दास उन लोगोके सामने रखे गये समझौतेसे सहमत हो गये है और साथ ही इस बातसे भी सहमत हो गये है कि वे रचनात्मक कार्यक्रमपर अपनी पूरी शक्तिसे अमल करेगे और अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणी समितिमें भी शामिल होगे। इसका मसविदा तैयार करते हुए मैने किसीकी भी सलाह नहीं ली है। मने स्वराज्यवादियोको सन्तुष्ट करनेकी पूरी कोशिश की है। इस प्रकार मैने अपना समझौता समितिके सामने रखा है। मै आप लोगोसे कहता हूँ कि आप इस प्रस्तावपर विचार करते समय एक क्षणके लिए मुझे अपने मनसे निकाल दें।

उन्होने आगे कहा:

यदि आप प्रस्तावको अस्वीकार करना चाहते हैं तो इसे अस्वीकार कर दे किन्तु यदि आप इसे पास करना चाहते हो तो इसके उत्तरदायित्वोको अपने कन्धोपर ले।[1]

प्रस्ताव ३ अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी काग्रेसके मतदाताओका ध्यान इस तथ्यकी ओर खीचती है कि पाँचो बहिष्कार अर्थात् मिलके बने वस्त्रो, सरकारी न्यायालयो, शैक्षणिक सस्थाओ, पदवियो तथा विधान मण्डलोका बहिष्कार अब भी काग्रेस कार्यक्रमके अग है, बहिष्कार केवल कोकोनाडा प्रस्तावसे प्रभावित अशोपर लागू नही होता। इसलिए समिति यह वाछनीय समझती है कि जो काग्रेसी मतदाता काग्रेसके कार्यक्रमपर विश्वास करते हैं वे उन लोगोको विभिन्न काग्रेस सगठनोमें निर्वाचित न करे जो कोकोनाडा प्रस्तावके प्रभावित अशोके अतिरिक्त उक्त पाँच बहिष्कारोपर स्वय अमल करनेमे विश्वास नही करते। इसलिए अखिल भारतीय

१ वल्लभभाई पटेलने प्रस्तावका समर्थन किया और जो बिना बहसके सर्वसम्मतिसे पास कर दिया गया।

काग्रेस कमेटी ऐसे लोगोसे जो इस काग्रेसके निर्वाचित सगठनोके सदस्य है, प्रार्थना करती है कि वे अपने पदोसे त्यागपत्र दे दे।[1]

श्री गाधीने इसके बाद संक्षेपमें उत्तर दिया।[2] उन्होने कहा, मेरे प्रति आपकी निष्ठा एक बात है और प्रस्तुत प्रश्नोपर विचार करना दूसरी। एकका दूसरीपर असर पडने देना ठीक नहीं है। यदि मै कल मर जाऊँ तो आप क्या करेंगे? यदि मैं अचानक दुर्घटनाग्रस्त हो जाऊँ तो आप क्या करेंगे? मेरे चारो ओर सब-कुछ केन्द्रित करनेकी प्रवृत्ति निन्दनीय है। यदि समिति समझती है कि इस मार्गका अनुसरण करना ही ठीक है तो मै उससे अनुरोध करता हूँ कि वह मेरे प्रस्तावको पास कर दे, अन्यथा उसे अस्वीकार कर दे; और यदि वह श्री वरदाचारीके संशोधनोको हितकर समझती है तो उन्हे स्वीकार कर ले।

सशोधन गिर गये और मूल प्रस्ताव बहुत बडे बहुमतसे पास हो गया।[3]

इसके (९ बजेके) बाद श्री गांधीने निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया।[4]

श्री गाधीने एक संशोधनमें उत्तर देनेसे इनकार करते हुए कहा कि यदि संघर्षकी इस स्थितिमें भी देश अपने उद्देश्यको नहीं पा रहा है तो फिर मेरा कुछ भी कहना व्यर्थ है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ३०-६-१९२४

१ गाधीजीने इस प्रस्तावपर कोई भाषण नही दिया। समर्थन वल्लभभाई पटेलने किया था। प्रस्तावका मूल रूप जो कार्यकारिणी समिति द्वारा स्वीकार किया गया था, इस प्रकार है "अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके विचारमें यह वाछनीय है कि काग्रेसी मतदाता विभिन्न काग्रेस सगठनोंमें वकालत करनेवाले वकीलोंको, मिलके कपडे पहननेवालों तथा उनका व्यापार करनेवाले लोगोंको, अपने छोटे बच्चोंको सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलोंमें भेजनेवाले माता-पिताओंको, सरकारी पदवियां धारण करनेवाले सज्जनोको और विधान मण्डलोंके सदस्योंको निर्वाचित न करें और इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ऐसे लोगोंसे जो अभी विभिन्न काग्रेस निर्वाचित सगठनोंके सदस्य हों, प्रार्थना करती है कि वे अपने पदोंसे त्यागपत्र दे दें।

२ पेश किये गये कुछ सशोधनोंके सम्बन्धमें।

३ इनके बाद समिति ९ बजे शामतकके लिए उठ गई। उसे शामको गोपीनाथ साहासे सम्बन्धित प्रस्तावपर विचार करना था।

४. यहाँ नहीं दिया गया है। चौथा प्रस्ताव बिना किसी परिवर्तनके पास कर दिया गया था, देखिए "अग्नि परीक्षा", १९-६-१९२४।

१७२. भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी अनौपचारिक बैठकमें[1]

३० जून, १९२४

गोपीनाथ साहाके सम्बन्धमे प्रस्ताव पारित होनेके पश्चात् मैने जो-कुछ देखा उससे मुझे कुछ हँसी आई और दु:ख भी हुआ। मैने मनमे सोचा कि मै आप लोगोसे क्या कहूँ। वादमे मै आपसे 'यग इडिया' के द्वारा ही कुछ कहूँगा। मुझे इससे वहुत दु:ख हुआ, उसका क्या कारण था? कारण यह था कि यहाँ जितने भी लोग इकट्ठा हुए है वे सव स्वराज्य प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा कर चुके है और अहिसामय असहयोगके उपायको ही काममे लानेकी वात कवूल कर चुके है। तथापि हमने केवल हिसाकी ही वात की। मेरी समझमे नही आता कि हम अ० भा० का० कमेटीकी वैठकमे हिसाकी वात कर ही कैसे सकते है? काग्रेसका जो ध्येय और सकल्प है यदि वही ध्येय और सकल्प हमारा भी हे तो ऐसी वात हमारी जुवानपर आ ही नही सकती। अन्तिम प्रस्तावपर[2] मेरी जीत केवल आठ मतोसे हुई थी, जीत जैसी वस्तु मैने ससारमे जानी ही नही[3]। डा० पराजपेने कोई नई वात नही की है, वल्कि उन्होने तो मेरे सिद्धान्तको सरल रूपमे आपके सम्मुख प्रस्तुत ही किया है। मैने 'शठ प्रत्यपि सत्य' ऐसा कहा है। मैने तो कहा है कि जो शत्रु अपनी वहनोकी लाज लूटे और आपको आहत करे, आप उसके भी पाँव चूमे। मै तो ससारका राज्य मिलनेपर भी अपनी वातको नही छोडूँगा, लेकिन हिंसाका मार्ग भी एक मार्ग है, इस वातको मै स्वीकार करता हूँ। इसीलिए मैने दिल्लीमे कहा था कि हमे वही वात मुँहसे निकालनी चाहिए जो हमारे अन्तरमे है। लेकिन हमने तो आज ढोग किया है। यदि आपको तलवार चलानी हो तो चलाये, लेकिन यदि आप सचाईसे तलवार चलायेगे तो मै हिमालयमे चला जाऊँगा और आपको वहाँसे वधाई भेजूँगा। लेकिन मै ढोगसे घवराता हूँ। मुझे गोपीनाथ सम्वन्धी प्रस्तावपर वोलनेकी जरूरत ही क्यो पडे? अन्य प्रस्तावोके वारेमे अवश्य वोलूँगा, तर्क करूँगा और समझाऊँगा भी, लेकिन जो सिद्धान्त काग्रेसकी आधार-शिला है उसपर भी यदि मुझे आज भाषण देना पडे तब तो हमे यह सघर्ष छोड देना चाहिए।

और हिंसाका यह कार्य करनेके वाद हमे इतराना[4] सूझा। गगाधररावने मुझसे पूछा कि अव क्या किया जाना चाहिए। मैने उनसे कहा कि वे तुरन्त त्यागपत्र दे दे।

१ औपचारिक बैठकके बाद।

२ गाधीजीका चौथा प्रस्ताव जिसमें गोपीनाथ साहा द्वारा की गई अर्नेस्ट डेकी हत्याकी निन्दा की गई थी।

३ साधन सूत्रमें ऐसा ही है।

४ यह संकेत सम्भवत गाधीजीके प्रस्ताव सख्या ४ पर अ० भा० का० कमेटीके सदस्यों द्वारा दिये गये भाषणोकी ओर है।

मैं तो उनसे अपनी सारी माल-मिल्कियतको जला डालनेको कहना चाहूँगा। आसफअली आये, उन्होंने भी यही बात कही। उन्होंने पूछा, "वकीलोंने ही क्या बिगाड़ा है?" मैंने अपना प्रस्ताव[1] इन परिस्थितियोंमें तैयार किया। इस प्रस्तावके सम्बन्धमें आपने जो रुख अख्तियार किया मैंने वह भी देखा। आपने इसका विरोध किया, यह बात तो मुझे ठीक लगी, क्योंकि इसे पेश करना मेरे लिए बदनामीकी बात थी। यह तो विषका प्याला पीनेके समान था। लेकिन मैंने उसे पी लिया, क्योंकि मैंने ३० वर्षोंसे जिस जनताको समझनेका ही धन्धा किया है, मैंने उसका रुख जान लिया है। मैंने हम सभीकी शक्ति देखी और मुझे लगा कि ऐसे प्रस्तावकी रचना किये बिना काम नहीं चल सकता। लेकिन मेरे विरुद्ध नियमकी बारीकीका प्रश्न (लॉ-पॉइंट) उठाया गया, इससे मैं चौंका, मैंने अपने मनमें कहा अरे मूर्ख! तू ईश्वरकी अर्चना कर रहा है या शैतानकी? तू किस फेरमें पड़ गया[2]?

मैं तो निश्छल लोगोंसे ही काम लेना चाहता हूँ। आप सभी टेढ़े निकले। कांग्रेस क्या चीज है? इसे आप जैसा बनायेंगे, वैसी ही यह बनेगी। आप इसे एक सच्ची संस्था बनाना चाहते हैं तो आप कांग्रेससे निकल जायें, और गाँवोंमें जाकर काम करें। आप मुझसे एक गधेके जितना काम ले सकते हैं लेकिन सीधे ढंगसे, टेढ़े ढंगसे नहीं। आप मुझे फुसला और बहका अवश्य सकते हैं, लेकिन जब मुझे यह मालूम हो जायेगा कि आप मुझे ठग रहे हैं तब मैं भगवानका सहारा लूँगा और आपके पास खड़ा नहीं रहूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६-७-१९२४

१७३. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे[3]

अहमदाबाद
१ जुलाई, १९२४

अधिवेशन सम्बन्धी जो विचार मेरे मनमें हैं उन्हें इस समय व्यक्त करना बहुत कठिन है। यह इसलिए नहीं कि मेरे पास कहनेको कुछ नहीं है, बल्कि इसलिए कि कहना बहुत-कुछ है। जिस प्रकार अत्यधिक खानेवाला मनुष्य अपना कोई हित

१. गांधीजीका प्रस्ताव संख्या ५ जो अ० भा० का० कमेटीने स्वीकार नहीं किया था। प्रस्तावका उद्देश्य, अ० भा० का० कमेटी द्वारा पारित गांधीजीके प्रस्ताव संख्या ३ के प्रभावसे मुकदमोंमें फँसे लोगोंकी रक्षा करना था, इसमें उन सदस्योंको त्यागपत्र देनेका सुझाव दिया गया था जो अदालतोंके बहिष्कार समेत पाँच प्रकारके बहिष्कारोंमें विश्वास नहीं करते और उनपर अमल नहीं करते।

२. इसपर गांधीजी कुछ देरतक बोल नहीं सके और उनकी आँखोंसे आँसू बह चले। उन्होंने तुरन्त ही अपनेको संयत कर लिया और फिर बोलने लगे।

३. गांधीजीसे उसी समय समाप्त होनेवाले अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनके बारेमें अपने विचार व्यक्त करनेकी प्रार्थना की गई थी।

नही करता केवल अपनी पाचन-शक्ति ही बिगाडता है, उसी प्रकार ये विचार भी पचा न सकनेके कारण मस्तिष्कमे वेतरतीब पडे है इसलिए मै उनका विवरण इस ढगसे नही दे सकता कि वह सुपाठ्य हो सके। इस कारण फिलहाल मै जिज्ञासुओसे यही कहूँगा कि वे दर्शकोके सच्चे विचारोसे अथवा सवाददाताओके काल्पनिक चित्रोसे ही सन्तोष करे। दर्शक पात्रोकी अपेक्षा नाटकको अधिक अच्छी तरह देखते है, इस सिद्धान्तके अनुसार यदि दर्शकोके विचारोके साथ सवाददाताओकी साहसिक कल्पनाका भी समन्वय कर लिया जाये तो उनसे सम्भवत अ० भा० काग्रेस कमेटीकी महत्त्वपूर्ण कार्रवाईका एक खाका जनताके सामने आ जायेगा।

फिर भी मै अपना एक निश्चित मत व्यक्त कर सकता हूँ। यद्यपि मुझे अपने द्वारा प्रस्तुत किये गये चारो प्रस्तावोपर बहुमत मिला है, फिर भी मुझे यह स्वीकार करना ही होगा कि अपनी समझमे तो मेरी हार ही हुई है। अ० भा० का० कमेटीकी कार्रवाईने मेरी आँखे खोल दी है और अव मै बडी आतुरताके साथ अपना हृदय टटोल रहा हूँ। किन्तु मै अभीतक कुछ पा नही सका हूँ।

मै कलके समाचारपत्रोके विवरणो तथा उन्हीके सम्बन्धमे आये हुए किसी सज्जनके तारको पढकर दुविधामे पड गया हूँ और सोच रहा हूँ कि मेरा अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीमे वाइकोम सम्बन्धी प्रस्पावपर जोर देकर केरलके सदस्योको निरुत्साहित करना ठीक हुआ है या नही। साधारणतया तो मै यही मानता हूँ कि इस प्रकारके सभी स्थानीय सघर्षोको अपने ही बलपर निर्भर करना चाहिए, केन्द्रीय सस्थानसे प्राप्त सहायतापर नही। किन्तु वहाँ घटनाओमे जो नया मोड आया है, शायद उनसे अ० भा० का० कमेटीकी जोरदार घोषणाका औचित्य सिद्ध होता है। मै कार्यकारिणी समितिसे इस विषयमे कोई प्रस्ताव पास करनेकी सिफारिश अवश्य करूँगा। यदि ये समाचार विश्वसनीय है तो उसका यह अर्थ है कि त्रावणकोर राज्यके अधिकारियोने निर्दोष सत्याग्रहियोको गुण्डोके हाथो सौप दिया है। कहा जाता है कि ये गुण्डे उन सुधारकोके विरोधी कट्टरपन्थियोने नियुक्त किये है, जिसके लिए सत्याग्रही सघर्ष कर रहे है। त्रावणकोर भारतमे एक अत्यन्त प्रबुद्ध राज्य वताया जाता है। यदि मनुष्यताके लिए नही तो उसकी कीर्तिकी खातिर ही सही, मै इन समाचारोके निराधार साबित होनेकी आशा करता हूँ। यदि सत्याग्रहियोको गुण्डे निर्दयतापूर्वक पीट रहे है तो यह स्थिति बडी ही गम्भीर है। उनकी आँखोमे नीबू निचोडा जाता है और उनकी खद्दरकी कमीजे फाडकर जला दी जाती है। मेरी समझमे नही आता कि अधिकारी सत्याग्रहियोसे उनके निर्दोष चरखोको कैसे छीन सकते है। मै आशा करता हूँ कि त्रावणकोर दरबारकी ओरसे यह स्थिति तुरन्त सुधार ली जायेगी और वे सुधारको तथा कट्टरपथियोके बीच केवल शान्ति बनाये रखनेकी पहले-जैसी अपनी प्रशसनीय नीतिको फिर अपना लेगे।

मुझे यह भी आशा है कि सत्याग्रही शान्ति और उद्वेगहीन बने रहेगे तथा अहिंसा-का पालन खास तौरपर करेगे। यह उनकी अग्नि-परीक्षाका अवसर है। यदि वे उन सारे कष्टोको, जो उन्हे दिये जा रहे है, अपनी मर्यादाका ध्यान रखकर तथा बिना बदला लिये झेल सकेगे तो सफलता निश्चित है। उनके मौन कष्ट-सहनसे गुण्डोके हृदय

भी पिघल जायेगे और कट्टरपथी विरोधी भी अनुभव करेंगे कि उन्हे अपने अमानवीय व्यवहारके वदलेमे अपयगके सिवा और कुछ नही मिलेगा।

[अग्रेजीसे]
हिन्दू, २-७-१९२४

१७४. सन्देश : वाइकोमके सत्याग्रहियोंको

सावरमती
२ जुलाई, १९२४

वाइकोमकी परिस्थितिने अप्रत्याशित रूपसे जैसी करवट ली है उससे सत्याग्रहियोको वहुत वडी कठिनाईका सामना करना पडेगा। पर सफलताके लिए दो वातें आवश्यक होती हैं -- असीम धैर्य और अटूट साहस। धैर्यका अर्थ है अहिसा। मनातनी भले ही आन्दोलनको विफल करनेमें कोई कसर वाकी न रखें लेकिन मुवारकोको तो यह चाहिए कि वे वदला लिये विना भीषणसे-भीषण प्रहार सहते रहें। साहसका अर्थ है कष्ट सहनेकी क्षमता। ऐसे सत्याग्रही पर्याप्त सख्यामें होने चाहिए जो अत्यन्त परिष्कृत और सूक्ष्मातिसूक्ष्म यन्त्रणाएँ भी सहनेको तत्पर हो। मेरा अनुभव हे कि जो लोग न्याययुक्त कार्यके लिए और ईश्वरके नामपर लडते हैं उनमे कष्टसहनकी पर्याप्त क्षमता आ जाती है।

मो० क० गाधी

[अग्रेजीसे]
हिन्दू, २-७-१९२४

१७५. पराजित और नतमस्तक

मवाददाताओकी वातोमे मुझे वहुत कम दिलचस्पी हुआ करती हे, परन्तु उस दिन एक सवाददाताकी वातोने मुझे आकर्पित कर लिया। इसलिए मैंने मुलाकातके अन्तमे उसे उसकी आगासे अधिक दे डाला। उसका प्रश्न था कि अगर कांग्रेस अधिवेगनमें दोनो दलके लोग वरावर-वरावर रहे तो आप क्या करेंगे? मैंने इस आगयका जवाव दिया कि ईश्वर ऐसी विपत्ति टालनेका कोई-न-कोई रास्ता दिखा ही देगा। मैंने यह वात महज ही और कुछ-कुछ विनोदमें कही थी। मुझे यह कल्पना नही थी कि वात मच हो जायेगी।

उस अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी कार्यवाही देखकर मुझे दिल्लीवाली उस महासमितिकी वैठककी याद आ गई जो मेरे जेल जानेके जरा ही पहले हुई थी। जो भ्रम दिल्लीमे दूर हो जाना था, वह अहमदावादमें दूर हुआ।

मेरे चारो प्रस्ताव वहुत थोडे वहुमतसे पास हुए परन्तु ऐसे पास होनेको अल्पमत ही मानना चाहिए।' 'दोनो दलोमे लोग प्राय वरावर-वरावर ही थे। गोपीनाथ साहा वाले प्रस्तावने इस परिस्थितिको और भी साफ कर दिया। उसपर हुए भापण, उसका नतीजा और उसके वाद जो दृश्य मैंने देखा, उस सवने मेरी आँखे खोल दी। जो मतदान हुआ उसे मै नि सन्देह श्री दासकी ही विजय मानता हूँ, हालाँकि ऊपरसे देखनेपर ८ मतोसे उनकी शिकस्त हो गई थी। यह वात कि १४८ मतोमे से उन्हे अपने हकमे ७० मत मिल गये, मेरे लिए गहरा महत्त्व रखती है। उसने अँधेरेको चीर दिया। लेकिन धुंधलापन तो अभीतक वना ही हुआ है।

मतदानका नतीजा घोपित होने तक मै उस सारे मामलेको मजेमे ले रहा था — हालांकि यह खयाल भी मुझे वरावर था कि यह मामला गम्भीर होनेके साथ-साथ एक वडा मामला भी है। अव मै देखता हूँ कि मेरा यह रुख सतही था। उसमे एक ऐसी व्यथा छिपी थी जो मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर विदीर्ण कर रही थी।

नतीजा प्रकट हो जानेपर मुख्य पात्र रगमचसे चले गये और सदस्योने शिष्टता और मर्यादाका परित्याग कर दिया। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी इस तरह पास होने लगे मानो उनसे किसीका कुछ वास्ता ही न था। इन प्रस्तावोके वीच-वीचमें व्यग-विनोदके फुहारे भी छूट रहे थे। हर कोई औचित्य-प्रश्न (पाइट ऑफ आर्डर) और सूचनार्थ-प्रश्न (पाइट ऑफ इनफरमेशन) की आड लेकर उठ खडा होता और वोलने लगता। कोई भी सभापति ऐसी वैठक चलानेकी इस कठिन परीक्षामें अपना धैर्य खोये विना नही रह सकता था। पर मौलाना मुहम्मद अली इस परीक्षामें से वेदाग निकल आये। उन्होने काफी अच्छी तरहसे अपनेको सँभालकर रखा। 'पाइट ऑफ इनफरमेशन' की अनुमति देनेसे मौलाना मुहम्मद अली इनकार कर देते थे और यह ठीक भी था। हाँ, मुझे यह वात जरूर कवूल करनी चाहिए कि ये कीर्ति लोलुप सज्जन सभापतिके आनन-फानन दिये गये आदेशोको भी खुशी-खुशी मजूर कर लेते थे। किन्तु इससे यह नतीजा न निकाल लें कि तव समितिकी इस कार्रवाईके दौरान थोडी वहुत अनुशासनहीनता तो अवश्य आ गई होगी। मैने ऐसी वहुत वैठके नही देखी है जहाँ चर्चामे इतने कम व्यक्तिगत आक्षेप और इतनी कम कटुतापूर्ण उक्तियोका प्रयोग हुआ हो जितना कि इस वैठकमें हुआ, हालाँकि लोग उत्तेजित थे और मतभेद तीव्र और गहरे थे। मैने ऐसी सभाएँ अवश्य देखी है जहाँ ऐसी ही परिस्थितिमे सभापतिको व्यवस्था कायम रखना मुश्किल हो गया है। यहाँ तो सभापतिके आदेशोका खुशी-खुशी पालन होता रहा।

अलवत्ता गोपीनाथ साहाके प्रस्तावके वाद सभासे मर्यादाका लोप ही हो गया। मुझे सभाके इस माहौलमे अपना आखिरी प्रस्ताव पेश करना था। कार्रवाईके आगे वढनेके साथ-साथ मै अधिकाधिक गम्भीर होता चला गया होऊँगा। कई वार तो ऐसा लगा कि वेचैन वना देनेवाले इस वातावरणको छोडकर मै चल दूं। उस सभाके सामने अपना प्रस्ताव पेश करनेकी लाचारीके विचारसे मुझे विकलता हो रही थी। मै तो

१ देखिए "अग्नि परीक्षा" १९-६-१९२४।

उस प्रस्तावको स्थगित करनेकी दरख्वास्त करता, परन्तु मैंने सभासे यह वादा किया था कि दीवानीके मामले-मुकदमे करनेवाले लोगोको तीसरे प्रस्तावके असरसे बचानेके लिए मैं कोई इलाज ढूँढ निकालूँगा या ऐसा न होनेपर कोई अन्य प्रस्ताव पेश करूँगा। इस तीसरे प्रस्तावके अनुसार उन लोगोको इस्तीफा पेश करना लाजिमी है जो अदालतोके बहिष्कार सहित पाँचो बहिष्कारोके सिद्धान्तको न मानते हो और जो खुद उसका अमल न कर सकते हो। यह बचावकी सूरत उन लोगोके लिए की गई थी जिन्हे सम्भव है कि मुद्दई या मुद्दालेह बनकर अदालतोमे जानेपर मजबूर होना पड़े। इस विषयपर जो प्रस्ताव पहले कार्यसमितिमे स्वीकृत होकर सदस्योमे बाँटा गया था उसमें उनके बचावकी सूरत थी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने उसके स्थानपर ऐसा एक प्रस्ताव दरअसल स्वीकृत कर दिया था। पाठक इस बातको जानते ही है कि इससे वे लोग मुक्त है जो कोकोनाडा प्रस्तावसे प्रभावित होते हो। इस संशोधनका मसविदा बनाते समय मैंने दीवानी दावा करनेवालोके बचावकी सूरत नही रखी थी। मैंने एक अलहदा प्रस्तावके द्वारा ऐसा करनेकी बात सोच रखी थी और प्रस्तावको पेश करते समय ही यह बात प्रकट कर दी थी और इसी प्रतिश्रुत प्रस्तावने मेरे लिए 'घोर अन्धकार' से निकलनेका रास्ता खोल दिया। मैंने इस प्रस्तावनाके साथ उसे पेश किया कि यह मेरे सुबह दिये गये वचनके अनुसार पेश किया जा रहा है। मैंने यह भी कहा कि श्री गंगाधरराव देशपाण्डे इसकी मिसाल है। मैं नियममे अपवाद रखने या उनका यथाशक्ति पालन करनेकी छूट देने आदिमें विश्वास नही रखता। पर मैं जानता हूँ कि कुछ कट्टर असहयोगियोको भी अदालतोसे बचना कठिन होता रहा है। ऐसे कर्जदार लोग, जिन्हे धर्माधर्मकी परवाह नही रहती, असहयोगियोको कर्ज अदा करनेसे इनकार कर देते है, क्योकि वे जानते है कि ये नालिश तो करेंगे नही। इसी तरह, मैं ऐसे लोगोको भी जानता हूँ जिन्होने असहयोगियोपर दावे दायर किये हैं — यह सोचकर कि ये अदालतमे जाकर सफाई तो देंगे नही। इसपर भी किसीको उत्सुकता हो और वे तलाश करे तो उन्हे यह जानकर ताज्जुब और खुशी होगी कि सैकडो मामलोमे छोटे-बड़े असहयोगियोने अदालतोमें जाकर दावोकी सफाई नही दी या नालिशे नहीं की और हानि सहना कबूल किया। फिर भी, यह बात बिलकुल सच है कि प्रतिनिधिगण सदा निषेधके नियमपर कायम न रह पाये, इसलिए दावा दायर करनेकी ओर आँखे मूँदनेका रिवाज-सा पड गया और सफाई देनेकी ओर तो और भी ज्यादा। इस समितिने भी समय-समयपर ऐसे नियम बनाये है जिनसे यह रवैया कुछ हदतक वैध भी हो जाता है। मैंने सोचा कि अब जबकि इन बहिष्कारोके पालनके बारेमें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी सख्तीसे काम लेना चाहती है, मुकदमेबाजोंकी स्थितिको साफ कर दिया जाना चाहिए। मुझे इससे बढकर खुशी और किसी बातसे नही हो सकती कि कांग्रेस अपने पदोपर सिर्फ उन्ही लोगोको रखे जो खुद पाँचो बहिष्कारोपर पूरा-पूरा अमल करते हो परन्तु आजकी हालतमे अदालतोंके बहिष्कारका यथावत् पालन बहुतोके लिए प्राय असम्भव हो गया है। उसके लिए स्वेच्छापूर्वक गरीबीका व्रत धारण करना परम आवश्यक है। कांग्रेस संगठनोमे

ऐसे ही स्त्री-पुरुषोंको स्थान देने और उनका काम सुचारु रूपसे चलानेके लिए अभी कुछ समय लगेगा। इन कठिन परिस्थितियोंमें सवेरे मैं त्रिगुणित सम्बन्धी उस प्रस्तावका मसविदा पेश करनेके लिए बोलनेके लिए तैयार हुआ था। मैंने अभी उसका पढ़ना खतम किया ही था कि आपटे और रविवालराम राव साहब उठ खड़े हुए और उन्होंने उसका विरोध करते हुए एक जोरदार और प्रभावशाली वक्तृता दे डाली। उन्होंने कहा कि मुझे आपके प्रस्तावका विरोध करनेका अपना कर्तव्य बड़े दुःखके साथ पालन करना पड़ रहा है। मैंने कहा कि दुःख तो मुझे होना चाहिए कि मुझे ऐसा प्रस्ताव उपस्थित करना पड़ता है, जिसकी सफाई मैं नहीं दे सकता। ऐसे प्रस्तावका विरोध करने और सदस्योंको इस तरहमें ऐसे लोगोंसे अलग रखनेमें आपको तो खुशी होनी चाहिए। मैंने इस विरोधको पसन्द किया और मतदानकी राह देखने लगा। लेकिन इसके बाद ही स्वामी गोविन्दानन्द खड़े हुए और उन्होंने यह कानूनका एतराज खड़ा किया कि ऐसा कोई प्रस्ताव इसी सभामें पेश नहीं किया जा सकता जिससे उसके पहले पास किये गये किसी प्रस्तावपर आँच आती हो। परन्तु सभापति महाशयने इस आपत्तिको नामंजूर कर दिया, जो उचित ही था। अगर और किसी वजहसे नहीं तो सिर्फ इसी कारणसे कि इसके एक दिन पहले ही सबसे पहले प्रस्तावको बहुमतसे स्वीकार करनेके बाद उसमें संशोधन कर दिया गया था। परन्तु डाक्टर चोइथराम अनजानेमें ही मेरा खेल बिल्कुल खतम कर देनेके निमित्त बन गये। मैं समझता हूँ कि वे एक जिम्मेदार आदमी हैं। उन्होंने लम्बे अर्सेतक देशकी अनवरत सेवा की है। उन्होंने देशके लिए फकीरी अख्तियार की है। पहले यही कांग्रेस इसी विषयके सम्बन्धमें कितने ही प्रस्ताव स्वीकार कर चुकी है जो बहिष्कारके प्रस्तावको थोड़ा नरम बनाते थे। फिर ऐसा होते हुए भी इस विषयमें डा० चोइथरामने संवैधानिक आपत्ति उठाई, यह देखकर मैं दंग रह गया। वे बिना विचारे ही पूछ बैठे कि क्या यह प्रस्ताव कांग्रेसके बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्तावको भंग नहीं करता है? मौलाना मुहम्मद अलीने मुझसे पूछा क्या यह एतराज ठीक नहीं है? मैंने कहा बेशक ठीक है। तब वे लाचार हो मेरे प्रस्तावको असंवैधानिक करार देनेपर विवश हो गये। मैं बिल्कुल हैरान हो गया। किसीके भाषणमें या व्यवहारमें कोई बात अनुचित हो सो नहीं। सबके भाषण संक्षिप्त थे। उनमें विनयकी भी कमी नहीं थी और बड़ी बात तो यह कि जाहिरमें उनकी बात ठीक लगती भी थी। फिर भी यह सब कोरा स्वाँग ही था। जो ऐतराज किये गये वे ऐसे लगते थे जैसे कंकाल-मात्र रह गये किसी भूखे व्यक्तिको संयमके गुणोंका उपदेश दिया जा रहा हो। हर शख्स जान-बूझकर नहीं, बल्कि अनजाने ही ऐसा किये जा रहा था। मेरे मनमें आया कि उनके द्वारा ईश्वर मुझसे यह कह रहा है—"अरे मूर्ख, तू समझता नहीं कि तेरी कोई नहीं सुनता। तेरे दिन पूरे हो गये।" श्री गंगाधररावने मुझसे पूछा, "मुझे इस्तीफा दे देना चाहिए न?" मैंने कहा—"हाँ, तुरन्त दे दीजिए।" और उन्होंने फौरन इस्तीफा लिखकर दे दिया। सभापतिजीने उसे पढ़कर सुनाया। प्रायः सर्वसम्मतिसे वह स्वीकृत हो गया। इससे गंगाधररावको लाभ ही हुआ।

शौकतअली मुझसे लगभग ८ गजकी दूरीपर सामने ही बैठे थे। उनकी उपस्थिति कहींसे मेरे भाग जानेमें बाधक रही। मेरे दिमागमें यह सवाल बराबर उठता रहा कि क्या अप्रत्याशित परिणाम कभी सफल भी हो सकता है? क्या मैं कहीं साथ सहयोग नहीं कर रहा हूँ? शौकतअली मानो मेरी मनःस्थिति आँखोंसे कह रहे थे "बिगड़ा कुछ नहीं है, सब ठीक हो जायेगा।" मैं उनके आगे अपनी भावनाओंको सहन करनेके लिए अत्यन्त अधीर हो रहा था, पर सामर्थ्य न हो सका।

सभापतिने पूछा — "अब सभाका काम खत्म किया जाये?" मैंने कहा 'जरूर'। परन्तु मौलाना अबुल कलाम आजाद मेरे पीछेसे बड़े आवेशके भावोंको सोचते रहे थे। उन्होंने तुरन्त आगे आकर कहा — आपने पैगाम सुनानेका जो वादा किया था, उसके बिना सभा बरखास्त कैसे हो सकती है? मैंने कहा — "मौलाना साहब, आपका कहना ठीक है। आजके कामके बारेमें मैं कुछ कहना भी चाहता था। परन्तु गोपीनाथके प्रस्तावके बाद, पिछले एक घंटेसे यहाँ जो-कुछ हो रहा है उसे देखकर मुझे बड़ा सदमा पहुँचा है। अब मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि मेरी स्थिति क्या है और मुझे क्या करना चाहिए?" उन्होंने कहा — "अच्छा आप यही कह दीजिए।" मैंने मंजूर किया और हिन्दुस्तानीमें एक छोटा-सा भाषण देकर अपना हृदय चीरकर उसमें टपकता हुआ लहू दिखाया। मेरे आँसू हर किसी बातपर नहीं निकल पड़ते। आँसू बहानेके मौकोंपर भी मैं आँसुओंको पी जानेकी कोशिश करता हूँ। परन्तु इस मौकेपर तो दिलको मजबूत बनानेका पूरा प्रयत्न करते हुए भी मेरे आँसू बह निकले। सभामें उपस्थित सभी लोग विचलित हो गये। यह साफ दीख पड़ा। मैंने अपनी सभी मनोदशाओंका वर्णन उनके सामने कर दिया और कहा कि यदि शौकत अली आड़े न आये होते तो मैं सभासे कभीका चला गया होता, क्योंकि जिस प्रकार मैं इस बातका अभिमान करता हूँ कि मुसलमानोंकी इज्जत मेरे हाथमें सुरक्षित है, उसी प्रकार मैं यह मानता हूँ कि हिन्दुओंकी आबरू उनके हाथोंमें महफूज है और फिर, मैंने कहा कि अपने भावी कार्यक्रमके विषयमें मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। मैं उनसे और अपने साथ काम करनेवाले नजदीकी साथियोंसे सलाह-मशविरा करूँगा। इतने दुःखी मनसे मैंने कभी भाषण नहीं किया था। उसे खत्म करके मैं तुरन्त ही मौ० अबुल कलाम आजादको खोजने लगा। वे चुपकेसे खिसककर बहुत दूर सामने एक किनारेपर जाकर खड़े हो गये थे। मैंने पास जाकर कहा, मैं अब रुखसत चाहता हूँ। उन्होंने कहा, "नहीं, जरा और ठहर जाइए। हमें भी कुछ कहना है।" यह कहकर उन्होंने श्रोताओंसे कुछ कहनेकी दरख्वास्त की। सब लोग बोलते हुए सिसक रहे थे। एक बूढ़े सिख सज्जन बोलने खड़े हुए और बोलते-बोलते उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। यह देखकर मेरा दिल हिल गया। शौकतअली भी बोले और दूसरे भी सब लोगोंने क्षमा याचना की और अपने अविचल सहयोग और समर्थनका यकीन दिलाया। मुहम्मदअली बोलते-बोलते दो बार रो पड़े। मैंने उन्हें दिलासा देनेकी कोशिश की।

मुझे किसी बातकी माफी नहीं देनी थी, क्योंकि किसीने मेरा कुछ बिगाड़ा नहीं था। उलटा व्यक्तिगत तौरपर सब मुझपर कृपालु ही बने थे। मुझे दुःख इसलिए

हुआ कि अपनी ही बनाई तराजूके पलडेपर चढकर अर्थात् काग्रेस द्वारा तय किये हुए सिद्धान्तकी कसौटीपर हम लोग हलके बैठे। हम देशके कितने अयोग्य प्रतिनिधि निकले। मुझे लगा कि वहाँ मेरी उपस्थितिका कोई औचित्य ही नही था। जिन्हे मेरा सन्देश स्वीकार करनेकी कुछ पडी नही थी उनका नेतृत्व करनेकी अपनी योग्यताके विषयमे मुझे सन्देह हुआ और उसीका मुझे दु ख हुआ।

मैंने देखा कि मेरी पूरी पराजय हुई है। मेरा गर्व चूर-चूर हो गया। मेरा सिर झुक गया। किन्तु पराजय मुझे हताश नही कर सकती। वह सिर्फ मुझे सयत ही बना सकती है। अपने सिद्धान्तपर तो मेरी श्रद्धा अटल है। मुझे विश्वास है कि ईश्वर मुझे रास्ता दिखायेगा। सत्य मनुष्यके बुद्धिबलसे ऊपर है।

मो० क० गाधी

ऊपर लिखा मजमून ३० जून सोमवारको लिखा गया था। मैंने उसे लिखा तो, पर मुझे न तो उस समय सन्तोष हुआ था, न अब ही है। उसे पढनेपर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मुझसे न तो कमेटीके प्रति न्याय हुआ है और न अपने प्रति। कमेटीकी बैठक पूरी हो जानेके बाद जिस अनौपचारिक बैठकमें मैंने पूर्वोक्त हृदयकी बात कही थी वह महत्वपूर्ण थी, परन्तु उसके पहले हुई कमेटीकी बैठक भी जिसके कामकाजसे मुझे मार्मिक आघात पहुँचा था, कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही थी। पता नही, मैं इस बातको स्पष्ट कर सका या नही कि किसी वक्ताके मनमें कोई दुर्भाव नही था। मेरा मन जिस बातसे दु खी हो रहा था वह तो था लोगोका अनजानेमें गैर-जिम्मेदाराना आचरण और काग्रेसके ध्येय और अहिंसा-नीतिकी अवहेलना।

उस अनौपचारिक बैठकमे हमने अपने हृदय टटोलकर देखे। उससे वातावरण स्वच्छ हो गया। मगलवारके सारे दिन-भर मैं अपने साथी कार्यकर्त्ताओसे अपनी स्थितिके बारेमे विचार-विमर्श करता रहा। मेरी आन्तरिक अभिलाषा थी और अब भी है कि मैं काग्रेससे अलग हो जाऊँ और सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकता, खादी और अस्पृश्यताका काम करता रहूँ, पर उन्होने इसे न माना। उन्होने कहा — देशके इतिहासके ऐसे सकटके अवसरपर आपको हट जानेका कोई अख्तियार नही है। आपके अलहदा हो जाने से समस्याएँ हल नही हो जायेगी। इससे अवसाद उत्पन्न होगा और काग्रेसकी बैठके सजीव अकुश रखनेवाली एक शक्तिसे वचित हो जायेगी। यह आपका बनाया हुआ कार्यक्रम है और आपको ही उसके लिए सरगर्मीके साथ तबतक काम करना चाहिए जबतक बहुमत कार्यक्रमके पक्षमे है। अ० भा० का० कमेटीमे प्राप्त मतोकी सख्यासे बहुत ज्यादा मत इस कार्यक्रमके पक्षमे है। आपको देशमे घूमना चाहिए और स्वय देखना चाहिए कि हकीकत क्या है? मेरा दूसरा प्रस्ताव यह था कि वे सब लोग जो काग्रेसके सिद्धान्तको पूरा-पूरा मानते हो, काग्रेससे हट जाये और सारा कामकाज स्वराज्यवादियोको सौप दें। आगे चलकर जब इसके विपक्षमे दलीलें पेश होने लगी तब मैंने खुद ही इसे अविचारपूर्ण समझकर छोड दिया। स्वराज्यवादी यही तो नही चाहते थे। उनके लिए यह असम्भव है और उनसे किसी असम्भव बातको करनेकी अपेक्षा रखना उनके साथ ज्यादती करना होगा। मैं जानता हूँ कि वे तो

पहला प्रस्ताव भी कबूल नहीं करेंगे। मैंने जुहूमें उनसे यह कहा था और फिर अहमदाबादमें भी। इसलिए इच्छा न होते हुए भी उस [illegible] मैंने कांग्रेसमें तबतक बने रहने और कार्यसमितिके सम्बन्धमें अल्पसंख्यक विरोधियोंकी बात स्वीकार कर ली जबतक वहां इने-गिने लोग ही मेरे साथ नहीं रह जाते।

मैं कोई छोटा रास्ता नहीं अपनाऊँगा। मुझे तो लम्बा [illegible] ही मन्द गतिसे चलना है। मुझे अपने गर्वको अपनी जेबमें रखकर उस दिशामें काम करना होगा जबतक कि मुझे निकाल ही न दिया जाये।

मुझे ऊपरसे तो दलगत कार्यकर्ता बनाए रहना होगा — और फिर भी यह दिखला देना होगा कि मैं आज भी निर्दलीय कार्यकर्ताकी तरह काम कर रहा हूँ। मुझे अगली सभामें बहुमत प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना होगा और जहाँतक बने निष्पक्ष रहकर काम करनेकी कोशिश करनी होगी। यह बात सत्याग्रहीकी क्षमताके बाहर नहीं है।

इसके उपाय बहुत ही आसान हैं। ठोस काम ही बहुमत प्राप्त करनेके प्रयत्नके आधार हैं।

१. आधा घंटा चरखा कातनेके बाद भी जितना समय और लोगोंमें बच रहे वह चरखा कातनेमें ही लगाया जाये।

२ खादी-प्रचार करनेकी दशामें अतिरिक्त कताईका यह काम बन्द किया जा सकता है।

३ कांग्रेसके सदस्योंकी संख्या अधिकसे-अधिक बढ़ाई जाये।

४. मतपत्रोंमें किसी तरह गड़बड़ न होने पाये।

५ वोट हासिल करनेके लिए जोड़-तोड़का रास्ता न अपनाया जाये।

६ मुखालिफ दलकी नुक्ताचीनी न की जाये, हाँ, उनकी नीतिकी आलोचना दूसरी बात है।

७ मतदाताओंपर बेजा दबाव न डाला जाये।

प्रतिनिधियों और मातहत समितियोंके सदस्योंके चुनावमें, सुना गया है कि पिछले दिनोंमें दोनों दलवालोंकी ओरसे अनैतिक साधन अख्तियार किये गये थे। भ्रष्टाचारसे बचनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि हम मतदाताओंको समझाने-बुझानेके सीधे-सही रास्तेसे काम लेनेके बाद उसके फलाफलके विषयमें तटस्थ रहें।

अपरिवर्तनवादियोंका कार्यक्रम ऐसा ही होना चाहिए जिसे वे सचमुच कार्यान्वित करना चाहते हों। कांग्रेसकी कार्रवाईसे मेरी यही राय और पक्की हो जाती है कि दोनों तरीके एक संस्थाके अधीन काम नहीं दे सकते। स्वराज्यवादियोंका तरीका अंग्रेजोंकी रायको अपने पक्षमें लाना है, यह दल स्वराज्यके लिए ब्रिटिश संसदका मुँह ताकता है, पर अपरिवर्तनवादियोंका तरीका उसके लिए जनताकी ओर देखता है। दोनों तरीके दो परस्पर विरुद्ध मनोवृत्तियोंको प्रदर्शित करते हैं। मैं यह नहीं कहता कि एक सही है और दूसरा गलत। दोनों अपनी-अपनी जगहपर ठीक हो सकते हैं। लेकिन एक संस्थाकी मार्फत दोनोंका अमलमें लाया जाना गोया दोनोंको कमजोर

बनाता है और इस तरह मुल्कके कामको नुकसान पहुँचाता है। एक दलके लोग आम सभाओंके द्वारा राजनीतिक शिक्षण देनेका दावा करते है और दूसरा दल यही दावा देहातमें जनताके बीच काम करने और उसीके द्वारा अपनी सगठन तथा शासन-क्षमताको विकसित करनेकी पद्धतिके द्वारा करता है। एक हमे प्रजाकी उन्नतिके लिए सरकारसे भीख मांगनेको कहता है और दूसरा यह दिखानेकी कोशिश करता है कि स्वशासित देशमे राष्ट्रकी उन्नति और विकासमें निहायत आदर्श सरकारकी सहायताकी भी कम ही आवश्यकता होती है। एक जनताको यह सिखाता है कि अकेले रचनात्मक कार्यक्रमसे स्वराज्य नही मिल सकता, दूसरा लोगोंको सिखाता है कि अकेले उसीके बलपर स्वराज्य मिल सकता है।

बदकिस्मतीसे मैं स्वराज्यवादियोंको इस प्रत्यक्ष सत्यका कायल नही कर सका। और मैंने देखा कि काग्रेसको समान विचार रखनेवाले व्यक्तियोंकी सस्था बनानेके मार्गमें सवैधानिक कठिनाइयां आड़े आती है। इसलिए अब इस प्रयत्नको छोडकर जो अन्य उत्तम बात हो सकती है, वही करे। इस बातका खयालतक न करते हुए कि दिसम्बरमें क्या होगा, हम बिना किसी शोरगुलके रचनात्मक कार्यक्रममे जुट जायें—और इस बातपर पूरा विश्वास रखें कि काग्रेस चाहे इस कार्यक्रमको मजूर करे या नामजूर, हमारे लिए तो दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नही। मैं उन अखबारोसे, जो अपरिवर्तनवादी कहलाते है, कहूँगा कि वे स्वराज्यवादियोंकी किसी तरहकी कोई आलोचना न करें। मुझे इस बातका यकीन हो चुका है कि जनताके लिए किसी नीति या कार्यक्रमको बनानेमें अखबारोंसे बहुत कम मदद मिलती है। वे अखबारोंको जानते ही नही। अपरिवर्तनवादियोंको उन लोगोंतक पहुँचना है और उनके प्रतिनिधि बनना है जिन्हे किसी भी किस्मकी राजनीतिक शिक्षा नही मिली है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-७-१९२४

१७६. बम्बई सरोजिनीको याद रखे

श्रीमती सरोजिनी नायडू १२ तारीखको बम्बई लौट रही है। मुझे यकीन है कि बम्बई उनका स्वागत उत्साहसे करेगी। काग्रेसने पूर्वी और दक्षिण आफ्रिकाके सुदूर देशोंमें बसे हुए अपने बेटे-बेटियोंके हितोंकी वकालत करनेके लिए दूतके रूपमें उन्हे भेजा। इस कामके लिए उनसे अच्छा व्यक्ति मिल ही नही सकता था। सरोजिनी भारतके इन बेटे-बेटियोंके लिए सच्ची मां सिद्ध हुई है और उनकी सेवा करते हुए अथक परिश्रम किया है। मैं उनका अभी बिलकुल हालमें ही प्राप्त एक पत्र बम्बई निवासियोंके सामने रख रहा हूँ। उद्देश्य यह है कि भारतकी यह कोकिला जब अपने मधुर सगीतसे भारतीयोंके श्रवणोंको आनन्दित करनेके लिए वहां पहुँचे तो बम्बईके लोग अपने कर्त्तव्यका पालन करना न भूलें। पत्र इस प्रकार है [1]

१ आंशिक रूपसे उद्धृत।

मै बहुत दुःखके साथ स्वीकार करती हूँ कि आखिरकार दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए आपके असंख्य बच्चोंके स्नेह बन्धनोंको तोड़कर मै वापस आ रही हूँ यद्यपि वे मुझे अपनेसे अलग होने देनेके लिए तैयार नहीं थे।

तीन महीनेतक अनवरत व्यस्त रहने और यात्रा करनेके बाद जब मै 'कारागोला' जहाजमें पहुँची तो मुझे लगा कि मै जी-भरकर सोऊँ। मेरी नस-नसमें थकान भर गई थी और मै शुरूमें कुछ दिनतक तो कुर्सीपर किसी निष्क्रिय-पिंडकी तरह पड़ी रही, किन्तु अब दुबारासे वायुसे (जो मेरा सच्चा साथी है) पूर्वी आफ्रिकामें एक महीना और काम करनेके लिए बिलकुल तैयार हूँ। मै कल दारेसलाम में उतरूँगी, और टांगानिकाका दौरा समाप्त करके केनिया जाऊँगी। मै केनियासे २ जुलाईको जहाजमें सवार होकर १२ जुलाईको बम्बई पहुँचूँगी। मै जानती हूँ कि मुझे इसके बाद भी रोकनेकी कोशिश की जायेगी, किन्तु एक निजी कारणसे मै अब निश्चयसे डिगूँगी नहीं। मेरी छोटी लड़की लम्बी छुट्टियोमें ऑक्सफोर्डसे घर लौट रही है। मैने उसे तीन सालसे नहीं देखा है, और आप तो मुझपर अच्छी माँ होनेका आरोप लगा चुके है?'[1]

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, ३-७-१९२४

१७७. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सभी प्रस्ताव अन्यत्र दिये गये हैं। पहले प्रस्तावमे से सजा-सम्बन्धी अश हट गया है। शिकस्तोमे यह मेरी पहली शिकस्त थी। बहुमतसे मै धोखा नही खा सकता। बाहर चले जानेवाले स्वराज्यवादी सदस्योका भी विचार करे तो निश्चयपूर्वक मेरी शिकस्त हो जाती है, इसे देखते हुए किसी नाम-मात्रके बहुमतसे मै सन्तुष्ट कैसे हो सकता था? इसीलिए मैने कमेटीसे निवेदन किया कि कमेटीसे उठ जानेवाले सज्जनोकी राये भी गिन ली जाये और दण्ड-सम्बन्धी अश प्रस्तावसे निकाल दिया जाये।

दूसरा प्रस्ताव भी अपने असली रूपमे नही रहा, लेकिन तत्त्वत वह जैसाका तैसा है। उसमे अनुशासनकी कार्रवाई करनेका सिद्धान्त पूर्ववत् है।

तीसरे प्रस्तावमे जो हुआ वह तो वास्तविक हार ही थी। मेरा अभीतक यही खयाल है कि काग्रेसकी निर्वाचित-समितियाँ ही कार्यकारिणी समितियाँ है और इसलिए उनके सदस्य वे ही व्यक्ति होने चाहिए जो पूरे मनसे काग्रेसके मौजूदा कार्यक्रमका समर्थन करते हो और जो उसमे बाधा डालने या उसे कमजोर बनानेके बजाय उसे पूरी तरह कार्यरूपमे परिणत करनेके लिए तैयार हो। लेकिन सवैधानिक

१ इसके बाद पत्रमें उनके अपने सामान और दक्षिण आफ्रिकामें मिले उपहारों और सहयात्रियोंका दिलचस्प वर्णन था।

कठिनाइयोसे पार पाना मुमकिन न था। कोकोनाडाके कार्यक्रमपर किसी प्रकारका बन्धन लगाना गोया काग्रेस विधानको तोडना माना जाता। मैने उसका जो अर्थ किया था, और अब भी करता हूँ, उसके मुताबिक तो उससे नियम भग नही होता था। पर कहा गया कि मुझे कोई अपनी अलग व्याख्या करनेका हक न था और स्वराज्यवादियो-को यह कहनेका हक था कि जो लोग धारासभाओमे गये है वे पदाधिकारी बननेसे वचित नही रखे जा सकते। उन्होने कहा कि सच पूछिए तो स्वराज्यवादी तो कार्य-समितिमे मौजूद ही है। इस दलीलमे मैने बहुत-कुछ बल पाया और चूँकि यह तो मै देख ही रहा था कि वह असली प्रस्ताव जो स्वराज्यवादियोके पदाधिकारी बननेमे बाधक था, एक नगण्य बहुमतसे ही पास हो सकता है, इसलिए मैने प्रस्तावके वर्तमान रूपमे पास हो जानेकी बात मान ली। इससे मुझे खुशी नही हुई, पर पूरे प्रस्तावसे हाथ धो लेनेकी जगह यही एक रास्ता खुला हुआ था। यह इसलिए जरूरी था कि देशके सामने यह खयाल रहे कि सगठनोको एक विचारके लोगोसे गठित होना चाहिए और राजनैतिक कामोमे स्वच्छताका आग्रह रखा जाना चाहिए। जो नियम और मानदण्ड औरोके लिए बनाये जाये उनके अनुसार चलनेकी आशा प्रतिनिधियोसे जरूर रखी जाये। तरह-तरहसे यह दिखाया जाना चाहिए कि अब काग्रेस कोई भिक्षा माँगनेवाली सस्थाके रूपमे नही रह गई है, बल्कि वह एक आत्मशुद्धिकी सस्था है जिसका निर्माण अपनी आन्तरिक शक्तिको बढाकर अपना ध्येय सिद्ध करनेके हेतु किया गया है। इसलिए राष्ट्रीय जीवनके लिए जिन बातोकी आवश्यकता है उनके अनुकूल लोकमत जरूर तैयार किया जाना चाहिए और इसका सबसे अच्छा तरीका यही है कि प्रस्ताव पेश किये जाये और उनके समर्थकोकी सख्या बढाई जाये। ऐसी हालतमे यद्यपि मैने भिन्न-भिन्न मतके लोगोके पदाधिकारी होनेकी सम्भावनाको कुछ समयके लिए मान लिया है तथापि मै दोनो दलोके लोगोसे जोर देकर कहूँगा कि वे एक-दूसरेके रास्तेमे बाधक न बने।

फिर भी चौथे प्रस्तावने तो मेरी हारमे जो कसर रह गई थी सो पूरी कर दी। यह सच है कि गोपीनाथवाला प्रस्ताव पास हुआ, किन्तु मत-सख्याका अन्तर बहुत ही कम था। एक छोटे बहुमतमे होनेकी अपेक्षा साफ-साफ अल्पमतमे होना मेरे लिए ज्यादा खुशीका बायस हो सकता था। मै इस बातको नही भूल सकता कि बहुतेरे लोगोने तो श्री दासके सशोधनके पक्षमे मत इसलिए दिया था कि गिरफ्तारियोकी अफवाह फैल रही थी। बहुतसे लोगोने स्वभावत इस बातमे अपना गौरव माना कि वे अपने ऐसे सरदार और साथीका समर्थन करे, जिसकी देश-सेवा विख्यात है और जिसने महान् आत्मत्याग किया है। इस प्रकार अक्सर नैतिक विचारोके आगे भावनाको प्रमुखता दी जाती है और मुझे इसमे सन्देह नही कि अगर बगाल-सरकार देशबन्धु और उनके समर्थकोको गिरफ्तार करेगी तो यह एक बडी गलती होगी। वह जमाना लद गया जब लोगोको उनके विचारोके लिए सजाएँ दी जा सकती थी। यदि श्री दासके सशोधनके खिलाफ मेरे मनमे नैतिक कारण न होते तो मुझे उनका समर्थन करनेमे जरा भी हिचकिचाहट न होती। पर मै उसका समर्थन न कर सका, कोई भी काग्रेसी ऐसा नही कर सकता था। श्री दासको मेरे और उनके अपने प्रस्तावमे कोई अन्तर नही

दिखाई देता। मै इसे आत्म-त्यागके सिवा और कुछ नही कह सकता। जिन लोगोने उनका समर्थन किया, उन्होने साफ-साफ शब्दोमे अपना आशय कह दिया था। उनके दर्शनमे राजनीतिक हत्याके लिए स्थान है, और क्या साधारण कांग्रेसजन लोग भी ऐसा ही नही मानते? सभ्य कहलानेवाली अधिकाश कौमे इसीकी कायल है और जब कभी अवसर आता है वे इसीके अनुसार चलती है। असगठित और उत्पीड़ित लोगोके पास राजनीतिक हत्याओके सिवा दूसरा चारा नही है। यह एक मिथ्या सिद्धान्त है। इसके कारण ससार कुछ अधिक सुख-चैनका स्थान नही बन पाया है। यह बिल्कुल सच बात है। मै तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि यदि श्री दास और उनके समर्थकोने भूल की है तो अधिकाश 'सभ्य' ससार उनके पक्षमे है। भारतके विदेशी प्रभुओकी करतूते इससे अच्छी नही रही है। यदि कांग्रेस ऐसी एक राजनीतिक सस्था होती जिसके साधन सीमित न होते तो श्री दासके सशोधनपर गुण-दोषकी दृष्टिसे ऐतराज करना असम्भव होता। उस दशामे केवल उपयोगिताका प्रश्न बच रहता।

लेकिन यह बात कि काग्रेसके ७० प्रतिनिधि श्री दासके प्रस्तावका समर्थन करने-वाले निकले, एक दिल दहला देनेवाली बात है। वे अपने ध्येयके प्रति झूठे साबित हुए। मेरी रायमे यह सशोधन काग्रेसके ध्येय या अहिसा-नीतिको भग करता था। परन्तु मैने जान-बूझकर इस आशयका ऐतराज नही उठाया। यदि सदस्यगण ऐसे प्रस्तावको चाहते थे तो उसका समर्थन करना उनके लिए ठीक ही था। मेरी रायमे यह हमेशा बेहतर होता है कि सविधान-सम्बन्धी सवालोका निपटारा आम तौरपर सदस्य ही कर लिया करे।

दूसरे प्रस्तावोकी चर्चा करनेकी जरूरत नही मालूम होती।

सिखोके त्याग और वीरताकी प्रशसाका प्रस्ताव काग्रेसकी स्वीकृत नीतिके अनुकूल ही था।

अफीमवाला प्रस्ताव दो कारणोसे आवश्यक हो गया था। कुमारी ला-मोट ससारमे अफीमके प्रसारको रोकने और केवल दवादारूके ही लिए उसका उपयोग करनेकी छूट रखनेके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम कर रही है। उन्होने बडे ही व्यथापूर्ण शब्दोमे भारत सरकारकी अनीतिमूलक अफीम नीतिका दिग्दर्शन कराया है। श्री एन्ड्रयूज यह बात दिखा चुके है कि किस तरह खुद भारत सरकारने अफीम-परिषद्मे लोगोकी जरूरतके सिलसिलेमे "औषधीय" के स्थानपर "विधि-सम्मत" शब्द दाखिल कराया है। ऐसी हालतमे जेनेवाकी आगामी परिषद्पर दृष्टि रखते हुए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह भारत सरकारकी इस नीतिके बारेमे देशके विचार व्यक्त कर दे। और अफीमके दुर्व्यसनके कारण असमके लोगोकी हालतकी जाँच करना भी उतना ही आवश्यक हो गया है। अफीमके इस घातक दुर्व्यसनके कारण काफी सख्यामे वहाँके अच्छे-भले स्त्री-पुरुषोकी शक्तिका ह्रास हो रहा है। असम प्रान्तीय काग्रेस कमेटी इसकी तहकीकातके लिए तैयार है। इसलिए अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीने श्री एन्ड्रयूजको इस बातके लिए नियुक्त करना ठीक समझा कि वे प्रान्तीय कमेटीके सहयोगसे इसकी तहकीकात करे।

सातवा प्रस्ताव कार्य-समितिको इस वातका अधिकार देता है कि यदि आवश्यक हो तो मलाया प्रायद्वीप और लकाके हिन्दुस्तानी कुलियोकी हालतकी जाँच करनेके लिए एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाये। जो कुली मलाया और लका जाते है उनकी हालत-का हमें कुछ भी ज्ञान नही है। अखवारोसे जो-कुछ मालूम हो जाता है, वस उतना ही। हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनकी हालतकी जाँच करे और उसे सुधारनेकी भरसक कोशिश करे।

[अग्रेजीमे]

यग इडिया, ३-७-१९२४

१७८. टिप्पणियाँ

तत्काल आदेश-पालन

ज्यो ही अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी बैठकमे यह प्रस्ताव पास हुआ कि जो सदस्य खुद वहिष्कारोपर अमल न कर रहे हो वे इस्तीफा दे दे, श्री कालिदास झवेरीने विभिन्न समितियोसे अपना इस्तीफा पेश कर दिया। वे वकालत करते है। मतदाताओने इस वातको जानते हुए भी कि उन्होने फिर वकालत करना शुरू कर दिया है, उन्हे चुना था। कमेटीके इस अनुरोधपर तत्काल कार्रवाई करनेके लिए मै श्री कालिदास झवेरीको वधाई देता हूँ। वे एक अच्छे कार्यकर्त्ता है। अव हम यही कामना करे कि उनके पदोसे इस्तीफा दे देनेके कारण काग्रेस उनकी सेवाओसे वचित नही होगी। जो आदमी काग्रेसके तमाम कार्यक्रमोसे सहमत न हो या जो अपनी कमजोरी कि वजहसे अथवा ऐसी परिस्थितियोके कारण जिनपर उसका कुछ वस न चलता हो, कार्यकारिणी समितिका पदाधिकारी न रह सकता हो, वह भी उसी प्रकार कारगर ढगसे काम कर सकता है, जिस प्रकार वह पदाधिकारी रहते हुए कर सकता था। मिसालके तौरपर श्री झवरीको काग्रेसके सदस्य वढानेसे, चरखा चलानेसे, खादी-प्रचार करनेसे और चन्दा इकट्ठा करने आदिसे कोई रोक नही सकता। सच तो यह है कि प्रामाणिक कार्यकर्त्ता पदाधिकारीकी जिम्मेवारी लेनेकी वनिस्वत काम ही ज्यादा पसन्द करता है और कार्यकारिणी समितिमे न होनेके कारण वह वहाँ होनेवाले जवरदस्त वितण्डावादसे भी वच जाता है।

जव अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीने मुकदमा लडनेवाले लोगोको छूट देनेका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया तो श्री गगाधरराव देशपाण्डेने तुरन्त अपना इस्तीफा पेश कर दिया और वह उसी दम मजूर भी कर लिया गया, क्योकि देशपाण्डे काग्रेसके महामन्त्री थे। वे कर्नाटक प्रान्तीय काग्रेस कमेटीके सभापति भी थे। श्री देशपाण्डे अपने प्रान्तके लिए प्रेरणाके स्रोत है। देखना चाहिए कि अव कर्नाटक अपनी कठिनाई किस तरह दूर करता है। वे काग्रेसके कामका सगठन कर रहे है।

श्री गगाधररावका यह कदम एक वडा प्रयोग है। अव यदि वे विना किसी ओहदेपर रहते हुए भी लोगोको ठीक रास्ता दिखाते रहे तो यह हम सव लोगोके

अनुकरणके लिए एक मिसाल बन जायेगा। हमारे लिए ऐसे सार्वजनिक सेवक तैयार करना जरूरी है जो ओहदे न चाहते हों और फिर भी उतनी ही तत्पर सेवा करें जितनी कि एक अच्छेसे-अच्छा पदाधिकारी कर सकता है। ऐसे स्त्री-पुरुष समाजके गौरव होते हैं। वे अवसर विशेषपर काम आनेवाली उसकी सेनाके सिपाही हैं।

इस मजेदार स्थितिसे एक और सवाल दिमागमें आता है। क्या जरूरत है कि हम सब लोग जायदादें रखें? हम जायदादें कुछ अरसे तक रखनेके बाद छोड़ क्यों न दें? धर्माधर्मका जिन्हें खयाल नही, ऐसे व्यापारी बेईमानीसे भरे मतलबोंके लिए हमपर मुकदमे दायर करते है तो फिर हम ही एक बड़ा और नैतिक उद्देश्य हासिल करनेके लिए अपनी जायदाद क्यों न छोड़ दें? एक विशेष अवस्था पार कर चुकनेके बाद हिन्दुओके लिए ऐसा करना एक आम बात थी। प्रत्येक हिन्दूसे यह अपेक्षा रखी जाती है कि एक अरसेतक गृहस्थाश्रममें रहनेके बाद वह संन्यासीका जीवन व्यतीत करे। इस उदात्त परम्पराको हम पुनरुज्जीवित क्यों न करें? परिणामत इसका मतलब यही तो होता है कि हम जीवन-निर्वाहके लिए उनकी दयापर निर्भर रहते हैं, जिन्हे हमने अपनी जायदाद सौंप दी है। यह विचार मुझे बड़ा आकर्षक मालूम होता है। इस तरह विश्वास करके किसीको अपनी सम्पत्ति सौंपनेके लाखों उदाहरणोंमे एक भी ऐसा दृष्टान्त मुश्किलसे मिलेगा जिसमें विश्वासका दुरुपयोग हुआ हो। बेशक इससे बहुतसे नैतिक सवाल पैदा होते हैं। पिता और पुत्रका ही दृष्टान्त लीजिए। यदि पुत्र भी पिता जैसा ही असहयोगी है तो फिर पिता अपनी जायदादकी मालिकीके हकका बोझ उसके कन्धोंपर डालकर उसे भ्रमित क्यों करता है? ऐसे सवाल तो हमेशा ही पैदा होंगे, और फिर किसी भी व्यक्तिके नैतिक सामर्थ्यकी कसौटी भी तो यही है कि नैतिकतासे सम्बद्ध ऐसी टेढ़ी समस्याओंके बीच वह कितनी योग्यतासे सन्तुलन स्थापित करता है। बेईमान लोगोंको इसका दुरुपयोग करनेका मौका दिये बिना यह परम्परा किस तरह व्यवहारमें लाई जा सकती है, इसका निर्णय तो एक बड़े अरसेके अनुभवके बाद ही हो सकता है। फिर भी दुरुपयोगके भयसे इसका प्रयोग करनेके प्रयत्नसे मुँह नही मोड़ना चाहिए। 'गीता'कारको यह मालूम था कि 'गीता'के सन्देशको सभी प्रकारकी बुराइयाँ, यहाँतक कि हत्याको भी उचित ठहरानेके लिए तोड़ा-मरोड़ा जायेगा, किन्तु इसी कारण उन्होंने वह दिव्य सन्देश देनेसे मुँह तो मोड़ नही लिया।

वाइकोम

वाइकोमका सत्याग्रह अब शायद अन्तिम अवस्थामे पहुँच गया है।[1] अखबारोंमे समाचार आये है — लोगोंने भी इन्हे सही बताया है — कि त्रावणकोरके अधिकारियोंने सत्याग्रहियोंको लगभग गुण्डोंकी दयापर छोड़ दिया है। सभ्य भाषामें अब इसे परम्परा-वादियोंका सगठित विरोध कहा गया है। सब जानते है कि ऐसे परम्परा पोषणमे अकसर अच्छे-बुरेका खयाल नही रहता। परम्परावादियोंके पक्षमें साधारण तौरपर

१ देखिए "भेंट एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", १-७-१९२४।

सुधारककी बनिस्बत अधिक प्रतिष्ठा और लोकमत होता है। इसलिए ये लोग दण्ड भयसे मुक्त रहकर ऐसी बाते करते है, बेचारा सुधारक जिन्हे करनेकी हिम्मत नही कर सकता। लेकिन जो बात समझमे नही आती, वह है त्रावणकोरके अधिकारियोका रवैया। बेगुनाह सत्याग्रहियोके खिलाफ जो खुलेआम जोर-जबरदस्ती हो रही है, वे उसकी ओरसे जान-बूझकर आँखे बन्द किये हुए है? क्या त्रावणकोर-जैसी उन्नत रियायतने जान-मालके रक्षणका अपना बुनियादी कर्त्तव्य छोड दिया है? कहते है, ये गुण्डे बहुत ही जगली तरीकेके अत्याचार कर रहे है। स्वयसेवकोकी आँखोमे नीबू निचोडकर वे उन्हे अन्धा कर देते है।

केरलके प्रतिनिधियोने इस आन्दोलनके समर्थनमे काग्रेसकी ओरसे एक प्रस्ताव पास करनेके बारेमे मुझसे पूछा। मैंने उनसे कहा कि मुझे यह विचार पसन्द नही है। वे नैतिक समर्थन चाहते थे। यदि उन्होने अध्यक्षके पास प्रस्ताव भेजकर समर्थन माँगा होता तो समिति उन्हे तत्काल समर्थन दे देती। इसलिए मैंने उनको ऐसा करनेसे मना करके अपने सिर बहुत बडी जवाबदेही ले ली। लेकिन मेरा दृढ विश्वास है कि सभी स्थानिक आन्दोलनोको आत्मनिर्भर होना चाहिए, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीको कुछ अपवाद-रूप मामलोमे ही अपना नैतिक समर्थन देना चाहिए। सदस्योके साथ इस विषयपर बातचीत होनेके बाद सिखोके सम्बन्धमे प्रस्तावका सवाल उठा। जब सदस्योने मुझे इस प्रस्तावके मसविदेको अन्तिम रूप देते हुए देखा तब फिर मुझसे पूछा कि सिख-सम्बन्धी प्रस्तावको ध्यानमे रखते हुए भी क्या आप हमारी बातपर सहानुभूतिपूर्वक विचार नही करेगे। मैंने कहा कि सिखोका मामला तो काग्रेसने पहले ही अपने हाथमे ले लिया है, इसलिए अब यदि वह अपना हाथ खीच लेती है तो सन्देह पैदा होगा कि उसने सिखोका साथ छोड दिया है। वे शायद मेरी दलीलके कायल तो नही हुए, लेकिन उन्होने मेरी बात बा-खुशी मान ली। फिर भी, त्रावणकोरके अधिकारियोसे विनयपूर्वक कहा जा सकता है कि काग्रेस इस बर्बरताके प्रति उदासीन और तटस्थ नही रह सकती। जबतक सत्याग्रहका सामना रियासतके सामान्य नियमोसे किया जाता है, तबतक यह आन्दोलन स्थानीय ही रहेगा, लेकिन निष्ठावान सत्याग्रहियोके ऊपर गुण्डे छोड देनेका परिणाम यही होगा कि सारे हिन्दुस्तानका लोकमत उनके साथ हो जायेगा।

अब वाइकोम सत्याग्रहके सयोजकोसे दो शब्द कहना चाहता हूँ। गुण्डोकी चुनौती अवश्य स्वीकार की जानी चाहिए। परन्तु सत्याग्रहियोको अपना सन्तुलन नही खोना चाहिए। कहा जाता है कि स्वयसेवकोकी खादीकी पोशाके उनसे छीन ली गई और जला दी गई। यह सब बहुत ही उत्तेजनात्मक है। उत्तेजनाके कैसे भी कारण होने-पर उन्हे ठडा बना रहना चाहिए और कठिनसे-कठिन परिस्थिति आ जानेपर भी हिम्मत रखनी चाहिए। सौ दो-सौ लोगोकी जाने चली जाये तो यह भी अन्त्यजोकी स्वतन्त्रताके लिए कोई बहुत बडी कीमत नही है। ध्यान सिर्फ इतना रखना है कि शहीदोको निष्कलक रहकर मृत्युका वरण करना है। सत्याग्रहियोको सीजरकी पत्नीकी तरह अपनी स्थिति असदिग्ध रखनी चाहिए।

क्षमा-याचना

मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ नीचे दिया हुआ पत्र[1] छाप रहा हूँ। बारावंकीपर लिखी अपनी टिप्पणीमें मैंने जानकारी देनेवालेका नाम नहीं दिया था, लेकिन अब मैं नामको और अधिक नहीं छिपा सकता। मैं चाहता हूँ कि श्री कुरैशीकी तरह सब अपनी भूल स्वीकार करनेको तैयार रहें और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंकी बुरी हरकतोंकी अफवाहोंपर विश्वास करनेमें जल्दी न करें। मेरी ही तरह पाठकोंको भी यह जानकर प्रसन्नता होगी कि बारावंकी-नगरपालिकाके हिन्दू-सदस्योंपर जो आरोप लगाया गया था, वह झूठा था। उनके साथ अन्याय करनेमें अनजाने ही मैं भी एक साधन बन गया, इसके लिए मैं उनसे माफी मांगता हूँ

सेवामें

सम्पादक, 'यंग इंडिया'

महोदय,

बारावंकीकी हालतके बारेमें मैंने आपको लिखा था। लेकिन, उसके बाद बारावंकीकी जिला कांग्रेस कमेटीके एक मुसलमान सदस्यने, जो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके भी सदस्य हैं, मुझे खबर दी कि जो खबरें मुझे दी गई थीं, वे सच न थीं। जो कुछ हुआ वह यह था. बारावंकीके म्युनिसिपल बोर्डके पुराने कानूनके अनुसार अर्जियाँ उर्दू लिपिमें ही दी जाती थीं। बोर्डने अब यह कानून बनाया है कि अर्जियाँ देवनागरी और उर्दू दोनोंमें से किसी भी एक लिपिमें लिखी जा सकती हैं। यह कानून स्वयं मेरी रायमें तो ठीक और न्यायानुकूल ही है। मुझे बड़ा अफसोस है कि मैंने आपको वे खबरें पहुँचाईं, जो गलत साबित हुईं। उस गलत खबरको भेजनेका मैं सिर्फ एक ही कारण दे सकता हूँ कि जिन्होंने मुझे यह खबर दी, वे बड़े विश्वसनीय लोग हैं। . मैं यहाँ यह बता देता हूँ कि स्वयं उन्हें भी उस बातके सच होनेका पूरा विश्वास था। गलती तो मेरी ही है। . . . भविष्यके लिए मैंने एक सबक सीखा।

आपका,
शुएब कुरैशी

सद्भावपूर्ण सम्बन्ध

आजकल हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच झगड़ों और तनावोंकी ही खबरें बराबर मिलती रहती हैं। ऐसी स्थितिमें तिरुपति-निवासी श्री के० राजगोपालाचारीने जो-कुछ लिख भेजा है, वह तसवीरका एक खुशगवार पहलू सामने रखता है। वे लिखते हैं[2]

१. अंशत: उद्धृत।
२. अंशत: उद्धृत।

लगता है, आपके सामने हिन्दू-मुस्लिम सम्वन्धोका सिर्फ वही पहलू पेश किया गया है जो अच्छा नही है, मै आपके सामने उसके उज्ज्वल पक्षका एक उदाहरण पेश करना चाहता हूँ।

तिरुपति एक छोटी-सी जगह है, जिसकी आवादी सिर्फ १८,००० है। इसमें से सिर्फ ५०० मुसलमान है और शेष सव हिन्दू। आप जानते ही होगे कि यह हिन्दुओका तीर्थ है और भारतके सभी भागोसे हजारो लोग प्रतिदिन यहाँ आते-जाते रहते है। स्वभावत यहाँ हिन्दू लोग वडे प्रभावशाली है। मन्दिरका महन्त उत्तर भारतका एक वैरागी है और सरकारपर भी उसका वडा प्रभाव है। . . पिछले सितम्वर मासमें एक प्रमुख मुसलमानने रमजानका महीना मनानेके लिए शहरके (एकमात्र मुख्य) आम रास्तेके आरपार कागजकी झण्डियाँ लगाई थीं और उसमें एक लाल कपडा लगा दिया, जिसके एक ओर लिखा था 'जश्ने रमजान' और दूसरी ओर था "पैगम्बरोके पैगम्वर"।. मन्दिरके अधिकारियोने, उधरसे होकर हिन्दू देवताकी जो वहुत-सी झाँकियाँ निकलती थी, उन्हे वन्द करवा दिया। उन्हे डर था कि उधरसे झाँकी ले जानेसे कहीं कोई फसाद खडा न हो जाये, लेकिन इसमें भी लगता है, उन्हे ज्यादा खयाल मुसलमानोकी भावनाओका ही था। लेकिन एक दिन झाँकीको रोका नहीं जा सका और वह उधरसे होकर निकाली गई। जव झाँकी दूकानके पास आई तो एक ओर हिन्दुओने झण्डियोको हटवा देना चाहा, लेकिन दूसरी ओर मुसलमान भाइयोने कपडा हटानेसे भी इनकार कर दिया। सयोगसे उस समय मै भी उधरसे गुजरा . जरूरत पड़नेपर जूझ पड़नेके लिए सौ-एक मुसलमानोको फिर भी एकत्रित देखा। जव मैने अपेक्षाकृत शान्त और समझदार दिखनेवाले हिन्दुओसे कहा कि झण्डियोके नीचेसे झाँकी ले जानेमें हिन्दू धर्मकी कोई अप्रतिष्ठा नहीं होगी तो उन्होने कहा कि मै मुसलमानोका पक्षपाती हूँ। इतना ही नहीं, वे मुझे पीटनेके लिए भी आपसमें कानाफूसी करने लगे। इसी बीच मन्दिरके दो-तीन अधिकारियोने वहाँ पहुँचकर वडे ही नाटकीय ढगसे घोषित किया कि झाँकी वन्दनवारके नीचेसे ही जायेगी। हिन्दुओको अपने लिए पुलिसकी मददकी कोई जरूरत नहीं। यह घोषणा करते ही मुसलमानोका रुख तुरन्त वदल गया। उन्होने कहा कि उन्हींके आदमी ऊपर चढकर कागजकी झण्डियाँ ऊँची उठा दें, ताकि देवताकी प्रतिमा अथवा उससे किसी भी अलकरणका स्पर्श न हो पाये और कपडेको तो उन्होने तत्काल हटा देनेको कहा। .

हकीम साहवने दो-तीन दिन वाद मुझे वुला भेजा। मिलनेपर उन्होने कहा कि मुसलमानोने हिन्दुओकी तुलनामें जो विवेकहीनता दिखाई, उसके वावजूद हिन्दुओने जैसा उदार व्यवहार किया उसके कारण मुझे तो किसी हिन्दूसे

आँखें मिलाते हुए लज्जाका अनुभव होता है। कुछ दिन बाद एक रोज हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंने अपनी-अपनी दूकानें बन्द रखीं। इसमें हिन्दुओंका उद्देश्य रमजानके अवसरपर मुसलमानोंके साथ सहानुभूति दिखाना था। दूसरी बार गुडी पडवापर हिन्दुओंको प्रसन्न करनेके लिए हिन्दुओंके साथ-साथ मुसलमानोंने भी अपनी दूकानें बन्द रखीं। दोनों सम्प्रदायोंके बीच अब भी सद्भावना बनी हुई है और मुझे विश्वास है कि वह सदा बनी रहेगी। बहुत दिनोंसे इस शहरमें एक ही मस्जिद थी, लेकिन अब दूसरी भी तैयार हो गई है। हिन्दू लोग नई मस्जिदके सामने भी आजतक गाते-बजाते नहीं हैं। मुसलमानोंकी तुलनामें यहाँ हिन्दू लोग इतने अधिक शक्तिशाली हैं कि यदि वे चाहें तो आसानीसे उनकी उपेक्षा करके मनचाही कर सकते हैं, लेकिन वे मुसलमानोंका बहुत ज्यादा खयाल रखकर चलते हैं और जहाँ जरूरी होता है, उनके सामने झुक भी जाते हैं।

हाँ, तो अब हम यही आशा करे कि दोनो समुदायोके बीच यह सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध सदा बने रहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-७-१९२४

१७९. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

३ जुलाई, १९२४

प्रिय मोतीलालजी,

आज मैंने एक पत्र[1] पढा है। मैं उससे बहुत क्षुब्ध हुआ हूँ। मैं सोच रहा हूँ कि इसके बारेमें कुछ लिखूँ तो मित्रताके अधिकारका दुरुपयोग तो नही होगा? मेरी अन्तरात्माकी आवाज कहती है कि मुझे इस प्रश्नका निर्णय स्वयं न करके इसे आपपर छोड देना चाहिए। यदि आप इसे दुरुपयोग समझे तो इस अपराधके लिए मुझे क्षमा कर दे और इस पत्रपर कोई विचार न करे।[2]

१. यह पत्र उपलब्ध नही है। इसमें स्पष्टरूपसे यह कहा गया था कि मोतीलाल नेहरूने शिमलामें एक सान्ध्य भोजमें मद्यपान किया। इस भोजमें वे मुख्य अतिथि थे। देखिए मुकुन्दराव जयकरकी **द स्टोरी ऑफ माई लाइफ,** खण्ड २।

२. मोतीलाल नेहरूने १० जुलाइको इसका लम्बा उत्तर देते हुए लिखा था "मैं प्रारम्भमें ही आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपके उक्त पत्रको मैं मित्रताके अधिकारका दुरुपयोग नही समझता, बल्कि यह जानना आपका अधिकार और कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपके द्वारा अपने प्रति सार्वजनिक रूपसे अविश्वास प्रकट किये जानेपर भी जो आपके साथ और आपके अधीन काम करनेका यथाशक्ति प्रयास कर रहे हैं, उनका आपके प्रति क्या भाव है।"

लेखकने पत्रके साथ (लीडरकी) एक कतरन भी नत्थी करके भेजी है।[1] इसे मैंने पहले नहीं पढ़ा था। उसका कहना है कि किसी अन्य सान्ध्य भोजमें आपने यह कहा बताते हैं : "पानी शुद्ध बताया गया है, किन्तु शराब भबकेसे तीन बार खींची जाकर बनती है, इसलिए वह पानीसे भी अधिक शुद्ध है।[2]" कृपया मेरी बातका गलत अर्थ न लगाइयेगा। यदि आपने फिर शराब पीना शुरू कर दिया हो तो इस बारेमें मुझे कुछ नहीं कहना है। यदि यह समाचार विश्वस्त है तो मुझे उससे दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। आपका मद्यपान-विरोधी आन्दोलन चलाते हुए खुलेआम शराब पीना बुरा है और शराबबन्दीका मजाक उड़ाना तो इससे भी बुरा है।

मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है। यह कहनेकी आवश्यकता नही कि मैं पत्रकी प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकतासे करूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[पुनश्च]

मैं जानता हूँ कि यदि कोई आदमी अपने घर शराब पीता है तो वह खुले आम भी पी सकता है। फिर भी यदि खुले आम शराब पीनेसे लोगोंकी भावनाको ठेस लगनेकी सम्भावना हो तो एक लोकसेवकको खुले आम शराब नही पीनी चाहिए। मैं अपने घर शराब पीने और छिपकर शराब पीनेमें भेद करता[3] हूँ।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

द स्टोरी ऑफ माई लाइफ, खण्ड २

1. लीडरमें छपी इस खबरमें जिसको जयकरने उद्धृत किया है, इस घटनापर व्यंग्यपूर्ण टिप्पणी की गई थी।

2. इस सम्बन्धमें मोतीलालजीने लिखा था कि यह शराबसे सम्बन्धित एक फारसी शेरका अभिप्राय-भर था।

3. मोतीलालजीने इसका उत्तर यह दिया था : "मेरी दृष्टिमें यह बात स्पष्ट है कि झूठा दिखावा करके लोगोंको धोखा देनेसे उनकी भावनाको ठेस पहुँचाना अधिक अच्छा है। मैं यह बात समझनेमें बिलकुल असमर्थ हूँ कि यदि मुझे शराब पीनी हो तो अपने घरमें पीऊँ, आपके ऐसे सुझावका आपके स्वभावसे कैसे मेल बैठ सकता है। आप घरमें शराब पीने और छुपकर शराब पीनेमें जो अन्तर करते हैं, मैं उससे भी सादर मतभेद प्रकट करूँगा।"

१८०. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

ज्येष्ठ वदी अमावस्या, गुरुवार [३ जुलाई, १९२४][1]

मुझ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। सरदार मंगलसिंह[2] यहां लगभग एक सप्ताह रहे। वे यहांसे परसो चले गये। आपका पत्र मुझे उनके जानेके बाद मिला, नहीं तो वे वहां अवश्य पहुंच जाते।

इस समय बातचीत टूटनेका मुख्य कारण लार्ड रीडिंग[3] थे। करीब-करीब सब बाते तय हो गई थी। मुझे अब भी आशा है कि आन्दोलनमें[4] खून-खराबी नही होगी। लेकिन भविष्यकी कौन कह सकता है?[5]

लगता है कि दिनकरराव फिर कही चले गये है।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३१७९) से।
सौजन्य महेश पट्टणी

१८१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

[अहमदावाद]
[३ जुलाई, १९२४ के पश्चात्][6]

भाईश्री ५ घनश्यामदास,

आपके दोनो पत्र मिले है। मै जब दिल्ली जाऊंगा तो आपको तार भेजुंगा।

श्री सरोजीनी नायडूकी प्रशसामे मेरे ख्यालसे अतिशयोक्ति नहि है। मै उनको आदर्श भारत महिला नहि मानता हुँ परन्तु द० आ० के कार्यके लीये वह आदर्श एलची थी।[7] इतना कहते हुए भी मै कबुल कर लेना चाहता हुँ कि मै लोगोका

१ १९२४ में ज्येष्ठमें अमावस्या दो दिन, १ और २ जुलाईको पड़ी थी। गुरुवारको ३ जुलाई थी। परन्तु उस दिन अमावस्या न थी।

२ सिख अकाली आन्दोलनके एक नेता।

३ भारतके तत्कालीन वाइसराय और गवर्नर जनरल।

४. अकाली आन्दोलन।

५ देखिए "भेंट एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे", १-७-१९२४।

६ सम्भवत यह पत्र ३ जुलाई १९२४ को प्रकाशित गांधीजीके लेख 'बम्बई सरोजिनीको याद रखे' के बाद लिखा गया।

७ १९२४ के मध्यमें वे पूर्वी आफ्रिकाके दौरेपर गई थी।

गुणको देखता हु और दोषोको भूलना चाहता हु। ऐसा करनेसे न मुझे कुछ हानि हुई है और न उन व्यक्तियोको जिनकी मैने प्रशसा की हो।

यदि मुझको मौलाना महमद अली जल्दी नही बुलायेगे तो मै सप्टेम्बरके पहले दिल्ली नहि पहोचुंगा।[1]

आपका,
मोहनदास गाधी

बिड़ला हाउस
हरिद्वार

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०२८) से।
सौजन्य घनश्यामदास बिड़ला

१८२. पत्र : लाला लाजपतरायको[2]

४ जुलाई, १९२४

प्रिय लालाजी,

मुझे हर्ष है कि आप आखिरकार वहाँ पहुँच गये है, जहाँ आपको होना चाहिए। आशा है कि पूर्ण स्वास्थ्य-प्राप्तितक आप वहाँसे नही हिलेगे।

आशा है, यहाँकी घटनाओंमे आप क्षुब्ध न होगे। एक ही मचपर स्वराज्यवादियोका तथा मेरा सहयोग सम्भव नही है। हाँ, सहयोग सम्भव हो सकता है — यदि दोनोका पृथक-पृथक सगठन हो। काग्रेसको एक समयमें केवल एक ही समस्याको अपनाना चाहिए, एक ही समयमें सरकार तथा जनता दोनोकी ओर कैसे ध्यान दिया जा सकता है?

भवदीय शुभाकाक्षी,
गाधी

लाला लाजपतराय : जीवनी

१ मुहम्मद अलीके निमन्त्रणपर गाधीजी १६ अगस्त १९२४ को दिल्ली पहुँचे थे।
२ मूल अंग्रेजी पत्र उपलब्ध नहीं है।

१८३. पत्र : वसुमती पण्डितको

[साबरमती]
आषाढ सुदी २ [४ जुलाई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा लिफाफा और पोस्टकार्ड एक साथ मिले।

तुम वहाँ एक मास ज्यादा रही, सो अच्छा ही हुआ। जैसे-जैसे ईश्वरमे हमारा विश्वास बढता जाता है और हमे अपनी लघुताका भान होता जाता है वैसे-वैसे हम निश्चिन्त होते जाते है। चिन्ता करनेसे क्या दुःख कम हो जाता है?

बापूके आशीर्वाद

बहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४८) से।
सौजन्य वसुमती पण्डित

१८४. सन्देश : अपरिवर्तनवादियोको[2]

४ जुलाई, १९२४

मुझे अपरिवर्तनवादियोसे केवल दो शब्द कहने है। हम काम करना चाहे तो हमे काम करनेसे कोई नही रोक सकता। हमारे सम्मुख सूत कातने और खादीको तैयार करने तथा वितरित करनेके अतिरिक्त दूसरा कोई क्रियात्मक कार्यक्रम नही है। इसलिए जवान और बूढे, स्त्री और पुरुष सभी इस कार्यमे सलग्न हो जाये। यदि हमारे पडोसी हमारी बात नही सुनते तो इससे हमे सूत कातनेके लिए और भी अधिक समय मिलेगा। इसलिए कोई भी सच्चा कार्यकर्त्ता यह शिकायत नही कर सकता कि उसके पास कोई काम नही है। मै राष्ट्रीय स्कूलोको खद्दर कार्यक्रममे सहायक समझता हूँ।

मो० क० गाधी

[अग्रेजीसे]
अमृतबाजार पत्रिका, ८-७-१९२४

१ डाकखानेकी मुहरसे।

२ यह सन्देश एक प्रमुख काग्रेसी कार्यकर्त्ता, श्री हरदयाल नागके जरिये बगालके अपरिवर्तनवादियोको भेजा गया था।

१८५. तार : जी० नलगोलाको

[साबरमती
५ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्][1]

कालेज बन्द नहीं होना चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८९८८) की फोटो-नकलसे।

१८६. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

आषाढ़ सुदी ५ [७ जुलाई, १९२४][2]

पू० गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। भविष्यपर हमारा कोई वश नहीं है, भविष्यके बारेमें हम कुछ नहीं जानते। जब हम छोटीसे-छोटी बातमें भी निमित्त-मात्र होते हैं तब दुःख किसलिए मानें? जो घटित हो, उसे देखते रहें। जो अपना कर्त्तव्य जान पड़े, उसे पूरा करें और प्रसन्न रहें। इसमें समस्त धर्म आ जाता है। आप जिसे दुःख मानती हैं, उसीको सुख क्यों नहीं समझती? सहिष्णुता आपमें कष्ट-सहनसे आई है। सन्तोषमें सुख है। सुख ढूंढनेवालेके पल्ले दुःख ही पड़ता है और दुःख सहन करते-करते सुख मिलता है। हम मजदूर जन्मे हैं। यदि चाकरी बजाते — सेवा कार्य करते — हुए हमारी आंखें मुंदें तो समझना चाहिए कि हमारा जीवन सफल हो गया।

आप जब आश्रममें आयें तब मुझे सूचित करें। आशा है जच्चा और बच्चा दोनों स्वस्थ होंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१३) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

१. यह जी० नलगोलाके ५ जुलाई, १९२४ के तारके उत्तरमें दिया गया था। तार इस प्रकार है : "आपको ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके बारेमें प्रफुल्ल घोषसे जानकारी मिल चुकी है। तार दें, हमें क्या करना है। छात्र।" देखिए "तार : ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके छात्रोंको", ९-७-१९२४ या उसके पश्चात्।

२. पत्रमें गंगाबहनके आश्रममें आनेके जिक्रसे लगता है कि पत्र २२ जुलाई, १९२४ से पहले लिखा गया था। देखिए "पत्र : गंगाबहन वैद्यको", २२-७-१९२४। आषाढ़ सुदी ५, इस वर्ष ७ जुलाई, १९२४ को पड़ी थी।

१८७. तार : मथुरादास त्रिकमजीको

[७ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्]

कोई खराबी नही, केवल कमजोरी।[1]

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८९९०) की फोटो-नकलसे।

१८८. तार : ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके छात्रोंको

[९ जुलाई, १९२४ या उसके पश्चात्][2]

यदि कोई सहायता नही मिलती तो छात्र संगठित हों। आपसमें मिलकर अध्ययन और कार्य करें।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८९९३) की फोटो-नकलसे।

१८९. टिप्पणियाँ

कौंसिल-प्रवेश

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अधिवेशन समाप्त होनेपर पण्डित मोती-लालजी एक पारिवारिक मुलाकातके लिए राजकोट गये और वहाँसे बम्बई जाते वक्त अहमदाबाद रुके। वही हम दोनोकी मुलाकात हुई। बातचीतमें मेरे मुँहसे यह बात निकल पड़ी कि अब आजकी हालतमें स्वराज्यवादियोंका कौंसिलें छोड़ना बहुत ही घातक होगा। उन्होंने मुझे फौरन याद दिलाई कि पहले तो आपने लिखा था कि यदि आप स्वराज्यवादियोंको कायल कर सकते तो उनसे कौंसिलोंमें से निकल

१. यह तार मथुरादासके उस तारके उत्तरमें दिया गया था जो उन्होंने गांधीजीके स्वास्थ्यके बारेमें पूछताछके लिए कृष्णदासको भेजा था। यह ७ जुलाई, १९२४ को प्राप्त हुआ था।

२. यह ढाका राष्ट्रीय महाविद्यालयके छात्रोंके उस तारके उत्तरमें दिया गया था जो उन्होंने ९ जुलाई, १९२४ को भेजा था। तार इस प्रकार है “महाविद्यालयके अधिकारियोंने तार दबा दिया। स्कूलोंके बहिष्कारमें आचार्य और प्राध्यापकोंका अविश्वास। उनके अधीन कैसे पढ़ें। स्पष्ट तार दें। जिलानी तीस जिन्दाबहार ढाका”। देखिए “तार : जी० नलगोलाको”, ५-७-१९२४ या उसके पश्चात्।

आनेके लिए कहते। मैंने कहा कि मुझे इन दोनो वातोमे कोई विरोध नही मालूम होता। पहले जो-कुछ कहा, वह एक स्थायी वात है और सिद्धान्तपर आधारित है और अव जो-कुछ कह रहा हूँ, वह अवसरको ध्यानमे रखकर कह रहा हूँ। इसमें कोई शक नही कि स्वराज्यवादियोने सरकारी हलकोमे वडी हलचल पैदा कर दी है और इसमे भी कोई शक नही है कि यदि इस समय वे कौसिलोसे निकल आते है तो उसका गलत अर्थ लगाया जायेगा — यह समझा जायेगा कि उनके पैर उखड गये है और वे कमजोर हो गये है। दरअसल, जहाँतक अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीका सम्वन्ध है, स्वराज्यवादियोकी स्थिति कभी इतनी मजवूत नही थी, जितनी कि आज है। वे नैतिक जीतका दावा कर सकते है। वे तो विधानसभा और विधान परिषदोमे जाकर सरकारके साथ लडनेमे विश्वास रखते है, फिर कोई भी कारण नही है कि वे इस समय इन विधायक सस्थाओको छोडे। इस मौकेपर यदि वे सदस्यता छोडते है तो उससे देशमे निराशा और भी वढ जायेगी और सरकारके हाथ मजवूत होगे — यह ऐसी सरकार है जो न्यायके नामपर कुछ भी देना नही जानती और जो झुकती है तो सिर्फ दवाव पडनेपर वेमनसे, और उसमे कोई लज्जत नही रह जाती।

स्वराज्यवादियोके लिए कौसिलोका त्याग करनेका एकमात्र उपयुक्त अवसर वह होगा जव हम कट्टर असहयोगी, जिसे स्वराज्य दिलानेवाला एकमात्र कार्यक्रम मानते है, उसको पूरा करनेके लिए सक्रिय रूपसे जुट जायेंगे और उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रगतिका परिचय देंगे या जव स्वराज्यवादियोको स्वय अपने कडवे अनुभवोसे यह विश्वास हो जायेगा कि परिपदे मिर्च-मसाला तो दे सकती है, लेकिन रोटी नही, और इसलिए हमें अपना सारा समय और ध्यान रचनात्मक कार्यक्रममें ही लगाना चाहिए।

इन तमाम परिस्थितियोकी कुंजी तो हम पूर्ण असहयोगवादियोके हाथमे ही है। हमारा दावा है कि सर्वसाधारण हमारे साथ है। कमसे-कम मैं तो ऐसा ही महसूस करता हूँ। अगर वे हमारे साथ है तो यह वात हमे ठोस काम करके सिद्ध कर देनी चाहिए — काग्रेसमे सिर्फ वहुमत प्राप्त करके नही। अपरिवर्तनवादी सभी प्रान्तोमे पर्याप्त काम करके नही दिखा सकते। शायद इसमे उनका दोप नही। हम कार्यक्रमको तो पसन्द करते है, लेकिन उसके मुताविक काम करनेकी शक्ति हमने विकसित नही की है। यदि यह निदान सही है तो हमें काम करना चाहिए, क्योकि शव्दोसे नही, वल्कि कामसे ही हमें अपने कार्यक्रमके मुताविक चलनेकी शक्ति प्राप्त होगी। जव हम ठोस काम करके दिखा देंगे, केवल तभी स्वराज्यवादी अपने-आप कौसिलोसे निकल आयेंगे।

मेरे खयालमे अव मध्यवर्ती दलके लिए कोई स्थान नही है। मध्यवर्ती दल डाँवाडोल स्थितिवाला दल होता है। वह अवसरके ज्वारके साथ वहता रहता है, लेकिन समय ऐसा आ गया है जव हम सवको दोमे से एक रास्ता निश्चित कर ही लेना चाहिए। जो लोग कौसिलोमे विश्वास रखते हैं, उन्हे वही रहना चाहिए या अगर वे वाहर है तो उन्हे कौसिलोमे प्रवेश करना चाहिए या उनके लिए काम

करना चाहिए। अगर वे कौसिलोमे विश्वास रखते हुए भी लोकमतके डरसे कौसिलोसे निकल आयेगे तो यह उनके लिए और देशके लिए भी घातक होगा। जो स्वराज्य चाहते है, वे अपना वक्त बरबाद नही कर सकते।

मेरी स्थिति

मै कांग्रेसपर अपना नियन्त्रण कायम रखना चाहूँगा — लेकिन ख्याली या बनावटी बहुमतके बलपर नही — महज इसलिए नही कि मेरे हाथ खीच लेनेपर सगठनके ढीले हो जाने और लोगोमे निराशाका भाव आ जानेका डर है। यदि मै अपना कार्यक्रम मजूर नही करा सकता तो फिर उस स्थितिको भी स्वीकार करना पडेगा। शैथिल्यके बाद नवजीवनका सचार होता ही है। १९२०–२१ मे कांग्रेस एक जीती-जागती सस्था बन गई थी लेकिन अब अन्देशा है कि वह १९२०के पहलेसे भी ज्यादा नाचीज बन जायेगी। १९२०मे उसमें सगठित ढगकी बेईमानी नही थी। उस वक्त तक प्रतिनिधियोकी तादाद मर्यादित न थी। कांग्रेस-जनोको लगातार काम करनेकी कोई मजबूरी न थी, और न कांग्रेसका कोई कोष था। अब कांग्रेसके प्रतिनिधियोकी सख्या मर्यादित है। सभी प्रस्ताव उन्हीको लक्ष्य करके पास किये जाते है और अब उसके पास इतना पैसा हे, जैसा कि १९२०के पहले कभी था ही नही।

इसलिए अगर हम बराबर सतर्क नही रहेगे तो इसका स्वाभाविक परिणाम यही होगा कि बेईमानी फैलती चली जायेगी। स्वराज्यवादी मुझसे कहते है कि अपरिवर्तनवादियोने कांग्रेसके विधानपर अमल करनेमे बेईमानीसे काम लिया हे। अपरिवर्तनवादी भी स्वराज्यवादियोके मत्थे यही दोष मढते है। सच क्या है, मै नही जानता। लेकिन मै यह जरूर जानता हूँ कि अगर हम कांग्रेसके विधानपर ज्यादासे-ज्यादा ईमानदारीके साथ अमल नही करते या कर नही सकते तो यह स्वराज्यके लिए अपशकुन होगा।

मै चाहता हूँ कि कांग्रेसकी लोकप्रियता दिनपर-दिन बढती जाये। इसलिए मै उसमे व्यापारियो, कारीगरो और किसानोको शामिल करना चाहूँगा। मै इसी उद्देश्य-को ध्यानमे रखकर बहिष्कारके सभी कार्यक्रमोको भी यथावत् रखना चाहूँगा और कार्यकारिणीमे सिर्फ ऐसे लोगोको ही रखना पसन्द करूँगा, जिन्होने खुद उनपर अमल किया हो। जो लोग आज उनपर अमल नही कर सकते, पर फिर भी उनमे विश्वास रखते है, वे उन लोगोकी मदद कर सकते है जो तदनुसार आचरण करते हो, लेकिन जिनको सस्थाकी व्यवस्था करनेका अनुभव नही है या जो कार्यकर्त्ताके रूपमे लोगोके लिए जाने-पहचाने नही है। और जो लोग अभीतक अलग रहे है, उनके पीछे रहकर उनको सार्वजनिक जीवनमे आगे लानेका खास काम शिक्षित वर्गका ही होना चाहिए।

ऐसी सस्थामे विशेषाधिकार-प्राप्त वर्गोके लोगोके लिए कार्यकारिणीमे कोई स्थान नही है। वे सब वार्षिक विचार गोष्ठीमे तो शामिल हो सकते है। पण्डित मोतीलालजी एक छोटी स्थायी विचार-समिति बनानेका सुझाव देते है। मुझे उसमे कोई उज्र नही। महाधिवेशनके सभी अधिकार रखनेवाली एक ऐसी समितिसे शायद लाभ ही होगा।

इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि इस विधानमें भारी रद्दोबदलकी जरूरत है। हमें कामसे गुरुता और तत्परता लानी चाहिए और यदि हम लोग, जिन्हे इस सस्थाके नवविधानपर अमल करना है, ईमानदार नही है या कुशलता तथा तत्परताके इच्छुक नहीं है तो नवविधानके सर्वागपूर्ण रहनेपर भी कामसे कुशलता और तत्परताकी पक्की आशा नहीं की जा सकती।

उचित फटकार

पजाब सरकारने अपनी एक विज्ञप्तिमे जनताको फटकार बताई है, जो बहुत उचित है। विज्ञप्तिमें उसने हिन्दुओं और मुसलमानो दोना, जातियो द्वारा प्रकाशित उन अखबारोंके खिलाफ कानूनी कारवाई करनेका इरादा जाहिर किया है, जिन्होंने एक दूसरेके धर्मपर कीचड उछालना ही अपना धन्धा बना रखा है। विज्ञप्ति इस प्रकार है

> पिछले कुछ समयसे पजाब सरकार देख रही है कि इस प्रान्तमें हिन्दू और मुसलमान, दोनो कुछ ऐसे अखबार प्रकाशित कर रहे हैं जिनमें एक-दूसरेके बारेमें और एक दूसरेके धर्मके बारेमें उत्तेजनात्मक और गाली-गलौज भरी सामग्री छपती रहती है। इस कुत्सित प्रचारको सरकार बडी चिन्ताकी दृष्टिसे देखती रही है। इसमें बहुत ही गन्दी भाषाका प्रयोग किया जाता है और कभी-कभी तो भाषा अश्लील तक होती है। सरकारको आशा थी कि इस गन्दगी और अश्लीलतासे दोनो जातियोंके प्रतिष्ठित लोग क्षुब्ध हो उठेंगे और ये अखबारवाले भी समझ जायेंगे कि जनताके किसी भी हिस्सेपर उनके लेखोका कोई असर नहीं पड रहा है। लेकिन, दुर्भाग्यकी बात है कि सरकारकी यह आशा पूरी नहीं हुई और सरकारको मजबूर होकर दो अपराधी अखबारोके खिलाफ मुकदमे चलाने पड़े हैं। सरकारको दोनो जातियोंके नेताओकी समझदारीपर भरोसा है और उसे आशा है कि धार्मिक विद्वेषकी इस अत्यन्त आपत्तिजनक अभिव्यक्तिको दबानेमें वे हर तरहसे अपनी सामर्थ्य-भर उसकी सहायता करेंगे। ऐसे प्रचारसे दो महान जातियोंके सद्भावनापूर्ण सम्बन्धोको बहुत बडा खतरा पैदा हो गया है।

खेदके साथ स्वीकार करना पडेगा कि यदि जनताने इन अखबारोके खिलाफ जुटकर काम किया होता तो यह बन्द किये जा सकते थे। अब भी ऐसी ही आशा करनी चाहिए कि सम्बन्धित प्रकाशक अपने धर्म-विरुद्ध आचरणके लिए क्षमा-याचना करेंगे और इन अखबारोंका प्रकाशन बन्द कर देंगे।

स्वराज्यके अन्तर्गत सरकारी नौकरियाँ

पटना निवासी श्री अली हसनने मेरे इस सुझावपर आपत्ति की है कि स्वराज्य सरकारमें लोगोको जातीय अनुपातके अनुसार नही, बल्कि विशुद्ध रूपसे योग्यताके आधारपर नौकरियाँ दी जानी चाहिए। वे एक सामान्य रूपसे प्रचारित कथनको

उदाहरणस्वरूप पेश करते हुए कहते है कि आज अधिकाश अच्छे-अच्छे पदोपर हिन्दू लोग ही आसीन है। मेरे पास कोई आंकडे नही जिनके आधारपर मै उस कथनके सत्यासत्यपर विचार करूँ। लेकिन, अगर उनकी बात सच हो, तब भी मेरे विचारमे कोई फर्क नही आयेगा। वर्तमान सरकारको मुख्यत अपनी स्थिति सुदृढ रखनेकी ही चिन्ता है और इसलिए जो पक्ष सबसे ज्यादा शोरगुल मचाता है, उसे सन्तुष्ट करके वह अपनी स्थिति सुरक्षित रखना चाहती है। उस सरकारके अधीन हम जो वस्तुस्थिति देखते है, उसे देखकर कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। न्याय करनेका एकमात्र रास्ता यही है कि जो जातियां शिक्षाके क्षेत्रमे पिछडी हुई है, उन्हे शिक्षाकी विशेष सुविधा दी जाये। पिछडे हुए लोगोका स्तर ऊँचा उठाना सरकारका कर्त्तव्य है, लेकिन उसका उतना ही महत्वपूर्ण कर्त्तव्य यह भी है नियुक्तिके मामलेमे वह कार्यक्षमता और चरित्रको ही एकमात्र कसौटी बनाये। नियुक्ति करते समय अधिकसे-अधिक निष्पक्षता बरतनेकी व्यवस्था अवश्य रखनी चाहिए, लेकिन इस मामलेमे जातीय अनुपातके आधारपर कोई निश्चित नियम नही बनाया जा सकता।

हिन्दू कौन है ?

इस सिलसिलेमे श्री अलीहसनने एक अजीब बात कही है। वे कहते है

> आज तो हिन्दूका मतलब सिर्फ ब्राह्मण और कायस्थ रह गया है। उन्हे अछूतोको अपने अन्दर शामिल करके उनसे फायदा उठानेका कोई हक नहीं है, जब कि वे उनके साथ बराबरीका व्यवहार करनेके लिए तैयार नहीं है। नीची जातिवाले बिलकुल अलग किस्मके लोग है और उनके साथ अच्छा सलूक होना चाहिए। हिन्दूओ और मुसलमानोको उनका तथा दूसरी अल्पसख्यक जातियोका भी लिहाज करना चाहिए।

अगर मुझे यह न मालूम होता कि बहुतसे मुसलमानोका ऐसा खयाल है तो मै इस बातपर ध्यान भी न देता। श्री अलीहसन तो अन्य लोगोसे एक कदम और आगे बढकर मानते है कि तमाम नीची जातियाँ हिन्दुओसे अलग है। किसी भी मुसलमानके लिए ऐसा मानना एक खतरनाक बात है, क्योकि इसका मतलब इस बातका फैसला करनेकी कोशिश करना है कि कौन हिन्दू है और कौन नही। अच्छा, तो इनकी रायमे अकेले ब्राह्मण और कायस्थ ही हिन्दू है — क्षत्रिय लोग हिन्दू नही है। तब तो हिन्दुओकी सख्या बहुत ही थोडी है। सच तो यह है कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेके बारेमे इस बातका फैसला नही कर सकता कि वह कौन है। अछूतोने इस बातका फैसला स्वय ही किया है कि वे कौन है। मुझे अभीतक एक भी ऐसा अछूत नही मिला, जिसने अपनेको हिन्दू न बताया हो। हाँ, धर्म-परिवर्तन करनेवाले लोग अवश्य ही इसमे शामिल नही है।

बेहतर प्रशासक कौन है ?

श्री अलीहसन आगे लिखते है कि आपने इस बातको तो कबूल किया ही है कि मुसलमान लोग हिन्दुओसे बेहतर प्रशासक होते है, इसलिए आपके लिए इस

इस आदेशके फलस्वरूप राज्य धर्म-परिवर्तन करनेवालोंकी संख्याकी भी अद्यावधि जानकारी रख पाता है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह आदेश सच्चे दिलसे हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम कबूल करनेपर रोक लगाता है या उसे किसी और तरहसे ही प्रभावित करता है।

इस भूल-सुधारको प्रकाशित करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। पत्रलेखकका कहना है कि उन्होंने जो-कुछ लिखा है, वह सर्वथा प्रामाणिक है। लेकिन मुझे लगता है कि दरबारसे पूर्वस्वीकृति लेनेकी शर्त समाजकी स्वच्छता और कल्याणकी दृष्टिसे लगाया गया शुभ अंकुश ही नहीं है, इसमें कुछ अधिक है। किसी वयस्क व्यक्तिपर, जिसमें पूरी समझदारी हो, दरबारसे पूर्वस्वीकृति लेनेका बन्धन क्यों लगाया जाये? ऐसे धर्म-परिवर्तनकी प्रामाणिकताका निर्णय कौन करेगा? हिन्दुओंको तो अपना धर्म छोड़कर कोई और धर्म स्वीकार करनेका हर मामला पतनकी ही निशानी दिखेगा, इसलिए ऐसे धर्म-परिवर्तनके हर मामलेके प्रति उसका दृष्टिकोण पूर्वग्रहसे ग्रसित रहेगा। इसलिए मैं दरबारसे नम्र निवेदन करूँगा कि वह पूर्व सहमतिवाली धारा हटा दे। धर्म-परिवर्तनके मामलोंका पंजीयन करनेकी व्यवस्था अप्रामाणिक धर्म-परिवर्तनके विरुद्ध पर्याप्त सुरक्षा प्रदान कर सकती है और इस सिलसिलेमें इस बातकी जानकारी भी दिलचस्प होगी कि उस राज्यमें इसपर किस ढंगसे अमल किया गया है। हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि सभी हिन्दू राज्य अपने-आपको आदर्श राज्य बनायें और हिन्दू धर्ममें जो बुराइयाँ आ गई हैं, उन्हें दूर करें। तो रीवाँ राज्यसे मैं इस बातकी अपेक्षा करूँगा कि वह अस्पृश्यताके विरुद्ध एक कानून बनाकर दिखाये। जो व्यवस्था अपनी आन्तरिक बुराइयोंके कारण दम तोड़ रही हो, उसे बाहरी सुरक्षाका कोई भी उपाय जीवित नहीं रख सकता।

मिथ्याभिमान?

खादी बोर्डने बहुतसे नौजवानोंको खादीके काममें लगा रखा है, लेकिन मुझे मालूम हुआ है कि उसे सही किस्मके ऐसे लोग नहीं मिल रहे हैं जो अपना सारा समय इस काममें लगायें। वे अपना जीविकोपार्जन किसी और साधनसे करना चाहते हैं। मेरे विचारसे, कामके बदले वेतन न स्वीकार करनेकी यह प्रवृत्ति शुभ नहीं है। हमें पूरे समय काम करनेवाले कार्यकर्त्ताओंकी एक पूरी फौज ही चाहिए। भारत-जैसे गरीब देशमें बिना वेतनके ऐसे कार्यकर्त्ता मिलना सम्भव नहीं है। ईमानदारीके साथ अच्छा राष्ट्रीय काम करनेके लिए वेतन स्वीकार करनेमें मुझे लज्जा की तो कोई बात ही नहीं दिखाई देती, बल्कि मुझे इसमें श्रेय ही दृष्टिगोचर होता है। स्वराज्य-की स्थापनाके बाद भी तो हमें ऐसे बहुतसे कार्यकर्त्ताओंको कामपर लगाना होगा जो वेतन लेकर पूरे समय तक काम करें। तब क्या हमें आज स्वराज्य सेवामें शरीक होनेमें भारतीय असैनिक-सेवा (आई० सी० एस०) में काम करनेवाले अंग्रेजोंसे कम गौरवका अनुभव होगा? तब फिर आज जब किसीको भी पेंशन देना तो दूर पूरे स्थायित्व तककी कोई गारंटी नहीं दी जा सकती, वेतन स्वीकार न करनेका क्या औचित्य रह जाता है? क्या यह भी एक भारी विडम्बना नहीं है कि एक ओर जहाँ

यह कहा जाता है कि वकीलोंने जीविकोपार्जनकी कोई व्यवस्था न हो पानेके कारण पुन वकालत शुरू कर दी, वहाँ दूसरी ओर खादी बोर्डको वेतन लेकर काम करनेवाले अच्छे कार्यकर्त्ता मिलना मुश्किल हो रहा है?

एक और भी बात है, जिसकी ओर ध्यान देना जरूरी है। जब कोई आदमी राष्ट्रकार्यके लिए चाहे वेतन लेकर या बिना वेतनके — स्वेच्छासे अपनी सेवाएँ प्रदान करता है तो वह किसी भी साधारण कर्मचारीपर लागू होनेवाले सभी अनुशासनो और नियमोंके अधीन हो जाता है। स्वयसेवकोपर तो अनुशासन और भी कड़ाईके साथ लागू होता है। इसलिए उसे छुट्टी लिये बिना कामपर गैरहाजिर नही होना चाहिए, बल्कि उसे अनुमति लिये बिना जेल जानेके लिए भी कोई कदम नही उठाना चाहिए। सविनय अवज्ञा एकाधिक अर्थोमे विनयपूर्ण होनी चाहिए। उसमे मिथ्या साहस प्रदर्शन और आवेश-आवेगके लिए स्थान नही है। सविनय अवज्ञाका मतलब है अनुशासनबद्ध विवेकपूर्ण, विनम्र बलिदान।

स्त्रियाँ आगे बढ़ें

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी एक सदस्या श्रीमती हेमप्रभा मजुमदार मेरे नाम एक पुर्जा छोड गई है, उसमे लिखा है

> **मेरा खयाल है कि जबतक हमारे देशकी महिलाएँ कताईका काम खास तौरपर अपने जिम्मे नहीं लेंगी, तबतक यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। इसलिए प्रार्थना है कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सदस्योंसे खास तौर पर यह अनुरोध किया जाये कि वे स्त्रियोकी कताईकी तालीमका विशेष प्रबन्ध करे।**

मै दिलसे इसकी ताईद करता हूँ और अपनी तरफसे इतना और कहना चाहता हूँ कि और भी बहुत-सी बाते भारतकी महिलाओकी सहायताके बिना असम्भव है। सवाल सिर्फ यही है कि इस कामको कौन और किस तरह करे। बहुत-सी बहने काम कर रही है पर अभी और भी बहनोकी आवश्यकता है। पुरुष कार्यकर्त्ताओकी तरह अपना पूरा समय देनेवाली स्त्री कार्यकर्त्रियाँ भी होनी चाहिए। मै जानता हूँ कि कुछ ऐसी स्त्रियाँ इस क्षेत्रमे काम कर रही है, पर उनकी सख्या बहुत ही कम है। मै इस बहनको निमन्त्रण देता हूँ कि वे इस कार्यका आरम्भ करे। इस उद्देश्यसे उन्हे स्वय कताईके लिए कुछ समय अलग बचाकर रखना चाहिए और धुनाई, कपासकी किस्म पहचानना, सूतका नम्बर पहचानना और उसकी मजबूती परखना सीखकर इस कलामे प्रवीणता प्राप्त कर लेनी चाहिए। वे इसका शुभारम्भ इस राष्ट्रीय व्यवसायके प्रति अपने पडोसियोमे रुचि पैदा करके कर सकती है। यदि वे ऐसा करेगी तो देखेगी कि दायरा बढ रहा है। बेशक मै पतियोसे प्रार्थना करूँगा कि वे अपनी पत्नियोको इस कामका सगठन करने दे। बगालका मामला शायद सबसे मुश्किल है, क्योकि वहाँ क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सब महिलाएँ परदा रखती है। मै विश्वास दिलाता हूँ कि जो कोई इस कामको श्रद्धा और उत्कटताके साथ शुरू करेगा, उसे वह बडा सरस और राष्ट्रीय दृष्टिसे लाभदायक जान पडेगा।

बकरीद

बकरीदके त्योहारका समय हिन्दुओ और मुसलमानो, दोनोके लिए चिन्ताका होता है। यदि हम परस्पर सहिष्णुता और एक-दूसरेके प्रति आदरका भाव रखें तो ऐसी स्थिति न आये। मुसलमान पशुओंकी कुर्बानीमे विश्वास रखते है और इसलिए वे गायकी भी कुर्बानी करते है। फिर उसमे हिन्दुओंको क्यो दस्तन्दाजी करनी चाहिए? इसी तरह मुसलमानोको भी गायकी कुर्बानी और सो भी जान-बूझकर इस ढगसे क्यो करनी चाहिए, जिससे हिन्दुओंकी भावनाओंको आघात पहुँचे। क्यो नही मुसलमान १९२१ का वही शराफत-भरा व्यवहार करते जब उन्होने अपने हिन्दू पडोसियोकी भावनाका खयाल रखनेके लिए खुद ही गायोको बचानेका भार अपने सिर ले लिया था? उस अवसरपर दरहकीकत उन्होने सैकडो गायोको बचाया भी, जिसे कि खुद हिन्दुओने भी तसलीम किया। निश्चय ही बकरीदके दिन मुसलमानोको अपने मनसे हिन्दुओके प्रति प्रेमभाव जगानेके लिए खास तौरपर कोशिश करनी चाहिए और हिन्दुओको भी चाहिए कि मुसलमानोके धार्मिक रस्म-रिवाजका वे लिहाज रखें, भले ही वे उन्हे कितने ही अप्रिय क्यो न हो। क्या वे खुद भी मुसलमानोसे मूर्तिपूजाके विषयमे यही अपेक्षा नही रखते हालाँकि उन्हे यह बहुत अप्रिय है? परमात्मा हमारे अपने कामके लिए हमे ही जिम्मेवार मानेगा, हमारे पडोसीके कामके लिए नही।

फिर बाराबकीके बारेमें

बाराबकी सम्बन्धी मेरी टिप्पणीपर मुझे दो ऐसे पत्र मिले है, जिनसे उस विषयपर बहुत प्रकाश पडता है। उनमे एक मुसलमान सज्जनका लिखा हुआ है और दूसरा हिन्दू सज्जनका। यद्यपि वे बिलकुल स्वतन्त्र रूपसे अलग-अलग लिखे गये है तो भी उनमे जिन तथ्योका विवेचन है उनके बारेमे पत्र-लेखक एकमत है। दोनोमे कुछ नई बाते है। दोनो निष्पक्ष दृष्टिसे लिखे हुए दिखाई देते है। मै उन चिट्ठियोको इसलिए प्रकाशित नही कर रहा हूँ कि उनके प्रकाशनसे कोई लाभ नही होनेवाला है। जो बाते उनमे बताई गई है, उनसे लेखकोको छोडकर किसीकी नेकनामी नही होती। फिर भी एक बात बिलकुल साफ है कि नगरपालिकापर कब्जा करना वहाँके हिन्दुओ और मुसलमानोके बीच वैमनस्यका कारण बन गया है। यदि असहयोगकी बात जाने दे तो भी मुझे तो यह बिल्कुल साफ दिखाई देता है कि जहाँ हिन्दुओ और मुसलमानोमे हार्दिक एकता न हो, असहयोगी, फिर वे चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, नगरपालिका या जिला बोर्डोमे प्रवेश न करे। जहाँ एक पक्ष उनमे जानेके लिए तैयार हो, वहाँ भी दूसरे पक्षके लोग उससे दूर ही रहे। कहते है, नगरपालिकाका यह अशोभन विवाद शुरू होनेसे पहले तक दोनो जातियोके लोग पूरे मेल-मिलापके साथ रहते थे। पर अब इस चुनावके कारण केवल नगरपालिकाके प्रतिपक्षियोके बीच ही नही बल्कि सारे शहरमे तनाव फैल गया है। मुझे पूरी आशा है कि बाराबकी नगर अपनी पुरानी साम्प्रदायिक सद्भावनाको फिरसे स्थापित करके अपने खोये हुए यशको पुन प्राप्त कर लेगा।

एक खण्डन

तियोके धर्माचार्य श्री नारायण गुरुस्वामीके साथ जिस मुलाकातके विवरण[1]की बात छपी थी, उसके बारेमे श्री नारायणन्‌ने एक पत्र भेजा है। मै प्रसन्नतापूर्वक वह पत्र छाप रहा हूँ। पत्र इस प्रकार है

> वाइकोम-सत्याग्रहके वर्तमान तरीकोके बारेमें परम पूज्य श्री नारायण गुरुस्वामीके विचारोके सम्बन्धमें 'यग इडिया' में प्रकाशित आपकी टिप्पणी पढ़कर बहुत दु ख हुआ। कुछ ही दिन पहले मै स्वामीजीसे मिला था और उनसे काफी देर तक बातचीत भी की थी। स्वामीजीने प्रारम्भमें ही स्वय कहा कि कुछ दिन पहले रेलगाडीमें श्री केशवन् नामक किन्हीं सज्जनसे उनकी बातचीत हुई थी और उन्होने उस तथाकथित मुलाकातका एक अनधिकृत विवरण देशी भाषाके किसी अखबारमें छापकर उन्हे जनताके सामने बहुत गलत रूपमें पेश किया है। पहली बात तो यह है कि स्वामीजी किसी पत्र-प्रतिनिधिको मुलाकात देनेके आदी नहीं है। लेकिन, वे जिस किसीसे जिस विषयपर भी बात करते है, उसपर अपने विचार मुक्त भावसे व्यक्त कर देते है। अभी बिलकुल हालमें श्रीयुत चक्रवर्ती राजगोपालाचारीकी भी वाइकोमके मामलेपर स्वामीजीसे काफी खुलकर बातें हुई थीं, और कहते है, उस अवसरपर स्वामीजीने बहुत स्पष्ट शब्दोमें वाइकोम सत्याग्रहके मौजूदा तरीकोंसे सहमति प्रकट की थी।
>
> स्वामीजी जो-कुछ कहते है, वह यह है यह सच है कि वे मन्दिरमें प्रवेश करने और दूसरोके साथ बैठकर खाने-पीनेके पक्षमें बोले, लेकिन ऐसा उन्होने इसलिए किया कि वे सदासे मन्दिर-प्रवेश और सह-भोजनके पक्षधर रहे है। किन्तु, अहिंसापर उनका बहुत आग्रह है। उनका कहना है कि बाड़ें खडी न की गई हो, तो भी निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करना हिंसा है, क्योकि सीमापर सरकारके निषेधात्मक आदेशकी जो तख्ती होती है, वह अपने आपमें पुलिसवालो द्वारा खडी की गई बाडके बराबर है, पुलिसवाले तो जब स्वयसेवक उस ओर बढते है, उस समय उस आदेशको सिर्फ दोहराते-भर है। उनका विचार यह है कि जबतक निषेधकी सूचना देनेवाली तख्ती वहाँ लगी हुई है तबतक स्वयसेवकोको सीमा-रेखापर ही रुके रहकर ईश्वरसे यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह उनके विरोधियोको अपना मन बदलनेका साहस दें जिससे वे उस तख्तीको स्वय हटा दें। हो सकता है, उन्होने श्री केशवन्‌से ऐसा कुछ कहा हो कि यदि स्वयसेवकोका तख्तीपर लिखे सरकारके निषेधात्मक आदेशकी अवहेलना करके निषिद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करना ठीक हो तब तो फिर पुलिसका घेरा लाघकर आगे बढ़नेमें भी कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। स्वामीजीका कहना है कि हो सकता है, इसी बातको श्री केशवन्‌ने गलत ढगसे समझा

१ देखिए "टिप्पणियाँ", १९-६-१९२४।

> हो। उन्होंने मेरा ध्यान इस तथ्यकी ओर आकृष्ट किया कि स्वयंसेवकोंका आचार-व्यवहार आदर्श होना चाहिए और उत्तेजनाका बड़ेसे-बड़ा कारण होने पर भी उन्हें रोष नहीं करना चाहिए। स्वामीजीका यह खयाल भी है कि ५०० सवर्ण हिन्दुओंके वाइकोमसे चलकर पैदल ही त्रिवेन्द्रमतक जानेकी जो बात चल रही है, उसका नैतिक प्रभाव बहुत जबरदस्त होगा और उससे सभी सम्बन्धित लोग प्रभावित होंगे। अन्ततः उन्होंने आन्दोलनकी पूर्ण सफलताकी कामना करते हुए कहा कि यदि लोग आन्दोलनको इसी उत्साहसे चलाते रहे तो सफलता दूर नहीं है।

उपर्युक्त टिप्पणी तैयार हो जानेके बाद, मुझे एक अधिकृत पत्र मिला है, जो इस प्रकार है

> रेलगाड़ीमें श्री के० एम० केशवन्की मुझसे कुछ बातचीत हुई थी, जिसका विवरण 'देशाभिमानी' में छपा है। लगता है, वह विवरण मेरा आशय ठीक-ठीक समझे बिना तैयार किया गया है। प्रकाशनसे पूर्व वह विवरण मुझे दिखाया नहीं गया और न प्रकाशनके शीघ्र बाद ही वह मुझे देखनेको मिला। सामाजिक सामंजस्यके लिए अस्पृश्यता-निवारण बहुत आवश्यक है। महात्मा गांधीने इस बुराईको दूर करनेके लिए जो सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया है, उसपर मुझे कोई आपत्ति नहीं है और न लोगोंके उस आन्दोलनमें सहयोग देनेपर ही मुझे कोई एतराज है। अस्पृश्यताके कलंकको दूर करनेके लिए कामका जो भी तरीका अपनाया जाये, उसका पूर्ण रूपसे अहिंसात्मक होना जरूरी है।
>
> नारायण गुरु
>
> मुटावकड्
> २७-६-१९२४

आधा दर्जन और छः

'रंगीला रसूल' नामक अपठनीय पुस्तिका तथा 'शैतान' नामक गाली-गलौजसे भरे पर्चेके सम्बन्धमें मैंने जो बातें कही थीं,[१] उनके सिलसिलेमें आर्यसमाजियोंकी तरफसे मेरे पास ढेरके-ढेर पत्र आये हैं। वे मेरी बातकी सचाईके तो कायल हैं पर कहते हैं कि कुछ मुसलमान पर्चोंका भी यही हाल है और पहले उन्होंने ही यह गाली-गलौज शुरू की, बादमें आर्यसमाजी लोग भी बदलेमें वही सब करने लगे। पत्र-लेखकोंने मेरे पास ऐसे कुछ पर्चे भेजे हैं। उनके कुछ हिस्सोंको पढ़नेकी व्यथा मैंने सहन की। उनके कुछ अंशोंकी भाषा तो निहायत घिनौनी है। उन्हें यहाँ उद्धृत करके मैं इन पृष्ठोंको गन्दा नहीं कर सकता। एक मुसलमान-लिखित स्वामी

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १९-६-१९२४, उपशीर्षक "आग भड़कानेवाला साहित्य"।

दयानन्दके जीवन-चरित्रकी भी एक प्रति मुझे मिली है। मुझे कहते हुए दुःख होता है कि यह अधिकाशमे उस महान् सुधारकका विकृत चित्र है। उनके किये हर काम-पर लेखकने जहर उगला है। एक पत्र-लेखक इस वातकी वडी वुरी तरह शिकायत करते हैं कि मेरी वातोंने मुसलमान लेखको और वक्ताओका हौसला इतना वढा दिया है कि वे अव आर्यसमाज ओर आर्यसमाजियोको और भी ज्यादा गालियाँ देने लगे हैं। एकने हाल ही हुई लाहौरकी एक सभाका हाल लिखकर भेजा है, जिसमे आर्य समाजपर ऐसी-ऐसी गालियोकी वौछार की गई कि जिनको लिखा नही जा सकता। कहनेकी जरूरत नही कि ऐसे लेखो ओर भापणोके साथ मेरी कोई हमदर्दी नही हो सकती। मैंने आर्यसमाजके वारेमे जो राय प्रकाशित की है, उसके वावजूद मैं आर्य-समाजके सस्थापकका एक नम्र प्रशसक होनेका दावा करता हूँ। उन्होंने हिन्दू समाज-को भ्रष्ट करनेवाला कितनी ही कुप्रथाओकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया हे। उन्होने सस्कृत विद्याके पठन-पाठनका शौक वढाया। उन्होने अन्धविश्वासको ललकारा। उन्होने अपने शुद्ध आचरणसे अपने समाजके आचरणको ऊँचा उठाया। उन्होने निर्भयता सिखाई ओर कितने ही निराश युवकोमे नई आशाका सचार किया। मै उनकी राष्ट्र सेवाके अनेक कार्योसे भी वेखवर नही हूँ। आर्यसमाजने कितने ही सच्चे और आत्मत्यागी कायकर्त्ता दिये हैं। उसने हिन्दुओमे स्त्री-शिक्षाका जितना प्रचार किया है, उतना व्रह्मसमाजको छोडकर शायद ही किसी और हिन्दू सस्थाने किया हो। कुछ अज्ञानी लोगोंने यहाँतक कह डाला हे कि मैंने श्रद्धानन्दजीके विपयमे जो वाते कही, वह इसलिए कि वे मेरी वातोकी आलोचना किया करते हैं। किन्तु इस आरोपका यह अर्थ नही है कि उन्होने गुरुकुलमे सवको रास्ता दिखानेवाला जो काम किया, उसके महत्त्वको मै एक वार फिर स्वीकार किये विना रह जाऊँ। ऐसी हालतमे, जहाँतक मै एक ओर समाज, 'सत्यार्थप्रकाश', ऋषि दयानन्द तथा स्वामी श्रद्धानन्दजीके विपयमे कहा गया अपना एक भी शव्द वापस लेनेमे असमर्थ हूँ, वही दूसरी ओर मैं फिर दुहराता हूँ कि मैंने वह आलोचना विलकुल मित्र-भावसे की है और इस अभिलापासे की है कि जिन त्रुटियोकी ओर मैंने समाजका ध्यान दिलाया है, उन त्रुटियोसे मुक्त होकर वह अधिक सेवाक्षम वन सके। मै चाहता हूँ कि वह समयके साथ कदम मिलाकर चले, खण्डन-मण्डन वृत्तिको छोड दे और अपनी रायपर कायम रहते हुए दूसरे सम्प्रदायवालोके प्रति उसी सहिष्णुताका परिचय दे जिसकी अपेक्षा वह खुद अपने लिए रखता हे। मै चाहता हूँ कि वह अपने कायकर्त्ताओपर निगाह रखे और ऐसे लेखोका लिखना वन्द करवा दे जो समाजके नामपर धव्वा लगानेवाले हो, मौजूदा रवैयेको उचित ठहरानेके लिए यह कोई तर्कसगत उत्तर नही है कि इस निन्दा-कार्यकी शुरुआत मुसलमानोने ही की। मुझे पता नही कि उन्होने ऐसा किया या नही। पर मै इतना जरूर जानता हूँ कि अगर उनकी वातोके जवावमे वैसी ही वाते न कही जाती तो थककर वे अपने-आप चुप हो जाते। मैंने तो समाजियोसे शुद्धि तकको छोड देनेको नही कहा हे। पर मै उनसे यह प्रार्थना जरूर करूँगा और इसी प्रकार मुसलमानोसे भी कि वे शुद्धि सम्वन्धी वर्तमान विचारपर फिरसे गौर करे।

उन मुसलमान लेखकों और वक्ताओंसे, जिनके बारेमें मेरे पास उक्त पत्र आये हैं, मैं यह कहना चाहता हूँ कि अपने प्रतिपक्षीको मनचाही गालियाँ देकर वे न तो अपनी कीर्ति बढाते हैं और न अपने धर्मकी। आर्यसमाजको और समाजियोंको गालियाँ देकर वे न तो अपना कुछ फायदा कर सकते हैं और न इस्लामकी ही खिदमत कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-७-१९२४

१९०. जेलके अनुभव — १०

कुछ कैदी वार्डर (२)

अदन सोमालीलैंडका एक जवान सिपाही था और महायुद्धके दिनोंमें ब्रिटिश सेनाको छोडकर चले जानेके अपराधमें उसे दस वर्षकी कडी सजा हुई थी। अदन-जेलके अधिकारियोंने उसे बदलकर यहाँ भेज दिया था। हम यरवदा गये तब वह अपनी सजाके चार साल काट चुका था। उसे निरक्षर ही कहना चाहिए। वह 'कुरान' मुश्किलसे पढ पाता था, परन्तु उसकी सही-सही नकल नहीं कर पाता था। उर्दू वह ठीक, काफी अच्छी तरह बोल लेता था और उर्दू पढनेको उत्सुक भी रहता था। सुपरिंटेंडेंटकी इजाजत लेकर मैं उसे पढाने लगा। परन्तु वर्णमाला ही उसे बहुत मुश्किल लगी और उसने पढना छोड दिया। फिर भी अदन था बडा समझदार और कुशाग्र बुद्धिका मनुष्य। उसकी सबसे ज्यादा दिलचस्पी धार्मिक बातोंमें थी। वह पक्का मुसलमान था, पाँचों नमाजें नियमपूर्वक पढता, आधी रातकी नमाज भी। वह रमजानके महीनेमें कभी रोजा न चूकता। तसबीह आठों पहर उसके साथ रहती, फुरसत होती तब वह 'कुरान शरीफ' में से आयतें पढता। अकसर मेरे साथ हिन्दुओंमें प्रचलित निराहार उपवासोंपर चर्चा करता। अहिंसाके बारेमें वाद-विवाद करता। वह बहादुर आदमी था। बहुत शिष्ट था परन्तु किसीकी खुशामद या चिरौरी कभी नहीं करता था। मिजाज उसका जरा गरम था, इसलिए अकसर बरदासियों या दूसरे वार्डरोंके साथ लड पडता। इस प्रकार हमें कभी-कभी उनके झगडे निपटाने पडते। स्वभावसे सिपाही और सही बातको माननेके लिए तैयार होनेके कारण वह ऐसे अवसरोंपर दिया गया फैसला स्वीकार कर लेता था। परन्तु वह अपना पक्ष निर्भीकताके साथ और दलीलें देते हुए पेश कर सकता था। अदन ही सब वार्डरोंमें हमारे पास सबसे ज्यादा रहा। उसके प्रेमकी मुझे हमेशा याद आयेगी। मेरी देखभालमें उसने कोई कसर नहीं रखी। मुझे मेरी खुराक ठीक समयपर नियमित रूपसे मिल जाये इस बारेमें वह बहुत खबरदार रहता। यदि मैं कभी बीमार हो जाऊँ तो वह उदास हो जाता। मेरी जरूरतकी चीजोंका वह हमेशा खयाल रखता। मुझे खुद थोडी भी मेहनत करने नहीं देता। छूट जाने या कुछ नहीं तो वापस अदनकी जेल

भेज दिये जानेको वह बहुत उत्सुक था। मैंने उसकी मदद करनेकी खूब कोशिश की। मैंने उसके लिए कई अर्जियां[1] तैयार की थी। सुपरिटेंडेंटने भी भरसक पूरा प्रयास किया, परन्तु बात अदन-जेलके अधिकारियोंके हाथमे थी। उसे आशा दिलाई गई थी कि वर्ष (१९२३)का अन्त होनेसे पहले उसे छोड दिया जायेगा। मैं उम्मीद करता हूँ कि वह इस समय जेलके बाहर होगा। मैंने उसकी जो थोडी-बहुत मदद की, उससे तो वह मेरे और भी नजदीक आ गया तथा हम दोनोके बीचका स्नेह गाढा हो गया। अदनको बादमें हमारे विभागसे दूसरे विभागमे बदल दिया गया, विदाका यह प्रसंग काफी कठिन सिद्ध हुआ था। एक और बातका उल्लेख करना भी मुझे नहीं भूलना चाहिए। जब मैं जेलमे कातने और पीजनेके कामका सगठन कर रहा था तब अदन एक हाथसे लूला होते हुए भी बडे परिश्रमके साथ पूनियाँ बनानेमे सहायता करता था। समय पाकर वह इस काममे प्रवीण हो गया, उसे इसमे रस भी बहुत आता था।

जैसे सालाम खाँकी जगह अदन आया था उसी प्रकार हरकरनकी जगह भीवा आया था। हमें यह जानकर खुशी हुई कि भीवा महाराष्ट्रीय महार अर्थात् अछूत जातिका था। हम जेलमें जितने भी वार्डरोके संसर्गमे आये, उन सबमे शायद यह भीवा ही सबसे अधिक उद्योगी था। पाठकोको सुनकर आश्चर्य होगा कि जेल भी इस अस्पृश्यताके कलकसे मुक्त नही रह पायी है। बेचारा भीवा हमारी कोठरियोमे घुसते हुए बहुत हिचकिचाता था। वह हमारे बर्तनोको हाथ नही लगाता था। हमने उसे तुरन्त आश्वासन दिया कि अस्पृश्योंके लिए हमारे मनमे किसी भी प्रकारकी घृणा नही है, इतना ही नही परन्तु हम इस कलकको धोनेके लिए भरसक सब-कुछ कर रहे हैं। भाई शकरलालने तो उसके साथ खास तौरपर दोस्ती कर ली और वह देखते-ही-देखते हमारे साथ पूरी तरह हिलमिल गया। उन्होने भीवाको अपने साथ इस हदतक घनिष्ठ हो जाने दिया कि वह शकरलाल द्वारा कठोर शब्द कहे जानेपर अपना रोष प्रकट करता और अन्तमें शकरलाल उससे माफी तक माँगते। शकरलालने उसे पढनेको भी राजी किया और कातना भी सिखाया। परिणाम यह हुआ कि बहुत थोडे समयमें भीवा कातनेमें निपुण हो गया और इस काममे उसे इतना रस आने लगा कि उसने बुनाई सीख लेने और जेलसे छूटनेके बाद इस धन्धेसे ही अपना गुजारा करनेका विचार कर लिया। जेलमे मैंने सुबह सवा चार बजे गरम पानीमें नीबू निचोडकर पीनेकी आदत डाल ली थी। शकरलाल चार बजे उठकर मेरे लिए गरम पानी तैयार करने लगे। मैंने उन्हे रोका, तब शकरलालने चुपकेसे भीवाको यह काम सिखा दिया। कैदी जेलमें जाग तो जल्दी जाते हैं, परन्तु चार ही बजे वे अपनी चटाई (यही उनका बिस्तर होता है) छोडकर खडे हो जाते हो, सो नही होता। परन्तु भीवाने तो शकरलालके सुझावका तत्काल पालन करना शुरू कर दिया। लेकिन रोज चार बजे भीवाको जगानेका काम तो शकरलालके ही जिम्मे रहा। जब भीवा चला गया (उसे खास तौरपर सजा कम करके छोड दिया गया

१ ये प्राप्त नहीं हैं।

था) तब अदनने इस कामका भार सँभाला। मैंने सोचा था, इतना काम मैं स्वयं कर लूँगा। परन्तु वह मुझे कैसे करने देता? इस प्रकार तड़के ही गरम पानी देनेकी यह परम्परा भाई शंकरलालके छूट जानेके बाद भी चालू रही। वार्ड छोड़कर जानेवाला प्रत्येक पुराना वार्डर नये आये हुए वार्डरको इन सब रहस्योंकी दीक्षा देकर जाता। कहनेकी जरूरत नही कि कैदीके दिन-भरके अनिवार्य कामोंमें इस प्रातःकालीन कामका समावेश नही होता था और जेलके नियमके अनुसार कैदियोंको वार्डरोंकी जगह मिल जाती है तो वे स्वयं काम करनेके कर्त्तव्यसे मुक्त हो जाते है। उन्हे तो आज्ञाएँ ही देना होता है।

परन्तु जैसे प्राणप्रिय मित्रोंसे भी जीवनमें कभी-न-कभी बिछुड़ना होता है वैसे ही एक दिन भीवाने हमसे राम-राम की। शंकरलालकी दी हुई खादीकी टोपियाँ, खादीके कुरते, खादीकी धोतियाँ और एक खादीका सेस लेनेकी उसे परवानगी मिल गई थी। उसने बाहर जाकर खादीके सिवा और कुछ भी न पहननेका वचन दिया था। मैं आशा रखता हूँ कि यह नेक भीवा जहाँ कही होगा अपनी प्रतिज्ञाका पालन कर रहा होगा।

भीवाके बाद ठमू आया। वह भी महाराष्ट्रीय ही था। ठमू सौम्य प्रकृतिका वार्डर था। उसमे बहुत शऊर नही था। बताया हुआ काम वह कर देता, परन्तु अपने मनसे किसी कामको कर डालनेमे उसे रुचि नही थी। इसलिए उसकी और अदनकी ठीक पटती नही थी। परन्तु ठमू डरपोक होनेके कारण अन्तमे हमेशा अदनसे दब जाता था। ठमूकी तो हमारे यहाँ ऐसी मौज थी (मौज तो सभीकी होती थी) कि वह हमसे जुदा होना ही नही चाहता था। इसलिए बदली होनेके बजाय वह अदनकी धौंस सहनेको तैयार था। ठमू अदनके आनेके बहुत दिनो बाद आया था। इसलिए हमारे यहाँ अदन 'सीनियर' माना जाता था। 'सीनियर और जूनियर' होनेके ये काल्पनिक विचार जेल-जैसे छोटे-छोटे स्थानोमे किस प्रकार पैदा हो जाते है, यह देखने लायक होता है। यरवदा तो हमारे नजदीक एक दुनिया ही थी या यों कहिए कि पूरी दुनिया। प्रत्येक छोटी-मोटी लड़ाई अथवा छोटे-मोटे झगड़े भी जेलमे एक बड़ी घटना माने जाते है और कैदी लोग उसकी चर्चा दिन-भर दिलचस्पीके साथ करते रहते है और कभी-कभी यह चर्चा कई दिनोतक चला करती है। यदि जेल-अधिकारी जेलमे कैदियोको केवल कैदियोके ही इस्तेमालमे आनेवाले तथा उन्हीके द्वारा संचालित होनेवाले 'जेल अखबार' निकालनेकी अनुमति दे तो यह निश्चित है कि कोई भी कैदी उसे बिना पढ़े नही रहेगा और फिर उसमे खबरे भी बड़ी मजेदार आयेगी। बढ़िया पकी हुई दालकी खबरे, अच्छी तरह साफ की हुई सब्जियोकी खबरे, कैदियोकी आपसी तू-तू, मैं-मैं, इत्यादि चटपटी खबरे और एकाध बार मारपीट और परिणाम-स्वरूप जेल सुपरिंटेडेंटके सामने होनेवाले 'मुकदमो' के हालचाल इत्यादि गरमागरम खबरे कैदी लोग उतनी ही उत्सुकतासे बाँचेगे, जितनी उत्सुकतासे बाहरके लोग बड़े-बड़े भोजो अथवा लड़ाइयोकी खबरे पढ़ते है। मैं विधानसभाके अपने उत्साही मित्रोके सामने यह सुझाव पेश करता हूँ कि यदि वे चाहे तो एक बहुत बढ़िया काम यह कर सकते है कि विधानसभामे इस आशयका बिल पेश करे जिसके

अनुसार प्रत्येक जेलके सुपरिटेंडेंटको यह आदेश दिया जाये कि वे अमलदारोके कठोर नियन्त्रणमे ही सही, कैदियोको केवल उनके अपने उपयोगके लिए एक अखबार सम्पादित और प्रकाशित करनेकी इजाजत और सुविधा दे।

खैर, हम फिर ठमूकी बातपर आये। यद्यपि वह शरीरसे ढीला-ढाला था, फिर भी भजमनसाहतमे वह उससे पहले आये हुए अन्य वार्डरो-जैसा ही था। चरखेको तो उसने ऐसी सुगमतासे सीख लिया जैसे मछली पानीमे तैरने लगती है। एक सप्ताहमे ही वह मुझसे भी अधिक समान सूत कातने लगा। और एक महीनेके भीतर शिष्यने गुरुको बिलकुल ही पछाड दिया। यहाँतक कि ठमूके बढिया सूतसे मुझे ईर्ष्या होने लगी और ठमूकी प्रगति जिस तेजीसे हो रही थी उसे देखकर मै समझ गया कि मेरी मन्दगतिके लिए मै ही दोषी हूँ। मेरी समझमे यह भी आ गया कि साधारण मनुष्य अधिकसे-अधिक एक महीनेमे आसानीसे बहुत बढिया सूत कातने लग सकता है। मैने जिन-जिनको कातना सिखाया वे सब देखते-देखते मुझसे आगे बढ गये। भीवाकी तरह ही चरखा ठमूके लिए भी एक सुखद साथी बन गया। उनके मधुर और मन्द सगीतमे वे अपने प्रियजनोके बिछोहका दुख भूल जाते थे। बादमे चरखा चलाना ठमूके लिए सुबहका सबसे पहला काम हो गया। वह रोज चार घटे कातता था।

जब हमे यूरोपीय वार्डमे भेजा गया तब कई परिवर्तन हुए। सबसे पहले वार्डर बदले गये और पहला नम्बर अदनका आया। यह तबादला यद्यपि हम लोगोको पसन्द नही आया परन्तु हमने उसे धीरजके साथ स्वीकार किया। फिर ठमूकी बारी आई। बेचारा तबादलेकी बात सुनते ही रो पडा। उसने मुझे अपने पास ही रख लेनेका प्रयत्न करनेको कहा, परन्तु मै यह कैसे कर सकता था। मैने सोचा कि यह मेरे क्षेत्रमे बाहरकी बात है। जेल-अधिकारियोको चाहे जिस कैदीको चाहे जहाँ ले जानेका पूरा हक है। अदन और ठमूके स्थानपर कुन्ती नामक एक गोरखा और गगप्पा नामक एक कन्नड कैदी आया। गुरखा सारी जेलमे 'गोरखा' नामसे ही मशहूर था। वह कम बोलनेवाला था, परन्तु बादमे खूब हिलमिल गया। शुरूमे तो वह अपनी ठीक स्थिति ही नही समझ पाया था। शायद उसने सोचा हो कि हम कोई जरा-सा बहाना पाकर उसकी शिकायत कर देगे और उसे मुसीबतमे डाल देगे। परन्तु जब उसने देखा कि हमारा ऐसा कोई इरादा नही है, तब वह निकट आ गया। परन्तु थोडे दिनोमे ही उसका भी तबादला हो गया। गगप्पाका थोडा-सा वर्णन जेलके पत्र-व्यवहारकी भूमिकाके रूपमे मै कर चुका हूँ। वह प्रौढ अवस्थाका था। जेल-नियमोका बारीकसे-बारीक पालन और अपने नियत कर्त्तव्यके प्रति उसकी जबरदस्त निष्ठा, इन दो चीजोने मेरे मनमे उसके प्रति प्रशसाका भाव उत्पन्न कर दिया था। अधिकारी उसे जो भी काम करनेका हुक्म देते उसे वह दिलोजानसे करता था। जो काम करना उसका फर्ज न हो उन्हे भी वह स्वेच्छापूर्वक अपने सिरपर ले लेता। निठल्ला तो शायद ही कभी बैठता हो। उसने मेरे साथियोके लिए चपातियाँ बेलना और सेकना सीख लिया। अपने प्रति उसका प्रेम तो मै कभी नही भूल सकता। गगप्पाने मेरी जितनी जी-तोड सेवा की, उससे अधिक स्वय

अपनी पत्नी या बहन भी नही कर सकती। जब देखो तभी तैयार। मेरी जरूरतोंका पहलेसे खयाल रखनेमे ही उसे सुख होता था। मेरी हर चीज जगहपर रहे इस बातका उसे बडा ध्यान रहता। मै बीमार हो जाता तो गगप्पा ही मेरी परिचर्या सबसे अधिक कुशलताके साथ करता क्योंकि मेरे प्रति वही सबसे अधिक सावधान था। मेरे यूरोपीय वार्डमे पहुँचनेके बाद भाई मजरअली और याज्ञिक दोनो प्रार्थनामें आकर शरीक हो जाते। मजरअलीके छूटनेका समय निकट आनेपर उन्हे इलाहाबाद ले जाया गया। भाई इन्दुलालको भक्तिभावकी अपेक्षा तात्त्विक चिन्तनकी जरूरत अधिक महसूस होती थी। इसलिए उन्होंने प्रार्थनामे शरीक होना बन्द कर दिया। गगप्पाको खयाल हुआ कि इन मित्रोंके बिना प्रार्थनामे मुझे अकेलापन महसूस होगा और कदाचित् मुझे उनकी कमी खलेगी। इसलिए जिस दिन मुझे उसने पहले-पहल प्रार्थनामे अकेला बैठे हुए देखा, उसी दिन वह चुपचाप आया और मेरे सामने बैठ गया। कहनेकी जरूरत नही कि उसके इस कार्यके पीछे कोमल शिष्टताका जो भाव था वह मुझे अच्छा लगा। उसका यह कार्य बिलकुल स्वेच्छाप्रेरित, विनयपूर्ण और उसके लिए बिलकुल स्वाभाविक था। रूढ अर्थमें मैं इसे धार्मिक नही कहूँगा। यद्यपि मेरी अपनी कल्पनाके अनुसार तो वह वास्तवमें धार्मिक था। अपनी इन प्रार्थनाओमे मैं किसीको भी निमन्त्रण देनेसे हमेशा हिचकिचाता हूँ, क्योकि मैं यह नही चाहता कि मेरे खातिर कोई प्रार्थनामे बैठे। अकेले प्रार्थना करनेमे मुझे कभी अकेलापन नही लगा। बल्कि ऐसे समय मैं सबसे अधिक ईश्वर-सान्निध्य अनुभव करता हूँ। ऐसे समय कोई आये तो मैं चाहता हूँ कि वह मेरे साथके खातिर नही परन्तु सिर्फ इसलिए आये कि वह इस ईश्वर-सान्निध्यके अनुभवमे भाग ले सके। इसलिए वार्डरोको प्रार्थनामे शरीक होनेका निमन्त्रण देनेमे मुझे खास तौरपर हिचकिचाहट होती थी। मुझे लगता था कि कही ऐसा न हो कि वे मेरे बुलानेके कारण केवल बाहरी शिष्टाचारके विचारसे प्रार्थनामे शामिल हो जाये। मैं तो उन्हे ईश्वर-प्रार्थनामे शरीक होनेकी स्वाभाविक उमग आनेपर ही प्रार्थनामे सम्मिलित होते देखना चाहूँगा। गगप्पाने जो मेरा साथ दिया उसमे मैं मानता हूँ कि कुछ तो मेरी एकाकी स्थितिके प्रति दयाभाव और कुछ आधे घटेके पवित्र वातावरणमे भाग लेनेकी उसकी अपनी इच्छा — दोनो बातोंका मिश्रण था। प्रार्थनामे मैं जो-कुछ गाता था उस सबमे 'राम-नाम' को छोडकर वह एक शब्द भी नही समझता था। गगप्पाके शरीक होनेके बाद अण्णप्पा नामक एक और कन्नड वार्डर भी प्रार्थनामे आने लगा और बादमे भाई अब्दुल गनी भी शरीक होनेको प्रेरित हुए। मेरा खयाल है कि भाई अब्दुल गनी, अनजाने ही क्यो न हो, गगप्पाके सरल भावसे आ जानेके उदाहरणसे प्रभावित हुए थे।

इस प्रकार पाठक देखेंगे कि कैदी वार्डरो सम्बन्धी मेरा जेलका सारा ही अनुभव सुखद सस्मरणोसे भरा हुआ है। मुझे जैसे साथी या परिचारक मिले उनसे अधिक निष्ठावान साथी या अधिक वफादार परिचारक मिलनेकी मैं अपेक्षा नही कर सकता। पैसा लेकर काम करनेवाले व्यक्तिकी सेवा इसके मुकाबिलेमे हेय है और मित्रोकी सेवा बहुत हुआ तो उसके बराबर बैठ सकती थी। दुर्दैववश जेल हो जानेके

कारण ऐसे मनुष्योको समाज अपराधी अथवा अस्पृश्य मानकर सदा दुत्कारता रहे यह कैसी विडम्बना है? पिछले प्रकरणमे[1] उद्धृत प्रधान जेलरकी इस बातसे मै बिल्कुल सहमत हूँ कि जेलोमे ऐसे अनेक मनुष्य है, जो बाहर रहनेवालोसे कही अधिक अच्छे है। पाठक अब समझ सकेगे कि जब मैने अपनी रिहाईकी खबर सुनी, तब मुझे दुख क्यो हुआ। मुझे लगा कि मुझे छोड दिया गया और जिन सब साथियोने मुझ-पर अपने प्रेमकी वर्षा की और मेरी रायके अनुसार जिन्हे जेलोमें बन्द करके रखनेका सरकारके पास कोई कारण नही रह गया है, वे तो अभीतक जेलोमे ही है।

एक बात और कहकर गगप्पासे मै दुखपूर्ण अन्तकरणसे विदाई लूँगा। गगप्पा अपनी त्रुटियां जानता था। वह कातता नही था, वह कहता था कि मुझसे यह नही होगा क्योकि मेरी अगुलियोमे वह वस्फ नहीं है। परन्तु वह कताईके कमरेकी पूरी व्यवस्था रखता था और मेरी कपासको ओटकर धुनाईके योग्य बनाकर रखता था।

अपने जेल-जीवनके अनेक सुखद सस्मरणोमे मै जानता हूँ कि कैदी-वार्डरोके सहवासके सस्मरण मेरे मनपर शायद हमेशाके लिए बने रहेगे।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, १०-७-१९२४

१९१. कताईका प्रस्ताव

काग्रेसका कताईवाला[2] प्रस्ताव मेरी रायमे काग्रेसके तमाम प्रस्तावोसे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। पर कुछ लोगोमे उसकी हँसी उडानेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। काग्रेसके विभिन्न सगठनोके सदस्य एक ही महीनेमे इस उपहासके अनौचित्यको सिद्ध कर सकते है। अगर खादीके सिर्फ आर्थिक महत्त्वको स्वीकार कर ले तो तजुर्बेसे यह साबित हो जायेगा कि आर्थिक क्रान्ति लानेके लिए इस प्रस्तावकी जरूरत थी। काग्रेसके सर्वाधिक लोकप्रिय कार्यक्रमके निमित्त काग्रेस कार्यकर्त्ताओसे सिर्फ आधा घटा काम करनेकी अपेक्षा रखना कुछ अधिक नही है।

जिन लोगोने इस प्रस्तावके पक्षमे राय दी थी, इसपर उनका अमल करना तो मर्यादाकी दृष्टिसे कर्त्तव्य ही है। मेरी रायमे उस प्रस्तावमे दण्डकी व्यवस्था रखना उचित ही था। किसी सस्थाके सदस्य यदि स्वय अपने ऊपर कुछ बन्धन लगाये तो उनके तोडे जानेकी दशामे दण्डकी व्यवस्था करनेका अधिकार उस सस्थाको जरूर है। पर चूँकि अब दण्ड-विधान उस प्रस्तावमे से हटा दिया गया है इसलिए मै आशा करता हूँ कि उसपर एतराज करनेवाले लोग भी प्रस्तावके अनुसार चलेंगे।

इससे बहुत लाभ होनेकी आशा है। काग्रेस सगठनोके सभी प्रतिनिधियोके लिए सूत कातना कर्त्तव्य-रूप है। देशके बीसो प्रान्तोमे प्रान्तीय, जिला, तहसील और

१ देखिए पृष्ठ २९९।

२ देखिए "अग्नि परीक्षा", १९-६-१९२४।

ग्रामसगठन है या होने चाहिए। उनमें से हरएकमें कमसे-कम पाँच सौ ऐसे प्रतिनिधि होते हैं। मुझे मालूम हुआ है कि कुछ प्रान्तोंमें प्रतिनिधियोंकी सख्या कई हजार तक हे। इनकी कमसे-कम तादाद मानें तो ये सदस्य १० हजारसे ऊपर हो जाते हैं। १० नम्बरके २००० गज सूतका मतलब है लगभग १० तोला। इस हिसाबसे हर महीने दस हजार सदस्य कोई २५०० पाँउ सूत भेजते रहेंगे अर्थात् प्रतिनिधियों द्वारा भेजे गये इस सूतसे पाँच हजार गरीब देशवासियोंको एक-एक वर्षका कपडा मिल जायेगा। दूसरी बातोंको छोड दे तो भी क्या हमारा गरीबोंके लिए इतना-सा श्रम कर लेना उचित नही है? जरा सोचिए—इस बातका गरीब लोगोंपर क्या असर पडेगा? जब उनको यह मालूम होगा कि हमारे लिए कांग्रेसके लोग इतना काम कर रहे हैं, तब उनके जीवनमें नई आशाका सचार हुए बिना न रहेगा।

एक दूसरे दृष्टिकोणसे भी इसपर विचार कीजिए। ये दस हजार प्रतिनिधि सिर्फ खुद ही सूत कातकर खामोश नही हो रहेंगे। उनके उत्साहका सचार उन लोगोंमे भी जरूर होगा, जिनके वे प्रतिनिधि हैं और इस तरह खादी, जो आज कम होती चली जा रही है, दूनी ताकतके साथ चमक उठेगी।

कार्यकर्त्ता यदि समझ-बूझवाले स्त्री-पुरुष होंगे तो वे कताईकी कला सीख लेंगे और अपने पडोसियोंको सगठित करके हाथ-कताईका प्रचार करेंगे।

फिर आधा घटा और १० तोला, यह तो कमसे-कम हे। सच पूछिए तो आध घटेमें १०० गज सूत बडी आसानीसे काता जा सकता है। इसलिए हर शख्स कमसे-कम तीन हजार गज सूत भेज सकता है और आधा घटा तो उन कार्यकर्त्ताओंके लिए है जो बहुतेरे कामोंमे व्यस्त रहते हैं। बहुतसे लोग १ घटा कात सकेंगे। मैं ऐसे कितने ही लोगोंको जानता हूँ जो रोज दो घटा कातते हैं। इसलिए मेरे बताये हिसाबसे कमसे-कम दूना अर्थात् ५ हजार गज सूत मिलना चाहिए।

मेरी समझमें अभी किसीने इस हाथ-कताईके अर्थको नही समझा है। राष्ट्रीय कार्यक्रमको स्वावलम्बी बनाना ही उसका उद्देश्य है। इसके कुछ आँकडे लीजिए। मैंने दर और कामका औसत कमसे-कम लगाया हे।

		रु०आ०पा०
एक मन ओटाई	१२ घटे	०–८–०
एक मन कपासमे से १३ पौड रुईकी धुनाई	४० घटे	२–८–०
२७५ गज फी घटेके हिसाबसे १२½ पौडकी १० नम्बर सूतकी कताई	४०० घटे	२–६–०
	रु०	५–६–०

इस तरह एक आदमी ४५२ घटेमे (४५० ही मान लीजिए) ५–६–० या (कहिए ५ रु०) कमाता है। ∴ ४५० आदमी एक घटा काम करके ५ रु० पैदा करेंगे। ∴ ४५० आदमी ३० दिन १ घटा रोज काम करके १५० रु० पैदा करेंगे। इस तरह

४५० आदमी रोज एक घटा कातनेमे लगाये तो फी स्वयसेवक ३० रु० महीनेके हिसावसे कमसे-कम ५ स्वयसेवकोकी गुजरके लायक सूत काता जा सकता है।

और ५ स्वयसेवक ४५० पुरुषो और स्त्रियोके नीचे काग्रेसका पूरा काम सगठित कर सकते है। कार्यक्रमके किसी एक अगको सफल बनानेके लिए अगर बहुतसे लोग सम्मिलित हो जाते है तो चाहे एक आदमीकी मेहनतका कुछ भी अर्थ न निकलता हो, फिर भी समष्टि रूपमे उसकी सम्भावनाएँ अपरिमित होती है।

सच्ची भावनासे प्रेरित और उत्साही कार्यकर्त्ता तो इतना काम कर दिखा सकते है कि दाँतो तले अँगुली दबानी पडे। इस तरह हिसाब करनेके लिए मै तीन सुझाव रखता हूँ

१ यदि किसी गरीब जिलेमें कताई प्रधानत मजदूरीसे कराई जाये तो उसकी गरीबी दूर हो सकती है।

२ यदि किसी सम्पन्न जिलेमे कताई मुख्यत स्वैच्छिक हो तो उससे तमाम आवश्यक स्वयसेवकोकी गुजर हो सकती है।

३ यदि पढाईवाले दिनोमे हर पाठशालामे कमसे-कम ३ घटे कताई सम्बन्धी सभी काम कराये जाये तो हर ग्राम-पाठशाला कमसे-कम अपना आधा खर्च उसीसे निकाल सकती है।

कहनेकी आवश्यकता नही कि यदि खादी डाकके टिकटोकी तरह आम बिक्रीकी चीज न बन जाये तो यह फल प्राप्त नही हो सकता। ऐसे देशमे, जहाँ कि जरूरतसे ज्यादा कपास पैदा होती हो, जहाँके लोग कातते रहे है, जिसके पास उसके लिए आवश्यक सरजाम मौजूद हो, जहाँ बहुत बडी तादादमे लोग भूखसे पीडित रहते हो और जहाँ केवल कामके सगठनकी ही आवश्यकता शेष है, वहाँ वैसा न करना घोर अपराध है।

यदि इस कामको सुचारु रूपमे और किफायतके साथ चलाना हो तो प्रान्तीय मन्त्रियोको तथा दूसरे लोगोको खादी बोर्डकी हिदायतोपर पूरी तरह अमल करना होगा। प्रधान कार्यालयोमे एक दुहरा रजिस्टर रखा जाये जिसमे यथाक्रम उन तमाम सदस्योके नाम दर्ज रहे जिनके लिए कातना लाजिमी है। तमाम सूतपर गजकी तादाद, वजन और कातनेवालेका नाम तथा अनुक्रम नम्बर लिखा रहे। प्रान्तीय समितियोको लोगोको देनेके लिए काफी कपास एकत्र करनी होगी। धुनाईकी भी व्यवस्था करनी होगी। इस तरह यदि सूत पूरी तादादमे पहले ही महीनेसे भेजना हो, जैसा कि उचित है, तो वक्त नही गँवाना चाहिए।

जो लोग कातना बिलकुल न जानते हो वे यदि सिर्फ आधा ही घटा रोज कातते रहेगे तो तरक्की नही कर पायेगे। शुरूके कुछ दिनोमे जबतक कि अँगुलियोको रफ्त न हो जाये, उन्हे रोज कुछ घटोतक कातना होगा।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, १०-७-१९२४

१९२. एकमात्र कार्यक्रम

मित्रोने मुझे एक ही ऐसा व्यापक कार्यक्रम सुझानेको कहा है जिसमे राजे-महाराजे, अपरिवर्तनवादी, परिवर्तनवादी, उदारदलवाले, स्वतन्त्र पक्षवाले, वकालत करनेवाले वकील, ऐंग्लो-इडियन और दूसरे सभी बिला पसोपेशके शामिल हो सके। मुझे इस शर्तके साथ यह कार्यक्रम सुझानेको कहा गया है कि स्वराज्य पानेके लिए उसे पुरअसर और शीघ्र फलदायी होना चाहिए। सबसे कारगर और तेजीका कार्यक्रम जो मै सुझा सकता हूँ, वह है — खादी अपनाना, उसको सगठित करना, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य बढाना और हिन्दुओका अपने बीचसे अस्पृश्यता-निवारण करना। मेरा यह पक्का विश्वास है — जो बदल नही सकता — कि यदि हम इन तीन बातोको हासिल कर ले तो हम जरा-सी भी मुश्किलके बिना स्वराज्य स्थापित कर सकेगे और मेरा यह भी विश्वास है कि यदि सभी पक्ष दिलोजानसे इस कार्यक्रममे जुट जाये तो यह एक ही वर्षमे मिल सकता है। खादीकी सफलताके मानी होगे विदेशी कपडोका बहिष्कार। जितना कपडा हिन्दुस्तानको चाहिए उतना कपडा तैयार करना हिन्दुस्तानका हक है और फर्ज भी। इसके लिए उसके पास साधन भी मौजूद है। विदेशी कपडेका बहिष्कार अग्रेजोके मनको अपने-आप पवित्र कर देगा और हिन्दुस्तानी चीजोको हिन्दुस्तानियोकी दृष्टिसे देखनेमे जो बहुत बडी बाधा उन्हे मालूम होती है वह भी दूर हो जायेगी।

इसलिए अगर लगभग पूरा देश इस त्रिसूत्री कार्यक्रमको अख्तियार करनेके लिए तैयार है तो मै एक सालके लिए असहयोगके कार्यक्रम और सविनय अवज्ञाको मुल्तवी रखनेकी राय देनेके लिए तैयार हूँ। मै एक साल इसलिए कहता हूँ कि यदि ईमानदारीसे इस कार्यक्रमके अनुसार काम किया जाये तो इसी अरसेमे विदेशी कपडेका लगभग पूर्ण बहिष्कार हुए बिना नही रहेगा।

मुझे यह कहनेकी जरूरत नही कि स्वराज्यवादियोका इस कार्यमे सहयोग देना ही इस बातके लिए काफी नही है कि असहयोग या सविनय अवज्ञाकी तैयारियोको एक साल तकके लिए मुल्तवी कर दिया जाये। वे तो राजी ही है। काग्रेसके दूसरे सदस्योकी तरह वे भी सम्पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रमके लिए वचनबद्ध है। जबतक सरकारका हृदय-परिवर्तन नही होता तबतक असहयोगकी जरूरत है और बिना इस परिवर्तनके जो लोग काग्रेसके बाहर है वे खुले तौरपर सरगर्मीसे इस काममे हाथ नही बँटायेगे।

मुझे भय है कि अभी वह समय नही आया है कि सरकार या वे लोग जिनकी इज्जत या ओहदे सरकारसे मिलनेवाले सरक्षणपर आधारित है, इस प्रकार लोगोके साथ सच्चे दिलसे सहयोग करनेको तैयार हो जाये।

मै यह भी जानता हूँ कि लोगोकी एक बहुत बडी तादाद अबतक शुद्ध खादीके कार्यक्रमकी कायल नही हुई है। वे चरखेकी महान् शक्तिपर विश्वास ही नही करते। वे हिन्दुस्तानी मिलोके खिलाफ कार्रवाई करनेकी साजिशका मुझपर सन्देह करते है।

चरखेके सन्देशसे क्या मतलब है इसे अपने मनमें उतारनेकी तकलीफ थोडे ही लोग उठाते है।

यदि चरखेको माननेवालोकी चरखेके प्रति सच्ची निष्ठा हो तो मुझे जरा भी शक नही कि देश चरखेको बहुत ही जल्दी मानने लगेगा। लेकिन मेरे कुछ मित्र मुझसे कहते है कि मेरा निदान सही नही है। वे कहते है कि यदि मैं असहयोग और सविनय अवज्ञाको छोड दूं तो सबके-सब चरखेको अपना लेगे और मेरा यह सोचना कि सरकार हिन्दू और मुसलमानोको लडाना चाहती है, एक हिमाकत है। मैं तो चाहता हूँ कि मेरा शक गलत निकले।

मिलोके बारेमे मैं फिर एक बार अपने विचाराका खुलासा कर दूं। मैं उनका दुश्मन नही हूँ। मैं मानता हूँ कि हमारे जीवनमें अभी कुछ समय तक उनकी उपयोगिता है। मिलोकी मददके बिना विदेशी कपडेका बहिष्कार शायद जल्दी सफल न हो सकेगा। लेकिन यदि वे इसमें सहायता करना चाहती है तो उन्हे सिर्फ शेयर होल्डरो और एजेन्टोके लाभके लिए ही नही चलाया जाना चाहिए, बल्कि समूचे देशके हितको दृष्टिमे रखकर। फिर भी हमारे कार्यक्रमसे तो मिलोको अलग ही रखना पडेगा, क्योकि खादीको अपनी स्थिति दृढ बनानी है। सात लाख गाँवोमे से अभी एक गांवतक भी खादीका सन्देश नही पहुँचाया जा सका है। अभी हिन्दुस्तानका ऐसे भी कुछ अधिक भाग मिलोके लिए खुला पडा है। यदि खादीको स्थायी जगह देनी है तो काग्रेसके लोगोको मिलोके कपडे छोडकर खादीका ही इस्तेमाल करना चाहिए और उसे लोगोमे फैलाना चाहिए। देशभक्त मिल-मालिक मेरे प्रस्तावकी उपयोगिता, आवश्यकता और न्यायानुकूलता एक ही नजरमे समझ सकते है। सचमुच वे अपनेको नुकसान पहुँचाये बिना ही खादीकी सहायता कर सकते है। यदि ऐसा समय आये जब सारा हिन्दुस्तान खादीको स्वीकार कर ले तब उन्हे भी राष्ट्रके साथ आनन्द मनाना चाहिए और उनको अपनी पूंजी और मशीनोकी कोई और उपयोगिता सूझ ही जायेगी, जैसे कि लकाशायरके मिलमालिकोको भी किसी दिन करना पडेगा और करना भी चाहिए। आग्रही मित्रोके सन्तोषके लिए मैंने एक व्यापक कार्यक्रमकी रूपरेखा तैयार की है। लेकिन मैं कार्यकर्त्ताओको सावधान करता हूँ कि वे अपने और अपने पडोसीके कातनेके कामको अपना आजका काम माने और उस ओर से अपना ध्यान जरा भी न हटने दे। यदि सभी लोग आज इसको माननेके लिए तैयार न भी हो तो उनकी कताई और निष्ठाके फलस्वरूप वह दिन जल्दी आ जायेगा और वह आयेगा जरूर। किस दिन आयेगा इसका दारमदार तो उन लोगोपर है जिन्हे उसमें जीवन्त निष्ठा है और जिन्होने भारीसे-भारी मुश्किलोके बीच भी अपने आचरणके द्वारा उसे सिद्ध कर दिखाया है।

[अंग्रेजीसे]

यग इडिया, १०-७-१९२४

१९३. पत्र : वा० गो० देसाईको

आषाढ सुदी ८ [१० जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

अभयचन्दभाईके बारेमे क्या लिखूं, इसी विचारमे बहुत-सा वक्त निकल गया। मेरी समझमे उनसे हिसाब-किताब रखने अथवा सूत तैयार करवानेका काम कराया जा सकता है। मेरी प्रवृत्तियोसे तो आप परिचित है ही, इसलिए आप ही [उनके लिए उपयुक्त काम] सुझाये। यदि मैं आपको अपनी कांग्रेसके बाहरकी प्रवृत्तियोका मैनेजर नियुक्त करूँ तो आप क्या करेगे? आपने जिन दो लेखोके बारेमे लिखा है उनमे से मुझे एक "स्वराज्यमे शिमला" मिल गया है। दूसरा शायद स्वामीके[2] पास हो, उनसे दर्याफ्त करूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१४) से।
सौजन्य वालजी गो० देसाई

१९४. पत्र : वसुमती पण्डितको

आषाढ सुदी ९, [११ जुलाई, १९२४][3]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला और भाई शकरका भी। तुम्हारी तन्दुरुस्तीके बारेमे मैं तो निश्चिन्त हो गया था। अब तो क्या सलाह दूँ? तुम मेरी निगाहके सामने रहो तो मुझे कुछ उपाय सूझे भी, पर वहाँकी जलवायु यहाँ कहाँ है? मेरी इच्छा तो यह है कि तुम बरसात खत्म होनेके बाद भी लम्बे समयतक हजीरामे रहो। जलवायु परिवर्तन ही सबसे अच्छा रास्ता है।

इस बीच तुम इतना तो करो ही। दाले कम, चटनी बिलकुल नही और सब्जी उबली हुई लो तथा सन्तरे या हरे अगूर जितने खा सको उतने खाओ। एपो-

१ "स्वराज्यमें शिमला" शीर्षक लेख जिसका इस पत्रमें उल्लेख है, ११-९-१९२४ के **यंग इंडिया**में छपा था। आषाढ सुदी ८, १० जुलाई, १९२४ की थी।

२. स्वामी आनन्दानन्द।

३. इस खण्डमें गांधीजी द्वारा गंगाबहनको भेजे गये पहले पत्रों और इस पत्रमें दिये गये भोजन आदिके निर्देशोंसे पता चलता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। इस वर्षमें आषाढ सुदी ९, ११ जुलाई की थी।

मिनरल-वाटर जो बोतलोंमें आता है, एक-दो बोतल रोज पियो। जब प्यास लगे उसीको पियो। दवा लेना बन्द कर दो और दस्त न आता हो तो, हाजत हो चाहे न हो, पिचकारी अवश्य लो। पिचकारीका पानी गुनगुना होना चाहिए और उसमें आधा चम्मच बोरिक एसिड डालना चाहिए। यदि उससे पेट साफ न हो तो उसमें दूसरे दिन एक चम्मच अरंडीका तेल और तारपीनके तेलकी दस बूंदे डाल लेनी चाहिए। उस पानीमें साफ साबुन भी घोल लेना चाहिए।

मुझे साफ मालूम होता है कि तुम्हारा शरीर दवासे सचमुच बिगड़ता ही है। इसलिए जलवायु-परिवर्तन और पिचकारी, इन दोनोंसे सब-कुछ ठीक हो जायेगा।

मैंने तुम्हारे पिछले पत्र और तारका उत्तर उसी दिन दे दिया था। वह तुम्हें अबतक मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५४८) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१९५. भाषण: गुजरात कांग्रेस कमेटीमें[1]

अहमदाबाद
११ जुलाई, १९२४

महात्माजीने बैठकमें भाषण देते हुए श्रोताओंको १९२० में अहमदाबादमें हुए चौथे गुजरात राजनीतिक परिषद्की[2] याद दिलाई। उस समय गुजरातने कलकत्ता कांग्रेसके विशेष अधिवेशनसे भी पहले असहयोगकी सर्वप्रथम घोषणा की थी। महात्माजीने जोर देकर कहा कि उस समय मैं जैसा दृढ़ आशावादी था, देशमें प्रकट होनेवाले निराशाके लक्षणोंके बावजूद, आज भी वैसा ही आशावादी बना हुआ हूँ। गुजरातको सदा कांग्रेसके आगे रहना चाहिए। उन्होंने आगे कहा

हमारे प्रतिनिधि अ० भा० कां० क० के आदेशके अनुसार केवल आधा घंटा चरखा चलाकर २,००० गज ही सूत न कातें, बल्कि इसके स्थानपर एक घंटा चरखा चलाकर ५,००० गज सूत कातें ताकि दूसरे प्रान्तोंको प्रोत्साहन मिल सके और उनके सम्मुख एक नजीर भी रखी जा सके। अब जोरदार तकरीरोंका समय

१. गुजरात कांग्रेस कमेटीकी यह बैठक ११ जुलाईको सायंकाल ३ बजे हुई थी। कार्य-सूचीमें अन्य विषयोंके साथ गुजरातका भावी कार्यक्रम, अ० भा० कां० क० के प्रस्तावोंपर की जानेवाली कार्रवाई तथा आगामी कांग्रेसके अध्यक्षका चुनाव — ये विषय भी शामिल थे।

२. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ २३७-३९।

नही है। आप कताईके जरिये चरखेका सन्देश पास-पडोसके लोगो तथा मित्रोतक पहुँचाये। मै जानता हूँ कि कुछ ऐसे भी मित्र है जो इस कार्यक्रमको पूरा करनेकी गुजरातकी क्षमताके बारेमे निराशावादी है। ईश्वरपर मेरा जो अटल भरोसा है उसके बाद गुजरात ही मेरी आशाओका केन्द्र है। इसलिए गुजरात अपनेको अवसरके योग्य सिद्ध करे और इन मित्रोके निराशावाद तथा अविश्वासका करारा जवाब दे। यदि हम प्रतिदिन एकाग्र होकर आधा घटा भी अपनी शक्ति कताईमे नही लगाते तो मुझे इसमे जरा भी सन्देह नही कि हम अहिंसासे स्वराज्य प्राप्त नही कर सकेगे। आप विश्वास रखे कि हमे कौंसिलोसे स्वराज्य नही मिलेगा। बाहर रचनात्मक कार्य किये बिना कौंसिलोसे कुछ भी लाभ नही हो सकता। रचनात्मक कार्यका अन्त स्वराज्यके अन्तका सूचक होगा।

आगामी बेलगाँव काग्रेसके अध्यक्षपदके बारेमें बोलते हुए महात्माजीने कहा कि सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे काग्रेस दलमें फूट पड गई है और लोग अन्ध श्रद्धावश विश्वास करते है कि एक मै ही इस फूटको दूर कर सकता हूँ। मै सदस्योको सूचित करता हूँ कि श्रीमती सरोजिनी नायडू एक या दो दिनमें जहाजसे बम्बई लौट रही है। "बॉम्बे क्रॉनिकल" ने इस वर्ष काग्रेसके अध्यक्ष पदके लिए उन्हींका नाम प्रस्तावित किया है और मै उससे सहमत हूँ।

मै चाहता हूँ कि उन्होने दक्षिण आफ्रिकामे जो उत्कृष्ट सेवा की है[1] उसको ध्यानमे रखते हुए उनका उपयुक्त स्वागत किया जाये। मै जानता हूँ कि उनमे प्रत्येक व्यक्तिको सन्तोष देनेकी क्षमता नही है, फिर भी मै उनका नाम इस सर्वोच्च सम्मानके लिए प्रस्तावित करता हूँ। देश उनका ऊँचेसे-ऊँचा यही सम्मान कर सकता है। मेरे प्रस्तावका कारण यह है कि महिला होकर भी उन्होने दक्षिण आफ्रिकामे जो काम कर दिखाया है उसे कोई पुरुष कदापि नही कर सकता था। इसके सिवा वे हिन्दू-मुस्लिम एकताकी अग्रदूत भी है। यदि आप किसी मुसलमानको अपना अध्यक्ष बनाना चाहते है तो डा० अन्सारी इस सम्मानके योग्य दूसरे व्यक्ति है।

यदि आप मेरा नाम रखना चाहते ही है तो आप उसे सबसे अन्तमे रखे। मेरे सिरपर बहुतसे उत्तरदायित्वोका भार है, इसलिए यदि मै उनमे से कुछसे मुक्त हो सकूँ तो मुझे प्रसन्नता होगी। मेरे सिरपर उत्तरदायित्व इतने अधिक है कि मै आगे बढकर कोई नयी जिम्मेदारी लेते हुए डरता हूँ।

अध्यक्षके निर्वाचनके सम्बन्धमे प्रान्तीय कमेटियोपर आम हवाका असर नही पडना चाहिए। यद्यपि मैने अभीतक इस सम्बन्धमे कोई निर्णय [नही] किया है, फिर भी मुझे आशा है कि मै अन्तिम चुनाव होनेसे पहले निर्णय कर लूँगा।

भाषण समाप्त होनेके बाद महात्माजीने सदस्योसे कहा कि यदि वे कुछ प्रश्न पूछना चाहे तो पूछें।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४३६-३७

महात्माजीने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा कि कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके कातते हुए सूतसे बनी खादीका जनताके मनोभावोंपर उतना असर पड़ेगा, जितना किसी अन्य बातका नहीं पड़ सकता।

एक दूसरे प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने कहा कि जो लोग 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कार्यक्रमपर अमल करना चाहते हैं वे सबसे पहले इस बातकी खातरी कर लें कि वे सब लोग उस सम्बन्धमें एकमत हो गये हैं। यदि इसमें सफलता नहीं मिलती तो उन्हें कांग्रेस संगठनसे बाहर रहकर इसपर अमल करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-७-१९२४

१९६. पत्र : वसुमती पण्डितको

साबरमती
आषाढ़ सुदी ११ [१२ जुलाई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा कार्ड मिला। बरसात न होनेके कारण बहुत कष्ट हो रहा है, पानी बरसनेके लक्षण दिखाई देते हैं, परन्तु बरसता नहीं है। नदीमें पानी चढ़ आया है, ऐसा लगता है कि ऊपर बारिश हुई है। राधा अभी अशक्त है। पेरीन बहन और नरगिस बहन यहाँ आई थीं। वे जमना बहनके साथ वापस [बम्बई] चली गई हैं। अब जो बहन सेवासदनमें व्यवस्थापिका थी वही यहाँ है। तुम जितने दिन वहाँ रहना चाहो उतने दिन रहो। मुझे उम्मीद है कि जिस पत्रमें[2] मैंने कुछ हिदायतें लिखी थीं वह तुम्हें मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

वसुमती बहन,

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४४९) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

1. डाकखानेकी मुहरमें तारीख १३, जुलाई १९२४ है।
2. देखिए "पत्र : वसुमती पण्डितको", ११-७-१९२४।

१९७. जब्र या संयम?

एक मित्रने बहुत ही कठिन प्रश्न उठाया है। वे कहते हैं :

"यदि जबरदस्ती किसी बातका सुधार करना अहिंसा-नीतिके विपरीत हो तो कानूनके द्वारा किसीसे शराब छुडवाना भी जबरदस्ती मानी जानी चाहिए।"

इसमे थोडा भ्रम हे। उक्त मित्रका खयाल यह मालूम होता है कि हर कानून जबरदस्तीका सूचक है, परन्तु हर कानून बलात्कारका सूचक नही हे। स्वार्थकी सिद्धिके निमित्त और किसीको कष्ट पहुँचानेके उद्देश्यसे दुख देना हिसा है। इसके खिलाफ यदि किसीको उसके सुखके लिए कष्ट देनेका अवसर उपस्थित हो तो स्थिरचित्तसे और निस्वार्थ भावसे ऐसा करना अहिसा हो सकती हे। मै चोरको चोरीके भयसे बचने अर्थात् स्वार्थके लिए सजा दूं तो यह हिसा हे। शल्य चिकित्सक बीमारको उसके सुखके लिए नश्तर लगाकर दुख पहुँचाता है, किन्तु यह अहिंसा है। इस दृष्टिसे चोरको पकडकर उसे दुख देनेके लिए नही बल्कि उसे सुधारनेके उद्देश्यसे सुधार-गृहमे रखना और उसके प्रति दयाभाव दिखाकर उसके लिए ऐसा वातावरण मुहैया करना कि वह सुधर जाये, बलात्कार अथवा हिसा नही है। बल्कि यह तो समाजका या शासनकर्त्ताका सयम है। ऐसा शासनकर्त्ता चोरको अभियोगके भयसे बचा लेता है, यह उसका विशेष उपकार है। इसी तरह शराबियोको कोडे लगानेका कानून हिसा है, परन्तु कानूनके द्वारा शराबकी दूकानोको बन्द करके शराब पीनेवालोकी आँखोके सामनेसे प्रलोभन हटा लेना, सयम और अहिसा [का पाठ पढाना] है। इसमे शुद्ध प्रेमके अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। इसी तरह यदि मै धमकी देकर किसीसे विदेशी कपडा छुडवाऊँ तो यह बलात्कार है? परन्तु कानून बनाकर विदेशी कपडेका आयात रोकना सयम है। इसमे भी शुद्ध प्रेमके सिवा और कुछ नही है। परन्तु विदेशी कपडे पहननेवालोको कानूनके द्वारा सजा देना बल-प्रयोग कहा जायेगा। यह समाजका रोप हुआ।

इससे यह प्रकट होता है कि हर कानून बलात्कारका चिन्ह नही है। हाँ, आधुनिक कानूनोमे बलात्कार होता है, क्योकि उनको बनानेवालेका हेतु भय उत्पन्न करके उसके द्वारा समाजको गुनहगारोसे बचाना होता है। उनका हेतु गुनहगारका सुधार करना नही होता।

अब सिर्फ एक प्रश्न रह जाता है। सुधार जबरन भी होते देखे जाते है। चोरीकी आदत ठोक-पीटकर छुडाई जाती है। बहुतसे लोग कहते है और मानते है कि मारपीटसे बहुतेरे बच्चे सुधरे है। हम ऐसी धारणाके ही कारण आज ससारमे पापोका पुज बढता हुआ देखते है। बलात्कारसे मनुष्यकी आत्माका हनन होता है और उसका असर केवल हन्तापर ही नही, बल्कि उसकी सन्तानपर और समूचे वातावरणपर भी पडता है। बलात्कारके तमाम परिणामोकी, और बहुत लम्बे काल

सकें, परिणामकारी, जाँच की जानी चाहिए। बलात्कार दीर्घकालसे चला आता है। फिर भी इससे जिन-जिन दोषोंकी निवृत्तिके लिए इसका उपयोग किया है वे दोष निर्मूल हुए दिखाई नहीं देते। पहले चोरी छुड़ानेके लिए बहुत कड़ी सजाएँ दी जाती थीं। तमाम अपराध-शास्त्रियोंका मत है कि उससे चोरियाँ कम नहीं हुई हैं। ज्यों-ज्यों सजामें रियायत शामिल होता गया त्यों-त्यों चोरी कम होती गई। गुनाहकी सजाएँ देनेके बजाय गुनाह करनेके कारणोंको खोजकर निर्मूल करनेमें वे कम होते हैं।

परन्तु निःसन्देह हिंसाका सबसे बड़ा सबूत यह है कि जहाँ हिंसासे सुधार करनेका रिवाज पड़ जाता है वहाँ लोग मन्द और जड़ बन जाते हैं और हर बातमें सजासे ही काम लेकर आलस्य-पूर्ण और असभ्यतापूर्ण उपाय ही अपनाया जाता है। इससे मनुष्य विवेक और सत्य—अर्थात् इन दोनों कीमती गुणोंको खो बैठता है। अगर मान लें कि भ्रान्ति भी होती हो कि उसके प्रयोगसे शान्ति मिलती है तो भी उसका अन्तिम परिणाम बुरा ही होता है, यह बात अनेक प्रमाण देकर सिद्ध की जा सकती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-७-१९२४

१९८ बाल-हत्या

नीचे दिया गया पत्र[1] मेरे पास बहुत दिनोंसे रखा हुआ है

मैंने इस पत्रमें से ब्योरेकी बहुत-सी बातें निकाल दी हैं। इसमें जो दोष पाटीदारोंमें बताये गये हैं वे कहाँतक सच हैं यह तो पाटीदार लोग ही जानें। मेरा इन लोगोंसे अच्छा परिचय है, किन्तु मेरा काम गुणोंको जानना है, इसलिए मैंने दोषोंको जाननेकी कोशिश नहीं की और न वे किसीने मुझे बताये ही।

परन्तु यदि इस चिट्ठीमें लिखी बातें सच हों तो वे लज्जाजनक हैं। लड़कीका जन्म अपशकुन-सूचक है, यह पापपूर्ण अन्धविश्वास हम लोगोंमें व्याप्त है। स्वार्थके अलावा इसका दूसरा कोई कारण नहीं दिखाई देता। इस वहमका जन्म सम्भवतः किसी भयानक कालमें हुआ होगा। जब कन्याएँ हरण की जाती रही होंगी तब लोगोंका कन्या-जन्मसे घबराना कुछ समझमें आ सकता है। परन्तु अब यह भय प्रायः नहीं रह गया है। यदि यह भय कुछ शेष भी हो तो उसका उपाय किया जा सकता है। सन्तानके जन्मसे हर्ष होनेका कोई कारण हो तो फिर लड़का हो या लड़की दोनों एक-से प्रिय होने चाहिए। संसारके लिए दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं। वे एक-दूसरेके पूरक हैं। ऐसी हालतमें एकके जन्मसे प्रसन्न होना और दूसरेके जन्मसे दुःखी होना हानिकर है। एक सुव्यवस्थित समाजमें दोनोंकी संख्या बराबर होनी चाहिए।

1. यहाँ नहीं दिया गया है।

कन्याके पिताको शादीमे बहुत खर्च करना पडता है। यह रिवाज भी हिन्दू जातिमे आम है। सम्भव है कि इसने पाटीदारोमे प्रचण्ड रूप धारण कर लिया हो। इस खर्चको निर्मूल करना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बारेमे दो मत नही हो सकते। बहुत खर्चीले रिवाजोसे बेचारे गरीब माँ-बापोकी बहुत दुर्गत होती है। उनके लिए लडकियोकी शादी करना असम्भव-सा हो जाता है और फलस्वरूप लडकियोको जहर देनेकी प्रथा पड जाती है।

सुणावके अध्यापककी मिसाल[1] अनुकरणीय है। इस खादीके युगमे तो खादीकी वर-मालासे ही शादी हो सकती है।

लेखकने सारा दोष बूढे लोगोके ही सिर मढा है। यह बात कुछ अत्युक्तिपूर्ण मालूम होती है। परन्तु यदि बूढे लोग सचमुच मिथ्याभिमानके कारण किसीकी न सुनते हो तो युवक-मण्डलको बागडोर अपने हाथमे लेनी चाहिए। वे खर्चीले विवाहोमे शरीक होनेसे साफ इनकार कर दे। इससे विवाहोका खर्च एकदम कम हो जायेगा। इसमे न तो कोई अविनय है और न किसी बडी कोशिशकी जरूरत। खेदकी बात तो यह है कि युवक आजतक ऐसी बातोको अपने क्षेत्रमे बाहर मानते आये है। उन्होने अपनी शिक्षाका उपयोग अपने समाजके सुधारके लिए बिलकुल ही नही किया है।

परन्तु अब जमाना बदल गया है। युवकवर्ग खुद विचार करने लगा है। अत यह सुधार किसी बडे प्रयासके बिना ही हो सकता है। आवश्यकता है सिर्फ अटल निश्चय की।

मुझे तो बारह गाँवोके[2] भीतर विवाह करनेकी मर्यादा भी खलती है। मै सिर्फ चार वर्णोको मानता हूँ। उपवर्णोको उन्हीमे मिला दिया जाना चाहिए। परन्तु इसमे समय लगेगा। फिर भी पाटीदारोका गाँवोके भी विभाग करके शाखाएँ बनाना वर्ण-विभागकी अतिशयता है। सारे गुजरातके जिन पाटीदारोमे रोटी-व्यवहार है उनमे बेटी-व्यवहार क्यो नही होना चाहिए? बारह गाँवोकी मर्यादा बाँधनेका कारण सयम नही, बल्कि मिथ्याभिमान ही दिखाई देता है। जहाँ मिथ्याभिमान होता है वही पाप होता है। इसलिए समझदार और प्रौढ पाटीदारोको उचित है कि वे सब तुरन्त मिलकर यह आवश्यक सुधार करे और इस बालहत्याको तथा इसके कारणरूप पूर्वोक्त क्रूर रिवाजोको समाप्त करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-७-१९२४

१ इस पाटीदार अध्यापकके, जो सुणावकी राष्ट्रीयशालामें पढाता था, विवाहमें केवल दस बराती थे। वर और वधू दोनोंने विवाहके समय अपने हाथके कते सूतके बने कपड़े पहने थे। इसके विवाहमें कुल सौ रुपये खर्च आया था।

२. केवल बारह गाँवोके दायरेमें अपने ही समाजमें विवाह करनेकी प्रथा, जो पाटीदारोंमें प्रचलित थी।

१९९. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

आषाढ सुदी १४ [१५ जुलाई, १९२४]

भाई इन्द्र,

तुमारा खत मीला। मैंने थोडा सा लीखा उसके वाद तुमारा खत पहोंचा। लेकिन मैंने कोई ऐसी वात नहिं लिखी हे जिससे किसीको हानी पहोचे। मेरी उमीद है कोई अव कचेरीमे नहिं जायेंगे। मामला तो शांत हो गया होगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति
'अर्जुन' आफिस
दिल्ली

मूल पत्र (जी० एन० ७१९८) तथा सी० डब्ल्यू० ४८५७ से।
सौजन्य चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

२००. पत्र : कुँवरजी खेतशी पारेखको

आषाढ सुदी १४ [१५ जुलाई, १९२४][1]

चि० कुँवरजी,

तुम्हारे पूज्य मामाके देहान्तका समाचार पढकर खेद हुआ। तुम्हे उनका वहुत वडा सहारा था, यह मैं जानता हूँ, लेकिन जन्म और मरण तो हमारे साथी ही हैं, ऐसा समझकर हमें एकका हर्ष और दूसरेका शोक नही मानना चाहिए।

मोहनदासके आशीर्वाद

चि० कुँवरजी खेतशी
मार्फत पारेख गोकुलदास त्रिभुवन
मोरवी

मूल गुजराती प्रति (सी० डब्ल्यू० ६७६) से।
सौजन्य नवजीवन ट्रस्ट

१ डाकखानेकी मुहर में १६ जुलाई, १९२४ पढ़ी है।

२०१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

आषाढ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][1]

तुम मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता न करना। मैंने अपनी खुराक फिर बढ़ा दी है। मेरे मनको आज कौन पहचान सकता है? मैं स्वयं नहीं जानता कि वह मुझे किस घाट उतारेगा? मनमें मथन तो चल ही रहा है। मैं आग्रह कोई नहीं रखता। यथासम्भव पवित्र बनने और रहनेका प्रयत्न करता हूँ। बस मैं अपना कर्त्तव्य इतना ही मानता हूँ। फिर प्रभु मेरे मनमें चाहे जो भरे। 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में मेरे मनके प्रतिबिम्ब बहुत-कुछ आ जाते हैं।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२०२. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

आषाढ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][2]

अभी बाका वहाँ आना लगभग असम्भव है ।[3] वहाँ आकर वह करेगी भी क्या? इसलिए मैं उसे आग्रह करके भेजना नहीं चाहता। आनन्दसे[4] कहना कि वह मुझे क्षमा करे।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१ साधन-सूत्रके अनुसार।

२ साधन-सूत्रके अनुसार।

३ प्रेषीने अपनी माँके आदेशानुसार गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे बाको उसकी पत्नीके प्रथम प्रसव-काल सम्बन्धी संस्कारमें भाग लेनेके लिए बम्बई भेज दें।

४ प्रेषीकी माता।

२०३. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

आषाढ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][1]

पूज्य गंगाबहन,

आपका पत्र मिला। जब आपको क्रोध आये तब आप अपने मनमें सोचें, मेरा यह सब क्रोध किसपर है? आत्मा अवश्य ही निर्विकार है, वह क्रोध किसपर कर सकती है? क्रोधको शान्त करनेका बाह्य उपाय मौन है। जब क्रोध शान्त हो जाये आपको तभी बोलना चाहिए।

आपको पिछली बातें भूल जानी चाहिए। हम जिस तरह उच्छिष्ट अन्न नहीं खाते उसी तरह हमें बीती बात याद करके उनका मीठा-कड़वा स्वाद नहीं लेना चाहिए। हमें केवल इतना ही अधिकार है कि हम वर्तमानको सँभालें लें। हमें भविष्यका विचार भी न करना चाहिए।

आप क्रोध करके अथवा रूठकर बोरीवली नहीं छोड़ सकती, इसलिए यदि आपके पुत्रका बहुत आग्रह है तो आप उसे मानकर उसके पास हो आयें। आपको उनका अथवा बहूका त्याग तो कदापि नहीं करना है। आपको तो बहूको रास्ता देना है जिससे उनके दिलको ठेस न लगे और आपका मन भी दु:खित न हो।

मैं इस पूरे महीने हर हालतमें यहीं हूँ। अगस्तके पहले सप्ताहमें भी यहीं हूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१५) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

२०४. पत्र : वसुमती पण्डितको

आषाढ सुदी १५ [१६ जुलाई, १९२४][2]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। जो नया उपचार चल रहा है, उसका क्या असर हुआ है, इस बारेमें लिखती रहना। मुझे पूरा अगस्त शायद यहीं बिताना पड़े। तुम्हारा हजीरा जाना मुझे बहुत अच्छा लगेगा। मैं वहाँ जानेके लिए क्या बन्दोबस्त करूँ?

१ इस पत्रमें प्रेषीके (आश्रमके लिए) बोरीवलीका अपना घर छोड़नेकी जो चर्चा की गई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र १९२४ में लिखा गया था। उस वर्ष आषाढ़ सुदी १५, १६ जुलाई, १९२४ की थी।

२ डाकखानेकी मुहरमें १७ जुलाई, १९२४ पड़ी है।

पजाव तो अक्तूवर मासके वाद जाना ठीक होगा। वहाँ फल क्या-क्या मिलते है और तुम क्या-क्या फल खाती हो?

वापूके आशीर्वाद

वहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४५०) से।
सौजन्य वसुमती पण्डित

२०५. उत्तर : मथुरादास त्रिकमजीके प्रश्नका[1]

[१६ जुलाई, १९२४ के आसपास][2]

यदि काग्रेस मुझे निकाल दे तो मुझे उसे नम्रभावसे सहन कर लेना चाहिए, लेकिन मै प्रहार किसी भी पक्षपर नही कर सकता।

[गुजरातीसे]
वापुनी प्रसादी

२०६. टिप्पणियाँ

भारत-कोकिला सरोजिनी

'यग इडिया' के पाठक भारतकी इस प्रतिभाशालिनी पुत्रीके आश्चर्यजनक कार्यके वारेमे दक्षिण आफ्रिकासे मेरे पास आये अनेक पत्र[3] पढ चुके है। श्री पी० के० नायडूसे प्राप्त एक पत्रमे से यह एक वाक्य पाठकोके सामने पेश करता हूँ।

> **यहाँ उन्होने आश्चर्यजनक कार्य किया है। उनके आकर्षक व्यक्तित्व तथा सफल वक्तृत्वसे सैकड़ो ही नहीं, हजारो यूरोपीय सज्जन हमारे मित्र वन गये और उसने स्मट्सकी सरकारको भी हिला दिया।**

इसलिए भारत उनका सम्मान करके अपना ही सम्मान कर रहा है। जहाँतक मेरा ताल्लुक है मै तो यही कहूँगा कि उनकी मौजूदगीमे मुझे राहत महसूस होती है। क्योकि, यद्यपि मै समझता हूँ कि मै हिन्दू-मुस्लिम एकताको दृढ करनेमे अपना विनम्र योगदान दे सकता हूँ तथापि कई वातोमे वे इस क्षेत्रमे मुझसे कही वढकर है। मेरी

१ मथुरादासने काग्रेसके भीतर मतभेद होनेके कारण गाधीजीसे काग्रेस छोड़नेकी अपील की थी। मौन दिवसपर लिखे गये ये शब्द उसीके उत्तरमें थे।

२ साधन-सूत्रके अनुसार।

३ देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ४३६-३७।

अपेक्षा उनका अधिक मुसलमानोसे अन्तरग परिचय है। उनकी पहुँच उनके हृदयो तक है, किन्तु मैं ऐसा दावा नही कर सकता। उनकी इन सारी योग्यताओमे अव एक यह भी जोड लीजिए कि वे नारी हैं। यह उनकी सवसे वडी योग्यता हे, जिसमे कोई पुरुप उनकी वरावरी नही कर सकता। शान्तिकी स्थापना नारीका विशेषाधिकार है। सरोजिनी देवीने नारी जातिके इस विशेष गुणको अपने भीतर यत्नपूर्वक विकसित किया है। १९२१ मे वम्वईके लज्जाजनक दगेके अवसरपर उनका यह गुण पूर्ण रूपसे प्रकट हुआ था। उनकी वीरता तथा उनकी क्रियाशीलता सवके लिए प्रेरणाका स्रोत वन गई थी। उस समय वे जहाँ-कही गई, दगाइयोने अपने हथियार रख दिये। वे पूर्वी और दक्षिणी आफ्रिकामे शान्तिकी साक्षात् देवी सिद्ध हुई हैं। भारतीय उनका सर्वोत्तम स्वागत इसी प्रकार कर सकते हैं कि वे भगवान्से प्रार्थना करे कि वह उन्हे शान्तिका सन्देश प्रसारित करते रहनेकी शक्ति देनें और इन दोनो समुदायोको अटूट रूपसे जोडकर एक करनेका साधन वनाये। भगवान् करे, जिस काममे सवल कहलाने-वाले पुरुप सफल नही हो सके, वहाँ अवला कहलानेवाली नारी सफल हो जाये।

भगवान् विनम्रको, न कि अभिमानीको, अपना निमित्त वनाते हैं। पुरुप नाश करना जानता है। निर्माण नारीका विशेषाधिकार है। हमारी कामना है कि सरोजिनी हिन्दुओ और मुसलमानोके वीच वास्तविक एकताकी स्थापना करनेमे ईश्वरके हाथका उपकरण वनें।

दिल्ली और नागपुर

दिल्लीने तो अपनी प्रतिष्ठाको मिट्टीमे मिला लिया। वहाँके दगोसे यह प्रकट होता हे कि वहाँ असहयोगका लेश भी नही वचा है, क्योकि सरकारके साथ असहयोग करनेका मतलव है लोगोमे परस्पर सहयोगका होना। परन्तु दिल्लीमे पिछले सप्ताह सरकारके प्रति असहयोग न होकर हमारा ही परस्पर असहयोग दृष्टिगोचर हुआ। काग्रेस और खिलाफतके लोग जनतामे शान्ति स्थापित नही कर सके। इसका श्रेय पुलिस और फौजको ही मिलना था। वे गौरवान्वित हुए और हम शर्मिन्दा। मुझे जो चिट्ठियाँ मिली हैं उनसे मालूम होता है कि हमारे स्वयसेवकोसे शान्ति स्थापित करनेकी दिशामे कुछ नही वन पडा और तव उन्होने एक दर्जा उतरकर दूसरा उत्तम काम हाथमे लिया अर्थात् उन लोगोकी सेवा-शुश्रूषाका काम, जो पुलिस द्वारा मारपीट किये जानेसे नही, वल्कि आपसमे ही लडकर घायल हुए थे।

इस सारे झगडेकी वजह वताई जाती है कुछ हिन्दुओ द्वारा एक मुसलमान युवककी कथित मारपीट। अगर वह लडका मर भी जाता तो मुसलमान हाल ही कायम किये गये पच-वोर्ड या सरकारी अदालतोसे फैसला करा ले सकते थे।

मान लीजिए कि कुछ हिन्दुओने मुसलमान लडकेको पीटा और इसपर कुछ मुसलमानोने हिन्दुओपर हमला किया, तव दूसरे हिन्दुओने, फिर वे कोई भी क्यो न हो, उसका वदला क्यो लिया? मुझे जो चिट्ठियाँ प्राप्त हुई है उनके अनुसार यह लडाई सारे शहरमे जहाँ-जहाँ तक भारतीय वसे हुए है, फैल गई थी। उन्ही चिट्ठियोमे यह भी लिखा है कि अगरचे यह लडाई इतनी फैल गई थी फिर भी

दिल्लीकी आवादीका मुख्य भाग दगोसे अछूता रहा — यही नही, ऐसा भी हुआ कि हिन्दुओने मुसलमानोको पनाह दी और मुसलमानोने हिन्दुओको। इसमे कोई शक नही कि यह वात सराहनीय हे। लेकिन इससे इनकार नही किया जा सकता कि दिल्लीकी आवादीका मुख्य भाग हुल्लडवाजोपर कावू पानेमे असमर्थ रहा। स्थिति आज यह हे कि हम लोग उपद्रवकारी तत्त्वोपर अपना नियन्त्रण स्थापित नही कर पाये है।

नागपुरका भी यही हाल हे। अवतक वहाँसे वहुत थोडी खवरे आ पाई है। परन्तु यह स्पष्ट है कि नागपुरके हिन्दू और मुसलमान दोनो एक होकर सरकारसे लडाई करनेकी अपेक्षा (यद्यपि वह अहिमाके तरीकेसे ही होगी) आपसमे अन्धाधुन्ध लडना ज्यादा फायदेमन्द समझते है।

इस तरह अगर दिल्ली और नागपुरको ही किसी रूपमे आम लोगोकी मनोवृत्तिका सूचक मान लिया जाये तो हमे वहुत समयतक हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आशा छोड देनी होगी और इसलिए आजादीके लिए कोशिश करनेके वजाय गुलाम वने रहना मजूर करना होगा।

मगर मै मायूस नही हूँ। मौलाना शौकत अलीकी तरह मेरा भी विश्वास है कि ये झगडे चन्दरोजा है और थोडे ही दिनोमे दोनो जातियाँ अवश्य ही एक शान्तिमय कार्यक्रमपर अमल करने लगेगी।

यदि हम सचमुच किसी ऐसे कार्यक्रमपर अमल करनेमे लग जाना चाहते हो तो मै दिल्ली और नागपुर दोनो स्थानोके काग्रेस और खिलाफतके लोगोसे कहना चाहता हूँ कि कोई भी पक्ष किसी भी हालतमे अदालतोका दरवाजा न खटखटाये और ये तमाम झगडे पच-फैसलेसे निवटाये जाये। वकील लोग, फिर वे चाहे वकालत करते हो या न करते हो, इसमे वहुत-कुछ मदद कर सकते है। वस, वे अदालतमे इन मामलोकी पैरवी करनेसे इनकार कर दे और दोनो पक्षोको समझाये कि इससे उन्हे कुछ भी हासिल नही हो सकता, शायद नुकसान ही ज्यादा हो। वे उन्हे यकीन दिला सकते है कि यदि वे सचमुच सच्ची शान्ति चाहते है तो वह उन्हे अदालतोके जरिये हरगिज नही मिल सकती।

वडा-वाजारके काग्रेसी

जव मैने इन दगोका और आगे चलकर कलकत्तेके वडा-बाजारके काग्रेसियोके झगडे और मारपीटका हाल पढा तव मुझे इसपर सहसा यकीन नही आया। परन्तु मुझे प्रत्यक्षदर्शी काग्रेसियोकी तीन चिट्ठियाँ मिली है। उनसे पता चलता है कि समितिकी बैठकमे काग्रेसियोमे खुलकर मारपीट हुई और वह काग्रेसके उद्देश्यकी सिद्धिके लिए नही वल्कि समितिपर अपना-अपना कब्जा जमानेके लिए हुई। तीनो चिट्ठियोके लिखनेवाले वे है जो अपनेको पक्का अपरिवर्तनवादी कहते है। इन पत्रोके आधारपर यह निर्णय नही किया जा सकता कि कुसूर किस दलका है। मुझे इस वातमे जरा भी शक नही कि स्वराज्यवादी अपने वयानोमे सारा दोष अपरिवर्तनवादियोके मत्थे मढेगे। मै जो बात समझ नही पा रहा हूँ वह यह है कि जो सस्था अहिसात्मक

होनेका दावा करती है, कोई भी दल उसीपर कब्जा करनेके लिए हिंसापर आमादा कैसे हो सकता है? क्योंकि लेखक अपनेको 'मेरा अनुयायी' बताते है। यदि वे अपनेको 'मेरा अनुयायी' बताकर अहिंसाके पुजारी होनेका दावा करते हो तो उन्हे परस्पर झगड़ते हुए मौकोंको टालना चाहिए, इसलिए उन्हे कांग्रेस या उसकी किसी समितिपर कब्जा करनेके लिए हथियार लेकर नही लड़ना चाहिए। पत्र-लेखक कहते है कि यद्यपि बड़ा बाजार क्षेत्रमे अपरिवर्तनवादियोका निश्चित बहुमत है तो भी सम्भावना यह है कि स्वराज्यवादी या तो बड़ी तादादमें उनकी बैठकोमे आ घुसेगे या उनकी सभाएँ भंग करेंगे और इस प्रकार वहाँकी कांग्रेस कमेटीपर कब्जा कर लेंगे। फर्ज कीजिए कि ये सब इल्जाम सही है तो भी अपरिवर्तनवादी लोग अहिंसात्मक उपायोंसे उनका प्रतिकार कर सकते है। वे स्वराज्यवादियोंकी सभाओंमे कदम न रखें और अपना कार्यक्रम चलानेके लिए एक अलग संगठन बना ले — ऐसा कि उनका उद्देश्य कार्यक्रमको चलाना हो, कांग्रेसपर कब्जा जमाना नही। मैं वचन देता हूँ कि यदि अपरिवर्तनवादी काम करेंगे तो स्वराज्यवादियोका काम उनके बिना चल ही न सकेगा। एक ही ईश्वर है, एक ही साध्य है और एक ही साधन है। रोगोंकी जड़ एक ही है, इसलिए उनका उपचार भी एक ही है। चाहे सरकार हो, चाहे स्वराज्यवादी, दोनोंके लिए एक ही रामबाण दवा है, अहिंसात्मक असहयोग। इसलिए यदि 'मेरे अनुयायी' बाते न करके अपना संगठन बनाकर काम करें तो बेहतर होगा। उन्हे अपनी सेवाओं द्वारा राष्ट्रके हृदय तक पहुँचनेका रास्ता तैयार करना चाहिए। मैंने ये बाते अपरिवर्तनवादियोंसे इसलिए कही है कि उन्हींकी ओरसे इनका विरोध किया जा रहा है और उन्हींने अपनेको 'मेरा अनुयायी' कहकर पत्र लिखे है। मैं उनके द्वारा स्वराज्यवादियोंपर लगाये गये इलजामोका न तो विश्वास करता हूँ और न अविश्वास। मैं तो स्वराज्यवादियोंको भी 'अपना अनुयायी' मानता हूँ, क्योंकि वे भी अपरिवर्तनवादियोंके समान कांग्रेसके ध्येयके समर्थक होनेका दावा करते है। यदि वे यह कहेंगे और मैं समझता हूँ कि वे जरूर कहेंगे कि इसमें उनका कुछ भी कुसूर नही है तो मैं उन्हे भी वही उपाय बताऊँगा जो मैंने अपने अपरिवर्तनवादी अनुयायियोंको बताया है। 'मेरे अनुयायी' तो विपक्षीकी प्रतिक्रियाकी राह नही देखते, क्योंकि वे बदला नही लेते। जो प्रतिक्रियाकी राह नही देखते वे कुछ प्रत्याशा भी नही रखते। इसलिए वे कभी दुखी नही होते। यदि इसी बातको बिलकुल ही व्यावहारिक रूप देकर कहूँ तो कहना होगा कि जिस शख्सको चरखा कातना हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करनी हो और अगर वह हिन्दू है तो जिसे अस्पृश्यता निवारण करना हो, उसे किसी संस्थाकी जरूरत नही है। संस्थाओंको उसकी जरूरत अवश्य हो सकती है, और उसकी सेवाकी जहाँ-कही जरूरत हो वह वहाँ खुशीसे अपनी सेवा अर्पित करेगा। एक स्वराज्यवादी मित्र कहते है कि महाराष्ट्रमे अपरिवर्तनवादियोंने केवल पशुबलके जोरपर अपना बहुमत बना रखा है और बरारमें तो उन्होने ही मारपीट की थी। यदि बात ऐसी ही हो तो मैं अपरिवर्तनवादियोंसे कहूँगा कि वे क्षमा माँगे और वे जहाँ-कही पशुबल या

अनीतिपूर्ण तरीकोसे पदाधिकारी बने हो, वहाँ अपने पदोको त्याग दें और अपना काम फिर भी बराबर करते रहे। यह मानना सरासर वहम है कि हम कांग्रेसकी प्रतिष्ठाका सहारा लिये बिना कारगर तरीकेसे सेवा नही कर सकते।

एक कदम आगे

गुजरात प्रान्तीय कमेटीने चरखे-सम्बन्धी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावका समर्थन करते हुए उससे भी आगे जाकर पहले महीनेमे ३,००० गज सूत कातनेका अनिवार्य नियम बना दिया है और उसे जल्दी ही ५,००० गज तक बढानेका विचार कर रही है। उसने अपने आदेशमे उस दण्डात्मक धाराको भी रख लिया है, जो अ० भा० का० क०की बैठकमे हटा दी गई थी। मेरी हमेशा यह राय रही है कि हर प्रान्तीय कमेटीको यह अधिकार है कि वह अखिल भारतीय कमेटीकी अपेक्षाओसे आगे बढकर काम करे। जो प्रान्त इतनी क्षमता रखता हो उसे ऐसा करना अपना कर्त्तव्य मानना चाहिए। यह दो हजार गज सूत एक किस्मका चन्दा है, जिसे अदा करना हर प्रतिनिधिका फर्ज है। यदि कोई ज्यादा देता है तो यह उसके लिए गौरवकी बात है। यदि कोई सदस्य अपना चन्दा न दे तो उसे सदस्यतासे हटानेमे कोई बुराई नही है। इसलिए मुझे आशा है कि जो प्रान्त गुजरातका अनुसरण कर सकते हो, वे अवश्य करे। १५ अगस्तको यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि कांग्रेसके प्रतिनिधियोका चरखेमे कितना विश्वास है। उन्हे याद रखना चाहिए कि आचरणहीन श्रद्धा आत्माहीन शरीर—मुर्दे—की तरह है, जो जलाने या दफनानेके सिवा किसी मसरफका नही होता।

हर प्रान्तमे चरखेके संगठनका दायित्व प्रान्तीय समितियोपर है। उन्हे अविलम्ब उन प्रतिनिधियोके नाम जान लेने चाहिए और देखना चाहिए कि वे साधन-सामग्री या जानकारीके अभावमे अपने कर्त्तव्य-पालनमे ढील न डाले। हमारी असहाय अवस्था तो दयनीय है, हम अपने सिरपर मडरानेवाली इस बरबादीसे उसी अवस्थामे बच सकते है जब हमारी कौम पहलेकी तरह बुनकरो और कतैयोकी कौम बन जाये। कांग्रेसने कमसे-कम कागजपर तो इस बातकी सचाईको अंगीकृत कर लिया है। अब देशके कोने-कोनेके प्रतिनिधियोसे यह आशा की जा रही है कि वे कताई और धुनाईमे प्रवीण हो जायेंगे, चरखा-शास्त्रकी सब बारीकियोको जान लेंगे और अपने-अपने जिलोमे इस कार्यका संगठन करेंगे।

यह आध घंटेका श्रम तो केवल शुरूआत है। लेकिन प्रारम्भमे ही ब्यौरेकी बातोकी ओर ज्यादा ध्यान देनेकी जरूरत है—जैसे रुई जमा करना और पहुँचाना, उसे धुनना और पूनियाँ बनाना और कातना। एकत्र सूतको प्रान्तीय केन्द्रोमे जाँचना होगा। चरखोपर भी ध्यान देना होगा। यदि चरखे और तकुए ठीक हो तो बहुत-सा वक्त अपने-आप बच जाता है और कातनेवालेको कातनेमे बहुत आनन्द आता है।

कांग्रेसके प्रतिनिधियोपर तो कताईका यह कर्त्तव्य अ० भा० का० कमेटीके प्रस्तावसे आयद होता है। पर दरअसल यह कर्त्तव्य हरएक मनुष्यपर लागू होता है, फिर चाहे वह कांग्रेसी हो या न हो। हरएक उत्साही कार्यकर्त्ता एक चरखा-क्लब

कायम कर सकता है, जिसका यह काम हो कि वह अपने सदस्योसे जितना बने सूत कतवाये और उसे खादी बोर्डके मन्त्रीको भिजवा दे। पाठक यह जानकर खुश होगे कि गुजरात विद्यापीठके रजिस्ट्रारने इसका श्रीगणेश भी कर दिया है। उन्होने अपने दफ्तरके कर्मचारियोसे यह वचन ले लिया है कि वे हर महीने पाँच हजार गज सूत कातेगे, उसमे से दो हजार गज सूत विद्यापीठको दिया जायेगा और शेष अलग रख दिया जायेगा।

एक खतरा

गुजरात अपनी जरूरतकी ज्यादातर खादी आन्ध्र, पजाव और विहारसे मँगाता रहा है। यद्यपि प्रारम्भिक अवस्थामे जव गुजरात अपनी आवश्यकता पूरी करनेके लिए खादी वनाता ही नही था तथा जव उक्त प्रान्तोको प्रोत्साहनकी आवश्यकता थी, यह शायद जरूरी रहा हो तथापि पद्धतिके रूपमे यह दोषपूर्ण है। खद्दरका मूल सिद्धान्त ही यह है कि प्रत्येक गाँव अपने अन्न और वस्त्रके मामलेमे आत्मनिर्भर वने। अत प्रत्येक प्रान्तको स्वावलम्बी वन जाना चाहिए। यदि उसे दूसरे प्रान्तसे खादी मँगानी पडे तो वह आत्मनिर्भर नही वन सकता। एक वात यह भी है कि ऐसे प्रान्तमे दुर्भिक्षके विरुद्ध सघर्ष करनेकी तनिक भी शक्ति नही होती। निर्यात करनेवाले प्रान्तको भी हानि पहुँचे विना नही रहेगी। उत्पादन और विक्री दोनोमे ही खरावी आना अवश्यम्भावी हो जायेगा और हाथके कते सूतकी जगह मिलके सूत-का उपयोग करनेका जवरर्दस्त लोभ उत्पन्न हो जायेगा। मेरे सामने मसूलीपट्टमसे आया एक पत्र है। इसमे लेखक कहते हैं कि व्यापारियोमें हाथकता सूत इकट्ठा करके उसे निर्यातके लिए वुनवा लेनेका चलन वढता जा रहा है। लेखक आगे कहते हैं कि लगभग सभी कातनेवाले स्वय हाथके कते सूतका कपडा पहननेके वजाय मिलके कते सूतका कपडा पहनते हैं। अत खद्दरके ऐसे व्यावसायिक उपयोगके विरुद्ध सतर्क रहना कार्यकर्त्ताओके लिए अत्यन्त आवश्यक है। उन कातनेवालोको हाथसे कते सूतका कपडा पहननेके लिए प्रेरित करनेका तरीका यह है कि उनका कपडा मुफ्त वुना जाये। यह सम्भव हे कि कुछ समय तक हाथकते सूतके कपडेसे मिलके सूतका कपडा सस्ता मिले। गरीव कातनेवाले जो केवल अपनी आजीविकाके लिए कातते हैं, देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय आर्थिक हितकी वात सुननेवाले नही हैं। उनकी समझमे तो वही वात आयेगी जिससे उनको दो पैसे ज्यादा मिले। इसलिए यदि उनके काते सूतसे कपडा मुफ्त वुन दिया जाये तो वे खुशी-खुशी खद्दर पहनने लगेगे। यह काम विलकुल ठीक तरहसे और कम खर्चमे करनेके लिए यह जरूरी है कि वहुसख्यक युवक कातना ही नही, वुनना भी सीखे जिससे वे अपनी गरीव वहनोके लिए खादी वुन सके। ये सव वाते तवतक नही हो सकती जवतक काग्रेस सगठन मुख्यत खादी प्रचारक सगठन नही वन जाता।

उपरोक्त तर्कका अर्थ यह नही कि खादीका निर्यात विलकुल ही न किया जाये। आन्ध्रकी विशेष कुशलताके कारण उसकी खादीकी माँग सदा वनी ही रहेगी। किन्तु विनिमयका यह काम व्यापारियोपर छोड दिया जाना चाहिए। काग्रेस तो उन्ही

चीजोंपर ध्यान रख सकती है, जिनको विकसित करनेके लिए शुरूमें बड़ी सार-सँभालकी जरूरत हो।

मुँहपर पट्टी भी आवश्यक

एक अंग्रेज मित्र लिखते हैं :

> **मैंने अभी एक हफ्ते पहले ही एक मित्रको लिखा था 'गांधीने जब चरखेकी सिफारिश की तब वे उसके साथ-साथ मुँहपर पट्टी बाँधनेकी सिफारिश करना भूल गये'। शायद आपको याद होगा कि मैंने अपने एक भाषणमें अवकाश अथवा फालतू समयके दुरुपयोगको भारतका अभिशाप बताया था और शौकके तौरपर बागवानी, बढ़ईगिरी, फोटोग्राफी, पुस्तकवाचन, इतिहास, दर्शन इत्यादि विषयोंके अध्ययनकी सिफारिश की थी। इस देशके लोगोंका सारा फालतू समय मूर्खतापूर्ण और बेमतलबकी गपशपमें बीतता है। उन्होंने ठीक ढंगसे पढ़ना, अवलोकन करना, ज्ञान प्राप्त करना और उसे आत्मसात् करना नहीं सीखा है। अब उपाय यही है कि स्कूलों और कालेजोंमें छात्रोंसे सभी विषयोंपर निरन्तर निबन्ध लिखाये जायें। इसलिए उन्हें पुस्तकोंका अध्ययन करने, लेखोंके तथ्योंका पूरा ज्ञान प्राप्त करने तथा विचारोंको बनाने और उनको सुसंगत रूपमें रखनेकी आवश्यकता होगी।**

मुझे मुँहपर पट्टी बाँधनेके बारेमें दिये गये अपने मित्रके सुझावका समर्थन करनेमें कोई संकोच नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि हममें बहुत ज्यादा बोलने और लिखनेकी बीमारी है। यदि हमारे बोले या लिखे हुएमें सरकार अथवा अपने विरोधीको गालियाँ नहीं दी गई हों तो वह अधिकांशतः निरर्थक दिखाई पड़ता है। मैंने तो सुझाव दिया है कि जहाँतक बोलनेका सवाल है, वह काम मौलाना शौकतअली और मेरे लिए छोड़ दिया जाये। रही लिखनेकी बात सो तो मैं कर ही रहा हूँ। हमें इन मित्रकी आलोचनाकी कीमत सिर्फ इसलिए कम नहीं आँकनी चाहिए कि वे अंग्रेज हैं। वे संयोगवश 'अपराधी' भी हैं। वे उस तन्त्र या व्यवस्थाको चलानेमें हाथ बँटाते हैं, जिसे हम नष्ट करना चाहते हैं। परन्तु चूँकि हमारे मनमें इन अंग्रेज 'अपराधियों'के प्रति जो इस शासनतन्त्रकी बागडोर थामे हुए हैं, कोई दुर्भावना नहीं है, इसलिए जिस शासनतन्त्रको वे चला रहे हैं उसका मेरे द्वारा विरोध किये जानेके बावजूद (यद्यपि उनमें से कुछको यह विरोध पागलपन लगता है) वे मेरे साथ अपनी दोस्ती बनाये हुए हैं। अतः पाठकोंसे मेरा निवेदन है कि वे उनकी आलोचनाको उचित महत्त्व दें। निबन्ध-लेखन एक सीमातक ही उपयोगी होता है। वह लेखकको अनिवार्यतः सारयुक्त बातें कहनेवाला नहीं बनाता, लेखक इस कलाका विशिष्ट अभ्यास करे तो बात अलग है। यों तो प्रत्येक व्यक्ति, यदि चाहे तो अपने विचारोंके विस्तारको कम करता हुआ अपने लेखमें इतनी काट-छाँट कर सकता है कि वह एक चौथाई पृष्ठमें आ जाये।

मॉर्लेने गोखलेसे एक वार यही करतव कर दिखानेके लिए कहा था। उन्होने वह कर दिखाया था, किन्तु जितना समय उन्हे पूरे ५० कागज लिखनेमे लगता —— जिन्हे कोई पढता भी नही —— उनका उससे अधिक समय उसको सक्षिप्त करनेमे लग गया। शकरने अपना जगत् विख्यात सन्देश श्लोकको एक पक्तिमे दे दिया था "ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या।" सच्चा अनुशासन वोलने अथवा लिखनेकी इच्छापर अकुश रखनेमे है। ऐसा मनुष्य तभी बोलेगा अथवा लिखेगा, जव उसके लिए वोलना और लिखना विलकुल ही अनिवार्य हो जायेगा।

पर कताईके साथ मुँहपर पट्टी तो रहती ही हे। जव किसी पुरुप अथवा स्त्रीपर कताईकी धुन सवार होती हे, तव उन्हे और किसी वातके लिए अवकाश ही नही रहता। हमारे अग्रेज मित्रका एक तो जनसाधारणकी दशासे उतना अन्तरग परिचय नही जितना हमारा है और दूसरे उनकी भावनाएँ भी हमसे भिन्न है। इसलिए वे कताईको केवल अवकाशका समय वितानेका एक शौक-भर समझते है और इसी तरह उसका उल्लेख करते है। पर हम तो कताईको इस युगमे और इस देशके लिए जिसमे हम रह रहे है, एक पवित्र कर्त्तव्य मानते है, और इस वातसे कताईको निराला ही महत्त्व मिल जाता हे। उसे दूसरे धन्धोकी श्रेणीमे नही रखा जा सकता। जव अग्रेज इस तथ्यको समझ लेगे, तव यहाँ उनकी हैसियत अजनवी देशमे शोपणके विचारसे रहनेवाले अजनवीकी नही रह पायेगी। तव वे भी कातने लगेगे, मनोरजन या कुतूहलके लिए नही, वरन् जिस देशका वे नमक खाते है उसके प्रति अपना कर्त्तव्य निभानेके लिए। किन्तु हम उनसे ऐसी आशा तभी कर सकते है जव हम स्वय अपने कामके द्वारा अपनी आस्थाको प्रमाणित कर दे।

जनताका वाजार

चम्पारनके लोग भारतके सर्वाधिक भीरु लोगोमे है। इधर कुछ दिनोसे उन्होने तनकर खडे होनेका प्रयत्न शुरू किया हे। चम्पारनमे आज भी छोटे-मोटे अधिकारियोका सम्माननीय सज्जनोको अपमानित करना या उनपर लात-घूँसे वरसाना आम वात हे। वावू राजेन्द्रप्रसादने एक सक्षिप्त पत्र भेजकर मुझे वे घटनाएँ वताई है, जिनके कारण वेतियाने अपने वाजारकी स्थापना की हे और राज द्वारा स्थापित वाजारको त्याग दिया है। इस सम्वन्धमे जनताने जो अत्याचार सहा है उसकी मै यहाँ चर्चा नही करूँगा। किन्तु एक घटना है, जिसे मै अनदेखा नही कर सकता। कहा जाता है कि अधिकारियो द्वारा उकसाये गये कुछ लोग इस प्रकारके प्रवाद फैला रहे है कि मै जनताके वाजारोकी स्थापनाको पसन्द नही करता। मुझे इस प्रवादका खण्डन करनेमे जरा भी सकोच नही है। सच तो यह है कि इससे पहले मुझे इस वाजारके अस्तित्वकी भी जानकारी नही थी। किन्तु जनसाधारणके इस प्रकारके उपक्रमोका मै सदा स्वागत करूँगा। अत मै आशा करता हूँ कि वेतियाकी जनता सारे विरोध और असुविधाके वावजूद अपने इस अनुष्ठानपर दृढ रहेगी। उसे प्रलोभनो अथवा धमकियोके आगे झुकना नही चाहिए।

कंगाल उडीसा

जब-जब मैं भारतकी कगालीकी बात सोचता हूँ, मेरी आँखोके सामने वे जीवित नर-ककाल खडे हो जाते है, जिन्हे मैंने पुरीमे जगन्नाथजीके मन्दिरके बिलकुल आस-पास देखा था। मुझे लगता हे कि वे मेरी भर्त्सना कर रहे है, क्योकि मैं दरिद्रता-का जीवन अपनानेका व्रत लेकर भी उनकी तुलनामे काफी आरामका जीवन बिता रहा हूँ। उत्कल सम्मेलनके समक्ष आचार्य रायके[1] ओजस्वी भाषणने मेरे मनमे उडीसाके अपने दौरेके समय देखे हुए उन चित्रोकी बेचैन बना देनेवाली स्मृतियोको पुन जगा दिया है। जनताके दारिद्रयको सिद्ध करनेके लिए डाक्टर रायने कुछ भयकर आँकडे पेश किये हैं। वे कहते हैं कि बिहार और उडीसामे प्रति हजार मृत्यु ३५ ओर जन्म १९ ४ हैं। अत दोनो प्रान्तोमे मिलाकर हजार पीछे मृत्युसे जन्म १५ ६ कम बैठता हे। अकेले उडीसामे यह कमी और भी ज्यादा है अर्थात् हजार पीछे ३१। पाठक जरा सोचे कि इन आँकडोका अर्थ क्या होता है। उडीसामे लोग हर साल हजार पीछे ३१ के हिसाबसे मर रहे हैं। यदि हालत ऐसी ही रही जैसी अभी है तो उडीसाकी आबादीमे यह कमी प्रति वर्ष बढती ही चली जायेगी। उडीसामें अकाल पडते ही रहते हैं। लोगोके पास खेतीके सिवा और कोई धन्धा नही है। ऐसे ही तथ्योके कारण डा० राय चरखेके पक्षपाती बन गये हैं।

इस्तीफे

अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके तीसरे प्रस्तावके अनुसार काग्रेसके प्रतिनिधियोकी तरफसे इस्तीफे दिये जानेकी खबरे आ रही हैं। मैं इसे एक शुभ लक्षण समझता हूँ — बशर्ते कि प्रतिनिधियोने इस्तीफे अच्छी भावनासे दिये हो और इनका यह मतलब न हो कि अब वे काग्रेसका काम नही करेगे। देशकी हालत ऐसी नही है कि वह किसी भी कार्यकर्त्ताकी छोटीसे-छोटी सेवासे वचित रह सके। पर वह सेवा उसकी शर्तो और अपेक्षाओके अनुसार होनी चाहिए। इसीलिए हर प्रान्तके कार्य-कर्त्ताओको अपना दिमाग ठण्डा रखना होगा और एक-दूसरेसे लडे-झगडे बिना काम करना होगा। जहाँ-कही बहुत-ज्यादा इस्तीफे दिये जायेगे वहाँ कार्यकर्त्ताओको समितियोके पुनर्गठनमे बहुत मेहनत करनी पडेगी। कई प्रान्तोमे प्रान्तीय समितियोके सदस्योकी तादाद बहुत ही ज्यादा है। प्रान्तोको तो प्राय पूरा स्वायत्त शासन मिला हुआ है। इसलिए वे ऐसे नियम बना सकते हैं जिनसे समितियाँ आजकी अपेक्षा बहुत छोटी हो जाये। वे शोभाकी वस्तु होनेके बजाय, सचमुच उपयोगी और भारी-भरकम होनेके बजाय सुचारु रूपसे काम करनेवाली होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

१ आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय (१८६१-१९४४)।

२०७. राष्ट्रसे अपील

श्री श्रीशचन्द्र चटर्जी और अठारह अन्य हस्ताक्षरकर्त्ताओंने उक्त शीर्षकसे एक अपील जारी की है। उसकी नकल मैं नीचे दे रहा हूँ ?[1]

मैं जानता हूँ कि यह अपील देशके सामने कुछ समयसे पेश है। इसमें कोई नई बात नही है। फिर भी इसमें व्यक्त विचार केवल उन उन्नीस लोगोंके ही नही, बहुतेरे शिक्षित भारतवासियोंके भी हैं। इसलिए यदि यहा उनकी छानबीन करे तो परिश्रम व्यर्थ नही जायेगा।

कांग्रेसने तो स्वराज्यकी कोई परिभाषा नही दी है, पर हस्ताक्षरकर्त्ता पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं और इसीलिए उन्होंने स्वराज्यकी परिभाषा 'भारतके सयुक्त राज्योंका सघबद्ध गणतन्त्र' की है। कांग्रेसके ध्येय-पत्रमें ऐसी कोई बात नही है जो भारतको स्वाधीन होनेकी महत्त्वाकांक्षा रखनेसे रोके। सच पूछिए तो वह स्वराज्य, स्वराज्य ही नही जिसमें आवश्यक होनेपर भारत अपने आपको स्वाधीन घोषित न कर सके। पर अपीलकर्त्ताओंका अभिप्राय स्वाधीनतासे यह है कि हर हालतमे और हर तरह जोखिम उठाकर इंग्लैंडसे अपना सम्बन्ध तोड लिया जाये। मेरा मत है कि भारतवर्षकी उन्नति और आजादीके लिए ऐसा सम्बन्ध-विच्छेद अनिवार्य नही है। वैसा करनेका दायित्व अंग्रेज लोगोंके सिरपर होना चाहिए। हमारे लिए यही अधिक गौरवपूर्ण बात होगी कि हम स्वतन्त्र राज्योंके सघमें अंग्रेजोंके साथ बराबरीके हिस्सेदार बने रहनेकी सहमति घोषित करे। हो सकता है कि अंग्रेजोंके लिए ऐसी स्थितिको मंजूर करना असम्भव हो। पर हमें उस वस्तुको असम्भव मान लेनेका कोई हक नही है जो कि अपने-आपमें असम्भव नही है। स्व-राज्योंका ध्येय स्वाधीन होकर सबसे अलग होकर रहना नही है। वह तो स्वेच्छापूर्वक परस्परावलम्बन है। इंग्लैंड इस हदतक स्वतन्त्र कदापि नही है कि वह यूरोपके चाहे जिस राष्ट्रको हड़प ले। उसकी स्वतन्त्रता कुछ तो उसके पड़ोसियोंकी शुभेच्छापर और कुछ उसके अपने शस्त्रास्त्रोंपर निर्भर है और जिस हदतक वह अपने शस्त्रास्त्रोंपर आधार रखता है, वह ससारके लिए एक सकट है, जैसा कि सचमुच पिछले विश्वयुद्धके जमानेमे सिद्ध हो गया था। अब हम जानने लगे हैं कि उसका हेतु भलाई करना नही बल्कि लूट-खसोट करना था। उसके राजनीतिज्ञ, फ्रास और दूसरे राज्योंके बराबर ही गुप्त-सन्धियों, कूटनीतिकी कपट चालों और बर्बरताओंके गुनहगार हैं। इस मामलेमे वह जर्मनीसे शायद कुछ ही कम हो। यह बात हर शख्सको साफ तौरपर जान लेनी चाहिए कि अपीलकर्त्ता लोग ऐसी सशस्त्र स्वाधीनता नही चाहते और यदि वे चाहते ही हों तो फिर यह उनका अपना ही मत है। वे औरोंके मतोंके प्रतिनिधि नही हैं।

१ अपील यहाँ नहीं दी जा रही है। उसमें कही गई प्रायः सभी बातोंका उल्लेख गांधीजीके पत्रमें आ जाता है।

स्वाधीनता एक ऐसा शब्द है जो शताब्दियोके प्रयोगसे पुनीत हो गया है और इसलिए उसके बारेमे विभिन्न प्रकारके मत बन जाना कोई बडी बात नही हे। परन्तु उसकी ऐसी परिभाषा तो कोई भी नही कर पायेगा जो सभी मतोके अनुकूल पडे। इसलिए मेरा सुझाव है कि "स्वराज्य" शब्दकी जगह कोई दूसरा ज्यादा अच्छा शब्द नही मिलेगा और उसकी एक ही सार्वभौम परिभाषा यह हो सकती हे कि 'स्वराज्य भारतकी वह सस्थिति है जिसे किसी निश्चित समयपर भारतीय जनता प्राप्त कर लेना चाहती है।'

यदि मुझसे कोई पूछे कि इस घडी हिन्दुस्तान क्या चाहता है तो मै कहूँगा कि मुझे नही मालूम। मै सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि मेरी कामना उसे इस बातके लिए इच्छुक देखनेकी हे कि हिन्दुओ और मुसलमानोके सम्बन्ध निश्छलतापूर्ण रहे, जनसाधारणको रोटी मिले और छुआछूत दूर हो। इस घडी तो मै स्वराज्यकी यही परिभाषा करूँगा। यह परिभाषा मै इसलिए पेश कर रहा हूँ कि मै एक व्यावहारिक आदमी होनेका दावा करता हूँ। मै जानता हूँ कि हम इग्लैडसे अपनी राजनैतिक स्वाधीनता चाहते है। वह पूर्वोक्त तीन बातोके बिना कभी नही मिल सकती — फिर चाहे हमारे पास हथियार भी क्यो न हो और हम उसका प्रयोग भी जानते हो।

अपीलकर्त्तागण दूसरी बात यह चाहते है कि काग्रेसके ध्येय-पत्रसे वह अश निकाल दिया जाये जो उसे 'शान्तिमय और न्यायोचित' साधनो तक ही मर्यादित करता है। मै उनसे इस बातमे सहमत हूँ, पर उन कारणोसे नही जो उन्होने पेश किये है, बल्कि मेरे कारण ठीक उनसे उलटे है। वे कहते है साधन आखिरकार साधन ही है। मै कहूँगा आखिरकार साधन ही सब-कुछ है। जैसा साधन वैसा साध्य। हिसापूर्ण साधन हिसात्मक स्वराज्य देगे। ऐसा स्वराज्य सारे ससारके लिए और खुद भारतके लिए भी एक खतरा ही होगा। फ्रासने हिसात्मक साधनोसे अपनी स्वतन्त्रता हासिल की थी। वह अबतक अपने हिसाकाण्डकी भारी कीमत चुका रहा है। निकट भविष्यमे उसे अपनी बर्बर आफ्रिकी सेनाकी दयापर मोहताज रहना पडेगा। मै मनुष्य-मनुष्यके बीच पूर्ण समानताका कट्टर समर्थक हूँ, पर मेरा यह विश्वास मुझे उस हदतक नही ले जाता जहाँतक वह फ्रासको ले गया। आफ्रिकियोको सेनामे भरती करके प्रशिक्षित करना उनके समानताके सिद्धान्तकी स्वीकृतिका प्रमाण नही है, बल्कि वह अपनी एकछत्र राज्य-सत्ता बनाये रखनेके लोभका प्रमाण है। साधन और साध्यके बीच ऐसी कोई दीवार नही होती जो दोनोको एकदूसरेसे अलग करती हो। हॉ, उस सृष्टिकर्त्ताने हमे साधनोपर नियन्त्रण रखनेकी शक्ति प्रदान की है (सो भी एक हदतक) किन्तु साध्यपर नही। ज्यो-ज्यो हम साधनका साक्षात्कार करते जायेगे त्यो-त्यो हमे साध्यका साक्षात्कार होता जायेगा। यह एक ऐसा नियम है जिसमे किसी तरहका अपवाद नही हो सकता। ऐसा विश्वास रखनेके कारण मै देशको उन्ही साधनोपर कायम रखनेका प्रयत्न करता रहा हूँ जो कि बिलकुल 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित' है।

परन्तु अनुभवने मुझे यह सिखाया है कि साधनोको मर्यादित कर देनेसे यह प्रयोजन शायद सिद्ध नही हुआ है। क्योकि मै देखता हूँ कि जो लोग स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए सत्य और अहिंसाकी आवश्यकतामे विश्वास नही रखते वे भी काग्रेसमे शामिल हो गये है और खुद उसमे विश्वास न रखते हुए भी वे काग्रेसके ध्येय-पत्रपर दस्तखत कर देना पूर्णतया उचित समझते है। कदाचित् वे 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित' शब्दोका अर्थ क्रमश 'अहिंसात्मक और सत्यपूर्ण' न करते हो। इसलिए शायद मै खुद ही इस बातका प्रस्ताव पेश करूँ कि 'शान्तिपूर्ण और न्यायोचित साधनो द्वारा' अश निकाल दिया जाये। देशकी मौजूदा हालतका यही सच्चा दिग्दर्शन होगा। उस अवस्थामे हमपर यह आरोप नही लगाया जा सकेगा कि हम किसी चीजपर पर्दा डालते है। हर शख्सको, जो वह सर्वोत्तम समझे, उसी नीतिका पालन करनेकी आजादी रहेगी।

'अपील'का आखिरी खण्ड दिखाई तो बडा अच्छा देता है, पर उससे अपील-कर्त्ताओकी व्यावहारिकताके विषयमे पूरी नातजुर्बेकारीका पता लगता है। यह बात उनके ध्यानमे आई नही दिखाई देती कि यदि अबतक हमारे पास राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ताओकी ऐसी टोली नही है जो अपना सारा समय और शक्ति लगाये तो इसका कारण यह नही है कि काग्रेसने इसके लिए कोशिश नही की, बल्कि यह है कि काग्रेसको बडी तादादमे ऐसे कार्यकर्त्तागण प्राप्त करनेमे सफलता नही मिली। हाँ, यदि अपीलकर्त्ता चाहे और सम्भव हो तो अवश्य ऐसी टोलीका सगठन करे। सही किस्मके कार्यकर्त्ताओके लिए उन्हे काफी रुपया मिल जायेगा। यदि अपीलकर्त्ता भारत-की भिन्न-भिन्न सस्थाओको देखे तो उन्हे मालूम हो जायेगा कि उन्हे धनका अभाव नही है। इससे क्या यह स्पष्ट नही हो जाता कि राष्ट्र हमेशा उन सस्थाओके खर्च-का भार उठानेके लिए तैयार रहता है जिनकी उसे जरूरत होती है? अभी पिछले ही सप्ताह मैने इस बातकी ओर ध्यान खीचा था कि खादी मण्डलको जैसे चाहिए वैसे कार्यकर्त्ता नही मिल रहे है।

अपीलकर्त्ताओके कार्यक्रमकी दूसरी बातोके बारेमे अधिक विवेचन करनेकी आवश्यकता नही मालूम होती।

मेरा खयाल है कि पिछले किसी लेखमे[1] मैने इस बातको अच्छी तरह दिखा दिया है कि ब्रिटिश मालका बहिष्कार एक बिलकुल अव्यावहारिक प्रस्ताव है।

कारखानोकी स्थापनाके प्रस्तावपर पश्चिमका रग गहरा चढा हुआ है और वह भारतीय परिस्थितिकी उपेक्षा करता है।

जो एक ही कुटीर उद्योग सम्भव है, उसे इस कार्यक्रममे स्थान नही दिया गया।

मजदूरो और किसानोकी सहायताकी तजवीज बिलकुल सही होते हुए भी कहनेमे जितनी सहल है उतनी करनेमे नही है।

और आखिरी तजवीज कि निकट भविष्यमे तमाम एशियाई जातियोका एक सघ बनाया जाये, यह दिखलाता है कि यह कार्यक्रम आज असम्भव है।

१ देखिए "साम्राज्यके मालका बहिष्कार", १५ ५ १९२४।

इसलिए मेरा सभी उन्नीसो अपीलकर्त्ताओंसे विनयपूर्वक निवेदन है कि वे कार्यक्रमकी तमाम तजवीजोको परस्पर बांट ले। हर टुकडी एक तजवीज लेकर उसपर विशेष रूपसे काम करे और जब किसी भी विभागमे सफलता दिखाई दे तब वे कांग्रेसके पास आये कि वह इसे राष्ट्रीय कार्यक्रममे स्थान दे। पर यदि उन्होंने यह कार्यक्रम खुद अमलमे लानेका विचार किये बिना बनाया हो तो मै उनसे निवेदन करता हूँ कि वे मेरे द्वारा प्रस्तुत कार्यको स्वीकार करे और खादीके काममे जुट जाये, यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमे सभी काम करनेके इच्छुक व्यक्तियोकी शक्तिका पूरा-पूरा उपयोग हो सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

२०८. सभापति कौन हो?

जबसे बेलगाँवके आगामी कांग्रेस अधिवेशनके सभापति-पदके लिए मेरा नाम पेश किया गया है, मेरे मनमे दो विचारोकी कशमकश चली है। शुरूमे तो मेरा यही खयाल था कि अपनी नामजदगीकी बातपर असहमति प्रकट कर दूं। पर मै यह भी सोचता रहा कि राष्ट्रकी नावको आज जिस तूफानी मौसमका सामना करना पड रहा है उसमे उसे गन्तव्य स्थान तक सुरक्षित ले जानेके लिए शायद मै ही सबसे अधिक उपयुक्त रहूँ। लेकिन अब मुझे साफ तौरपर दिखाई दे रहा है कि मेरा यह खयाल गलत था। कांग्रेसके आगामी अधिवेशनका पूरा चित्र अपनी आँखोके सामने लाते ही मै कॉप उठता हूँ। अगले एक सालतक सभापतिकी हैसियतसे कांग्रेस कार्यकारिणीके कार्य-सचालनका खयाल आते ही बुद्धि चकरा जाती है। मै अभीतक यह नही समझ पाया हूँ कि देश किस ओर जा रहा है। इसलिए मेरा मन कहता है कि इस नावका कर्णधार होने लायक मै नही हूँ। चरखा, हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारणके सिवा मेरे पास दूसरा कोई कार्यक्रम नही है। मै दूसरे किसी कार्यक्रमको कार्यान्वित करने — जैसे अंग्रेजी मालका बहिष्कार या धारासभाकी कार्यवाहीके प्रति लोगोमे उत्साह उत्पन्न करना — के योग्य नही हूँ। ये तो अनेक सम्भावनाओमे से कुछ नमूने ही हुए। यदि मै सहायता नही कर सकता तो मै कांग्रेसके भीतर रहकर रोडे अटकाना भी उचित नही मानता। यह मेरे स्वभावके खिलाफ है कि जिस कार्यक्रममे मेरा विश्वास न हो या हो न सकता हो, उसका दायित्व स्वीकार करूँ। इसके अलावा, अचानक आ पडनेवाले मामलोके लिए भी मेरा अपनेको इससे अलग ही रखना ठीक है। यदि कांग्रेसके प्रतिनिधिगण आधा घटा सूत कातनेका मामूली-सा काम और अपने द्वारा काता गया २,००० गज अच्छा सूत हर महीने भेजनेकी तकलीफ गवारा नही कर सकते तो मै नही समझता कि मेरे कांग्रेसमे रहनेसे क्या लाभ होगा? सभापतिकी हैसियतसे मेरा भाषण हाथ कताईका, मुसलमानो तथा दूसरी अल्पसख्यक जातियोके हितोके लिए हिन्दुओ द्वारा अपनी सभी भौतिक महत्त्वाकाक्षाओके

पूर्ण स्वराज और हिन्दू समाजसे छुआछूतको एक पाप समझनेके आग्रहपूर्वक निवेदनका एक अन्वेष-प्रबन्ध मात्र होगा। यदि ये वाते देशमें उत्साहका सचार नही कर सकती तो मैं एक निकम्मा सभापति सिद्ध होऊँगा। ऐसे किसी व्यक्तिको सभापति वनानेसे काग्रेसका काम कैसे चलेगा, जो समूचे राष्ट्रसे एक ऊटपटाग काम करानेकी योजना वनाये। हम अपनी राय वोटके ऐसे शख्सके खिलाफ देंगे—फिर वह अपने कथनके प्रति कितना ही सच्चा और अपनी तजवीजके मुताविक काम चलानेमें कितना ही माहिर क्यो न हो। हम उसे अपना सभापति नही वनायेगे, क्योकि वह हमारे कामका न होगा। मुझपर यही वात चरितार्थ हो सकती है।

ऐसी हालतमें मुझे चाहिए कि मैं अपना चुनाव न होने दूं। जिन सज्जनोने मेरा नाम पेश किया है, उनके प्रेमकी मैं कद्र करता हूँ। पर मैं उनसे निवेदन करता हूँ कि वे मेरी स्थितिको समझे और मेरे साथ सहानुभूति रखते हुए मेरा नाम वापस ले ले।

तो अब सभापति पदके लिए दो नाम लेने लायक है—सरोजिनी नायडू और डाक्टर अन्सारी। जब मैंने डा० अन्सारीका नाम लिया तब एक मित्रने कहा कि 'इन चार सालोंमें डाक्टर अन्सारी चौथे मुसलमान सभापति होगे।'[1] पर मैं इसे कोई अडचन नही मानता। हिन्दुओंको चाहिए कि वे एक मुसलमानको अध्यक्ष वनाकर हिन्दू-मुस्लिम एकताकी अपनी दृढ अभिलाषाका परिचय दे। हिन्दू और मुसलमान दोनो जातियोमे जो-कुछ थोडे निष्पक्ष नेता है, डाक्टर अन्सारी उनमे से एक है। इसलिए सिर्फ हिन्दू-मुस्लिम एकताकी दृष्टिसे डा० अन्सारीका चुनाव सबसे वढिया होगा।

लेकिन मैं तो वर्तमान कठिन अवसरपर श्रीमती सरोजिनी नायडूको अध्यक्ष वनानेके पक्षमे हूँ। वे स्थायी हिन्दू-मुस्लिम एकताकी हिमायती है। मुसलमान उन्हे अविश्वासकी दृष्टिसे नही देखते। अभीतक कोई भारतीय महिला काग्रेसकी अध्यक्ष नही हो सकी है। जो आदर देशकी वहनोको वहुत पहले मिल चुकना था, यह उसका सर्वोत्कृष्ट अवसर है। पूर्वी और दक्षिणी आफ्रिकामें उनके द्वारा की गई सेवाओकी याद अभी हमारे दिलोमें ताजा वनी हुई है। उनका पुरस्कार हम इससे वढकर दूसरा नही दे सकते कि आगामी अधिवेशनके लिए सरोजिनी देवीको अपना अध्यक्ष चुने। इससे हमारे प्रवासी भारतीय भाइयोका पक्ष पुष्ट होगा। वे खास तौरपर इस वातको महसूस करेंगे कि हम उनके हितोकी उपेक्षा नही कर रहे है। दोनो उप-महाद्वीपोमे सैकडो यूरोपीयोने हमारी इस महिला राजदूतके प्रति वडा ही सौजन्य और सहानुभूति प्रदर्शित की है। हमारा यह चुनाव उनके इस सद्व्यवहार और सहानुभूतिके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना होगा। यह हमारे इस निश्चयका सूचक होगा कि हम प्रवासी भाइयोके कामको अपना काम मानते है और आखिरी वात यह कि हमे इस वार एक निष्पक्ष सभापतिकी आवश्यकता है। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूँ कि मैं विलकुल

१ अभिप्राय सन् १९२१ से १९२३ तक कांग्रेसके अध्यक्षोंमें हकीम अजमलखाँ (१९२१), मौ० अबुल कलाम आजाद (१९२३, विशेष अधिवेशन दिल्ली) और मौ० मोहम्मदअली (१९२३) के अध्यक्ष होनेसे है।

निष्पक्ष नही हूँ। मै तो पुराने कार्यक्रमका ही कट्टर हामी हूँ। देशके और अपने सद्भाग्यसे श्रीमती नायडूके विचार इतने कट्टर नही है। इससे भी बढकर बात यह है कि उन्हे कोई किसी कार्यक्रमसे उस तरह एकात्म नही कह सकता जिस तरह मुझे अपने कार्यक्रमके विषयमे कहा जा सकता है। इसलिए मै सभी प्रान्तीय कमेटियोसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि वे मेरा नाम वापस ले ले और सरोजिनी देवीको अपना सभापति चुने। हॉ, यदि पूर्वोक्त कारणोसे वे किसी मुसलमानको सभापति बनाना चाहते हो और डाक्टर अन्सारीको यह पद देना चाहते हो तो बात अलग है।

[अंग्रेजीसे]

यग इडिया, १७-७-१९२४

२०९. वर्णाश्रम या वर्णसंकर?

एक विदुषी लिखती है

> एक बहनने सफरके दौरान बारतेजकी राजपूत परिषद्के लिए भेजे आपके सन्देशकी[1] ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। उसे पढकर, मेरे दिलका वह विरोध उमड़ आया जो कि बहुत दिनोसे मानसमें दबा पड़ा था। वह विरोध अपनी कहानी कहनेके लिए आतुर हो उठा। जो मनन करता है उसे मनुष्य कहते है। इसलिए मुझे आशा है कि आप अपने साथी विचारकके विचारोके प्रति सहिष्णुता दिखायेंगे और घोर मतभेद होनेपर भी उन्हे धैर्यके साथ सुनेंगे। १९२० में साबरमती आश्रम और उसकी बुनाईशाला देखकर ये विचार मेरे दिलमें पहली बार उठे थे। फिर वे शान्त हो गये, किन्तु बीच-बीचमे उठते ही रहे। कुछ दिनोसे तो उन्होने मेरे दिलमे घर बना लिया है और अब राजपूत परिषद्वाला आपका सन्देश उनके उद्रेकका आखिरी निमित्त हुआ।
>
> जहॉ स्टेशनपर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फौजी ढंगकी पोशाक पहने हुए और तलवारे लटकाये हुए स्वयसेवक पक्तिबद्ध खडे हुए थे, जहॉ सारा वायुमण्डल क्षत्रिय जातिकी वीरता और शौर्यके संस्मरणोसे गूँज रहा था, वहॉ तलवारकी झंकारका स्थान चरखेकी गुन-गुनको देनेकी, सभी जातियो द्वारा आपकी अपनी ही जातिका धर्म अपनानेकी आपकी सलाह क्या ईसाई पादरियोकी सलाहके समान बिलकुल बेतुकी नही थी? क्या आपको प्राचीन ऋषियोकी तरह ब्राह्मणको सच्चा ब्राह्मण, क्षत्रियको आदर्श क्षत्रिय, वैश्यको एक आदर्श वैश्य बननेकी सलाह नहीं देनी चाहिए? ब्राह्मणका चिह्न पोथी या कलम, क्षत्रियका तलवार और वैश्यका चरखा या हल है। आप शौकसे अपनेको

१. देखिए "सन्देश : सौराष्ट्र राजपूत परिषद्को", ११-६-१९२४।

जुलाहा या किसान कहलवानेमें अपना गौरव मानें -- ऐसा करना अपनी जातिकी स्वाभाविक वृत्ति या वैश्य धर्मके प्रति आपकी वफादारी ही होगी। पर आप जैसे वर्णाश्रमके सिद्धान्तोको माननेवाले हिन्दूका ब्राह्मण और क्षत्रियोसे उनका स्वाभाविक जाति-धर्म छुडाकर वैश्य-धर्म अगीकार करानेके लिए इतना आग्रह करना और इस प्रकार उनके पतनमें सहायक बनना कहाँतक ठीक है? क्या आज भी क्षत्रिय वैश्य-धर्मको स्वीकार किये विना गरीबोकी रक्षा और सेवा नहीं कर सकते?

भारतवर्षके महापुरुषोने तो हर व्यक्तिको स्वभावके अनुसार स्वधर्मका ही उपदेश हमेशा किया है। आप ही पहले-पहल इन तमाम धर्मोको ताक पर रखकर सारे राष्ट्रको वैश्य-वत्ति अगीकार करनेका उपदेश दे रहे हैं। वैश्य-धर्मका उद्धार आप शौकसे कीजिए, पर दया करके ब्राह्मणो और क्षत्रियोको पीछे न घसीटिये। आप अपनी जातिको शौकसे आध्यात्मिक बनाइए, परन्तु दूसरी जातिवालोको अपने व्यक्तित्वके जादूसे मुग्ध करके जुलाहे और धुनिये बनाकर उन्हे भौतिकतावादी क्यो बनाये डाल रहे हैं? मेरी रायमें तो आपके आश्रमके विनोबा और बालकोबा[1] आपके बनाये आध्यात्मिक जुलाहोकी अपेक्षा यदि शुद्ध ब्राह्मण रहे होते और उन्होने अपनी मेधाका पूर्ण विकास किया होता तो उनके द्वारा राष्ट्रकी कहीं अधिक सेवा होती।

यह पत्र मैंने पूरा नही दिया है -- उसका सार-भाग जरूर दे दिया है। जो हिस्सा नही दिया गया है वह पूर्वोक्त अशका भाष्य-मात्र है। पत्र-लेखिकाका जन्म हिन्दू-कुलमे हुआ है और वे उसका दावा भी करती हैं। मेरा भी यही दावा है। चरखेको मैंने भिन्न-भिन्न धार्मिक मतोसे भी ऊँचा माना है। इसलिए मेरा यह खयाल था कि उसके बारेमे सुसस्कृत मित्रोको गलतफहमी नही होगी। पर ऐसा नही हुआ है। लेखिका कहती हैं कि मैं अकेली ही चरखेके खिलाफ नही हूँ। इसलिए मेरे लिए उचित है कि धीरजके साथ मैं उनकी दलीलोपर विचार करूँ। १९०४ से मैंने पत्र-सम्पादन शुरु किया है। तबसे अबतकके अपने अनुभवसे मैंने यह देखा है कि सम्पादकोके पास आनेवाली अधिकाश टीका-टिप्पणियोका आधार अपने प्रतिपक्षीके वक्तव्यको पूरी तौरपर समझ न पाना ही होता है। प्रस्तुत विषयमे यदि लेखिका इस एक बातको अपने ध्यानमे रखती कि चरखेका पैगाम मैंने केवल हिन्दुओको नही दिया है, बल्कि बिना किसी अपवादके तमाम भारतवासियोको दिया है -- फिर वे चाहे स्त्री हो या पुरुष और चाहे मुसलमान हो, पारसी हो, ईसाई हो, यहूदी हो, सिख हो या और कोई हो -- वे सिर्फ अपनेको हिन्दुस्तानी मानते हो -- तो वे इस तरह न लिखती। उस अवस्थामे वे इस अनुमानपर पहुँचती कि मैंने भारतके लोगोके सामने एक ऐसी चीज पेश की है कि जो उसके विविध धर्मोके विरुद्ध तो पडती ही नही है बल्कि जहाँतक उसका अमल किया गया है वहाँतक उससे उनके धर्मका और

1. विनोबाके अनुज।

हिन्दू धर्मवालोके तो वर्ण या जातिका — तेज और गौरव ही बढा है। इसलिए मेरा दावा है कि मेरा विधान वर्ण-सकरता फैलानेवाला नही, बल्कि वर्ण-शोधन करनेवाला है। मै किसीसे यह नही कहता कि आप अपने पुश्तैनी धर्म-कर्मको छोड दीजिए, मै हर मजहबवालोसे यह जरूर कहता हूँ कि अपने स्वाभाविक कर्मके साथ-साथ चरखेको भी शामिल कर लीजिए। काठियावाडके राजपूत इस बातको जानते थे। उन्होने मुझसे पूछा कि क्या आप यह चाहते है कि हम अपनी तलवारे छोड दे? मैने कहा, 'नही, मै यह नही चाहता। जबतक आप लोग तलवारके कायल है तबतक मै यही चाहता हूँ कि आप अपने पास ऐसी भरोसे लायक तलवारे रखे जो कभी दगा न दे।' मैने उनसे यह भी कहा कि मेरे तई आदर्श राजपूत तो वह है जो तलवारके बिना ही अपनी रक्षा करे और जो बिना दूसरेपर प्रहार किये अपनी जगहपर खडे-खडे प्राण त्याग दे। तलवार तो हमसे कोई छीन सकता है पर बिना वार किये प्राण-विसर्जन करनेकी वीरता हमसे कोई नही छीन सकता। पर यह तो दूसरी ही बात हुई। मेरे प्रयोजनकी पूर्तिके लिए तो इतना ही दिखलाना काफी है कि राजपूतोको निर्बलोकी रक्षा करनेके अपने कर्त्तव्यको छोडनेकी जरूरत मैने नही बताई और न मै यही चाहता हूँ कि ब्राह्मण लोग अपने अध्यापनकर्मको त्याग दे। मैने तो सिर्फ उनसे इतना ही कहा है कि यदि वे त्यागमूलक सूत्र-विद्याको अपनायेगे तो अधिक योग्य अध्यापक बन सकेगे। विनोबा और बालकोबाने सूतकार, जुलाहा और भगी बनकर, अपनेको योग्यतर ब्राह्मण बना लिया है। उनका ज्ञान अब अधिक परिपक्व हो गया है। ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मको जानता हो। मेरे ये दोनो साथी आज ईश्वरके नजदीक पहुँच गये है, क्योकि वे भारतके लाखो क्षुधा-पीडित लोगोकी हालतसे दुःखी होते है और उन्होने चरखेके द्वारा उनके साथ अपने आपको एकात्म कर दिया है। ईश्वरीय ज्ञान पुस्तकोसे नही मिल सकता। उसे तो हम खुद अपने अन्दर ही अनुभव कर सकते है। पुस्तके बहुत हुआ तो एक हदतक सहायता दे सकती है — अकसर तो वे बाधक ही होती है। एक विद्वान ब्राह्मणको एक ईश्वर-परायण कसाईसे ब्रह्मज्ञान सीखना पडा था।

अच्छा तो यह वर्णाश्रम क्या चीज है? ये ऐसे विभाग नही है जिनका एक-दूसरेसे कुछ भी ताल्लुक न हो। मेरी रायमे तो यह एक वैज्ञानिक तथ्यकी स्वीकृति ही है — फिर चाहे हम उसे जानते हो या न जानते हो। ब्राह्मणका कर्म एकमात्र अध्यापन नही, वह उसका प्रधान कर्म है। पर जो ब्राह्मण शरीर-यज्ञ (शारीरिक श्रम) से इनकार करता है, उसे लोग मूढ कहेगे। हमारे प्राचीन अरण्यवासी ऋषि लकडी काटते थे, पशु चराते थे और युद्ध भी करते थे। पर उनके जीवनका प्रधान कार्य था — सत्यकी शोध। इसी प्रकार विद्याविहीन राजपूत किसी कामका नही माना जाता था, फिर शस्त्र-विद्यामें चाहे वह कितना ही निपुण क्यो न हो। और वैश्य अपने आत्मविकासके लिए आवश्यक अध्यात्म ज्ञानके बिना सचमुच उस राक्षसके समान होगा जो समाजके मर्म-स्थलको चूसता रहता है — जैसे कि आजके कई वैश्य बन चुके है, फिर भले वे पूर्वके हो या पश्चिमके। 'गीता' के अनुसार ऐसे लोग सिर्फ अपने ही लिए जीनेवाले पापात्मा होते है। चरखे दाखिल करनेका उद्देश्य

ही हरएकको अपने कर्त्तव्यके प्रति जाग्रत करना है। वह हरएकको अपना धर्म या कर्त्तव्य अच्छी तरह पालन करनेकी सामर्थ्य देता है। जहाज जब शान्त समुद्रमे चल रहा हो तब हरएक कर्मचारी यथोचित ढगसे अपना-अपना काम करनेमे लगा रहता है, पर जब जहाज एक घोर तूफानमे पड जाता है और डूबने लगता है तब हर शख्सको लोगोके प्राण बचानेमे सहायता देनी पडती है—क्योकि उस समय वही सबसे आवश्यक कार्य हो जाता है।

हमे एक बात और याद रखनी चाहिए। सारे ससारके साथ भारत भी आज जगद्व्यापी व्यापार-रूपी काल-सर्पकी लपेटमे जकड गया है। सिपाहियोके बानेमे एक बनिया जाति उसपर शासन करनेका अधिकार जता रही है। उसकी जकडसे उसे छुडानेके लिए हिन्दुस्तानके तमाम ब्राह्मणोको अपनी सारी विद्या-बुद्धि और साधन-सामग्री लगा देनी पडेगी। इसलिए उसके पण्डितो और सैनिकोको अपनी तमाम विद्या और शस्त्र-कौशलको व्यापारिक आवश्यकताओकी पूर्तिमे खर्च करना होगा। इसलिए उन्हे चरखा कातना सीखकर रोज उसे चलाना ही होगा, तभी वे सचाईके साथ अपने धर्मका पालन कर सकेगे।

मुझे उन लोगोके लिए भी, जो नीति और इज्जतके साथ अपनी जीविका चलाना चाहते है, हाथ-बुनाईकी सिफारिश करनेमे कुछ सकोच नही होता। उन ब्राह्मणो, क्षत्रियो तथा दूसरे लोगोको जो आजकल अपने वश-परम्परागत कर्मोको छोडकर धन कमानेके पीछे पागल हो रहे है, मै जुलाहेका ईमानदाराना और (उनके लिए) प्रामाणिक काम सुझाता हूँ और उन्हे दावत देता हूँ कि आइए, फिरसे अपने-अपने धर्म-कर्मको अपनाइए और करघेसे जो-कुछ आमदनी हो उसीपर सन्तोष कीजिए। जिस प्रकार खाना, पीना, सोना आदि कर्म सब जातियो और मजहबोके लिए सामान्य है, उसी तरह जबतक यह सकरता, स्वार्थमय लोभ और उसके फलस्वरूप कगाली कायम है, तबतक कताई भी बिना अपवाद हरएकके लिए सामान्य कर्म होनी चाहिए। इसी कारण मेरी यह प्रणाली वर्णसकर बनानेकी अर्थात् अधिक गोलमाल पैदा करनेका नही, बल्कि वर्णाश्रमकी स्थापना करके उसे विशुद्ध और अधिक सुरक्षित बनानेकी है।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, १७-७-१९२४

२१०. खद्दर क्या कर सकता है?

आन्ध्र जिलेसे एक पत्रलेखक लिखते है [1]

> **मैने १९२१ में मद्रासके प्रेसिडेंसी कालेजसे पढना छोडा था। मेरे चाचा-ने मई १९२१ में मुझे खद्दरका धन्धा चलानेके लिए बीस चरखे बनाने लायक लकड़ी, कुछ रुई और बीस रुपये दिये। एक बढईकी सहायतासे मैने उस लकडीसे चरखे बनवाये और उनमें से शायद चार पंचम वर्णके लोगोको दिये। मैने उन पॉच चरखोसे काम शुरू किया था; और अब मेरे निरीक्षणमें लगभग चार सौ चरखे चल रहे है। . . . खद्दरके धन्धेमे पिछले तीन वर्ष तक संघर्ष करनेके बाद मुझे श्री पोनियाके साथ -- जो कुर्नूल जिलेके नागालापुरम् गॉवमे यही धन्धा कर रहे है -- इसकी एक दूसरी योजना बनानेकी आवश्यकता महसूस हुई, जिससे कतैये और बुनकर हमारे-जैसे सहायको (खद्दर-कार्यकर्त्ताओ)के न मिलनेपर नुकसान न उठायें। . . . श्री पोनिया, नागालापुरम्में और मै यहॉ दो महीनेसे इस तरीकेको अमलमे लानेका प्रयत्न कर रहे है और हम लगभग सफल भी हो गये है। इससे लोगोको और हमें बड़ी राहत मिली है।**

लेखकने अपने रोचक कार्यका और भी विवरण दिया है। मुझे उसमे जानेकी आवश्यकता नही है। किन्तु उस विवरणमे यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त सामग्री है कि खद्दर राष्ट्रके आर्थिक जीवनमे धीरे-धीरे चुपचाप कैसी क्रान्ति ला रहा है।

हम यहॉ बीजापुर जिलेके एक विवरणमे से कुछ उद्धरण देते है।[2]

ये उदाहरण पैसे लेकर काम करनेवाले लोगोके है। जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावके अनुसार कांग्रेसके चुने हुए प्रतिनिधि और अन्य लोग कताईको राष्ट्रीय कर्त्तव्यका अग समझकर कातने लगेगे, तब शहरोमे भी उदासीनता नही रहेगी। तब शहर भी जैसे होने चाहिए -- ग्राम्य जीवनका ही विस्तार बन जायेगे और ऐसे नही रहेगे, जैसे आज है। आज तो वे हमारे जीवनसे बिलकुल ही अलग विजातीय विस्तार-जैसे लगते है। वे ग्रामवासियोके स्वस्थ जीवनको चूसकर उसे मटियामेट किये जा रहे है।

[अग्रेजीसे]

यग इंडिया, १७-७-१९२४

१. अशत उद्धृत।

२. नही दिये जा रहे है। विवरणमें बीजापुर जिलेके कई गावोमें चरखा कताई और बुनाईके कार्यका तथा उसके जरिये कई ग्रामनिवासी स्त्री-पुरुषो द्वारा अपनी आजीविका कमानेका विस्तृत उल्लेख है।

२११. मिलोंकी हिमायत

एक महाशय लिखते हैं।

आपकी रायमें स्वराज्य हासिल करनेका सबसे बढ़िया साधन चरखा है। आपके उच्च आदर्श और स्वार्थत्यागसे इनकार नहीं किया जा सकता। पर यह समझमें नहीं आता कि आप यह क्यों नहीं सोचते कि खादीका घर-घरमें प्रचार करके आप अनेक मिलवालोंको और उनसे भी बढ़कर उन व्यक्तियोंको जिनके मिलोंमें शेयर हैं, बड़े घाटेमें और घोर-संकटमें डाल देंगे? मिलवालोंने मिलोंमें लाखों रुपया लगाया है और शेयर खरीदनेवालोंने — जिनमेंसे कितनोंको ही रोटीके लाले पड़े हैं — मिलोंकी समृद्धि देखकर अपनी सारी जमा-पूंजी शेयरोंमें इसलिए डाल दी है कि उनसे प्राप्त होनेवाले खासे मुनाफेसे निर्वाहका एक सुविधाजनक साधन मिल जायेगा। इसका फल यह होगा कि उन निचली श्रेणीके लोगोंकी हालत सुधारनेकी आशामें, जिन्हें अपनी इज्जत-आबरूका कुछ भी खयाल नहीं होता और जो किसी भी उपायसे अपना पेट पाल सकते हैं, आप उतने ही बल्कि उनसे भी अधिक मध्यम श्रेणीके लोगोंको बरबाद कर देंगे।

२. आप तो ऐसे महात्मा हैं जिनका सारी मानवताके प्रति अत्यन्त ही निःस्वार्थपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण भाव है। इसलिए आपको तो सभीके साथ ठीक न्याय ही करना चाहिए और इसलिए अपने पूरे बुद्धिबलका प्रयोग कीजिए और कोई ऐसा मध्यम मार्ग निकालिए जिससे एकको नुकसान पहुँचाकर दूसरेका लाभ न हो — चरखेको भी एक हद तक ही बढ़ावा दीजिए, पर दूसरी ओर मिलवालों और शेयर रखनेवालोंकी बहुसंख्याको भी मदद देनी चाहिए।

३. आप विदेशी कपड़ेका बहिष्कार बेशक कीजिए, परन्तु खादी और मिलका कपड़ा दोनोंमें से किसीका इस्तेमाल करनेकी छूट दे दीजिए। इससे आप अनेक उच्च और मध्यम वर्गके लोगोंके सहायक बनेंगे।

यह पत्र सोचनीय है। मनमें यह उठने लगता है कि यदि लेखकके तमाम अन्देशे सच हो जायें तो क्या ही अच्छा हो। क्योंकि उसी अवस्थामें ये महाशय समझ सकेंगे कि मिलों और शेयर रखनेवालोंकी बरबादीकी घड़ी ही खुद उनके तथा भारतवर्षकी मुक्तिकी घड़ी है। ऐसा होनेपर वे यह भी देखेंगे कि हिन्दुस्तानकी धमनियोंमें नया खून बह रहा है और मध्यमवर्ग आज भूखों मरनेवाले किसानोंकी कीमतपर जीनेके बजाय सुखी और समृद्ध किसानोंके साथ सहयोग करते हुए अपना निर्वाह कर रहा है। ये किसान लोग खुशी-खुशी उन चीजोंको, जिन्हें वे पैदा नहीं, कर सकते पर जिनकी उन्हें जरूरत तो रहती है, अपनी पैदा की हुई चीजके बदलेमें ले लेंगे। थोड़ा विचार करनेसे ही पूर्वोक्त पत्र-लेखक समझ जायेंगे कि चरखेका

प्रचार इस हदतक करनेके लिए, जिससे मिले उखड जायें, खुद पत्रलेखक तथा दूसरे हिस्सेदारो और मिलोके डायरेक्टरोको जनताके साथ पूरा सहयोग करना होगा। पत्र-लेखकको यह बात जानकर तसल्ली हो सकती है कि मिलके कपडेपर असर तो तब पडेगा जब खादी लगभग ६० करोड रुपयेके विदेशी कपडेकी जगह ले ले। परन्तु मैने जिन कारणोका उल्लेख इस पत्रमे किया है उनके अनुसार हमे मिलका कपडा छोडकर केवल खादीकी ही बात सोचनी चाहिए। हमारी मिलोको मेरे तथा दूसरे किसीके आश्रयकी जरूरत नही है। उनके पास खुद अपने आढतिये है और अपने मालके विज्ञापनकी अपनी निराली तरकीबे है। इसलिए जो लोग काग्रेसमे हो उन्हे खादीके बदले मिलका कपडा पहननेकी छूट देना मानो खादी-उद्योगका नाश करना है। इससे पहले कि खादीका असर कपडेके बाजारपर हो, उसे जितना रक्षण दिया जा सके, दिया जाना चाहिए।

यह तो हुआ पूर्वोक्त पत्रलेखक तथा उनके सदृश विचार रखनेवाले लोगोके चित्तकी शान्तिके लिए। परन्तु यहाँ यह कह देना चाहिए कि यदि यह पत्र मिलो और मध्यम वर्गपर आनेवाली विपदाके अज्ञानपूर्ण भयसे न लिखा गया होता तो मै इसे हृदयहीनताका नमूना कहता। "जिन्हे अपनी इज्जत-आबरूका कुछ भी खयाल नही होता और जो किसी भी उपायसे अपना पेट पाल सकते है"—इस प्रकार निचली श्रेणीके लोगोका परिचय देनेमे पत्रलेखकका मन्शा क्या है? क्या उन्हे यकीन है कि निचले दर्जेके लोगोको अपनी इज्जत-आबरूका कुछ विचार नही होता? क्या उनके हृदय नही होता और उसमे भाव भी नही होते? क्या कडवे और तीखे शब्द उन्हे बुरे नही मालूम होते? उनके निचले होनेका कारण सिवा उनकी गरीबीके और क्या है? और क्या उनकी गरीबीके लिए मध्यमवर्ग जिम्मेदार नही है? मै पत्र-लेखकसे यह भी कहना चाहता हूँ कि "निचली श्रेणीके लोग" किसी भी उपायसे अपना पेट नही भर पाते, यही नही बल्कि उनका एक बडा भाग अध-पेट रहकर जिन्दगी काट रहा है। यदि मध्यमवर्ग निचले वर्गके लिए स्वेच्छापूर्वक नुकसान बरदाश्त करे तो कहना होगा कि उसने अबतक शोषणमे जो सहयोग दिया, उसका देरसे ही सही थोडा-सा बदला चुकाया है। निचले कहे जानेवाले वर्गसे ऊँचे होनेका यह अभिमान और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाली उनके कष्टोके प्रति निष्ठुरता ही स्वराज्यके रास्तेमे विघ्नरूप है और जीवनदायी चरखेकी प्रगतिको रोकती है। मै पत्रलेखकसे प्रार्थना करता हूँ कि वे सारी स्थितिपर सर्वसाधारणकी दशाका ध्यान रखकर विचार करे और चरखेको अपनाकर अपनेसे कम सुखी देशभाइयोके साथ अपनेको एकात्म करे।

अन्तमे पत्रलेखकको यह बात भी याद रखनी चाहिए कि यदि समूची मानवताके प्रति अपनी मानवीयताके आधारपर मुझसे निचले वर्गकी बलि देकर मिलोके प्रति दयाभाव रखनेकी बात कही जाये तो उसी कारणसे विदेशी मिलोके प्रति भी दया-भाव रखनेका आग्रह किया जा सकता है, जैसा कि कितने ही मित्रोने किया भी है। परन्तु यदि यह बात सच हो कि विदेशी मिलोने हमारी साधारण जनताकी सुख-समृद्धिका नाश किया है—और यह निस्सन्देह सच है—तो विदेशी मिलवालोका नुकसान होते हुए भी मानव-दयाकी खातिर सर्वसाधारणको फिरसे चरखा ग्रहण

करनेकी शिक्षा दिये बिना चारा नही। इसी प्रकार यदि आवश्यक हो तो देशी मिलोंवा भी सर्वसाधारणके हितमें, जिसे गरीब बनाकर वे मालामाल हो रहे है घाटा उठानेके लिए तैयार हो जाना लाजिमी है। हमारे देहातमें जाकर कोई साहसी नानबाई चूल्हे बन्द करानेके लिए नानकी सस्ती दूकाने खोले तो मुझे आशा है कि सारा समाज उसका विरोध करेगा। इस विरोधका जो कारण होगा, मेरे मिल विरोधका भी वही कारण है। लेकिन उसी सूरतमे, जब वे सर्वसाधारणके हितमे बाधक होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

२१२. अधिकार-वंचित

श्री जमालुद्दीन मन्सूर लिखते हैं

> १९२३ के नवम्बरमें किये गये नगरपालिकाके पिछले चुनावमें, मेरवाडाके अतिरिक्त सहायक आयुक्तने मेरा नाम ब्यावरकी मतदाता-सूचीसे इस आधार-पर निकाल दिया था कि मुझे दण्ड प्रक्रिया संहिताके खण्ड १०८ के अन्तर्गत छ महीनेकी सजा हो चुकी है। . मैंने १० अक्तूबरको आयुक्तके यहाँ अपील कर दी . इसपर कोई ध्यान नहीं दिया गया और चुनाव कर लिया गया। तबसे मैं आयुक्तके कार्यालयसे उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा था और आज १० जुलाईको मुझे निम्न सूचना प्राप्त हुई है [1]

यह ऐसा ही है, जैसे फाँसी दे देनेके बाद क्षमा-दानका आदेश भेजना। इस समय कदाचित् मतदानका अधिकार बहुत महत्त्वका न हो। किन्तु जब लोग अपने अधिकारोंके बारेमें जागरूक हो जाते हैं, तब महत्त्वपूर्ण अवसरोपर एक मत भी बाजी पलट देनेके लिए काफी होता है। श्री जमालुद्दीनको एक ऐसे मामलेमे, जिसमे किसी लम्बी जाँचकी आवश्यकता नही थी और आयुक्तको चुनाव जल्दी ही होनेकी बात अवश्य ही मालूम होगी, इस असाधारण विलम्बके लिए स्पष्टीकरण माँगनेका अधिकार है। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, यह घटना असहयोग करनेके लिए एक और कारण प्रस्तुत करती है। मैं अधिकारियोंके ऐसे सभी कामोको बहुत सन्देहकी दृष्टिसे देखता हूँ। उनमे लोगोके मताधिकार और अन्य अधिकारोके प्रति तिरस्कारका भाव व्यक्त होता है। यदि लोगोके पास इस भ्रष्टाचारके विरुद्ध तत्काल कोई उपाय नही है तो मैं इसे इस बातका कोई कारण नही मान सकता कि जनमतकी नितान्त अवज्ञा करके भारतीय प्रशासन चलानेमे अधिकारियोसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे कोई सहयोग किया जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-७-१९२४

१ यह यहाँ नहीं दी जा रही है। इसमें प्रार्थीका नाम मतदाता-सूचीमें शामिल कर लेनेकी मंजूरी दी गई थी।

२१३. पत्र : नानाभाई इच्छाराम मशरूवालाको

साबरमती
आषाढ़ वदी ३ [१९ जुलाई, १९२४][1]

भाई नानाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। अनुवाद देख लिया है। तुम्हारे दुःखी होनेका कोई भी कारण नही है। डरनेका समय वही होता है जब ससार हमे पूजे। जब जगत हमारी निन्दा करता है तब प्रभुके निकट होनेकी सम्भावना होती है। जगत्की स्तुति सुनकर मीराबाई हँसती थी। तुम त्यागपत्र अवश्य दो। सेहतको खराब करके वहाँ रहना तनिक भी वाछनीय नही है। लेकिन फिर भी सावधानीके तौरपर जमनालालजीसे[2] सलाह ले लेना। धर्मकी कसौटी गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख और अन्य द्वन्द्वोको सहन करनेमे ही है।

मोहनदासके आशीर्वाद

श्री नानाभाई इच्छाराम
अकोला
बरार

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४३१६) से।
सौजन्य कनुभाई मशरूवाला

२१४. विदग्ध अथवा अर्धदग्ध

गणपत नामका एक विद्यार्थी अपने परिजनोको निम्न पत्र[3] लिखकर ७ जुलाई-को अपने घरसे भाग गया है

इस पत्रमे जितना देशप्रेम है उतना ही अज्ञान है। कहाँ डायरशाही और कहाँ एक अंग्रेजका किसी स्त्रीको गाली देना। ऐसे दृश्य देखना शहरोमे घूमने-फिरनेवालोकी किस्मतमे बदा ही है। केवल गोरे ही भारतीय स्त्रियोको गालियाँ नही देते, भारतीय भी देते है और वे तो उन्हे मार तक देते है। उद्धत भारतीय स्टेशन मास्टरो और सिपाहियोको बहनोपर जुल्म करते किसने नही देखा? इस दुष्टताका निवारण कही घरसे भाग जानेसे हो सकता है?

१. डाकखानेकी मुहरसे।
२. जमनालाल बजाज।
३. यहाँ नही दिया जा रहा है।

जब गोरेने स्त्रीको गालियाँ दी तब गणपत देखता कैसे रहा? यदि उसे इससे दु:ख हुआ था तो उसके पास दो-तीन रास्ते थे। वह अहिंसाका प्रयोग करके नम्रभावसे उस गोरेको समझाता और यदि ऐसा करनेपर उसको मार भी खानी पडती तो खा लेता और इस प्रकार उस बहनको गालियाँ खानेसे बचाता, अथवा यदि वह 'शठम् प्रति शाठ्यम्'के न्यायको मानता था तो वह उस झगडेको अपना बनाकर उस गोरेसे भिड सकता था। यदि वह सहयोगी है तो उसके लिए तीसरा रास्ता यह था कि वह उस स्त्रीको थानेमे ले जाता और वहाँ उसकी शिकायत दर्ज कराता और यदि उसे इससे न्याय न मिलता तो वह स्वय असहयोगी बन जाता। हम इसपर चाहे जिस तरह विचार करे, उसे घरसे भागनेका मार्ग तो अख्तियार ही नही करना था। यह उपाय [मुक्तिदाता होनेके बजाय] बन्धनकारी सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थी गणपतने लिखा है, 'अब मै जीवनका मर्म समझ गया हूँ'। वह क्या समझ गया है सो तो भगवान जाने। वह घरसे भागकर क्या साधना करेगा? जितना कुछ वह करना चाहता था, घर रहते हुए कर सकता था। कायरतापूर्वक घर-से भागकर ज्ञानोपलब्धि नही होती। साहस भी नही आता। सब लोग बुद्ध नही हो सकते। सरस्वतीचन्द्र[1] तो गोवर्धनभाईकी[2] कल्पनामे बसता था। विद्यार्थी गणपत तो सरस्वतीचन्द्रसे भी आगे बढनेकी आशा रखता है। गोवर्धनभाईने सरस्वतीचन्द्रको तो कोल्हूके बैलकी भाँति एक ही जगह घुमाया-फिराया है। वह 'नवीन' तो हुआ ही नही। वह नवीन अनुभव प्राप्त करनेके बाद भी कुमुदको[3] छोड कुसुममे[4] रम गया तथा अन्तमे उससे अपनी पूजा करवाई। 'सरस्वतीचन्द्र'से तो शिक्षा यह लेनी है कि हम कर्त्तव्य पथसे कदापि विचलित न हो। जिस दु:खका निवारण नही हो सकता हम उसे साक्षी बनकर सहन करे और उसके निवारणके उपायोकी खोज करे। दु:खोके निवारणके उपाय तो दु:खोको सहनेसे ही मिलेगे, दु:खोसे दूर भागनेसे नही।

यदि विद्यार्थी गणपत अबतक जगलमे न चला गया हो और छिपा रहकर भी 'नवजीवन' पढता हो और यदि उसे यह अक दिखाई दे जाये तो वह मेरे-जैसे अनुभवीकी विनतीपर ध्यान देकर वापिस आ जाये। वह अपना अध्ययन जारी रखे, स्वास्थ्य अच्छा न हो तो कोई बात नही — ब्रह्मचारी अवश्य रहे, ईश्वर भक्त जरूर बने, जीवनका रहस्य सेवाभाव है यह सीखे और यह भी जान ले कि सेवा घर छोडकर भागनेसे नही होती।

अरण्यवासका मार्ग सही मार्ग नही है, मै यह नही कहना चाहता। वहाँ जाकर तो बहुत-कुछ सीखा जाता है, लेकिन इसके लिए मनुष्यको पहले अधिकारी बनना चाहिए। हम सब बुद्ध बननेका साहस न करे। हम तो सुदामा बने। अर्जुनको युद्ध-भूमि छोडकर भागनेसे रोकनेवाले कृष्ण मूर्ख नही थे। रामने पिताकी आज्ञाका पालन किया, परन्तु भरतको अयोध्यामे बाँध दिया तथा स्वय जगलमे जाकर मगल

१ सरस्वतीचन्द्र नामक गुजराती उपन्यासका नायक।
२ गोवर्धन त्रिपाठी, उक्त उपन्यासके लेखक।
३ व ४ उक्त उपन्यासके स्त्री पात्र।

किया और वहाँ तपश्चर्या करके आदर्श पुरुष बने'। सौभाग्यसे, भागनेवाले विद्यार्थियोकी सख्या ज्यादा नही है इसलिए मुझे विद्यार्थी गणपतकी चर्चाको विस्तार देनेकी जरूरत नही है। लेकिन घरमे रहनेवाले विद्यार्थी गणपतसे बहुत-कुछ बोध ले सकते है। हमे दु खोको देखकर जड अथवा उदासीन नही होना चाहिए। हम गणपतकी-सी भावनाका ही विकास करना चाहते है। हमे अपनी विद्या कौडियोके भाव नही बेचनी है। हम देशके निमित्त ज्ञान अर्जन करे और उसके द्वारा सेवा करे। हम गणपत-जैसी भावनाका विकास करे और उसमे विवेक-बुद्धिका उचित समन्वय करके सन्तुलन रखे। हम सन्तुलन रखना सीखकर धीरज रखना सीखे। हम स्थितिका अध्ययन करके और उपचार ढूँढकर उसे दृढतासे आजमाएँ। हम बहुत सोच-विचारकर निश्चय करे, लेकिन एक बार निश्चय कर लेनेपर उसका पालन वज्र-जैसी दृढतासे करे। गणपत तिरस्कारका पात्र तो अवश्य ही नही है। वह दयाका पात्र भी नही है। प्रत्युत वह प्रशसाका पात्र है। उसने केवल उतावलीमे कदम उठाया है। हमे ऐसा कदम नही उठाना चाहिए, बल्कि हम जहाँ है वहाँ रहते हुए ही हमे अरण्यकी-सी स्थिति उत्पन्न कर लेनी चाहिए। शान्ति और वैराग्य — आदि गुण मानसिक स्थितियाँ है। यह सच है कि कुछ लोगोको भटकनेसे शान्ति मिलती है। लेकिन बहुतसे लोगोको तो वह जगतके जजालमे रहते हुए अनुभवसे ही मिल जाती है। हमारा मार्ग तो बहुजन मार्ग है और यही राजमार्ग भी है।

सहजभावसे तुम यो रहो,
जैसे-तैसे हरिको लहो।[1]

यह अखा भगत लिख गये है, वे सच्चे ज्ञानी थे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१५. प्रश्नोत्तरी

असहयोगके अध्येता एक मित्रने कुछ सवाल पूछे है। बहुतसे लोगोके लिए वे उपयोगी हो सकते है, इसलिए उनको जवाब सहित यहाँ देता हूँ

"सिस्टम" का अर्थ

प्र० – हमारा विरोध व्यक्तियोसे नहीं 'सिस्टम' से है। यहाँ सिस्टमका क्या अर्थ है? समुदाय, पद्धति या संस्कृति?

समुदाय हरगिज नही। पद्धति जरूर है और जहाँतक सस्कृति उसके लिए जिम्मेदार हो वहाँतक सस्कृति भी।

१. सुतर आवे तेम तू रहे।
जेम तेम करीने हरिने ल्हे।

'समरथको नहिं दोष गुसाईं' नामक लेखमें[1] आपने लिखा है कि सर शंकरन् नायरके साथ जो अन्याय हुआ है उससे इस राजतन्त्रकी बुराई अधिक स्पष्ट हो गई है। आप दूसरी ओर अ० भा० कां० क० के सदस्योंको लिखते[2] हैं कि "यदि हम अदालतों और पाठशालाओंकी तरफ खिंचाव होते हुए भी उनका विरोध करते हैं तो फिर हमारा विरोध पद्धतिसे नहीं, व्यक्तियोंसे हो जाता है ... मेरा स्वराज्य तो अपनी संस्कृतिके प्राणको अक्षुण्ण रखनेमें है।"

इन दोनों अंशोंपर विचार करें तो जान पड़ता है कि पहले अंशमें इशारा 'गोरोंके द्वारा चलाई जानेवाली शासन-पद्धति'की ओर है, किन्तु दूसरेमें संस्कृति-पर कटाक्ष है।

नहीं, ऐसा हरगिज नहीं है। यदि सर शंकरन्का न्यायाधीश कोई काला आदमी होता तो भी ऐसा ही अन्याय करता। वह न्यायाधीश वर्तमान ब्रिटिश राजनीतिका पुर्जा होनेके कारण दूसरा निर्णय नहीं दे सकता। हिन्दुस्तानमें रहनेवाले हम लोग जानते हैं कि वर्तमान राजतन्त्रमें काम करनेवाले हिन्दुस्तानी न्यायाधीशोंसे नाजुक मौकोंपर न्यायकी आशा नहीं रखी जा सकती। यह उनका नहीं, प्रणालीका दोष है। मामूली आदमी अपने वातावरणसे ऊँचा नहीं उठ सकता, जो ऊँचा उठ सकता है वह ऐसी किसी त्याज्य पद्धतिमें एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। असहयोग हमें इसी तत्त्वकी शिक्षा देता है। मैंने तो कितनी ही बार कहा है कि यदि वर्तमान प्रणाली कायम रहे और उसमें तमाम अधिकारी हिन्दुस्तानी हों तो भी वह मेरे लिए त्याज्य है।

मैं समझता हूँ कि हमने असहयोगकी योजना अपनी संस्कृतिकी रक्षाके लिए नहीं बनाई थी, बल्कि अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए बनाई थी — फिर संस्कृतिकी रक्षा उसका अप्रत्यक्ष, किन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम भले ही हो।

हमारी प्रतिष्ठापर जो हमला होता था वह प्रत्यक्ष था। इसलिए उसकी बात करना अधिक प्रभावकारी था। परन्तु हमारी प्रतिष्ठा हमारी संस्कृतिमें छिपी हुई थी। अब जब कि प्रतिष्ठाकी रक्षा न होनेपर भी सरकारी अदालतों और पाठशालाओं आदि-का मोह बढ़नेका भय फिर दिखाई देता है, तब हम उसके द्वारा संस्कृतिपर जो प्रच्छन्न आक्रमण हो रहा है उसे स्पष्ट रूपसे सामने रखते हैं। इस तरहकी दलीलें सोच-सोचकर नहीं दी जातीं। वे परिस्थितिसे उत्पन्न होती हैं। अगर हम गहराईसे विचार करें तो प्रतिष्ठा, संस्कृति, पद्धति आदि शब्दोंका परस्पर सम्बन्ध दिखाई दे सकता है और समझा जा सकता है कि उन सबका मूल एक ही है।

सरकारी अदालतोंमें किसी विघातक तत्त्वके होनेपर मुझे यकीन नहीं हुआ है, फिर भी मैं उनमें अपने पड़ोसीके विरुद्ध अभियोग नहीं ले जाऊँगा, क्योंकि वे उस विदेशी सरकारकी अदालतें हैं जो हमपर जुल्म करती हैं। इसी प्रकार मौजूदा

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १२-६-१९२४।

२. देखिए "खुला पत्र : कांग्रेस कमेटीके सदस्योंके नाम", २६-६-१९२४।

शिक्षा-पद्धतिमें बुराई न देखनेवाले आदमीको भी उसका बहिष्कार करना चाहिए। सरकारी अस्पतालकी दवा कितनी ही अच्छी हो और पुलिसका प्रबन्ध कितना ही सराहनीय हो फिर भी असहयोगियोको उनसे लाभ न उठाना चाहिए।

जिन लोगोने अदालतो और पाठशालाओमे इतना ही दोष देखा है कि वे गैरो-की है, उनके लिए असहयोग कठिन है। इस बुराईकी जड यह नही है कि ये सस्थाएँ पराई है, बल्कि यह है कि ये एक दूषित पद्धतिकी अग है। इस जगह पद्धतिकी व्याख्याकी जरूरत है, क्योकि प्रश्नकर्त्ताने "शिक्षा-पद्धति" शब्दोका प्रयोग किया है। मुझे सरकारकी शिक्षा-पद्धतिमे भी दोष दिखाई देता है। परन्तु मेरा विरोध उसके कारण नही है। मेरा विरोध शासन-पद्धतिसे है — उस पद्धतिसे है जिसमे राज्यकर्त्ताका आर्थिक स्वार्थ प्रधान रहता है और इस कारण जिसमे धर्म या नीतिका स्थान गौण है, जिसमे राज्यकर्त्ता अपने आर्थिक लाभकी रक्षाके लिए डायरशाही-जैसे काण्ड रचनेमे नही हिचकते और कोई भी पाप करते हुए नही डरते। यदि यह पद्धति ऐसी स्वार्थमय न होती तो अग्रेजी राज्यको पराया कहनेका कोई मौका ही न आता। इस दलीलकी सचाईकी कसौटी यह है — फर्ज कीजिए कि यह सरकार पजावके हत्याकाण्डका प्रायश्चित्त कर ले, विदेशी कपडेका आना बन्द कर दे, खादीको प्रोत्साहन दे, अफीम-शराबसे प्राप्त आय समाप्त कर दे, फौजी खर्जमे ७५ फी-सदी कमी कर दे, हिन्दुओ और मुसलमानोमे एकता कराना अपना कर्त्तव्य समझे तथा अन्यान्य बातोमे लोकमतका आदर करे तो उसका विरोध कौन करेगा, और यदि कोई करे तो उसे कौन सुनेगा? फिर हम दूसरी बातोमे दोषयुक्त होनेपर भी वर्तमान अदालतो और पाठशालाओका बहिष्कार नही करेगे। पूर्वोक्त स्वार्थमय राजनीति आधुनिक या पाश्चात्य सस्कृतिका आधार है। परन्तु जो लोग इस प्रकार गहराईमे जाना नही चाहते उनमे उसके प्रति विरोध जाग्रत करनेके लिए इस सस्कृतिसे उत्पन्न सरकारकी डायरशाही-जैसे स्पष्ट परिणाम पर्याप्त है।

आप लिखते है कि सरकारी राजनीतिका उद्देश्य हममें "अग्रेजियत" भरना है। हम जहाँ 'अग्रेज' बने कि हमारे राज्यकर्त्ता तुरन्त खुशीसे राज्यकी बागडोर हमें सौंप देंगे और अपने आढ़तियोके रूपमें हमारा स्वागत करेगे। क्या अग्रेज लोग इतने निस्वार्थ भावसे यहाँ बने हुए है? जिसे आप उनका दोष बताते है उसीको वे पुकार-पुकार कर अपना गुण बताते हैं। यदि हम यूरोपीय चाल-ढाल कुबूल कर ले तो क्या अग्रेज यहाँसे चले जायेंगे? हम अपनी इच्छासे उनके आढतिये कैसे बन सकते है? इंग्लैड और जर्मनीकी सस्कृति एक ही है। फिर भी उनमे झगड़े होते है या नहीं? मै तो कहता हूँ कि संस्कृति एक है, उनमें इसी कारण झगड़े होते है।

इसमे बहुत-सी बाते एक-साथ आ गई है। यदि हम जगली हो जायेगे तो हम खादीवादी नही रह सकेगे। आधुनिक सस्कृति परिणाममे जडवादी और अनात्म-वादी है। हमारे जगली होनेका यह अर्थ है कि हम दुनियाको लूटनेकी पद्धतिको स्वीकार कर ले। फिर हम किसानोकी हालतकी ओरसे लापरवाह हो जायेगे और

[illegible]को अपने जीवनका आधार बना लेंगे। इससे फौजका खर्च और अन्य खर्च तो ऐसे ही रहेंगे। यदि ऐसा होगा तो फिर उन्हे हमसे कोई शिकायत न रहेगी।

जब हमारी जरूरतें बहुत बढ जायेंगी तब हम इग्लैडके सबसे बडे खरीदार बन जायेंगे, और इस प्रकार उनके स्वेच्छापूर्वक खरीदार यानी आढतिया बन जायेंगे। इग्लैड और जर्मनीकी लडाई भी इसी सस्कृतिका किन्तु भिन्न रूपमें उत्पन्न फल है। दोनो देश निर्बल राष्ट्रोसे लाभ उठाना चाहते थे और दोनो ज्यादासे-ज्यादा हिस्सा मागते थे, वे इसी कारण लड पडे। परन्तु उनकी और हमारी लडाईमे भारी भेद है। उनका मुकाबला बराबरवालोका था और उसमें स्व-प्रतिष्ठाका प्रश्न नही था। हमे तो प्रतिक्षण अपनी प्रतिष्ठाका खयाल रखना पडता है। यदि हम यूरोपकी सस्कृतिको ग्रहण कर ले तो फिर जबतक हम अग्रेजोके ग्राहक बने रहेगे, तबतक हमारे और उनके बीच बहुत कालतक लडाई होनेकी सम्भावना न रहेगी। अग्रेज लोग बार-बार यह बात कहते है कि हम अभी अपना कारबार चलाने लायक नही हुए। उनका यह कथन कोरा बहाना ही नही है। कितने ही लोग यह बात मानते है और कहते भी हैं कि जबतक हमारी सस्कृति जुदा रहेगी, हम तबतक यूरोपीय पद्धतिके अनुसार राज्य-सचालन करनेके योग्य न होंगे। दक्षिण आफ्रिका और अन्य देशोको पूरी सत्ता प्राप्त है। इसका क्या कारण है? शोधकोको दिखाई देगा कि वहाके गोरे एक ही सस्कृतिके पुजारी हैं। इससे वे इग्लैडके आढतिये बन गये हैं। इग्लैड अपना माल उन गोरोकी मार्फत बेचता है। इससे उसे वहाँ खुद अपने आदमियोको रखनेकी जरूरत नही होती। यह बात नही है कि उनका खून एक हो। अगर दक्षिण आफ्रिकाके गोरे आज निःस्वार्थ होकर वहाँके हबशियोके हितोको प्रथम स्थान दें तो उनके गोरे होनेपर भी इग्लैड बडी चिन्ता और दुविधामें पड जायेगा। हम यह तो देखते ही हैं कि जब कभी ऐसे परोपकारी अग्रेज सामने आते हैं तो अग्रेजोका समाज उनका बहिष्कार करता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१६. टिप्पणियाँ

भाई इन्दुलालका पत्र

मुझे विश्वास है कि भाई इन्दुलाल याज्ञिकने मेरे नाम जो खुला पत्र लिखा है, वह सभीने पढ लिया होगा। उनके पत्रकी प्रत्येक पक्तिसे देशप्रेम झलकता है। उसमें अविनय तो कही भी नही है। यदि ऐसे सद्भावसे लिखे गये पत्रमे कोई दोष हो भी तो उसे बतानेकी इच्छा नही होती। मेरा मन तो यही कहता है कि इस पत्रका उत्तर देना पाप है। उसका कोई उत्तर न देना क्या अपने-आपमे पूर्ण उत्तर नही है? भाई इन्दुलाल बातकी गहराईमें जानेवाले व्यक्ति है। वे प्रत्येक प्रश्नके अन्तिम छोरको समझ लेना चाहते हैं। वे स्वभावसे सिपाही है, इसलिए साहसी हैं।

वे जैसे सब-कुछ जाननेकी इच्छा रखते है वैसे ही सब-कुछ करनेकी इच्छा भी रखते है। प्रेम-दीवाने होनेके कारण एक क्षणके लिए भी उन्हे कोई काम अपने सामर्थ्यसे बाहर नही जान पडता। क्या प्रेमकी कोई सीमा होती है? प्रेमसे क्या नही किया जा सकता? इसीलिए वे स्वय अपनी मर्यादा ऑकनेके बजाय यह कार्य ईश्वरपर छोड देते है। यह गुण भी है और अवगुण भी। उनके इस पत्रसे मै देख पा रहा हूँ कि उनपर इन दोनोका प्रभाव है।

मै तो उनके इस प्रेमसे सरावोर पत्रका स्वागत ही करता हूँ। मेरे लिए यह पत्र और ऐसे ही अन्य पत्र चौकीदार है। मै उनसे धीरज सीखता हूँ और उनसे मुझे अपनी मर्यादाका भान होता है।

भाई इन्दुलालने जिन त्रुटियोकी ओर सकेत किया है और उन्होने जो दलीले रखी है, उनमे से मैने एकपर भी विचार न किया हो सो बात नही है। मै उनपर विचार करनेके बावजूद जिस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ, उसे मैने विनयपूर्वक लोगोके सम्मुख रख दिया है। मै उसमे उठाई गई अनेक शकाओका समाधान तो इन पृष्ठोमे कर चुका हूँ और समय-समयपर करता भी रहूँगा तथापि मै जिन शकाओका समाधान नही कर सकता उनके सम्वन्धमे केवल इतना ही कहूँगा कि लोग इन शेष प्रश्नोके उत्तर मेरे आचरणमे से ढूँढनेका प्रयत्न करे।

हास्यरस

एक सज्जन लिखते है[1]

धारवाडके सज्जन[2] अपने कपडोका हिसाब देना चाहेगे तो देगे, लेकिन उक्त पत्र-लेखककी समस्याका कुछ समाधान तो मै ही कर दूं। निर्दोष प्रश्नोके उत्तर निर्दोष ही होने चाहिए। इन सज्जनने निर्दोष विनोद किया है, इसलिए मुझे उनके इस विनोदमे शामिल होनेकी इच्छा होती है। उक्त धारवाडी भाईके स्थानपर मै ही इस भाईको कपडे देनेका ठेका लेता हूँ। इसमे हमे केवल थोडा-सा परिवर्तन करना होगा। कोई भी १,००० रुपएके मूल्यके कपडोका ठेका १५ रुपयेमे नही ले सकता। हम धारवाडी भाईसे पूछकर जान सकते है कि वे कितने कपडोसे गुजारा कर सकेगे। अपने कपडोपर वे वर्षभरमे १५ रुपये खर्च करते है। सम्भवत मै तो ३ रुपये भी खर्च नही करता। मेरी लगोटी इससे अधिककी नही आती होगी। तौलिया तो मै जेलमे एक ही व्यवहारमे लाता था। वह मेरे पास एक वर्षसे भी ज्यादा चला था। मुझे नाकके लिए अलग रूमाल रखनेकी आदत है। वह मै लगोटीकी कतरनमे से वना लेता था। वैसे रूमाल तो मेरे पास अब भी बहुत पडे है। लेकिन मै इन सज्जनसे लगोटीसे सन्तोष मान लेनेकी बात नही कहता। लेकिन उनको वास्कट, कोट और भारी धोती जोडेकी जरूरत तो नही है। चद्दर पहननेके कपडोमे नही गिनी जाती, इसलिए उक्त भाईकी गिनतीके मुताबिक ४ रुपयेका कुरता, ३ रुपयेकी

१. पत्र यहाँ नही दिया गया है।

२. इन्होंने जून, १९२४ में गाधीजीको लिखा था मेरे खद्दरके बने कपड़ोंका वार्षिक खर्च १५ रुपये आता है, किन्तु मैं जब विदेशी कपडे पहनता था तब ५० रुपये आता था।

लंगोटी, १ रुपयेका तौलिया और १ रुपयेकी टोपियाँ — यह कुल ९ रुपयेका खर्च हुआ। [illegible] जिन्हें सादगी पूज्यजनकी पसन्द है यदि उन्हें उनका अनुकरण करनेमें शर्म न लगे और वे टोपीके बिना काम चला लें तो वे इसमें एक रुपया और बचा लें। यदि वे इतना सस्ता पहननेके बाद ३८ रुपयोंमें से[2] जो-कुछ मुझे भेज देंगे तो मैं उसका उपयोग उड़ीसाके भूखों अथवा उन-जैसे अन्य अस्थिपंजरोंके लिए करूँगा। कपड़े शरीरको ढकने तथा सर्दी और गर्मीसे बचनेके लिए होते हैं। इस दृष्टिसे विचार करें तो हिन्दुस्तानमें धोती, कुर्ते और टोपीके सिवा किसी और कपड़ेकी जरूरत नहीं है। हमारे यहाँकी आबोहवामें वास्कट और कोट केवल भाररूप हैं। मोतीलालजी धोती, कुर्ता और टोपी पहनकर धारासभामें जानेसे नहीं शर्माते। देशबन्धुकी पोशाकमें भी इससे अधिक कुछ नहीं होता। अलबत्ता धोतीके बजाय पाजामा पहनते हैं, बस इतना ही अन्तर है। इन सज्जनने एक सुझाव दिया है। वह भ्रमपूर्ण है। देशकी खातिर किसीको मैला कपड़ा पहननेकी जरूरत नहीं होती। जो अपनी धोती और कुर्तेको हाथसे ही धोते हैं उन्हें साबुनकी जरूरत भी नहीं पड़ती, पड़ती भी है तो कम पड़ती। मैलापन आलसीपनका लक्षण है। उसका देशभक्तिसे कोई सम्बन्ध नहीं। खादीधारियोंका तो धर्म है कि वे अपने कपड़े दूध-जैसे उजले रखें। हाँ, इतना अवश्य है कि फिर अनावश्यक कपड़ोंके लिए कोई अवकाश नहीं रहता और यदि अधिक कपड़े पहनने ही हों तो उनमें साबुनका अथवा धोबीका खर्च बढ़ेगा ही।

"फातो, फातो, फातो"

एक महाराष्ट्रीय भाई लिखते हैं[3]

मैं इन भाईके उदाहरणको प्रत्येक भाई-बहनके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। जिनमें ऐसी अचल श्रद्धा है कि शान्तिके द्वारा ही भारतको पूरा स्वराज्य मिलेगा, उन्हें अन्य प्रपंचोंमें पड़नेकी कोई जरूरत नहीं। शान्तिसे स्वराज्य मिलना वहीं सम्भव हो सकता है जहाँ लोग एकनिष्ठ हों और उनका लक्ष्य एक हो। अशान्तिकी सम्भावना वहाँ होती है जहाँ कुछ लोग अधीर हो जायें, दूसरे उनका साथ न दें और इस कारण वे उनको जोर-जबरदस्तीसे अपने साथ घसीटें। यह स्वराज्य नहीं है। यह तो आकाशसे गिरकर खजूरमें अटकने-जैसा हुआ। इससे करोड़ों नर-कंकालोंका भला नहीं होगा। इतना ही नहीं, इसमें उन्हें अनिच्छापूर्वक अपनी बलि देनी पड़ेगी। इससे नरमेधका युग, जो बीत गया माना जाता है, फिर वापस आ जायेगा। यूरोपमें तो नरमेध हो रहा है। वहाँका वर्तमान भयंकर युद्ध नरमेध नहीं तो क्या है? यदि वह हिन्दुस्तानमें होगा तो करोड़ोंका बलिदान लेगा, क्योंकि लोगोंमें उसका सामना करनेका साहस नहीं है।

1. गांधीजीका संकेत वल्लभभाई पटेलकी ओर है।
2. पत्र लेखकने लिखा था कि किफायत करनेके बावजूद एक मनुष्यको खादीके कपड़ोंपर प्रतिवर्ष ३८ रुपये खर्च करने पड़ते हैं।
3. यहाँ नहीं दिया गया है।

आज जहाँ बहुतसे लोग शंकित-हृदय है, जहाँ लोगोंमे परस्पर द्वेष है, जहाँ आलोचना-विषयक असहिष्णुता है और जहाँ आक्षेपोकी कोई सीमा नही है वहाँ मौन रहना ही सर्वोत्तम मार्ग है। लेकिन मौनके साथ-साथ कोई काम भी चाहिए और वह काम है चरखा चलाना।

लेकिन अन्य लोग कातेगे ही नही, ऐसी शका निर्मूल है। जैसे यह प्रश्न नही उठता कि अन्यलोग नही खायेगे वैसे ही यह प्रश्न भी नही उठता। यदि मुझे विश्वास है तो मुझे दूसरोकी चिन्ता क्यो होनी चाहिए? दूसरे नही कातेगे तो उनके बजाय मुझे और भी ज्यादा कातनेका आग्रह होना चाहिए। यदि ऐसा किया जाये तो इसकी छूत दूसरोको आसानीसे लगेगी।

अतिशयता

एक भाई लिखते है[1]

यह दलील भ्रामक है, इसलिए त्याज्य है। मनुष्य परावलम्बी होकर जन्म लेता है। यदि यह न होता तो उसके अभिमानकी कोई सीमा नही रहती। सन्यास परावलम्बनकी पराकाष्ठा है, क्योकि उस हालतमे उसे लोग जो कुछ दे उसीमे निर्वाह करना होता है, किन्तु उसके द्वारा मनुष्य आत्माकी स्वतन्त्रताको प्राप्त करता और ब्रह्मसे तादात्म्य स्थापित करता है। दूसरोको कष्ट न देनेके लिए हम सब काम स्वय कर ले, लेकिन स्वावलम्बनका दावा सिद्ध करनेके निमित्त जो व्यक्ति सब-कुछ अपने हाथो करनेका प्रयास करता है वह अन्तत स्वेच्छाचारी बन जाता है। हम अन्न और वस्त्रके मामलेमे समस्त समाजको स्वावलम्बी बनाना चाहते है। वस्त्रके मामलेमें समाज परावलम्बी बन गया है और अब वह स्वावलम्बी बन सकता है या नही, उसे इसमे शका हो गई है। इसीलिए मै प्रत्येक स्त्री और पुरुषको इस विषयमें स्वावलम्बी बन जानेकी सलाह देता हूँ। व्यक्तियोके स्वावलम्बी बननेपर ही समाज-का स्वावलम्बी बनना सम्भव है। इसके सिवा अन्य क्रियाओके सम्बन्धमे स्वावलम्बी बननेका प्रयास वस्त्र-विषयक महान व्यापक और आवश्यक प्रयासमे बाधक होगा। कल्पना कीजिये कि सब लोग अपने लिए साबुन, पेंसिल, कलम, घडी और अन्य वस्तुएँ बनाने लग जाये और उसके साथ-साथ वस्त्र भी तैयार करे तो ऐसे एक दो मनुष्य भले ही हो जाये, लेकिन इससे भारतका दारिद्र्य दूर नही होगा।

हमे भारतका दारिद्र्य दूर करनेके लिए इससे विपरीत मार्गपर चलना चाहिए। तात्पर्य यह है कि सभी लोग अन्य सब अनावश्यक प्रवृत्तियोको छोडकर भारतको वस्त्रके सम्बन्धमे स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न करे और उस प्रयत्नका स्वरूप यह है कि सभी सूत काते। हमारी प्रवृत्तियोमे वर्षोसे व्यभिचार पैठ गया है। कोई कहता है, मै साबुनका कारखाना स्थापित करके देशको गुलामीसे छुडाऊँगा। कोई कहता है, मै इसके लिए ताला बनानेका कारखाना खोलूँगा। कोई चमडेका और कोई बाँस-

१ पत्र यहाँ नही दिया गया है। इसमें लेखकने लिखा था, आप चाहते हैं कि सभी अपने लिए स्वय खाना बनायें और सूत कातें। लेकिन क्या आप हर कार्यमें हर व्यक्तिको आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं।

प्रत्येक खादी-प्रेमीको मेरी सलाह तो यह है कि वह ऐसा एक भी 'नये प्रकार-का चरखा' न खरीदे जिसे खादी-बोर्डने पसद न किया हो। नये प्रकारके अनेक चरखे बिलकुल निकम्मे साबित हुए है और उनके बारेमे जो दावा किया गया है वह सत्य प्रमाणित नही किया जा सका है। अभीतक तो यही कहा जा सकता है कि यदि पुराने चरखेमे थोडा-बहुत परिवर्तन कर दिया जाये तो कोई दूसरा चरखा उससे अच्छा नही हो सकता। इसलिए अच्छा यही होगा कि कोई भी व्यक्ति 'नये प्रकारके चरखे' मे दिलचस्पी न रखे। लेकिन यदि किसीकी नजरमे कोई चमत्कार-पूर्ण चरखा आये तो इष्ट यह है कि वह उसे जाँचके लिए खादी बोर्डके पास भेज दे और खादी बोर्ड द्वारा पसन्द किये जानेपर ही उसका प्रचार अथवा क्रय-विक्रय करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-७-१९२४

२१९. पत्र: वा० गो० देसाईको

आषाढ बदी ४, [२० जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री वालजी,

आपका पत्र मिला। महादेवने मुझे कल बताया कि स्वामीने आपका शिमला-सम्बन्धी लेख आपको भेज दिया है। उसने यह भी कहा कि उसे भेजे हुए २० दिन हो गये है। क्या आपको वह नही मिला? जिन अवतरणोके बारेमे आपने लिखा है उनके विषयमे पूछताछ कर रहा हूँ। मेरा शिमला आना अभी तो बिलकुल अनिश्चित है। अभी तो पजाबके दौरेकी तारीख भी तय नही हुई और आप शिमला आनेकी बात लिखते है। आप कोई अमीर उमराव है? आप किसी प्रान्तके गवर्नर या लॉर्ड रीडिग नही है। इसलिए आप अपने निमन्त्रण पत्रको तो अस्वीकृत ही समझे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य वा० गो० देसाई

१ इस पत्रमें शिमला सम्बन्धी जिस लेखकी चर्चा की गई है वह सितम्बर, १९२४के **यंग इंडियामें** प्रकाशित हुआ था। इस वर्ष आषाढ वदी ४, २० जुलाई को थी।

२२०. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

आषाढ़ वदी ६, [२२ जुलाई, १९२४][१]

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम जब आना चाहो तब आ जाओ। ईश्वर सब अच्छा ही करेगा। मेरी सलाह तो यह है कि तुम अपनी पोतीको अपने साथ न लाओ। पति-पत्नीको जैसा ठीक जान पड़े वैसा करने दो। पिता भले ही बच्चीको स्वयं आकर छोड़ जाये। यदि तुम उसको अभी ले आओगी तो उससे परेशानी बढ़नेकी सम्भावना है।

मोहनदासके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१७) से।
सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

२२१. पत्र : इन्द्र विद्यावाचस्पतिको

आषाढ़ वदी ६ [२२ जुलाई, १९२४][२]

चि० इन्द्र,

तुमारा दूसरा खत मीला। मेरा उत्तर मील गया होगा। फाइल भी मीली है। मैं दिल्ही पहोंचनेके लीये उत्सुक हु।[३] डाक्तरोंने डराया है इसलीये ठेहर गया हु। हो सके उतनी त्वरासे पहोंच जाऊंगा।

मोहनदासके आशीर्वाद

प्रो० इन्द्र
'अर्जुन' कार्यालय
दिल्ली

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ४८५८) से।
सौजन्य : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

१. इस खण्डमें प्रेषीको भेजे गये पहलेके पत्रोंसे पता चलता है कि यह पत्र भी १९२४ में लिखा गया था। इस वर्ष आषाढ़ बदी ६, २२ जुलाई को थी।

२ और ३. मुहम्मद अलीके निमन्त्रणपर गांधीजी १६ अगस्त, १९२४ को दिल्लीके लिए रवाना हुए थे। इस वर्ष आषाढ़ बदी ६, २२ जुलाईको पड़ी थी।

२२२. पत्र : फूलचन्द शाहको

[२३ जुलाई, १९२४][1]

भाई फूलचन्द,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे सम्मुख एक ही मार्ग है। इस स्कूलमें[2] प्रवेशके सम्बन्धमें व्यवस्थापकोंने अन्त्यजोंको जो वचन दिया है उसका उल्लंघन किया ही नहीं जा सकता। तुम्हें अन्त्यजोंका स्वागत करना ही चाहिए और अगर इससे स्कूल खाली हो जाये तो उसे सहन करना चाहिए। यदि व्यवस्थापक इस इमारतको तुम्हें सौंप कर नया स्कूल बनाना चाहें तो बना सकते हैं। नींव रखते समय जो सिद्धान्त स्थिर किया गया था वह कैसे बदला जा सकता है? मैं इस बारेमें 'नवजीवन' में टिप्पणी अवश्य लिखूंगा।[3]

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम अपनी शान्ति, धैर्यशीलता और विनय मत छोड़ना।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२१) से।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

२२३. शिक्षकोंकी दीन दशा

एक जिलेमें चौदह राष्ट्रीय पाठशालाओंमें से सात बन्द हो गई हैं। शेष बन्द होनेकी तैयारीमें हैं और विद्यार्थियोंकी संख्या दो हजारसे घटकर पाँच सौ रह गई है। इन पाठशालाओंमें से एक पाठशालाके प्रधान शिक्षक पाठशालाओंकी दीन-दशाका वर्णन करते हुए लिखते हैं :

यदि सच कहूँ तो हमारी राष्ट्रीय पाठशालाओंके बहुतेरे शिक्षकोंकी हालत ऐसी हो गई है कि अपने अधपेट रहनेवाले परिवारका और भीषण कर्जके बोझका विचार करते हुए उनका दिल दहल उठता है और मनमें ऐसा अन्देशा होने लगता है कि ऐसे कर्जदार व्यक्तिके लिए इतना कष्ट-सहन करते रहकर देशकी

१. डाकखानेकी मुहर से।
२. काठियावाड़में बढवानका राष्ट्रीय स्कूल।
३. देखिए "धर्मकी कसौटी", २७-७-१९२४।

सेवा करना अक्लमन्दी है या बेवकूफी? या फिर भूखे रहकर शिक्षकका काम करनेके बजाय उसे दूसरे तरीकेसे देशकी सेवा करनी चाहिए? मुझे यहाँ यह कह देना चाहिए कि इनमें से कितने ही शिक्षकोने देशकी पुकारपर कान देकर जो नौकरियाँ छोडी थी, वे कहीं अधिक वेतनकी थीं।

इस दु ख-कथासे डर जानेकी जरूरत नही। बडे कष्ट-सहनके फलस्वरूप ही राष्ट्रोका निर्माण होता है। या तो हमे सशस्त्र बलवेमे मक्खियोकी तरह पिस जाना चाहिए और स्वेच्छाचारी सैनिक सत्ताके तावेदार बन जाना चाहिए तथा अति दूरवर्ती धुधले भविष्यमे लोकतन्त्रात्मक शासन स्थापित करनेकी आशा रखनी चाहिए, या फिर धीरजके साथ, स्वाभाविक रीतिसे, अन्य लोगोकी नजरोमे आये बिना, कष्ट-सहन करते रहकर अपने-आपको स्वशासित, आत्मसम्मानपूर्ण राष्ट्रके रूपमे खडा करना चाहिए। पत्र-लेखकने जिन दु खोका वर्णन किया है उन्हे सहन करके ही हम अपने सामने उपस्थित कठिनाइयोका इलाज कर सकेगे। यह कष्ट-सहन ही स्वराज्यकी सच्ची तालीम है। दोष सारा बालकोके माता-पिताओका नही है। दोष तो हमारी परिस्थितिमे निहित है। हम अभीतक कठिनाइयोकी परवाह किये बिना अनवरत कार्य करते रहनेका गुण पैदा नही कर पाये है। राष्ट्रीय शिक्षाका सारा तन्त्र जिस केन्द्रके आसपास घूमना चाहिए वह शिक्षक ही है। यदि वे ही असन्तुलित हो जाये तो पूरा ढाँचा ही ढह जायेगा। परन्तु हमारे शिक्षक अनुभवहीन थे। उन सबमे राष्ट्रीय शिक्षा-का अनुराग जीवित रखनेके लिए आवश्यक और अथक कर्तृत्वशक्ति नही थी। उनमे आज सगठन-क्षमता नही, एकाग्रता और आत्मार्पणकी योग्यता नही। हर जगह कार्य-कर्त्ता सेवाके एक क्षेत्रमे निष्णात होनेके बदले सभी क्षेत्रोमे टाँग अडाते रहे है और इसका फल यह हुआ है कि वे किसी भी कामको पूरा-पूरा अजाम नही दे पाये है। पर यह अनिवार्य था। काम हमारे लिए बिलकुल नया था। हमारे शासकोने हमे क्लर्क बननेकी ही तालीम दी है और ऐसा काम हमे सौपा है जिसमे न कुछ विचारना पडे न कुछ स्वतन्त्र रूपसे करना पडे। परन्तु पुरानी व्यवस्था बदलती जा रही है। आरम्भिक उत्साहके दौरमे लगा कि हम यदि बिलकुल ठीक नही तो काफी ठीक ढगसे काम कर रहे है। चूँकि वह उत्साह समाप्त हो गया है और सार्वजनिक आश्रयकी नमी भी नही बच रही है, इसलिए उन्ही पौधोके टिके रहनेकी आशा की जा सकती है जो बुरेसे-बुरे मौसमकी मार सह सकते है। जो पाठशालाएँ और शिक्षक अभीतक अडिग बने हुए है आशा है कि वे ठीक ढगके है। उन्हे निर्वाहके लिए घर-घर भीख माँगनी पडेगी और अगर वे ईमानदार कार्यकर्त्ता है तो इसमे उन्हे शर्म माननेकी जरूरत नही। पूर्वोक्त प्रधान शिक्षकने कुछ विशिष्ट प्रश्न भी पूछे है। वे सर्वसाधारणके लिए उपयोगी है। इसलिए वे उत्तर सहित यहाँ दिये जा रहे है—

प्र० —बढते जानेवाले कर्जके बोझसे दबे हुए गरीब शिक्षक फाकेकशीके मेहनताने पर इन पाठशालाओके साथ अपना सम्बन्ध कबतक कायम रख सकते है?

उ० —मौतकी घडीतक। जिस तरह सिपाही तबतक लडता है जबतक वह विजयके दर्शन न कर ले या दूसरे शब्दोमे लडाईमे काम न आ जाये।

यदि १ फी सदी लोग भी पाठशालाओकी परवाह न करते हों तो संचालकोको कबतक इतनी बडी आर्थिक हानि सहकर उन पाठशालाओको चलाना चाहिए?

यदि लोगोको पाठशालाकी कुछ भी गरज न हो तो उस पाठशालाको जीवित रहनेका कोई अधिकार नही है। परन्तु जिन लोगोने पाठशालाएँ स्थापित की हो उन्हे यदि वादमे उसकी आवश्यकता न दिखाई दे तो मै सचालकोको ही दोप दूंगा।

शिक्षाको बन्द रखना और कार्यकर्त्ताओके लिए कष्टसहन करना एक सालतक, दो सालतक, बहुत हुआ तो तीन सालतक सम्भव है, परन्तु यदि स्वराज्यकी लड़ाई वर्षों तक जारी रहे तो फिर क्या करे?

जो एकसे तीन सालतक कष्ट-सहन कर सकेगे, उनमे तीस सालतक कष्ट सहनेकी क्षमता आ जायेगी।

जहाँ एक भी राष्ट्रीय पाठशाला न हो, वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा पानेकी इच्छा रखनेवाले इने-गिने लड़कोका क्या होगा?

अगर माता-पितामे अथवा खुद छात्रोमे सूझ हो तो उन्हे रास्ता अवश्य दिखाई देगा। यह मानना कि शिक्षा केवल पाठशालाओमे अथवा महज अंग्रेजीके ही द्वारा या सिर्फ पुराने तरीकेसे ही मिल सकती है, गलतफहमी है। वर्तमान हालतमे तो कताई और बुनाई सीखना ही सर्वश्रेष्ठ शिक्षा है। हमे यह नही भूलना चाहिए कि अधिकाश गाँवोमे तो पाठशालाएँ बिलकुल है ही नही।

हमारे देशबन्धु कबतक ऐसे प्रस्ताव पास करते रहेंगे जिनके पालन करनेकी कभी उनकी इच्छा ही न हो? सब लोग सरकारी पाठशालाओंके बहिष्कारकी राय देंगे और फिर इनमें से इने-गिने सज्जन ही अपने बालकोको राष्ट्रीय पाठशालाओमें भेजेंगे।

मुझसे वने तो अब एक क्षण भी नही। पिछले कांग्रेस अधिवेशनमे मेरी तमाम लडाई इसीको लेकर थी कि हम अपने प्रस्तावोके प्रति सच्चे रहे।

मै जानता हूँ कि मैंने जो उत्तर दिये है उनसे बहुतोको सन्तोष न होगा। परन्तु मै कहता हूँ कि ये ही जवाव सही और व्यावहारिक है। हमे पाखण्डको तिलाजलि तो दे ही देनी चाहिए। सरकारी पाठशालाओके वहिष्कारके प्रस्तावकी खातिर (उनकी जगह भरनेके लिए नही,) यदि सारे देशको राष्ट्रीय पाठशालाओकी जरूरत महसूस न हो तो वहिष्कारके प्रस्तावमे परिवर्तन करना जरूरी है। इसके बाद जो थोडे लोग वहिष्कारके पक्षमे रहे उन्हे कांग्रेसकी देखरेखमे नही, बल्कि अलहदा राष्ट्रीय पाठशालाएँ चलाकर वहिष्कारकी अपनी इच्छा पूरी करनी चाहिए। ये पाठशालाएँ वही चलेगी जहाँ उनकी जरूरत होगी। यदि ऐसी एक भी पाठशाला होगी तो वह भी विना निराशाका अनुभव किये चलती रहेगी। श्रद्धा निराश होना नही जानती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२४. सी० एफ० एन्ड्रयूजके लेखपर टिप्पणी

महाकविकी[1] लोकोपकारी और शान्तिके प्रचारार्थ की गई विदेश-यात्राके[2] प्रभाव-के बारेमें पूरे विवरणके लिए मैं पाठकोसे कहूँगा कि वे 'विश्व भारती' पत्रिकाके सम्पादको द्वारा उनकी विदेश-यात्राके सिलसिलेमें प्रकाशित की गई 'विश्व भारती' की सुन्दर विज्ञप्तियाँ पढे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

२२५. सूतका क्या किया जाये?

खादी बोर्डसे बराबर पूछताछ होती रहती है कि कांग्रेसके प्रतिनिधि जो सूत भेजेंगे, उसका क्या उपयोग किया जायेगा। कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार प्रत्येक प्रति-निधिको प्रति मास कमसे-कम २,००० गज अच्छा बटदार, एक-सा सूत भेजना है। यह सूत यों तो चन्देके रूपमें दिया जाना है, पर इसके बारेमें तरह-तरहके सवाल उठाये जा रहे हैं। कुछ सदस्य अपना सूत अपने पास रखते जाना और अपने इस्तेमालके लिए उसकी खादी बुनवाना चाहते हैं। यह विचार उत्तम है, किन्तु मेरी सलाह है कि फिलहाल इस इच्छाको दबाया जाये। किसी भी कार्यक्रमकी क्षमता उसकी एकरूपता, नियमितता तथा उसके अमलकी व्यापकतापर निर्भर करती है। महत्त्व परिमाणका हुआ करता है। किन्तु यदि प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छाके अनुसार व्यवहार करना चाहे तो बडे परिमाणमें सूत प्राप्त करना असम्भव हो जायेगा। यद्यपि प्रत्येक सदस्य द्वारा अपने ही परिधानके लिए सूत काते जानेके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर इस समय सहकारी कताईके पक्षमें अपेक्षाकृत अधिक कहनेको है। यदि यह देखा जाये कि पार्सलें प्रत्येक प्रान्तमें बनाई जायेंगी और केन्द्रीय बोर्डको भेजी जायेंगी तो सूत भेजनेकी लागतका कोई बडा महत्त्व नहीं रह जाता, पर उसके फायदे तो देखिए

१ हर महीने सूत इकट्ठा होगा।

२ कताईकी किस्मकी माहवारी जाँच हो सकेगी और उसके फलस्वरूप उसमें सुधार हो सकेगा।

१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

२ इसके साथ ही श्री एन्ड्रयूजका लेख "सुदूर पूर्वमें भारत" दिया गया है जिसमें अन्य बातोंके साथ-साथ महाकविकी जापान-यात्राका विवरण है।

३ कातनेवालोंमें ढिलाईकी सम्भावना कम रहेगी।

४ सूतकी किस्म और उसके कुल परिमाणके बारेमें कातनेवालोंमें और प्रान्तोंमें भी एक स्वस्थ स्पर्द्धा बनी रहेगी।

५ यदि कांग्रेसके सदस्य प्रस्तावकी भावनाके अनुकूल ही आचरण करते रहे तो खद्दरके दाम निश्चित ही गिरते जायेंगे।

खादी बोर्डको मेरी सलाह है कि वह इस सारे सूतका कपड़ा वहीं बुनवाये जहाँ सस्तीसे-सस्ती बुनाई हो सकती हो, किन्तु यदि प्रत्येक प्रान्त अपना सूत अपने ही यहाँ बुनवा लेना पसन्द करे तो बात दूसरी है। यदि खादी बोर्ड ठीक समझे तो दुर्भिक्ष-पीड़ित क्षेत्रोंमें गरीबोंको खादी बहुत ही सस्ते दामोंमें दी जाये। यदि कातने-वाले खरीदना चाहे तो वह उन्हें भी रियायती दरपर दी जा सकती है। किन्तु इस सूतसे तैयार होनेवाली खादीका क्या किया जायेगा इसके बारेमें अन्तिम निर्णय करनेका समय अभी नहीं आया है। बहुत-कुछ इसपर निर्भर करेगा कि कितना सूत इकट्ठा होता है। अपने ही काते हुए सूतसे बुनी हुई खादी पहननेके लिए उत्सुक लोगोंको मेरी सलाह है कि सारे सूतको एक जगह इकट्ठा करना और फिर प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने दिये हुए सूतके वजनके बराबर खादी प्राप्त करना कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावसे जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है, सामान्य भण्डारमें जमा होनेके लिए अपने सूतको दानमें देनेकी तुलनामें अपने काते सूतकी खादी पहननेकी इच्छा स्वार्थपूर्ण ही मानी जायेगी। और अन्तिम विचारणीय बात यह है कि कोई भी सदस्य अगर न चाहे तो २,००० गजसे अधिक सूत भेजनेके लिए बाध्य नहीं है। वह राष्ट्रको नित्य आधा घंटा दे और शेष आधे घंटेमें अपने उपयोगके लिए श्रम करे। मैं नये सीखनेवालोंको बता दूँ कि अनेक कार्यकर्त्ता २,००० गजका अपना हिस्सा कबका पूरा कर चुके हैं और जो अपना सारा अतिरिक्त समय कताईमें लगा रहे हैं, वे तो १०,००० गजसे भी अधिक सूत कातनेकी आशा करते हैं। गुजरात विद्यापीठके कुछ अध्यापक यद्यपि कांग्रेसके प्रतिनिधि नहीं हैं तो भी प्रतिमास प्रति व्यक्ति ५,००० गज सूत कात रहे हैं। इसमें से वे ३,००० गज राष्ट्रको देंगे और बाकी २,००० गज अपने निजी उपयोगके लिए रखेंगे। मैं कांग्रेसी स्त्री-पुरुषोंसे अनुरोध करता हूँ — वे चाहे प्रतिनिधि हों या न हों — कि उनको फिलहाल प्रसन्नतापूर्वक और सच्ची लगनसे राष्ट्रीय योजनाकी पूर्तिमें सहायक बनना चाहिए फिर चाहे यह योजना उनको अपूर्ण ही क्यों न लगती हो। वे देखेंगे कि हार्दिक सहयोगके परिणामस्वरूप वह पूर्ण बन जायेगी। मानव-मस्तिष्क अभीतक ऐसी कोई भी योजना नहीं बना पाया है जिसमें दोष न रहा हो अथवा जिसकी आलोचना न की गई हो। पर व्यावहारिक बुद्धिमत्ता इसी बातमें है कि जिस योजनाको बहुमतने पसंद कर लिया हो, उसको कार्यान्वित करनेमें सहायता दी जाय। प्रत्येक आपत्तिको इतना महत्त्व नहीं देना चाहिए कि वह अन्तःकरणका प्रश्न बन जाये। मूल आपत्तियाँ तो सचमुच बहुत ही थोड़ी होती हैं। कुछ भी हो, यह निर्णय करनेमें तो अन्तःकरणका कोई प्रश्न ही नहीं उठता कि २,००० गज सूत

एक सार्वजनिक भण्डारमें जमा करना ज्यादा अच्छा है या उसे अपने उपयोगके लिए रख लेना।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-७-१९२८

२२६ नैराश्यपूर्ण चित्र

जालंधरसे एक मुसलमान सज्जनने भावनापूर्ण पत्र लिखा है

> आजकल उत्तर भारत और पंजाबमें हिन्दुओं और मुसलमानोंमें खुलकर संघर्ष होना एक रोजकी बात ही हो गई है। इससे यह साबित होता है कि ये दोनों ही गुलाम कौमें अपने देशमें उठनेवाले प्रश्नोंका निबटारा करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं — यही नहीं वे अनेक अनमेल तत्त्वोंवाले इस विशाल देशके शासनकी बागडोर अपने हाथोंमें लेनेके अयोग्य हैं।
>
> दोनोंके बीच विरोध मिटानेके आपके प्रयत्न सफल तो हुए थे, पर आपके जेल जानेके बाद झगड़ालू लोग फिर सामने आ गये। आपके जेल जानेसे पहले जहाँ-जहाँ दोनों कौमोंमें लम्बे अर्सेसे साथ रहनेके कारण परस्पर सहानुभूति और भाईचारा था वहाँ आज फूट और दुश्मनी है। पंजाबके तमाम बड़े-बड़े शहर इन दोनों जातियोंकी आपसकी लड़ाईके अखाड़े हो गये हैं और यह आशा नहीं दिखाई देती कि भूतकालके मीठे सम्बन्ध फिर कभी बहाल हो सकेंगे।
>
> कृपया रोगके असाध्य होनेसे पहले इसके इलाजका कोई रास्ता निकालिये। कृपा करके पंजाब पधारिए और खुद अपनी आँखों सब हाल देखिए। जबतक आप फिर उसी स्थितिको नहीं ला पाते, तबतक आपकी खादीकी हलचल व्यर्थ है। कहाँ १९१९ के अमृतसरके वे शानदार दिन और कहाँ आजकी यह निराशा-भरी तसवीर। इस नगरकी आबादी कोई २ लाख है, पर उसमें ५० आदमी भी मुश्किलसे खादीधारी दिखाई देंगे, और जो हैं सो भी इसी कारण कि वे कांग्रेस कमेटियोंमें किसी-न-किसी पदपर हैं और यह सब हिन्दू-मुसलमानोंके बीच फैले हुए तनाजेका नतीजा है। इस खराबीको हटाइए, दूसरी सब बातें अपने-आप दुरुस्त हो जायेंगी। अफसोस है कि संगठनकी बुनियाद किसी बुरी साइतमें रखी गई थी।

पत्र-लेखक द्वारा खींची गई यह तसवीर निःसन्देह अतिरंजित है। पंजाबमें अगर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें रोज खुल्लमखुल्ला लड़ाई हो रही हो तो वहाँ लोगोंका रहना बहुत ही कठिन हो गया होता। पर मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि बाह्य दृष्टिसे तो पंजाब दूसरे किसी भी प्रान्तके बराबर ही शान्त है। फिर यह सज्जन सारा दोष संगठनके ही मत्थे मढ़ते हैं। यह उनकी भूल है। रोग तो था

ही। हॉ, सगठनसे वह बढ जरूर गया है। दोनो जातियाँ अपना-अपना सन्तुलन खो बैठी हैं।

यदि पजावियोने हिन्दू-मुसलमान तनावके कारण खादी छोड दी हो तो खादी और देशके प्रति उनका प्रेम ऊपरी रहा होगा। परन्तु मै इस वातको नही मानता कि उनकी देशभक्ति औरोसे कम है। इसलिए खादीका इस्तेमाल कम होनेका कारण कही और खोजना होगा। इसका स्पष्ट कारण तो यह है कि लोगोमे यह विश्वास नही जम पाया है कि खादीके विना स्वराज्य नही मिल सकता और मलमल तथा मिलके कपडे जिस ऐशो-आरामकी जिन्दगीके चिन्ह हैं, वैसी जिन्दगी बसर करनेकी उनकी इच्छा बढ गई है। तमाम प्रान्तोमे पजाव ही ऐसा है जो अगर चाहे तो विदेशी कपडेका वहिष्कार आज ही कर सकता है, पर वह चाहता ही नही। मैंने लोगोको यह कहते हुए सुना है कि कितने ही हिन्दू इसलिए खादी पहननेसे इनकार करते हैं कि वह मुसलमानोकी बुनी होती है और मुसलमान इसलिए इनकार करते हैं कि उन्हे स्वराज्यमे कोई दिलचस्पी नही। वे अग्रेजोको तो निकाल देना चाहते हैं पर उनकी जगह पुराना मुसलमानी शासन कायम करना चाहते हैं और यह भी कहा जाता है कि अगर हिन्दू और मुसलमान दोनो एक सामान्य ध्येयके लिए चरखेके सूत्रमे बँध जाये तो पुराना मुसलमानी राज्य कायम नही किया जा सकेगा। मगर इन सबको मै गर्म दिमागोकी भभक मानता हूँ। ऐसी वातोका विचार करनेतक की फुरसत गरीव हिन्दू और मुसलमानोको नही हो सकती। वे तो चरखा चलाकर सालमे अपनी आमदनी थोडी-बहुत वढानेके लिए उत्सुक रहते हैं।

परन्तु खादीका इस्तेमाल कम होनेकी वात तथा पूर्वोक्त पत्रमे जो बाते बढा-चढाकर कही गई हैं उन्हे छोड दीजिए तो भी इस बातसे कोई इनकार नही कर सकता कि दोनो जातियोमे वैमनस्यने बडा गम्भीर रूप धारण कर लिया है। दिल्लीमे नेताओकी साखका उठ जाना एक ऐसा तथ्य है जिसकी ओरसे कोई ऑख नही मूँद सकता।

खुशकिस्मतीसे समझ फिर लौटती दिखाई दे रही है। जाट और कसाई एक-दूसरेका सिर फोडनेकी अपनी मूर्खताको समझ गये हैं और कहते हैं कि उनमे सुलह भी हो गई है। पर सबसे आशाजनक खबर तो दूसरे पत्रलेखकोसे मिली है। उनका कहना है कि एक ओर जहॉ खून-खरावी करनेपर तुले हुए वहशी लोग हैं वहाँ दूसरोकी जान वचानेपर तुले हुए समझदार स्त्री-पुरुष भी मौजूद हैं और ऐसी मिसाले एक-दो ही नही बल्कि बहुत ज्यादा हैं, इससे लगता है दोनो जातियोके लोगोमे लडाईकी इच्छा जितनी वलवती थी, उतनी ही शान्तिकी भी थी। लडाई स्वाभाविक नही है, वह तो शरीरपर उठनेवाले अदीठ फोडेकी तरह है। लेकिन शान्ति एक शाश्वत वस्तु है। दोनो जातियाँ यदि एक वार इस वातका निश्चय कर ले कि हम एक-दूसरेके धार्मिक रीति-रिवाजोका लिहाज रखेगे तो फिर कोई वात मुश्किल नही है। मेरे पजाव जानेके विपयमे यह वात छिपी नही है कि मेरा दिल उन जगहो पर जानेके लिए तडप रहा है, जहॉपर तनाजा फैला हुआ है। इच्छा तो अपार है, शरीर साथ नही दे पाता। जैसे ही देखूंगा कि सफर करनेमे तन्दुरुस्तीके लिए

अव ज्यादा खतरा नही है वैसे ही मौलाना शौकत अलीके साथ सिन्ध और पजाव जानेका मेरा इरादा है।

[अग्रजीसे]

यग इडिया, २४-७-१९२४

२२७ संतप्त दक्षिण

मानसून वहुत ज्यादा परेशान कर रहा है। दक्षिणमे जिधर देखो पानी ही पानी है और उत्तर वर्पाके लिए तरस रहा है। दक्षिण कनारासे एक हृदयद्रावक तार आया है। उसमे कहा गया है

> **विनाशकारी वाढ फिर आ गई। नदीकी सतह सामान्य सतहसे चालीस फुट ऊँची। पिछले सालके मुकावलेमें सिर्फ चार फुट नीची है।**

इस समाचारके वाद उस तारमे वेघरवार हुए परिवारोका और लोगोका आतकित होकर इधर-उधर भागनेका विस्तृत विवरण है। स्वयसेवक आशा कर रहे थे कि पिछले सालकी वाढके वाद जो सहायता कार्य किया गया था, उससे भूखो मरते परिवार फिर अपने पाँवोपर खडे हो सकेगे। अव ऐसी आशा कदापि नही की जा सकती। पाठकोको याद होगा कि स्वयसेवकगण कताई और धुनाईका काम देकर परिवारोको सगठित कर रहे थे। किन्तु प्रकृतिने इन वेचारे वेघरवार परिवारोके भाग्यमे और भी अधिक विपत्तियाँ लिख रखी है। तव श्री सदाशिवरावका सहायताकी अपील करना उचित ही है। हमे आशा करनी चाहिए कि वाढसे इतनी गम्भीर क्षति नही हुई होगी जितनी इस विवरणमे प्रतीत हो रही है। हम अधिक विस्तारपूर्ण और सही विवरणकी 'प्रतीक्षा व्यग्रताके साथ कर रहे है।

[अग्रजीसे]

यग इडिया, २४-७-१९२४

२२८. अफीमके विरुद्ध संग्राम

'व्हाइट क्रॉस' एक अन्तर्राष्ट्रीय मादकद्रव्य-विरोधी सस्था है। इसका मुख्य कार्यालय वाशिंगटनमे है। इसकी शाखाएँ शायद ससारके सभी देशोमें है। सस्थाकी ओरसे लिखे जानेवाले पत्रोके लिए जो छपे कागज प्रयुक्त किये जाते है उनपर दिये गये नामोमें न्यासियो तथा स्थायी सदस्योके रूपमे वडे-वडे प्रतिष्ठित लोगोके नाम मौजूद है। उसके कार्यकारी मन्त्री, श्री मैक्किव्वेनने अफीमके विरुद्ध किये जानेवाले इस सस्थाके जिहादमे भारतका सहयोग प्राप्त करनेका अनुरोध करते हुए मुझे एक लम्वा पत्र भेजा है। उस पत्रमे से मै निम्न अश उद्धृत करता हूँ[1]

१ यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

भारत 'व्हाइट क्रॉस' को अपने इस पुनीत कार्यमे सहयोगका भरोसा दिलाता है। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीने अभी हालमे ही एक प्रस्ताव पास किया है। उसमे भारत सरकारकी अफीम सम्बन्धी नीतिकी तीव्र निन्दा की गई है। यदि पोस्त-का एक-एक पौधा जडसे उखाडकर फेक दिया जाये तो भी देशमे उसके विरुद्ध कोई आवाज नही उठेगी।' जब मादक पेयो और नशीली चीजोकी सारी आमदनी वन्द हो जायेगी, वे प्रमाणित दवाफरोशो द्वारा केवल औषधिके रूपमे ही बिक सकेगी और इसके अतिरिक्त उनकी बिक्री बिलकुल निषिद्ध कर दी जायेगी, तब जनता सचमुच खुशी मनायेगी।

किन्तु हमारा और ससारका दुर्भाग्य है कि भारतका मत आज एक ऐसी सरकार व्यक्त करती है, जो जनताकी प्रतिनिधि नही है। अत आगामी सम्मेलनमे प्रतिनिधित्व भारतकी जनताका नही होगा, भारतकी विदेशी सरकारका होगा और उसमे मुख्यत मानवताके हितका खयाल इतना नही किया जायेगा जितना उसकी अपनी आमदनीका। जनताका वास्तविक प्रतिनिधित्व करनेवाले, श्री एन्ड्रयूज-जैसे किसी गैर-सरकारी प्रतिनिधिको भेजनेसे कोई उपयोगी उद्देश्य सिद्ध होगा या नही, इसपर अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीको विचार करना चाहिए।

किन्तु अब हम यह देखे कि इस मानव-हितकारी जिहादका लक्ष्य क्या है। कुमारी ला मॉटने अकाट्य आँकडोके बलपर सिद्ध कर दिया है कि ससारमे अफीमका उत्पादन उसकी भैषजिक आवश्यकताओसे बहुत अधिक हो रहा है और जबतक यह जारी रहेगा तबतक — चाहे उसके विरुद्ध कितने ही प्रयत्न किये जाये — उसका अनैतिक और आत्मघाती व्यापार जारी रहेगा। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि भारत सरकार ही इस मामलेमे सबसे बडी अपराधी है। हम अपने लक्ष्यपर तबतक नही पहुँच सकते, जबतक भारत सरकार लागतकी परवाह किये बिना, अपने क्षेत्राधिकारमे अफीमकी खेती यथासम्भव कमसे-कम करके, ईमानदारीसे ससारके सर्वश्रेष्ठ विचारकोकी इच्छा पूरी नही कर देती। केवल भारत सरकारने ही रास्ता रोक रखा है और डर है कि वह आगे भी ऐसा ही करेगी, इसलिए नही कि भारतकी जनता ऐसा चाहती है, बल्कि इसलिए कि भारत इस समय असहाय है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-७-१९२४

१. पत्रमें कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार अफीम-निषेधमें जनताके विरोधकी जबरदस्त सम्भावना मानती है।

२२९. वचन-पालन

श्री एम० के० आचार्यकी खुली चिट्ठी पाकर मैंने उनको वचन दिया था कि मैं 'यग इडिया'मे उसका जवाव देनेकी कोशिश करूँगा। अफसोस है कि मैं इससे पहले जवाव न दे सका। इस चिट्ठीको खूव गौरसे पढनेके वाद मेरा खयाल है कि मतभेदकी वहुत गुजाइश नही है। मेरी खुशनसीवी है कि मै वातोपर अपने प्रति-पक्षीके दृष्टिकोणसे विचार कर पाता हूँ और उस हदतक उनके विचारोमे भी शरीक रहता हूँ और यह मेरी वदनसीवी है कि मै सदा उन्हे अपने दृष्टिकोणके अनुसार देखनेके लिए राजी नही कर पाता। यदि यह सम्भव होता तो मतभेद होते हुए भी हमारे वीच सुखदायी सहमति हो सकती थी।

असहयोगके कारण और मूल विपयके निरूपणके सम्वन्धमे मेरे और श्री आचार्य-के वीच काफी इत्तिफाक है। लेकिन काग्रेसके प्रस्तावकी रचनाके वारेमे मेरा और उनका मतभेद ही है। उनकी दृष्टिसे देखूं तो मै यह वात मान लूंगा कि अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके सामने पेश मेरे प्रस्तावोका प्राक्कथन काग्रेसके प्रस्तावके शब्दोसे आगे जाता है। लेकिन (मुझे कहना चाहिए तवसे) स्थिति विलकुल वदल गई है। मै उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे इससे पहलेकी अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीके प्रस्तावोका अध्ययन करे। उन्हे उसमे प्राक्कथनकी रूपरेखाकी झलक मिल जायेगी। मेरा खयाल था कि सविनय अवज्ञाकी तैयारीके लिए चरखा अख्तियार करना अनिवार्य ही माना गया है। प्रस्तावोमें यह शर्त वार-वार रखी गई है। अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी आखिरी वैठकमे वहुत-सी वातोका पूर्ण विरोध तो किया गया था, लेकिन इस प्राक्कथनके विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा गया था। क्योंकि हरएकने सविनय अवज्ञाके लिए चरखेको पहले ही आवश्यक मान लिया था। मेरा खयाल है कि मेरा उस प्राक्कथनको पेश करना ठीक ही था।

कताईकी खूवियोको ध्यानमे रखते हुए मै अपना यह विश्वास दोहराता हूँ कि जवतक कताई व्यापक न होगी, तवतक जनताका स्वराज्य नही आ सकता। यह सच है कि हम लोग परदेशी सत्ताके अधीन होनेसे पहले कातते तो थे लेकिन उस वक्त उसकी राष्ट्रीय उपयोगिता नही समझते थे। क्या हम अशुद्ध वायु ग्रहण करके अकसर अपने फेफडे खराव नही कर लेते? जव वे खराव हो जाते है तभी उनकी और शुद्ध वायुकी जरूरत समझमे आती है। चरखेको फिर अपनानेके मानी होते है वहुत-सा सगठन, वहुत-सा सहयोग, वहुत-से पैसेकी वचत, उसका जनतामे वितरण और यहाँ वने रहनेके लिए अग्रेजोके लालचमे उस हदतक कमी। इसलिए जव कोई मुझसे चरखेसे स्वराज्य स्थापित करनेकी सम्भावनाके वारेमे सवाल करता है तो मुझे वडा आश्चर्य होता है। मुझे यह कहनेकी जरूरत नही है कि मैंने स्वराज्य पानेके लिए हर राष्ट्रको हर हालतमे चरखा चलाना आवश्यक नही वताया है। श्री आचार्य देखेंगे

कि उन्होने चरखेके खिलाफ जो दलीले पेश की है वे ऐसी बातोको लेकर की है जो मैने उसके बारेमे कभी कही ही नही।

अब कौसिलोका प्रश्न लीजिये। मै कुछ हदतक कौसिलोकी उपयोगितासे इनकार नही करता। मेरा तो इतना ही कहना है कि वे जनताके किसी कामकी नही है और चूंकि काग्रेसको अपना राष्ट्रीय स्वरूप कायम रखनेके लिए मुख्यतया जनताका प्रतिनिधित्व करना ही चाहिए और ऐसा कार्यक्रम ही सामने रखना चाहिए जिसमे जनता खुलकर भाग ले सके, इसलिए मेरा यह कहना है कि बहिष्कारको जैसाका-तैसा कायम रहने देनेमे ही बुद्धिमत्ता है। मेरे इस प्रस्तावकी पुख्तगी तो जिस हिसाबसे हम नीचे उतरकर जनताके साथ अपनेको एक करेगे उसी अनुपातमे महसूस की जा सकेगी। वकील लोग और धारासभावादी यदि मेरे कथनकी सत्यताको समझ सके तो वे काग्रेसके पदोका खयाल किये बिना ही प्रजाकी अच्छी सेवा कर सकते है और काग्रेसमे रह सकते है।

कार्यक्रममे कोई बुराई नही है। बुराई तो हमारे आपसके अविश्वासमे, असहिष्णुता-मे, कल्पना शक्तिके अभावमे और पदलोलुपतामे ही है। यदि दोनो पक्ष सत्ताकी चाह छोड दे और केवल सेवा करना ही सीख ले तो असहयोगका कार्यक्रम ही एकमात्र सच्चा राष्ट्रीय कार्यक्रम साबित होगा। क्या यह समझ मुश्किल है कि बहुतसे गाँव, जहाँ रेल नही पहुँची है, अदालतो, पाठशालाओ और धारासभाओके बारेमे कुछ भी नही जानते और परिस्थितिवश कहिए उनका बहिष्कार ही किये हुए है। यदि हम जो उनकी सेवा करना चाहते है, सत्ताकी चमक-दमकको तुच्छ मानने लगे तो इन करोडो ग्रामवासियोके लिए कुछ आशा बँध सकती है। अगर हम ऐसा न करे तो फिर एक सुयोग्य देशभक्तके गम्भीरतापूर्वक कहे गये निम्न कथनको ही ठीक माना जायेगा

> **मै आपके कार्यक्रममें विश्वास नहीं करता, क्योकि जनताके सम्बन्धमें जैसा आपका भाव है वैसा मेरा नहीं है। वे प्लेगमें या भूखसे मर जायें इससे बेहतर तो यही है कि मै उन्हे सिर्फ लड़ाईके मैदानमें ले जाकर वहीं उनकी आहुति चढा दूं। यह सच है कि यह बलिदान दिलसे नहीं होगा, किन्तु वह जरूरी है। जब इन लोगोको, जो समाजके लिए सिर्फ भारस्वरूप हैं, रणक्षेत्रमें कटवाकर भारतवर्ष रहनेके काबिल देश बनेगा, उस समय भारतवर्ष भूखो मरने-वाले लोगो और गुलामोका देश नहीं, स्वतन्त्र मनुष्योका स्वतन्त्र देश होगा।**

उक्त सज्जनसे मैने कहा कि यदि मै उनकी बातको स्वीकार कर सकूं तो उनकी दलीलको लाजवाब मानूंगा। लेकिन जब हम एक-दूसरेके पूर्व पक्षको ही ठीक नही मान सके तब अपने-अपने मतोपर कायम रहना ही हमने ठीक माना। हमने एक-दूसरेके निष्कर्षोको आदरकी दृष्टिसे देखा और अच्छेसे-अच्छे मित्रोकी तरह एक-दूसरेसे विदा ली। मुझे तो अपने अदनासे-अदना देशवासीको साथ लेकर चलना है फिर चाहे नैया पार लगे, चाहे डूब जाये। यदि श्री आचार्य मेरी इस स्थितिको जाननेका कष्ट उठाये तो वे १९२० की और आजकी मेरी बातमे कोई अन्तर नही पायेगे।

[अग्रेजीसे]

यग इडिया, २४-७-१९२४

२३०. टिप्पणियाँ

पी० वी०से

आपके प्रश्नोका उत्तर देनेमे जो विलम्व हुआ उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। उत्तर इस प्रकार है

(१) मै विदेशी कपडेपर जवरदस्त आयात-कर लगानेका हिमायती हूँ, भले ही उससे खादीको लाभ न पहुँचकर केवल देशी मिलोको ही लाभ क्यो न पहुँचे। मै विदेशी कपडेका पूर्ण वहिष्कार करनेके लिए आतुर हूँ। मुझे खादी और देशी मिलोके बीच प्रतियोगिताका डर नही है, क्योकि मै जानता हूँ कि हमारी मिले आज भारतकी आवश्यकता पूरी करनेकी स्थितिमे नही है। किन्तु मान ले कि वे खादीसे प्रतियोगिता करती है तो मै उस हालतमे जनताकी सुरक्षाके लिए खादीको अपनी मिलोके विरुद्ध उसी प्रकार निसकोच सरक्षण दूंगा, जिस प्रकार मै इस समय देशी मिलोको विदेशी प्रतियोगिताके विरुद्ध सरक्षण देना चाहता हूँ। मेरे आँकडोके अध्ययनसे सिद्ध होता है कि विदेशी कपडेके वहिष्कारसे हमारी मिलो और हाथकती खादी दोनोको समान रूपसे लाभ पहुँचेगा।

(२) खादीको सरक्षण देना जवरदस्ती नही है, ठीक उसी तरह जैसे मद्य-पानके निषेधको जवरदस्ती नही कहा जा सकता। यह राज्यका कर्त्तव्य नही है कि वह किसी अल्पसख्यक वर्गके हितके लिए किसी ऐसी वस्तुको प्रोत्साहित करे जिसे जनमत समस्त जनताके नैतिक या भौतिक कल्याणकी दृष्टिसे अहितकर मानता है।

(३) यदि विदेशियोके साथ, जैसा आज किया जाता है वैसा, वहुविध पक्षपात न किया जाये तो मै विदेशी पूंजीके अथवा विदेशियोके भारतमें आनेसे नही डरता। हम उचित और वरावरीकी प्रतियोगितामे भली-भाँति टिक सकते है।

(४) मै व्यक्तिगतरूपसे वडे-वडे न्यासो तथा विशाल यन्त्रो द्वारा उद्योगोके केन्द्रीकरणका विरोधी हूँ। किन्तु इस समय मेरा काम शोषणकी उस जवरदस्त प्रणालीको नष्ट करना है, जो भारतका विनाश कर रही है। यदि भारत खादी तथा उसकी आनुषगिक वातोको अपना लेता है तो मुझे आशा है कि भारत आधुनिक यन्त्रोकी प्रणालीको भी उसी हदतक अपनायेगा, जिस हदतक वह जीवनकी सुविधाओ तथा जीवनकी रक्षाके कामोके लिए आवश्यक मानी जा सकती है।

आचार्य गिडवानी

श्रीमती गगावाई गिडवानीको अपने पतिका निम्नलिखित पत्र[1] प्राप्त हुआ है

१ यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें जेल जीवनका वर्णन था और अन्तमें कुछ मित्रों और रिश्तेदारोंको पत्र लिखनेके लिए धन्यवाद दिया गया था।

खादीकार्यकी झलक

उपरोक्त शीर्षकसे अध्यवसायी श्री वी० एफ० भरूचाने अपने बगालके दौरेका विवरण प्रकाशित किया है। विवरणमे कामकी बाते है और वे कामकाजी और शिक्षाप्रद भी है। मै उस अनुच्छेदको छोड देता हूँ, जिसमे उन्होने इस बातपर दु ख प्रकट किया है कि यदि अहमदाबादकी मिलोने बग-भगके दिनोमे धोखा न दिया होता तो आज बगाल पूर्णत स्वदेशीके रगमे रगा होता और साथ ही इस बातकी भी शिकायत है कि सिराजगजकी स्वदेशी प्रदर्शनीमे डा० प्रफुल्लचन्द्र रायकी दुकानको छोडकर बाकी सब दुकानोकी खादी अशुद्ध थी। श्री भरूचाने देशबन्धु दाससे यह अपील की है कि वे सत्याग्रहियोसे खद्दर पहननेका आग्रह करे तथा शुद्ध खादी सगठनके लिए कुछ कार्यकर्त्ता अलग रख दे, मै इसे भी छोड रहा हूँ, किन्तु डा० राय और उनके योग्य सहायक बाबू सतीशचन्द्र दासगुप्तके शानदार कामके बारेमे श्री भरूचाने जो उत्साहपूर्ण रिपोर्ट दी है उसे मै अवश्य दूँगा।[1]

> **डा० प्र० चं० राय बंगालमें चरखेके सन्देशवाहक हैं। रसायनशास्त्रके ये बूढे आचार्य दुर्बल तन और कमजोर स्वास्थ्यके बावजूद भी दुर्भिक्ष और बाढ़से बरबाद बंगालके किसानोकी रक्षाके लिए खेतो और जलप्लावित क्षेत्रोमें घूम रहे है और आज वे इसकी जो अमोघ औषधि बता रहे है . . . वह औषधि है घर-घरमें चलनेवाला पुरातन चक्र अर्थात् चरखा। राजशाही और अन्य जलप्लावित क्षेत्रोमें डा० रायने चरखेको पुनरुज्जीवित करके और खद्दरको लोकप्रिय बनाकर भूखो मरते लोगोकी रक्षा की है। इसके अतिरिक्त इन्होने बंगालमें खद्दर प्रचारके लिए खादी-निकाय[2], खादी-प्रतिष्ठान्[3] और देशी रंग-निधिका[4] सूत्रपात किया है। उन्हे अपने चरखो और करघोको काम देनेके लिए प्रति सप्ताह तीन हजार रुपयोकी आवश्यकता होती है। . . . डा० रायने स्वयं खादीके कार्यके लिए अपनी जीवन-भरकी संचित कमाई ४०,००० रुपयेकी राशि भी दे दी है। सचमुच, बंगालमें वे खादीके सन्देशवाहक हैं।**
>
> **अब मै अपने देखे हुए कताई और बुनाईके केन्द्रोके कामकी कुछ झलक दूंगा।[5]**

मै श्री भरूचाकी इस कल्याण-कामनामे अपनी भी कल्याण-कामना जोडता हूँ।

श्री भरूचा हिन्दुओ और मुसलमानोमे एकता स्थापित करनेकी चरखेकी-क्षमताके बारेमें भी उतने ही उत्साही है। इस बारेमे उनका अनुच्छेद यह है।

१. अंशत उद्धृत।

२, ३ और ४ आचार्य राय द्वारा रचनात्मक कार्यक्रमके लिए स्थापित लोकप्रिय सस्थाएँ।

५ इसके बाद अतराई, रानीनगर, तलोरा और सुखिया (चटगाँव) केन्द्रोंके रचनात्मक कार्य और उसके संगठनका विवरण तथा सगठनकर्त्ता सतीशचन्द्र दासगुप्तके काम और स्वभावकी प्रशस्ति और उनकी कल्याण-कामनाका विवरण था। वह यहां नहीं दिया जा रहा है।

बगाल कष्ट-निवारण समितिके खादी-कार्यसे सम्बन्धित तथा खादी निकाय, खादी प्रतिष्ठान, और देशी रग-निधिसे सम्बन्धित लगभग सभी स्वयसेवक और कार्यकर्त्ता हिन्दू है। और इन सस्थाओसे जो लाभ उठाते है, उनमें सबसे अधिक सख्या मुसलमानोकी है। ये हिन्दू कार्यकर्त्ता अपने केन्द्रोसे मीलो चल कर मुसलमानोकी झोपडियोमें कपास और रुई पहुँचाते है। वे काता हुआ सूत तोलते है, उसकी मजदूरी देते है, चरखोकी मरम्मत करते है, कल-पुर्जे जुटाते है, कातनेवालोका हिसाब तैयार करते है और कपास या रुई, जिसे जो चाहिए सो देते है। इस प्रकार ये हिन्दू कार्यकर्त्ता अपनी मुसलमान बहनोकी सेवा उनके भाइयोकी तरह करते है। हिन्दू कार्यकर्त्ताओ और मुसलमान कातनेवालो, बुनकरो तथा उनके कुटुम्बोके बीच एक-दूसरेके प्रति इतना आदरभाव है कि उनको देखकर कोई भी यह अनुभव नहीं कर सकता कि वे भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी है। वे इस प्रकार बोलते और व्यवहार करते है, मानो वे सब बगाली है और एक ही कौम और मानव-बिरादरीके लोग है। सचमुच, यदि देशके और भागोमें भी चरखेका ऐसा ही प्रचार किया जाये, जैसा सतीश बाबूके 'तरुण' कार्यकर्त्ता कर रहे है तो हिन्दुओ और मुसलमानोके बीचका मौजूदा तनाव बहुत-कुछ कम और यदि भगवान्‌ने चाहा तो लुप्त ही हो जायेगा।

अधिक उत्पादन ?

पाठकोने श्री भरूचाके विवरणमे लक्ष्य किया होगा कि डा० रायको अपनी खादीको खरीदनेके लिए ग्राहक जुटानेमे कठिनाई होती है। यही शिकायत कर्नाटकके डा० हार्डीकरने भी की है। मै पजाबमे बेकार पडे हुए सग्रहका एक पिछले अकमे पहले ही निर्देश कर चुका हूँ। चूँकि गुजरातको आन्ध्रसे बहुत ज्यादा खादी खरीदनी बन्द करनी ही है, इसलिए आन्ध्र भी अधिक उत्पादनकी शिकायत करेगा। यही बात लगभग प्रत्येक खादी-उत्पादक प्रान्तपर लागू होती है। फिर भी समूचे भारतमें खादीका सारा सग्रह अधिकसे-अधिक बीस लाखसे ज्यादाका नही होगा। आप इसकी तुलना करोडो रुपयोकी कीमतके विदेशी वस्त्रके सग्रहसे करे। क्या यह बात हमारे कार्य तथा धनाढ्य लोगोकी देशभक्तिपर धिक्कारके योग्य नही ठहरती ? एक करोडपति खादीके सम्पूर्ण वर्तमान सग्रहको खरीदकर उसे गरीबोमे सस्ते भावसे बेच सकता है। कोई देशभक्त मिल-मालिक भी नुकसान उठाये बिना ऐसा ही कर सकता है। हमारे अधिवेशनोमे हजारो लाखो स्त्री-पुरुष इकट्ठे होते है। यदि वे सारी खादी एक ही दिनमे खरीद डाले तो वे कुछ निर्धन नही हो जायेगे। सार्वजनिक सस्थाएँ बिना कुछ अथवा अधिक हानि उठाये अपनी कपडेकी आवश्यकता खादी खरीदकर पूरी कर सकती है। बम्बई ऐसे मामलोमे सदा आगे रहा है। अगर बम्बईके बीस लाख निवासी इतना ठानले तो वे वर्तमान अतिरिक्त सग्रहको बहुत ज्यादा नुकसान उठाये बिना ही खरीद सकते है। किन्तु मै शिकायत नही करना चाहता। दोष

जनताका नही है। यह अभीतक सिद्ध तो हुआ नही है। दोप कार्यकर्त्ताओका है। जैसे हम उत्पादनकी व्यवस्था करते है, वैसे ही हमे बिक्रीकी भी व्यवस्था करनी होगी। नियम यह होना चाहिए कि प्रत्येक प्रान्त जितनी खादी उत्पन्न करता है उतनी वेचे भी। साथ ही प्रत्येक प्रान्तको अपने पूरे सामर्थ्यसे खादीका उत्पादन करना चाहिए और यदि कुछ अतिरिक्त माल बचे तो उसे बम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे प्रमुख शहरोको, जो स्वय सफल उत्पादन-केन्द्र नही होगे, भेज देना चाहिए। इन सबके लिए व्यवस्था और विचार करनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक प्रान्तको अपनी न्यूनतम बिक्री निर्धारित करनी होगी। यदि किसी प्रान्तके कातनेवाले और कार्यकर्त्ता खुद विदेशी या मिलका कपडा पहने और अपना तैयार किया हुआ माल बिक्रीके लिए बाहर भेजे तो इससे काम नही चलेगा। **इस प्रकारकी व्यवस्थाकी ओर पहला कदम निःसन्देह यह है कि अ० भा० का० कमेटीका कताई-सम्बन्धी प्रस्ताव पूर्णतः कार्यान्वित किया जाये।**

अ-प्रतिनिधि

अत यह प्रसन्नताकी बात है कि विभिन्न प्रान्त कताई-सम्बन्धी प्रस्तावका समर्थन कर रहे है और अपने-अपने प्रान्तमे कताईकी व्यवस्था कर रहे है। मुझे आशा करनी चाहिए कि इसमे कोई भी प्रान्त पीछे नही रहेगा। किन्तु मेरा खयाल है कि कोई भी यह नही सोचता है कि कताई-सम्बन्धी प्रस्ताव जिस पुरुष या स्त्रीपर लागू नही होता उसे कातने अथवा अखिल भारतीय खादी निकायको अपना सूत भेजनेकी आवश्यकता नही है। वह प्रस्ताव आदेशात्मक है और अ० भा० का० कमेटी सारे राष्ट्रको आदेश नही भेज सकती। किन्तु यदि काग्रेसके प्रतिनिधियोके लिए यह अनिवार्य है तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि काग्रेसके अन्य सभी सदस्योको, अर्थात् चार आना चन्दा देनेवाले निर्वाचकोको और दूसरोको भी, इसे अपने लिए अनिवार्य बना लेना चाहिए और जितना सम्भव हो, उतना हाथकता सूत केन्द्रीय सगठनको प्रेषित करनेके लिए खादी निकाय मन्त्रीको अथवा उसके प्रान्तीय प्रतिनिधिको भेजना अपना नैतिक कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि समूचा राष्ट्र दलोका खयाल छोडकर, सहयोग करे तो हम देखेगे कि हमारे देशसे विदेशी कपडा और साथ ही गरीबी भी बहुत ही कम समयमे समाप्त हो सकती है। खादीके इस कार्यकी व्यवस्था करने-जैसा सरल कोई दूसरा काम है ही नही और यदि हम एक राष्ट्रके रूपमे इस साधारणसे कार्यकी भी व्यवस्था नही कर सकते तो हमसे किसी अन्य बडे रचनात्मक कार्यकी व्यवस्था भी करते नही बनेगी।

कपडा या इस्पात

आचार्य रायने राष्ट्रके नाम एक करुण अपील प्रकाशित की है। उनके कहनेका तात्पर्य यह है कि यदि इस्पातको सरक्षण देनेके लिए प्रतिवर्ष डेढ करोड रुपयेकी सहायता देनी उचित है तो निश्चय ही खादीको सरक्षण देनेके लिए उससे भी बडी रकम देना कही अधिक उचित होगा।

डा० राय कहते है

किन्तु कपडा और इस्पात, इन दो उद्योगोमें किसका महत्त्व अधिक है? हमारा वस्त्र-उद्योग अनुचित विदेशी प्रतियोगिताके कारण नष्ट हो गया। यदि सरक्षण ही देना है तो राज्यसे सरक्षण पानेका सबसे अधिक अधिकारी कौनसा उद्योग है? हमारे देशके लोगोके लिए भोजन और वस्त्रकी, जो जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताएँ है, बेहद कमी रहती है। क्या आयातित सूती मालपर कर लगाकर हमारे हाथ-कताई उद्योगको प्रतियोगितासे नहीं बचाया जा सकता? किन्तु सरकार ऐसा कदापि नहीं करेगी। भारत स्वराज्य मिलने तक ऐसा करनेमें असमर्थ है। जो काम सरकार नहीं करना चाहती, लोग चाहे तो उसे कर सकते है। हमें कह देना चाहिए कि हम आयातित विदेशी सूती कपड़ा नहीं पहनेंगे, हम केवल हाथकी कती और हाथकी बुनी खादीका ही उपयोग करेगे और इस प्रकार प्रतिवर्ष देशसे ६० करोड रुपये बाहर जानेसे रोकेगे। यह हमारा काम है कि हम स्वय विदेशी प्रतियोगितासे अपने वस्त्र-उद्योगको सरक्षण दें।

मै अपने अनुभवसे कह सकता हूँ कि अब हाथकी कताई स्थायी हो गई है, बशर्ते हमारे देशवासी देशभक्तिके खयालसे केवल कुछ वर्षो तक मोटे और महँगे कपडेको पहननेकी तकलीफ गवारा करें। आप अनजाने टाटा इस्पात-उद्योगको डेढ करोड रुपया दे रहे है, इसलिए मै आपसे कहना चाहता हूँ कि आप जान-बूझकर एक ऐसे उद्योगको भी कुछ सहायता दें, जिसकी तुलनामें टाटा इस्पात-उद्योग बौना ही है। जबतक यह शिशु-उद्योग दृढ आधारपर प्रतिष्ठित नहीं होता तबतक हमें अपने सघर्षकी इस प्रारम्भिक अवस्थामें अपनी देशभक्तिके बलपर ही सफलता प्राप्त करनी है।

असममें अफीम

असमकी प्रान्तीय काग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त अफीम जाँच-समिति अपना काम शुरू कर चुकी है और उसने शिवसागरमे अनेक साक्षियाँ ली है। कई साक्षी जिलेके प्रमुख व्यक्ति थे और सभी दलोसे छाँटे गये थे। उन्होने एकमतसे अफीमपर पूरी रोक लगानेका समर्थन किया। एक अनुभवी सज्जनने कहा, यह कथन मूर्खतापूर्ण है कि अफीममे काला-आजार या मलेरियाके निरोधका गुण है। उन्होने यह भी कहा कि शिवसागर जिलेके एक गाँव अगेरा खोवामे सबसे ज्यादा मौतें अफीम खानेवालोकी ही हुई है। कुछ साक्षियोने यह दिलचस्प बात बताई कि लोगोको अफीम खाने या चडू पीनेसे रोकनेके अपराधमे नशा-निषेध करनेवाले कुछ कार्यकर्त्ताओको तग किया गया तथा उनपर मुकदमे चलाये गये। मै आशा करता हूँ कि यह समिति सामान्य गवाहियाँ लेकर ही सन्तुष्ट नही हो जायेगी, वरन् अफीमकी खेती, अफीमकी दूकानो और अफीमके अड्डोके बारेमे तुलनात्मक आँकडे भी एकत्र करेगी। उसमे असमके लोगोपर

पडे अफीमके प्रभावके सम्बन्धमे डाक्टरोकी गवाहियाँ भी ली जानी चाहिए। अफीमके पूर्ण निषेधसे सम्पादित प्रभावके बारेमे भी गवाहियाँ ली जानी चाहिए। यदि प्रतिवेदनको उपयोगी बनाना है तो उसे वस्तुत जानकारीसे भरपूर होना चाहिए।

अ० भा० खा० बोर्डकी शिकायत

अखिल भारतीय खादी बोर्ड पिछले ६ महीनोसे खादीकी प्रगति जाननेके लिए प्रान्तोसे खादीके कुछ मासिक आँकडे माँग रहा है। खादीके उत्पादन और बिक्रीको प्रोत्साहित करनेके लिए प्रचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। किन्तु बोर्डका कहना है कि तमिलनाड, उत्कल, पजाब, बिहार और महाराष्ट्र ही ऐसे प्रान्त है, जो नियमित विवरण भेजते है। केरलने विवरण भेजना अभी शुरू किया है। महाराष्ट्रके आँकडे अधूरे है। कुछ प्रान्तोके विवरण नियमित नही आते। दिल्ली और बर्मामे अभीतक खादी बोर्डोका निर्माण ही नही किया गया है। यह स्थिति सचमुच खेदजनक है। प्रधान कार्यालयोके पास काग्रेसके सभी विभागोकी प्रवृत्तियोके पूरे आँकडे होने चाहिए। खादी इन सबमे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अत प्रान्तोसे स्वभावत यह आशा की जाती है कि वे जो सूचना दे, वह ताजीसे-ताजी और सही हो। उदाहरणार्थ, काग्रेसके तत्त्वावधानमे या स्वतन्त्र रूपसे प्रत्येक जिलेमे जो खादी तैयार होती है उसके परिमाणकी जानकारी आवश्यक है। इसी प्रकार स्थानीय तथा प्रान्तोके बाहरकी बिक्रीकी जानकारी भी आवश्यक है। साथ ही कोई प्रान्त खादीका कितना आयात करता है यह जानकारी भी आवश्यक है। यह काम नियमपूर्वक और समयपर किया जाना चाहिए। केन्द्रीय कार्यालयको स्मरणपत्र भेजनेकी आवश्यकता नही होनी चाहिए। सगठन शब्दका इसके अतिरिक्त और कोई अर्थ नही होता कि उसमे ऊपरसे नीचेतक प्रत्येक छोटीसे-छोटी बातका ध्यान रखा जाये और उसके सब अग मिल-जुलकर सहयोगपूर्ण काम करे।

[अग्रेजीसे]

यंग इडिया, २४-७-१९२४

२३१. पत्र : एक मित्रको

साबरमती
२४ जुलाई, १९२४

प्रिय मित्र,

आपने जो कठिनाई बताई है मै उसे समझता हूँ, किन्तु मेरा विचार अब भी यही है कि मेरे अध्यक्ष न बननेसे हमारा कार्य अधिक अच्छी तरह आगे बढेगा। यदि मै अध्यक्ष नही बनता हूँ तो खादीका अहित क्यो होगा? कलकत्ता, नागपुर या अहमदाबादमे कोई कठिनाई नही आई थी। फिर बेलगाँवमे ही उसका डर क्यो है? मेरे कार्यक्रमके रद होनेपर मेरे पृथक होनेका देशपर क्या प्रभाव पडेगा, यह तो सोचिए। मौलाना शौकत अलीने मुझे तार भेजा है, आपने वह देखा ही होगा। उनके

मनमें क्या है, यह मैं नहीं जानता। शायद वे इस मुद्देपर बातचीत करनेके लिए यहाँ आयेंगे। मैं सिर्फ वही करना चाहता हूँ जो सही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ९०००) से।

२३२. पत्र : विट्ठलभाई झ० पटेलको

साबरमती
२४ जुलाई, १९२४

महोदय,

इसी १९ तारीखका आपका पत्र मिला। मुझे मालूम हुआ है कि नगर निगमके मानपत्रको स्वीकार करनेके लिए अगस्तके अन्तमें कोई तारीख निश्चित की जाय तो वह निगमको भी समान रूपसे सुविधाजनक होगी। फिर भी यदि आपको सुविधा हो तो मैं मानपत्र स्वीकार करनेके लिए ३० अगस्तका सुझाव देता हूँ। क्या आप कृपया मुझे सूचित करेंगे कि मुझे कब और किस स्थानपर इस रस्मको पूरा करनेके लिए हाजिर होना पड़ेगा।

आपका,

श्री वि० झ० पटेल, बार एट-ला
अध्यक्ष, नगर निगम
बम्बई

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ८८११) की फोटो-नकलसे।

२३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आषाढ वदी ८ [२४ जुलाई, १९२४][1]

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है।

अहिंसाभावसे हिंसा भी हो सकती है ऐसा अबतक मेरी कल्पनामें नहि आ सका है। मैंने खूब सोचा है। मेरा यह भी मन्तव्य है कि जबतक हम स्वयं गुणातीत न बन सके हम इस वस्तुको पूर्णतया सोच भी नहिं सकते हैं।

आनंदस्वामीने आपको यंग इंडिया इ०के लीये बील भेज दीया है।

१ **यंग इंडिया**के बिलके प्रसंगसे स्पष्ट है कि यह २६ जून, १९२४को प्रेषीको लिखे गये पत्रके बाद लिखा गया था। १९२४में आषाढ वदी ८, २४ जुलाईको पड़ी थी।

मै दिल्ली जाना चाहता हु। परन्तु थोडी देर होगी। दिल तो चाहता है अभी चला जाऊ। परन्तु शारीरिक परिश्रमके लीये मै तैयार नहि हु।

आपका,
मोहनदास गाधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१८) से।
सौजन्य घनश्यामदास बिडला

२३४. तार : मुहम्मद अलीको[1]

[२६ जुलाई, १९२४][2]

आपका तार मिला। आनन्दानन्द मशीने जल्दी भिजवानेके लिए बम्बई और अहमदाबादके बीच चक्कर लगा रहे है।

गाधी

अग्रेजी पत्र (एस० एन० ९००३) की फोटो-नकलसे।

२३५. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

२६ जुलाई, १९२४

प्रिय मोतीलालजी,

नीचे आपके प्रश्नोके[3] उत्तर दे रहा हूँ

(१) मेरे विचारसे अपरिवर्तनवादियोको कोसिल-प्रवेशके खिलाफ सक्रिय प्रचार करनेकी पूरी छूट है, लेकिन राष्ट्रीय उद्देश्यकी दृष्टिसे मै इसे सर्वथा अवाछनीय मानता हूँ।

१. यह मुहम्मद अलीके २५ जुलाईके तारके उत्तरमें भेजा गया था। मुहम्मद अलीका तार इस प्रकार था. "आज सुबह पहुँचा हूँ। आपके सुझावकी प्रतीक्षा है। शीघ्र ही अपने विचार और जानकारी भेजूँगा। प्रेस मिलनेकी उम्मीद कब करूँ। इन्तजार है।"

२ मुहम्मद अलीके नाम २७ जुलाईको भेजे पत्रमें गाधीजी कहते हैं: "कल आपको मेरे दोनों तार मिल गये होंगे।" यह तार अनुमानत उन्हींमें से एक है।

३ ये प्रश्न प्रारम्भमें मुहम्मद अलीसे पूछे गये थे और बादमें २५ जुलाईके पत्रके साथ (देखिए परिशिष्ट ४-क) गांधीजीको भेजे गये। गांधीजीने उस प्रश्नावलीके उत्तरोंका जो मसविदा तैयार किया, वह एस० एन० ९००२ में उपलब्ध है।

२३६. पत्र : जे० बी० पेटिटको

साबरमती
२६ जुलाई, १९२४

प्रिय श्री पेटिट,

मेरे पत्रके उत्तरमे लिखा आपका १७ जूनका पत्र मिल गया था। लेकिन उसका जवाब भेजनेमे मैंने जान-बूझकर देरी की। बात यह थी कि जेल जानेसे पहले मैंने आपको एक पत्र लिखा था। सोचता था उसमे जो-कुछ लिखा था उसका कुछ ब्यौरा मिल जाये। कोशिश की, लेकिन नही मिला। श्री चतुर्वेदीको पत्रकी याद है, लेकिन पत्रका पता नही लग पाया। आपके पत्रमे श्री बनारसीदासके लिखे एक पत्रका उल्लेख है। श्री बनारसीदासको अच्छी तरह याद है कि मेरे पत्रके उत्तरमे आपने जो पत्र लिखा था उसमे आपने यहाँ दी जानेवाली रकमका आधा भाग देनेका वादा किया था। मेरा तो कहना है कि श्री बनारसीदासको यहाँ पूरे समयतक काम करनेकी जरूरत नही है। इतना ज्यादा काम ही नही है। अभी स्थिति यह है कि विशेषज्ञ होनेके नाते वे हममे से ज्यादातर लोगोकी अपेक्षा अधिक काम करते है। उन्हे कुछ साहित्यिक दायित्वोका भी निर्वाह करना पडता है, जिससे उन्हे कोई आमदनी नही होती और अगर वे बम्बईमे रहकर यह काम करे तो खर्च बहुत आयेगा। आपको मालूम ही है कि उनका रहन-सहन बहुत सादा है। इसलिए महत्वकी दृष्टिसे बम्बईमे वे जितना काम कर सके है, उसका चौगुना यहाँ करते है। उनका तीन-चौथाई समय विदेशोसे सम्बन्धित काममे लग जाता है। इसलिए मेरे विचारसे यह बात बहुत ठीक होगी कि इस कामके लिए विशेष रूपसे जो राशि निर्धारित कर दी जाये वह इसी कामपर खर्च की जाये। अत अगर सघ उनको बम्बईमे रखकर मोटी तनख्वाह देनेके बजाय उनके कामके लिए यही उन्हे वाजिब रकम दे दे तो उसे सस्ता पडेगा। वैसे, जब कभी वहाँ उनकी सेवाकी आवश्यकता हो, उन्हे बेशक बुला लिया जा सकता है।

आपसे यह निवेदन करनेसे पहले कि आप मेरा पत्र समितिके सामने पेश करे, अगर आप मेरी राय माने तो मै आपको यह विश्वास दिलाना चाहूँगा कि मैंने जो बात सुझाई है, वही ठीक है। उत्तरके साथ आप समितिके सदस्योके नाम भी सूचित कर सके तो कृपा हो। इससे मै अपना विचार समितिके सदस्योके सामने भी रख पाऊँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गाधी

अग्रेजी पत्र (एस० एन० ९९७८) की फोटो-नकलसे।

वजाय किसी और क्षेत्रमें काम शुरू करनेकी हिम्मत आज मुझमे नही है। आज मैं जिस पौधेको यहाँ सीच-सँवार रहा हूँ, वह अगर बढकर मजबूत वृक्षके रूपमे आ जाये तो वाकी सव आसान ही है। इसलिए मैं आपसे तथा अन्य मित्रोसे यही अनुरोध करूँगा कि मुझे अपना वर्तमान कार्य-क्षेत्र छोडकर कोई और काम शुरू करनेका प्रलोभन देनके वजाय इस समस्याका अध्ययन कीजिए और यह जहाँतक आप सवको लाभकारी लगे, इसके पक्षमे विश्व जनमत तैयार कीजिए और इस प्रकार मेरे इसी कामको सफल वनाइए।

अपने परिवारवालोके लिए मेरा स्नेहाभिवादन स्वीकार करे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गाधी

श्री चार्ल्स एफ० वेलर
लीग ऑफ नेवर्स
व्रॉड ऐंड वेस्ट ग्रैण्ड स्ट्रीट
एलिजावेथ, न्यू जर्सी
यू० एस० ए०

[अग्रजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य नारायण देसाई

२३९. पत्र : वसुमती पण्डितको

आषाढ वदी १० [२६, जुलाई, १९२४][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा कार्ड मिला। मानसिक चिन्ताको छोडकर उपयुक्त उपचार करना और वहाँ रहकर अपने स्वास्थ्यको सुधार लेना। हजीरामे तुम्हारे लिए वन्दोवस्त कर रहा हूँ। गगावहनने सोमवारको पहुँचनेकी वात लिखी है। राधा ठीक तरहसे भोजन नही कर पाती।

वापूके आशीर्वाद

वहन वसुमती

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४५१) से।
सौजन्य. वसुमती पण्डित

१. डाकखानेकी मुहरसे।

२४०. टिप्पणियाँ

आचार्य राय प्रतिदिन कातते हैं

आचार्य रायकी उम्र इस समय साठ सालसे ऊपर है — तिसपर भी वे कताई-का अभ्यास करते हैं। वे लिखते हैं

> सचमुच चरखेके चलनेकी मधुर ध्वनि मेरे लिए शान्तिदायी सिद्ध हुई है। खादीमें मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ती जाती है और ज्यों-ज्यों मेरा काम आगे बढ़ रहा है त्यों-त्यों चरखा मेरे उत्साहको कायम रखनेवाला अखूट स्रोत बनता जा रहा है।

यदि आचार्य राय-जैसे अति उद्यमी बड़े-बूढ़े लोग इस प्रकार सूत कातने लगें तो फिर युवा लोग, जिनके पास बहुत समय होता है, सूत क्यों न कातेंगे? आचार्य रायके उत्साहका कारण समझना आसान है। उन्होंने कितने ही वर्षोंसे अकाल पीड़ित बंगालियोंकी सहायता करनेका काम हाथमें लिया है। उस कामको करते हुए उन्होंने देखा है कि अकाल-पीड़ित केवल दान देनेसे तो नीतिभ्रष्ट हो जाते हैं और इससे उन्हें लाभ होनेके बजाय हानि होती है। हजारों स्त्री-पुरुषोंको ऐसा कौन-सा काम दिया जा सकता है जिससे उन्हें रोजी मिल सके? चरखेके सिवा इतनी व्यापक दूसरी कौन-सी वस्तु हो सकती है? उनकी तीक्ष्ण और परोपकार-रत बुद्धिमें इस बातका आ जाना कठिन न था।

इस्तीफे

हुबलीकी कांग्रेसके अनेक पदाधिकारियोंने कमेटीके प्रस्तावको देखते हुए इस्तीफे दे दिये हैं। कुछ लोग इस स्थितिमें डर गये हैं, परन्तु मैं तो इसे एक शुभ चिह्न मानता हूँ, क्योंकि इसमें समितिके प्रस्तावके प्रति आदर व्यक्त होता है। जिन संस्थाओं-के पास राजदण्ड नहीं है, उनका अस्तित्व केवल उनके सदस्योंकी निष्ठापर ही अवलम्बित रहता है। मैं जानता था कि ऐसे बहुत-से पदाधिकारी हैं जो पंचविध बहिष्कारोंको नहीं मानते या उनका पालन नहीं करते और इसीलिए मैंने ऐसा प्रस्ताव रखा था कि ऐसे लोगोंसे अपने पदोंको छोड़नेका अनुरोध किया जाये। यदि ऐसे पदाधिकारी बिना रोष किये और पद छोड़ना उचित मानकर कांग्रेससे निकल जाते हों तो इसमें उनका और राष्ट्र — दोनोंका लाभ है। उन्होंने उचित कार्रवाई करके अपनी भलमनसाहतका परिचय दिया है और इस्तीफे देकर कांग्रेस कमेटीको शुद्ध किया है। ऐसा होनेपर भी उनकी सेवाएँ तो देशको मिलेंगी ही। यदि वे रोषके वश होकर निकले होंगे तो इसमें उन्हींकी हानि है, क्योंकि इससे उन्होंने सेवा द्वारा लोगों-का जो प्रेम प्राप्त किया है उसके नष्ट हो जानेकी सम्भावना है। परन्तु मुझे जो समाचार मिले हैं उनके अनुसार तो सब लोग साधुभावसे ही अलग हुए हैं। देशको

उनकी सेवाएँ मिलती रहेगी। श्री गगाधरराव [देशपाण्डे] ने केवल कर्नाटकके सामने ही नही, बल्कि सारे देशके सामने जो बढिया मिसाल पेश की है उससे ऐसी आशा रखी जा सकती है कि इस्तीफा देनेवाले सभी सज्जन उनका अनुकरण करके अपने पद छोड देनेपर भी देशकी सेवा करते रहेगे। गुजरातके सामने तो श्री कालिदास झवेरीकी मिसाल है। वे इस्तीफा दे देनेके कारण सेवा करना वन्द कर देगे — ऐसी वात नही है। जो लोग काग्रेसके प्रस्तावोपर अमल नही कर सके है, वे यदि पदाधिकारी रहते है तो मानो खुद अपनेको और देशको धोखा देते है। ऐसा करनेसे किसी भी सस्थाका काम नही चल सकता। जो शख्स खुद विदेशी कपडा पहनता हो वह दूसरोसे उसका वहिष्कार कैसे करा सकता है? जो खुद वकालत करता हो वह दूसरोसे वकालत कैसे छुडा सकेगा? जो खुद अपने लडकोको सरकारी पाठशालामे पढाता है वह राष्ट्रीय पाठशालाका काम कैसे चला सकता है? फिर यदि बहिष्कार-को माननेवाले और उसका पालन करनेवाले लोगोमे काग्रेस सगठनको चलानेकी क्षमता न हो तो स्वराज्यका अर्थ ही क्या होगा? और यदि वहिष्कारपर अमल करनेवाला कोई भी न हो तो वहिष्कारको भावनाके रूपमे भी किस तरह कायम रखा जा सकता है? भावनाके रूपमे वही वस्तु रह सकती है जिसपर कुछ लोग तो जरूर अमल करते हो। कोई वस्तु भावनाके रूपमे इसी उद्देश्यसे कायम रखी जाती है कि उसपर किसी-न-किसी दिन तो अमल किया जाना है। यदि उसपर कोई भी अमल न करे तो फिर वह भावना नही, बल्कि ढकोसला मानी जायेगी। आज जो स्वच्छता हो रही है उससे ढकोसला मिट रहा है। यह कोई साधारण वात नही है। इसका अर्थ यह है कि हम जिस तरह भी विचार करे उसी तरह हमे एक ही जवाब मिलता है कि कमेटीके प्रस्ताव और उसकी रूसे दिये जानेवाले इस्तीफे दोनो ही स्वागत योग्य है।

शिक्षकोंके विषयमें क्या?

परन्तु एक कुमार-मन्दिरके आचार्य पूछते है कि जिस जगह लोगोको राष्ट्रीय पाठशालाकी चाह न हो और शिक्षक वेतन न मिलनेसे भूखो मरते हो, वहाँ शिक्षकोको क्या करना चाहिए? ऐसा ही सवाल एक वगाली शिक्षकने किया था। मैने उसका जवाव 'यग इडिया' मे दिया हे।[1] हम उसी प्रश्नपर यहाँ कुछ अधिक सूक्ष्मतासे विचार करते है। अब्बास साहबने[2] इस सवालपर दूसरे ढगसे विचार करनेका भार मुझपर डाला है। वे कहते है कि कितने ही गाँवोमे पाठशालाएँ है ही नही। वहाँ क्या किया जाये? पहली कठिनाईका जवाव सरल है। यदि शिक्षकमे प्रतिभा होती है तो वह अपना काम हर उपायमे चला लेता है। शिक्षक तो चुम्बककी तरह काम करता है। उसके आसपास लडके वने ही रहते है और उसे घडी-भर छोडना पसन्द नही करते। विद्यार्थियोको उसका वियोग असह्य हो जाता है। माँ-वाप ऐसे शिक्षक-

१. देखिए "शिक्षकोंकी दीन दशा", २४-७-१९२४।

२. अब्बास तैयबजी।

का त्याग हरगिज न करेंगे। यदि शिक्षक धनी हो जाता है तो वह 'चोर' समझा जाता है और भूखों मरता है तो 'बुद्धू' माना जाता है। उक्त शिक्षकोंको मेरी सलाह है कि वे घर-घर भीख मांगकर अपना पेट भरें, लेकिन अपना शिक्षा-धर्म न छोडें। काका कालेलकरने[1] एक जगह लिखा है कि शिक्षाको धन्धा न मानना चाहिए। उनका यह कथन बिलकुल ठीक है।

फिर आज तो शिक्षा सस्ती हो जानी चाहिए। लडके पढे और पढते हुए कमाये। पहले जमानेमें ऐसा ही होता था। विद्यार्थी 'समित्पाणि' होकर गुरुके पास जाता था। उसके दो अर्थ हैं। एक अर्थ यह है कि वह उसके द्वारा अपना भार गुरुपर न डालने और मेहनत-मजदूरी करके अपना और अपने गुरुका निर्वाह करनेकी प्रतिज्ञा करता है। उसका दूसरा अर्थ यह है कि वह सदा विनयशील रहेगा। इन दोनों बातोंकी जरूरत आज भी है। चरखेमें मजदूरी और विनय दोनो हैं। उक्त शिक्षक लडकोंको रुईकी तमाम विधियाँ सिखाये और उनसे बढिया सूत कतवाये। वे खुद भी उनके सामने बैठें और सूत कातें। वे साथ-साथ लडकोंको पहाडे याद करायें। संस्कृत धातुओं और सज्ञाओंके रूप कण्ठस्थ कराये। वे उन्हे श्लोकोंके अर्थ समझायें और अच्छी-अच्छी ऐतिहासिक कथाएँ सुनायें। वे लडकोंके लिए चरखा कातना एक सरस और ज्ञानमय विषय बना दें। ऐसा होनेसे लडकोंका जी भी न ऊबेगा। तकलीसे सूत कातनेकी विधि एक लेखमें अन्यत्र दी गई है। उसकी तजवीज करनेसे काम तुरन्त शुरू किया जा सकता है।

अब अब्बास साहबके सवालपर विचार करें। 'नवजीवन' के पाठक शायद ही इस बातको जानते होंगे कि भारतमें अंग्रेजीका ज्ञान चाहे बढ गया हो, परन्तु समष्टि-रूपसे अक्षर-ज्ञान कम हो गया है। हिन्दुस्तानमे पिछले पचास वर्षोंमे देहाती पाठशालाओंकी संख्या कम हो गई है। इसका अर्थ यह है कि जितने अशमें हम मध्यम-वर्गके लोग अपनेको ऊँचा उठा मानते है उतने ही अशमें देहाती बालक नीचे गिरे हैं। ज्यों-ज्यों हमारी आर्थिक उन्नति हुई है त्यों-त्यों देहातकी अवनति हुई है—उसी तरह ज्यों-ज्यों विद्यामें हमारी उन्नति हुई है त्यों-त्यों उनकी अवनति। यह बात है तो भयकर, परन्तु है बिलकुल सच। कोई भी अर्थशास्त्री इस बातको साबित कर सकता है। ब्रह्मदेशमें ऐसा देखा गया है कि अंग्रेजी राज्य आनेसे पहले प्राय तमाम बालकोंको अक्षर-ज्ञान था—क्योंकि वहाँतक एक भी गाँव पाठशालाके बिना न था। वहाँ आज हालत बदलती जा रही है। ग्रामीण पाठशालाएँ टूटती जा रही है और इससे अक्षरहीनता बढती जा रही है।

हमारा आन्दोलन मुख्यत गरीबोंके लिए है। इसलिए वह जिस हदतक उनमे फैलेगा उसी हदतक गरीबोंकी आर्थिक और बौद्धिक उन्नति होगी। इसका उपाय यह है कि हर गाँवमे एक स्थानीय पण्डित खोजकर उससे पाठशाला खुलवाई जाये। वह पेडके नीचे बैठकर पढाये। हिन्दुओंके लडके मन्दिरोमे पढे और मुसलमानोंके मस्जिदोमे। लोग इस तरह कार्य आरम्भ करे और फिर दोनोंके लिए एक ही पाठशालाकी

१ दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर।